साप्ताहिक
दिनमान
टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रकाशन

ट्रपति की अरब यात्रा
शीवाद विरोधी समागम
ओ-फोर्ड न्याय • लाओस
ल्पी स्त्रियाँ • मसीही जासूस
ज़ा से बातचीत • तुलसी गिरि

रुपया

14-20 दिसंबर, 1975
23-29 मार्गशीर्ष, 1897

ऊनी कपड़ों की नाज़ुक धुलाई के लिये जेण्टील

ऊनी कपड़े जैसे कार्डीगन, पुलोवर, शाल नाज़ुक कपड़े हैं. इनकी धुलाई के लिये एक ख़ास तरीक़े यानी जेण्टील की ज़रूरत होती है. जेण्टील ऊनी कपड़ों की चमक-दमक कायम रखता है, उन्हें मुलायम बनाये रखता है तथा इससे ऊनी कपड़ों के रोंये नष्ट नहीं होते.

जेण्टील विशेष रूप से आपके मनपसन्द ऊनी, रेशमी और सिन्थेटिक कपड़ों को धोने के लिये बनाया गया है. जेण्टील आपके कपड़ों को सुरक्षित ढंग से साफ़ करके कपड़ों को एकदम मुलायम तथा नये जैसा चमकदार बना देता है. अपने सभी नाज़ुक कपड़ों को घर पर ही सुरक्षित ढंग से जेण्टील से धोइये.

जेण्टील

नाज़ुक कपड़ों की घर पर ही सुरक्षित धुलाई के लिये

SHILPI DM-7a-74 HIN

मत और सम्मत

अंधविश्वासों के चक्र में हम किस तरह फँसे हैं इस का कुछ अनुमान पिछले दिनों देहरादून में घटी एक हृदयविदारक घटना से सहज ही लगाया जा सकता है.
एक सिख युवक कुछ मा
घिरा हुआ था. कुछ लो
उसे किसी दुरात्मा ने घेर
अच्छे ओझा से अपना इल
ने एक ओझा का नाम भ
के पास वह युवक एक दि
गया. ओझा ने तुरंत अपनी
दी. कुछ ही देर में युवक
थे और उस पर लात, घूं
मार पड़ रही थी. दो 'सि
भी ओझा के साथ थीं जो
हिलाती जाती थीं और अ
पीट-पीट कर अधमरा कि
'मंत्र' भी उन के होठों से फु
की माँ से यह देखा नहीं गया
को पुकारा : बेटा ये लोग
बेटा उस समय तक मूर्छित
की माँ ने कुछ जान पहचान के लोगों को बुलाया और युवक को किसी डॉक्टर के पास ले गये पर युवक तब तक मस्तिष्क के रक्तस्राव के कारण दम तोड़ चुका था. मरते दम तक युवक को यह विश्वास था कि यह सब उस का इलाज हो रहा है. इस घटना ने नगर की जनता के बीच एक दहशत बरपा कर दी. यह आधुनिक युग में अंधविश्वास का एक वीभत्सतम उदाहरण है जो हमारी समझ पर प्रश्न चिन्ह लगाता है. हालाँकि वह ओझा अब तक जेल के सीखचों के भीतर जा चुका है पर अभी ऐसे ही हजारों ओझा होंगे जो रोज हजारों की तादाद में अंधविश्वास से घिरे नासमझ लोगों के जीवन से खेल रहे हैं. इन सब का इलाज अंततः कौन करेगा ?

—नवीनानंद नौटियाल, देहरादून, उत्तरप्रदेश.

पाँव तले की जमीन : 23 नवंबर : बटाई की खेती का सिलसिला समाप्त होने की आशंका से स्वतंत्रता के पूर्व से ही हाथ पर हाथ धरे बैठा आलसी जमींदार वर्ग चिंतित है, इस में दो राय नहीं. इस व्यवस्था से छोटी जोत के किसान और भूमिहीन मजदूर भी चिंतित हैं, यह भी एक तथ्य है. कुछ गाँवों के सर्वेक्षण के दौरान मुझे ज्ञात हुआ कि तमाम भूमिधरों की संपूर्ण और शेष गाँवों में अधिकांश की आंशिक ज़मीन बटाई के बूते पर चल रही है. तमाम खेतिहरम जदूर या नाममात्र के भू-स्वामी बटाई की बदौलत हल बैल रखे हैं.

स्त्री वर्ग की समस्या नहीं है.
अपने माँ बनने का निर्णय स्वतंत्र रूप से स्त्री को ही करना चाहिए, इस मान्यता का सही रूप होगा—अपने माँ बनने का निर्णय स्त्री को भी करने का स्वतंत्र रूप से अधिकार हो. पहली धारणा पुरुष प्रधान समाज के प्रतिकार स्वरूप उपजी लगती है—पुरुष की श्रेष्ठता और निर्णय थोपने की ज़बर्दस्ती का प्रतिकार. समस्या का निदान यह कदापि नहीं कि पुरुष प्रधान समाज को स्त्रीप्रधान बना दिया जाये, महज इसलिए कि महिला वर्ष चल रहा है. स्त्री को पूरा पूरा अधिकार होना चाहिए कि वह खुद भी निर्णय ले कि उसे कब माँ बनना है, कब वह अपने मातृत्व का दायित्व ठीक से निभा सकेगी, परंतु इस के साथ ही पुरुष को भी उस के पिता बनने के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता, जिस का ठीक विपरीत अब तक की हकीकत है. प्रसव की पीड़ा दिखा कर स्त्री को ही माँ बनने का अधिकार दिलाने की बात कम से कम वर्तमान सामाजिक संरचना में ठीक न होगा जिस में बाप ही को ज्यादातर कष्ट उठाने पड़ते हैं; लड़की की शादी के लिए गाँव गाँव चप्पलें चटकानी पड़ती हैं, बेटा बेटी संबंधी तमाम तरह की समाज में फैल रही दिक्कतें झेलनी पड़ती हैं. फिर प्रसव पीड़ा एक प्राकृतिक विधान है जिस में पुरुष चाह कर भी सहानुभूति और सुविधा के ख्याल के अलावा और किसी तरह हिस्सा नहीं ले सकता. चाहे यह पीड़ा स्त्री को अपनी इच्छा से झेलनी पड़े, चाहे पुरुष की इच्छा से. स्त्री संबंधी लगभग सारी समस्याओं की जड़ पुरुष का अपनी सुविधानुसार बनाये गये नियम और उस में पनपी स्त्री की गुलाम मानसिकता है. स्त्री की पुत्रवती होने की उत्कट अभिलाषा स्वयं पुरुष की प्रधानता सिद्ध करती है. स्त्री को ही 'दूधो नहाओ, पूतों फलो', 'पुत्रवती हो', 'सदा सुहागिन रहो' का आशीर्वाद दिया जाता है. स्त्री यह सुन कर गदगद हो जाती है. स्त्री की सारी सार्थकता सिमट कर माँ के रूप में रह
यहीं यह मसला भी महत्त्वपूर्ण है कि माँ
संभोग के सुख के बीच कितनी दूरी
करते वक्त कितनी प्रतिशत स्त्रियों
पुत्र प्राप्ति की इच्छा (लक्ष्य) रहती
साथ ही एक प्रश्न और है कि क्या
का अधिकार स्त्री को प्रदान कर के
ली आ रही पारिवारिक नीरसता
हटों में किसी प्रकार की कमी की
? गृहस्थी की सारी गड़बड़ी का
एक की वर्चस्व भावना है, चाहे वह
स्त्री. जहाँ तक स्त्री के अधिकारों
, वह उसे स्थायी रूप से तभी मिल
ा तो पुरुष समझदार हो जाये या
अधिकारों की अवहेलना चाह कर
के. माँ बनी स्त्री के अंदर अभी भी
के मातृत्व के अलावा सभी चीज़ें
ा ही दे सकता है. मानो मातृत्व
दूसर दज की चीज़ हो. आर्थिक स्वतंत्रता परिवर्तन की सफलता के लिए आवश्यक है. खुद अपने ऊपर खड़ी नारी को उस की मर्जी के खिलाफ माँ नहीं बनाया जा सकता. बलप्रयोग की दशा में नारी गर्भपात को बुरा ही क्यों समझें, जब कि सरकारी आँकड़ों के अनुसार गर्भपात लोकप्रिय हो रहा है.

—देवेंद्र कुमार आर्य,
द्वारा श्री कैलाशचंद्र श्रीवास्तव,
मियाँ बाजार, दक्षिण फाटक,
गोरखपुर, उ. प्र.

चंदे की रियायती दरें

अवधि	देश में	विदेश (साधारण डाक से)
वार्षिक	42 रु.	61 रु.
छमाही	22 रु.	32 रु.
तिमाही	12 रु.	16 रु.

आप फ़रमाते हैं :—

व्यंग्यचित्र : लक्ष्मण

'नहीं, बिलकुल नहीं— अंतरराष्ट्रीय महिला वर्ष समाप्त होते ही मैं यह सब काम करना बंद कर दूंगा'

पत्रकार संसद

तनातनी : कम या ज्यादा

अमेरिकी राष्ट्रपति श्री फोर्ड की हाल ही की पीकिङ यात्रा के दौरान चीनी विदेशमंत्री ने यूरोप में तनातनी कम करने की नीति का समर्थन नहीं किया. पश्चिम जर्मनी के ही एक पत्र स्यू डयूटशे त्साईटुंग ने अपनी एक समीक्षा में तनातनी कम करने की नीति की प्रगति पर निराशा व्यक्त करते हुए लिखा है—

'तनातनी कम करने की नीति के लिए अनेक संधियाँ और विज्ञप्तियाँ कागज पर ही रह गयीं. इन में से अधिकतर संधियाँ और वक्तव्य धूमिल पड़ गये. जिन देशों के बीच ये संधियाँ हुईं वे स्वयं इन्हें जीवित नहीं रख सके. मिसाल के तौर पर परमाणु अस्त्र प्रसार रोकने के लिए अमेरिका और सोवियत संघ के बीच संधि की अब कोई चर्चा भी सुनायी नहीं पड़ती. हाल ही के हेलसिंकी सम्मेलन की घोषणाओं पर अमल करने की दिशा में भी कोई प्रगति दिखायी नहीं पड़ती. चीन के नेता तनातनी कम करने की नीति को 'भ्रम' की संज्ञा दे चुके हैं. लगता है उन का इस तरह की नीति में मूल रूप से कोई विश्वास नहीं है. हेलसिंकी सम्मेलन के बाद सोवियतसंघ के नेताओं ने कुछ ऐसा रवैया अपनाया है कि पूर्व और पश्चिम के मतभेद सम्मेलन कर के दूर नहीं किये जा सकते. राष्ट्रपति फोर्ड से पहले कीसिंगर और पश्चिम जर्मन चांसलर पीकिङ की यात्रा कर चुके हैं. लेकिन पीकिङ का समर्थन न मिलने की हालत में ही दोनों नेता तनातनी कम करने की नीति छोड़ने के पक्ष में दिखाई नहीं पड़ते. लगता है नीति जारी रहेगी भले ही चीन उस का समर्थन न करता हो. पर साथ ही साथ यह भी उल्लेखनीय है कि इस नीति पर अमल करने की दिशा में कोई ठोस प्रगति नहीं हुई है. मस्क्वा और पीकिङ दोनों में से किसी का पक्ष न लेने की बात डॉ. कीसिंगर ने हाल ही की एक भेंटवार्त्ता में कही है.' अब देखना यह है कि अमेरिका इस संबंध में सोवियतसंघ के विचारों को कितना महत्त्व देता है. अमेरिकी विदेशमंत्री अब भी यही कहते हैं कि हम ने सोवियतसंघ के साथ मतभेद दूर करने की पूरी कोशिश की है और अब भी कर रहे हैं. वैसे अमेरिकी लोकमत भी सोवियतसंघ के साथ कोई लड़ाई लड़ने का जोखिम उठाने को तैयार नहीं है. लेकिन यह कहना मुश्किल है कि वर्तमान शक्ति संतुलन कब तक बना रहता है ? अमेरिका पर पश्चिम जर्मनी की निर्भरता को देखते हुए यह बात [illegible] जर्मनी पर भी लागू होती है. [illegible] तरह कोई जोखिम उठाने का [illegible] है. सोवियतसंघ के मुक़ाबले [illegible]क तथा अन्य दृष्टि से पश्चिम जर्मनी को अपनी ओर देखना है. फिर यह भी सोचना है कि बर्लिन के मामले में सोवियतसंघ की स्थिति कुछ मायने ज़रूर रखती है भले ही चीन के नेता पश्चिमी देशों की नीतियों को पसंद न करें. पर बड़ी शक्तियों के बीच शक्ति संतुलन में कोई ख़ास फ़र्क़ अभी होने वाला नहीं है. जहाँ तक चीन का संबंध है दुनिया की शक्तियों में वह अमेरिका और सोवियत संघ के बराबर नहीं है. जब तक चीन और मस्क्वा के बीच मतभेद बने रहते हैं तब तक चीन दुनिया के शक्ति संतुलन में एक अलग ही शक्ति के रूप में उभर कर सामने नहीं आ सकता. चीन इस बात को पूरी तरह समझता है कि दो बड़े देशों में किसी एक के साथ भी वह टकराव की हालत में नहीं आ सकता. 1972 में श्री निक्सन और चीन के प्रधानमंत्री श्री चाऊ एन लाइ के बीच जो समझौता हुआ था वह यही सिद्ध करता है कि चीन अनेक मतभेदों के बावजूद न तो अमेरिका से टकराव चाहता है और न सोवियत संघ से ही. इतना ज़रूर है कि अमेरिका और पश्चिमी यूरोप से जो भी राजनीतिज्ञ चीन जायेंगे उन से वह सोवियत संघ से ख़बरदार रहने के लिए ज़रूर कहेगा. पश्चिमी जर्मन के चांसलर श्री श्मिड्ट को भी चीन ने सोवियतसंघ के इरादों से ख़बरदार किया. राष्ट्रपति फोर्ड की पीकिङ यात्रा के दौरान भी चीनी नेताओं ने इसी तरह का रवैया अपनाया है. आगे भी चीन ऐसा ही करता रहेगा. सहयोग और सुरक्षा संबंधी हेलसिंकी सम्मेलन के प्रति भी चीन का रवैया कुछ इसी तरह का रहा. उस के विचार में चीन सोवियत मतभेदों को ध्यान में रखते हुए ही हेलसिंकी सम्मेलन ने कुछ निर्णय लिये. चीन के विचार में सोवियतसंघ यही समझता है कि चीन के साथ उस के मतभेद कम होने वाले नहीं हैं. लेकिन हेलसिंकी घोषणा के लिए यह एक बहुत ही नाज़ुक दौर है. मानवीय आधार पर कुछ बातें हो सकती हैं लेकिन जब तक वैचारिक स्तर पेचीदा रहता है तब तक मानवीय आधार पर क़िये गये निर्णय भी लागू होने मुश्किल हैं.

इधर पूर्व और पश्चिम यूरोप के बीच आर्थिक सहयोग पर भी राजनैतिक अनिश्चितता के बादल छाये हुए हैं. सोवियत-संघ ने आर्थिक सहयोग का रास्ता खोलने की कोशिश की है. अमेरिका से काफ़ी बड़ी मात्रा में वह गेहूँ ख़रीद रहा है. लेकिन सैनिक और अस्त्र शस्त्रों की तैयारी की दृष्टि से देखा जाये तो दोनों के बीच परस्पर अविश्वास ही नज़र आयेगा. दोनों देश तनातनी कम करने की प्रक्रिया को व्यापक बनाना नहीं चाहते. वैसे भी पूर्व और पश्चिम यूरोप के बीच तनातनी का वातावरण पहले जितना भले ही न हो, पर है ज़रूर. देशों की अपनी इच्छा से प्रचलित हथियारों और सेनाओं में कमी करने की साल्ट वार्त्ता भी खटाई में पड़ गयी.

पिछले सप्ताह

(27 नवंबर से 3 दिसंबर, 1975 तक)

देश

- **27 नवंबर:** बड़ौदा नगर निगम के चुनाव में जनता मोर्चे की भारी बहुमत से जीत. बंगलादेश में भारत के उच्चायुक्त श्री समर सेन का फिलहाल ढाका में ही रहने का निश्चय.
- **28 नवंबर:** उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री हेमवती नंदन बहुगुणा द्वारा त्यागपत्र. उत्तरप्रदेश में राष्ट्रपति शासन लागू.
- **29 नवंबर:** स्वेच्छा से छिपी आय की घोषणा करने वालों को विशेष छूट.
- **30 नवंबर:** बंसीलाल और गुरदयाल सिंह ढिल्लों केंद्रीय मंत्रिमंडल में शामिल. स्वर्णसिंह और उमाशंकर दीक्षित द्वारा अपने पद से त्यागपत्र. बनारसी दास गुप्त हरयाणा के नये मुख्यमंत्री बने.
- **1 दिसंबर:** लाहौर में खेले गये थामस कप मैच में भारत ने पाकिस्तान को 5-4 से हराया.
- **2 दिसंबर:** राष्ट्रपति फ़खरुद्दीन अली अहमद और बेगम आबिदा का काहिरा पहुँचने पर भारी स्वागत. तमिषनाडु संगठन कांग्रेस द्वारा सत्ता कांग्रेस में विलय का निर्णय.
- **3 दिसंबर:** राष्ट्रपति सआदत द्वारा श्रीमती इंदिरा गांधी की नीतियों की सराहना.

विदेश

- **27 नवंबर:** मस्क्वा में सोवियत विदेशमंत्री ग्रोमिको और फिलिस्तीनी मुक्ति संगठन के नेता श्री यासिर अराफ़त के बीच वार्त्ता.
- **28 नवंबर:** ब्रिटेन के डॉक्टरों द्वारा हड़ताल.
- **29 नवंबर:** न्यूज़ीलैंड के आम चुनाव में नेशनल पार्टी विजयी और सत्तारूढ़ लेबर पार्टी पराजित.
- **30 नवंबर:** पश्चिम एशिया में स्थायी शांति के लिए इस्राइली सेना को सभी अधिकृत क्षेत्रों को खाली करना होगा—मस्क्वा में संयुक्त विज्ञप्ति.
- **1 दिसंबर:** नेपाल में नये मंत्रिमंडल का गठन. डॉ. तुलसीगिरि नये प्रधानमंत्री नियुक्त किये गये. पीकिङ में राष्ट्रपति फोर्ड का फीका स्वागत.
- **2 दिसंबर:** पीकिङ में फोर्ड-माओ वार्त्ता में तनाव शैथिल्य पर मतभेद.
- **3 दिसंबर:** लाओस में 19 महीने पुराना संयुक्त मंत्रिमंडल भंग. 700 वर्ष पुरानी राजशाही समाप्त.

भुक्तभोगियों की कलम से-2

एक फौजी की हैसियत से मेरा संबंध पश्चिम दिनाजपुर के बाढ़ पीड़ितों से रहा है—उन, सावन-भादों की काली-काली रातों की मुझे ताज़ा याद है, मैं सीमा प्रहरी की हैसियत से एक चौकी पर तैनात था—चारों तरफ़ वर्षात ने प्रलय सा कर दिया था और जो कुछ ज़मीन नाम की चीज थी, वह कीचड़ था, बस कीचड़ ही कीचड़ था. और इसी कीचड़ में हम ने भी अपने जीवन को मिला दिया था, चौकी पर तैनात सिपाही बलवंत को हम ने होशियार कर दिया था कि वह इन भयानक वर्षाती रात में पानी आने से पहले हम सोये हुओं को जगा दे और अपने कानों को चौकन्ना रखे. आस-पास एवं दूर-दूर के गाँवों में पानी का प्रकोप होने से, आतंककारी हो हल्ला सुनाई देगा. कुत्तों के भौंकने की आवाजें, तरह-तरह की चीख़ पुकारें. यहाँ रात में बाढ़ का प्रकोप होने से लोगों को कुछ नहीं सूझता, वे अपने अपने घरों की चीजें संभालने में असमर्थ रहते हैं, भगदड़ मचती है और धूर्त लोगों को चोरी करने का मौका भी मिलता है क्योंकि सब कुछ तज कर लोगों को जीवन की हिफाजत करनी होती है—

इस तरह सिपाही बलवंत को समझा कर हम लोग चैन से अपने अपने बिस्तरों पर लेट गये थे और बड़े चैन से लेटे थे—सिपाही बलवंत को यह कहना भी न भूले थे कि चौकी के हम सारे जवानों की ज़िंदगी मात्र तेरे हाथ में है बसर्ते तू अपनी ड्यूटी अच्छी तरह निभाये—हाँ बलवंत ने अपनी ड्यूटी बहुत अच्छी निभायी और ठिक पौने एक घंटे में ही, जब नींद आँखों में इतना प्रभाव जमा गयी, कि आँखें खुलते ही न बनती थी—उस काली वर्षाती रात्रि में—'उस्ताद, उस्ताद' की एक खामोश ध्वनि, और फिर तीव्र पुकार मच गयी—'कैंप. होशियारऽ.ऽऽ . होशियारऽऽ 'उठो मई उठो, अरे वो कौन लेटा है. खड़क खन्, खन्न्न्न्. . . . क्या हुआ ?—अरे मोर्चा अरे मोर्चा संभालो, पूछता है क्या हुआ क्या नहीं हो गया संतरी को चिल्लाते चिल्लाते और मोर्चे को संभालते संभालते.'

पानी से लबालब भरे मोर्चों में अब धीमी धीमी आवाज़ होती है 'क्या हुआ ?. . . कौन ? कमाँडडैंड साहब की जीप ? नहीं जीप के उपर लाल बत्ती नही है. कैप्टन साहब, चुप. चौप. . . 'क्या तेरा दिमाग सहि है सामने देख सामने—मशीनगन को ठीक पकड़ो'.—'क्या तुझे कुछ दिखायी देता है ?—नहीं, और तुझे ! खाक'—

है आ रहा है, आ रहा है, सुन सुन—कुत्ते भूंक रहे हैं—पानी आ रहा है. 'तेरा दिमाग सही है क्या ?' 'हाँ—मेरा दिमाग सही है, तेरा सही है, तेरा सही नहीं है—जमीन देखी भी है, नक्शे में पिछले साल यह सारा इलाका जलमग्न हुआ था. इसी चौकी से हथियार निकालने मुस्किल हो गये थे—बहुत खतरनाक है यह बाढ़.' 'धत् तेरे की तू पानी से डरता है.'' 'और तू साला दुश्मन से डरता है क्या ?. . . —मैं दुश्मन से नहि पानी से डरता हूँ भाई जिस पर मेरी गोली का असर नहीं होता.' 'चुप चुप कमण्डडेण्ट सहाव निरक्षण करने आ रहे हैं. कहेंगे क्या खुशर पुसर कर रहे हो मोर्चे में—?'

'अधंरे में कुछ दिखाई भी तो नहीं देता है' 'हां यार मुझे भी नहि दिखता—हट साला मच्छर, तंग करता है.'

'चुप, चुप, चुप.'

'ठांय, ठांय—गोली नहीं, चुपचाप कोई मुकर्रर संकेत मिला, इशारा हुआ और सब जवान इकट्ठे हुए.

कमांडडेंट जवानों को संबोधित करते हुए बोले—'हां तो जवानो, अब हमें लड़नी है, लड़ाई—पानी के साथ भी और दुश्मन के साथ भी. दुश्मन यदि मुकाबले में आने की कोशीश करता है तो बड़ा सरल है कि—उसका सिर हम—अपने हुनर, तरीके, और काबलियत से दबा देते हैं लेकिन पानी का सिर दबाना एक व्यर्थ प्रयास मात्र है. प्रश्न है कि पानी से अपनी, अपने इलाके के ग्रामवासियों की रक्षा कैसे की जाये—?'

इस तरह जवानों को संबोधित कर के एवं कुछ खास खास बातें बता कर कमांडेंट अपनी जीप लिये उस अंधेरे में गायब हो गया और अब चौकी से एक गस्ती दस्ता इलाके का चक्कर लगाने को तैयार हो रहा था—

'ऐ भाई—हाफ पैंट और कमीज पहनो, अपना हथियार लो और जल्दी करो जल्दी—जूते जुराब भी मत पहनो. पानी में सना होगा, कीचड़ को कुचलना होगा, अरे—वर्षाती शरीर पर मत ओढ़ो, झमेला होगा, छोड़ो बर्षाती भी—'

चारों तरफ अंधेरा व्याप्त था, रिमझिम बारिश की बूंदें हमारे कपड़ों को भिगाये जा रही थीं और हम भीगते हुये पाट खेतों (जूट के खेतों)—के बीच बढ़े जा रहे थे. मैं सब से पीछे था, मेरे आगे फूरबा, सरिप्पा नाम का ठिगना गोरखा सिपाही था और उस के आगे सिपाही नारायण राय था—हम तीनों सिपाही एक दूसरे के पीछ बढ़े जा रहे थे और अब पाट खेत को छोड़ हम खुले में आ गये थे एवं पानी के किनारे खड़े हो कर पानी में राह को टटोलने लगे.

रिमझिम वर्षात, घनघोर अंधेरी रात्रि और सामने पानी का विशाल सागर सा दिखायी दे रहा था—अरे ! यह पानी इतना बढ़ गया—असंभव हमारी चौकी बच जाये'.

नारायण दा ने कहा, 'यखुन की होवे?—दरान्' (अब क्या होगा, जरा देखना होगा ठहरो)—इस तरह कुछ क्षण आपस में विचार करते हुए हम फिर एक दूसरे के पीछे पानी में बढ़ने का [illegible]—घुटने भर पानी, कमर भर पानी, छाती भर पानी—गुड्च्च, गड़बच्च-गुड्च्च, घर-घर, घर गया, खड्ड में गिर गया, पकड़ पकड़—हम दोनों की ज़रा मदद से फूरबा खड्ड में से निकल बाहर आया.

'क्या बात यार, तुम्हें रस्ते के खड्डों का पता भी नहीं क्या?''—यह प्रश्न फूरबा से करने पर उस ने अपने कमीज़ के पल्ले को निचोड़ते निचोड़ते बड़े सहज ढंग से उत्तर दिया—'मेरी निंदिया पानी खाये—' वाह, वा आगे आगे' —'मैं जागूं तू सो जाये.' वाह वाह—'निश्चय तुझे अपने गर्म बिछवान की याद आती है,' हाँ गर्म बिस्तर, बड़ी प्यारी चीज़ है. बड़ी प्यारी चीज़, गर्म बिस्तर सहज भुला देने वाली चीज़ नहीं है—वर्षात के थपेड़ों से सिकुड़ा, ठंडा हुआ शरीर गर्म बिछावन की तपिस के लिए लालायीत है मेरे यार—आह मेरे गर्म बिछावन. भाग्यशाली हैं वे लोग जो बड़े चैन से अपने गर्म नरम बिछावनों पर लेटे हुए, मधुर स्वप्नों में खोये होंगे—आह क्या ज़िंदगी है यार मनुष्य की भी—'

'खैर छोड़ो. आगे बढ़ो—अब खड्ड में मत कोई गिरना. हम भी ड्यूटी पूरी कर के अपने गर्म नरम बिछावन पर लेट जायेंगे—देखो भाई सामने देखो. एक दूसरे को पकड़ कर चलो—पानी है, बहुत पानी है. धीमे चलो, ओ देखो—आम-गाच्छ (पेड़) उस तरफ नही. उस झाड़ी की तरफ चलो.'

नहीं यार—नहि अरे हम कहाँ आ फँसे.

'ठहरो सुनो बात सुनो.

'लो—अब गले-गले भर पानी में बात भी सुनो.'

'भई इस तरह तीनों खड्ड में गिर पड़ेंगे. एक आदमी चौकी में संदेश देने के लिए अवश्य बचना चाहिए.'

'आ हा हा. आ हा हा . . . . मिल गया—मिल गया. रास्ता मिल गया और फिर हमें आम पेड़ के नीचे रास्ता मिल गया—लेकिन यह सीमा है. एक तरफ हिंदुस्तान दूसरी तरफ पाकिस्तान जो आज बंगलादेश है.

हमें रास्ता मिल गया—लेकिन क्या रास्ता सुरक्षित है? क्या रास्ता खतरे से खाली है? नही रास्ता खतरे से खाली नही. अपनी सुरक्षा हेतु रास्ते पर ज़रा भी विश्वास करना एक सीमा पहरी के लिए संकट मोल लेना है—बहुत चुपचाप. एकदम गंभीर और बड़े धीमे धीमे हम रास्ते पर बढ़ने लगे. खामोश हो कर चलो भाई, कच. कच. चलो चलो अरे रुक क्यूं गये. क्या है'—पहली गंभीर ध्वनि, फिर दूसरी गंभीर ध्वनि. 'खतरा है', तीसरी गंभीर ध्वनि—[illegible] (पोजिशन लो), बैठ जाओ—खतरे का आभास हुवा, मात्र एक सीमा प्रहरी को ही

होता है. दूसरों को नहीं. केवल हवा मात्र से ही वह खतरा भांप जाता है—

'सामने देखो सामने—हरकत दिखाई देती है—

हम तीनों खामोश, गंभीर और बड़ी सावधानी से पोजिशन के ढंग में चुपचाप बैठ गये और सामने लगभग 25 गज दूरी पर तरह तरह की गतियों का अनुभव करने लगे—काले-काले साये खड्ड में से सिर उठा रहे थे, इतनी रात गये हमारी सीमा के भीतर—यह क्या है?' 'ईस्टऽ:ऽ:ऽ: चुपचाप देखो' 'हां—यह डकैत पार्टी है', पाकिस्तान का खतरनाक डकैत आया है हमारी सीमा में, हमारे गाँव को लूटने—हाँ-हाँ, मुखिया के घर को इस ने लूटा था. मुखिया की बाड़ी में घुस कर यही बंदूक निकालने में असफल रहा था, पर इस ने हार स्वीकार नहीं की थी बल्कि इस ने दावा किया था कि फिर आ कर यदि यह मुखिया के घर का समूल नष्ट न करे उस की बंदूक न हासिल करे तो यह डकैती करना छोड़ देगा.

आज यह हमारे सामने है और हम इस के लिए परेशान हैं, धिक्कार है हमें यदि इसे हम ने जीवित छोड़ा. हमारे हथियार स्वाभाविक ही गोली चलाने की स्थिति में आ गये, हमने संगीनें नंगी कर दीं और अब निकट ही था कि—"ईस ऽ:ऽ:, देखो'—एक काला साया खड्ड में से ऊपर आ गया—दूसरे ने खड्ड में ही 'दप्प—टार्च की रोशनी की और जल्दी ही टार्च बंद कर दी, छप्प, छपाक की आवाज हुई, और इस क्षणिक रोशनी में—हमें तलवारें, बंदूकें और डकैतों का पहलवान रूप भेष दिखाई दे गया—और अब हम उन को अधिक न देख कर उन की लाश देखना चाहते थे—बड़ी सावधानी से उन्हें खड्डे में ही दबोचने के लिए हम तीनों एक साथ आगे बढ़े, और आगे बढ़े एवं गरज कर बोले—ठहरो, किसी ने हिलने की हिम्मत की, भागने की कोशिश की—ठहरो, थम जाओ थाम्म—लेकिन यह खड्ड छोटी नहर थी, एक दो आदमी एक तरफ भाग निकले, एक दो आदमी भागने की कोशिश करते चीखने-चिल्लाने लगे लेकिन बाकी आदमी जहाँ के तहाँ—ठिठक कर रह गये और हमारी गोली छूटते-छूटते रुक गई, नहीं छूटी गोली—ओऽ: फऽ: ऽ: यदि गोली छूट गई होती तब क्या होता. गोली—जो दुश्मन के लिए बनाई है—वह गोली दुशमन की छाती पर न लग कर, अपने इन्हीं निरीह, ग़रीब ग्रामीणों की छाती पर लग जाती. ये ग्रामीण अभागे जिन्हें न दिन को चैन है न रात को चैन है. ये ग्रामीण इतनी रात गये मछली पकड़ रहे हैं इस खड्ड में? हाँ हाँ—यही है हमारे देश की ग़रीब अभागी जनता जो बर्षात को पुकारते हैं—इनकी [illegible] ी बह जाये, इनका शरीर सिकुड़ कर ठंडा हो जाये, इन के कपड़े भीग कर सड़ जायें लेकिन इन्हें बर्षात चाहिए और बर्षात के साथ मछली चाहिये.

हाँ वर्षात अच्छी है. वर्षात बुरी नहीं, बर्षात पेट को पालती है. बर्षात निरीह उन अभागों को ज़मींदारों के शोषण से मुक्त करती है और ज़मींदारों के पोखरों को पानी से भर भर कर मछलियों का वितरण कर देती है—भले ही यह मुक्ति चार महीने की होती है लेकिन होती अवश्य है.

हम तीनों सिपाहियों ने अपने तैनात हथियारों की संगीनें बंद कीं और उन ग़रीबों पर तरस खाने के बजाय बुरा भला कहने लगे. उन्हें थप्पड़ मारने लगे—'मार एक थप्पड़ हाँ, यही भागा था, बोका, साले, उल्लू का पट्ठा—हथियार के सामने भागने की हिम्मत, मर जाता तब—तुम तलवारें ले कर मछली मारते हो क्यों?'

तुम छतरी की सीखें झाड़ू की तरह बना कर मछली मारते हो क्यों? तुम को बंदूकें जैसे बांस के पुराने काले डंडों, बछियों से मछली मारने का अधिकार किसने दिया—क्यों? बताते क्यों नहीं हो, बताओ?—

इस तरह हम ने इन ग़रीबों को डांटते हुए पूछा था. उन्होंने हमारी सारी मार झाड़ और बातों का उत्तर बड़े ही दयनीय शब्दों में दिया था—'बाबू महाय! पेट र जुन्नू चित बुझाय बुझे न!' (बाबू महाशय—पेट की व्याकुलता मन को सांत्वना देने से भी नहीं मानती, क्या करें?)

—रामगोपाल उनियाल, देहरादून

—2—

मैं पटना के गरदनीबाग मोहल्ले में रहता हूँ. गरदनीबाग से गुजरने वाली मुख्य सड़क खगोलरोड है, जिस से उत्तर की ओर एक फर्लांग पर इस के समानांतर ही हार्डिंग रोड है. इसी से सटे सचिवालय तथा विधानसभा, खगोल रोड और हार्डिंग रोड के बीच में पूर्व रेलवे की लाइन है जो पूर्व की ओर पटना जंक्शन तक गयी है. इस के समानांतर दक्षिण में खगोल रोड, मीठापुर तक तथा उत्तर में हार्डिंग रोड, हार्डिंग पार्क तक गयी है. रेलवे लाइन के नीचे छोटे ओवरब्रिज जैसे बड़े बड़े नाले हैं जिन की संख्या गरदनीबाग रोड नं. 15 से ले कर मीठापुर तक तीन है. एक मीठापुर में, दूसरा यारपुर में और तीसरा रोड नं. 15 के रेलवे क्रासिंग के ठीक बगल में. रोड नं. 15 के नाले का उत्तरी सिरा हार्डिंग रोड तथा दक्षिणी सिरा खगोल रोड पर गरदनीबाग गेट पब्लिक लाइब्रेरी के सामने है.

पानी लाइन के उत्तर की ओर नहीं आता क्यों कि यह काफी ऊँचा है. यह बगल के मोहल्लों की रक्षा कर रहा था. लेकिन इस के नीचे के नाले दगा दे गये. मीठापुर तथा यारपुर के नालों से हो कर पानी मोहल्लों में घुस पड़ा. रोड नं. 15 के नाले में पानी आते ही उस ने नाले की बगल की मिट्टी काट काट कर उसे घेरना शुरू कर दिया. मोहल्ले के सभी युवकों ने कुदाल और टोकरियां आदि ले लीं. संख्या डेढ़-दो सौ होगी, सभी नाले पर बाँध बाँधने लगे. बगल के पेड़ों से कुछ डालियां काट कर पानी में डाल दी गयीं और 20-25 मिनट में उस पर काबू पा लिया गया. बाँध बाँधने का काम लगातार जारी था. वह 10 फुट लंबा और तीन फुट चौड़ा था.

बाढ़ सुरसा की तरह बढ़ी जा रही थी और उस का विकराल और भयानक रूप निरंतर सामने आ रहा था. बढ़ते जलस्तर को देख कर रात में भी काम जारी रखने का निश्चय किया गया. चार सर्चलाइट लायी गयीं, दो रेलवे लाइन के पास, एक सड़क पर तथा एक बगल के लाइब्रेरी गेट में लगायी गयी.

रेलवे लाइन तथा हार्डिंग रोड के बीच अफसरों के कुछ आवासीय मकान हैं. शाम को उधर से कुछ लोग आये और बलपूर्वक कहा, आप लोग जल्दी इस बाँध को काटिये. ज़िला अधिकारी का यह आदेश है. लड़कों ने कहा कि बाँध काटने के लिए ज़िला अधिकारी को भेज दीजिए. उन लोगों ने जिद्द की कि बाँध आप लोगों को काटना ही होगा. हम ने कहा क्यों, नहीं काटेंगे? उन का उत्तर था, काटना ही होगा. ज़िला अधिकारी का हुकुम है. हम लोग डूब रहे हैं. काटने से थोड़ा पानी तुम लोगों की ओर निकल जायेगा और. . .

यह बाँध बिल्कुल नहीं कटेगा. ज़िला अधिकारी को भेजो. अगर तुम लोग डूब रहे हो तो परिवार के साथ हम लोगों की तरफ आ जाओ. गरदनीबाग का प्रत्येक परिवार अपने अपने क्वार्टरों में तुम्हें जगह देगा.

'नहीं, तुम्हें बाँध काटना ही होगा, वरना रात में मिलटरी आ कर काटेगी,' इतना कह कर वे लोग चले गये. लड़के क्रुद्ध हो गये थे. उन्होंने निश्चय किया कि उन का सिर कटने के बाद ही बाँध कटेगा. थोड़ी देर बाद ज़िला अधिकारी वहाँ पहुंचे. सारा किस्सा सुनने पर उन्होंने हम युवकों को भी शाबाशी दी और यह निर्देश भी कि बाँध बाँधने का कार्य मुस्तैदी से जारी रखा जाये. रात भर काम चलता रहा. लाठी, भाला आदि से लैस युवक पहरा देने लगे.

बढ़ते जलस्तर के साथ हमारा काम दूसरे और तीसरे दिन भी जारी रहा. तीसरे दिन रात के 11 बजे के आसपास लगा, बाँध टूट जायेगा. पानी का दबाव काफी बढ़ गया. जलस्तर रेलपटरी से डेढ़-दो इंच ही नीचे था. हम ने खगोल रोड के किनारे रखे 5 ह्यूम पाइपों तथा अलकतरे के कुछ टीन बाँध में जड़ दिये. इस से बाँध टूटने का खतरा टल गया. तीसरे दिन यारपुर की ओर से भूगर्भीय नालियों से हो कर पानी गरदनीबाग में प्रवेश कर ही गया. लेकिन यह अन्य मोहल्लों की तुलना में नगण्य था. रोड नं. 15 से 5 तक ही पानी गया. यदि रोड नं. 15 का बाँध रात में

टूट जाता तो उस का मतलब था आधे घंटे के अंदर पूरे गरदनीबाग का जलमग्न हो जाना. गरदनीबाग की जनता आज भी उन युवकों की कृतज्ञ है जो जी जान एक कर के मोहल्ले को बचाते रहे.

—प्रबीर कुमार भारती, पटना.

—3—

बात करीब दो साल पहले की है जब हम कुछ साथी बस द्वारा गुरदासपुर से जालंधर आ रहे थे. जोर जोर से वर्षा होने लगी. शुरू शुरू में जो ज़मीन सूखी दिखायी दे रही थी वह बारिश के बढ़ने के साथ साथ शक्ल बदलती गयी. कुछ समय के बाद तो ऐसा लगा कि जैसे बस सड़क पर चल नहीं रही है, समुद्र में तैर रही है. चारों ओर पानी ही पानी. पानी और सड़क एक हो गयी. सड़क की दिशा का पता नहीं चल रहा था. चालक ने बस रोक दी. तीन घंटे के बाद बारिश बंद हुई तो चालक से अनुरोध किया गया कि वह बस को किसी आबाद जगह पर पहुँचा दे. बस के चलने के साथ साथ रेडियो से पता चला कि गुरदासपुर क्षेत्र में 40 गाँव बाढ़ग्रस्त हो गये हैं और शीघ्र ही सेना द्वारा सहायता भेज दी गयी है. हमने उस क्षेत्र में जाने का निर्णय लिया. कुछ धन एकत्रित किया, कुछ खाद्य और चिकित्सा सामग्री और कुछ गरम कपड़े आदि साथ लिये और बाढ़ग्रस्त क्षेत्र के लिए रवाना हो गये. अभी थोड़ा सा रास्ता तय किया था कि एक पूरा परिवार सड़क पर बैठा दिखायी दिया. उन्होंने बताया कि वे लोग बाढ़ आती देख कर सड़क पर आ बैठे हैं. यदि निश्चित हो कर घर पर पड़े रहते तो शायद यहाँ इकट्ठा बैठे दिखायी न देते. उन्हें कुछ चपातियाँ और दाल आदि देने के बाद आगे बढ़े ही थे कि सड़क की दूसरी ओर से 'गु. . . ड़-ड़' एवं 'ब. . .चाओ' जैसी आवाज सुनायी दी. हमने अनुमान लगाया कि अवश्य ही यहाँ कोई डूब रहा होगा. हमारे एक साथी तैरना जानते थे. उन्होंने कपड़े उतारे और पानी में कूद पड़े. पानी में उन्हें दो बच्चे मिल गये, जिन्हें उन्होंने बाहर ला कर हमारे सुपुर्द कर दिया. वह दुबारा पानी में कूद पड़े. हमने बच्चों को उल्टे लिटा कर उन के पेट में भरा हुआ पानी निकाल दिया. लगता था कि यदि वे एक दो मिनट पानी में और रह जाते तो उन का बचा पाना मुश्किल होता. अभी उन बच्चों को पूरी तरह होश भी नहीं आया था कि हमारे तैराक मित्र तीन बूढ़ों को अपनी पीठ पर और दो मासूम बच्चों को कंधों और हाथों का सहारा दे कर बाहर लाये. वह तीसरी बार भी पानी में कूदे, लेकिन इस बार उन को कोई और नहीं मिला. हम ने सातों का उपचार कर के उन्हें गर्म कपड़ों में लपेट दिया. एक बूढ़े को छोड़ कर शेष सभी होश में आ गये थे. हम ने उस बूढ़े को निकटवर्ती अस्पताल में पहुँचा दिया.

इस अनुभव के बाद जब हम आगे बढ़े तो कुछ दूरी पर कुछ लोग एक फट्टे पर बैठे नजर आये. वे पानी के बहाव से कभी इधर, कभी उधर जा रहे थे. हम वहाँ रुक गये. एक वृक्ष से लंबी सी शाखा तोड़ी और उसे पानी में फेंक दिया. लेकिन वह काफी छोटी थी. हंम ने पाँच-छह शाखाएँ और तोड़ीं और किसी प्रकार उन्हें कपड़ों आदि से बांध कर उन लोगों की ओर फेंका. संयोग कि पहली शाखा का एक सिरा फट्टे की आगे वाली नोक को छूने लगा. वे लोग समझ गये कि ये शाखाएँ क्यों छोड़ी गयी हैं. उन्होंने शाखा के अगले हिस्से को पकड़ लिया और हमें इशारा किया कि हम दूसरे छोर को अपनी ओर खींचें. थोड़ी देर में फट्टा हमारे पास सड़क के किनारे आ गया. एक-एक कर के सब को सड़क पर खींच लिया. ये लोग भूखे थे. हम ने उन्हें कुछ खाने पीने को दिया. उन्होंने बताया कि पानी आता देख कर हम लोगों ने पहले अपने गड्ढे को तोड़ कर एक फट्टा सा तैयार कर लिया. परिवार के मुख्य सदस्य ने सब को फट्टे पर बिठा दिया था और इस प्रकार वे बाढ़ से बच निकले. परिवार के एक सदस्य की हालत अचानक ही बिगड़ गयी. आधे घंटे के बाद दवादारू करने से वह ठीक हो गया. उस ने बताया कि वह इस खुशी को सह नहीं सका कि वह अपने परिवार सहित बाढ़ से बच कर बाहर आ गया. अंधेरा काफी हो चुका था. हम ने उन से विदा ली. अजीब दृश्य था. दोनों तरफ से स्नेह के आँसुओं की बरसात होने लगी.

—एस. बी. गुप्ता, होशियारपुर.

—4—

कुछ क्षेत्र ऐसे भी रहे जिन का समाचार एक सीमित क्षेत्र तक रहा और इस के कारण संकटग्रस्त लोगों ने बाढ़ का मुकाबला स्थानीय साधनों से ही किया. मध्य प्रदेश में भी कई नदियों ने अपने किनारे के निवासियों के लिए संकट उत्पन्न कर दिया. 20 अगस्त को नर्मदा और उस की सहायक नदियों में बाढ़ आ गयी जिस से मंडला आदि नगर संकट से घिर गये. जबलपुर से दमोह, सागर और भोपाल आदि की ओर जाने वाली राज्य परिवहन की गाड़ियाँ, ट्रक और कारें दमोह से 28 किलोमीटर की दूरी पर राजघाट पुल से आगे नहीं बढ़ सकीं. लगातार जोरों की वर्षा ने तीन दिन तक पुल को डुबोये रखा.

रक्षाबंधन का त्योहार था. बसों में भीड़ अधिक थी. अनेक लोग अपने पूरे परिवार के साथ यात्रा कर रहे थे. छोटे छोटे बच्चे भूख से परेशान थे. 20 अगस्त का दिन इस उम्मीद में गुजर गया कि शायद शाम या रात तक पानी उतर जायेगा, लेकिन वह 22 अगस्त तक पूरा नहीं उतरा: 21 को सभी यात्री भूख से परेशान होने लगे. राजघाट पर एक होटल था. दुकानदार ने कठिनाई को देखते हुए यात्रियों से अधिक दाम पर पूड़ी बेचना शुरू कर दिया. कुछ यात्री महँगी कीमत देने के लिए तैयार हो गये, लेकिन कुछ ने पास के गाँव भाटखमरिया में जा कर भोजन की व्यवस्था करनी चाही. उन्होंने महँगी पूड़ी बेचने वाले के संबंध में सूचना भेजी. भाटखमरिया पंचायत के पंच और प्रधानमंत्री के 20-सूत्रीय कार्यक्रम में विश्वास करने वाले नवयुवक श्री कमल जैन ने अपनी पूरी क्षमता के साथ इन विपत्तिग्रस्त यात्रियों को सहायता दी. उन्होंने सभी यात्रियों को भोजन की व्यवस्था का आश्वासन दिया. महँगी पूड़ी बेचने वाले को बुरा भला कहा. उस की निंदा की. श्री जैन ने अपने साथी गाँव के कुछ उत्साही लोगों की मदद ली. सभी ने प्रत्येक घर से आटा, चावल और घी इकट्ठा किया और थोड़े ही समय में चार बोरा गेहूँ इकट्ठा हो गया. उसे फौरन पिसवाया गया और प्रत्येक यात्री को आधा किलो आटा, बरतन, साग सब्जी जो कुछ भी उस समय उपलब्ध थे, दी गयी. गाँव में चार दिनों तक मेला जैसा दृश्य उपस्थित रहा. जिन यात्रियों ने वह अवसर अपने रिश्तेदारों के साथ हँसी खुशी से बिताने का निर्णय ले कर यात्रा शुरू की थी वे इस गाँव में अपना समय गुजार रहे थे. लेकिन वे निराश नहीं थे. उन के मन में गाँव के लोगों के प्रति एक आत्मीयता जागृत हो गयी थी. उन में से अधिकतर तो यही सोच रहे थे कि यदि ऐसी ही भावना हमारे देश के हर नागरिक की हो जाये और भारत एक परिवार जैसा हो जाये तब वसुधैव कुटुंबकम की उक्ति पूरी तरह चरितार्थ हो जायेगी.

—जमना प्रसाद 'जलेश', दमोह, म.प्र.

—5—

कहते हैं कि विपत्ति अकेले नहीं आती. ज़रा अनुमान कीजिए उन बदनसीबों की दुर्दशा का जो रात्रि के नीरव अंधकार में अपने पड़ोसियों के मकान की छतों पर भूखे प्यासे बैठे अपने कर्मों को कोस रहे होते हैं कि अचानक ठांय ठांय की आवाज़ सुनायी पड़ती है. एक अज्ञात आशंका से बढ़ती दिल की धड़कनें. . . बिजली गुल. . .अंधेरे की चादर भेदती सी अनगिनत आँखें और बंदूक की आवाज़ पहचानते चौकन्ने कान. . . 'डकैती? बोरिंग रोड में?' जैसी रहस्योद्घाटन करती कुछ धीमी फुसफुसाहटों के बीच अनुमान लगाये जाने लगे कि मामला क्या है और छतों पर लोग आपस में तरह तरह की बात करने लगे.

बाढ़ का पानी उतरने के बाद मिले कई भुक्तभोगी परिचितों और रिश्तेदारों से अनेक दर्दनाक अजीबोगरीब घटनाएं सुनने को मिलीं. बदहवासी की अवस्था में हमारे ग्वाले ने लगातार 48 घंटे एक वृक्ष पर जग कर बिताये. लेकिन अंततः भूख, प्यास और नींद से बेहाल हो कर 'रामभरोसे' हाथपैर ढीले छोड़ बैठा. होश आने पर स्वयं को सड़क के किनारे ज़िंदा पड़ा पा कर उसे भी कम आश्चर्य नहीं हुआ. शुक्र था की उन तेज़ लहरों का जो उसे किनारे तक पटक गयी थीं. इसी तरह एक मेधावी

निर्धन छात्र, जो इस वर्ष अक्तूबर में होने वाले आई. ए. एस. परीक्षा में सम्मिलित होने वाला था, बाढ़ के चक्कर में पड़ कर अपने सारे नोट और दूसरों से माँग कर इकट्ठा की गयी बीसों कीमती किताबें खो बैठा. मेरी एक नव-विवाहिता सहेली के शब्दों में, 'मेरी सारी कीमती साड़ियाँ एक-दूसरे के रंगों में घुलमिल कर बर्बाद हो गयीं.'

पटना विश्वविद्यालय की राष्ट्रीय सेवा योजना के अंतर्गत मुझे भी बाढ़पीड़ितों के लिए राहत कार्य का अवसर मिला. सेना की नाव से हम ने पश्चिमी पटना के जलमग्न क्षेत्रों में दवाइयाँ, सत्तू, भुने चने, चूड़ा और बिस्कुट आदि बाँटे. मंदीरी और किदवईपुरी के पिछड़े इलाकों में जब हमारी नाव पहुँची तो कमर से छाती भर पानी में खड़ी एक विशाल भीड़ ने, जिस में औरतें, मर्द और बच्चे सभी शामिल थे, हमें चारों तरफ से इस प्रकार घेर लिया कि शोरगुल में अनायास ही राजा राधिका रमण जी कृत 'दरिद्र नारायण' का 'कल्कि अवतार' साकार हो उठा. चारों तरफ से 'सिस्टरजी हम को कुछ दीजिए, बहनजी हम को कुछ नहीं मिला. उस को दो बार मिला है. भाई साहब ज़रा और सत्तू दे दीजिए. दस जने हैं हम लोग आदि आदि आवाज़ें एक साथ सुनायी दे रही थीं. हम लोगों ने सब को कुछ न कुछ देने की चेष्टा की. श्री कृष्णपुरी, श्रीकृष्णनगर, किदवईपुरी आदि मोहल्लों के पक्के मकानों तक राहत सामग्रियाँ पहुँचाने में कोई विशेष दिक्कत पेश नहीं आयी. सिर्फ़ कहीं कहीं हमारे स्वयंसेवक सहयोगियों को तैर कर जरूरत की वस्तुएँ पहुँचानी पड़ीं और इस दौरान अहाते की चहारदीवारी में लगे शीशे या कांटेदार तारों से उन के पैर छिल गये. एक फ्लैट की छत पर बैठी स्त्री की तरफ जब हम ने डबलरोटी के पैकेट बढ़ाये तो लज्जा, संकोच और आत्मग्लानि से भरी उन की आँखें पोर्टिको में खड़ी अपनी जलमग्न कार पर जा टिकीं. इस वर्ग के लोगों के मौन हावभाव सबकुछ लुट जाने की बदहवासी और बड़े प्रयत्न से राहत माँगने को निकलती थर-थराहट भरी आवाज़ निश्चय ही उन के उन संस्कारों का प्रभाव थी जो असीम विपत्ति और निराशा के क्षणों में भी उन्हें हाथ फैलाने से रोकती थीं. यह एक विडंबना थी कि पश्चिमी पटना में जब लोग जीवन और बाढ़ से संघर्ष कर रहे थे तब पूर्वी क्षेत्रों में कुछ लोग बड़ी आतुरता से बाढ़ आने की प्रतीक्षा कर रहे थे.

बाढ़ के दौरान अपने पटना शहर में एक अभूतपूर्व समाजवाद के दर्शन हुए. घोर विपत्ति की दारुणता ने धनी गरीब सभी तबके के लोगों को एक श्रेणी में ला पटका था. सभी असहाय थे. सभी जरूरतमंद थे. प्रेम, सहानुभूति और अपनत्व के ऐसे क्षण कम ही दिखते हैं जिन्हें हम ने इस बाढ़ के दौरान जिया.

—मंजरी वर्मा, पटना.
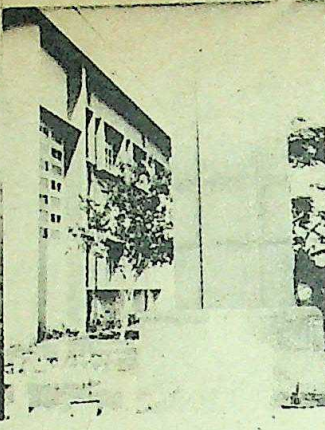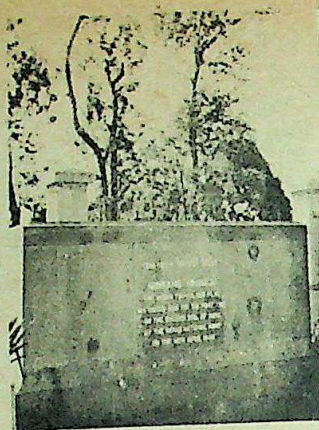
सुभाष स्मृति : ध्वज आरोहण स्थल, पुस्तकालय और प्रतिमा

यात्रा—2.

मणिपुर

लेखक और फोटोकार—सूर्यनारायण

कोहिमा से इंफाल पहाड़ियों की उतराई का ही सिलसिला कहा जायेगा. माओ में नगालैंड से मणिपुर की सीमा में प्रवेश करने के बाद भी वही पहाड़ियों का परिदृश्य दिखलाई देता रहा और मिलती रहीं नगाओं की साफ सुथरी बस्तियाँ. फिर धीरे-धीरे लोगों के पहरावे में अंतर आने लगा और जब गोरी लड़कियों के भाल पर वैष्णवी चंदन चमकते हुए दीखने लगे तो मुझे यह सहज ही में बोध हो गया कि अब हम मणिपुर के मैदानी इलाके में आ गये हैं.

कभी शताब्दियों के क्रम में जो चलत मंगोल जाति अपने शाखा प्रशाखाओं के रूप में विस्तृत हो कर स्थानीय लोगों से रक्त संबंध जोड़ती हुई पूर्वीय एशिया के विभिन्न भागों में फैली, उसे भारत की इस धरती ने पूरे तौर पर अपना बना लिया. उन के वन देव-देवियाँ तो कायम रहीं पर जब उन के पौराणिक रूप परिकल्पित होने लगे तो कहीं से शिव पार्वती आयीं तो कहीं से अर्जुन ने आ कर राजकुमारी चित्रांगदा को ब्याहा. वृंदावन रास रचयिता श्री कृष्ण तो जैसे बिल्कुल इन के अपने बन के रह गये.

प्राचीनता की स्मृति संजोए मैं आधुनिक मणिपुर और उस की राजधानी इंफाल को देखने जा रहा हूँ.

इंफाल का बस पड़ाव आया. उतर कर मैंने पास की एक धर्मशाला में जगह ली.

कमरे में सामान छितरा कर जब बाहर निकला तो शाम अपनी पूरी सहजता के साथ घाटी के इस खूबसूरत शहर पर बिखरी हुई थी. मैं अपने हमसफर मित्र कामेश्वर के साथ आगे बढ़ता गया. आगे बढ़ता गया. . .

अर्थमंत्री रीसाङ कीस्रिंङ का बंगला दीख पड़ा, अंदर गया. वह अपने मित्र असमिया के प्रसिद्ध लेखक वीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य का पत्र पा कर अत्यंत प्रसन्न हुए. फिर बातों का सिलसिला चल पड़ा जिस में कभी वह अपने विगत राजनीतिक जीवन की घटनाओं में खो जाते तो कभी वर्तमान में आ कर मणिपुर की लोकहितकारी योजनाओं के विषय में बताते हुए प्रसिद्ध 'लोक तक जलविद्युत योजना' की चर्चा करने लगते, जिसे पूरा होने पर न सिर्फ मणिपुर के गाँव घर आलोकित होंगे वरन् यहाँ के उद्योग धंधों को भी भरपूर बिजली मिल सकेगी.

तभी एक सुंदर और स्मार्ट नगा लड़की, जिस ने रंगीन लुंगी और धारीदार स्पोर्ट्स वाली गंजी पहन रखी थी, चाय का ट्रे ले कर आयी. मेरे लिए यह तय कर पाना कठिन हो रहा था कि यह इन के परिवार की है या पी. ए. या मात्र परिचारिका. यह भेद इस इलाके में काफी मिटा सा होता है (मेरे यायावर मन ने संस्कार को धिक्कारा —इस पर सोचना भी क्या ज़रूरी था !) रीसाङ जी अंगरेज़ी में लिखे अपने सामने फैले फाइलों की जैसे सफाई देते हुए कहने लगे, 'अभी तक हम लोग सचिवालय का पूरा पूरा काम मणिपुरी में नहीं कर पा रहे हैं. कुछ दिक्कतें हैं—नगा तथा दूसरे जनजाति के लोग, जिन के बीच अंग्रेज़ी का पहले से ही काफ़ी प्रचार है, हिंदी सीखने में तो पर्याप्त रुचि दिखलाते हैं, पर मणिपुरी का व्यवहार करने में उन का कोई विशेष उत्साह नज़र नहीं आता है.'

असम सहित सारे पूर्वीय भारत की यह एक अहम समस्या है. शायद जनजातियाँ डरती हैं कि प्रांतीय भाषाओं (असमी, मणिपुरी) के माध्यम से आगे बढ़ने में वे लोग कहीं अपने मैदानी भाइयों से पीछे नहीं छूट जायें. उन के इस भय को तोड़ना होगा, उन का मन जीतना होगा. दूसरी ओर प्रांतीय भाषाओं को दर-किनार रख कर हिंदी के नज़दीक आने की जनजातियों की यह कोशिश अन्य लोगों पर अच्छा असर नहीं डाल रही है. असम में बोडो जाति के लोगों ने जब अपनी भाषा के लिए

असमी लिपि के बजाय देवनागरी लिपि अपनाने का निर्णय लिया तो हिंदी क्षेत्रों में जितनी प्रसन्नता प्रकट की गयी, उस से कहीं अधिक गहरी उदासी असमिया लोगों के मन पर छायी.

तब तक मुलाकातियों के बहुत से पर्चे जमा हो चुके थे. हम लोगों ने बातचीत को समाप्त करते हुए उन से विदा ली.

सुबह अच्छाऊ सिंह जी (भूतपूर्व संसद सदस्य) से मिलने उन के गाँव औंखाई गया जो शहर के सीमांत पर राजावाड़ी (राजमहल) के समीप ही है. वह पटना का नाम सुनते ही अपने खेत से दौड़े हुए आये और जितेंद्र जी (पत्रकार) तथा प्रणवजी (अधिवक्ता) का कुशल क्षेम पूछने लगे. फिर मेरे आने का उद्देश्य भी. तब तक सपम मोमोन सिंह नाम का एक उत्साही युवक कहीं से आ धमका और उस ने हम लोगों को घुमाने की पूरी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली. तय हुआ कि आज शाम को मोइरं से लौटने के बाद फिर इसी गाँव में आ कर वन देवता का पूजन देखेंगे.

वहाँ से हम लोग सपम के साथ ही गोविंद जी के प्रसिद्ध मंदिर में गये जो न सिर्फ स्थानीय लोगों का देव दर्शन स्थल है बल्कि एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक केंद्र भी. मंदिर के सामने वाले विशाल मंडप में साल में कई बार रास नृत्यों का आयोजन होता है. तीन चार महीने बाद ही चैत्र पूर्णिमा को बसंत रास का आयोजन होने वाला था. गंगा के किनारे का बसंत तो फाल्गुन की पूर्णिमा को ही समाप्त हो गया पर ब्रह्मपुत्र के किनारे से आरंभ हुआ बसंत अभी मणिपुर में अपने पूरे यौवन पर है. देख आया हूँ इसे दिसाङ्मुख (असम) के मिरी युवतियों के बिहु नृत्य में, देख रहा हूँ इसे इंफाल की सड़कों के किनारे किनारे लंबे लंबे खूबसूरत पेड़ों के पीले पीले फूलों के झब्बों में और चारों ओर चल रही बसंत रास की तैयारियों में.

शहर के पूर्वी किनारे पर बहती हुई इंफाल नदी को पार कर महावली (बड़ारंगवली) के मंदिर के पास आता हूँ—दर्शनार्थ औरतों की अपार भीड़. वही आवरण मेखला, सर्ट और चादर, भाल पर चंदन. शायद यहाँ के लोगों के आर्थिक और सांस्कृतिक स्तरों में वह मारक विभेद नहीं है जो फटेहाली और गंदगी को जन्म देता है. इस से रहित हो कर देव स्थान पर एकत्रित औरतें कितनी भव्य बन जाती हैं. तभी दर्शनार्थियों की पंक्ति में खड़ी कुछ लड़कियों ने मेरे कैमरे की ओर इंगित करते हुए सपम से मणिपुरी में ही पूछा, 'क्या आप के परदेशी मित्र हम लोगों की भी एक छवि उतारेंगे.' 'क्यों नहीं', सपम ने कहा. वे लोग मंदिर में जाने की अपनी पारी का इंतजार करती रहीं और हम लोग उन के वापस लौटने की प्रतीक्षा. वे सब आईं और हँसती ही रहीं. शायद इसीलिए कैमरा भी थोड़ा हिल गया.

मोइरं जाने के लिए किसी सवारी का प्रबंध करने शहर के मध्य स्थित पर्यटन कार्यालय में पहुँचा. वाहन का प्रबंध तो नहीं हो सका किंतु पर्यटन संबंधी काफी जानकारी मिली. एक 'साइक्लोस्टाइल्ड' परिचय पुस्तिका भी मिली, जिसे पा कर मन थोड़ा बिदक गया. पता नहीं यहाँ का पर्यटन विभाग आकर्षक और रंगीन परिचय 'फोल्डर' और पुस्तिकाओं के बजाय इस अनाकर्षक पुस्तिका से ही क्यों काम चला रहा है. अब आज बाहर जाना संभव नहीं रहा, सपम को वहीं से विदा कर दिया.

भोजनोपरांत श्री ई. नीलकांत सिंह जी से मिलने 'जवाहरलाल नेहरू मणिपुर नृत्य अकादेमी' में गया, जो यहाँ के प्रसिद्ध डी. एम. कालेज के अहाते में है. नीलकांत जी दर्शन शास्त्र के प्राध्यापक हैं तथा साहित्य एवं कला के क्षेत्र में भी अधिकार रखते हैं. संप्रति वह राज्य कला अकादेमी के मंत्री के रूप में मणिपुर साहित्य और कला को नया आयाम देने के लिए प्रयत्नशील हैं. और लोगों की तरह श्री सिंह ने भी मुझसे मेरे मणिपुर आने का उद्देश्य पूछा. अब तक यह प्रश्न इतनी बार दुहराया जा चुका था कि मुझे यह चुभता हुआ व्यंग्य-सा लगा. आने की सहजता यहाँ क्यों नष्ट हो गयी है ? उत्तर के लिए दूर नहीं जाना पड़ा. कल रात होटल में दिल्ली के एक प्रकाशक (या मात्र पुस्तक विक्रेता) से भेंट हुई थी जिस ने मेरे यहाँ आने का उद्देश्य जान कर कहा, "भला यह भी कोई घूमने की जगह है, कहाँ आ फँसे आप लोग. मैं तो सिर्फ इसीलिए आया हूँ कि यहाँ साठ हजार रुपयों का बिल बाकी पड़ा है.' मैं भला क्या जवाब देता उस पुस्तक विक्रेता को ? तभी यह बात समझ में आ गयी कि क्यों कभी कभी यहाँ के शांत गंभीर लोग व्यापारियों के खिलाफ बुरी तरह भड़क उठते हैं. कहीं मैं भी तो वैसा ही वणिक नहीं हूँ ? सिंह कुछ और बताने के पहले यह तौल लेना चाहते थे. आज कुछ विशेष बातचीत नहीं हो सकी. कल सुबह फिर उन से मिलना तय हुआ. उन से विदा ले कर अकादेमी के सहायक मंत्री श्री एल. जयचंद्र सिंह के साथ अंदर की नृत्य कक्षाओं में एक चक्कर लगाया. हमारी यह बदकिस्मती ही थी कि उस समय नृत्य की कोई कक्षा नहीं चल रही थी और इस प्रकार हम अभ्यासरता मणिपुर की आधुनिकाओं से न हीं मिल सके, जिन की अभिनयी और सहज मुद्राओं में कभी प्राचीन मणिपुर होता तो कभी आधुनिक इंफाल.

वहाँ से सीधे औंखाई लौटे. तब तक गाँव के सारे लोग वन देवता के गह्वर के सामने इकट्ठे हो चुके थे.

पूजा आरंभ हुई, पुजारिन ने नृत्य मुद्रा में देवता की अराधना की. देव प्रसन्न हुए, लोगों की गुहार सुनी गयी; फिर अक्षत और प्रसाद बाँटे गये. नृत्यों का अविराम दौर शुरु हुआ. बच्चियों और युवतियों के साथ कई प्रौढ़ाएँ भी
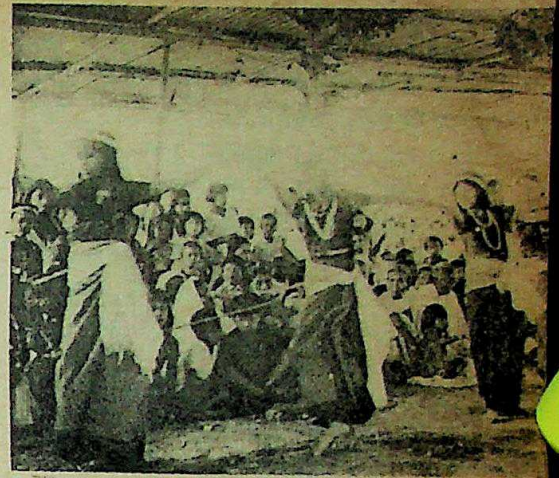
औंखाई की एक नृत्य रात्रि
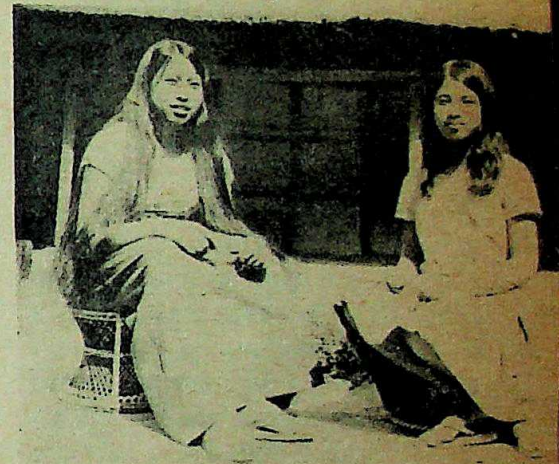
मोइरं की दो कन्याएँ

महावली की दर्शनार्थी स्त्रियाँ

नृत्य मंडलियों में शामिल थीं.

अद्भुत समा बंधा, बाँसों के झुरमुट की पृष्ठ भूमि, वन देवता का गह्वर, गहराती हुई रात और ढोल-मृदंग-पैना (बीणा) के आरोह-अवरोह के साथ नृत्यों की गति में चढ़ाव उतार. लाइ हारओबा, लई मजगोई, थावल चोंगबा, खंबा थोइबी आदि नृत्यों के साथ साथ बीच बीच में बाँसुरी वादन का आकर्षक कार्यक्रम. आँखें तो नत्यांगनाओं की भावाव्यक्ति, पैरों की गति और हाथों के भाव प्रदर्शन पर टिकी

थीं पर कान सपम की आँखों देखी गतिविधियों पर टिप्पणी सुन रहे थे, 'यह खंबाथोइबी नृत्य है... मोइरं का सब से प्रसिद्ध और करुण प्रमोपाख्यान.. थोइबी राजा की लड़की और खंबा एक पितृहीन साधारण युवक. . दोनों में प्रेम पनपा. . . राजा ने खंबा को रास्ते से हटाने के लिए उसे दुष्कर से दुष्कर कार्य सौंपे, पर उस ने कर दिखाया. कहानी आगे बढ़ती है—नृत्य करने वाली लड़की थोइबी के निर्वासन की कथा प्रस्तुत करती है. अंत में अमर प्रेम की जीत होती है—दोनों के मिलन में. पर तभी पुरुष का सनातन संदेह थोइबी के चरित्र पर जाग उठता है. खंबा निर्मम ढंग से उस की परीक्षा लेना चाहता है जिस में अंततः उसी की जान जाती है. खंबा के बिना थोइबी कैसे जीवित रह सकती है—वह कटार चुभा कर आत्महत्या कर लेती है. . ." थोइबी मर जाती है, ढोल और मृदंग के बोल बंद हो जाते हैं. पर मणिपुरी वीणा पर बहुत देर तक करुण रागिनी बजती रहती है. . .

नृत्यों के बीच के अंतराल में मणिपुर के प्रसिद्ध नारी आंदोलन की यशःप्राप्त नेत्री श्रीमती अंगोबी देवी, जो साठ वर्ष की होने पर भी नृत्यों में भाग ले रही थीं, पटना से आये दो पर्यटकों की चर्चा सुन कर बाहर आयीं और हम लोगों का परिचय प्राप्त कर देवता का पान प्रसाद अपने हाथों से भेंट किया. मन अभिभूत हो गया—राजनीतिक आंदोलनों में सक्रियता . . . वन देवता के सम्मुख नृत्य. . . गाँव आये गंगा तटवासी के प्रति आशीर्वाद कामना. अपनी सीट छोड़ कर बहुत देर तक मैं उस संस्कृति की देवी के सामने नतमस्तक हो कर खड़ा रहा.

सुबह नीलकांत जी ने अपनी कार भेज दी और कई मुहल्लों को पार कर हम उन के निवास स्थान पर पहुँचे. नास्ते के टेबुल पर ही हमारी बातचीत शुरू हो गयी. भ्रमवश सब से पहले मैंने मणिपुरी लोगों की जातीय व्युत्पत्ति के संबंध में ही उन से सवाल कर डाला. श्री सिंह को शायद यह अच्छा नहीं लगा और उन्होंने कुछ तल्खी के साथ कहा—मणिपुरी लोगों की भी वही जातीय व्युत्पत्ति है जो भारत के और लोगों की है (कितना सच !) मैंने महसूस किया कि आज इस बात की जरूरत नहीं रह गयी है कि सीमांत के लोगों की जातीय व्युत्पत्ति की चर्चा की जाये. आवश्यकता इस बात की है कि भारत की सभ्यता और संस्कृति में उन के क्या अवदान हैं—इस बात की चर्चा की जाये. प्रविण संस्कृति के अवदान की चर्चा तो हम सभी सुनते हैं पर मंगोल संस्कृति के अवदान के बारे में कितने लोगों ने लिखा है ?'

'तब तक श्रीमती सिंह और उन की दोनों बच्चियाँ तैयार हो कर आ गयीं और हम सब चल दिये 'खोमजोम' की ओर जहाँ आज 1891 के मणिपुरी युद्ध के वीर शहीद पवना ब्रजवासी का स्मृति दिवस मनाया जायेगा.

रास्ते में नीलकांत जी ने पूछा, 'क्या आप लोग ऐसा नहीं महसूस करते कि बाहर से आये व्यापारियों ने बिहारियों का भी शोषण किया है.' 'कोई बीस पच्चीस साल पहले हम लोगों की भी ऐसी ही धारणा थी पर अब, जब बिहार में खुद का एक व्यापारी वर्ग तैयार हो गया है और उस के भी शोषण के वही रवैये हैं तो हम लोगों को किसी खास जाति और संप्रदाय के व्यापारियों के खिलाफ कोई विशेष शिकायत नहीं रह गयी है' मेरा उत्तर था. हिंदी, मैथिली, भोजपुरी और मगही के संबंध में भी उन के मन में कई गलतफहमियाँ पल रही थीं. जब मैंने बतलाया कि हिंदी के दो प्रसिद्ध लेखक फणीश्वर नाथ 'रेणु' और नागार्जुन मिथिला क्षेत्र से ही आते हैं तो उन की आशंका बहुत हद तक घटती हुई नजर आयी. अब तक हम लोग सड़कों के किनारे फैले हुए खेतों के बीच से गुजर रहे थे. यही हैं हमारे खेत और समतल जमीन—श्री सिंह ने कहा, 'बिल्कुल हम लोगों के जैसे. . .' मैंने कहा और खेतों से हट कर कुछ देर के लिए हमारी आँखें आपस में मिलीं—अपनत्व का एक और बिंदु पा कर. श्री सिंह को इस बात से भी शिकायत है कि अखिल भारतीय प्रशासनिक सेवा के अफसर यहाँ आते ही भागने के बंदोबस्त में लग जाते हैं, इस धरती से उन का कोई भी नाता नहीं जुड़ता है. उन की शिकायत सही थी. मैं क्या जवाब देता !

खोमजोम आ गया. एक पहाड़ी टीले पर पौना बृजवासी का स्मारक बना हुआ है. पहले राज्यपाल श्री एल. पी सिंह और फिर अन्य लोगों ने अपनी श्रद्धांजलियाँ अर्पित कीं. नीचे एक सभा का आयोजन किया गया था जिस में वक्ताओं ने इस बात पर प्रकाश डाला कि किस प्रकार यह जानते हुए कि अंग्रेजों की शक्ति बहुत अधिक है, पौना बृजवासी ने अपनी हार नहीं स्वीकार की और अंतिम क्षण तक अंग्रेजों से लड़ते रहे. वीर टीकेंद्रजीत और थांगल मेजर भी उस युद्ध के योद्धा हैं, जिन्हें अंग्रेजों ने इंफाल के पोलो ग्राउंड में फाँसी दी थी.

लौटती में कुछ देर के लिए जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय के परिसर में रुके, जहाँ श्री सिंह के बहनोई प्राध्यापक हैं. शहर में कई जगह और भी खोमजोम युद्ध का वार्षिकोत्सव मनाया जा रहा था. रात में कहीं बृजवासी के जीवन पर आधारित एक नाटक भी होने वाला था.

वे अपने योद्धा और शहीद को याद रखते हैं.

शाम को बाजार घूमने निकला, साथ में सपम भी थे. 'इमा' बाजार में करघे से निर्मित वस्त्रों की सभी दुकानों पर औरतें ही बिक्री का कार्य कर रही थीं. फिर थांगल बाजार की ओर बढ़े. एक मणिपुरी और एक नगा चादर खरीदा.

आज चौथा दिन है और हम लोग इंफाल से 25 कि. मी. दूर मोइरं के रास्ते पर जा रहे हैं. पर्यटक हूँ इसलिए बस के सहयात्री बातचीत करने को उत्सुक हो जाते हैं. इंफाल कालेज के रसायनशास्त्र के प्राध्यापक एल. एम. सिंह अपनी सीट बदल कर सामने जा जाते हैं और बतलाने लगते हैं, 'यह माईबम लोकपा चिङ गाँव है, यहाँ तक आजाद हिंद फौज का अग्रिम दस्ता आया था. अभी कुछ दिन पहले एक जापानी दल आया था, जिस ने द्वितीय विश्वयुद्ध में मारे गये अपने देशवासियों की अस्थियाँ एकत्रित कीं और उन्हें एक स्थान पर समाधिरत कर उन को सम्मानित किया. इस स्थान पर वे लोग एक भव्य समाधि भी बनाना चाहते हैं. श्री सिंह की बचपन की स्मृतियों में उस समय के वयस्कों द्वारा नेता जी के बारे में कही गयी बहुत सही बातें सुरक्षित हैं. नेता जी ने फिर से एक बार इस क्षेत्र के लोगों को भावनात्मक रूप से देश के साथ जोड़ दिया है. इसे बनाये रखने की आवश्यकता है.

माइरं पहुँच कर लोकतक झील की ओर पैदल ही बढ़े. इस विशाल झील में कई नदियाँ आ कर मिलती हैं. झील के मध्य स्थित एक पहाड़ी पर पर्यटक गृह बना हुआ है जहाँ से संपूण झील का परिदृश्य देखा जा सकता है. खंबा थोइबी लोकगीत की एक कड़ी कहती है कि यहाँ राजकुमारी थोइबी मछली का शिकार करने आती थी और खंबा लुकछिप कर उस से मिलने. अब इस झील के पानी को पहाड़ों में बन रहे सुरंगों से बहा कर बहुत नीचे गिराया जायेगा और उस से बिजली पैदा की जायेगी. करोड़ों रुपये की लागत से चल रही इस योजना पर मणिपुर के सभी लोगों की आशाएँ लगी हुई हैं.

बाजार में लौट कर विशुद्ध मणिपुरी भोजन किया—भात, दाल, मछली और मछली की चटनी.

पास ही नेता जी का स्मारक है. यहाँ 14 अप्रैल '44 को पहली बार भारतीय भूमि पर तिरंगा झंडा पहराया गया था. कई महीनों तक यहाँ आजाद हिंद फौज की सरकार काम करती रही. नेता जी भी एक सप्ताह तक यहाँ रहे. इस स्थान पर बने पुस्तकालय के संग्रहालय में नेता जी और आजाद हिंद फौज संबंधी दुर्लभ चित्र रखे हुए हैं. सिंगापुर में बने आजाद हिंद फौज के स्मारक की खड़ी की गयी एक प्रतिकृति के ऊपर लिखा हुआ है—इत्तफाक, इतमद, कुर्बानी. यहाँ नेता जी की एक भव्य मूर्ति भी स्थापित है जिस के चौपहल आधार पर मूर्तिशिल्पी और उद्घाटक के नाम के साथ साथ यह भी लिखा है कि इस की स्थापना अमुक चीफ कमिश्नर के राजत्व काल में हुआ और इस मूर्ति को पश्चिम बंगाल की सरकार ने इतने रुपये में खरीद कर मणिपुर के नेता जी स्मारक संस्थान को प्रदान किया. अभी ऊपर संग्रहालय में आजाद हिंद फौज के उन शहीद सैनिकों के नाम पढ़ कर आया हूँ जिन्हें ब्रितानी सरकार ने बगावत के जुर्म में फाँसी पर चढ़ा

दिया. उन में से कोई त्रिवेंद्रम से है तो कोई पूना, धर्मशाला और मेरठ से. समझ में नहीं आता कि स्मारक बनते बनते लोगों का मन इतना अधिक कैसे सिकुड़ गया.

बस्ती के दक्षिण भाग में थाइजिङ्ग देवता का मंदिर है. इन्हें मोइरं में देवाधिदेव कहा जाता है. मई के दूसरे सप्ताह से यहाँ नृत्यों का कार्यक्रम शुरू होता है.

सपम अपनी चाची राजकुमारी मनीषना देवी से भेंट कराना नहीं भूलते हैं जिन का संबंध मोइरं के राज परिवार से है और जो एक बिजली के इंजीनियर की पत्नी हैं. राजकुमारी जी ने गरम गरम लाई से हमारा स्वागत किया. तब तक परिवार के सारे बच्चे और लड़कियाँ हमारे इर्दगिर्द इकट्ठी हो चुकी थीं. मैंने उन लोगों के कई चित्र लिये. राजकुमारी जी चाय पिलाने के लिए बाजार तक आयीं और खुद ही बताने लगीं कि इन दूकानों में मैं ही दूध सप्लाई करती हूँ. राजपरिवार से संबंध, एक इंजीनियर की पत्नी और दूध का यह रोजगार! मगर मणिपुर के श्रमशील समाज में यह सब संभव है.

अद्भुत होती है मणिपुर की औरतें. दिन में जब स्कूल, कालेज और दफ्तर जाने के लिए इंफाल की सड़कों पर सायकिल सवार लड़कियाँ और औरतें निकल पड़ती हैं तो लगता है कि यहाँ सायकिल सवारी सिर्फ औरतें ही करती हैं. हर घर में लगे करघे पर रंगीन कपड़ों का बुनना तो उन का अपना ही काम है. परिश्रम साध्य कार्यों में भी वे पुरुषों से आगे ही हैं.उन्हें अपना पति चुनने की भी पूरी आजादी है. लड़का लड़की में प्रेम हो जाने पर लड़का लड़की को ले कर अलोप हो जाता है (आजकल इस का एक रस्म भर रह गया है) और तब फिर लड़के के पिता लड़की के पिता के यहाँ जा कर इस प्रेम संबंध की सूचना देते हुए अपने लड़के के लिए लड़की की माँग करते हैं. फिर शादी की तैयारियाँ होने लगती हैं.

औरत मर्द की हर संभव बराबरी, श्रम का महत्व, सौंदर्य और सुरुचि के प्रति अनुपम अनुराग, जाति विहीन समाज (हिंदू में सब राजपूत ही होते हैं, कुछ थोड़े से ब्राह्मण भी बाहर से आ कर बसे हैं) मणिपुर को भारत के और सब प्रांतों से अलग और विशिष्ट बना देते हैं.

वापसी में इंफाल की राह पर मणिपुर के गाँव घर और लोगबाग सब नजर आते हैं. चार दिनों की स्मृतियाँ मन पर बार बार छा जाती जाती हैं. बस शहर पहुँच चुका है. शाम फिर एक बार अपनी पूरी सहजता के साथ इस शहर पर छा गयी है. कल चला जाऊँगा. शायद इसलिए यह सब कुछ और भी अधिक मोहक लग रहा है. सपम कुछ दिन और रुकने को कह रहे हैं. मैं उन के मोह को समझ रहा हूँ, वह मेरी मजबूरी को समझ रहे हैं.

चरचे और चरखे

जूठे कपड़े

सर्दी मुटाती जा रही है. राजधानी की सड़कों पर पुराने ऊनी कपड़ों के अंबार इस बार नहीं दीख रहे हैं. सुनते हैं छोटे बड़े अन्य शहरों में भी पटरियां खाली हैं. दो तीन वर्ष इन सस्ते पुराने ऊनी कपड़ों का ऐसा शोर था कि सर्दी आयी नहीं लोग उधर भागते दिखायी देते थे—कोट, पैंट, चेस्टर, स्वीटर सभी अकल्पनीय सस्ते दामों में लुटाये जा रहे थे. पंद्रह से पच्चीस तक में अच्छा बिलायती कोट, तीस से साठ तक अच्छे मोटे ऊनी चेस्टर—आदमियों औरतों बच्चों सब के लिए—लूट लो. इस लूट में सभी शामिल थे.उच्च मध्यमवर्ग से ले कर निम्नवर्ग तक, तीन हजार तनख्वाह पाने वाला आदमी भी साठ रुपये का नया दीखने वाला बिलायती काट का चेस्टर या लांग कोट पहने यह भ्रम उत्पन्न करता था कि यह उस ने विदेश में सिलवाया था. विदेशी दर्जियों के नाम उन पर प्रमाण रूप में रहते थे और दिहाड़ी कमाने वाला ठेला मजदूर या रिक्शा वाला भी आठ दस रुपये में मुटाती सर्दी को चिढ़ाने में सफल हो जाता था. पर इस बार पटरियाँ सूनी हैं.

'यार पिछली बार चूक गये. इस बार सोचा था दो चार कोट खरीदेंगे पर कहीं कपड़े दिखायी ही नहीं देते. जाने क्या हो गया.' हजारी बाबू फरमाते हैं.

'एकाध कपड़ा खरीदने को पैसा जोड़ा था पर इस बार वह भी नहीं' दिहाड़ी भैय्या आपस में बतियाते हैं.

सभी जानते हैं बाज़ारों में यह कपड़े कैसे और कहाँ से आये थे. अंग्रेजी न जानने वाले भी 'रैग स्कैंडल' शब्द से परिचित हो गये थे. पुराने कपड़े विदेशों से आये थे देश की ऊन मंडियों में उधेड़ कर नया ऊनी सामान बनाने के लिए. पर भ्रष्टाचार लोकहितैषी हो गया. मंडियों में न पहुँच वे बाजार में आ गये. गरीबों और अमीरों की सेवा करने लगे. यह भी कहा गया कि विदेश की अनेक धार्मिक संस्थाओं ने भारत के सूखा और बाढ़ से पीड़ित लोगों के लिए अनुदान में जो भेजा वह उन्हें नहीं मिला, बेचा जाने लगा. जो भी हो अब पटरियाँ सूनी हैं. दो तीन सर्दियाँ तो 'श्रीमान लोकहितैषी भ्रष्टाचार' ने निकाल दीं. फिर दम फूलना ही था.

इस स्तंभकार को एक दफ़्तरी चपरासी की याद आती है, वह जात का ब्राह्मण था. गाँव में बच्चों के लिए ऊनी कपड़े उसे भेजने थे लोगों ने उसे समझाया सड़कों पर बिकने वाले ये पुराने कपड़े खरीद कर भेज दे. बहुत कम पैसों में काम हो जायेगा. अपनी जेब देखते हुए यह प्रस्ताव उसे माफ़िक लगा. पर संस्कारों ने टँगड़ी मार दी—

'नहीं साहब ई न होई. न जाने केकर केकर जूठ कपड़ा. . . ' जूठा खाना तो सुना जूठा कपड़ा उस दिन उसीके मुख से सुना. वह कपड़ा नहीं भेज सका. उतने पैसे जुटे नहीं. पर जब गाँव गया तो उसने देखा औरों के घर में, जो इस के लिए 'नीच जाति' थे, कपड़ा पहुँच चुका था. अपने ब्राह्मणत्व पर उसे कितना पछतावा हुआ यह तो नहीं मालूम पर इतना जरूर सुना कि वह लोगों से पूछ रहा है—

'साहब येहि बार पुरान कपड़ा नाहि आवा का?' और इसे वह इस तरह पूछता जैसे अब भी उसे खरीदना नहीं है, केवल जानकारी चाहता है. पर शायद वह अब चुपचाप अपना संस्कारी ब्राह्मणत्व तोड़ने को तैयार है.

गरीबों का यह हाल है. पैसे वालों की चिंता भी इस से मिलती जुलती है. एक सुंदर धनी महिला कहती पायी गयीं—

'हॉरिबल, इतनी मँहगी ऊन हो गयी है कि खरीदी नहीं जा सकती. तुम कहाँ से यह लबादा लायी थीं. खूबसूरत है. उम्दा फिटिंग है. खूब फबता है तुझ पर. इस बार तो मैं जरूर तेरे साथ चलती. पर सुनते हैं मार्केट में कपड़े ही नहीं हैं. मैं गल्ती कर गयी. मेरी आंटी चार चार कोट पिछली बार खरीद ले गयीं. मैं मजाक उड़ाती रही कि क्या दूकान खोलोगी. आज मालूम होता है वह समझदार थीं. आइ एम ए फूल.'

इस लूट में भी पैसे वालों ने आगे कदम बढ़ाया था. पर गरीबों का भी काफ़ी कुछ भला हो गया था. उम्दा उम्दा उन्होंने चुना, सस्ता सस्ता गरीबों ने. एक ने फैशन पर ध्यान दिया दूसरे ने जरूरत पर. पर अपने अपने हिसाब से सस्ता दोनों को मिला. बस वही रह गये जिन में प्रतिष्ठावश सकोच था या संस्कारवश. अब दोनों ही इस बार पछता रहे हैं. ऊन और ऊनी कपड़े बहुत मंहगे हैं सर्दी मोटाती जा रही है, बिगड़ैल और कटखनी होती जा रही है. लेकिन पटरियाँ सूनी हैं.

पुछल्ला

राजधानी की एक गंदी बस्ती से कुछ लोग अखबार के कार्यालय में आये और बोले—'ट्रांसपोर्ट के अमुक फर्म ने बस्ती में बाँटने के लिए दो सौ कंबल दिए हैं. यदि यह खबर आप छाप दें तो शायद कुछ और लोग देखादेखी बस्ती के गरीब लोगों को और कंबल वगैरह देने की बात सोचें. हमारा भला हो जायेगा.'

यह सुनकर लगा जैसे करुणा और सहानुभूति भी लागडाँट की चीज है और गरीब आदमी इसे बखूबी जानता है.

विज्ञापन और व्यावसायिकता

कुछ दिनों पहले व्यावसायिक प्रसारण की समस्याओं पर बंबई में एक परिसंवाद आयोजित किया गया था. इस परिसंवाद में सूचना तथा प्रसारण विभाग में केंद्रीय उपमंत्री **श्री धर्मवीर सिन्हा** ने उपभोक्ता समाज में विज्ञापन और व्यावसायिकता की शर्तें लादे जाने के जटिल संबंधों की तरफ़ ध्यान आकर्षित किया.

व्यावसायिक प्रसारण की समस्या के कई पहलू हैं और एक जो बुनियादी पहलू है उस का संबंध **उपभोक्ता समाज** की समूची धारणा से है. पिछले कुछ वर्षों में उपभोक्ता समाज के मूल्यों ने पश्चिमी दुनिया को जिस तरह से रोगी बनाना शुरू कर दिया है और ग़लत और नकली ज़रूरत पैदा कर के व्यक्ति को एक ऐसी भूलभुलैया में डाल दिया है जहाँ से मानव मूल्यों की **श्रेष्ठता** और **गरिमा** को बचा पाना मुश्किल हो गया है. ऐसे में विकासशील देशों द्वारा उपभोक्ता समाज की सफलताओं की तरफ़ ललचाई नज़रों से देखने और उस की असफलता की तरफ़ ध्यान न देने का मतलब काफ़ी गंभीर परिणामों की तरफ़ ले जा सकता है. व्यावसायिक प्रसारण के मूल में चीजों को किसी भी कीमत में लुभावना बना कर बेचने का उद्देश्य रहता है और समाज के शक्तिशाली तत्त्व इस से अपनी शक्ति को बढ़ाते हैं.

पश्चिमी दुनिया में, खास तौर पर अमेरिका आदि देशों में, विचारकों में टैक्नॉलॉजी और उस के दुष्परिणामों को ले कर एक लंबी बहस अभी चल ही रही है. बहस के कई मुद्दों पर **दिनमान** में पहले भी लिखा जा चुका है. एक ओर ऐसे विचारक हैं जो टैक्नॉलॉजी को ले कर एक सख्त संतुलित दृष्टिकोण अपनाने पर ज़ोर देते हैं. उन का कहना है कि टैक्नॉलॉजी बीसवीं शताब्दी को एक ऐसी जगह पर ले आयी है जहाँ से पुराने वक्त के मूल्यों को बचाये रखने की कोई भी कोशिश हास्यास्पद है बल्कि वह मौका देती है कि **दूसरी दुनिया** के देश **पहली दुनिया** को खा जायेंगे (तर्क का आधार यह बात है कि समाजवादी ढाँचे पर बने समाजों ने **स्वतंत्रता** जैसे मूल्यों को **नियंत्रण** जैसे मूल्यों के पक्ष में इसलिए खत्म कर दिया है कि यह टैक्नॉलॉजी की माँग थी और पहली दुनिया यानी गैर कम्युनिस्ट दुनिया अभी भी उन मूल्यों से अपनी उदार मानवतावादी परंपरा की वजह से चिपकी हुई है). संक्षेप में कहा जाये, तो इस सारी बहस में समाज द्वारा मनुष्य की शक्ति को कमज़ोर करने के स्वार्थ हैं.

उपभोक्ता समाज के एक मुख्य आधार व्यावसायिक प्रसारण के दुष्परिणामों को ले कर विचारक यह बात नहीं, कि अभी हाल ही में चिंतित हुए हैं. मिसाल के लिए फ़िल्म माध्यम, जो कि टैक्नॉलॉजी की ही एक धारणा है, शुरू से ही इस पर टिप्पणी करता रहा है. इस स्तंभकार ने अभी पिछले दिनों हॉलीवुड के महान अभिनेता **पाल म्युनी** की कुछ फ़िल्में देखीं. एक फ़िल्म में (**अंग्रेज़ी नाम : द लास्ट एंग्री मैन**) पाल म्युनी एक बूढ़े डॉक्टर का अभिनय करते हैं जो प्रचार प्रसार की दुनिया से दूर रह कर अपने काम में जुटा हुआ है. वह डॉक्टर बहुत मेहनत करता है : उसे मालूम है कि लोग अच्छे बुरे दोनों ही होते हैं और उन्हें उन की पूर्णता में समझना चाहिए. मिसाल के लिए वह अपने पड़ोसी से झगड़ता है और खूब झगड़ता है पर आधी रात में भी कोई बीमार या घायल (फिर भले वह काली चमड़ी वाला ही क्यों न हो) जब डॉक्टर के पास पहुँच जाता है तो वह सब कुछ छोड़ कर रोगी पर ध्यान देता है. एक दवा कंपनी के प्रतिनिधि का ध्यान इस डॉक्टर पर जाता है. वह फ़ौरन सोचता है कि इस डॉक्टर का इस्तेमाल टेलीविज़न पर अपनी दवा के विज्ञापन के

धर्मवीर सिन्हा : परिवर्त्तन के लिए

कार्यक्रम में किया जा सकता है. कंपनी का मालिक भी इस पर सहमत है कि डॉक्टर विज्ञापन के लिए बड़े काम का है. कंपनी का प्रतिनिधि डॉक्टर से संपर्क करता है. डॉक्टर तैयार नहीं होता. उसे टेलीविज़न संस्कृति से नफ़रत है. डॉक्टर बड़ी मुश्किल से तैयार होता है, लेकिन टेलीविज़न कैमरों के सामने वह जो कुछ बोलना शुरू करता है उसे सुन कर दवा कंपनी वाले परेशान हो जाते हैं .डॉक्टर लोगों को यह बताना चाहता है कि यह दवा कंपनियाँ बहुत व्यर्थ का प्रचार करती हैं, धोखा देती हैं, आप से झूठ बात कहती हैं.

पॉल म्युनी की यह फ़िल्म दूसरे विश्वयुद्ध से पहले की है. अमेरिका और यूरोप में उस वक्त अभी ऐसी स्थिति नहीं नहीं थी जो टैक्नालॉजी की तानाशाही को बताये. द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद हमने देखा है कि धनी देश सुपर बाज़ार जैसी धारणाओं को फला फूला कर ज़िंदगी को व्यावसायिक स्वार्थों का गुलाम बना देने में लगभग सफल हो गये हैं. नतीजा यह हुआ है कि तीसरी दुनिया के देशों में भी ऐसे शहर बने और बढ़े हैं जो अपने देश के दूसरे हिस्सों की तुलना में एक बड़ी ही लुभावनी रसीली तस्वीर खड़ी करते हैं और गैर ज़रूरतों को एक ज़रूरत बनाते हैं. इसी लिए तीसरी दुनिया के कुछ विचारकों की यह समस्या है कि अविकसित और विकसित देशों में ही नहीं, अविकसित देशों में ही गहरी खाइयाँ बना दी गयी हैं.

विज्ञापन प्रसारण के बंबई परिसंवाद में **श्री धर्मवीर सिन्हा** ने अपने भाषण के प्रारंभ में कहा कि इस देश में करोड़ों लोग बुनियादी चीज़ों से ही वंचित हैं इस लिए तर्क से यहाँ विज्ञापनों की ज़रूरत नहीं होनी चाहिए. **लेकिन यह एक तथ्य है कि पिछले दशक में विज्ञापन व्यवसाय साधारण पैमाने पर शुरू हो कर करोड़ों रुपयों का व्यवसाय बन गया है. और यह सब ऐसे समय में हुआ है जब कि राष्ट्रीय विकास दर कम हुई है.**

श्री धर्मवीर सिन्हा ने इस बात की तरफ़ भी ध्यान दिलाया कि व्यावसायिक प्रसारण जैसे विषयों का संबंध सिर्फ़ आर्थिक अवसरों से ही नहीं है बल्कि सर्जनात्मकता तथा सामाजिक ज़िम्मेवारी से भी है.

लेकिन यहाँ एक बात जानना ज़रूरी है कि विज्ञापन व्यवसाय हमेशा से जिस शक्तिशाली वर्ग के हाथ में रहा है वह वर्ग सर्जनात्मकता से जुड़ी चुनौतियों को भी अपने आर्थिक हितों के दायरे में समेटने में सफल हुआ है. इस की मिसाल पश्चिम की बड़ी दवा कंपनियों की प्रचार सामग्री में देखी जा सकती है जहाँ विज्ञापन देने वालों का विज्ञापन के सौंदर्यशास्त्र पर खूब अधिकार होता है और संदेश को बहुत ही साफ़ सुथरे कलात्मक ढंग से ग्राहक तक पहुँचाया जाता है. पर होता यही है कि जो बीमारियाँ दरअसल उपभोक्ता समाज ने ही पैदा की हैं उन को चंगा करने के लिए यही समाज अपने संदेश ले कर आप के सामने आ जाता है.

जहाँ तक सामाजिक ज़िम्मेवारी का सवाल है इस बात को भी घोर पूँजीवादी स्वार्थ अपने पक्ष में करने में लगे हैं. पश्चिम में तो अब वामपंथ के घनघोर दुश्मन भी वामपंथी शैली में बात कर के अपने स्वार्थ पूरे कर रहे हैं. इस लिए ज़रूरत इस बात की है कि समाज में उन वर्गों के आर्थिक हितों को फलने फूलने न दिया जाये जो समाज में गैर बराबरी लाने के विरुद्ध हैं.

श्री धर्मवीर सिन्हा की इस बात को समर्थन मिलना चाहिए कि अगर भारतीय समाज में स्कूलों के बजाय रेफ़्रीजरेटर को महत्त्व दिया गया तो यह एक दुखद बात होगी.

ज़रूरत इस बात की है कि इस बात को हर वक्त जाँचा जाये कि आर्थिक हितों ने कहीं अपनी सुविधा और स्वार्थ के लिए सौंदर्यशास्त्र और सामाजिक ज़िम्मेवारी को भी ऊपर ऊपर से ही स्वीकार तो नहीं कर लिया है.

रिल्के का काव्य संसार

केदारनाथ सिंह

'कविता अस्तित्व है'—राइनर मारिआ रिल्के का यह कथन उस की संपूर्ण कविता और कविता संबंधी मान्यताओं का केंद्र बिंदु है. यह अकारण नहीं है कि कुछ आलोचकों ने रिल्के की कविता का संबंध अस्तित्ववाद से जोड़ने की कोशिश की है. पर यह भी उतना ही सच है कि उसे उस अर्थ में अस्तित्ववादी नहीं कहा जा सकता, जिस अर्थ में कीर्केगोर या सार्त्र को अस्तित्ववादी कहा जाता है. रिल्के शुरू से आखिर तक कवि था—एक ऐसा सच्चा और खरा कवि जिसे उन चुनौतियों का पूरा एहसास था जो कविता की दुनिया के भीतर से पैदा होती हैं. अपनी कविता में उस ने उन चुनौतियों से जूझने का साहस दिखाया था और इस बात की कोशिश की थी कि अपने आप को दाँव पर रख कर कविता को बचा लिया जाये. कविता को उस ने बचा ज़रूर लिया, पर इस के लिए उसे बहुत बड़ी क़ीमत चुकानी पड़ी—कविता में और उस के बाहर भी. अन्य प्रतीकवादी कवियों की तरह रिल्के भी शुरू में सौंदर्यवादी था. पर उस के पास वह गहरी दृष्टि थी जो चीज़ों को चीर कर बुनियाद तक पहुँचने की कोशिश करती थी और यह एक ऐसी विशेषता थी जो अन्य किसी प्रतीकवादी कवि में नहीं मिलती. यही कारण है कि जहाँ अन्य प्रतीकवादी कवि (रिम्बो को छोड़ कर) आज के पाठक की मनोभूमि से बहुत दूर जा पड़े हैं, वहाँ रिल्के आज भी एक वृहत्तर पाठक-समुदाय के द्वारा पढ़ा जाता है.

ऑस्ट्रिया के बोहेमिया नगर में सन् 1875 में जन्मे (यह उन की जन्मशती का वर्ष है) इस कवि का काव्य विकास, कुछ अंतरालों को छोड़ कर, काफ़ी दूर तक सीधा और समतल था. यह समतलता उस खूबसूरत पत्थर की तरह थी, जिस के भीतर बारीक संरचना की अनेक पर्तें छिपी रहती हैं. **स्टीफेन जार्ज** और **हयूगो वान हॉफमानस्थल** के साथ रिल्के अपने समय की जर्मन कविता का एक ऐसा प्रतिनिधि था, जो कुछ दूर तक तो अपने समकालीनों के साथ चलने को तैयार था, पर उस के बाद वह बीहड़ रास्ता शुरू होता था जिस पर वह बिल्कुल अकेला और निसंग था. यह अकेलापन रिल्के की कविता में शेक्सपीयर के नाटकों की प्रेतात्माओं की तरह बार बार आता है और एक त्रासद प्रभाव छोड़ जाता है. गहरे अकेलेपन की संवेदना रिल्के की कविता की बुनावट में इस तरह रची हुई है कि कुछ आलोचक उसी को केंद्र बना कर उस के संपूर्ण कृतित्व का आकलन करना चाहते हैं. रिल्के के विचारों में भी अकेलेपन के दर्शन के प्रति एक खास तरह का रुझान दिखायी पड़ता है—यहाँ तक कि वह पति-पत्नी के संबंध को भी एक दूसरे के अकेलेपन की सुरक्षा की गारंटी के रूप में देखता है. पर अपने सर्वोत्तम रूप में रिल्के की कविता अकेलेपन के मायाजाल को बार बार तोड़ती है. यही उस की ताक़त है और उसी के चलते वह सौंदर्यवाद की परिधि को भी अतिक्रांत कर जाती है.

जिन हथियारों से रिल्के अपनी सीमाओं पर प्रहार करता है, उन में से एक है प्रश्नात्मकता. एक बच्चे की तरह वह हर चीज़ को उस की बुनियाद तक ले जाता है. उस का पूछना हथौड़े की तरह एक खास बिंदु पर बार बार चोट करता है और कविता के भीतर से मानवीय सच्चाई की एक खौफनाक ताक़त उभरने लगती है :

हर चीज़ सिर्फ़ एक बार
एक बार और फिर कभी नहीं
और हम भी सिर्फ एक बार
हालाँकि सिर्फ एक बार
लेकिन यह एक बार
सिर्फ एक बार
पृथ्वी पर होना
क्या रद्द किया जा सकता है?

यह गहरी प्रश्नात्मकता जर्मन कविता की वह विशेषता है जो रिल्के को सांस्कृतिक दाय के रूप में प्राप्त हुई थी. रिल्के से पहले **होल्डरीन** और **हाइने** उस का इस्तेमाल कर चुके थे. पर रिल्के ने इस विधि को एक दार्शनिक गहराई दी. इस संदर्भ में वह अन्य किसी कवि की अपेक्षा **नीत्शे** के अधिक निकट दिखायी पड़ता है. कुछ आलोचकों ने उस के और नीत्शे के बीच वैचारिक समानताएँ ढूँढ़ने की कोशिश की है. यदि रिल्के की आरंभिक कृतियों को देखा जाये तो उन में और 'दस स्पेक ज़रथुस्त्र' के बिंबों और विचारों में एक आश्चर्यजनक समानांतरता दिखायी पड़ेगी. पर नीत्शे के विपरीत रिल्के के पास वह अदम्य रचनात्मक ऊर्जा थी जो आदमी के सारे स्नायविक तनाव को बिंबों की अर्थपूर्ण अन्विति में बदल देती है.

रिल्के की पहली महत्त्वपूर्ण कविता पुस्तक सन् 1902 में प्रकाशित हुई थी—**चित्रों की किताब** के नाम से. दूसरी इसी क्रम में 'घंटों की किताब' के नाम से सन् 1904 में प्रकाशित हुई. इन कविताओं की रचना उस ने रूस के सुदूर अंचलों की यात्रा से लौटने के बाद की थी. क्रांतिपूर्व रूस के लंबे निर्जन मैदानों और पठारों का उस के मन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा था. एक छोटे-से रूसी गाँव की आदि सरलता ने उसे वह पृष्ठभूमि दी थी, जिस के आधार पर उस ने अपनी आरंभिक कविताओं का आदर्श साँचा तैयार किया था. जाने अनजाने रिल्के का यह आदर्श आधुनिकता विरोधी था. यह विचित्र बात है कि भाषा और तकनीक में सारी नवीनता के बावजूद रिल्के अपनी कविताओं में उन चुनौतियों से कतराता रहा जो विज्ञान और औद्योगिक संक्रमण के भीतर से उठ रही थीं. वे प्रत्यक्ष सच्चाइयाँ जो सतह पर थीं, उन में उस की दिलचस्पी अपेक्षाकृत कम थी. यही कारण है कि उस की कविताएँ उस हलचल की रपट बहुत कम देती हैं जो उस के चारों ओर हो रही थीं. रिल्के की बाद की कविताओं को पढ़ने से पता चलता है कि उस के भीतर आधुनिकता के प्रति कोई रूमानी भय या संदेह नहीं था. आधुनिक सभ्यता को रिल्के ने लगभग वहीं से देखा, जहाँ से टी. एस. इलियट ने देखने की कोशिश की थी. पर रिल्के के साथ खास बात यह थी कि उस ने उस समस्या का समाधान कविता से बाहर जा कर खोजने का प्रयास नहीं किया. उस के लिए कविता से बाहर कोई समाधान था ही नहीं.

सन् 1908 में **नयी कविताएँ** नामक संग्रह के प्रकाशन के साथ रिल्के ने अपने काव्य जीवन के एक सर्वथा नये दौर में प्रवेश किया. इस संग्रह में रिल्के पहली बार एक ऐसे कवि के रूप में सामने आया, जिस पर किसी अन्य की छाया नहीं थी. यहीं रिल्के को पहली बार उन प्रतीकों की उपलब्धि हुई, जिन के चारों ओर वह अपनी अनुभूतियों का तानाबाना ज्यादा विश्वास और आत्मीयता के साथ बुन सकता था. इन कविताओं में रिल्के ने एक विलक्षण पद्धति को खोज निकाला था, जिस ने न केवल जर्मन कविता, बल्कि संपूर्ण यूरोपीय कविता पर एक गहरा असर डाला था. रिल्के की इस नयी काव्यात्मक खोज की व्याख्या करते हुए अंग्रेज कवि **डब्ल्यू. एच. आडेन** ने अपनी प्रतिक्रिया इन शब्दों में व्यक्त की थी :

'कवि के निकट एक बहुत बड़ी समस्या यह होती है कि वह अमूर्त्त विचारों को मूर्त्त वस्तुओं के माध्यम से किस प्रकार व्यक्त करे. सत्रहवीं शताब्दी के बाद रिल्के शायद पहला कवि है जिस ने इस समस्या का समाधान पा लिया था. उस की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि वह अक्सर मानव जीवन को दृश्यालेखों की भाषा में व्यक्त करता है.'

'नयी कविताएँ' के प्रकाशन के द्वारा रिल्के एक महत्त्वपूर्ण कवि के रूप में तो प्रतिष्ठित हो चुका था, परंतु एक विश्वकवि के रूप में प्रतिष्ठा दिलायी उस की श्रेष्ठतम कृति **दूनो एलिजी** ने. इस की रचना सन् 1922 की फ़रवरी में एक स्वतःस्फूर्त्त रचनात्मक विस्फोट के दौरान हुई थी. अभूतपूर्व सृजनात्मक उद्वेलन के कुल तीन सप्ताहों के भीतर उस ने 'दूनो शोकगीत' (दस शोक कविताओं का संग्रह

जिन की रचना स्वीट्ज़रलैंड के दूनो नामक स्थान पर हुई थी) तथा मिथक पुरुष **आर्फियस** के प्रति संबोधित कुछ सानेटों की रचना की थी. यह रचनाशीलता का एक ऐसा दौर था, जिस की प्रतीक्षा वह लंबे समय से कर रहा था. एक प्रकार से इस से पहले की सारी कविताएँ इसी बिंदु पर पहुँचने की तैयारी थीं. अनेक पूर्ववर्ती कविताओं में वे विचारबीज मिल सकते हैं, जो बाद में 'दूनो शोकगीत' में विकसित और परिपक्व हुए. इस रचनात्मक विस्फोट से पहले के कुछ वर्ष रिल्के के लिए अत्यंत यातनामय थे. इसी बीच उस ने शिल्पकार **रोंदा** के सचिव पद से अलग होने तथा पेरिस छोड़ देने का निश्चय किया. इसी बीच महायुद्ध शुरू हुआ, जिस का रिल्के ने मानो अपनी ऊब से छुटकारा पाने के लिए आगे बढ़ कर स्वागत किया. पर जल्दी ही उस से मोहमुक्त हो गया. धीरे धीरे व्यक्तिगत तथा वस्तुगत धरातल पर घटित होने वाली अनेक छोटी बड़ी घटनाओं का दबाव उसे खींच कर उस बिंदु पर ले गया, जहाँ 'दूनो शोक गीत' का विस्तृत फलक उस की प्रतीक्षा कर रहा था.

'दूनो शोक गीत' केवल चलते अर्थ में ही शोकगीत है. वस्तुतः उस में रिल्के ने मानव अनुभूतियों की जड़ों तक पहुँचने की कोशिश की है. यह प्रश्न बार बार उठाया गया है कि 'दूनो शोकगीत' की विचार वस्तु क्या है और इस के उत्तर भी तरह तरह से दिये गये हैं. जीवन, मृत्यु और अनंत प्रत्यावर्त्तन' जैसे रिल्के के चिरपरिचित विषय यहाँ भी मौजूद हैं. सिर्फ उस की दृष्टि बदल गयी है और इन विषयों को कविता में शामिल करने का तरीका भी. रचना और सौंदर्य के बुनियादी प्रश्न 'दूनो शोकगीत' की जटिल संरचना के भीतर भी बार बार उठते हैं. पर जो चीज़ इस कृति को रूमानियत से बचा लेती है, वह है यथार्थ जीवन के अंतर्विरोधों की गहरी और खरी पहचान. यह पहचान पूरी रचना को कुछ अप्रत्याशित झटके देती है और सौंदर्य धीरे धीरे दहशत में बदलने लगता है.

'दूनो शोकगीत' इसलिए भी अपना अलग महत्त्व रखता है कि वह एक खास तरीके से रिल्के की काव्य संबंधी मान्यताओं को भी उदाहृत करता है. वह मानव स्मृतियों को कविता की पूँजी मानता था. पर उस के अनुसार कविता में आने से पूर्व स्मृतियों को चयन, संरक्षण, विस्मरण तथा पुनः आवाहन—इन चार स्थितियों से गुज़रना पड़ता है. स्वयं रिल्के के शब्दों में :

'स्मृतियाँ ही काफी नहीं होतीं. यह भी आवश्यक होता है कि कवि उन तमाम स्मृतियों को विस्मृत करने की क्षमता भी रखता हो. क्यों कि मूलतः स्मृतियाँ ही काम देती हैं—लेकिन तब जब वे हमारे रक्त में घुल मिल जायें. . . केवल उसी दुर्लभ क्षण में कविता के प्रथम शब्द का जन्म होता है.'

रिल्के ने 'दूनो शोकगीत' की रचना में उसी पद्धति से काम लिया, जिस का ऊपर उल्लेख किया गया है. बरसों पहले कुछ पंक्तियाँ लिखी गयी थीं जो वर्षों तक यों ही पड़ी रहीं—जैसे स्मृतियों के विस्मृत होने और पुनः लौट कर आने का इंतज़ार हो. वे लौट कर आयीं लगभग एक दशक के बाद, रिल्के की मृत्यु से चार वर्ष पूर्व सन् 1922 की फरवरी में. रचना के परिपक्व क्षण के इतने लंबे इंतज़ार की सामर्थ्य विश्व के बहुत कम कवियों में होगी.

इन सारी बातों के बावजूद रिल्के की कविताएँ ऐसी नहीं हैं जो किसी तात्कालिक मानवीय दबाव की सूचना देती हों. वे इतिहास के हाशिये पर लिखी गयी कविताएँ हैं. इन कविताओं की दुनिया ऐसी है जिस में से युद्ध, राजनीति और मनुष्य के सामूहिक संवेग एकदम गायब हैं. इस दृष्टि से रिल्के, अपने कनिष्ठ समकालीन कवि **गाट फ्रीड बेन** और **बर्तोल्त ब्रेख्ट** से सर्वथा भिन्न था. यह आकस्मिक नहीं है कि जर्मन भाषा के प्रख्यात युवा कवि **एन्ज़ेन्सबर्गर** ने जब युद्धोत्तर जर्मन कविता को पुनर्जीवित करने के लिए खोई हुई भाषा की [illegible] का अभियान शुरू किया तो उसे उस की चिनगारी बेन और ब्रेख्ट की भाषा में मिली, रिल्के से नहीं. इस से यह नतीजा निकाला जा सकता है कि नयी पीढ़ी के लिए रिल्के का काव्य संसार एक हद तक अपरिचित और अप्रासंगिक हो गया है. यदि परवर्ती पीढ़ी पर पड़ने वाले प्रभाव को किसी कवि की महत्ता का मापदंड माना जाये तो अपनी भाषा के संदर्भ में रिल्के की स्थिति थोड़ी अटपटी लग सकती है. पर रिल्के गेटे के बाद जर्मन कविता का शायद पहला ऐसा व्यक्तित्व था जिस की परछाईं अपने देश की सीमाओं को लाँघ कर इस शताब्दी की कविता के सुदूर क्षेत्रों तक फैल गयी थी. उस की कृतियों में **उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के आरंभिक दिनों का एक ऐसा सच्चा और मद्धिम ताप भरा हुआ है जो कविताप्रेमियों को बराबर आकृष्ट करता रहेगा.** अपनी असंख्य कविताओं में रिल्के हमारे लिए एक ऐसा आश्चर्यलोक छोड़ गया है जो पूरी तरह समकालीनता के दायरे में नहीं अँट पाता और इसीलिए पाठक से ज़्यादा उन्मुक्तता और कविता के प्रति ज़्यादा गहरी ज़िम्मेवारी की माँग करता है.

राइनर मारिया रिल्के की दो कविताएँ

तेंदुआ

पिंजड़े की छड़ों से गुज़रते हुए
उस की आँखें इतनी थक गयी हैं
कि वे कुछ भी देख नहीं पातीं.

उसे लगता है वहाँ हज़ारों छड़ हैं
और उन के पीछे हज़ारों छड़
और दुनिया नहीं है.

उस के मज़बूत कदमों की मुलायम चाल
छोटी से छोटी गोलाइयों के अंदर
ताकत के भयानक नृत्य की तरह लगती है
जड़
और अवाक्!

सिर्फ़ कभी कभी
उस की पुतली का पर्दा उठता है
एक तसवीर अंदर प्रवेश करती है
और उस के तने हुए अंगों से होती हुई
उस के हृदय तक जाती है
और मर जाती है.

पतझड़ का दिन

ईश्वर, यह समय है.
ग्रीष्म महान था.
अपनी परछाई सूर्य के चक्के पर टाँग दो
और हवाओं को छोड़ दो
खेतों में बिखर जाने के लिए.

आखिरी फलों को आदेश दो
वे झर जायें.
उन्हें पकने के लिए
दो दक्षिणी दिन और दो.

आखिरी मिठास को भेज दो
अंगूर की बोझिल लताओं में.

जिस के पास घर नहीं है
वह अब नहीं बनायेगा.

जो अकेला है
वह लंबे समय तक उसी तरह रहेगा
देखेगा
पढ़ेगा
लंबी चिट्ठियाँ लिखेगा
और गिरते हुए पत्तों के साथ
गलियों में भटकता रहेगा.

अनु. केदारनाथ सिंह

प्रेस

नये अध्यादेश

8 दिसंबर को तीन अध्यादेश जारी कर के भारत सरकार ने 'आपत्तिजनक सामग्री' के प्रकाशन को रोकने के लिए विशेष अधिकार प्राप्त कर लिये. अब संसद की कार्रवाई से भी आपत्तिजनक सामग्री का प्रकाशन नहीं किया जा सकेगा. प्रेस परिषद् अधिनियम 1965 को रद्द कर के प्रेस परिषद को भी भंग कर दिया गया है. आपत्तिजनक सामग्री के प्रकाशन पर रोक और संसदीय कार्रवाई (प्रकाशन का संरक्षण) अधिनियम 1956 के अंतर्गत समाचारपत्रों को संसद की कार्रवाई के प्रकाशन की छूट को समाप्त करने से संबंधित अध्यादेश तुरंत प्रभावी हो गये जब कि प्रेस परिषद को भंग करने से संबंधित अध्यादेश लागू होने की तिथि 1 जनवरी तय हुई है. केंद्रीय मंत्रिमंडल ने इन अध्यादेशों को इसी सप्ताह स्वीकृति दी और उन पर राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के लिए एक विशेष वाहक को काहिरा भेजा गया.

आपत्तिजनक सामग्री के प्रकाशन पर प्रतिबंध संबंधी अध्यादेश की व्याख्या करते हुए सरकारी प्रवक्ता ने बताया कि अध्यादेश का उद्देश्य मुख्यतः ऐसी आपत्तिजनक सामग्री पर प्रतिबंध लगाना है जो 'वैधानिक रूप से गठित सरकार के विरुद्ध द्वेष फैलाने वाली हो, अनिवार्य वस्तुओं या सेवाओं के उत्पादन, संभरण या वितरण में गतिरोध पैदा करने वाली हो, समाज के विभिन्न वर्गों में कटुता उत्पन्न करने वाली हो और जो अभद्र या अश्लील या अशिष्ट हो.' इस अध्यादेश से सरकार को ऐसी सामग्री प्रकाशित करने वाले प्रकाशनों को बंद करने का अधिकार भी मिल गया है किंतु संबंधित पक्ष को पहले केंद्र सरकार के सामने अपना मामला ले जाने का और फिर उच्च न्यायालय में जाने का अवसर मिलेगा.

प्रेस परिषद को भंग करने की आवश्यकता इस लिए हुई कि 1966 में स्थापित यह संस्था प्रेस के लिए कोई आचार संहिता बनाने और उसे क्रियान्वित करने में विफल रही. परिषद सामान्यतः 'अपेक्षाकृत मामूली शिकायतों से ही निपटती रही.'

इन अध्यादेशों से संबंधित सरकारी विज्ञप्ति में कहा गया है कि पिछले कुछ वर्षों में भारत में पत्रकारिता के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए कई कदम उठाये गये ताकि ऐसी सामग्री के प्रकाशन से बचा जा सके जो समाज के नैतिक तथा बौद्धिक स्वास्थ्य के लिए हानिप्रद हो और सार्वजनिक जीवन के स्तर को गिराने वाली हो.

'इन कदमों का उद्देश्य प्रेस को सही माने में स्वतंत्र बनाना था, अर्थात् उसे उन निहित स्वार्थों से मुक्त करना रहा जो सामाजिक और राष्ट्रीय हितों की अवहेलना करते हुए अपने क्षुद्र स्वार्थों के लिए प्रेस का प्रयोग करते हैं. प्रेस आयोग (1954) ने भी यह पाया था कि जहाँ प्रेस को 'व्यापक अधिकार' हैं वहाँ उस पर 'समान रूप से व्यापक उत्तरदायित्व' भी हैं. इन उपायों के बावजूद प्रेस में आवश्यक स्वस्थ तथा स्वतंत्र स्वर लाने की समस्या प्रायः हल नहीं हो पायी.

'प्रेस में हानिप्रद लेखों के प्रकाशन को रोकने के लिए प्रेस (आपत्तिजनक सामग्री) अधिनियम स्वाधीनता के बाद 1951 में पारित किया गया था किंतु क्रियान्वयन की समुचित व्यवस्था के अभाव में वह प्रभावहीन सिद्ध हुआ. यह भी सोचा गया था कि प्रेस परिषद के माध्यम से भीतरी अनुशासन स्थापित किया जा सकेगा. इसी लिए प्रेस (आपत्तिजनक सामग्री) अधिनियम को 1957 में रद्द किया गया था.

'1966 में प्रेस परिषद की स्थापना की गयी जिस का उद्देश्य प्रेस के लिए एक आचार संहिता तैयार करना तथा प्रेस को उस के अधिकारों और उत्तरदायित्वों से अवगत कराना था. दुर्भाग्यवश, प्रेस परिषद कोई आचार संहिता नहीं बना सकी क्यों कि उस ने अपेक्षाकृत मामूली प्रकार की शिकायतों को ले कर ही कार्रवाई की. इस लिए यह महसूस किया गया कि प्रेस परिषद् अपनी उपयोगिता खो चुकी है.'

इस लिए इस प्रकार के कदम उठाये गये हैं कि प्रेस परिषद् अधिनियम को समाप्त किया जाये और अध्यादेश के रूप में ऐसे कानून को स्वीकार किया जाये जो ऐसी सामग्री के बारे में प्रभावी कार्रवाई करे जिसे संविधान के अनुच्छेद 19 (2) के अंतर्गत आपत्तिजनक बताया गया है. किंतु इस अध्यादेश के अंतर्गत सरकार की रचनात्मक आलोचना करने का प्रेस को अधिकार होगा.

1951 के कानून में दी गयी व्यवस्था कि आपत्तिजनक सामग्री छापने पर प्रकाशित सामग्री को ज़ब्त किया जा सकता है या प्रकाशन को बंद किया जा सकता है या प्रेस का लाइसेंस रद्द किया जा सकता है, नये कानून में बदस्तूर रखी गयी है.

'यह महसूस किया जा रहा है कि इस नये कानून से गैर जिम्मेदार लोगों को प्रेस का दुरुपयोग करने से रोका जा सकेगा और स्वस्थ पत्रकारिता को प्रोत्साहन मिलेगा.'

एक अध्यादेश के रूप में संसदीय कार्रवाई अधिनियम 1956 को भी समाप्त कर दिया गया है. यह अनुभव किया गया कि संसद् के

दिनमान

समाचार - साप्ताहिक

'राष्ट्र की भाषा में राष्ट्र का आह्वान'

भाग 11 — 14-20 दिसंबर, 1975

अंक 50 — 23-29 मार्गशीर्ष, 1897

*

इस अंक में

*

दिनमान

संपादक : **रघुवीरसहाय**. संपादकीय सहकर्मी: **जितेंद्र गुप्त** (सहायक संपादक), **श्रीकांत वर्मा** (विशेष संवाददाता), **सर्वेश्वरदयाल सक्सेना** (प्रमुख उपसंपादक), **श्यामलाल शर्मा, योगराज थानी, रामसेवक श्रीवास्तव, जवाहरलाल कौल, शुक्ला रुद्र, त्रिलोक दीप, महेश्वरदयाल गंगवार, नेत्रसिंह रावत, प्रयाग शुक्ल** और **विनोद भारद्वाज**. सज्जा : **विजय कोहली**

टाइम्स आफ इंडिया प्रकाशन,
10, दरियागंज, दिल्ली-110006

भीतर के भाषणों को निर्बाध रूप से छापने के अधिकार का बहुत से समाचारपत्रों ने पिछले कुछ वर्षों में दुरुपयोग किया है जो कि सामान्य कानूनों के अंतर्गत आपत्तिजनक कहा जा सकता था. इस से पत्रकारिता का स्तर गिर गया है. अतः उक्त कानून में दी गयी सुविधा समाप्त कर दी गयी है. यह सुविधा वस्तुतः इस लिए दी गयी थी कि इस से लोगों को शिक्षित करने में मदद मिलेगी. परंतु ऐसा नहीं हुआ.

राष्ट्रपति

मिस्र की सद्भाव यात्रा

(हमारे विशेष संवाददाता द्वारा)

मिस्र में भारत के लिए आरंभ से ही सद्भावना रही है. दरअसल मिस्र भारत की विदेशनीति का ज़रूरी अंग रहा है. मिस्र के स्व. राष्ट्रपति नासिर जवाहरलाल नेहरू के घनिष्ठ मित्र रहे हैं और गुटनिरपेक्षता की जिस नीति का निर्धारण जवाहरलाल नेहरू ने किया उस में राष्ट्रपति नासिर का महत्वपूर्ण योगदान रहा है. राष्ट्रपति नासिर की मृत्यु के बाद भी भारत और मिस्र की दोस्ती कमज़ोर नहीं हुई. लगभग हर संकट में मिस्र और भारत ने एक दूसरे का राजनैतिक और नैतिक समर्थन किया.

अरब दुनिया भारत के लिए कितना महत्त्व रखती है, इस का अनुमान महज़ इस से हो सकता है कि पिछले महीने श्रीमती गांधी ने अपने विशेष दूत श्री मोहम्मद यूनुस को पश्चिमेशिया की यात्रा पर भेजा.

पिछले सप्ताह राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद की मिस्र-यात्रा भारत तथा अरब देशों के बीच मैत्री की कड़ी और मज़बूत करने की दिशा में एक और क़दम है. श्री फखरुद्दीन अली अहमद की मिस्र-यात्रा के दौरान मिस्र के राष्ट्रपति सादात ने प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी द्वारा हाल में उठाये गये क़दमों तथा आपात् स्थिति का समर्थन किया. राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद ने अपनी ओर से श्री सादात को बताया कि किन परिस्थितियों में भारत सरकार को आपात् स्थिति की घोषणा करनी पड़ी. श्री सादात ने सहमति व्यक्त करते हुए कहा कि श्रीमती गांधी ने हाल में जो क़दम उठाये हैं, वे भारत की सुरक्षा और स्थायित्व के लिए ज़रूरी थे.

श्री सादात ने भारत और मिस्र की पुरानी दोस्ती का हवाला दिया और कहा कि 1956 में जब स्वेज़ नहर को ले कर संकट उत्पन्न हो गया था, तब श्री जवाहरलाल नेहरू ने राष्ट्रपति नासिर का पूर्ण समर्थन किया था. श्री सादात ने श्रीमती गांधी द्वारा अरब दुनिया को दिये गये समर्थन की भी सराहना की. श्री फखरुद्दीन अली अहमद ने भी मिस्र के दृष्टिकोण की अभ्यर्थना की और कहा कि भारत मिस्र के साथ अपनी दोस्ती को बहुत महत्त्वपूर्ण मानता है.

राष्ट्रपति सादात तथा श्री फखरुद्दीन अली अहमद के बीच विदेश नीति से ले कर आर्थिक तथा सामाजिक प्रश्नों पर विस्तार से बातचीत हुई. उन्होंने दोनों देशों में संयुक्त उद्योगों की स्थापना पर भी विचार किया.

श्री फखरुद्दीन अली अहमद के सम्मान में दिये गये भोज में बोलते हुए श्री सादात ने श्रीमती गांधी की नीतियों की प्रशंसा की और कहा कि श्रीमती गांधी भारत में सामाजिक न्याय और राजनैतिक स्थायित्व कायम करने के लिए संघर्ष कर रही हैं. उन्होंने कहा कि भारत ने अपनी विदेशनीति में कुछ महान् सिद्धांत अपनाये हैं. हम यह अनुभव करते हैं कि हमारे संघर्ष के प्रत्येक चरण में भारत ने हमारा समर्थन किया है.

अरब संसार में पाकिस्तान पिछले कुछ अरसे से भारत के विरुद्ध ज़हरीला प्रचार कर रहा है. राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद ने अपनी मिस्र यात्रा के दौरान मिस्र की जनता से अनुरोध किया कि वह भारत-विरोधी झूठे प्रचार पर यकीन न करे. पाकिस्तान ने पश्चिमेशिया के मुसलमान देशों में यह प्रचार कर रखा है कि भारत में अल्पसंख्यकों, विशेषकर मुसलमानों के साथ न्याय नहीं हो रहा है. इस पर टिप्पणी करते हुए श्री फखरुद्दीन अली अहमद ने कहा कि यह सरासर झूठा प्रचार है. भारत में नागरिक समानता और अल्पसंख्यकों को पूर्ण संरक्षण प्राप्त है. श्री अहमद ने कहा कि मुसलमान भारत में दूसरे दर्जे के नागरिक नहीं हैं; बल्कि स्थिति यह है कि वे सर्वोच्च पद पर पहुँच सकते हैं. उन्होंने कहा कि यद्यपि भारत का विभाजन धर्म के आधार पर हुआ था, भारत ने धर्मनिरपेक्षता को अपने बुनियादी सिद्धांत के रूप में अपनाया और आज हमारे देश में समस्त संप्रदायों को समान अधिकार प्राप्त हैं. वैसे श्री अहमद ने अपने भाषण में पाकिस्तान का नाम नहीं लिया, लेकिन उन का आशय स्पष्ट था.

राष्ट्रपति अहमद की मिस्र-यात्रा के दौरान दोनों देशों ने गुटनिरपेक्षता के सिद्धांत पर अपनी आस्था को दोहराया. राष्ट्रपति सादात ने यह स्पष्ट किया कि मिस्र गुटनिरपेक्षता की नीति में यकीन रखता है और उस ने इस नीति पर अपनी आस्था को कई बार दोहराया है.

बंगलादेश के प्रश्न पर भी श्री सादात ने भारतीय दृष्टिकोण से अपनी सहमति व्यक्त की. राष्ट्रपति सादात का कहना था कि बंगलादेश में जो घटनाएँ घट रही हैं उन से न केवल भारत को बल्कि मिस्र को भी सरोकार है, क्योंकि मिस्र इस उपमहाद्वीप में शांति और स्थायित्व चाहता है.

राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद की मिस्र यात्रा से भारत की विदेशनीति के स्तंभ कुछ और मज़बूत हुए हैं और भारत के साथ अरब दुनिया का लगाव कुछ और बढ़ा है.

विदेशनीति

पड़ोसी देशों के साथ संबंध

(हमारे विशेष संवाददाता द्वारा)

बंगलादेश और नेपाल भारत के दो महत्त्वपूर्ण पड़ोसी हैं. दोनों के साथ भारत का आत्मीय रिश्ता रहा है. लेकिन विदेश नीति में कई बार चाहे-अनचाहे कुछ ऐसी उलझनें पैदा हो जाती हैं जिन्हें तत्काल सुलझाना ज़रूरी हो जाता है. पिछले कुछ महीनों में बंगलादेश में भारत विरोधी तत्त्वों ने भारत के विरोध में वातावरण बनाने की लगातार कोशिश की जिस की परिणति भारतीय उच्चायुक्त श्री समर सेन की हत्या के प्रयास में हुई.

बंगलादेश में जो तत्त्व भारत के विरुद्ध वातावरण बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं, वे

काहिरा में राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद और मिस्र के राष्ट्रपति अनवर सादात

स्वयं बंगलादेश में स्थायित्व और लोकतंत्र को पूरी तरह नष्ट करने पर आमादा नज़र आते हैं. बहरहाल, दोनों देशों के बीच तनाव न उत्पन्न होने देने के इरादे से भारत और बंगलादेश के अधिकारियों की एक संयुक्त बैठक आयोजित करने का फ़ैसला पिछले महीने लिया गया था. इस फ़ैसले के अनुसार बंगलादेश के अधिकारियों का एक प्रतिनिधिमंडल भारत आया. उस ने भारतीय प्रतिनिधिमंडल के साथ सीमा तथा अन्य समस्याओं पर विस्तार से बातचीत की. बंगलादेश के प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व बंगलादेश के राष्ट्रपति श्री सयेम के विशेष सहायक श्री अब्दुस्सत्तार ने किया. प्रतिनिधिमंडल के दूसरे सदस्य थे श्री एस. एफ. तबारक हुसेन जो बंगलादेश के विदेश सचिव हैं. भारतीय प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व विदेश मंत्रालय के नीति नियोजन विभाग के अध्यक्ष श्री जी. पार्थसारथी ने किया. भारतीय प्रतिनिधिमंडल के अन्य सदस्य थे विदेश सचिव केवल सिंह, प्रधानमंत्री के सचिव श्री पी. एन. धर, विदेशमंत्रालय के संयुक्त सचिव श्री जे. सी. अजमानी और ढाका में भारत के उप-उच्चायुक्त श्री ए. के. दास.

बातचीत के अंत में जो बयान जारी किया गया उस में कहा गया कि दोनों देशों की यह वार्ता कामयाब रही. बातचीत सौहार्द्रपूर्ण वातावरण में हुई और दोनों देशों ने एक दूसरे की समस्याओं के प्रति उम्दा समझ का परिचय दिया. दोनों पक्षों ने परस्पर मैत्री को बढ़ाने की इच्छा ज़ाहिर की.

हाल में कुछ ऐसी घटनाएँ घटीं, जिन का भारत और बंगलादेश के संबंधों पर असर पड़ा है. इन घटनाओं पर दोनों देशों के प्रतिनिधिमंडलों ने चिंता व्यक्त की.

बातचीत नयी दिल्ली में, शनिवार और इतवार दो दिन हुई. इस बातचीत का दोनों देशों के लिए कितना महत्त्व है, इस का अनुमान महज़ इस से हो सकता है कि बंगलादेश के राष्ट्रपति ने अपने प्रतिनिधिमंडल के नेतृत्व के लिए अपना विशेष दूत भेजा. इस के पहले भी राष्ट्रपति सयेम प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी से फ़ोन पर बातचीत कर चुके थे. उन्होंने भारतीय उच्चायुक्त श्री समर सेन की हत्या के प्रयास की भर्त्सना की थी और समूची घटना पर चिंता व्यक्त की थी. इसी बातचीत के दौरान श्री सयेम ने कहा था कि दोनों देशों के संबंधों पर विचार करने के लिए वह एक प्रतिनिधिमंडल भेजना चाहते हैं.

नयी दिल्ली में अपने प्रवास के दौरान बंगलादेश के प्रतिनिधिमंडल ने प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी से भेंट की. बंगलादेश प्रतिनिधिमंडल ने श्रीमती गांधी को राष्ट्रपति सयेम का विशेष संदेश दिया. इस संदेश में क्या कहा गया है, यह विदेश मंत्रालय के प्रवक्ताओं ने अभी नहीं बताया.

इस के पहले कलकत्ता में बंगलादेश और भारत के सीमा सुरक्षा दल के अध्यक्षों की एक बैठक हुई. बैठक की समाप्ति पर एक संयुक्त वक्तव्य जारी किया गया जिस में यह कहा गया कि दोनों देशों के हितों को प्रभावित करने वाली समस्याओं पर बातचीत हुई और दोनों देशों को मान्य हल निकाले गये. भारतीय प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व भारतीय सीमा-सुरक्षा दल के महानिदेशक श्री अश्विनीकुमार ने किया और बंगलादेश के प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व मेजर जनरल दस्तगीर ने. बातचीत की समाप्ति पर जारी वक्तव्य में कहा गया कि सारी बातचीत अत्यंत सौहार्द्रपूर्ण और सुखद वातावरण में हुई. दोनों ही प्रतिनिधिमंडलों ने एक दूसरे के दृष्टिकोण को समझने में पर्याप्त उदारता का परिचय दिया. दोनों ही प्रतिनिधिमंडलों ने तस्करी को रोकने तथा सीमा पर घटने वाली घटनाओं को समाप्त करने के लिए क़दम उठाने का संकल्प किया. वक्तव्य में यह भी कहा गया कि बातचीत से अनेक ग़लतफ़हमियाँ दूर हुईं और विश्वास का वातावरण पैदा हुआ. यह निश्चय किया गया कि दोनों ही दलों के विभिन्न स्तरों पर कार्य करने वाले अधिकारी अक्सर मिलजुल कर उन समस्याओं का निदान करेंगे जो कि तनाव उत्पन्न करती हैं. दोनों ही प्रतिनिधिमंडलों ने बातचीत के नतीजों पर पूर्ण संतोष व्यक्त किया.

जब प्रतिनिधिमंडलों से यह पूछा गया कि क्या अमेरिका के विदेश विभाग की यह टिप्पणी सही है कि दोनों देशों की सीमाओं पर कुछ वारदातें हुई हैं, तब भारतीय प्रतिनिधिमंडल के नेता श्री अश्विनीकुमार ने उत्तर दिया कि मैं ज़िम्मेदारी के साथ कह सकता हूँ कि दोनों देशों की सीमाओं पर कोई संघर्ष नहीं हुआ. जब यह पूछा गया कि प्रस्तुत बातचीत की आवश्यकता क्यों आ पड़ी, तब बंगलादेश के प्रतिनिधिमंडल के नेता मेजर जनरल दस्तगीर ने कहा कि इस के लिए हम ने अनुरोध किया था.

बंगलादेश में घट रही घटनाओं ने केवल भारत में ही नहीं बल्कि संसार के अनेक भागों में चिंता और उत्सुकता पैदा की है. 15 अगस्त को शेख मुजीबुर्रहमान, उन के परिवार के सदस्यों तथा सहयोगियों की हत्या के बाद से बंगलादेश में हत्याओं का एक सिलसिला चल निकला. अनेक अफ़सरों और नेताओं की हत्या की गयी और लोकतांत्रिक व्यवस्था को पूरी तरह नष्ट करने के लिए अतिवादी दक्षिणपंथी तथा वामपंथी तत्त्व सक्रिय हो गये. इन घटनाओं पर सोवियत रूस ने गहरी चिंता व्यक्त की. पिछले महीने के अंतिम सप्ताह में मस्कवा यात्रा के दौरान विदेश सचिव श्री केवल सिंह से बातचीत में सोवियत संघ के नेताओं ने बंगलादेश में हाल में घटी घटनाओं को ले कर चिंता व्यक्त की थी. सोवियत नेताओं का विचार था कि इस क्षेत्र में तनाव कम होना चाहिए और किसी तरह का सांप्रदायिक उपद्रव नहीं होना चाहिए.

भारत ने भी इस बात को दोहराया है कि बंगलादेश में अल्पसंख्यकों की पूरी तरह हिफाजत के लिए जरूरी क़दम उठाये जाने चाहिए और बंगलादेश की सरकार को उन तत्त्वों पर निगाह रखनी चाहिए जो सांप्रदायिक उपद्रवों को भड़काने के कायल हैं.

भारत-नेपाल : श्री तुलसी गिरि का नेपाल का प्रधानमंत्री नियुक्त किया जाना एक महत्त्वपूर्ण घटना है. प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने श्री तुलसी गिरि के प्रति अपनी सद्भावना और शुभकामनाएँ भेजते हुए कहा है कि आप ने पिछले दो दशक में नेपाल के जन-जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है और भारत में आप के अनेक मित्र हैं. हम यह आशा करते हैं कि नेपाल के प्रधानमंत्री के पद पर आप के बने रहने से दोनों देशों के संबंध और भी सुदृढ़ होंगे.

डॉ. तुलसी गिरि का नाम भारतवासियों के लिए नया नहीं है. भारत में उन के अच्छे खासे प्रशंसक हैं. डॉ. तुलसी गिरि आरंभ से ही यह मानते रहे हैं कि भारत नेपाल का एक बहुत महत्त्वपूर्ण पड़ोसी है और दोनों देशों के संबंध अनिवार्यतया और हमेशा के लिए अच्छे बने

भारत और बंगलादेश के प्रतिनिधिमंडल : (बायें से) भारत के केवल सिंह और जी. पार्थसारथी और बंगलादेश के न्यायाधीश अब्दुस्सत्तार और विदेश सचिव तबारक हुसेन

रहने चाहिए. अपना पद सँभालते ही उन्होंने इस संकल्प को दोहराया. उन्होंने कहा कि यह आवश्यक है कि भारत और नेपाल के संबंध पहले से भी ज़्यादा मजबूत हों. इस बात का कोई महत्त्व नहीं है कि शुरूआत कौन करता है. मैं अपनी तरफ़ से जल्द से जल्द दिल्ली जाने को उत्सुक हूँ.

डॉ. तुलसी गिरि ने कहा कि मैं यह चाहता हूँ कि दोनों देशों के संबंधों को ले कर एक दीर्घकालीन नीति निर्धारित की जाये और दोनों ही देशों के दिमाग़ में यह साफ़ रहे कि हम क्या चाहते हैं.

पिछले 25 वर्षों में दोनों देशों के मैत्रीपूर्ण संबंधों में क्रमशः वृद्धि हुई है और दोनों देशों के बीच जो परंपरागत संबंध रहे हैं वे मज़बूत हुए हैं. लेकिन आज की वास्तविकताओं और परंपरागत मैत्री के बीच एक संतुलन कायम होना आवश्यक है.

डॉ. तुलसी गिरि ने कहा कि समय-समय पर उत्पन्न होने वाली समस्याओं का अस्थायी हल ढूँढ़ने के बजाय दीर्घकालीन नीति निर्धारित करना बेहतर होगा. इस के अंतर्गत सहमति के क्षेत्र को व्यापक किया जायेगा और असहमति के क्षेत्र को बहुत अधिक महत्त्व नहीं दिया जायेगा. उन्होंने कहा कि दोनों देशों के बीच एक ऐसे संवाद का शुरू किया जाना आवश्यक है जिस के अंतर्गत दोनों देशों के राष्ट्रीय हितों पर विचार किया जा सके. डॉ. गिरि ने कहा कि यह दुख की बात है कि दोनों देशों के बीच कोई निश्चित नीति निर्धारित नहीं हो सकी है. फलस्वरूप अक्सर सतही समस्याएँ पैदा हो जाती हैं. श्री गिरि ने कहा कि भारत और नेपाल के बीच सरकारी बातचीत से अधिक लाभप्रद होगी राजनैतिक स्तर पर की गयी बातचीत. इसी संदर्भ में उन्होंने कहा कि मैं शीघ्र ही भारत की यात्रा करना चाहूँगा.

चीन के साथ नेपाल के संबंधों के विषय में उन्हों ने कहा कि नेपाल इन संबंधों को द्विपक्षीय संबंधों के रूप में ही बनाये रखना चाहेगा. यदि नेपाल के दो पड़ोसियों भारत और चीन के संबंधों में सुधार होता है, तो नेपाल को इस से अतिशय प्रसन्नता होगी. उन्होंने कहा कि यह अफ़वाह ग़लत है कि नेपाल भारत और चीन के तनाव में पनपना चाहता है. उन्होंने कहा कि नेपाल भारत के राष्ट्रीय हितों को क्षति नहीं पहुँचाना चाहता. यदि अपने राष्ट्र-हितों को अग्रसर करने की प्रक्रिया में हम ने अपने अनजाने या अनचाहे भी भारत के राष्ट्रहितों को क्षति पहुँचाने जैसी धारणा पैदा की है, तो भी संवाद के ज़रिये इस ग़लत-फ़हमी को दूर किया जा सकता है.

शहीदी दिवस

गुरु तेगबहादुर की त्रिशताब्दी

7 और 8 दिसंबर को दिल्ली की सड़कों पर जो अपार जनसमूह शांतिपूर्वक और अनुशासनपूर्ण ढंग से जुलूस और ग़ैरजुलूस की शक्ल में देखने को मिला वह शायद अपने आप में एक नयी मिसाल थी. अवसर था सिखों के नवें गुरु तेगबहादुर का शहीद दिवस. इस वर्ष इस समारोह का महत्त्व केवल सिखों के लिए ही नहीं उन सभी लोगों के लिए भी था जो ज़ुल्म और अत्याचार के विरोधी रहे हैं और शांति के समर्थक. यह बात 8 दिसंबर को प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने भी रामलीला मैदान में सिखों की एक बहुत बड़ी सभा को संबोधित करते हुए कही. उन्होंने कहा कि गुरु तेगबहादुर केवल सिखों के ही गुरु नहीं थे बल्कि पूरी मानव जाति के अगुआ थे. उन की वाणी और ग्रंथों से हमें जो सीख मिलती है उस में एकता और प्रगति निहित है. श्रीमती गांधी सलवार और कमीज पहन कर इस जनसभा में जब पहुँची तो अपार भीड़ ने 'जो बोले सो निहाल, सत श्री अकाल' से उन का स्वागत किया. श्रीमती गांधी ने मुगल सम्राट औरंगज़ेब की दमनकारी नीतियों का ज़िक्र करते हुए कहा कि गुरु तेगबहादुर ने कश्मीरी पंडितों के दमन के विरोध में ही शहादत का वरण किया था लेकिन यह शहादत पूरी मानवजाति के लिए थी. इस में हिंदू, सिखों और मुसलमानों सभी का हित निहित था. श्रीमती गांधी ने यह भी कहा कि उसी दौर दौरे में उन के परिवार ने भी कश्मीर छोड़ा. सिखों और पंजाबियों की पीठ थपथपाते हुए श्रीमती गांधी ने कहा, 'आप लोग कठिनाइयों से जूझना जानते हैं और यह भी जानते हैं कि जीवन किस प्रकार जिया जाता है. जनसमुदाय का यह अपार सागर यह जतलाता है कि केवल आप की अपने धर्म के प्रति ही नहीं बल्कि उन सभी सिद्धांतों के प्रति आस्था है जो अत्याचार और दमन का विरोध करते हैं.' प्रधानमंत्री ने कहा कि वर्त्तमान समस्याओं का समाधान करने के लिए गुरु के उपदेश से शक्ति प्राप्त करनी चाहिए. गुरु तेगबहादुर ने यह महान बलिदान केवल धर्म के लिए ही नहीं बल्कि अन्याय और दमन के विरुद्ध दिया. गुरु तेगबहादुर की शहादत बेमिसाल है. इतिहास में शायद ही कोई उदाहरण मिलता हो जब किसी व्यक्ति ने सामाजिक गरिमा, समानता और न्याय के नाम पर स्वयं कातिल से जा कर कहा हो: 'मुझे मेरे सिद्धांत प्रिय हैं. यदि तुम उन का सम्मान नहीं कर सकते तो मेरा सिर हाजिर है.' जत्थेदार संतोखसिंह ने प्रधानमंत्री से गुरु तेगबहादुर के नाम पर एक विश्वविद्यालय, एक अस्पताल और एक मेडिकल कॉलेज स्थापित करने का आग्रह किया.

7 दिसंबर को देश के कोने कोने से आये सिखों ने एक जुलूस निकाला. यह जुलूस चाँदनी चौक स्थित सीसगंज गुरुद्वारा से शुरू हुआ और केंद्रीय सचिवालय के करीब स्थित गुरुद्वारा रकाबगंज में समाप्त हुआ. जब 12 किलोमीटर लंबे इस जुलूस का पहला छोर गुरुद्वारा रकाबगंज पहुँचा तो अंतिम छोर सीस गंज में था. एक तो इतवार का दिन और दूसरे सिखों समेत अन्य सभी धार्मिक संप्रदाय के लोगों के उत्साह ने इस जुलूस को एक नयी गरिमा दी. अनुमान है कि जुलूस में पाँच लाख से अधिक लोग शामिल हुए. इस महान जुलूस में वह जुलूस भी

रामलीला मैदान में श्रीमती इंदिरा गांधी का संबोधन
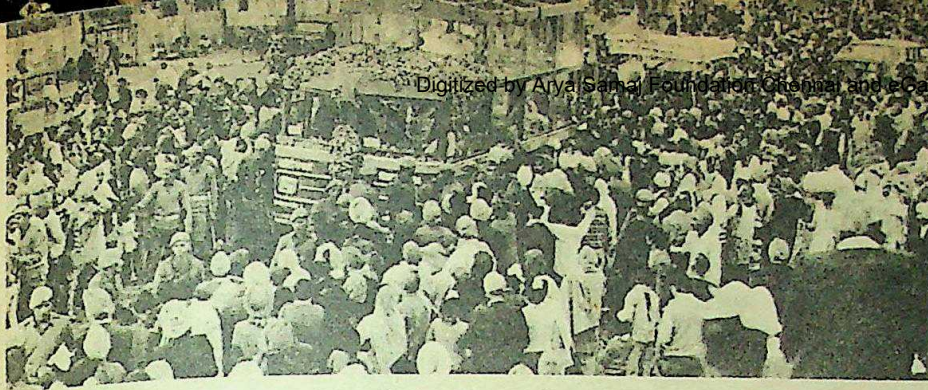
7 दिसंबर का जुलूस

समाहित हुआ जो बृहस्पतिवार (4 दिसंबर) को आनंदपुर साहब से शुरू हुआ था. यह जुलूस रोपड़, कुराली, मोरिंडा, फतेह गढ़ साहब, पटियाला, पेहोवा और रोहतक के रास्ते क़रीब 500 किलोमीटर की दूरी को तय करता हुआ दिल्ली पहुँचा था. इस जुलूस का स्वागत पुष्पों की बौछार से किया गया. इस का नाम गुरु तेगबहादुर शहीदी यात्रा था. इस जुलूस का नेतृत्व ज्ञानी जैलसिंह ने किया. गुरु तेगबहादुर के श्लोकों, शब्दों तथा अन्य गुरुओं की वाणी के पवित्र वातावरण में गुरुद्वारा सीसगंज से जब यह जुलूस चला तो लगता था कि सारी दिल्ली इस महान् यात्रा को देखने के लिए उमड़ पड़ी हो. 11 नवंबर 1675 को गुरु तेगबहादुर ने अपने जीवन का बलिदान उसी स्थान पर किया था जहाँ आज गुरुद्वारा सीसगंज स्थित है. गुरु तेगबहादुर की अंत्येष्टि उस स्थान पर हुई थी जहाँ आज गुरुद्वारा रकाबगंज स्थित है. जैसा कि इस तरह के महान् पर्व पर होता है जुलूस के आगे आगे पाँच प्यारे थे. इन पाँच प्यारों की परंपरा दसवें गुरु गोबिंदसिंह ने 1699 को बैसाखी के दिन खालसा का गठन कर के चलायी थी. तभी से यह परंपरा बनी हुई है. एक रथ पर एक बहुत बड़ा ढोल रखा हुआ था जिसे बार बार बजाया जा रहा था. उस के बाद गुरु तेगबहादुर तथा अन्य गुरुओं के जीवन संबंधी झाँकियाँ थीं. लेकिन एक स्थान से ले कर दूसरे स्थान का सारा वातावरण संगीत से ओतप्रोत था. इस जुलूस के स्वागत के लिए 300 से अधिक तोरण द्वार स्थापित किये गये थे. जगह जगह पर लोगों को प्रसाद दिया जाता, डिब्बाबंद भोजन भी बाँटा गया था. बच्चों और श्रद्धालुओं को ले जाने के लिए बसों, ट्रकों और टेंपुओं का भी इंतज़ाम था. जुलूस में शब्द कीर्तन निरंतर जारी था. विशेष रूप से निर्मित एक बस में गुरु तेगबहादुरकाल के हथियार भी थे और गुरु ग्रंथसाहब की वह ऐतिहासिक प्रति भी थी जिस पर गोलियों के नौ निशान थे. आनंदपुर साहब का जुलूस जब कनाट प्लेस पहुँचा तो संध्या हो चली थी. हल्की सी अंधेरी रात में सड़कों की जगमगाती रोशनी में ग्रंथसाहब की इस ऐतिहासिक प्रति पर टिमटिमाती बत्तियाँ बहुत ही सुंदर लग रही थीं. इस जुलूस में गुरु नानक देव और गुरु गोबिंदसिंह समेत अन्य गुरुओं के स्मृतिचिन्ह भी प्रदर्शित किये गये थे. इन चिन्हों में इन गुरुओं की पोशाक, खड़ाऊँ तथा हथियार भी थे. इस अवसर पर गुरु तेगबहादुर के जीवन और कार्यों से संबंधी बहुत सा साहित्य भी प्रकाशित किया गया. इस साहित्य में गुरु तेगबहादुर की वाणी का फ्रांसीसी अनुवाद भी था, जो दयालसिंह कॉलेज के प्रो. गुरुदयाल सिंह ने किया. गुरु तेगबहादुर की त्रिशताब्दी संबंधी ये कार्यक्रम साल भर तक चलेंगे.

फ़ाशी विरोध

पूर्ण संघर्ष की घोषणा

पटना में आयोजित चार दिवसीय फ़ाशीवाद विरोधी सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए कांग्रेस अध्यक्ष **देवकांत बरुआ** ने चेतावनी दी कि नवउपनिवेशवादी और नस्ल के आधार पर अभद्र व्यवहार करने वाली गुप्त ताकतों के प्रति विश्व को खबरदार हो जाना चाहिए. उन्होंने कहा कि इन मानव विरोधी ताकतों की क्रूर नज़रें उपमहाद्वीप पर भी लगी हुई हैं और वे इस नापाक कोशिश में लगे हुए हैं कि यहाँ जनतंत्र समाप्त हो जाये.

कांग्रेस अध्यक्ष ने कहा कि श्रीमती गांधी ने जनतंत्र को बचाने और उसे अधिक व्यावहारिक बनाने के लिए उस में आर्थिक पुट प्रदान किया जो जनता की आकांक्षाओं और ज़रूरतों के अधिक नज़दीक हो. इसी नेतृत्व के कारण हम सांप्रदायिक और प्रतिक्रियावादी ताकतों की चुनौती का अच्छी तरह मुक़ाबला करने में समर्थ है. गत वर्ष चलाये गये आंदोलन का हवाला देते हुए श्री बरुआ ने कहा कि चाहे जिस किसी दृष्टिकोण से देखा जाये यह वास्तव में एक फ़ाशी आंदोलन था और इस के संयोजक अराजकता फैला कर प्रतिक्रियावादी परंपरा को ज़िंदा रखने की कोशिश कर रहे थे. भारत के अंदर राष्ट्र विरोधी तत्त्वों के अतिरिक्त इस के पीछे बहुत सी अंतरराष्ट्रीय ताकतें भी थीं. इस बात को समझने के लिए अधिक खोजबीन करने की ज़रूरत नहीं होगी कि कौन से ऐसे तत्त्व भारत में अराजकता फैलाने की कोशिश में थे. स्वयं अमेरिकी अधिकारियों द्वारा कुछ वर्ष पूर्व चीले की घटनाओं के सिलसिले में दिये गये बयानों और अमेरिकी जासूस एजेंसी के विरुद्ध गवाहियों से पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं.

हिंद महासागर में अस्थिरता पैदा करने के प्रयास की ओर इशारा करते हुए श्री बरुआ ने कहा कि दियागो गार्सिया में एक परमाणु अड्डा स्थापित किया जा रहा है जो हिंदमहासागर के क्षेत्र के लिए एक स्थायी खतरा बन जायेगा.

प्रतिनिधियों को संबोधित करते हुए श्री बरुआ ने कहा कि फ़ाशी विरोधी सम्मेलन स्थल का चुनाव करते हुए न केवल इस बात का विचार रखा गया है कि पटना ने इस देश को महात्मा बुद्ध और अशोक जैसी विभूतियाँ दी हैं, बल्कि इस लिए भी कि प्रतिक्रियावादी और विघटनवादी तत्त्वों के आंदोलन के विरुद्ध यहीं सब से बड़ा संघर्ष हुआ था. उन्होंने कहा कि ललितनारायण मिश्र इस संघर्ष के पहले शहीद थे. बरुआ के अनुसार विघटनकारी तत्त्वों का उद्देश्य केवल ललितनारायण मिश्र को ही समाप्त करना नहीं था बल्कि वह इस देश में जनतंत्र और समाजवाद को ही नष्ट करना चाहते थे.

इस से पूर्व नयी दिल्ली में फ़ाशी विरोधी सम्मेलन में शामिल होने के लिए आये हुए विदेशी प्रतिनिधियों के सामने प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने कहा कि फ़ाशीवाद ऐसे लोगों की उपज होता है जो झूठे प्रचार और झूठे वायदों से लोगों को गुमराह करते हैं. श्रीमती गांधी ने कहा कि चंद लोगों ने आर्थिक कठिनाइयों का लाभ उठाते हुए जनता को

फ़ाशी विरोधी सम्मेलन में (दायें से) कांग्रेस अध्यक्ष देवकांत बरुआ, श्रीमती प्रेमलता बरुआ, डॉ. जगन्नाथ मिश्र, चंद्रजीत यादव, सीताराम केसरी और पूरबी मुखर्जी

गुमराह करने की कोशिश की. हमारा देश कठिन परिस्थितियों में से गुज़र रहा है मगर सभी विकासशील देश ऐसी कठिनाइयों से गुज़रते हैं. भारत में ग़रीबी को रातों रात समाप्त नहीं किया जा सकता क्योंकि हमारे देश में ग़रीबी की समस्या काफ़ी पुरानी है. 'जब तक हम ग़रीबी और असमानता को दूर करने के सिलसिले में ईमानदार हैं और सही रास्ते पर चलने के लिए कृतसंकल्प है तब तक लोग हमारे साथ ही रहेंगे.' उन्होंने आशा व्यक्त की कि सम्मेलन असमानता के विरुद्ध और समता तथा शांति के पक्ष में महत्त्वपूर्ण योगदान देगा.

सम्मेलन में विभिन्न नेताओं ने अलग अलग विषयों पर विचार व्यक्त किये. भारतीय प्रतिनिधियों में कांग्रेस अध्यक्ष के अतिरिक्त पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री सिद्धार्थ शंकर राय, कांग्रेस महामंत्री श्रीमती पूर्बी मुखर्जी, इस्पात मंत्री चंद्रजीत यादव, उत्तरप्रदेश के भूतपूर्व मुख्यमंत्री हेमवतीनंदन बहुगुणा, भारत सोवियत सांस्कृतिक संगठन के के. पी. एस. मेनन, साम्यवादी दल के इंद्रजीत गुप्त और श्रीपाद अमृत डांगे प्रमुख थे. श्री सिद्धार्थ शंकर राय ने चेतावनी दी कि देश की स्वतंत्रता ख़तरे में है क्योंकि फाशीवादी तत्वों ने अराजकता फैलाने का षड्यंत्र रचा था. इस प्रकार के ख़तरनाक आंदोलन को दुनिया की कोई सरकार इतने समय तक बर्दाश्त नहीं कर सकती थी जितने समय तक प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने किया. श्री राय का आरोप था कि आंदोलन में शामिल दलों को विदेशों से सहायता मिलती थी. सम्मेलन में श्रीमती इंदिरा गांधी के 20 सूत्री कार्यक्रम को फ़ाशीवाद के विरुद्ध एक सशक्त अस्त्र माना गया. इस के अतिरिक्त इस बात पर भी ज़ोर दिया गया कि भारत-सोवियत मित्रता देश की आर्थिक प्रगति और प्रजातांत्रिक विकास के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है.

चीले के प्रतिनिधि बी. तेतलब्वाइन

विश्व शांति परिषद के 25वें स्थापना वर्ष के अवसर पर पटना में कांग्रेस और कम्युनिस्ट पार्टी के संयुक्त तत्वावधान में तीन से सात दिसंबर तक आयोजित अंतर्राष्ट्रीय फ़ाशीवाद विरोधी सम्मेलन में विश्व के 52 राष्ट्रों के 110 प्रतिनिधियों के अतिरिक्त भारत के विभिन्न क्षेत्रों के 6,000 प्रतिनिधियों ने भाग लिया. इन में 2,000 प्रतिनिधि बिहार के थे. भूतपूर्व रेलमंत्री श्री ललितनारायण मिश्र की स्मृति में सम्मेलन स्थल बना, ललितनारायण नगर नाम रखा गया था. उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता अखिल भारतीय कांग्रेस अध्यक्ष श्री देवकांत बरुआ ने की. विश्व शांति परिषद के महासचिव श्री रमेशचंद्र ने इस बात पर हर्ष प्रकट किया कि परिषद के किसी भी सम्मेलन में इतने विदेशी प्रतिनिधि शामिल नहीं हुए थे. उन के अनुसार भारत के 80 प्रतिशत ज़िलों में फ़ाशी विरोधी सम्मेलन आयोजित किये जा चुके हैं. विदेश से आये प्रतिनिधियों में से रूस, इटली, पोलैंड, ब्रिटेन, वीएतनाम, चीले, फिलिस्तीन, अंगोला और कूबा के प्रतिनिधियों ने अपने भाषणों से यह बताने की कोशिश की कि साम्राज्यवादी, प्रतिक्रियावादी और फ़ाशी तत्वों के विरुद्ध युद्ध छेड़ने में वे भारत के साथ हैं. इन देशों के अतिरिक्त जिन विदेशी प्रतिनिधियों ने सम्मेलन में भाग लिया उन के देशों के नाम इस प्रकार हैं—ब्रिटेन, आर्हेंतीना, बेल्जियम, डेनमार्क, मिस्र, फ्रांस, चीले, पश्चिम और पूर्व जर्मनी, यूनान, हंगरी, इराक, इटली, कोरिया, माली, मॉरिशस, बेनेजुएला, फ़िलीपीन, दक्षिण अफ़्रीका, स्पेन, त्रिनीदाद, ऊरूगुआई, नेपाल, स्वीडन, कंबोदिया, सिप्रस, पनामा, सीरिया, पेरागुए, अमेरिका, यमन, फिनलैंड, मैक्सिको, ब्राज़ील, बल्गारिया, चेकोस्लोवाकिया, मंगोलिया, कोलंबिया, बोलीबिया. सम्मेलन की स्वागत समिति के अध्यक्ष बिहार के मुख्यमंत्री **डॉ. जगन्नाथ मिश्र थे.**

कुछ प्रतिनिधियों को छोड़ कर आम तौर से संपूर्ण सम्मेलन की कार्यवाही अंग्रेज़ी में हुई. हिंदी में विचार व्यक्त करने वालों में डॉ. जगन्नाथ मिश्र और मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री प्रकाशचंद्र सेठी शामिल थे. केंद्रीय इस्पातमंत्री चंद्रजीत यादव ने भी अपने भाषण का कुछ हिस्सा हिंदी में दिया.

6 और 7 दिसंबर को खुले अधिवेशन में राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं पर एक दर्जन से अधिक प्रस्ताव स्वीकृत किये गये. सभी प्रस्ताव विदेशी प्रतिनिधियों द्वारा प्रस्तुत किये गये. श्रीमती इंदिरा गांधी को पूर्ण समर्थन देने के संबंध में अमेरिका की विश्व शांति कांग्रेस के प्रतिनिधि **श्री मार्क सोलमन** ने प्रस्ताव प्रस्तुत किया. इस प्रस्ताव में इस बात पर विशेष रूप से ज़ोर दिया गया कि प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी

पोलैंड के भूतपूर्व प्रधानमंत्री जोसेफ सिरानकेवीज

को सत्ता से हटाने के लिए फ़ाशी शक्तियों ने उन्हें अपने हमले का निशाना बनाया क्यों कि प्रधानमंत्री प्रजातंत्र, समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता में विश्वास करती है. पनामा की स्थिति के बारे में प्रस्ताव कूबा की **श्रीमती सारा पासक्विल** ने रखा. स्पेन के सिलसिले में एक प्रस्ताव फ्रांस के प्रतिनिधि ने प्रस्तुत किया. अंकोला की प्रतिनिधि **श्रीमती मेरिया हालर** ने अपने देश की राजनैतिक स्थिति के संबंध में एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया. कोरिया, दक्षिण अफ़्रीका, वीएतनाम, कूबा, चीले आदि के बारे में भी प्रस्ताव स्वीकृत किये गये.

सम्मेलन की समाप्ति से पहले सर्वसम्मति से एक प्रस्ताव पारित किया गया, जिस में विश्व के विभिन्न भागों में मुक्ति आंदोलनों का समर्थन किया गया. इस में बताया गया है कि कई देशों में साम्राज्यवादी हितों को आगे बढ़ाने के लिए राजनीति पर फाशी तत्त्व हावी हैं. इस संदर्भ में अंगोला में नस्लवादी दक्षिण अफ़्रीकी सरकार के सैनिक हस्तक्षेप का हवाला दिया गया. बाद में एक विशाल जनसभा में विभिन्न प्रतिनिधियों ने श्रीमती गांधी के नेतृत्व और उन की प्रगतिशील नीतियों में आस्था व्यक्त की. अमेरिकी प्रतिनिधि **मार्क सोलमन** ने आशा व्यक्त की कि सभी प्रगतिशील शक्तियाँ श्रीमती गांधी के पीछे खड़ी हो जायेंगी. सोवियत संघ के प्रतिनिधि **अलेक्ज़ांडर कुसमीन** ने बताया कि पटना का यह फ़ाशीवाद विरोधी सम्मेलन इस माने में अविस्मरणीय रहेगा कि इस ने फ़ाशी विरोधी शक्तियों को एक कर दिया और श्रीमती गांधी के नेतृत्व में चलाये जाने वाले सामाजिक कार्यक्रम में भारतीय जनता की आस्था को मज़बूत किया. अंगोला की श्रीमती मारिया सेहेलर ने भारत का धन्यवाद दिया क्योंकि भारत की ही प्रेरणा से अंगोला को आज़ादी का रास्ता मिला.

प्रदेश

तमिषनाडु

विलय का वातावरण

यह स्पष्ट है कि राज्य संगठन कांग्रेस में विलयन का समर्थन करने वाले बहुमत में हैं. इन लोगों ने 2 दिसंबर को दल की एक आम बैठक बुलायी और उसमें संगठन कांग्रेस के विलयन का विरोध करने वाले प्रादेशिक अध्यक्ष श्री रामचंद्रन को बर्खास्त कर दिया और एकमत से यह प्रस्ताव पास किया कि स्व. श्री कामराज की इच्छा के अनुसार विलयन की संभावनाओं को विस्तृत करने की परिस्थितियाँ तैयार की जानी चाहिए. प्रस्ताव में कहा गया कि आम सभा कार्यकारिणी को यह अधिकार देती है कि वह स्व. श्री कामराज की इच्छा के अनुसार विलयन के लिए आवश्यक कदम उठाये. इस के लिए पहले भी प्रस्ताव पास किया जा चुका है. ऐसा इस लिए किया गया था ताकि राष्ट्र विरोधी शक्तियों को पराजित किया जा सके और जैसा कि स्व. श्री कामराज ने अपने वरिष्ठ नेताओं के सम्मुख अपनी इच्छा व्यक्त की थी और यह इस रूप में होनी चाहिए जिस से हमारा संगठनात्मक ढाँचा और अनुशासन प्रभावित न हो. पिछले प्रस्ताव में स्पष्टतया यह बात कही गयी थी कि संगठन कांग्रेस द्रमुक या अन्ना द्रमुक से या उस से गँठजोड़ करने वाले किसी भी पार्टी से संबंध नहीं रखेगी. यह पूछने पर कि क्या यह स्थिति विलयन के मार्ग में बाधक नहीं होगी विलय समर्थक वर्ग के एक प्रवक्ता ने कहा कि ऐसी कोई कठिनाई उत्पन्न होने की आशंका नहीं होनी चाहिए. बैठक की अध्यक्षता उपाध्यक्ष श्री पी. महादेवन पिल्लै ने की थी और उन्हें ही कार्यकारी अध्यक्ष बना कर यह अधिकार दिया गया कि वह नयी कार्यकारिणी का गठन करें. ऐसा समझा जाता है कि नयी कार्यकारिणी में कुछ नये लोगों को सम्मिलित किया जायेगा. लेकिन वे 16 सदस्य भी उस में रहेंगे जो पहले की कार्यकारिणी में थे. महासचिव के रूप में श्री नेदुमारन और श्री तिनदेवानम राममूर्त्ति बदस्तूर बने रहेंगे.

प्रस्ताव में श्री रामचंद्रन पर यह आरोप भी लगाया गया था कि वह राज्य स्तर पर स्व. श्री कामराज की इच्छा के विरुद्ध द्रविड़ मुन्नेत्र कषगम से एक गंदा समझौता करने का षडयंत्र कर रहे थे. श्री कामराज सांप्रदायिक और प्रतिक्रियावादी शक्तियों के सदैव विरोधी थे. लेकिन श्री रामचंद्रन राष्ट्रीय स्तर पर भी ऐसी शक्तियों के साथ गँठजोड़ करने की दिशा में सक्रिय थे. दल को अधिक विघटन से रोकने के लिए ही श्री रामचंद्रन को उन के पद से हटाया गया. प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए श्री कक्कन ने कहा था कि 'श्री कामराज की सदैव यही इच्छा थी कि राष्ट्रवादी और देशभक्त शक्तियों में एकता हो और विभाजनवादी तथा क्षेत्रीय दलों का विरोध किया जाये. श्री कामराज ऐसे अवसर की तलाश में थे जब वह खुले ढंग से श्रीमती गांधी से इस विषय पर बातचीत कर सकें. दुर्भाग्यवश उन के असमय निधन के कारण वह अवसर उन्हें नहीं मिला. श्री रामचंद्रन ने दल के महासचिव को बर्खास्त करने तथा कार्यकारिणी में नये सदस्यों को मनोनीत करने का जो काम किया वह पूरी तौर पर ग़ैरलोकतांत्रिक था.' कार्यालयीय गिनती के अनुसार प्रदेश कांग्रेस के 501 सदस्यों में से 384 सभा में उपस्थित थे. 13 स्थान सदस्यों के निधन या उन के त्यागपत्र के कारण रिक्त हैं. प्रादेशिक कांग्रेस के ये सदस्य राज्य के सभी 19 जिलों से आये थे. इस से यह अनुमान तो पुष्ट हो ही जाता है कि सभा में राज्य का पर्याप्त प्रतिनिधित्व था. इसने विलय विरोधी लोगों का यह आरोप निर्मूल सिद्ध कर दिया कि बैठक ग़ैरक़ानूनी या असंवैधानिक थी. यह तथ्य भी महत्त्वपूर्ण है कि प्रदेश कांग्रेस के सदस्यों के अतिरिक्त राज्य के 19 जिला कांग्रेस में से 12 के अध्यक्ष बैठक में शामिल हुए थे. श्री रामचन्द्रन द्वारा गठित तदर्थ समिति में श्री पी. कक्कन, श्री बालरमण, श्री सेतुरामलिंगम और श्री विजय रघुनाथ थोंडमान के भी नाम थे. लेकिन इन लोगों ने भी विलय का समर्थन करने वाली उस बैठक में हिस्सा लिया. इस के अलावा विधानसभा और विधानपरिषद् के 7 सदस्यों ने लिखित रूप में इस बैठक के प्रति अपनी स्वीकृति ज़ाहिर की थी.

4 दिसंबर को मदुरै से यह समाचार मिला कि प्रादेशिक संगठन कांग्रेस की एक राज्य स्तर की सभा शीघ्र ही आयोजित की जायेगी और उस में दोनों कांग्रेसों के विलयन का अंतिम निर्णय किया जायेगा. मदुरै जिला ग्रामीण संगठन के अध्यक्ष श्री नेदुमार और प्रादेशिक कांग्रेस के एक महासचिव ने पत्रकारों से बातचीत करते हुए कहा कि राज्यव्यापी बैठक के पहले जिलों में बैठकें आयोजित की जायेंगी. नवनिर्वाचित अध्यक्ष श्री महादेवन पिल्लै की अध्यक्षता में 10 सदस्यों की एक विशेष समिति गठित होगी और वह लोगों को तिरूचि बैठक के उद्देश्य से परिचित करायेगी. समिति में श्री के. राजाराम नायडु, श्री चिल्ला पांडेयन, श्री नेदुमारन, श्री तिनदेवानम राममूर्त्ति, श्री पी. कक्कन, श्री करुपैया मूपनार, श्री कुंदननै रामलिंगम और श्री आर. एस. अरुमुगम होंगे. श्री नेदुमारन ने कहा कि विलय का समर्थन करने वालों ने उस आम सभा में ही अपना बहुमत सिद्ध कर दिया. अब उस के समर्थकों का अगला कदम यह होगा कि वे कार्यकर्त्ताओं को वास्तविक स्थिति से परिचित करा कर उन्हें यह विश्वास दिलायें कि दल की प्रतिष्ठा के लिए अब तक जो क़दम उठाये गये हैं वे ठीक थे, ताकि अंतिम निर्णय के समर्थन के लिए उन का सहयोग प्राप्त किया जा सके.
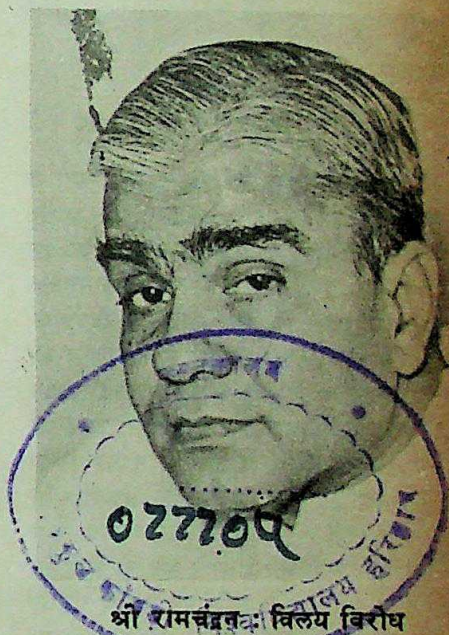
श्री रामचंद्रन: विलय विरोध

पत्रकारों द्वारा यह पूछे जाने पर कि तमिषनाडु संगठन कांग्रेस की संपत्ति का फ़ैसला किस रूप में होगा उन्होंने कहा कि तिरूचि की

श्री शिवाजी गणेशन, श्री नेदुमारन और श्री मूप्पनार: विलय समर्थन

बैठक में ही श्री रामचंद्रन को अध्यक्ष पद से बर्खास्त किया गया और उन से कहा गया कि वह प्रदेश कांग्रेस की संपत्ति का हस्तांतरण नये अध्यक्ष श्री महादेवन को कर दें. यदि श्री रामचंद्रन ऐसा नहीं करते तो उन के विरुद्ध कानूनी कारवाई की जाएगी. हमारा अगला कदम श्री रामचंद्रन को प्रदेश कार्यकारिणी की सदस्यता से हटाना है. लेकिन यह निर्णय तब अमल में लाया जायेगा जब वह कोई दल विरोधी कार्य करते हुए पाये जायेंगे. लेकिन अब क्योंकि उन्होंने उस प्रदेश कार्यकारिणी को स्वयं ही भंग कर दिया है वह उस के सदस्य रह ही नहीं जाते. विलयन का फ़ैसला राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रख कर किया गया है. 1969 में कांग्रेस में जो विघटन हुआ था उस से श्री कामराज समेत कांग्रेस के अन्य नेताओं को भी खुशी नहीं हुई थी.

ओडिसा

भूमिसुधार विधेयक

राज्य विधानसभा के शरद्‌कालीन सत्र के दौरान 12 बैठकें हुईं और 39.23 करोड़ रुपये के पूरक बजट के अतिरिक्त 12 विधेयक पास किये गये. इन विधेयकों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण था **भूमिसुधार** (द्वितीय संशोधन) **विधेयक**, जिस के माध्यम से कृषि भूमि के स्वामित्व का उत्तराधिकारी होने का अधिकार काश्तकार को दिया गया है. इस के अलावा ऐसी व्यवस्था भी की गयी है ताकि किसान भूमि पर बिना पूरा मुआवज़ा दिये कब्ज़ा ले सकें. अच्छी भूमि के लिए मुआवज़े की राशि दो हज़ार रुपये प्रति एकड़ से घटा कर 800 रुपये कर दी गयी है. जो किसान अदालत में भूमि पर कब्ज़ा संबंधी अपना मुक़द्दमा हार चुके हैं उन्हें पुनः आवेदन करने को एक और मौक़ा एक वर्ष के लिए दिया गया है. इस विधेयक द्वारा भूमि के वे सभी हस्ततांतरण ग़ैरक़ानूनी घोषित कर दिये गये हैं जो 26 सितंबर, 1970 और 2 अक्तूबर, 1973 के बीच किये गये. भूस्वामियों से कहा गया है कि वे नयी व्यवस्था के अनुसार एक महीने के भीतर अतिरिक्त भूमि की जानकारी सरकार को दे दें. राजस्व अधिकारियों को निर्देश दिया गया है कि वे अतिरिक्त भूमि पर कब्ज़ा कर लें और यदि भूमि पर फ़सल खड़ी हो तो उस के कटने के बाद 15 दिनों के भीतर कब्ज़ा ले लें. यदि भूस्वामी अतिरिक्त भूमि की जानकारी नहीं देंगे तो एक हज़ार रुपया जुर्माना या 6 महीने की सज़ा या दोनों के भागीदार होंगे. जिस भूमि का प्रबंध 26 सितंबर,' 70 के पहले अदालत द्वारा किया जा रहा है उस पर विधेयक लागू नहीं होगा. जिन मामलों का निपटारा राजस्व निरीक्षक के स्तर पर विचारविमर्श के बाद होता था अब स्थानीय नागरिकों की समितियों द्वारा होगा, ताकि भूमिसुधार क़ानून को शीघ्र लागू किया जा सके. राजस्वमंत्री **श्री बल्लभ पाणिग्रही** ने विधेयक पर हुई चर्चा का उत्तर देते हुए कह कि इस ऐतिहासिक और क्रांतिकारी विधेयक के कारण प्रधानमंत्री के 20 सूत्री आर्थिक कार्यक्रमों को शीघ्रता से लागू करने और समाज के कमज़ोर वर्गों की आर्थिक दशा सुधारने में पर्याप्त मदद मिलेगी. इस विधेयक को पास करने के लिए सदन की कार्रवाई एक दिन के लिए और बढ़ा दी गयी थी.

ग़रीब किसानों को महाजनी शिकंजे से मुक्ति दिलाने के लिए पिछले दिनों महाजनी क़ानून में संशोधन करते हुए एक अध्यादेश जारी किया गया था. अब उस का स्थान विधेयक ने ले लिया है. इस के अनुसार अब महाजनी कारोबार के लिए पंजीयन कराना होगा. महाजन बंधक वस्तु पर 9 प्रतिशत और बिना बंधक के ऋण पर 12 प्रतिशत से अधिक दर पर ब्याज नहीं ले सकेंगे. बंधक वस्तु 7 वर्ष के बाद अनिवार्यतः उस के मालिक को लौटाना होगा. यदि ऋणी व्यक्ति महाजन को ब्याज के रूप में मूल धन से दुगनी राशि दे चुका होगा तो ऋण अदा माना जायेगा. महाजन के हिसाब किताब की जाँच उपखंडीय अधिकारी या तहसीलदार द्वारा की जा सकेगी. ढाई एकड़ से कम भूमि वाले किसान या श्रमिक पर दो वर्ष के लिए ऋण वसूली के लिए क़ानूनी कारवाई नहीं की जा सकेगी. क़ानून का उल्लंघन करने वाले महाजन के लिए एक वर्ष की सज़ा या एक हज़ार रुपये का अर्थ दंड अथवा दोनों की व्यवस्था की गयी है.

इस अंतरराष्ट्रीय महिला वर्ष में पुलिस ने 75 स्त्रियों को वेश्यावृत्ति के चंगुल से अब मुक्ति दिलायी. इन में कुछ स्त्रियाँ ऐसी भी थीं जिन्हें दहेज के अभाव में या तो उन के स्वामियों ने पीड़ित कर के घर छोड़ने के लिए मजबूर कर दिया था या वे थीं जो दहेज के अभाव में ब्याही नहीं जा सकीं. दहेज के इस अभिशाप को दूर करने के उद्देश्य से **दहेज निरोधक कानून** में राज्य विधानसभा ने संशोधन किया. इस के अनुसार दहेज कम मिलने या न मिलने के आधार पर यदि कोई पुरुष अपनी पत्नी को उस के स्त्री अधिकारों से वंचित करता है तो उसे एक वर्ष तक का कारावास अथवा दस हज़ार रुपये जुर्माना किया जा सकेगा. इस के अलावा पति की आर्थिक स्थिति को देखते हुए अदालत पत्नी के लिए 500 रुपये तक की निश्चित राशि निर्धारित कर सकती है. पति-पत्नी में समझौता होने पर मामला समाप्त हो सकता है, लेकिन पति द्वारा समझौता भंग होने पर पुनः कार्रवाई शुरू हो सकती है.

राज्य विधानसभा ने पुलिस क़ानून में भी एक संशोधन पारित किया है. इस के अनुसार प्रदर्शन, हड़ताल और उपद्रव आदि के कारण अगर सरकारी या ग़ैरसरकारी संपत्ति नष्ट की जाती है तो उस के मुआवज़े के रूप में स्थानीय लोगों से सामूहिक दंड वसूल किया जायेगा. विधेयक के उद्देश्य में कहा गया है कि सरकार हर समय प्रत्येक क्षेत्र में सुरक्षा प्रदान नहीं कर सकती, अतः स्थानीय लोगों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपने-अपने क्षेत्र की सुरक्षा का ध्यान रखें, ताकि उपद्रवी तत्त्व किसी भी संपत्ति को हानि न पहुँचा सकें. जिलाधीश और राजस्वमंडल के आयुक्त को सामूहिक जुर्माना निर्धारित करने का अधिकार दिया गया है.

कश्मीर

सहकारिता की दिशा में

इन दिनों राज्य में सहकारिता आंदोलन को सही दिशा देने के प्रयत्न बहुत तेज़ी के साथ किये जा रहे हैं. हालाँकि सहकारिता का आंदोलन इस राज्य में काफ़ी पुराना है लेकिन उस के बावजूद उसे यहाँ पर वह प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हो सकी जो देश के अन्य भागों में मिल चुकी है. वैसे सहकारिता समितियों से संबंधित पहला क़ानून इस राज्य में 1915 में लागू हो गया था.

मुख्यमंत्री शेख अब्दुल्लाह सहकारिता समितियों के कार्यकलापों को अधिक गतिशील रूप देने की आवश्यकता का अनुभव करते हैं. इसी बात को ध्यान में रखते हुए उन्होंने इस बात पर बल दिया कि इस आंदोलन से जुड़े बँधे निहित स्वार्थ के लोगों को अलग किया जाना चाहिए, क्यों कि निस्वार्थ भाव से समर्पण के साथ इस दिशा में जो काम किया जायेगा वही लोकप्रिय हो सकेगा. शेख साहेब का कहना था कि सहकारिता आंदोलन को जनता के सामाजिक-आर्थिक विकास की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी है. राज्य के सहकारितामंत्री मिर्ज़ा अफ़ज़ल बेग़ ने बहुत स्पष्ट शब्दों में कहा शेख साहेब की सरकार इस आंदोलन को एक ठोस आधार पर पुनर्गठित करना और उस में एक नयी जान डालना चाहती है.

इस वक़्त राज्य में लगभग 1300 सहकारी ईकाइयाँ हैं, जिन में लगभग 100 विपणन समितियाँ भी शामिल हैं. लेकिन इस में से अधिसंख्य की स्थिति अच्छी नहीं है. कुछ विश्वस्त सूत्रों से यह पता चला है कि ऐसी 215 समितियों में जिन के आँकड़े तैयार कर लिये गये हैं सन् '60 के बाद से ले कर अब तक के वर्षों में 38 लाख रुपये का घोटाला है. सहकारिता विभाग ने वसूली के लिए 300 व्यक्तियों की नियुक्ति कर रखी है, लेकिन वसूली केवल 6 लाख की हो सकी है. यह तथ्य इस बात का संकेत देता है कि प्रशासन से ले कर आंदोलन तक में ऐसे व्यक्ति सक्रिय हैं जो इस महत्त्वपूर्ण आंदोलन के विकास में बाधा पहुँचा रहे हैं. इन्हीं की वजह से प्रधानमंत्री के आर्थिक कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में भी बाधाएँ उपस्थित हो रही हैं. सहकारिता की रक़म

अदा न करने वालों में राजनीतिज्ञों से ले कर वरिष्ठ अधिकारियों तक के नाम हैं. उन में से कुछ तो भारतीय प्रशासनिक सेवा के लोग हैं. ऐसे कुछ लोग जिन के ज़िम्मे काफ़ी बड़ी राशि बाकी है या तो दिवंगत हो गये हैं या उन के पास ऐसी कोई संपत्ति नहीं है जिस से अदालतों के ज़रिये बकाया राशि की वसूली की जा सके.

इस आंदोलन को दोषमुक्त बनाने के उद्देश्य से राज्य सरकार ने प्रारंभिक समितियों के चुनाव की योजना बनायी है. उम्मीद है कि अगले दो महीनों में ये चुनाव संपन्न हो जायेंगे. सहकारिता के कुछ ऐसे बड़े संस्थानों को सीधे-सीधे प्रशासकों के अधीन कर दिया गया है जो अपनी ईमानदारी और सहकारिता आंदोलन के प्रति अपनी आस्था के लिए जाने जाते हैं. सहकारिता संस्थानों के कार्य को गति देने तथा उस के ढाँचे को सशक्त बनाने के उद्देश्य से केंद्र से एक विशेषज्ञ की सेवाओं की भी माँग की गयी है.

शीर्ष स्तर की (एपेक्स लेवल) सब से महत्त्वपूर्ण संस्था है **जम्मू और कश्मीर सहकारिता आपूर्ति और विपणन महासंघ.** इस का प्रबंध सरकार द्वारा नियुक्त एक व्यवस्था अधिकरण के अंतर्गत ला दिया गया है. जून, '75 तक इस महासंघ का नियंत्रण ऐसे निदेशकमंडल के हाथों में था जिस में अधिकतर लोग राजनीतिज्ञ थे. नवगठित व्यवस्था में अधिकरण में 4 सदस्य हैं, जिस में सिर्फ़ एक यानी विधायक **श्री ओम प्रकाश सराफ़** का संबंध सार्वजनिक जीवन से है. श्री सराफ़ अध्यक्ष हैं. बाकी 3 सदस्य वरिष्ठ सरकारी अधिकारी.

इस महासंघ का गठन 1957-58 में मुख्यत: इस उद्देश्य से किया गया था कि वह विभिन्न समितियों तथा अन्य अधिकरणों को वितरित करने के लिए रासायनिक खाद का आयात करे. इस महासंघ के कार्यकलापों का काफ़ी बड़ा विस्तार दूसरे क्षेत्रों में भी हुआ है. लेकिन आयात और वितरण की इस की व्यवस्था की प्रायः आलोचना की गयी है. राज्य के महाअंकेक्षक ने हिसाब-किताब की जाँच के दौरान पायी गयी गड़बड़ियों की अपनी रपट में बहुत तीखी आलोचना की है.

श्री सराफ़ ने इस मामले को बहुत प्रभावशाली ढंग से उठाया है और राज्य सरकार के नेताओं से इस बात की आवश्यकता पर पैरवी की है कि लेवी चीनी का जो काम इस के हाथ से ले लिया गया था उसे पुनः करने दिया जाये. लेकिन अब यह निर्णय केवल राज्य सरकार के हाथ में नहीं है; इस का निर्णय केंद्र सरकार की अनुमति से ही हो सकता है. अनुमान किया जाता है कि श्री सराफ़ और राज्य सरकार के नेता केंद्र से इस संबंध में बातचीत चला रहे हैं. महासंघ और दूसरे सहकारी संस्थानों की वित्तीय स्थिति को सुधारने के लिए श्री सराफ़ ने कई सुझाव दिये हैं, उन में से एक है उर्वरकों के वितरण के सिलसिले में कमीशन की दर में वृद्धि. अपनी गतिविधियों का विस्तार करने के लिए लगभग 1 करोड़ रुपये की लागत की कई प्रयोजनाएँ भी महासंघ ने प्रस्तुत की हैं. इस वक़्त महासंघ से 650 संस्थान संबद्ध हैं, जिन में 150 विपणन तथा दूसरी महत्त्वपूर्ण सहकारी समितियां भी शामिल हैं. राज्य सरकार भी इस की एक सदस्य है और उसने सहकारिता में हिस्सा पूंजी के रूप में काफ़ी बड़ी रक़म लगायी है.

गुजरात

नगर निगमों के चुनाव

नगर निगम और नगरपालिका के चुनावों के जो परिणाम सामने आये उन के आधार पर एक तरफ़ जनता मोर्चे ने अपनी लोकप्रियता का दावा किया और दूसरी तरफ़ कांग्रेस के नये नेतृत्त्व को यह कहने का अवसर मिला कि विधानसभा के पिछले चुनाव के मुक़ाबले में कई स्थानों पर कांग्रेस की स्थिति सुधर गयी है. चुनाव परिणामों से एक बात और स्पष्ट हुई कि शहरी क्षेत्रों में कांग्रेस के प्रति अभी भी मतदाता में आकर्षण की कमी है. इस राज्य में चार नगर निगम हैं, जिन में से तीन में जनता मोर्चे को बहुमत मिला. अहमदाबाद नगर निगम का चुनाव 28 दिसंबर को होने वाला है, जो दोनों ही पक्षों के लिए एक चुनौती जैसा है. राजकोट के बाद सूरत और बड़ौदा नगर निगम के चुनाव परिणाम कई दृष्टि से आश्चर्यजनक रहे. प्रदेश कांग्रेस के नये अध्यक्ष श्री हितेंद्र देसाई और जनता मोर्चे के जन्मदाता मोरारजी भाई देसाई दोनों सूरत के ही हैं इस लिए सब की निगाह इस क्षेत्र पर थी. यहाँ के चुनाव में कांग्रेस को आशा के अनुकूल सफलता नहीं मिली, फिर भी एक बात स्पष्ट हो गयी कि अल्पसंख्यक हरिजन, आदिवासी और श्रमजीवी वर्ग में कांग्रेस के प्रति विश्वास न केवल बरक़रार है बल्कि बढ़ा है. सूरत के शाहपुर, सैयदपुरा और कातरगाँव आदि क्षेत्रों में कांग्रेस को जो भारी समर्थन मिला वह इस तथ्य का प्रमाण है. मुस्लिम बहुल मतदाता क्षेत्र नानपारा की तीनों सीटें कांग्रेस को मिलीं.
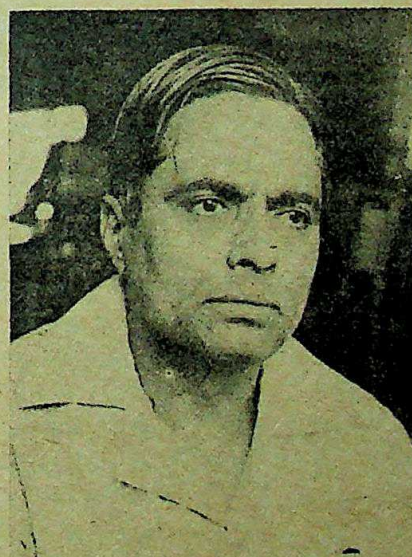
कांग्रेस के एक विजयी उम्मीदवार और बड़ौदा के भूतपूर्व नगरपति श्री ललितचंद्र पटेल

सूरत नगर निगम के 65 स्थानों में से 42 पर जनता मोर्चे ने सफलता प्राप्त की और कांग्रेस केवल 25 स्थानों पर विजयी हुई. जनता मोर्चे के सफल प्रत्याशियों में 30 संगठन कांग्रेस के हैं. लेकिन मज़ेदार तथ्य यह है कि शहर संगठन कांग्रेस के अध्यक्ष श्री जयंती लाल रेशमवाला और सचिव श्री बाबूभाई शेठना पराजित हो गये.

बड़ौदा नगर निगम में भी इसी तरह की स्थिति सामने आयी. जनता मोर्चे के शहर संयोजक श्री चंद्रकांत मेहता, शहर कांग्रेस के अध्यक्ष श्री चौकशी और सचिव श्री अब्दुल रहमान पराजित हो गये. एक तरफ़ तो संयोजक पराजित हुए लेकिन दूसरी तरफ़ जनता मोर्चे के 46 प्रत्याशियों के विजयी होने से मोर्चे को बहुमत मिल गया.

अहमदाबाद में अपना-अपना बहुमत पाने के लिए पूरी शक्ति लगायी जा रही है. 105 स्थानों में से 102 पर कांग्रेस और जनता मोर्चे ने अपने उम्मीदवार खड़े किये हैं. दोनों की ही सूची में युवकों को अधिक अवसर दिये गये हैं. नवनिर्माण समिति के कई युवकों के कांग्रेस में शामिल हो जाने और औद्योगिक क्षेत्र में श्रमिकों का समर्थन मिलने की कांग्रेस को काफ़ी आशा है. जनता मोर्चा अपने थोड़े से कार्यकाल की उपलब्धियों का ब्यौरा दे कर समर्थन प्राप्त करने की कोशिश कर रहा है.

नगर निगम के चुनाव परिणामों पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए श्री हितेंद्र देसाई ने कहा कि यह प्रतिक्रियावादियों से एक लंबी लड़ाई है. फिर भी पाँच महीने पहले हुए विधानसभा के चुनावों की तुलना में कांग्रेस की स्थिति सुधरी है. यह इस बात का प्रमाण है कि जनता मोर्चे के प्रति लोगों का विश्वास कम होने लगा है. इसी तरह पंचायतों के चुनाव के लिए श्री देसाई ने कांग्रेस का 20 सूत्रीय घोषणापत्र प्रसारित कर दिया है. इस में ग्रामीण और पिछड़े वर्ग के उत्थान के लिए कांग्रेस के संकल्प को दोहराया गया है. घोषणापत्र के अनुसार हरिजन, आदिवासियों के हित संरक्षण, पाँच हज़ार की आबादी वाले क्षेत्र में औद्योगिक बस्ती बनाने और मद्यनिषेध, परिवार नियोजन तथा अछूतोद्धार की नीति को पूरी शक्ति से क्रियान्वित करने का संकल्प भी किया गया है.

दस्तकारी : मिट्टी, रंग, ख़ून और सपने

बट्टौबाई : गुड़िया बुलाती हैं

नवंबर के अंतिम सप्ताह में राजधानी के रवींद्र भवन में अंतरराष्ट्रीय महिला वर्ष के समापन के रूप में **'भारतीय स्त्री और दस्तकारी'** नाम से एक राष्ट्रीय प्रदर्शनी का आयोजन **भारतीय हस्तकला संस्था** के तत्वावधान में किया गया. यह प्रदर्शनी बहुत साफ़ साफ़ यह दिखाती थी कि इस विशाल देश के कोने कोने में फैली हुई दस्तकारी एक दूसरे के लिए आज कितनी अजनबी होती जा रही है. राजधानी की प्रादेशिक कला दूकानों (इंपोरियम) में जा कर हमारा सभ्रांतवर्ग, विदेशी अनुकरण पर फ़ैशन के रूप में जो अपनाता है उस के पीछे कौन लोग हैं और उस के मूल स्रोत क्या हैं ? प्रदर्शनी में अपनी दस्तकारी का प्रदर्शन करने वाली स्त्रियाँ लगती थीं जैसे किसी अजायबघर में बैठी हों. अक्सर सराहना का भाव करुणा के भाव में बदलता था फिर गर्व में दमक कर तिरोहित हो जाता था.

मधुबनी : प्रवेश द्वार से भीतर आते ही दर्शन होते थे. सिंहवाहिनी के. जहाँ से मुड़ते ही उसी क्रम में भाँति भाँति की मधुबनी कला कृतियाँ प्रदर्शित की गयी थीं. काली स्याही की दावात में बार बार कलम डुबो कर एक दुबली पतली काया, उभरी नसों वाले दुबले सधे हाथों से सामने फैले कागज पर उन्हीं सिंहवाहिनी के चित्र उकेर रही थी. दृष्टि सामने टंगे अंग्रेजी के परिचय पट्ट पर गयी तो पढ़ कर नाम समझ न आया, पूछा, उत्तर मिला ऊखा देवी. मौलिकता और शब्द शुचिता का द्योतक (ख) वास्त में मूर्धन्य 'ष' था. जीवन की सांध्यवेला में श्रीमती ऊषा देवी के हाथों उभरती आकृतियों को सहज में ही समझ लेना आसान न था. कहीं कोई पेंसिल की आधार रेखा नहीं, बस काले रंग की स्याही डूबी कलम चलती जा रही थी अपनी निर्दिष्ट चित्रावली पर. दत्तचित्र सिकुड़ी बैठी चित्रकार को केवल एक रंग का ही प्रयोग करते देख जिज्ञासा हुई तो पूछा : 'आप के इन सभी अन्य चित्रों में तो लाल, नीले और पीले रंग भी लगे हैं.' वह आशय समझ गयी थी बोली : 'ईसब रंग डेरा पर छ, काल रंग भरइ छ' (यह सभी रंग डेरे पर हैं अगले दिन रंग भरे जायेंगे.)

दस वर्ष की अवस्था में ये रंग, मिट्टी के कच्चे घरों की दीवारों पर तीज, त्योहार शादी-मंडप, चौक-अल्पना और कोहबर की प्रेरणा से उभरे थे फिर तो ज्यों ज्यों बढ़ावा मिलता गया हाथ सधते गये. तब प्रशंसा ही उपलब्धि थी!

सिक्की : विहार की मधुबनी चित्रकला से हट कर गुहरिला की **बिंदेश्वरी देवी** की सिक्की सुनहरीला के चटख सुआपंखी और लाल रंगों की ओर दृष्टि फिसली, जहाँ 'टुगुल मेट' (टेबुल मैट) से लेकर अब दीवार की शोभा बढ़ाने वाले नमूने, वृक्ष, फूल, पत्ती, गुड़ियाँ, हाथी, घोड़ा, मोनिया, पौटी चंगेली और अष्टभुजा की मूर्ति से ले कर आधुनिक सजावट की तमाम वस्तुएँ जैसे कार डॉल, (मोटर की लटकन गुड़िया) चूड़ियाँ और गले के हार भी उन्होंने बना कर सजा रखे थे. उन्होंने बताया, 'सिक्की घास पहले के जमाने में तो थोड़े से अनाज के बदले में ढेरों मिलती थी मगर अब बड़ी महँगी हो गयी है. पहले सिक्की

ऊखा देवी : मधुबनी रंग

और मूँज से ही चीजें बनती थीं अब पतले तार पर रंगीन सिक्की की कसीदाकारी से फूलपत्ती बनाने का काम लेती हूँ. इस में बस थोड़े से रंग लोहे की टेकुरी और सिक्की की जरूरत होती है बाकी तो अपनी मेहनत और मन.' 'तो क्या आपने इसे केवल मन होने से ही करना शुरू किया ?' 'जी नहीं, पहले तो चलन था कि क्वांरी लड़की के हाथों बनी चीजें कसीदा , कढ़ाई, सिक्की आदि शादी के समय झाँपी (दहेज़) के बक्से सजाने के लिए बहुत जरूरी होता था इसी से लड़की का गुन, ढंग ससुराल में जाना जाता था. तब पढ़ाई का इतना चलन नहीं था. मगर मेरे लिए तो अब यही गुण रोज़ी है. असमय ही में विधवा हो गयी. फिर मैं मायके ही लौट आई और अब तो सब चीजें जो अपने लिए बनाना सीखा था सब के लिए बनाती हूँ.'

शीशे का काम: पार्श्व में ही सजे थे गुजरात के **हिर्बी बाई** के हाथों बने कपड़े पर शीशे के काम के 'पोशाक', कंधे पर लटकाने वाले थैले, जिस की क़ीमत हज़ार पाँच सौ तक की थी. यह काम शीशे और रेशम के सहारे साटन से ले कर मोटे कपड़े तक पर होता आया है. माँ से बेटी ने सीखा फिर उस से उस की और उस की बेटियों ने. इसी तरह वहाँ की बंधेज चुनरी का भी जवाब नहीं जिसे गुजरात क्या राजस्थान क्या, मदुरई क्या लगभग देश के हर भाग में विवाह के अवसर पर कन्यायें और सुहागिनें धारणा करती हैं. वह सुलक्षण चुनरी ही है. जिस का हुनर धागों से गाँठ बाँधते हुए चुनरी पर उभरता है. बाद में ये धागे तोड़े नहीं खोल दिये जाते हैं.

हथकरघाः और हथकरघों के ताने बाने में तो त्रिपुरा, असम, नगालैंड और नेफा की 'मेखला' और 'रिहा' वहाँ के स्त्री पुरुषों का पहनावा ही है. खटाखट हथकरघे पर चलते हाथ औ कबीले की नगा पुत्री कुमारी अतुला के

पश्चिम बंगाल का बजरा

थे. पास ही बैठी उस की माँ श्रीमती सुबोंग [illegible] रंगीन धागे सुलझा रही थीं. अतुला ने बताया कि यह काम उन्हें उन की माँ ने सिखाया और उन्हें उन की माँ ने. [illegible] आभूषण की प्रशंसा पा कर दुगुने उत्साह से उन्होंने बताया 'यह भी मुझे माँ से मिला है.' इसी तरह माँ के गले का आभूषण माँ को उस की माँ से मिला. यानी यह कला और अलंकार दोनों ही माँ से बेटी को पीढ़ी दर पीढ़ी मिलता जाता है.

श्रीमती सुबोंग ओ [illegible] ने खुलासा किया कि 'हम काम चलाने भर के कपड़े अपने घरों में खुद बनाते हैं.' अपने सिर का आभूषण पहनते हुए वह एक दम खिलखिला पड़ीं. जब उन से सवाल किया गया कि 'आप तो हिंदी भी जानती

अतुला : मां ने सिखाया

हैं.' उन का उत्तर था: 'मैं केवल अपने कबीले की ही भाषा जानती हूँ मगर अच्छी तरह अपनी बात करने के लिए मैंने अपने कबीले के अगुआ से, जो हिंदी जानते हैं, सुन सुन कर सवाल जवाब याद कर लिये. तभी तो हम आपस में बातचीत कर सके.'

मणिपुरी नृत्य की तरह थिरकती 'मेखला'-माला के पास ही के करघे पर तन्मय थीं **श्रीमती गंगालगंगमी** और **थंगम भानु**. एक वस्त्र बनाती जा रही थी और दूसरी पानी में उगने वाली एक ख़ास तरह की घास से पावपोश (पाँवदान). शालनुमा बुने गये ये वस्त्र स्त्री

श्रीमती सुबोंग : हिंदी की मेखला

और पुरुष दोनों के पहनने-ओढ़ने के काम आता है परंतु काली और सफेद पट्टेदार मेखला क्वाँरी कन्यायें पहनती हैं और रंग बिरंगी व्याहता स्त्रियाँ. कभी कभी विशेष अवसरों और तीज त्योहारों पर भी यदाकदा इन रंगीन मेखलाओं के लिए लड़कियाँ मचल जाती हैं और तब उन्हें पहनने दिया जाता है. इन मेखलाओं का प्रकार भेद सप्रयोजन है केवल रुचि विशेष ही इस का कारण नहीं. वस्त्रों के अलावा पानी-घास से चटाई और पाँवपोश बनाने की करघा भी उतने ही महत्त्व का है जिस में एक नाप की घास के ताने बाने से चीज़ें तैयार होती हैं. यह घास हाथी घास की ही तरह की बड़ी ऊँची उगने वाली घास है जो अधिकतर मकानों के छप्पर बनाने के काम आती है. इस काम में कोई बँटबारा नहीं, स्त्री पुरुष दोनों मिल कर इसे करते हैं. 'उतनी दूर से जो यहाँ लाया जा सका उस से तो केवल पाँवपोश ही बन सकता है नहीं तो बनती तो और भी कई चीज़ें हैं इस से.'

बीन के फिर धर दीन्हो चुनरिया

हिमाचल की **बसोहली**, कांगड़ा और चंबा की **रूमाल गाथा** किसे नहीं मालूम जिन में राधाकृष्ण का रागात्मक स्वरूप प्रत्यक्ष होता रहता है. **श्रीमती पार्वती देवी** के हाथों बने कुल्लू के शाल के चटख लाल रंग सफेद रंग पर उभरे हुए खिल रहे थे.

मिट्टी और खून: मिट्टी के बर्तन, खिलौने दिये और घरेलू जरूरतों से हट कर साज सजावट की बात तो गुजरात की **हंसाबाई येला** की कलाकृति से ही अवगत हो सकी. जिस में किसी खास तरह की न तो मिट्टी की जरूरत पड़ती है न ही किसी महँगी सामग्री की. धरती की मिट्टी और धरती की सूखी महीन घास को पानी से गूँध कर चौकोर आकार दे कर चित्र फलक की तरह उन्होंने पहले एक आधार तैयार किया था फिर कोर बना कर बीच में देवी की आकृति बनायी थी और बड़े छोटे गोल चौकोर तथा तिकोने पतले शीशे के टुकड़ों को गीली मिट्टी के सहारे हीरे जवाहरात की तरह उस में जड़ दिया गया था. नमूना सुख चला था और येला बाई पुराने मुलायम कपड़े से जड़े हुए शीशों पर की धुंधलायी मिट्टी हल्के

थंगम भानु : घास के सपने

हाथों साफ़ करती जा रही थी. देखते देखते आँखों के सामने लोक कला का अद्भुत नमूना था जिस में किसी भी औजार की जरूरत न थी, सिवाय पत्थर के एक टुकड़े के जिस की धार पर वह एक बार शीशे के टुकड़ों को रेत देती और दोनों हाथों की चुटकी से उसे हल्के हाथों कुटक कर आवश्यकतानुसार उस की सार्थकता को उजागर कर देती. मिट्टी सनी ऊँगली से खून बह रहा था जिसे कटोरे के पानी में बार बार वह धो देती. हर बार वह आकार देने भर की मिट्टी उठाती. चौखाने में रखती उसे सँवारती और उस पर शीशा मढ़ देती. रवींद्र भवन के प्रांगण में पेड़ के नीचे बैठी कच्छ की यह कला बनती रही, सँवरती रही. बहुत हुआ तो उन्होंने मिट्टी की एक गोली कटी उंगली पर भी मढ़ दिया जिस के बावजूद लाल रक्त रिसता रहा.

आभूषणः नेफ़ा की **श्रीमती फ़ेवक**, अपने दुधरत्न को अपनी गोद से उतार पति के कंधे पर डाल, जोगिया रंग की महीन पोत से कानों का कंगना बनाने में जुट गयीं. कुछ जो उन्होंने बना रखे थे, वे थे गले के हार, कमरबंद, हाथों के तोड़े और छोटे छोटे बटुए. मगर सोचिये कानों का कंगन (इयर रिंग) भला कानों में कैसे पहना जाता है? कानों में पड़ा होता है धागा जिस में दो बटन के सहारे ढाई इंच लंबी एक इंच चौड़ी सफ़ेद जोगिया और नीले पोत के जड़ाऊ 'इयररिंग' दुहर कर लटक जाती है. एक विदेशी महिला ने इस में और संशोधन कर दिया और कनौटी की तरह धागा कानों में बांध फौरन उसे अपने दोनों कानों में पहन लिया उसी के रंग से मिलता हुआ गले का हार और कमरबंद तथा अन्य पसंद के अलंकार ले कर खुशी खुशी ढाई सौ रुपये का सौदा खरीद लिया. उपयुक्त ग्राहक पा कर श्री फ़ेवक बच्चे को थपथपा कर सुलाने लगे थे और **श्रीमती फ़ेवक** संकेत की भाषा में विदेशियों की चीजें दिखाती और अन्य दर्शकों की मदद से चीज़ों के मूल्य बताती रहीं. प्रदर्शनी में ज्यादातर खरीददार विदेशी थे और तमाशबीन देशी, पैसे वाले वर्ग को छोड़ कर क्योंकि चीजें बहुत महँगी थीं.

कहानियों के सहारे राजा रानी की जो कल्पना हमें दादी नानी से सुनने को मिली है उस का साक्षात्कार हो रहा था. मध्यप्रदेश ग्वालियर की श्रीमती **बहोबाई** की गुड़ियों में जिन की जीवंत मुद्रा बरबस अपनी ओर आकर्षित कर रही थी. हाथों में न सुई न धागा. बस रंगे हुए, पुराने, कलफ दिए हुए कपड़े, बाँस की खपची, चमकीली पन्नियाँ, कैंची और लेई. थोड़ी सी ही जगह में गुड़िया बनाने का पूरा का पूरा कारखाना मौजूद था.

गुड्डे गुड़ियाँ: कपड़े में सिलाई का कहीं निशान न देख अचंभे में पड़ते देख उन्होंने बताया: 'चमकीली, सुनहरी और रुपहरी पन्नियाँ, जरी के गोटे की तरह भाँति भाँति की डिज़ाइन में लेई के सहारे कपड़ों पर चिपका दिये जाते हैं. घरों के पुराने कपड़े ही इस के लिए इस्तेमाल होते हैं. मगर ये गुड़ियाँ बनी भले ही पुराने कपड़ों की हैं देखने में हमेशा नयी ही लगती हैं. कोई आठ वर्ष पुरानी तो ये दोनों बड़ी गुड़ियाँ ही हैं. (जिन्हें देख कर लगता था उन्हें अभी अभी बना कर तैयार किया गया हो) उपलब्धि का तेज उन के मुख पर छा गया था. बड़ी विनम्रता से उन्होंने बताया: '1967 में इन्हीं गुड़ियों पर मुझे राष्ट्रीय पुरस्कार मिला था. बड़ी गुड़ियाँ तो किसी ग्राहक के आग्रह पर ही बनाती हूँ आमतौर से छोटी गुड़ियों का जोड़ा ही अधिक बनाती भी हूँ और बिकती भी हैं. खास कर बैसाख के महीने में हमारे यहाँ क्वांरी कन्यायें थाल में पूजा का सामान सजा कर अपने अपने गुड्डे-गुड़ियाँ ले कर बगीचे में गाती-बजाती हुई जाती हैं और गुड़िया का ब्याह रचाती हैं.

पाँच हज़ार: कानों में आवाज़ पड़ी साड़ी का दाम पाँच हजार. कल्पना जगी जरूर सच्चे सोने चांदी के काम की बनी होगी. मगर यह क्या? सफ़ेद, महीन चिकन की साड़ी? ये थी लखनऊ की **कुमारी अख्तर जहाँ बेग़म** की आवाज़ और उन के हाथों का कमाल. जिसे उन्होंने अपने 'वाल्दैन' से सीखा. 'भई ऐसा कौन सा कमाल का काम है इस साड़ी में?' 'यह देखिए यह है मुर्री (गाँठें) बूट (चना) जाली, काज, उल्टी बखिया, शैडो वर्क और इसे कहते हैं जीरा. दोनों तरफ़ एक तरह का सा काम. इस तरह की एक साड़ी बनाने में सालों लग जाते हैं. पर इस से गुजारा थोड़े ही चल सकता है. इसीलिए अब मुर्री और जाली से हट कर चिकन का काम केवल 'शैडो वर्क' तक ही रह गया है. उस पर भी साहब गाहक मोल भाव करता है. बताइये रात दिन एक कर के तो यह नाजुक काम होता है फिर भी लोग उस का मोल नहीं समझते. हम ही जानते हैं. . . (कुछ रुककर) लखनऊ की शान में यह काम लगभग हमारी जैसी सभी बहनें अपने अपने घरों में करती रहती हैं. ज्यादातर यही हमारे गुजारे का सिलसिला है. चिकन के काम का कुर्ता, साड़ी और ब्लाउज, लखनऊ टोपी तो बनती ही रही है अब नया जो बनने लगा है वह है लुंगी और टाप.'

बेत और बाँसः कर्नाटक चंदन की सुगंधि, अगरतला के बेंत और बांस का काम और पश्चिमी बंगाल की **श्रीमती पुष्पलता** के हाथों **शोलेपीठ** का काम! पल भर में खिलते सफेद गुलाब, सूरजमुखी, दहेलिये, गुलदाउदी, जूही, चंपा तथा काली की सौम्य मुखाकृति और शादी के मुकुट जुड़े की वेणी आदि क्या कुछ नहीं बनाती हैं पुष्पलता जी. यथा नाम तथा गुण! सूरत में पानफूल सी हल्की ये चीजें सीरत में काफी वज़नदार हैं.

प्रतिभा: छैनी हथौड़ी पर ठुक ठुक. एक मधुर लय और तान छिड़ी थी प्रदर्शनी के उस कक्ष में. महिला शिल्पकार **कुमारी वी. वी. सुभाषिनी** सरस्वती की दैवी प्रतिमा को शिल्प दे रही थीं. कसीदा, कढ़ाई, रंगाई छपाई, गुड़िया खिलौने तो माना कि बनाने में महिलायें दक्ष हैं परंतु माना जाता रहा है मूर्तिकला की शोभा तो नर के हाथों ही. . . .

'आप की रुझान क्या आरंभ से ही इस कला की ओर रही है?' 'जी नहीं. पहले चित्रकला में रुचि थी परंतु गुरु सिद्धलिंगस्वामी की प्रेरणा से मूर्तिकला की ओर ध्यान गया.'

कुछ मूर्तियाँ काले पत्थर की बनी, बड़ी चमकीली दीख रही थीं. जिन का समाधान यह था कि 'गोले के तेल में गोले के कटोरे (खोपड़े) और छाल को जला कर अच्छी तरह मिला कर यह लेप देव प्रतिमाओं पर लगाया जाता है क्यों कि देव प्रतिमाओं पर दूध, पानी चंदन आदि चढ़ाया जाता है. अन्य मूर्तियों पर पत्थर की मौलिकता ज्यों की त्यों रह जाती है.'
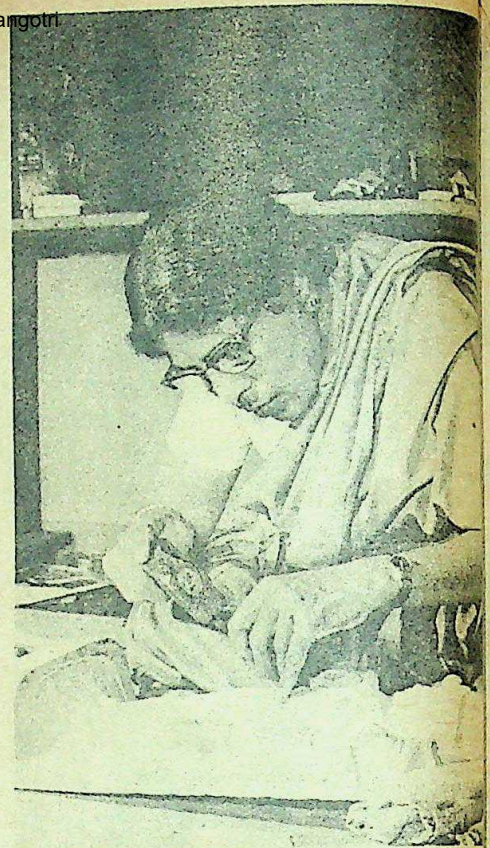
कु. वी. वी. सुभाषिनी : सरस्वती की प्रतिमा बोलेगी. . .

भारत के कोने कोने में रसी-बसी हस्तकला का यह संयोजन एक नयी प्रेरणा थी. यातायात की सुविधाओं और मशीनीकरण के इस युग में जिस सौंदर्यबोध और सुरुचि की छाप अभी भी सुरक्षित रह पाई है, उस का कारण है असीम धैर्य, अथक श्रम, संवेदना और कोमलता जो लोक हस्तकलाओं की प्राण हैं.

सन् 1965 से '75 तक एक दशक की अवधि में चौदह स्त्री कलाकारों को राष्ट्रीय पुरस्कार मिल चुका है जिन में बिहार से चार, उत्तरप्रदेश से तीन तथा हिमाचल, गुजरात, मणिपुर, महाराष्ट्र, ओडिसा और पश्चिम बंगाल से एक एक महिला प्रतिनिधि ने ये पुरस्कार प्राप्त किए हैं. ये पुरस्कार उतने महत्त्वपूर्ण नहीं हैं जितना इन की विधिवत बिक्री का प्रबंध और इन की खपत के स्रोत. इन की ओर जितना ध्यान दिया गया है वह पर्याप्त नहीं है, यह इन स्त्रीकलाकारों को देख कर और उन से बात कर स्पष्ट होता था. इस दिशा में क़दम और तेज़ी से तथा और ठोस ढंग से बढ़ाये जाने चाहिएं.

—श्रीमती दुर्गावती सिंह

जासूसी

मसीही प्रचारकों का योग

अमेरिका की विश्वविख्यात जासूसी संस्था केंद्रीय गुप्तचर संगठन के अध्यक्ष विलियम कोल्बी ने काफी हीले हवाले के बाद इस वर्ष के प्रारंभ में यह स्वीकार किया था कि पिछले 26 वर्षों में उक्त संस्था ने कुछ ऐसे कार्य किये जो उस के अधिकार क्षेत्र से बाहर थे. तब से रहस्योद्घाटनों, सार्वजनिक चर्चा और गरमजोशी के बीच एक महत्त्वपूर्ण जानकारी दबी रह गयी कि अमेरिका का गुप्तचर संगठन विदेशों में जासूसी के लिए मसीही प्रचारकों का इस्तेमाल करने से बाज नहीं आता रहा है.

पिछले दिनों वॉशिंग्टन की नेशनल कैथोलिक न्यूज़ सर्विस ने जोन डी मार्क द्वारा लिखित दो लेख प्रकाशित किये, जिन में यह जानकारी दी गयी है कि इस गुप्तचर संस्था ने जासूसी कार्यों के लिए पादरियों, मुल्लाओं और बौद्ध भिक्षुओं तक का उपयोग किया. श्री मार्क राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए केंद्रीय अध्ययन शोध केंद्र के निदेशक हैं तथा विश्वविख्यात पुस्तक 'द सी. आई. ए. ऐंड द कल्ट ऑफ़ इंटेलीजेंस' के सहायक लेखक भी हैं. आर्कबिशप ऑफ़ वॉशिंग्टन के रक्षण में चलने वाली नेशनल कैथोलिक न्यूज़ सर्विस के आग्रह पर ही श्री मार्क ने सी. आई. ए. द्वारा मिशनरियों के इस्तेमाल के बारे में शोध कर के एक लंबा आलेख तैयार किया, जो दो हिस्सों में प्रचारित हुआ.

श्री मार्क ने सामग्री एकत्र करने के लिए करीब 30 मिशनरियों से बातचीत की. इन में से अधिकांश ने अपना नाम और पता न छापने का अनुरोध किया. अमेरिका जासूसी संस्था में 20 वर्षों से काम करने वाले एक अनुभवी कर्मचारी का कहना है, "सी. आई. ए. में चर्च और पादरियों को संभवतः प्रत्येक जासूसी कार्य के लिए इस्तेमाल किया. ख़बरें प्राप्त करना, अपने गुर्गों को धन पहुँचाना, तोड़फोड़ का सामान लाना ले जाना इत्यादि. एक अन्य अवकाश प्राप्त सी. आई. ए. कर्मचारी के अनुसार एजेंसी ने मिशनरियों का उपयोग अनेक अवसरों पर किया. उसी अधिकारी ने यह भी कहा कि 'मैं तो अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किसी को भी माध्यम बना सकता हूँ. मैंने एक बौद्ध भिक्षु, कैथोलिक पादरी और एक बिशप की सहायता भी ली थी'.

चर्च अधिकारी इस पर एक मत नहीं कि चर्च और केंद्रीय गुप्तचर संगठन के संबंधों की आगे जाँच पड़ताल की जाये अथवा नहीं. अनेक पादरी इस के खिलाफ हैं. उन का तर्क है कि विदेशों में सेवारत हज़ारों मिशनरियों का जासूसी से दूर का भी नाता नहीं है, अतः इस विषय की जाँच पड़ताल करना उन के लिए खतरा पैदा कर सकता है. कुछ का तर्क है कि अतीत में केंद्रीय संगठन ने कुछ मिशनरियों को भले ही अपने जाल में फाँस लिया हो परंतु वर्तमान परिस्थितियों में यह असंभव नहीं तो अत्यंत जटिल अवश्य है. अतः इस विषय पर चर्चा करना अनावश्यक है. इस के विपरीत चर्चों की राष्ट्रीय परिषद के डा. यूजिन स्टॉकवेल और भूतपूर्व मेरीकनोल मिशनरी फादर चार्ल्स कैरी इस विचारधारा से सहमत होते नहीं जान पड़ते. उन का कहना है कि किसी भी धर्म को इस विषय पर खुले रूप से चर्चा करनी चाहिए कि क्या किसी जासूसी संस्था से उस के संबंध रह सकते हैं. चर्च को भी यह सोचना होगा कि सी.आई.ए. से किसी प्रकार का लुका छुपा प्रेमालाप कहाँ तक वांछनीय है.

केंद्रीय गुप्तचर संगठन के एक भूतपूर्व अभिकर्त्ता के कथनानुसार दक्षिण वीएतनाम में सैगॉन के इर्दगिर्द के एक कैथोलिक बिशप को सी. आई. ए. से 1971 तक प्रतिमाह बाकायदा वेतन मिलता था. उसीने यह भी कहा कि उक्त बिशप की सूचनाओं का इतना महत्त्व था कि संगठन का संबद्ध स्थानीय अधिकारी विशेष हवाई जहाज़ द्वारा उससे मिलने जाता था.

प्रोटेस्टेंटों के राष्ट्रीय संगठन के एक उच्च अधिकारी के मतानुसार उसे बोलिविया के एक ऐसे पादरी की जानकारी है जो पिछले कुछ समय पूर्व तक नियमित रपटें भेजता था. उस पादरी ने नाम गुप्त रखने की शर्त पर श्री मार्क को यह बताया कि उपर्युक्त पादरी बोलिवियाई कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों की गतिविधियों की सूचना अमेरिकी दूतावास को देता था. पादरी द्वारा तैयार सूची में उन बोलिवियाई नागरिकों के नाम होते थे जो केंद्रीय गुप्तचर संगठन की नज़र में उग्रवादी थे, या चे ग्वेवारा से प्रभावित थे. कम्युनिस्टों के स्थानीय संगठन के पदाधिकारियों और बैठक का ब्योरा भी इस सूची में रहता था. परंतु उक्त पादरी इस काम के लिए कोई धन नहीं लेता था. उस के विचार से ऐसा करना उस का 'राष्ट्रीय कर्त्तव्य' था, क्यों कि वह देश को कम्युनिस्टों के चंगुल से बचाना चाहता था.

दो वर्ष पूर्व तक एक अन्य प्रोटेस्टेंट पादरी भी बोलिविया के अमेरिकी दूतावास को उन नागरिकों की सूची देता था जिन पर उसे कम्युनिस्ट होने या उन का समर्थक होने का संदेह था. एक अमेरिकी कैथोलिक भिक्षुणी (नन) जब 1971 में चीले का दौरा समाप्त कर वापस अमेरिका पहुँची तो उस से राजनैतिक स्थिति की जानकारी लेने का असफल प्रयास किया गया था.

यह जासूसी संस्था अनेक धार्मिक संघों और समुदायों में घुसपैठ कर उन से न सिर्फ आँकड़े और जानकारी हासिल करने का प्रयत्न करती है वरन जासूसी करने से भी नहीं चूकती.

विकासशील देशों के चर्च समर्थित कार्यक्रमों के लिए केंद्रीय गुप्तचर संगठन गुप्त रूप से धन भी देता है. श्री मार्क के अनुसार पाँच वर्ष पूर्व भारत में ईसाई पादरियों द्वारा संचालित मजदूर संस्थान के लिए सी. आई. ए. ने धन देने की पेशकश की थी. हुआ यह कि उक्त पादरी संघ के सदस्यों ने अमेरिका में धन जमा करने का अभियान चलाया. इस सिलसिले में उन्होंने 'एशियन अमेरिका फ्री लेबर इंस्टीट्यूट' से 5000 डालर का अनुदान मंजूर करने का अनुरोध किया. पैसा मंजूर हो भी गया परंतु ऐन मौके पर उस पादरी को अमेरिकी विदेश विभाग के अधिकारी ने बताया कि उक्त धन इंस्टीट्यूट द्वारा नहीं वरन गुप्तचर संगठन द्वारा दिया जा रहा है तो उस के पैरों तले जमीन खिसक गयी : वह घबरा गया और चैक मेज पर रख कर चलता बना.

पत्र पत्रिकाओं द्वारा जनमत को प्रभावित करने का काम भी चर्च को सौंपा जाता है. धार्मिक समाचारों के लिए छापे जाने वाले अखबारों के संपादकीय अक्सर उग्रपंथ या वामपंथ की आलोचनाओं से भरे होते हैं. ऐसा भी संदेह व्यक्त किया गया है कि समय-समय पर धार्मिक यात्राओं का आयोजन कर के यह संस्था किसी देश की आंतरिक स्थिति जानने का प्रयत्न करती रहती है. संस्था के लोग न सिर्फ ईसाई पादरियों वरन यात्रियों, बौद्ध भिक्षुओं और योगाभ्यास सीखने के इच्छाओं की टोली में शामिल हो कर अपना मतलब हल करते हैं.

सन् 1960 के आसपास कोलंबिया में चर्च द्वारा तैयार एवं प्रकाशित शैक्षणिक कार्यक्रमों पर संगठन ने भारी धनराशि खर्च की थी. वॉशिंग्टन के एक भूतपूर्व संगठन अधिकारी ने श्री मार्क को बातचीत के दौरान बताया कि उसे इस कार्यक्रम की जानकारी थी. अधिकांश धन कार्यक्रम बनाने में खर्च किया जाता था. मजे की बात तो यह है कि 60 प्रतिशत बोलिवियाई किसानों के लिए तैयार किये गये रेडियो कार्यक्रम के अंत में एक राजनैतिक टिप्पणी भी दी जाती थी. दक्षिणी अमेरिका में कार्यरत एक भूतपूर्व एजेंट ने यह स्वीकार किया है कि उसे घटना की पूरी जानकारी है. उस के कथनानुसार बगोटा के एक अमेरिकी व्यापारी के माध्यम से यह धन रेडियो सुटाटेंजा को दिया जाता था. यही अमेरिकी व्यापारी उन का संपर्क सूत्र भी था.

प. जर्मनी और दक्षिण अफ्रीका : पुराने संबंध

दक्षिण अफ़्रीका में ग़ैरक़ानूनी क़रार दिये गये संगठन **अफ्रीकी राष्ट्रीय कांग्रेस** ने गुप्त दस्तावेज़ों को प्रकाशित करते हुए यह रहस्योद्घाटन किया है कि पश्चिमी जर्मनी की वायुसेना का एक अध्यक्ष तथा उत्तर अतलांतिक संधि संगठन की सैनिक समिति में पश्चिमी जर्मनी का प्रतिनिधि, लेफ्टिनेंट जनरल **गुंइंठर** राल अगस्त 1974 में दक्षिण अफ्रीका की गुप्त यात्रा पर था जिस में उस ने '**बाल**' के उपनाम से वहाँ सैनिक अड्डों की यात्रा की, दक्षिण अफ्रीकी सेनाध्यक्षों से गुप्त मंत्रणाएँ कीं तथा पोलिंडाबा के कुख्यात परमाणु शक्ति केंद्र का निरीक्षण किया. यह सारा विस्फोटक मामला पश्चिम जर्मनी में मंत्रिमंडल के कतिपय सदस्यों के, जिन में रक्षामंत्री, **गेओर्ग लेबर** प्रमुख हैं और दक्षिण अफ्रीका के राजदूत **डोनेल्ड बेल सोल** तथा जनरल राल के बीच में अत्यंत गोपनीय रखा गया था. इस भंडाफोड़ के परिणाम में जनरल राल ने त्यागपत्र दे दिया है, यद्यपि रक्षामंत्री लेबर का कहना है कि उन्हें राल की यात्रा की 'विशेष परिस्थितियों' के बारे में पता नहीं था. यह महत्त्वपूर्ण है कि राजदूत सोल अंतरराष्ट्रीय अणुशक्ति भंडार के भूतपूर्व सभापति रह चुके हैं. कहा जाता है कि राजदूत सोल गुप्त गतिविधियों में निष्णात हैं और उन्होंने अपने दूतावास के जरिये पश्चिम जर्मनी के महत्त्वपूर्ण सैनिक अड्डों, वैज्ञानिक संस्थानों तथा सुरक्षा कार्यों में लगी हुई सुप्रसिद्ध निजी एलेक्ट्रॉनिक कंपनियों में 'मित्रों' तथा जासूसों का एक ज़बर्दस्त जाल बिछा रखा है जिस के वह 'धर्म पिता' हैं और जो उन्हें अणु शक्ति तथा सुरक्षा तकनीकों के क्षेत्र की नवीनतम जानकारी सहर्ष प्रदान करता रहता है. वैसे पश्चिम जर्मनी-दक्षिण अफ्रीका संबंधों के मुँहफट जानकारों का कहना है कि इस तरह की 'जासूसी' की बहुत अधिक आवश्यकता नहीं है क्यों कि पश्चिम जर्मनी की प्रत्येक सरकार के संबंध दक्षिण अफ्रीका की नृशंस नस्लवादी सरकार से हमेशा सुमधुर रहे हैं.

राल की इस गुप्त यात्रा के उद्घाटन तथा उस में मंत्रिमंडल के सदस्यों का हाथ सिद्ध हो जाने के बाद तो अब पश्चिम जर्मनी की सरकार के लिए भी इस लज्जाजनक तथ्य से मुकरना असंभव होगा कि दक्षिण अफ्रीका को उच्चतम स्तर पर हर तरह की सहायता दी जाती रही है. अंतरराष्ट्रीय मंचों पर जब उसे औपचारिकतावश दक्षिण अफ्रीका की निंदा करनी पड़ी है तो उस का स्वर बंद झिड़की का ही रहा है बल्कि इधर तो पश्चिम जर्मनी के विदेशमंत्री **हांस डीटिश गेंशर** ने अपने भोले आशावाद से तृतीय विश्व को संयुक्तराष्ट्र में यह कह कर चमत्कृत कर दिया है कि 'उन्हें विश्वास है दक्षिण अफ्रीकी गणराज्य में रंगभेद की नीति अपने आप समाप्त हो जायेगी.' कोई आश्चर्य नहीं कि अफ्रीका के स्वतंत्र अश्वेत राष्ट्र, जो अब बहकावे में नहीं आते, 'जासूसी' के इस कांड को एक चालाक मिलीभगत समझें—दक्षिण अफ्रीका जो चाहता है उसे मिल जाये और बॉन सरकार एक 'कड़े शब्दों वाला' प्रतिवाद प्रिटोरिया सरकार को भेज कर मुक्ति पा ले. यह बात अलग है कि '**डेर श्पीगल**' सरीखे प्रभावशाली पत्र डेनियल बेल सोल को वापस दक्षिण अफ्रीका बुलवाने की माँग कर रहे हैं.

यह पश्चिम जर्मनी की सरकार का दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि दो सप्ताह के अंदर ही उस पर दो लांछन लगे. 'जासूसी' के इस रहस्योद्घाटन के कुछ ही दिनों पहले रॉटरडम में हॉलैंड, बेल्जियम तथा पश्चिम जर्मनी के रोमन कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेंट गिरजों की एक सम्मिलित संस्था ने ब्रिटेन, फ्रांस तथा पश्चिम जर्मनी पर स्पष्ट आरोप लगाया था कि इन तीनों देशों ने लगातार विकसित होते हुए आर्थिक, सैन्य, सांस्कृतिक तथा धार्मिक संबंधों के जरिये दक्षिण अफ्रीका की रंगभेद नीति को मजबूत किया है. दरअसल दक्षिण अफ्रीका तथा रोडेसिया पर लगे व्यापार प्रतिबंधों में कोई दम नहीं रह गया है और सारे विकसित राष्ट्र निर्लज्जतापूर्वक बाकी संसार का मखौल उड़ाते हुए दक्षिण अफ्रीका के साथ उत्तरोत्तर संबंध बढ़ाते जा रहे हैं. अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, जापान तथा पश्चिम जर्मनी इन में सर्वप्रमुख है.

भारत में रह कर किसी दक्षिण अफ्रीकी गोरे से मिलना लगभग असंभव है किंतु जो भारतीय कुछ ही महीने पश्चिम यूरोप के समाज में घूम फिर आये हैं वे अवश्य कभी न कभी ऐसे जर्मन, फ्रांसीसी या अंग्रेज़ से मिल चुके होते हैं जो दक्षिण अफ्रीका रह आया हो. दक्षिण अफ्रीका के संबंध में बात करते समय गोरों के दिल में एक अपराध भाव बना रहता है और विशेषतः उस समय जब कि उन की बात सुनने वाला कोई भारतीय हो. कई बार तो वे यह बताने से भी कतराते है कि वे दक्षिण अफ्रीका से किसी तरह संबद्ध हैं. अक्सर ऐसा यूरोपवासी गोरा कुछ शराब पी लेने के बाद ही खुलता है. किंतु वह रह रह कर भारतीय को यह विश्वास दिलाता रहता है कि भारतीय जन अफ्रीका की काली जनता से बेहद बेहतर हैं, उन की संस्कृति है, परंपरा है, वेद हैं, उपनिषद हैं, आदि. ब्रिटेन के संबंध तो दक्षिण अफ्रीका से पारंपरीण हैं और उस का अरबों रुपया वहाँ लगा हुआ है किंतु पश्चिम यूरोप के अन्य कई देशों की विराट कंपनियों की शाखाएँ भी वहाँ हजारों की संख्या में हैं और यूरोप से लोग लगातार दक्षिण अफ्रीका में जा कर बस रहे हैं. ऐसा अनुमान है कि 1945 के बाद से अब तक कोई 7 लाख पश्चिम यूरोपीय गोरे दक्षिण अफ्रीका में बसे हैं जिस से वहाँ के मूल निवासी काले लोगों पर दासता का शिकंजा और भी सख्त हुआ है.

जहाँ तक जर्मनी तथा दक्षिण अफ्रीका के संबंधों का प्रश्न है वे हिटलर के समय से ही प्रगाढ़ चले आ रहे हैं. क्योंकि रंगभेद नीति फासीवाद का संपृक्त घोल है इस लिए आश्चर्य नहीं कि उस नृशंस व्यवस्था में 'नस्ल' तथा 'खून' तथा 'दैवीय अधिकार' के सिद्धांतों वाली नात्सी विचारधारा को प्रचुर प्रश्रय मिला. एक विडंबना यह थी कि 1934 के आसपास जब गोरे यहूदी हिटलर से घबरा कर जर्मनी से दक्षिण अफ्रीका भाग रहे थे तब उन के शरण्य में नात्सियों सरीखी संस्थाएँ स्थापित तथा सक्रिय हो चुकी थीं. दक्षिण अफ्रीका सरकार ने हमेशा यहूदियों को साम्यवाद के प्रति सहानुभूति रखने वाला समझा है और भले ही गोरे यहूदी दक्षिण अफ्रीका में फल फूल रहे हों, एक हलका सा आतंक उन के इर्द गिर्द बना रहता है. यह स्वाभाविक ही है कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जर्मनी में नात्सीवाद औपचारिक रूप से तो समाप्त कर दिया गया किंतु दक्षिण अफ्रीका में कई नवनात्सी संस्थाएँ अभी तक खुल कर तथा सरकारी प्रश्रय में सक्रिय हैं. विश्व के अनेक नात्सी संगठनों की शाखाएँ दक्षिण अफ्रीका में हैं. यह तो सभी को मालूम है कि पिछले कुछ वर्षों में पश्चिम जर्मनी में हिटलर तथा तीसरे राइख पर पुस्तकों की बाढ़ आयी हुई है. पश्चिम जर्मनी के कई नवनात्सी गिरोह दक्षिण अफ्रीका में स्वतंत्रतापूर्वक नस्लवाद तथा गोरे लोगों की दैवीय संप्रभुता पर भाषण देते रहते हैं. वहाँ के अनेक कट्टर दक्षिणपंथी नेता भी दक्षिण अफ्रीका का नियमित दौरा किया करते हैं. द्वितीय विश्वयुद्ध के अपराधियों का पता लगाने वाली यहूदी तथा अन्य संस्थाओं का यह विश्वास है कि कई पुराने नात्सी अफ्रीका में सुरक्षित विलासमय जीवन बिता रहे हैं.

यहाँ पर यह बात ध्यान में रखनी होगी कि पश्चिमी यूरोप के अधिसंख्य बुद्धिजीवी अपने देशों की दक्षिण अफ्रीका नीति से घृणा करते हैं और उस के लिए आजीवन लज्जित रहते हैं. दक्षिण अफ्रीका में काले तथा रंगीन लोगों पर हो रहे अमानुषिक अत्याचारों का ब्यौरा भी हमें प्रायः इन्हीं देशों के व्यक्तियों, संस्थाओं, तथा समाचारपत्रों से ज्ञात होता है. ब्रिटेन, फ्रांस तथा जर्मनी के अधिसंख्य प्रबुद्ध

समाचारपत्रों ने हमेशा दक्षिण अफ्रीका के कलंकपूर्ण प्रशासन की निंदा की है, किंतु दक्षिण अफ्रीका इस समय संसार के समृद्धतम पूंजीवादी राष्ट्रों में अपना स्थान बना चुका है. यूरोप के समस्त तथाकथित 'स्वतंत्र' राष्ट्रों पर इजारेदार पूंजीपति सवार हैं. उन के लिए बाज़ार और मुनाफा ही सर्वोपरि है. दक्षिण अफ्रीका पश्चिमी यूरोप के लिए बहुत बढ़िया मंडी है. वह एक ठोस गाहक तथा विश्वसनीय दुकानदार है. पश्चिमी पूंजीवादी देश यह कहते नहीं अघाते कि पूंजी लगाने के लिए दक्षिण अफ्रीका एक स्वर्ग है. वहां मज़दूरी यूरोपीय दरों की तुलना में कुछ भी नहीं है और हड़ताल या घेराव का कोई नाम भी नहीं लेता. पश्चिमी विश्व का 75 प्रतिशत सोना दक्षिण अफ्रीका की खानों से निकलता है. इस के अतिरिक्त यूरेनियम, हीरों तथा अन्य बहुमूल्य खनिजों का वहां भंडार है. 1972 के अंत तक पश्चिमी यूरोप के 160 अरब रुपये दक्षिण अफ्रीका में विनियोजित थे. पश्चिम जर्मनी की 400 से अधिक कंपनियों की या तो दक्षिण अफ्रीका में शाखाएं हैं या संबद्ध कंपनियां हैं. यह अनायास नहीं है कि **वाल्टर शेल, फ्रांत्स योज़ेफ श्ट्राउस, गेरहार्ट श्रेएडर, आल्फोंस गोसेल** तथा **अलेक्स कोएलर** सरीखे महत्त्वपूर्ण पश्चिम जर्मन नेता दक्षिण अफ्रीका की यात्राएं करते रहे हैं. पश्चिम जर्मनी की प्रत्येक सरकार का प्रत्येक केंद्रीय 'कांत्सलर' 'व्यापार तथा राजनीति को अलग अलग रखने' के पाखंडपूर्ण सिद्धांत के पीछे छिपता रहा है.

पश्चिम जर्मनी तथा दक्षिण अफ्रीका दोनों देशों में इस समय विलक्षण आर्थिक उछाल आया हुआ है और यह स्वाभाविक ही है कि दोनों परस्पर लाभान्वित होने में कोई कसर न उठा रखें. परिणामस्वरूप इस समय यूरोपीय देशों को छोड़ कर अमेरिका के बाद दक्षिण अफ्रीका ही पश्चिम जर्मनी का सब से बड़ा व्यापार साझेदार है. पश्चिम जर्मनी की इजारेदार कंपनियों ने नवंबर 1972 तक 450 करोड़ रुपये दक्षिण अफ्रीका में लगा रखे थे. दक्षिण अफ्रीका में लगी पूंजी को किसी तरह का खतरा नहीं है. इस तरह पश्चिम जर्मनी के पूंजीपति दक्षिण अफ्रीका के काले लोगों का कल्पनातीत शोषण कर रहे हैं. बायेर लेफेर-कुज़ेन, फार्ब वेर्के होएक्स्ट, टेलेफुंकेन, जीमस, क्रूप, क्लोएक्नर, डेगुसा, राइनिश वेस्टफेलिशे एलेक्ट्रित्सटेटवेर्के, तथा फोक्सवागन सरीखी विश्वविख्यात पश्चिम जर्मन कंपनियां तथा डोइचे बैंक, ड्रेस्डनर बैंक, कोमेर्त्स बैंक तथा बेर्लिनर हांडेलगेसेलशैफ्ट सरीखे सुप्रसिद्ध बैंक वहां व्यापार पर छाये हुए हैं. इन में से अधिसंख्य संस्थाएं अपने काले मज़दूरों को निर्धनता रेखा से भी नीचे की मज़दूरी देती हैं-जब अखबारों में इस बात पर शोर मचता है तो पश्चिम जर्मनी की सरकारें ऊपरी जांच करवाती हैं और उस की भी रपट कभी देखने में नहीं आती.

पश्चिम जर्मनी दक्षिण अफ्रीका को न केवल हथियार तथा औजार बनाने के लाइसेंस दे रहा है और अपनी कंपनियों के ज़रिये उन्हें बनवा रहा है बल्कि ज़हरीली गैसों तथा अन्य रासायनिक हथियारों को भी बनाने में सहायता कर रहा है. चूंकि दक्षिण अफ्रीका की सोने की खानों में यूरेनियम भी खूब प्राप्त होता है इस लिए उस के बदले पश्चिम जर्मनी उसे आणविक हथियार बनाने में भरपूर सहायता दे रहा है. **उत्तर अतलांतिक संधि संगठन** के देशों के लिए दक्षिण अफ्रीका एक **अत्यधिक महत्त्वपूर्ण सामरिक इलाका** है. रासायनिक प्रयोगों के बहाने पश्चिम जर्मनी की कंपनियां 'रैबून', 'सारीन', 'सोमान' तथा 'गैस-5' सरीखी कल्पनातीत भयावहता वाली ज़हरीली गैसों का निर्माण कर रही हैं जो दक्षिण अफ्रीका की वैज्ञानिक तथा औद्योगिक शोध समिति के उपाध्यक्ष ला रू के अनुसार **'वायुयानों या प्रक्षेपास्त्रों की मदद से कीटनाशक दवाइयों की तरह छिड़की जा सकती हैं. इन का असर 20 मैगाटन के अणुबम की तरह ही होगा किंतु ये ऐसे बम के मुकाबले बहुत सस्ती होंगी.'** राल के त्यागपत्र वाले प्रकरण से यह भी सिद्ध हो चुका है कि दक्षिण अफ्रीका अणुबम बनाने की क्षमता रखता है. पश्चिम जर्मनी की सरकार ने दक्षिण अफ्रीका नाभिकीय वैज्ञानिकों तथा तकनीकों को अपने देश में प्रशिक्षण दिया था. पश्चिम जर्मनी की कई कंपनियां कच्चा यूरेनियम निकालने में दक्षिण अफ्रीका की सहायता कर रही हैं. दक्षिण अफ्रीका के पोलिंडाबा में, जिस का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, लगभग 600 करोड़ रुपयों की लागत से 2,400 टन संपृक्त यूरेनियम प्रतिवर्ष तैयार करने वाला संयंत्र स्थापित किया जा रहा है जिस में पश्चिम जर्मनी की श्टाइनकोलेन एलेक्ट्रित्सिटेट्स ए. जी. कंपनी पैसा लगवा रही है और जिस प्रणाली से कच्चा यूरेनियम साफ़ किया जा रहा है वह पश्चिम जर्मनी की एक प्रयोगशाला की ही देन है.

1964 से दक्षिण अफ्रीका को ओलिंपिक खेलों से बहिष्कृत किया जा चुका है अतएव उस ने 1973 में अपने अलग रंगभेदी 'ओलिंपिक' खेलों का आयोजन किया. इन लज्जाजनक खेलों में पश्चिम जर्मनी ने विलक्षण उत्साह के साथ 130 खिलाड़ियों के सब से बड़े दल के साथ हिस्सा लिया. पश्चिम जर्मनी ने हमेशा दक्षिण अफ्रीका में खेलकूद में भी रंगभेद की नीति का समर्थन किया है. उस की इस टीम की यात्रा तथा आवास का पूरा खर्च दक्षिण अफ्रीका सरकार ने उठाया था. आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि उस के बदले कुछ खिलाड़ियों ने, जिन में मुक्केबाज़ मक्स श्मेलिंग प्रमुख था, तथा म्युनिख में तत्कालीन ओलिंपिक खेलों के महासचिव

हेर्बर्ट कुंत्से ने दक्षिण अफ्रीका को वापस खेलों में ले लेने की सिफ़ारिश की.

पश्चिम जर्मनी के पूंजीपतियों से यह उम्मीद रखना व्यर्थ होगा कि वे दक्षिण अफ्रीका के साथ अपने लज्जास्पद संबंध तोड़ लेंगे. प्रश्न उठ सकता है कि वहां की जनता इस साज़िश में क्यों शरीक है. इस आसान से लगने वाले प्रश्न का उत्तर जटिल है. पश्चिम जर्मनी इस समय संसार के समृद्धतम देशों में से है. दो महायुद्धों में बर्बाद हुई जर्मन जनता सुख तथा समृद्धि के इन वर्षों से इस तरह अभिभूत है कि वह सरकार पर सारे निर्णय छोड़ बैठी है. वह समझती है कि उस की सरकार, जो उसे हर वर्ष नयी गाड़ी और नया रंगीन टेलीविज़न मोल लेने में सक्षम बना चुकी है, जो कर रही है ठीक ही कर रही है. जर्मन राष्ट्र अपनी अनुशासनप्रियता के लिए विख्यात है. यह अनुशासनप्रियता उसे अपनी सरकार की दुर्नीतियों पर भी प्रश्नचिन्ह नहीं लगाने देती. नवयुवक तथा बुद्धिजीवी अपने भाइयों के इस पशुसुलभ संतोष पर नाराज़ होते हैं और भयभीत भी होते हैं क्योंकि उन्हें डर है कि ऐसी प्रश्न न पूछने वाली जनता कहीं पुनः तानाशाही के लिए निमंत्रण न बन जाये. किंतु जिन्होंने पश्चिम जर्मनी की पत्र पत्रिकाओं में विज्ञापन देखे हैं वे जानते हैं कि प्रायः प्रत्येक विज्ञापन में या तो जर्मन मुद्रा मार्क का चित्र होता है या पैसों का ज़िक्र. इन्हीं पत्रिकाओं में असंभव आकर्षक रंगों में दक्षिण अफ्रीका के पर्यटन स्थलों के इश्तहार भरे रहते हैं. पश्चिम जर्मनी का आम नागरिक इस समय विश्व के संपन्नतम आम नागरिकों में से है. दक्षिण अफ्रीका के जंगल, अद्भुत पशु पक्षी, सफ़ारी, समंदरी किनारे, सुख सुविधाओं का सस्तापन, वहां का राजसी वैभव, पूंजी के लिए मुफ़ीद आबहवा, जो सब मुट्ठी भर गोरों के एकच्छत्र साम्राज्य का फल है, प्रतिवर्ष सैकड़ों जैट यानों में लाइका तथा रोलाई कैमरों से लैस हज़ारों पश्चिम जर्मनों को शुभाशा के अंतरीप—केप आफ गुड होप ले आते हैं..

—विष्णु खरे

विश्व

अमेरिका-चीन

हाथी के दाँत...

अमेरिकी राष्ट्रपति जेराल्ड फोर्ड चीन की राजधानी पीकिङ में चार दिन (1-4 दिसंबर) बिता कर इंदोनेसिया और फिलीपीन होते हुए स्वदेश पहुँच गये. इस बार फोर्ड की चीन-यात्रा में वह रंगत भले ही देखने को न मिली हो जो लगभग तीन वर्ष पहले फ़रवरी 1972 में तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति निक्सन की सात दिवसीय चीन-यात्रा के दौरान देखने को मिली थी किंतु किसी औपचारिक संयुक्त विज्ञप्ति के सर्वथा अभाव के बावजूद यात्रा का परिणाम उस से कुछ अधिक भिन्न नहीं रहा—उन सभी मुद्दों पर सहमति जिन को ले कर अमेरिका या चीन के हित सोवियत संघ से टकराते हों और वहाँ असहमति जहाँ अमेरिका या उन के हितों में द्वंद्व है. विकासशील देशों को, विशेष कर एशियाई देशों को मिलबाँट कर खाने की निक्सनी दुर्नीति में भी कोई अंतर नहीं आया. इतिहास साक्षी है कि दक्षिणपूर्वेशिया में शांतिस्थापना की ओट में अमेरिका ने वीएतनाम पर क्रूरतम बमवर्षा की. अब फोर्ड ने भी एशिया में शांतिस्थापना पर जोर दिया. कहीं इतिहास अपनी पुनरावृत्ति करने तो नहीं जा रहा.

यात्रा की समाप्ति पर कोई संयुक्त वक्तव्य प्रसारित नहीं किया गया, क्योंकि दोनों ही पक्षों ने इस की ज़रूरत नहीं समझी. चीन के कार्यकारी प्रधानमंत्री तेङ ने तो इसे विवेकशील गोपनीयता की 'एक नयी शैली' कहा: यों किसी संयुक्त वक्तव्य की आवश्यकता थी भी नहीं. 27 फ़रवरी 1972 को निक्सन की चीन-यात्रा की समाप्ति पर शङ्घाई से जो संयुक्त वक्तव्य प्रसारित किया गया था उस की अपेक्षाएँ ही दोनों पक्ष पूरी नहीं कर पाये. फोर्ड-तेङ वार्त्ता के दौरान शङ्घाई समझौते का उल्लेख कोई प्रसंगवश नहीं हुआ. दोनों ने ही इस बात को स्वीकार किया कि शङ्घाई समझौते पर अमल नहीं हुआ. यह कि उस पर अमल होना चाहिए. उन की इस स्वीकारोक्ति से यह अर्थ निकालना ग़लत नहीं होगा कि अमेरिका और चीन के संबंध आज भी वैसे ही हैं जैसे तीन वर्ष पहले थे. जब तक अमेरिका ताइवान में बना रहेगा और सोवियत संघ से संबंध सुधारने की नीति पर चलता रहेगा तब तक यही क्या कम होगा कि अमेरिका और चीन के बीच संवाद चलता रहे, भले ही उसे चलाते रहने का उत्तरदायित्व अमेरिका को ही निभाना पड़े क्योंकि चीन ने तीन वर्ष पहले ही यह स्पष्ट कर दिया था कि जब तक ताइवान में अमेरिका की उपस्थिति बनी रहेगी तब तक चीन का कोई नेता या उच्चाधिकारी बातचीत के लिए अमेरिका नहीं जायेगा. अमेरिका ने ताइवान स्थित अपनी सेना में कटौती तो की है (अब 2,800 अमेरिकी सैनिक ताइवान में हैं. पहले यह आँकड़ा 8,500 था.) किंतु निकट भविष्य में वह सभी सैनिक ताइवान से वापस बुलाने की स्थिति में नहीं होगा—चुनाव वर्ष में ऐसा करना राष्ट्रपति फोर्ड के लिए जोखिम उठाना ही होगा.

फोर्ड संवाद की अहमियत से बेख़बर नहीं हैं. उन्होंने चीन के लिए प्रस्थान करने से कुल पाँच दिन पहले ही एक संवाददाता सम्मेलन में इस अहमियत को इन शब्दों में स्वीकार किया : 'मेरा विश्वास है कि दो देशों—21 करोड़ 40 लाख जनसंख्या वाले हमारे देश और 80 करोड़ से भी अधिक के चीन—के राज्याध्यक्षों का साथ बैठ कर अपने सहमति के मुद्दों पर बातचीत करना और असहमति के मुद्दों को समाप्त करना के उपाय खोजने के लिए विचारविमर्श करना सदा ही उपयोगी होगा.'

पीकिङ पहुँचने पर राष्ट्रपति फोर्ड का फीका स्वागत हुआ. किंतु इस को उन की यात्रा की सफलता या विफलता का आधार नहीं बनाया जा सकता है. लगता है अमेरिकी मेहमानों का फीका स्वागत करना चीन की नीति है. पिछले दिनों डॉ. हेनरी कीसिंगर का भी पीकिङ में फीका स्वागत हुआ और उस समय भी राजनैतिक प्रेक्षकों ने इस आधार पर फोर्ड की चीन यात्रा के आगे प्रश्नचिन्ह लगा दिया था. किंतु **दिनमान** को फोर्ड की चीन-यात्रा पर तब भी कोई संदेह नहीं था (देखिए **दिनमान** 2 नवंबर, 1975). अमेरिका और चीन के बीच संवाद टूटे नहीं, फोर्ड की यही सफलता होगी. अभी तक ऐसा कोई संकेत नहीं मिला कि दोनों देशों में संवाद टूटने की नौबत आ गयी है. सच यह है कि यह नौबत आयेगी भी नहीं क्यों कि संवाद के बने रहने पर ही एशिया, अफ्रीका, लातीनी अमेरिका और यूरोप में ये दोनों देश अपना सोवियत विरोध और भी पैना कर सकेंगे. वस्तुतः संवाद का उद्देश्य आपसी मतभेद दूर करना उतना नहीं है जितना कि सोवियत संघ के विरोध में एक दूसरे के अधिकाधिक निकट आना.

चीन ने अपने इस उद्देश्य को गोपनीय नहीं रखा भले ही श्री तेङ ने कूटनीतिक गोपनीयता पर बल दिया हो. अक्तूबर में डॉ. कीसिंगर से और अब राष्ट्रपति फोर्ड से बातचीत के दौरान चीनी नेताओं ने सोवियत संघ से संबंध सुधारने के अमेरिका के प्रयास पर अपनी नाराज़गी ज़ाहिर की है—न केवल कार्यकारी प्रधानमंत्री तेङ ने बल्कि 82 वर्षीय रुग्ण, अध्यक्ष माओ ने भी. (अध्यक्ष माओ ने 6 दिसंबर को अपने 82 वर्ष पूरे किये.) दोनों देशों के बीच असहमति का एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा अमेरिका-सोवियत संबंध है. और इसी लिए सोवियत संघ ने फोर्ड की चीन यात्रा पर तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की, यद्यपि राष्ट्रपति फोर्ड ने पीकिङ से यकर्त्ता पहुँचते ही यह घोषणा की कि अमेरिका विश्व भर में शांति स्थापना के अपने प्रयास जारी रखेगा. यानी वह ऐसी हर स्थिति से बचेगा जिस के कारण अमेरिका और उस के वास्तविक प्रतिद्वंद्वी सोवियत संघ के बीच टकराव की संभावना पैदा होती हो, भले ही इस नीति से अमेरिका और चीन के संबंध सुधरने की प्रक्रिया में शैथिल्य आये. राष्ट्रपति फोर्ड का मनीला में यह कहना कि शस्त्रास्त्रों में अमेरिका एकतरफ़ा कटौती नहीं कर सकता और सोवियत संघ का यह संकेत कि वह सामरिक अस्त्र परिसीमित वार्त्ता में आये हुए गतिरोध को समाप्त करने के लिए उत्सुक है, अप्रासंगिक नहीं है. दोनों ने अपने अपने ढंग से चीन को यह बता दिया कि वह ख़ुश हो या नाख़ुश अमेरिका और सोवियत संघ

श्रीमती फोर्ड, तेङ और फोर्ड : जनवादी चीन की सैनिक टुकड़ी का निरीक्षण

अपना संवाद जारी रखेंगे. ऐसी स्थिति में सत्तासंघर्ष में उलझे चीनी नेताओं के सामने भी और कोई चारा नहीं है कि वे अमेरिका से संवाद बनाये रखें. इस से न केवल उन्हें सीमा पर सोवियत दबाव कम महसूस होगा बल्कि उन्हें अपनी विस्तारवादी आकांक्षाओं को पूरा करने का अवसर मिलेगा.

एशिया में अमेरिका बना रहे, इस पर चीन को कोई आपत्ति नहीं क्योंकि इस से एशियाई देशों में सोवियत संघ के प्रभाव को बांधा जा सकेगा. चीनी नेता यह भी सोचते हैं कि एशिया के लिए अमेरिका एक बाहरी शक्ति है और उसे इस भूभाग से आवश्यकता पड़ने पर या उस की उपस्थिति से वांछित लाभ उठा लिये जाने पर निकाल बाहर करना अपेक्षाकृत आसान होगा. इसी लिए चीन घाटा उठा कर भी फिलहाल एशिया में अमेरिकी नीति का विरोधी होते हुए भी यहां उस की उपस्थिति का पक्षधर बना हुआ है. पिछले दिनों जब यह चर्चा चली कि फिलीपीन सरकार अपने यहां स्थित अमेरिकी सैनिक अड्डे खाली करवाना चाहता है तो चीन ने वहां अपने सैनिक अड्डे स्थापित करने की पेशकश की थी परंतु अब फोर्ड के फिलीपीन जाने पर राष्ट्रपति मारकोस ने यह कहा कि वह एशिया में अमेरिका की उपस्थिति को आवश्यक मानते हैं और यह कि उन्हें फिलीपीन में अमेरिकी सैनिक अड्डों के बने रहने पर फिलहाल कोई आपत्ति नहीं है (दोनों पक्ष अड्डों की स्थिति पर कालांतर में पुनर्विचार करने पर अवश्य सहमत हुए) तो चीन चुप्पी लगा गया. उसे हिंदमहासागर में भी अमेरिका की उपस्थिति पर कोई एतराज नहीं है.

इस सारे परिप्रेक्ष्य में यदि राष्ट्रपति फोर्ड अपनी चीन-यात्रा को 'महत्त्वपूर्ण यात्रा' कहें और अध्यक्ष माओ से अपनी बातचीत को 'मैत्रीपूर्ण, उत्साहवर्द्धक, ठोस और रचनात्मक' बतायें तो यह स्वाभाविक ही है. 'नयी शैली' की 'गोपनीय कूटनीति' का अर्थ यही है कि हाथी के दांत खाने के और दिखाने के और होते हैं.

नेपाल

तुलसी गिरि की नियुक्ति

पहली दिसंबर को महाराज वीरेंद्र ने प्रधानमंत्री नगेंद्र प्रसाद रिजाल का इस्तीफा स्वीकार कर के और उन का पद 48 वर्षीय डॉ. तुलसी गिरि को सौंप कर अपने देशवासियों और नेपाल में दिलचस्पी रखने वालों को एकबारगी हैरत में डाल दिया, क्योंकि एक तो इस तरह के परिवर्तन की आशंका नहीं थी और दूसरे इस लिए भी कि रिजाल के पदत्याग का कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं दिखायी देता. श्री रिजाल ने इस्तीफे के संबंध में कहा है कि राष्ट्रीय पंचायत की मेरी सदस्यता की अवधि निकट भविष्य में समाप्त होने वाली थी. यह बात सही है, लेकिन वह संवत् 2033 के चैत्र तक, यानी मध्य अप्रैल 1976 तक अपने पद पर कायम रह सकते थे, क्योंकि सदस्यता की अवधि चालू संवत् वर्ष के अंत में ही समाप्त होती.

हो सकता है कि इस वर्ष के आरंभ में नेपाल नरेश द्वारा गठित संवैधानिक संशोधन आयोग की सिफ़ारिशों के कारण प्रधानमंत्री बदला गया हो. यह शाही आयोग पूर्वकालिक मंत्री और सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश अनिरुद्धप्रसाद सिंह की अध्यक्षता में गठित किया गया था. उन की सिफारिशें अभी सामने नहीं आयी हैं, मगर आशा है कि 15 दिसंबर को या उस के आसपास को वे प्रकाशित की जायेंगी. 15 वर्ष पहले इसी तारीख को कोइराला की निर्वाचित सरकार को बर्खास्त किया गया था और यह दिन 1962 से 'संविधान दिवस' के रूप में मनाया जाता है. 16 दिसंबर 1962 को नये संविधान की, जिस के अधीन पंचायत का गठन होता है, घोषणा की गयी थी. आयोग की सिफारिशों के प्रकाशन के पूर्व उन के बारे में टिप्पणी नहीं की जा सकती, लेकिन नेपाल के कुछ राजनैतिक प्रेक्षकों का खयाल है कि 11 वर्ष के राजनैतिक संन्यास के बाद प्रधानमंत्री पद पर डॉ. गिरि की प्रतिष्ठा का एक ही अर्थ हो सकता है. वह यह है कि महाराजा वीरेंद्र मौजूदा शासनतंत्र को ज्यादा उदार बनाने की नहीं सोच रहे हैं. ऐसी परिस्थिति में जब जनता की सारी अपेक्षाएं पूरी हो सकने की संभावना न हो तो प्रधानमंत्री के पद पर ऐसे व्यक्ति को बिठाना समझ में आता है जो हर कदम तौल कर उठाये और उस पर दृढ़ रहे. इस वक्त नेपाल में डॉ. गिरि के अलावा कोई भी ऐसा राजनीतिक नहीं है जो राज्याध्यक्ष की इच्छाओं का पालन करते हुए पंचायत प्रणाली में जान फूंक सके.

डॉ. तुलसी गिरि ने चिकित्साशास्त्र की डिग्री ली है, मगर वह हमेशा राजनीति में ही लिप्त रहे हैं. कोइराला सरकार के पतन के बाद 26 दिसंबर 1960 को महाराज महेंद्र ने 9 सदस्यों की मंत्रिपरिषद् में जिसे पहला स्थान दिया था वह थे डॉ. तुलसी गिरि—महाराज खुद परिषद् के अध्यक्ष बने थे. तब से ले कर 25 जनवरी 1965 को मंत्री पद से निवृत्त होने तक तुलसी गिरि दलविहीन पंचायत प्रणाली के विकास और फिर उसे मजबूत बनाने में महाराज महेंद्र की पूरी सहायता करते रहे. पिछले वर्षों में अन्य सत्ताधारी राजनीतिकों के विपरीत डॉ. गिरि ने कभी कोई ऐसा बयान नहीं दिया जिस से लगा हो कि पंचायत प्रणाली के प्रति उन का मोह टूट गया है. इस लिए यह माना जा सकता है कि तुलसी गिरि के नेतृत्व में पंचायत प्रणाली का वही स्वरूप बना रहेगा जो इस वक्त है या जैसा महाराज वीरेंद्र पसंद करते हैं.

तुलसी गिरि के राजनैतिक जीवन में कई उतार चढ़ाव आये हैं. सन् 1927 में नेपाल तराई में सिरहा जिले के बतासपुर गांव में जन्मे तुलसी गिरि ने दरभंगा मेडिकल कॉलेज से स्नातक परीक्षा पास की और चिकित्सा न कर के नेपाली कांग्रेस में चले गये. वह शीघ्र ही विश्वेश्वरप्रसाद कोइराला के विश्वासी बन गये. कोइराला 1952 में दल के अध्यक्ष बने और कुछ वर्ष बाद तुलसी गिरि कांग्रेस के महासचिव बने. उन के साथ दूसरे महासचिव थे श्री विश्वबंधु थापा. 1959 के आरंभ में जब आम चुनाव हुए तो तुलसी गिरि ने 'प्रतिनिधि सभा' के लिए चुनाव नहीं लड़ा, मगर बाद में वरिष्ठ सदन (महासभा) के सदस्य चुने गये और 27 मई को मंत्री बने. वह विदेश विभाग चाहते थे, मगर मिला उन्हें ग्रामीण विभाग. 32 वर्षीय उत्साही तुलसी गिरि को यह पसंद नहीं आया.

डॉ. तुलसी गिरि : वापसी

कुछ लोगों का कहना है कि यह कोइराला-गिरि मतभेद की शुरुआत थी, जिस का अंत अगले वर्ष सितंबर (1960) में तुलसी गिरि के पद त्याग से हुआ. यह कहना मुश्किल है कि कोइराला से तुलसी गिरि के संबंध विच्छेद में महाराजा महेंद्र की क्या भूमिका थी, लेकिन यह सब को मालूम है कि 15 दिसंबर 1960 को कोइराला सरकार के पतन के दस दिन बाद 26 दिसंबर को नौ मंत्रियों की परिषद के उपाध्यक्ष बना दिये गये. बाद में वह उस के अध्यक्ष भी नियुक्त हुए. डॉ. गिरि ने दिसंबर 1963 में स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण इस्तीफा दे दिया, मगर फरवरी 1974 में वह फिर वापस बुला लिए गये. 25 जनवरी, 1965 को उन्होंने क्यों इस्तीफा दिया, यह नहीं मालूम, लेकिन कहा जाता है कि वह अपने मित्र और साथी डॉ. नागेश्वर प्रसाद सिंह का साथ नहीं छोड़ना चाहते थे और महाराजा श्री सिंह को रखने के पक्ष में नहीं थे.

डॉ. गिरि अत्यंत व्यवहार कुशल, स्पष्ट धारणाओं वाले और अंतर्राष्ट्रीय मामलों के अच्छे जानकार हैं. इस के साथ ही वह स्पष्ट वक्ता भी हैं. यही वजह है कि प्रधानमंत्री का पद संभालने के बाद डॉ. गिरि ने कहा कि नेपाल, भारत और चीन को आपस में भिड़ाना नहीं चाहता, और यह भी कि मौका मिलते ही वह आपसी संबंधों को पुनः मधुर बनाने के लिए भारत आयेंगे, तो उस का विशेष महत्व हो गया. इस के पहले विदेशमंत्री के रूप में उन का कार्यकाल चीन और नेपाल के बढ़ते हुए संबंधों का साक्षी रहा है. 15 अक्तूबर 1961 में डॉ. गिरि ने पीकिङ में उस समझौते पर हस्ताक्षर किये थे जिस के अधीन काठमांडू से तिब्बत सीमांत के गाँव, कोदाली तक 104 किलोमीटर लंबी सड़क बनी. इसी अवधि में नेपाल और पाकिस्तान के संबंध घनिष्ठतर हुए थे. इन कारणों से कुछ लोग डॉ. गिरि को पीकिङ पंथी मानते हैं, लेकिन यह आरोप सही नहीं हैं क्योंकि डॉ. गिरि ने कई बार भारत और नेपाल के बीच खाई पाटने में पहल की है. उदाहरण के लिए 1963 के आरंभ में डॉ. गिरि अनौपचारिक रूप से दिल्ली आये और तत्कालीन गृहमंत्री लालबहादुर शास्त्री से भेंट की और भारत से संबंध सुधारने के तरीकों पर विचार विमर्श किया. इसी के बाद मार्च 1963 में श्री शास्त्री की प्रसिद्ध काठमांडू यात्रा हुई, जो दोनों देशों के परंपरागत संबंधों को पुनः तनाव मुक्त करने में काफी हद तक सफल रही.

अपने राजनैतिक संन्यास के दौरान डॉ. गिरि सूर्य बहादुर थापा के जमाने में कारावास में भी रह आये हैं. 1968 में उन्हें राष्ट्रीय हित के विरुद्ध काम करने के आरोप में जनकपुर में पकड़ लिया था, लेकिन कुछ महीने बाद उन्हें रिहा कर दिया गया. इस के कुछ समय बाद महाराजा के विशेष परामर्शदाता के रूप में उन की नियुक्ति हो गयी. तब से वह इसी पद पर रहे हैं. शायद इसी वजह से इस बीच वह राष्ट्रीय पंचायत के चुनाव में नहीं खड़े हुए. लेकिन अब मौका आने पर महाराजा ने उन को पंचायत में नामज़द कर के प्रधानमंत्री नियुक्त कर दिया है. महाराजा 125 सदस्यों की राष्ट्रीय पंचायत में 16 व्यक्तियों को नामजद कर सकते हैं.

प्रधानमंत्री के रूप में डॉ. गिरि की नियुक्ति उन के 25 वर्ष के राजनैतिक जीवन का सब से संतोषदायी दिन साबित हुआ होगा. डॉ. गिरि पर्वतीय नेपाली हैं मगर वह नेपाली के अलावा हिंदी और मैथिली में धड़ल्ले से बोलते हैं. भारत में उन के बहुत से मित्र हैं. उन्हें तरह तरह की मोटरें रखने का बहुत शौक है.

लाओस

राजतंत्र से मुक्ति

काफ़ी लंबे समय के राजतंत्र की मुक्ति के बाद लाओस लोकतांत्रिक गणराज्य घोषित हो गया और वहाँ नयी सरकार की स्थापना हो गयी. राजकुमार सुवन्नवाङ नये गणराज्य के राष्ट्रपति बन गये हैं और श्री काइसोने भूम विहार्न प्रधानमंत्री बने हैं. उल्लेखनीय है कि लाओस में शांतिपूर्वक, यह महान् राजनैतिक परिवर्त्तन आया. निस्संदेह लाओस की नयी सरकार वामपंथी है. नये मंत्रिमंडल में वामपंथी संस्था 'पाथेट लाओ' के चार नेताओं को प्रमुख स्थान दिया गया है. बताया जाता है कि राजतंत्र से मुक्ति दिलाने और लाओस को लोकतांत्रिक गणराज्य बनाने में इन चारों नेताओं ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है. शायद इसीलिए इन चारों पाथेट लाओ नेताओं को उपप्रधानमंत्रियों का दर्जा दिया गया है. ये चारों, विदेश, वित्त, शिक्षा और रक्षा मंत्रालयों से संबद्ध हैं. लाओस के महाराज सवङ्वथान ने राजगद्दी छोड़ने की घोषणा पहले ही कर दी थी और अब वह अपने फ़ार्म पर शेष जीवन बिताने लुआङ प्रवाङ चले गये हैं. पर उन्हें राष्ट्रपति का सर्वोच्च सलाहकार बना दिया गया है और इसी प्रकार भूतपूर्व प्रधानमंत्री राजकुमार सुवन्नभूम को वर्त्तमान प्रधानमंत्री का सलाहकार नियुक्त कर दिया गया है.

विदेशनीति : नये लोकतांत्रिक गणराज्य लाओस की विदेशनीति पर दुनिया की निगाह लगी हुई है. वैसे विदेशनीति निर्धारण अभी नहीं हुआ है लेकिन प्राप्त संकेतों से पता चलता है कि नया गणराज्य तटस्थता की नीति पर चलेगा और विकासशील देशों के साथ संबंध बढ़ाने का प्रयत्न चल रहा है. जहाँ तक चीन और सोवियत संघ का संबंध है नयी लोकतांत्रिक सरकार संभवतः तटस्थ रहेगी चूंकि पाथेट लाओ के सभी प्रमुख नेता नयी सरकार में शामिल हैं इस लिए अंतरराष्ट्रीय मामलों में पीकिङ के बजाय नयी सरकार का झुकाव सोवियत संघ के प्रति ही अधिक रहेगा. राजधानी वीएनतीएन में एक सरकारी प्रवक्ता ने संकेत दिया है कि दक्षिणपूर्व एशिया के तटस्थ देशों के साथ संबंध गहरे और अच्छे होने की संभावना है. इस परिभाषा से तो थाईदेश और फ़िलीपीन से बहुत निकट और घनिष्ठ संबंध शायद इतने अधिक नहीं रहेंगे लेकिन फिर भी लाओस के बाकी दुनिया के साथ नये संबंधों के बारे में अभी कुछ कहा नहीं जा सकता.

लाओस में इस महान् परिवर्त्तन के लक्षण बहुत पहले से नज़र आ रहे थे. महाराज के गद्दी छोड़ने और अस्थायी सरकार के भंग होने से यही लगता है कि पाथेट लाओ नेता अगले वर्ष अप्रैल में चुनावों की प्रतीक्षा करना नहीं चाहते थे. पाथेट लाओ का प्रभाव देश पर काफ़ी बढ़ गया था.

राजकुमार सुवन्नभूम : नया पद

वैसे पिछले कुछ महीनों में मीकाङ नदी के पास थाईदेश और लाओस के बीच कुछ झड़पें भी हुई हैं. लेकिन लाओस के नया लोकतांत्रिक गणराज्य बनने के तुरंत बाद थाईदेश ने एलान किया कि वह लाओस की नयी सरकार को मान्यता दे सकता है.

लाओस के महाराज ने घोषणा की है कि उन्होंने अपनी मर्ज़ी से गद्दी छोड़ी है. महाराजा ने अपने त्यागपत्र में लिखा है कि देश की एकता और स्वतंत्रता मेरे लिए सर्वोपरि है इस लिए मैं अपनी इच्छा से गद्दी छोड़ रहा हूँ और अब मैं लाओस का महाराज नहीं हूँ.

लाओस की संयुक्त सरकार का नेतृत्व पिछले लगभग 19 महीने से राजकुमार सुवन्नभूम कर रहे थे. उन्होंने ही इस संयुक्त सरकार को भंग करने की घोषणा की. उत्तर वीएतनामी समाचार एजेंसी की एक खबर के अनुसार सुवन्नभूम लाओस गणराज्य की नयी सरकार के सलाहकार के पद पर काम करने के लिए

सहमत हो गये हैं. गणराज्य की समाप्ति की घोषणा के तत्काल बाद देश में कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन हुए हैं. अस्थायी सरकार भंग कर दी गयी है. इस सरकार के प्रधानमंत्री ने स्वयं ही यह घोषणा की कि अब लाओस में कोई अस्थायी सरकार नहीं रहेगी.

वर्तमान अस्थायी सरकार को भंग करने की माँग के सिलसिले में लाओस की राजधानी में पिछले कुछ दिनों से बड़ी बड़ी सभाएँ हो रही थीं. इन सभी सभाओं में समाजवाद की पक्षधर संस्था पाथेट लाओ का ही ज़ोर देखने में आया. जानकार सूत्रों के अनुसार अस्थायी सरकार के प्रधानमंत्री राजकुमार सुवन्नभूम एक तटस्थ व्यक्ति माने जाते रहे हैं. लगता है पाथेट लाओ का ज़ोर बढ़ने के बाद दक्षिणपंथी बहुत पहले ही अपना प्रभाव खो बैठे थे. अब नयी सरकार बनने से उन का रहा सहा प्रभाव भी समाप्त हो गया है. उधर बैंकाक से समाचार मिले हैं कि लाओस के बहुत से प्रसिद्ध नेता सीमा पार कर थाईदेश में शरण लेने जा रहे हैं. इन प्रमुख व्यक्तियों में महाराजा के एक भाई भी हैं. इन्होंने राजतंत्र समाप्त होने की घोषणा से पहले ही थाईदेश में प्रवेश पा लिया था.

लाओस में राजतंत्र की समाप्ति के लिए पिछले काफी वर्षों से प्रयत्न चल रहा था. जब से पाथेट लाओ के साथ मिल कर वहाँ संयुक्त सरकार की स्थापना हुई थी, तभी से यह विचार ज़ोर पकड़ गया था कि लाओस को राजतंत्र से मुक्ति दिला कर एक लोकतांत्रिक गणराज्य बनाना है. संयुक्त सरकार के नेता और पाथेट लाओ के प्रतिनिधि महाराजा से बराबर बातचीत करते रहे और उन को त्यागपत्र देने के लिए राज़ी करने की कोशिश करते रहे हैं. आखिर इन प्रयत्नों में सफलता मिली. राजतंत्र समाप्त करने की घोषणा से कुछ दिन पहले ही राजधानी वीएनतेन में काफी राजनैतिक सरगर्मियाँ देखने में आयीं. वैसे अस्थायी सरकार के प्रधानमंत्री महाराजा के निकटतम संबंधी थे पर महाराजा को गद्दी छोड़ने के लिए राज़ी करने में उन्होंने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी. वैसे महाराजा के राजनैतिक सलाहकारों में से अधिकांश इसी पक्ष में थे कि महाराजा को गद्दी छोड़ कर लाओस के लोकतांत्रिक गणराज्य बनने का मार्ग प्रशस्त करना चाहिए.

राजतंत्र की समाप्ति और लोकतांत्रिक गणराज्य की स्थापना की इस प्रक्रिया को लाओस में क्रांति का नाम दिया जा रहा है. लेकिन इस क्रांति से पहले वामपंथी संस्था पाथेट लाओ ने जनता को लोकतंत्र के लिए तैयार करने में काफी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है. लाओस दक्षिणपूर्व एशिया का एक छोटा सा देश है जो पिछले काफी समय से राजामहाराजाओं के अधीन अपने ढंग की एक अलग ही शासनप्रणाली के अंतर्गत था. यहाँ के प्राकृतिक साधन यद्यपि काफी हैं परंतु उन का ठीक प्रकार से उपयोग अब तक नहीं हुआ. लाओस [illegible] बड़ी मात्रा में बाहर से मँगाना पड़ता है और हाल ही में तेल की कीमतों की वृद्धि का असर लाओस की अर्थव्यवस्था पर भी पड़ा. अब लाओस एक लोकतांत्रिक गणराज्य बन गया और उस का शासन वहाँ की जनता चलायेगी. अतः आशा करनी चाहिए कि अपने साधनों का अच्छे से अच्छा उपयोग करने के साथ साथ लाओस अपनी अर्थव्यवस्था को भी एक नयी दिशा देगा.

आइसलैंड

मछली बाल कहाँ तक ?

आइसलैंड के तट पर मछली पकड़ने के ब्रिटेन के परंपरागत अधिकारों को ले कर दोनों देशों के बीच पिछले काफ़ी समय से तनाव चला आ रहा है. ब्रितानी लोकमत की राय में आइसलैंड अंतरराष्ट्रीय क़ानून की परंपराओं के विरुद्ध कार्य कर रहा है. इस संबंध में ब्रिटेन के लोगों ने जुलाई 1974 के अंतरराष्ट्रीय न्यायालय के फ़ैसले का उल्लेख भी किया है. अब यह मामला तूल पकड़ गया है. इस प्रश्न को ले कर दोनों देशों के बीच काफ़ी कटुता पैदा हो गयी है.

पिछले दिनों आइसलैंड की जनता की ओर से सभाएँ और प्रदर्शन कर के माँग की गयी कि ब्रिटेन के साथ राजनयिक संबंध खत्म कर दिये जाने चाहिए. आइसलैंड में ब्रितानी दूतावास के सामने विरोध प्रकट करने के लिए प्रदर्शन भी हुए और दूतावास पर अंडे और बर्फ़ के गोले फेंके गये. प्रदर्शनकारियों में अधिकांश आइसलैंड के युवक थे जिस से पता चलता था कि युवकों में इस प्रश्न को ले कर बहुत जोश है.

विरोध सभाओं में वक्ताओं की माँग थी कि मछली पकड़ने के संबंध में पश्चिम जर्मनी के साथ हाल का समझौता भी भंग कर दिया जाये. लोग आइसलैंड की संसद की ओर बहुत बड़ी तादाद में बढ़ रहे थे क्यों कि संसद में पश्चिम जर्मनी के साथ इस समझौते को ले कर विचारविमर्श होना था. जनता आइसलैंड के प्रधानमंत्री से माँग कर रही है कि ब्रिटेन सहित आइसलैंड के तट पर मछली पकड़ने वाले देशों के साथ सभी समझौते और परंपराएँ आदि बिल्कुल खत्म कर दी जायें. सभाओं और विरोध प्रदर्शनों का आयोजन नाविकों के संगठनों के महासंघ की ओर से किया गया था. इस महासंघ पर वामपंथियों का प्रभुत्त्व है. सभी वामपंथी संस्थाओं और नेताओं की माँग है कि आइसलैंड के तट पर मछली पकड़ने की अनुमति यदि बराबर दूसरे देशों को दी जाती रही तो आइसलैंड की अर्थव्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जायेगी. इस संबंध में पश्चिम जर्मनी के साथ समझौते के खिलाफ़ इतना रोष नहीं है जितना कि ब्रिटेन के परंपरागत अधिकारों को ले कर है. ब्रिटेन के साथ इस संबंध में आइसलैंड का कोई विधिवत् समझौता नहीं है. लेकिन ब्रिटेन की नावें पिछले काफ़ी समय से आइसलैंड के तट पर मछलियाँ पकड़ती रही हैं. जब इस पर आपत्ति की गयी तो ब्रिटेन ने अपने अधिकार के लिए तोप नौकाएँ समुद्र में भेजीं जिस के कारण मामला और भी गंभीर हो गया.

मज़दूर संघों की भूमिका : आइसलैंड से प्राप्त समाचारों के अनुसार आइसलैंड के मज़दूर संघ इस आंदोलन में प्रमुख हैं. पिछले काफ़ी समय से आइसलैंड की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए मज़दूर संघ विशेष कर नाविकों के मज़दूर संघ माँग करते रहे हैं कि आइसलैंड के किनारे पर मछली पकड़ने के विदेशियों के अधिकारों को सीमित किया जाये. पिछले दिनों आइसलैंड ने मछली पकड़ने की अपनी समुद्री सीमाएँ बढ़ा दी थीं जिस से कि तट के बहुत भीतर आ कर विदेशी जहाज़ मछलियाँ न पकड़ सकें. ब्रिटेन ने इस प्रश्न को ले कर अंतरराष्ट्रीय न्यायालय में जाने का फ़ैसला किया था कि आइसलैंड को मछली पकड़ने की अपनी सीमाओं का विस्तार करने का कोई अधिकार नहीं है. उधर आइसलैंड का कहना था कि कोई भी अंतरराष्ट्रीय क़ानून किसी भी स्वतंत्र देश को अपनी समुद्री सीमाएँ बढ़ाने से रोक नहीं सकता. हेग में अंतरराष्ट्रीय न्यायालय इस प्रश्न पर निर्णय दे चुका है कि आइसलैंड 50 मील से आगे तक मछली पकड़ने की अपनी समुद्री सीमा का विस्तार नहीं कर सकता. इस फ़ैसले को हालाँकि तीन वर्ष हो गये लेकिन आइसलैंड और ब्रिटेन के बीच इस प्रश्न पर तनातनी चली आ रही है और अब इस तनातनी ने बहुत गंभीर रूप धारण कर लिया है. अंतरराष्ट्रीय न्याय के फ़ैसले के आधार पर ब्रिटेन मछली पकड़ने के अपने अधिकार को उचित ठहरा रहा है. इधर आइसलैंड के समुद्री सीमाएँ बढ़ाने के अधिकार को जनता का समर्थन प्राप्त हो रहा है. आइसलैंड के लोगों का कहना है कि हमारा देश दो सौ मील तक समुद्री सीमाओं का विस्तार कर के दूसरे देशों को अपने समुद्र में मछली पकड़ने से रोक सकता है. इस संबंध में संयुक्तराष्ट्र का सिद्धांत आइसलैंड के पक्ष में है. समुद्र के संबंध में क़ानून को ले कर संयुक्तराष्ट्र के एक सम्मेलन ने घोषणा की थी कि कोई भी स्वतंत्र देश 200 मील तक अपनी समुद्री सीमा का विस्तार कर सकता है. वैसे अगले वर्ष मार्च में समुद्र संबंधी क़ानूनों के बारे में संयुक्तराष्ट्र का एक और सम्मेलन होने वाला है. इस सम्मेलन में संभवतः यह निर्णय लिया जायेगा कि मछली पकड़ने के संदर्भ में समुद्री सीमा का विस्तार करने का अधिकार किसी स्वतंत्र देश को कितने मील तक का है. लेकिन संयुक्तराष्ट्र सम्मेलन में यह प्रश्न तय होने से

पहले आइसलैंड और ब्रिटेन के बीच इस प्रश्न को ले कर जो तनातनी चल रही है वह तब तक काफ़ी उग्र रूप धारण कर सकती है. ऐसी स्थिति में ब्रिटेन और आइसलैंड के सामने बातचीत द्वारा समस्या का समाधान करने के सिवाय कोई और चारा नहीं है.

अंगोला

युद्ध या गृहयुद्ध

पुर्तगाल द्वारा अंगोला को आज़ादी दिये जाने के एक महीने के अंदर ही अफ्रीका के इस समृद्धतम प्रदेश को अपने अधिकार क्षेत्र में बनाये रखने के लिए विभिन्न साम्राज्यवादी शक्तियों के बीच जो होड़ शुरू हुई है उसे देखते हुए यह कहना कठिन है कि निकट भविष्य में अंगोला की जनता को व्यापक गृह-युद्ध से राहत मिल सकेगी. देश के तीनों मुक्ति संगठनों, 'अंगोला जन मुक्ति आंदोलन' (एम. पी. एल. ए.), 'अंगोला राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा' (एफ़. एन. एल. ए.) और 'अंगोला पूर्ण स्वाधीनता संघ' (यूनीटा), में से किसी न किसी की आड़ ले कर सोवियत संघ, क्यूबा, दक्षिण अफ्रीका, रोडेसिया, ज़ैयरे, कांगो आदि के सैनिक अंगोला की सीमा में घुस चुके हैं और इन में घमासान युद्ध जारी है. तेल की दृष्टि से समृद्ध काबिंदा प्रदेश, जिसे एम. पी. एल. ए. का मुक्तांचल समझा जाता था, 11 नवंबर के पहले ही अशांत हो चुका है और वहाँ 'काबिंदा मुक्ति मोर्चा' (फ्लेक) के छापामार एम. पी. एल. ए. के छापामारों का मुक़ाबला कर रहे हैं. इस बात के भी संकेत हैं कि इस प्रदेश में एम. पी. एल. ए. के 600 से भी अधिक छापामार अपने सोवियत निर्मित्त हथियारों के साथ 'फ्लेक' के छापामारों से जा मिले हैं.

'अंगोला राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा' के नेता होल्डेन राबर्टो और 'अंगोला पूर्ण स्वाधीनता संघ' के नेता जोनास साविंबी के समर्थकों का यह कथन काफ़ी सही लगता है कि उन का देश दो महाशक्तियों—सोवियत संघ और अमेरिका—की आपसी प्रतिस्पर्द्धा का शिकार बन चुका है. 'जन मुक्ति आंदोलन' के नेता अगस्टीनो नेतो एक जाने माने कवि हैं और अभी तक वामपंथी विचारों के लिए काफ़ी ख्याति अर्जित कर चुके हैं पर इधर के कुछ वर्षों में उन की जो तस्वीर सामने आयी है उस से यही पता चलता है कि उन का वामपंथ केवल सोवियत संघ के समर्थन तक ही सीमित है.

एलवोर वार्त्ता से कुछ ही दिनों पहले मोंबासा (केन्या) में तीनों संगठन के नेताओं अगस्टीनो नेतो, होल्डेन राबर्टो और जोनास साविंबी के बीच दो दिनों की बातचीत के बाद जारी विज्ञप्ति में स्पष्ट रूप से कहा गया था कि अब से तीनों संगठन उपनिवेशवाद की समाप्ति से संबंधित सभी मसलों पर और देश की सुरक्षा तथा इस के पुनर्निर्माण के प्रश्न पर एक साथ काम करेंगे. इसी स्थिति को आधार बना कर एलवोर वार्त्ता संपन्न हुई और एक क्षीण आशा उत्पन्न हुई कि अब शायद तीनों संगठनों के बीच एकता कायम हो जाये पर ज़ेयरे के राष्ट्रपति मोबुतु के द्वारा होल्डेन राबर्टो को मिलने वाली अमेरिकी सहायता तथा अगस्टीनो नेतो को मिलने वाली सोवियत सहायता ने यह एकता नहीं कायम होने दी. इस से पहले भी एकता के कई प्रयास हो चुके थे. 1973 में तो 'जन मुक्ति आंदोलन' और 'राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा' की एक संयुक्त सैनिक कमान का भी गठन हो गया था पर वह भी अधिक समय तक नहीं चल सका.

11 नवंबर को आज़ादी की विधिवत घोषणा से पूर्व ही सोवियत संघ ने यह कहना शुरू कर दिया था कि वह एम. पी. एल. ए. की सरकार को मान्यता देगा. संभवतः सोवियत रवैये को देखते हुए एफ़. एन. एल. ए. और यूनीटा ने 5 नवंबर को संयुक्त सैनिक और राजनैतिक कमान के गठन की घोषणा की जो अभी भी बनी हुई है. . अंगोला जन मुक्ति आंदोलन ने 11 नवंबर को संपूर्ण अंगोला पर अपना अधिकार घोषित कर के अगस्टीनो नेतो को देश का राष्ट्रपति बनाया और लुआंडा अपनी राजधानी घोषित की जब कि 'राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा' और 'पूर्ण स्वाधीनता संघ' ने नोवा लिजबोआ में अपनी सरकार का गठन किया और इस की राजधानी का नाम हुआंबो रखा. लुआंडा सरकार को स्थापना के कुछ ही समय के अंदर सोवियत संघ सहित अनेक देशों ने मान्यता दे दी और 14 नवंबर तक राजधानी लुआंडा, क्यूबा और सोवियत संघ के सैनिकों से भर गया. इन का उद्देश्य था देश के बाकी हिस्सों पर क़ब्ज़ा करना. प्राप्त समाचारों के अनुसार 14 नवंबर को 400 सोवियत सैनिक विशेषज्ञ लुआंडा पहुँच चुके थे. इस से पूर्व लगभग 2500 क्यूबाई सैनिक भी पहुँच चुके थे. उधर होल्डेन रोबर्टो और जोनास साविंबी की तरफ़ से दक्षिण अफ्रीका और रोडेसिया की अल्पमत गोरी सरकारों को सैनिक लड़ रहे हैं जो अत्यंत ही दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है. यह स्थिति सोवियत संघ के लिए अच्छी हो सकती है क्योंकि इस से उसे अंगोला में अपनी मौजूदगी का औचित्य प्रमाणित करने का अवसर मिल जाता है लेकिन जहाँ तक अफ्रीकी जनता के हित की बात है इसे दुर्भाग्यपूर्ण ही कहा जायेगा.

अगस्टीनो नेतो की सेनाओं का 11 नवंबर से पूर्व देश के 16 प्रांतों में 10 से भी अधिक पर अधिकार का दावा था पर अन्य दोनों संगठनों की सेनाओं के बढ़ने के साथ ही यह भी स्पष्ट हो गया कि नेतो के सैनिक इन 10 प्रांतों में छिटपुट रूप से बिखरे हुए थे न कि उन का वहाँ अधिकार था. लड़ाई तेज़ होने पर इन सैनिकों को राजधानी लुआंडा की ओर बढ़ना पड़ा और खाली किये प्रांतों में रोबर्टो की सेना का क़ब्ज़ा हो गया. रोबर्टो और साविंबी के सैनिकों की कोशिश है कि राजधानी लुआंडा को चारों तरफ़ से घेर लिया जाये ताकि अंत में आसानी से लुआंडा पर अधिकार किया जा सके. ताजा समाचारों के अनुसार नेतो के सैनिक सोवियत और क्यूबाई सैनिकों की मदद से 896 मील लंबी बेनगुएला रेल मार्ग पर कब्ज़ा करने के लिए लड़ रहे हैं. यह रेल मार्ग ज़ेयरे और ज़ांबिया को अंगोला के प्रसिद्ध बंदरगाह लोबितो से जोड़ता है. बेनगुएला रेलमार्ग पर यूनीटा का कब्जा बनाये रखने में ज़ांबिया की विशेष दिलचस्पी है क्योंकि ताँबे का निर्यात करने के लिए उसे इसी मार्ग की मदद लेनी पड़ती है. जोनास साविंबी को राष्ट्रपति केनेथ काउंडा का पहले से ही समर्थन प्राप्त है और इस मुद्दे पर ज़ांबिया को भी सोवियत समर्थक नेतो के खिलाफ़ खड़ा होना पड़ रहा है. यह एक अजीब सी स्थिति है कि अब तक गोराशाही के खिलाफ लड़ने वाले देशों को उन शक्तियों का साथ देना पड़ रहा है जिन्हें गोरी सरकारें भी सोवियत विरोध के नाम पर मदद दे रही हैं.

अंगोला को एक दीर्घकालिक युद्ध की चपेट से अब अफ्रीकी एकता संगठन या संयुक्त राष्ट्र ही बचा सकता है. अफ्रीकी एकता संगठन के वर्तमान अध्यक्ष उगांडा के राष्ट्रपति ईदी अमीन ने सोवियत संघ के हस्तक्षेप पर अपनी नाराज़गी पहले ही प्रकट कर दी है और वे इस पक्ष में नहीं हैं कि तीनों संगठनों में से किसी एक की सरकार को मान्यता दे कर उन के आपसी बैरभाव को और बढ़ाया जाये. ईदी अमीन का कहना है कि सभी विदेशी सैनिक अंगोला से बाहर जायें और तीनों संगठनों को आपस में मिल कर कोई समाधान ढूँढ़ने का मौक़ा दें. अफ्रीकी एकता संगठन के उन सदस्यों ने, जो सोवियत संघ की नीतियों का समर्थन करते हैं, बार बार इस बात पर ज़ोर दिया है कि नेतो के खिलाफ़ 'भाड़े के सैनिक' लड़ रहे हैं जब कि सोवियत विरोधी अफ्रीकी देशों का विचार है कि इस सारी स्थिति के लिए सोवियत संघ ज़िम्मेदार है. स्वयं अफ्रीकी एकता संगठन के सामने एकता टूटने का अभूतपूर्व संकट पैदा हो गया है. संगठन के 29 सदस्य देशों ने एक आपात् बैठक बुलाने की माँग की है. वैसे तो बैठक बुलाने के लिए कम से कम 31 देशों द्वारा अपील किया जाना ज़रूरी है, पर यदि 31 देशों ने अपील कर भी दी तो बैठक निश्चित रूप से बुलायी ही जायेगी इस में संदेह है. कारण यह है कि ईदी अमीन ने 16 नवंबर को संगठन के विशेष शिखर सम्मेलन बुलाये जाने की माँग को नामंज़ूर करते हुए कहा था कि अंगोला में संगठन की एक 'शांति स्थापना सेना' भेजी जानी चाहिए और यह तभी भेजी जा सकती है जब विदेशी ताक़तें अंगोला से अपना हाथ खींच लें.

अन्न की अर्थव्यवस्था

अमेरिकी संस्था 'वर्ल्ड वॉच इंस्टीट्यूट' के अध्यक्ष लेस्टर आर. ब्राउन विश्व की अस्तव्यस्त खाद्य स्थिति के लिए रूस की गोपनीयता को जिम्मेदार ठहराते हैं. उन्होंने रूस की इस बात के लिए भर्त्सना की है कि 1974 में रोम में संपन्न खाद्य सम्मेलन में यह तय होने के बावजूद कि हर अन्न उत्पादक देश अपने यहाँ के उपज के आँकड़ों की जानकारी ठीक ठीक देगा, रूस ने इस को नज़रअंदाज़ कर दिया है और दुनिया भर में खाद्य की स्थिति को ठीक करने के अंतरराष्ट्रीय प्रयास पर ज़बरदस्त कुठाराघात किया है. लेस्टर ब्राउन, जो पहले अमेरिका के कृषि विभाग से संबद्ध थे, यह मानते हैं कि खाद्य स्थिति तब तक ठीक नहीं हो सकती जब तक अमेरिका और कैनाडा अन्न नीति के बारे में संयुक्त रूप से समझौता नहीं कर लेते, क्यों कि यही दो देश ऐसे हैं जिन के हाथों में भूख से बिलबिलाती दुनिया को खाद्य मुहैय्या करने की चाबी है, जो कि इतनी शक्तिशाली है कि तेल का निर्यात करने वाले देश भी इस का मुकाबला नहीं कर सकते. उन का कहना है कि खाद्य राजनैतिक शक्ति का प्रतीक है और इसी लिए कैनाडा और अमेरिका को इस जीवन मरण की समस्या का भार मज़बूती से उठाना चाहिए.

'वर्ल्ड वॉच' द्वारा प्रकाशित एक रपट के अनुसार विश्व में अन्न का परिमाण जिस गति से बढ़ रहा है, जनसंख्या उसे से कहीं अधिक तेज़ी से बढ़ रही है. कुछ ही वर्षों में कैनाडा और अमेरिका इस बात का फ़ैसला करने की स्थिति में पहुँच जायेंगे कि कौन-कौन से देशों को भोजन दिया जाए और किन-किन को भूखा रखा जाए. यह समस्या दिन-ब-दिन इतना विकराल रूप धारण करती जा रही है कि रूस द्वारा अचानक ही अन्न बाज़ार पर धावा बोल देना भी उस का मुकाबला नहीं कर सकती, जो कि चुपचाप, हठात ही इतने बड़े परिमाण में अन्न ख़रीद लेता है कि उस से सारे विश्व की खाद्य स्थिति बुरी तरह गड़बड़ा जाती है. हाल ही में अमेरिका और रूस के बीच हुए एक समझौते से स्थिति कुछ काबू में है और कुछ समस्याओं से निपटने का रास्ता नज़र आ रहा है.

अन्न भंडार और भूखी दुनिया की तुलना करते हुए 'वर्ल्ड वॉच' की इस रपट में कहा गया है इस समय जो अन्न उपलब्ध है उस से दुनिया के लोग केवल तीस दिन का भोजन प्राप्त कर सकते हैं, जब कि 1962 में 105 दिन का अन्न जमा था. अमेरिका ने 5 करोड़ एकड़ सुरक्षित भूमि पर अतिरिक्त अन्न उपजाने का फ़ैसला किया है, जिस का केवल अस्थायी प्रभाव ही पड़ सकता है.

दुनिया भर में अन्न के भाव तीन गुना बढ़ गये हैं और अन्न आयात करने वाले देशों की माँग बढ़ गयी है, मेक्सिको, वेनेज़ुएला, पेरू, और ब्राज़ील जैसे देशों में जनसंख्या बढ़ने की 3 प्रतिशत रफ्तार इस शतक के दौरान 19 गुना जनसंख्या बढ़ने के बराबर है, विशेष कर ब्राज़ील की जनसंख्या लगभग दोगुनी बढ़ जाने की संभावना है. विशेषज्ञ इस बात से चिंतित हैं और उन का कहना है कि अमेरिका और कैनाडा जैसे देशों को, जो कि सारी दुनिया की खाद्य की पेटी संभाले हुए हैं, भविष्य के लिए योजना बनानी चाहिए. अब मसला यह नहीं रह गया है कि खाद्य शक्ति का प्रतीक है या नहीं, बल्कि यह देखना होगा कि उस शक्ति का उपयोग किस तरह किया जाए.

उत्तर अमेरिका में मौसम के गड़बड़ा जाने से करोड़ों लोग प्रभावित होते हैं; ऐसा आँकड़े दिखाते हैं. यही एक विश्व का इलाका है जो सारी दुनिया के लिए खाद्य जुटाने वाले के रूप में उभरा है. 1934-38 में लातीनी अमेरिका, पूर्वी यूरोप, रूस, अफ्रीका, एशिया, न्यूज़ीलैंड और ऑस्ट्रेलिया भी अन्न निर्यात करते थे. अन्न का सबसे बड़ा ख़रीदार पश्चिमी यूरोप था, जब कि उत्तर अमेरिका इस समय केवल 50 लाख मीट्रिक टन अन्न ही निर्यात करता था. उस के बाद से पासा पलट गया है और अमेरिका दुनिया के अन्नदाता के रूप में सामने आया है. 1975 में जो परिवर्त्तन हुए वे अप्रत्याशित होने के साथ आश्चर्यजनक भी थे. उत्तर अमेरिका इस समय 9 करोड़ 40 लाख टन मीट्रिक अन्न का निर्यात करता है. ऑस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड को छोड़ कर अब लगभग अन्य सारे देश अन्न का आयात करने वालों में शामिल हो गये हैं. ऑस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड 80 लाख टन खाद्य बाहर भेजते हैं. 'वर्ल्ड वॉच' ने अपनी रपट यह बता कर ख़त्म की है कि यदि यह जानने की कोशिश की जाए कि कौन सा ऐसा एक मात्र मुद्दा है जिस ने विश्व व्यापार का रूप ही परिवर्त्तित कर दिया है तो पता चलेगा कि जनसंख्या बढ़ने की भिन्न-भिन्न दर ही इस के लिए जिम्मेदार है.

रूसी सरकार ने अभी तक अगले वर्ष की फ़सल के अनुमान के बारे में स्पष्ट कुछ कहा नहीं है, लेकिन पश्चिमी विशेषज्ञों के अनुसार इस वर्ष के शुरू में अन्न उत्पादन का जो लक्ष्य रखा गया था उस से एक चौथाई कम अन्न उपजने की संभावना है. ऐसा यदि हुआ तो इस दृष्टि से, अगला वर्ष 1967 के बाद का सब से बुरा वर्ष होगा. इस वर्ष भी उक्रेन उत्तर कॉकेशस और कज़ाक की अन्न उपजाऊ भूमि विकट सूखा की शिकार हो जाने के कारण अन्न उत्पादन में बड़ा घाटा रह गया, जिस कारण रूस ने झटपट विश्व बाज़ार से दो करोड़ टन अनाज ख़रीदने का फ़ैसला किया. अनाज के अलावा अन्न पैदावार भी इस देश में कम ही हुई, जिस से यह संकेत मिलता है कि कई पैदावारों में इस वर्ष कटौती की गयी है.

दिसंबर के आरंभ में रूस की संसद ने फ़सल उत्पादन की सारी स्थिति का जायज़ा लेते हुए यह स्वीकार किया है कि इस दशक का यह कृषि की दृष्टि से सब से बुरा समय है. और उस के लिए हल्के उद्योगों के विकास की गति धीमी करने के लिए सरकार को मजबूर होना पड़ा है. इस बारे में यद्यपि कोई आँकड़े पेश नहीं किये गये हैं लेकिन विदेशी पर्यवेक्षक समझ गये हैं कि रूस अन्न उत्पादन के अपने लक्ष्य से बहुत पिछड़ गया है. इस कमी को पूरा करने के लिए विभिन्न प्रयास किये जा रहे हैं, ताकि लोगों को खाद्य की कमी महसूस न हो, यद्यपि पशु आहार उपजाने में भारी कटौती करनी पड़ेगी.

लेकिन रूसी विशेषज्ञ यह मानने के लिए तैयार नहीं हैं कि पैदावार की कमी के कारण रूस की अर्थव्यवस्था खटाई में पड़ गयी है, जैसा कि विदेशी विशेषज्ञों का मत है. उन के अनुमान से रूस की कुल अर्थव्यवस्था पश्चिम यूरोप और अमेरिका की अर्थव्यवस्था से अब भी कई गुना अधिक सबल है, मुद्रा और तेल संकट के कारण औद्योगिक उत्पादन 10 प्रतिशत कम हो गया था, जब कि रूस में वह प्रगति के पथ पर ही था.

रूस के 1976 के बजट और योजना में कार्यकुशलता और ऊँची किस्म पर ज़ोर दिया गया है, विस्तार पर नहीं. सुरक्षा के लिए किए जाने वाला खर्च ज्यों का त्यों रखा गया है. कुछ हल्के उद्योगों के विकास में कटौती जरूर की गयी है, लेकिन जीवन स्तर को ऊँचा करने के लिए सारे साधन जुटाने की व्यवस्था की गयी है.
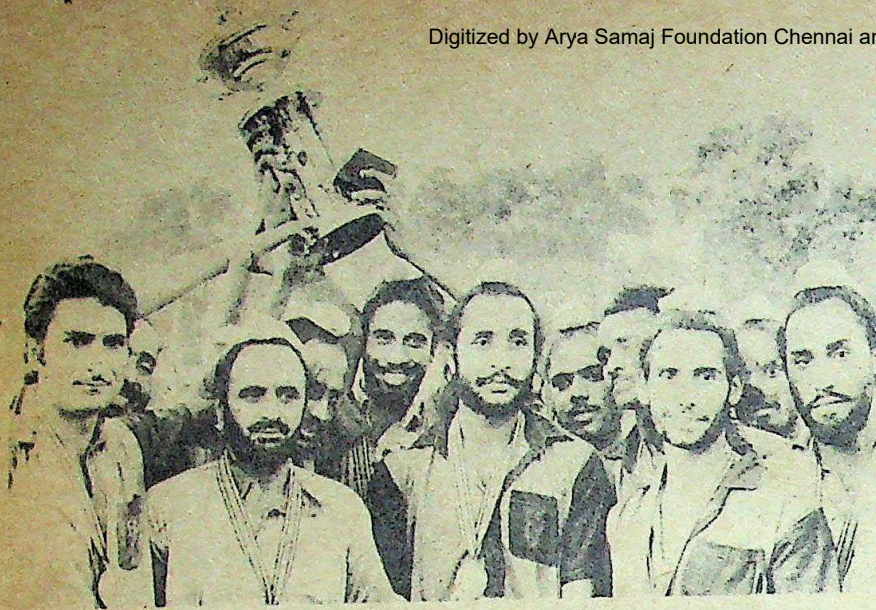
नेहरू हाकी विजेता सीमा सुरक्षा दल : मध्य में टीम के कप्तान अजीतपाल सिंह

खेल और खिलाड़ी

सीमा सुरक्षा दल : पहली बार

5 दिसंबर को शिवाजी स्टेडियम में खेले गये नेहरू हाकी फाइनल मैच में यों तो दोनों ही टीमों (सीमा सुरक्षा दल, जालंधर और पंजाब पुलिस, जालंधर) की टक्कर बराबर थी लेकिन इस पर भी मैच एक मायने में एकतरफ़ा ही रहा. दोनों टीमें पहली बार जवाहरलाल नेहरू स्मारक हाकी प्रतियोगिता के फाइनल में भिड़ रही थीं. मैच शुरू होने से पहले ही राजधानी के हाकी प्रेमियों ने पूर्वानुमान के रूप में यह कह दिया था कि जीत सीमा सुरक्षा दल की ही होगी. कारण यह कि पंजाब पुलिस की फारवर्ड लाइन भले सीमा सुरक्षा दल की तुलना में अच्छी थी लेकिन सीमा सुरक्षा दल की रक्षण पंक्ति अपनी प्रतिद्वंद्वी टीम की तुलना में कहीं ज्यादा अच्छी थी. यों दोनों ही टीमों को चार-चार पेनल्टी कार्नर मिले लेकिन उन में से जहाँ सीमा सुरक्षा दल की टीम दो गोल करने में सफल रही वहीं पंजाब पुलिस की टीम इस में से केवल एक ही गोल कर पायी.

शुरू के 27 मिनट में पंजाब पुलिस का पलड़ा भारी रहा. उसे शार्ट कार्नर भी पहले मिला लेकिन क्योंकि सीमा सुरक्षा दल का गोली तजिंदर सिंह पंजाब पुलिस के गोली दीपक सेन की तुलना में कहीं ज्यादा होशियार और सजग था इस लिए वह उस कार्नर का लाभ नहीं उठा पायी. 28वें मिनट में सुरक्षा दल की टीम को शार्ट कार्नर मिला, उद्यम सिंह ने गोल लाइन से गेंद फेंकी सुरक्षा दल के कप्तान अजीत पाल सिंह (विश्व कप विजेता भारतीय टीम के कप्तान) ने उसे हाथ में दस्ताना पहन कर रोका और राइट बैक बलदेव सिंह ने करारा शार्ट मार कर उसे गोल में डाल दिया. मध्यांतर तक सीमा सुरक्षा दल की टीम 1-0 से आगे हो गयी. लेकिन 1 गोल की बढ़त कोई ज्यादा मायने नहीं रखती थी. मध्यांतर के तुरंत बाद सातवें मिनट में ही पंजाब पुलिस की टीम को फिर एक शार्ट कार्नर मिला. उस समय मदन मोहन, जो सुरिंदर सिंह के स्थान पर आये थे, गेंद गोल की ओर ले जा रहे थे कि विनोद कुमार ने उन्हें ढंग से रोकने की कोशिश की. गोल उतारने का यह एक अच्छा अवसर था. यों तो रूप सिंह ने गेंद को गोल में डाल भी दिया लेकिन स्पेन के रैफरी अलकंतारा ने उसे गोल स्वीकार नहीं किया और रूप सिंह को 'स्टिक' का फाउल दे डाला. यदि यह गोल हो गया होता तो स्थिति काफ़ी कुछ बदल गयी होती. इसके तुरंत बाद ही आठवें मिनट में सीमा सुरक्षा दल को फिर एक शार्ट कार्नर मिला. बलदेव ने इसका फिर फायदा उठाया और दूसरा गोल कर के अपनी टीम की जीत एक तरह से पक्की कर ली. इसी बीच लोगों ने यह कहना शुरू कर दिया कि बलदेव सिंह को ही शार्ट कार्नर का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए ताकि भारतीय टीम में अब उस का स्थान पक्का हो गया है.

इसी बीच सीमा सुरक्षा दल के लेफ्ट आउट एस. एक्का गेंद लेकर फिर पुलिस के गोल के पास पहुँचे गये. उन्होंने गेंद परमिंदर की ओर बढ़ायी. परमिंदर ने शाट मारा जिसे दीपक सेन ने अपने पैड से रोक कर वापिस कर दिया और सोच लिया कि चलो जान बची लेकिन वहीं एक्का खड़े थे और उन्होंने लौटती हुई गेंद को फिर गोल में डाल दिया. उस ओर खड़े अंपायर आर. एस. जेंटल ने गोल का संकेत दिया और इस प्रकार सुरक्षा दल की टीम 3-0 से आगे हो गयी. 55वें मिनट में एक्का ने एक और गोल कर दिया और इस प्रकार सीमा सुरक्षा दल की टीम 4-0 से आगे हो गयी. मैच का फैसला तो हो चुका था. बस दर्शकों की एक चाह यह ज़रूर बनी रही कि कम से कम पंजाब पुलिस वाले एक आध गोल तो उतार दें. मैच समाप्त होने से 8 मिनट पहले पंजाब पुलिस को फिर एक शार्ट कारनर मिला और इस बार रूप सिंह गोल करने में सफल हो गये.

मैच के बाद मुख्य अतिथि रक्षा उत्पादन राज्यमंत्री श्री रामनिवास मिर्धा ने विजेताओं को पुरस्कार बांटे. पुरस्कार ग्रहण करने के बाद इधर पंजाब पुलिस की टीम के खिलाड़ी बड़े निराश भाव से मैदान से बाहर निकल आये और उधर मैदान के बीचोंबीच कुछ उत्साही दर्शकों ने अजीतपालसिंह को कंधों पर उठाकर उन की जयजयकार करनी शुरू कर दी.

फाइनल में पहुँचने से पहले : सीमा सुरक्षा दल: (जालंधर) ने 'प्रि क्वार्टर फाइनल' में भारतीय नौ सेना के साथ 1-1 से बराबर रहने के बाद दूसरे मैच में भारतीय नौ सेना को 3-0 से हराया.

क्वार्टर फाइनल लीग मैचों में उस ने इंडियन एयर लाइंस को 4-1 से, स्पेन की टीम को 2-0 से हराया लेकिन पश्चिम रेलवे के

पंजाब पुलिस का तेज आक्रमण ··· पर कमज़ोर निशाना

विरुद्ध खेला गया मैच 0-0 बराबर रहा.

सेमि-फाइनल में कोर आफ सिगनल्स के विरुद्ध खेला गया पहला मैच तो 0-0 से बराबर रहा लेकिन दूसरे मैच में उस ने कोर आफ सिगनल्स को 1-0 से हरा दिया.

पंजाब पुलिस (जालंधर) ने 'प्रि क्वार्टर' फाइनल में दक्षिण रेल्वे (मद्रास) को 1-0 से, क्वार्टर फाइनल लीग मैचों में एम.ई.जी. बंगलूर के विरुद्ध खेला गया मैच 2-2 से बराबर रहा, कोर आफ सिगनल्स के विरुद्ध खेला गया मैच 0-0 से बराबर रहा लेकिन उस के बाद इस ने मलयेसिया की टीम (नेगरी सेंबिलन को 4-0 से हरा दिया. सेमि-फाइनल में पंजाब पुलिस ने पहले मैच में तो इंडियन एयर लाइंस को 1-0 से हरा दिया लेकिन दूसरे मैच में वह यह टीम इंडियन एयर लाइंस के साथ 1-1 से बराबर रही थी.

टामस कप

भारत की जीत

लाहौर में खेली गयी टामस कप बैडमिंटन प्रतियोगिता के सेमि-फाइनल में भारत ने पाकिस्तान को 5-4 से हरा कर फाइनल में प्रवेश किया. भारत ने पहले ही दिन 3-1 से अपनी जीत पक्की कर ली थी. इस मैच में राष्ट्रीय चैंपियन प्रकाश पादुकोने का प्रदर्शन बहुत शानदार रहा और उन्होंने ही अंतिम मैच में पाकिस्तान, के जावेद इंक़लाब को 15-12 और 15-10 से हरा कर भारत को विजयश्री दिलायी.

मैच के दूसरे दिन जब पाकिस्तान के तारीख वदूद ने सुरेश गोयल को और हसन शहीद ने देवेंद्र अहूजा को हरा दिया तो पाकिस्तानी दर्शकों में एक बार तो जीत की आशा बलवती हो उठी.

हार जीत के अलावा इस मैच का एक और भी महत्त्व था. 12 साल बाद दोनों देशों के बीच नये सिरे से खेल संबंध शुरू हुए. 1954 के बाद दोनों देशों के बीच पहली बार टामस कप मुकाबला हुआ. 1954 में कराची में खेले गये मैच में भारत ने 9-0 से जीत हासिल की थी. यों तो 1970 में भी दोनों देशों के बीच मुकाबला होना था लेकिन तब पाकिस्तान ने भारत के विरुद्ध खेलने से इनकार करते हुए भारत को वाक ओवर दे दिया था.

हार के बाद पाकिस्तानी टीम के मैनेजर ने कहा कि क्योंकि इन मैचों में इंग्लैड की बनी शटल, जो कि बहुत तेज होती है, इस्तेमाल की गयी थी, इसलिए हमारे खिलाड़ी उतना अच्छा नहीं खेल पाये. हमारे खिलाड़ियों को चीन की बनी शटल से खेलने का ज़्यादा अभ्यास है. यों तो लाहौर में भारतीय खिलाड़ियों की सुरक्षा के लिए कड़े प्रबंध की व्यवस्था की गयी थी लेकिन 1600 दर्शकों से ठसाठस भरे पंजाब यूनिवर्सिटी हाल में कहीं कोई अप्रिय घटना नहीं घटी और किसी ने भी भारत के प्रति कोई शत्रुतापूर्ण रवैया नहीं अपनाया.

अब फाइनल में भारत का मुकाबला मलयेसिया से होगा.

निधन

रंगानाथन फ्रांसिस

आज यदि आप किसी भी हॉकी टीम के गोलरक्षक से बात करें और पूछें कि वह किस जैसा गोली बनना चाहता है तो उस का एक ही उत्तर होगा : 'मैं रंगानाथन फ्रांसिस जैसा आदर्श गोली बनना चाहता हूँ.' ठीक भी है फ्रांसिस निर्विवाद रूप से इस देश के सर्वश्रेष्ठ गोली थे. 1 दिसंबर को हृदयगति रुक जाने के कारण 56 वर्ष की उम्र में उन का देहांत हो गया. पिछले वर्ष ही वह सुरक्षा पुलिस अधिकारी के रूप में रिटायर हुए थे.

फ्रांसिस का जन्म 15 मार्च, 1920 को बर्मा में हुआ. उन के माता-पिता अभी भी बर्मा में ही रहते हैं. परिवार के तीन भाइयों और दो बहनों में वह तीसरे थे. नौवीं कक्षा से आगे नहीं पढ़ सके लेकिन गोलरक्षण की कला में वह बड़ों बड़ों को गुरुमंत्र सिखाने की क्षमता रखते थे. 1954 से वह आठ वर्षों तक राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में मद्रास का प्रतिनिधित्व करते रहे. और उन्होंने तीन ओलिंपिक खेलों (1948—लंदन, 1952—हेलसिंकी और 1956 मेलबर्न) में भारत का प्रतिनिधित्व किया. इस के अतिरिक्त उन्होंने ध्यानचंद्र के नेतृत्व में केन्या और पूर्वी अफ्रीका (1947), तथा मलाया और सिंगापुर (1954) और पोलैंड (1955) का भी दौरा किया.

नेहरू हॉकी प्रतियोगिता के दौरान श्री आर. एस. भोला ने, जो 1956 में मेलबर्न ओलिंपिक खेलों में उन के साथ खेल चुके हैं, **दिनमान** प्रतिनिधि को बताया कि मैं ही क्या इस खेल का हर जानकार आप से यही कहेगा कि आर. फ्रांसिस इस देश के सर्वश्रेष्ठ गोली थे. वह जिस आत्मविश्वास से गोल रूपी दुर्ग की रक्षा करते थे उस से कई बार हमें लगा कि उन में गोलरक्षण की जन्मजात प्रतिभा है. गेंद की क्या मजाल कि उन के होते गोल में घुस जाये. तेज़ से तेज़ आती गेंद को वह बड़ी आसानी से—कभी दोनों पैर जोड़ कर, कभी डाई मार कर तो कभी दायें या बायें हाथ से किसी न किसी तरह रोक ही लेते. वह देश के सर्वश्रेष्ठ गोली हैं इस बात का आभास भले उन्हें रहा हो लेकिन अहंकार नाममात्र को भी नहीं था. और तो और यदि आप लक्ष्मण से भी बात करें तो वह भी आप को यही कहता मिलेगा कि —'फ्रांसिस तो मेरे गुरु थे.'

फ्रांसिस पिछले काफ़ी समय से अस्वस्थ थे. फ़रवरी 1975 में जब भारतीय हॉकी टीम क्वालालंपुर जाते समय मद्रास रुकी तो भारतीय टीम और मद्रास राज्य एकादश टीम के बीच एक प्रदर्शनी मैच का आयोजन किया गया. फ्रांसिस अस्वस्थ होने के बावजूद मैदान में पहुँचे. मेलबर्न ओलिंपिक के कप्तान और भारतीय टीम के मैनेजर बलबीर सिंह ने जैसे ही उन्हें देखा तो प्यार से गले लगा लिया.

बलबीर सिंह ने जब भी किसी से भारतीय गोली की चर्चा की तो उन्होंने हर बार यही कहा कि फ्रांसिस जैसा दूसरा गोली कोई नहीं हुआ. राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में अक्सर बलबीर और फ्रांसिस का आमना-सामना होता था. और बलबीर की तेज़ गेंदों को अक्सर फ्रांसिस ही रोका करते थे.

अपने व्यवहार में फ्रांसिस सरल, शांत और मितभाषी थे लेकिन गोल में खड़े होते ही वह निर्भीक हो जाते. यही कारण है कि उन की गिनती भारतीय हॉकी के चोटी के खिलाड़ियों (केवल गोलरक्षकों में ही नहीं) में की जाने लगी. वह गोल में खड़े रह कर भी अपने साथी खिलाड़ियों को आदेश और निर्देश देते रहते और कहते 'आक्रमण गोल रक्षक से ही शुरू होता है.'

लंदन ओलिंपिक (1948) के कप्तान किशनलाल फ्रांसिस की चर्चा करते समय एक घटना का उल्लेख ज़रूर किया करते हैं. 1953 में बंबई में एक हॉकी मेले का आयोजन किया गया था. मद्रास और पंजाब पुलिस के बीच क्वार्टर फ़ाइनल मैच हो रहा था. खेल खत्म होने से एक मिनट पहले बख्शीश सिंह ने गेंद गोल में उछाला पंजाब पुलिस का एक खिलाड़ी दौड़ता हुआ 'डी' में घुस गया और फ्रांसिस से भिड़ गया. फ्रांसिस के नीचे के चार दांत टूट गये. मुंह से खून बहने लगा. लेकिन क्या हुआ मद्रास की टीम तो जीत गयी थी. चार दिन बाद वह मुंह पर पट्टी बाँधे फिर संयुक्त सेना की टीम के विरुद्ध सेमि-फ़ाइनल मैच खेलने के लिए मैदान में पहुँच गये. फ़ाइनल में पाक इंडिपेंडेंट, कराची की टीम के विरुद्ध खेलते हुए उन्होंने जितना शानदार खेल दिखाया उस की याद आज भी ताज़ा हो जाती है.

फ्रांसिस की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी. थोड़ी सी तनख्वाह में वह चार बच्चों (तीन लड़कियाँ और एक लड़का) का पालन पोषण करते. पर लोग उन्हें गोल रक्षकों का सम्राट ही मानते.

भारतीय हॉकी संघ के अध्यक्ष एम. ए. एम. रामास्वामी ने अपने शोक संदेश में कहा कि संघ उन के शोकातुर परिवार की हर संभव सहायता करेगा.

शतरंज

बाज़ी लिखने की विधि

पिछले अंक में अंतरराष्ट्रीय खेल के नियम तथा उन में और देसी नियमों में अंतर बताये गये थे. अब यह बताया जायेगा कि चालें किस प्रकार लिखी जाती हैं. नियमानुसार

चालें लिखना, विशेषकर मैचों की बाज़ियों की चालें लिखना, दोनों खिलाड़ियों के लिए आवश्यक है. ऐसा न करने पर खिलाड़ी को बाज़ी हारने तक का दंड दिया जा सकता है.

चालें प्रायः दो तरह से लिखी जाती हैं. एक को वाचक विधि और दूसरी को बीजगणित विधि कहते हैं. पहली विधि अंग्रेज़ी भाषी देशों में और दूसरी अन्य भाषाओं वाले देशों जैसे रूस, जर्मनी आदि में इस्तेमाल की जाती हैं. लेखक ने हिंदी में भी वाचक विधि का उपयोग किया है, क्यों कि वह सरलता से समझी जा सकती है.

वाचक विधि के उपयोग के लिए बिसात को बीच में से दो हिस्सों में बाँट देते हैं, एक हिस्से के खानों और मोहरों को बादशाह (बा) के खाने और मोहरे कहते हैं और दूसरे को वज़ीर (व) के खाने और मोहरे, जैसे बादशाह का फ़ीला (बा फ़) बादशाह का घोड़ा (बा घ) बादशाह का रुख (बा र), बादशाह का पैदल, बादशाह के फ़ीले का पैदल (बा फ़ प) बादशाह के घोड़े का पैदल (बा घ प), बादशाह के रुख का पैदल (बा र प). खानों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जाता है: बादशाह की पंक्ति का पहला खाना (बा 1) बादशाह का दूसरा खाना (बा 2) तीसरा खाना (बा 3) चौथा खाना (बा 4) पाँचवाँ खाना (बा 5) छठा खाना (बा 6) सातवाँ खाना (बा 7) आठवाँ खाना (बा 8). बादशाह के फ़ीले का पहला खाना (बा फ़ 1) दूसरा खाना (बा फ़ 2) तीसरा खाना (बा फ़ 3) आदि बादशाह के घोड़े का पहला खाना (बा घ 1) दूसरा खाना (बा घ 2) तीसरा खाना (बा घ 3) आदि: बादशाह के रुख का पहला खाना (बा र 1) दूसरा खाना (बा र 2) तीसरा खाना (बा र 3) आदि. इसी तरह वज़ीर का फ़ीला (व फ़) वज़ीर का घोड़ा (व घ) वज़ीर का रुख (व र) वज़ीर का पैदल (व प) वज़ीर के फ़ीले का पैदल (व फ़ प) वज़ीर के घोड़े का पैदल (व घ प) वज़ीर के रुख का पैदल (व र प) वज़ीर का पहला खाना (व 1) दूसरा खाना (व 2) तीसरा खाना (व 3) आदि; वज़ीर के फ़ीले का पहला खाना (व फ़ 1) दूसरा खाना (व फ़ 2) तीसरा खाना (व 3), वज़ीर के घोड़े का पहला खाना (व घ 1), दूसरा खाना (व घ 2) तीसरा खाना (व घ 3) आदि; वज़ीर के रुख का पहला खाना (व र 1) दूसरा खाना (व र 2) तीसरा खाना (व र 3) आदि.

उदाहरण के लिए आरंभ की कुछ चालें नीचे लिखी जाती हैं (पहले सफ़ेद खिलाड़ी की चाल लिखी जाती है और उस के बाद काले की) 1 प-व 4 (यानी सफ़ेद ने अपने बादशाह का पैदल बादशाह के चौथे खाने पर चला, उस खाने पर और कोई पैदल नहीं चल सकता. इस कारण प के साथ बा लिखना अनावश्यक है) प—बा 4 (यानी काले ने भी अपने बादशाह का पैदल चौथे खाने पर चला; 2 घ—बा फ़ 3, घ—व फ़ 3; 3 फ—घ 5 (एक ही फ़ीले की यह चाल हो सकती है इस लिए फ़ के साथ बा या व लिखना ज़रूरी नहीं).

बाज़ी की चालें लिखने में कुछ शब्दों के बदले चिन्ह इस्तेमाल किये जाते हैं. जैसे बादशाह की तरफ किलाबंदी=0-0, वज़ीर की तरफ किलाबंदी=0-0-0, मोहरा पीटना=×, शाह=+, दोहरी शह. द. श., उठंत शह=उ.श. अच्छी चाल=! कमज़ोर चाल=? सफ़ेद बाज़ी बेश है=± काली बाज़ी बेश है=∓ बाज़ी बराबर है==.

—इ. कृष्ण

निम्न ताप का उपयोग

इस वैज्ञानिक तथ्य का पता काफी समय पहले लग गया था कि कई प्रकार के मिश्र धातुओं में एक प्रकार की 'स्मृति' होती है. जब दबाव में ये धातु अपनी शक्ल सूरत बदलते हैं तो थोड़ा सा तापमान बढ़ाने पर प्रायः वे पुनः अपनी स्थिति में आ जाते हैं जैसे कि उन्हें अपनी पूर्व स्थिति पूरी तरह से स्मरण हो. ब्रिस्टल विश्वविद्यालय के दो वैज्ञानिकों **प्रो. एफ. सी. फ्रंक** और **डा. के. एच. जी. एशबी** ने इस सिद्धांत के आधार पर एक अत्यंत सरल ताप इंजन की कल्पना की है. उन्होंने इस के लिए एक प्याला पानी और धातु के कुछ टुकड़े इस्तेमाल किये. अपने सरलतम रूप में यह इंजन केवल उक्त सिद्धांत को ही प्रदर्शित करने लायक है, उस की व्यावहारिक उपयोगिता नहीं है. मगर विकसित रूप में इस से एक सफल और कम खर्चीले पानी के पम्प का काम लिया जा सकता है. विकासशील देश विशेषरूप से भारत में कुओं और तालाबों से पानी खींचने के लिए व्यापक स्तर पर ऐसे उपकरणों का उपयोग कृषि के लिए वरदान सिद्ध हो सकता है. विशेषरूप से जब कि ताप का स्रोत सूर्य को बनाया जाये.

सरल ताप इंजन से पानी खींचने वाले पम्प का नमूना

इंजन की रचना बिल्कुल सरल है. एक इंच कमानी के साथ नीटीनॉल (निकल-टाइटेनियम मिश्रित धातु) की तार जोड़ दी जाती है. इसी प्रकार एक सामान्य धातु की पतली छड़ (करीब 3 इंच) के दोनों किनारों पर कमानी और तार का यह जोड़ लगाया जाता है. इस सारी रचना को मोड़ कर इस ढंग से बनाया जाता है कि धातु की छड़ खड़ी रहे, तार और कमानियाँ धरती के समतल हों. कमानियाँ का शायद विश्व का सब से सस्ता और सुविधाजनक इंजन सिद्ध हो सकता है.

कुछ लोगों ने यह सुझाव दिया है कि कमानियों के बदले कब्जों का इस्तेमाल किया जा सकता है क्योंकि कमानियाँ कालांतर में खराब हो जाती हैं. ऐसे इंजन का अंतिम रूप क्या होगा यह कहना कठिन है मगर यह बात तो स्पष्ट है कि अनेक देशों में निम्न ताप का कोई उपयोग नहीं होता. औद्योगिक देशों में तो बड़े बड़े कारखानों से पैदा होने वाली गर्मी को नदियों आदि में व्यर्थ में बहा दिया जाता है. ऐसे स्थानों पर कम तापमान वाले पदार्थों का उपयोग गति पैदा करने में किया जा सकता है. यदि एक प्रतिशत भी ताप को गति में परिवर्तित किया जा सका तो राष्ट्रीय स्तर पर एक बहुत बड़ी उपलब्धि होगी. इस प्रकार के इंजन की सब से बड़ी उपयोगिता इसी बात में है कि सामान्य ताप इंजनों के विपरीत यह इंजन बहुत कम तापमान में चल सकता है.

एक लंबी छड़ के साथ इस तरह जोड़ दी जाती हैं कि आसानी से उस के गिर्द घूम सकें. लंबी धातु की छड़ एक बड़े से कटोरे के ऊपर रख दी जाती है. कटोरे में पानी गर्म रखा जाता है. थोड़ा सा हिलने पर एक ओर की कमानी और तार पानी में डूब जाते हैं. गरमी लगने के कारण तार अपनी स्वाभाविक स्थिति में आने की कोशिश करते हुए अकड़ जाती है जिस से इस सारी रचना का गुरुत्वाकर्षण बिगड़ जाता है और दूसरी ओर की तार नीचे आ कर पानी में डुबकी लेती है. यह क्रम लगातार तब तक चलता रहता है जब तक कि पानी का तापमान 60 अंश सेंटीग्रेड से ऊपर रहे. अधिक तापमान में गति तेज़ हो सकती है.

अब प्रश्न यह पैदा होता है कि क्या इस प्रकार के गतिशील इंजन को उपयोगी बनाया जा सकता है. 1824 में एक फ्रांसीसी वैज्ञानिक **सादी कारनोट** ने एक मत व्यक्त किया जिस के अनुसार 30° सेंटीग्रेड से ऊपर के तापमान में काम करने वाला इंजन 10 प्रतिशत से अधिक ताप ऊर्जा को गति में नहीं बदल सकता. मगर वैज्ञानिकों के अनुसार यदि यह भी मान लिया जाय कि इंजन की कुशलता इस से बहुत कम—1.5 प्रतिशत ही हो तब भी सूर्य की किरणों से 30 अंश से ऊपर गर्म किये गये पानी से चलने वाले इंजन से दो गैलन पानी प्रतिमिनट 10 मीटर की गहराई से उठाया जा सकता है. इस प्रकार का इंजन बिना किसी गड़बड़ के सदा के लिए (जब तक सूर्य चमकता रहे) काम करता रहेगा. व्यवहार में इस प्रकार के इंजन में जो भी खराबी आयेगी वह कमानियों आदि में ऋतु परिवर्तन के कारण ज़ंग लग सकती है. इस प्रकार का सौर ऊर्जा इंजन कुओं से छोटे पैमाने पर पानी खींचने के काम आ सकता है.
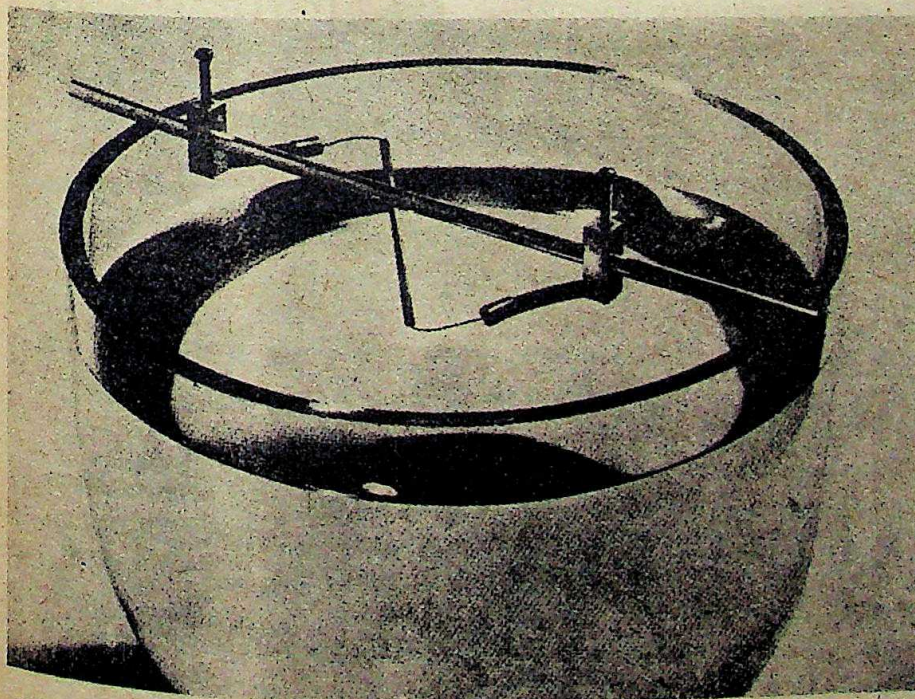
एक सरल ताप इंजन का सिद्धांत एक पानी के कटोरे से प्रदर्शित किया जा सकता है

समारोह का उद्घाटन करते हुए डॉ. भगवतशरण उपाध्याय

संस्कृति

कालिदास समारोह

उज्जैन में अठारहवें कालिदास समारोह के अवसर पर, जिस का उद्घाटन डॉ. भगवतशरण उपाध्याय ने किया था, श्री सेठी ने कालिदास संस्थान की स्थापना की घोषणा की. कालिदास के सार्वदेशिक महत्त्व को देखते हुए उन्होंने संस्थान की स्थापना में सारे देश से सहयोग का आग्रह किया. प्रारंभिक रूप से 25 लाख रु. की लागत से स्थापित किये जाने वाले संस्थान के लिए हर राज्य से एक लाख रुपये और केंद्र से 10 लाख रु. अनुदान देने का उन्होंने आग्रह किया. इतना ही अनुदान म.प्र. सरकार भी देगी.

समारोह के साहित्यिक कार्यक्रमों में शोधपत्र वाचन, परिसंवाद आदि द्वारा देश के शोध प्रधान संस्कृत विभागों और राज्य विद्या संस्थानों में कालिदास पर हो रहे कार्य की झलक मिली. महाविद्यालयीन वादविवाद या श्लोक प्रतियोगिताएँ भी आयोजित की गयीं. 'मेघदूत' पर आधारित 110 मूर्ति और चित्रकला कृतियों की प्रदर्शनी भी इस अवसर पर आयोजित की गयी.

नाटकों के आयोजन के प्रथम दिन कालिदास रचित **मालविकाग्निमित्रम्** मंचित हुआ. काशी हिंदू विश्वविद्यालय के नाट्यदल और इसी वि.वि. की संस्कृत शास्त्र विभाग की अध्यक्षा **डॉ. प्रेमलता शर्मा** के निर्देशन में परंपरागत शैली में प्रस्तुत यह नाटक प्रभाव और प्रस्तुति की दृष्टि से पूर्ण सफल सिद्ध हुआ. नाटक में भरत पद्धति का निर्वाह, वेशभूषा, संगीत, प्रकाश योजना और संस्कृत पाठ ने दर्शकों को नाट्यकला के प्राचीर परंपरा सूत्रों से जोड़ दिया. समारोह में शुद्ध भरतकालीन मंच पर संस्कृत के अपने प्रकार के अनूठे नाटक **मुद्राराक्षस** को प्रस्तुत किया. मुंबई **मराठी साहित्य संघ** ने. घटना और गति के अभाव वाली संक्षिप्त कहानी, आधुनिक छाप, नायक, खलनायक और नायिका का अभाव, ऐसे तथ्य हैं जो 'मुद्राराक्षस' का प्रस्तुतिकरण जटिल कर देते हैं. फिर भी प्रस्तुतकर्त्ताओं ने नाटक को इस प्रवाहपूर्ण ढंग से, और वह भी गैर मराठी भाषी जनता के सामने मराठी भाषा में प्रस्तुत किया कि दर्शक बिखर नहीं पाये. भास के 'स्वप्नवासवदत्तम्' का हिंदी रूपांतर प्रस्तुत किया निर्देशक **वासुदेव** ने. प्राचीन उज्जयिनी की एक रम्य प्रणय गाथा आधुनिक उज्जैन के पार्श्व पर अभिनीत होते देखना दर्शकों के लिए एक आकर्षक सुखद अनुभव था. भास का एक और नाटक **अभिषेक** केरल की प्राचीन 'कुड़िआट्टम' शैली में प्रस्तुत किया गया. मंचन के लिए उपयुक्त न माने जाने वाले जयशंकर प्रसाद के नाटकों में से एक **ध्रुवस्वामिनी** को सफलता से प्रस्तुत कर निर्देशक **रामगोपाल बजाज** ने सिद्ध किया कि प्रसाद के नाटकों की मंचीय संभावनाएँ भी कम नहीं. नाटकों के इस बहुरूपी आयोजन के मध्य दिल्ली की **कुमारी स्वप्न सुंदरी** द्वारा कालिदास की रचनाओं पर सुन्दर कुचीपुड़ी नृत्य प्रस्तुत किया.

'हू पांबी' का एक दृश्य

नृत्य नाट्य

हू पांबी

पिछले दिनों राजधानी के त्रिवेणी कला केंद्र में मणिपुरी नृत्य नाट्य 'हू पांबी' (विष आसव) सिंह जीत के निर्देशन में प्रस्तुत किया गया. एक राजा है जो मंदिर में प्रार्थना कर रहा है. प्रार्थना की समाप्ति पर सशस्त्र सैनिक मंदिर में घुस आते हैं और उसे बंदी बना लेते हैं. राजा बंदीगृह में छुटकारे के लिए बेचैन है तभी उसे एक काली छाया घेरती हुई दिखायी देती है. उस के बंधन टूट जाते हैं और उसे नारी के शक्ति के रूप के दर्शन होते हैं अपनी खोयी प्रतिष्ठा वह फिर अर्जित करने की कोशिश करता है और काली छाया से प्रार्थना करता है. वह स्त्री के रूप में आती है. राजा उसे अपने काबू में कर लेता है. काली छाया उसे वरदान रूप में अपनी शक्ति का प्रतीक दैवी अस्त्र देती है जिस से वह अपने शत्रुओं को पराजित करता है, अपना राज्य वापस ले लेता है. बाद में शक्ति के मद में उस में पापवृत्तियां जागती हैं. उस की प्रजा दैवी प्रकोप से पीड़ित होती हैं, राजा से सहायता की प्रार्थना करती है लेकिन मद में चूर राजा उस का संहार करता है.

मणिपुरी नृत्य शैली में यह नृत्य नाट्य बहुत सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया गया. कथा की नाटकीयता पूरी तरह उभरी. संगीत बहुत ही प्रभावशाली और किसी प्रकार के अतिरेक से बचा हुआ था. मुद्राओं तथा अभिनय से उस का सुखद समीकरण बनता था और एक समेकित प्रभाव पड़ता था. संगीत, ताल और मुद्रा तथा अभिनय की एक पूर्ण इकाई के लिए कलाकारों की तथा निर्देशक सिंहजीत की सराहना की जानी चाहिए. सरोद, वंशी, सितार तथा मृदंग जैसे कुछ थोड़े से वाद्यों के प्रयोग से ही संगीत की रचनात्मक बुनावट की गयी थी और अनावश्यक वाद्ययंत्रों के ताम-झाम से उसे बचाया गया था. संगीत पर एक ओर बंगाली मंदिरों के कीर्तन की छाप देखी जा सकती थी तो दूसरी ओर आदिम जातियों के संगीत की भी.

नृत्य नाट्य में रंगपटी का भी सुंदर इस्तेमाल किया गया था. परिधान रंगों के कारण बहुत ही सुखद और आकर्षक थे और बार बार परिवर्तन में समय नहीं लेते थे. कलाकारों के पैर का काम—मद्धिम, श्लथ, और तीव्र—मनोरम था.

इस मणिपुरी नृत्य नाट्य की सब से बड़ी विशेषता मितव्ययिता थी—संगीत में, परिधान में, युद्ध दृश्यों में. यही कला का सब से बड़ा गुण है. सब कुछ सधा, संतुलित, कहीं आडंबर और विस्तार नहीं.

प्रकाश व्यवस्था द्वारा नाटकीय व्यामोह अनेक स्थलों पर सराहनीय था पर अक्सर उसे मद्धिम रखने की चूक भी हुई थी जिस से मुद्राएं साफ़ पकड़ में नहीं आती थीं. अंतराल के पूर्व तक संगीत जितना उच्चस्तरीय और रचनात्मक था अंतराल के बाद उतना नहीं रहा, कुछ फ़िल्मी धुनों के स्पर्श से उन की पूर्ववत गंभीरता नहीं बनी रह सकी. हो सकता है कुछ मूल धुनें फ़िल्मों में जा कर दूषित हो गयी हों? उन से कला रचनाओं को बचाने के अलावा और कोई चारा नहीं है.

सूज़ा से बातचीत

सुप्रसिद्ध चित्रकार **फ्रांसिस न्यूटन सूज़ा**, जिन की कला और लेखन (आधुनिक भारतीय कला से संबंधित लेखमालाएँ : **दिनमान** : जनवरी, फरवरी 74 के अंक) से **दिनमान** के पाठक परिचित हैं, इन दिनों भारत आये हुए हैं. ललित कला अकादेमी और गोवा की कला अकादेमी के सहयोग से गोवा में, 15 दिसंबर से 15 जनवरी तक होनेवाले कला शिविर में वह भाग लेंगे. दरअसल इन्हीं के आमंत्रण पर वह भारत आये हैं. इस शिविर में जो अन्य प्रमुख कलाकार भाग लेने वाले हैं उन में **हुसेन, रामकुमार, श्यावक्ष चावड़ा** भी हैं. सूज़ा 10 वर्षों के बाद भारत लौटे हैं. इस बीच वह ब्रिटेन और अमेरिका में रहे और यूरोप और अमेरिका में उन्होंने काफ़ी भ्रमण भी किया है. सूज़ा की कला को यूरोप और अमेरिका में ख्याति मिली है. 1966 में सुप्रसिद्ध कला पत्रिका **स्टूडियो आर्ट इंटरनेशनल** ने उन की कला पर एक लेख प्रकाशित किया था और उन के साथ भेंटवार्त्ता भी. इस अंक विशेष की आवरण कथा सूज़ा की कला को ले कर ही थी. सूज़ा ने कुछ पुस्तकों के लिए रेखांकन भी बनाये हैं और **पेंग्वेन बुक्स** में प्रकाशित जी. वी. देसानी की 'आल अबाउट एच हैटर' पुस्तक का आवरण सूज़ा का ही एक चित्र है.

लेकिन देश विदेश में मिली हुई ख्याति ने चित्रकार सूज़ा (ज. 1924) को 'अभिमानी' नहीं बनाया. वह अकृत्रिम हैं, और मान सम्मान को सहज भाव से ही लेने वाले हैं. सूज़ा खुले हुए आदमी हैं. गहरी दिलचस्पी के साथ बातचीत करने वाले, बातचीत को आगे बढ़ाने वाले और हर सवाल को अपने ढंग से कुरेदने वाले भी. चित्र कला के अलावा उन के सरोकार बहुतेरे हैं: इतिहास, धर्म, दर्शन, साहित्य, फिल्म, संगीत---बातचीत में वह इन तमाम क्षेत्रों की ओर जाना पसंद करते हैं और कला से इन्हें जोड़ना भी. सूज़ा के साथ बातचीत के लिए उन्हीं के जैसे स्वभाव का होना ज़रूरी नहीं है क्योंकि वे बातचीत में अपने कथन को एक असरदार ढंग से रखने के साथ दूसरे की सहमतियों और असहमतियों को खुले मन से सुनना चाहते हैं. उन का उद्देश्य हर हालत में अपनी बात मनवा लेने का नहीं है और न ही दूसरे की बात को आसानी से मान लेने का है. हाँ, वह कभी कभी चौंकाने वाले वक्तव्य जरूर दे डालते हैं, लेकिन ये बातचीत के बीच पैदा हो जाने वाली किसी एकरसता को तोड़ने वाले भी हो सकते हैं और उसे एक मोड़ देने वाले भी. सूज़ा में प्रत्यक्ष और प्रच्छन्न दोनों ही रूप में दिखने वाला गहरा आत्मविश्वास है, जिसकी अभिव्यक्ति लोगों को उलझन में भी डाल सकती है. लेकिन सूज़ा की जीवंतता प्रायः निर्विवाद है.

उनके गोवा रवाना होने से पहले दिल्ली में, कई बैठकों में **प्रयाग शुक्ल** ने उन से लंबी बातचीत की. इस लंबी बातचीत के कुछ प्रमुख मुद्दे और सवाल जवाब ही यहाँ दिये जा रहे हैं:

इन दिनों चित्रकला में और अपने काम में आप की प्रमुख दिलचस्पियाँ और चिंताएँ कौन सी हैं ?

मैं इन दिनों रंगों में निहित प्रकाश की अवधारणा के बारे में ही अधिक सोच रहा हूँ. प्रभाववादियों (इंप्रेसनिस्ट) ने न्यूटन के वैज्ञानिक आधार का सहारा लेते हुए यही सोचा था कि यों तो हर वस्तु के अपने रंग हैं, लेकिन वे दृष्टि पटल से पैदा होने वाले प्रकाश प्रतिबिंब (स्पेक्ट्रम) से ही आलोकित होते हैं. इसी लिए बिंदुवादी चित्र कला में सिवाय काले को छोड़ कर 'प्रतिबिंब' के इन सभी रंगों का प्रयोग किया गया : यह सोच कर कि 'शुद्ध रंग' इस प्रकार देखने वाली आँख में घुलमिल जाते हैं. उदाहरण के लिए उन्होंने पीले और लाल के छोटे छोटे कणों को बहुत आस पास रखा, इस उद्देश्य से कि वह मिल कर आँख को नारंगी दिखायी पड़ेंगे. लेकिन जहाँ तक रंगों के प्रतिबिंब (स्पेक्ट्रम) का सवाल है, हालत इस से भिन्न है. पीला कलाकार के रंगपट्ट पर बुनियादी रंग नहीं है, बल्कि अनुषंगी या उपरंग है जो लाल और हरे के अंतरावलोकन से बनता है. क्योंकि अगर रंगों के रूप में हम इन्हें एक दूसरे में घुला मिला दें तो एक गंदला सा रंग ही इन से तैयार होगा, उस तरह का पीला नहीं जो कि प्रकाश में 'अंतरनिहित' है.

आपने अपने नये चित्रों में कहीं अधिक चटख रंगों का प्रयोग किया है ? (सूज़ा के कोई 6 चित्रों और कई रेखांकनों की प्रदर्शनी धूमिमल गैलरी, दिल्ली में 20 जनवरी से शुरू होने वाली है.)

अब मैं प्रकृति की दृश्यसत्ता (फिनोमिनॉ) में ही अधिक दिलचस्पी ले रहा हूँ. जहाँ तक मेरे चित्रों में रंगों की चमक का सवाल है मैं एक फ्रांसीसी शब्द का इस्तेमाल करना चाहूँगा. वह शब्द है : एंतीन सेल. अर्थ है जगमगाहट. मेरे नये चित्रों में जो एक प्रकार की जगमगाहट है उस से मैं बखूबी परिचित हूँ. लेकिन इसी के साथ मैं यह भी संकेत करना चाहता हूँ कि यह जगमगाहट अकारण नहीं है. जैसा कि मैंने पहले कहा रंगों का इस्तेमाल मैं सोच समझ कर एक खास तरह से कर रहा हूँ जैसे कि पीले का इस्तेमाल.

लेकिन क्या आप की प्रचलित शैली की रेखाओं,—आप की शैली की छवि मूलकता में और आपके नये रंग प्रयोग में कोई विरोधाभास नहीं है? क्या ये एक दूसरे के आड़े नहीं आते.

जहाँ तक मेरी शैली का सवाल है वह मैंने कई दशकों में विकसित की है. मैं जानता हूँ कि 'सूज़ा आइकॅनग्राफी' जैसी एक चीज़ अब तक आस्तित्व में आ गयी है. यह सही है—मेरे काम को आप दूर से ही देख कर पहचान सकते हैं. मैंने अपनी इस शैली को कभी बहुत अधिक बदला नहीं या कहें उसे जानबूझ कर नहीं बदला. मैं कभी अमूर्त चित्रकार भी नहीं रहा. क्यों कि चीज़ों के प्रत्यक्ष यथार्थ रूप से भी मैंने अपना वास्ता बराबर रखा है. इसी के साथ यह भी कि वर्षों में विकसित हुई यह शैली मुझे अपने नये विचारों का वाहक बनने के लिए बराबर तैयार मिली है. मतलब मैं इस शैली में अपने नये से नये विचारों को टाँग सकता हूँ. दरअसल यही मैं कर रहा हूँ. मेरे 1-2 नये चित्रों में जहाँ आकार रेखाएँ बहुत प्रत्यक्ष नहीं हैं, वहाँ भी एक किस्म की आकृति मूलकता है

सूजा : 'भूख और खूराक ज़रूरी हैं'

जिसे मैंने देखने वाली आँख के लिए छोड़ दिया है. मेरा सौंदर्य शास्त्र 'यथार्थ' से जुड़ा हुआ है. एक यथार्थ मेरे लिए पुरा कथाएँ भी हैं. भारतीय पुराकथाओं में मुझे वह शक्ति दीखती है जो दरअसल कभी मरती नहीं. वैसे भी यह कम अचंभे की बात नहीं कि भारतीय पुराकथाएँ भारत में आज भी एक जीवित यथार्थ बनी हुई हैं. लोग उन्हें भूले नहीं हैं, बल्कि उन्हें नये नये संदर्भों में याद करते रहते हैं. जहाँ तक कला के, या कहें किसी चित्रकार की शैली के, अचानक बहुत तेज़ी से बदल जाने का सवाल है मैं प्रकृति के एक तथ्य की ओर संकेत करना चाहूँगा : प्रकृति में भी कोई उग्र और प्रचंड परिवर्तन नहीं होता. उस में घटित होने वाले परिवर्तन भी चक्राकार या कहें आवर्तित रूपों वाले ही हैं.
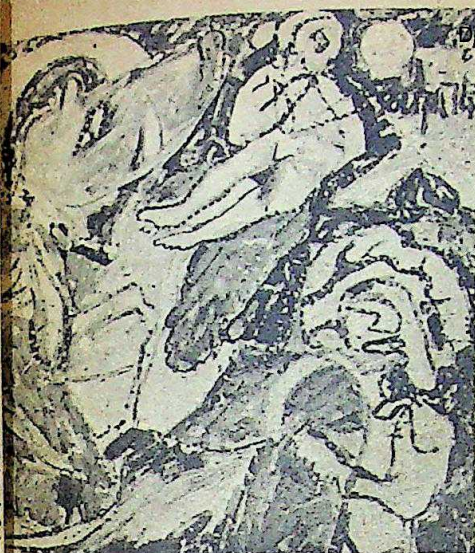
सूज़ा : वराह (74 की कृति)

क्या आप यह बतायेंगे कि आप एक चित्र की शुरुआत कब कैसे करते हैं, क्या आप रोज़ काम करते हैं ?

एक ज़माना था जब मैं रोज़ काम किया करता था और मैं समझता हूँ कि अगर चाहूँ तो आज भी कर सकता हूँ लेकिन मैं यह स्वीकार करूँगा कि मैं पहले की बनिस्बत अब कुछ कम काम कर रहा हूँ. जहाँ तक चित्र रचना का सवाल है, इसका कि किसी एक चित्र की रचना में कैसे शुरू करता हूँ, किस क्षण किस अवस्था में तो मैं समझता हूँ कि यह किसी भी तरह की भूख से संबंधित है. एक बार खाना खा लेने पर हम एक अंतराल के बाद दुबारा

सूज़ा: (रंगों में) एक रेखांकन

खाना खाना चाहते हैं. कुछ यही हालत मेरे चित्रों की भी है. या स्त्री के साथ सो लेने के बाद, दुबारा सोने की इच्छा जागती ही जागती है, मैं कहना चाहता हूँ कि यों भी यौनेच्छाओं और रचनात्मकता का गहरा संबंध है. एक चित्र समाप्त कर लेने के बाद दूसरे के लिए भूख और खुराक जैसे साथ साथ तैयार होती रहती है. इस बीच मैंने बहुत से रेखांकन किये हैं जिन में से कई पत्रिकाओं के छपे हुए चमकीले कागज़ों पर हैं. इन पर मैंने रासायनिक क्रिया से कुछ रंग लगाये हैं. बहुत सारे रेखांकन मैंने स्याह सफ़ेद में भी किये हैं. ये आप ने देखे ही स्याह सफ़ेद वाले रेखांकन दो तरह के हैं. एक वे जिन में रेखांकन स्पेस को पूरी तरह से आकृतियों और रूपाकारों से भर सा दिया गया है. दूसरे वे हैं जिन में न्यूनतम रेखाएँ हैं: स्त्री, पुरुष की प्रायः निर्वसन आकृतियों को ले कर. मैं समझता हूँ कि ये दूसरी तरह के रेखांकन ही किसी कलाकार की असली परीक्षा लेते हैं—न्यूनतम रेखाओं वाले.

आप के प्रिय कलाकार कौन से रहे हैं ?

अपने बचपन में गोवा के चर्चों में की गयी चित्रकारी से प्रभावित हुआ था. जार्ज रुओ मुझे बहुत पसंद रहे हैं. पिकासो के घनवादी काल से भी मैं प्रभावित हुआ. और पहले जायें तो **मिकलांजलो** के आरंभिक काम की बनिस्बत मुझे उन के बाद के वर्षों के मूर्तिशिल्प प्रभावित करते रहे हैं. **मातीस** की कुछ कृतियाँ भी मुझे बहुत पसंद हैं. पारंपरिक मूर्तिशिल्पों में मुझे सब से अधिक जो काम पसंद है, **वह छठवीं शताब्दी का भारतीय मूर्ति शिल्प है जब कि आकृति मूलक कला में कई हाथों और कई सिर वाली आकृतियों की रचना प्रारंभ हुई, इससे पहले कला के इतिहास में ऐसा कभी नहीं हुआ था.** 11वीं शती के माउंट आबू के मंदिर जो कि एक संगमरमरी समूह के बीच तराशे गये हैं, कला के अन्यतम नमूने हैं. इन्हें देख कर मिकेलांजलो को आश्चर्य हुआ होता. जहाँ तक भारत का सवाल है मैंने बराबर से यही माना है कि भारत ने आकृतिमूलक काम से ले कर ग़ैर आकृतिमूलक तक प्रायः सभी शैलियों और अवधारणाओं का काम प्रस्तुत किया है—गंधार से ले कर तंत्रकला तक.

आधुनिक भारतीय कला के बारे में आप क्या सोचते हैं ? क्या आप इस आरोप को सही मानते हैं कि उस का बहुत सारा काम पश्चिम के अनुकरण पर तैयार हुआ है ?

मैं समझता हूँ कि भारतीय आधुनिक कला की एक समूह प्रदर्शनी अंतरराष्ट्रीय कला के बीच कहीं भी अलग नज़र आयेगी. जहाँ तक इस आरोप का सवाल है मैं इसे बिल्कुल सही नहीं मानता. संस्कृति के नियमन के प्रयत्न नहीं होने चाहिए—वह जड़ होने लगती है. कई अवस्थाओं में यह ज़रूरी हो जाता है कि हमें जहाँ से भी खूराक मिले हम उस ओर जायें. यों भी जहाँ तक किसी भी कला के क्षेत्र से कुछ लेने देने का सवाल है एक स्तर पर जा कर वह बेमानी हो जाता है. हम सब जानते हैं कि आधुनिक कला के जन्म के पीछे अफ़्रीकी मूर्तिशिल्प रहे हैं, स्वयं पूर्व के कई देशों की कला परंपरा रही है. इन से प्रेरित हो कर ही पश्चिमी आधुनिक कलाकारों ने भी काम किया था. सवाल यह नहीं है कि हम किस से क्या लेते या देते हैं. सवाल यह है कि प्रभाव ग्रहण करने के बाद हम किस तरह की रचना करते हैं.

आधुनिक भारतीय कलाकारों में से आप को किन का काम पसंद है ?

सच तो यह है कि मैं अपने समकालीनों के बारे में ही ज़्यादा सच्चाई के साथ कुछ कह सकता हूँ क्योंकि मैंने उन्हें और उन के काम को निकट से देखा और जाना है. आकृतिमूलक कलाकारों में से मुझे **हुसेन, कृष्ण खन्ना** और **रज़ा** का काम पसंद है, जो कि आकृतिमूलकता और अमूर्तन के बीच में कहीं हैं. आरा का काम भी मुझे अच्छा लगता है. **गायतोंडे, ओमप्रकाश** और **मनु पारेख** के काम को मैंने इधर देखा और पसंद किया है. हो सकता है बहुत कुछ ऐसा भी उल्लेखनीय हो जिसे मैं अभी तक नहीं देख पाया.

आप क्या पढ़ना पसंद करते हैं ?

एक ज़माने में मुझे विश्वकोशों (एनसाइक्लोपीडिया) को पढ़ना बहुत अच्छा लगता रहा है. कुछ विचित्र सी बात है न ! मैंने **एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका** को कई कई बार पढ़ा है. **बर्नार्ड शा, इब्सन, तालस्ताय, स्ट्रिंडबर्ग, जायस, एलियट** को पढ़ा है. अपने युवा दिनों में जब मैं साम्यवादी दल में था तब मैंने **मार्क्स** और **एंगेल्स** को भी पढ़ा. जैसा कि मैंने पहले नाम गिनाये ही मैं उपन्यास कहानियाँ काफ़ी पढ़ा करता था. लेकिन अब मैं उपन्यास कहानियाँ पढ़ना ज़्यादा पसंद नहीं करता हूँ. इधर **एलेन गिंसबर्ग** की पुस्तक **इंडियन जर्नल** मुझे बहुत अच्छी लगी है.

आप को सब से अधिक क्या अच्छा लगता है ?

सब से अच्छा मुझे ज्ञान प्राप्त करना लगता है और उस का कोई भी मौका मैं छोड़ता नहीं हूँ.

हमारी बैठकें सर्दियों की दोपहर में बाहर धूप में हुई थीं. बातचीत की समाप्ति पर जब हम चलने लगे तो घास पर एक ओर लगी हुई फूलों की कतार की ओर इशारा करते हुए सूज़ा ने कहा 'जब मैं इस फूल के लाल रंग को देखता हूँ तो दरअसल यह अनुभव करता हूँ कि यह केवल लाल नहीं है प्रकृति ने इस लाल रंग को हमारे लिए थोड़ी देर के लिए ठहरा दिया है. फिर लाल के साथ ही दृष्टिपटल के कुल रंगों का ध्यान आता है. जिन का यह एक हिस्सा है, फिर लगता है कि लाल भी लाल नहीं है. लाल के रूप में एक माया है. माया ही है.'

'आओ बच्चो तुम्हें दिखायें...'

कुछ वर्ष पूर्व बाल फ़िल्म समाज की रीति-नीति और कार्यक्रमों के पुनर्गठन की बात कुछ इस तरह प्रचारित हुई थी कि बच्चों की दुनिया में दिलचस्पी लेने वालों को लगे कि बच्चों के लिए पर्याप्त और उपयुक्त फ़िल्में बनाने की दिशा में तेज़ी से प्रगति होगी. फिर एक अर्से तक खुल कर कोई ख़बर नहीं मिली कि बाल फ़िल्म समाज क्या कर रहा है, अलबत्ता दिल्ली के संदर्भ में समय-समय पर सप्रू हाउस में चेक फ़िल्म 'झाड़ू पर सवार लड़की' ('गर्ल ऑन द ब्रूम स्टिक') और चैप्लिन की 'गोल्ड रस' जैसी फ़िल्मों का प्रदर्शन यह संकेत देता रहा कि उक्त संस्था का अस्तित्व किसी न किसी रूप में सक्रिय है. बीच में एक यह खबर भी फैली थी कि एक महत्त्वाकांक्षी योजना के अंतर्गत रूस के सहयोग से 'काला पहाड़' नामक एक बच्चों की फ़िल्म बन चुकी है.

अब जो खबरं मिली है, वह कुछ इस तरह है: ब्रूसेल्स में युवाओं और बच्चों के अंतरराष्ट्रीय फ़िल्म केंद्र के सम्मेलन में भाग ले कर भारत लौटीं बाल फ़िल्म समाज की सचिव **कुमारी शांता गिडवानी** ने पत्रकारों से कहा कि भारत डेनमार्क, आस्ट्रेलिया, पश्चिम जर्मनी, ऑस्ट्रिया और रूस से बच्चों की फ़िल्मों की अदला बदली करेगा. अं. फ़िल्म केंद्र के सम्मेलन में 30 सदस्य राष्ट्रों ने भाग लिया था. बच्चों की फ़िल्म संबंधी बहुत से मामलों पर बातचीत की गयी., तय पाया गया कि सदस्य राष्ट्रों में फ़िल्मों का मुक्त विनिमय और वितरण होता रहे, युवाओं और बच्चों की फ़िल्मों का अंतरराष्ट्रीय समारोह आयोजित किया जाये और दिसंबर में इस्राइल में विभिन्न देशों के बच्चों द्वारा बनायी गयी फ़िल्मों की प्रतियोगिता हो. ब्रूसेल्स से कुमारी शांता गिडवानी लंदन गयीं और वहाँ उन्होंने बच्चों के फ़िल्मों के निर्माण, वितरण और विनिमय के तौरतरीकों का अध्ययन किया. कुमारी गिडवानी ब्रिटेन के बाल फ़िल्म संस्थान के निमंत्रण पर लंदन गयी थीं. लगता है कि इस लंबे दौरे में कुमारी गिडवानी बहुत कुछ देख सुन कर आयी हैं. देखना यह है कि बच्चों के लिए फ़िल्में देखने की व्यवस्था करने में उन की यह यात्रा किस प्रकार प्रतिफलित होती है. बाल फ़िल्म समाज से संबद्ध एक और महिला **सई परांजपे** भी इन दिनों काम कर रही हैं. वह निर्माण विभाग की प्रभारी अधिकारी हैं. अपनी फ़िल्म 'सिकंदर' लगभग पूरा कर चुकी हैं. रूस के सहयोग से बनी फ़िल्म 'रिक्की टिक्की तवई' भी पूरी हो चुकी है और शीघ्र ही इस के 'प्रिंट' स्वीकृति के लिए भारत पहुंच जायेंगे. बाल फ़िल्म समाज इस बीच चेक फ़िल्म 'राजकुमार बयाया' और 'झाड़ू पर सवार लड़की' फ़िल्मों को हिंदी में भाषांतरित कर चुका है. कुमारी गिडवानी द्वारा दी गयी जानकारी के अनुसार ब्रिटेन का बाल फ़िल्म संस्थान क्रिसमस के दौरान भारत में बाल फ़िल्म समारोह आयोजित करेगा. भारतीय बाल फ़िल्म समाज इस समारोह की 4 या 5 फ़िल्में चुन कर उन्हें हिंदी में भाषांतरित करेगा.

देश के करोड़ों बच्चों के मुकाबले बाल फ़िल्म समाज की सक्रियता के उक्त हवाले यह भरोसा नहीं देते कि अब और तब की स्थिति में काफ़ी बड़ा फर्क है, जब बाल फ़िल्म समाज के विघटन और पुनर्गठन की परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गयी थीं. अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी सक्रियता के हालचाल सुनाने के बजाय बाल फ़िल्म समाज से संबद्ध अधिकारी यदि कुछ सीधे और साफ मुद्दों के संबंध में पुष्ट स्पष्टीकरण दे सकें तो भविष्य की तस्वीर का अंदाजा लगाना आसान हो जाये. मसलन वे बतायें कि भारत की किसी भी भाषा में बनी बाल फिल्म को तुरंत हिंदी तथा अन्य भाषाओं में 'डब' करवाने की कोई व्यवस्था की गयी है या नहीं. क्या बाल फ़िल्म समाज के साधन इतने सीमित हैं कि वह किसी भी भारतीय भाषा में बनी चंद फ़िल्मों को भी तुरंत भाषांतरण न करा सके?

यदि वे चुनी हुई फ़िल्मों का ही भाषांतरण करवाना चाहते हैं तो जो नज़र 'राजकुमार बायाया' पर टिकी, वह सत्यजित राय की फ़िल्म 'गूपी गाइन बाघा बाइन', 'सोनार केल्ला' या ऋत्विक घटक की फ़िल्म 'बाड़ी थेके पालिये' पर भी टिकी है? यह कैसी विचित्र स्थिति है कि एक तरफ़ तो भारत में बनी बाल फ़िल्मों की नितांत कमी है और दूसरी तरफ़ जो फ़िल्में जिस भाषा में बनती हैं, वे उसके जानने वालों को भी तुरंत नहीं दिखाई जातीं. मसलन **ब. व. कारंत.** कुछ माह पूर्व बाल फ़िल्म 'चोर चोर चुप जा' बना चुके हैं, जिसे ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चों तक तो क्या, बंबई, कलकत्ता, मद्रास और दिल्ली के बच्चों तक पहुँचने में भी शायद साल छः महीने तो लग ही जायेंगे. बाल फ़िल्म समाज के अधिकारियों से अब इस स्पष्टीकरण की माँग करना भी नितांत आवश्यक हो गया है कि वे अधिसंख्यतः गाँवों में ही बसे भारतीय बच्चों को बाल फ़िल्में दिखाने की क्या व्यवस्था कर रहे हैं? जो फ़िल्में उपलब्ध हैं, वे क्या देश विदेश में आयोजित समारोहों या बड़े शहरों के टिकट खरीदने, सिनेमाघरों तक आ सकने वाले मध्यवर्गीय, उच्चवर्गीय बच्चों तक ही ले जायी जाती रहेंगी? ऐसी स्थिति में तो ग्रामीण इलाकों में बसे हमारे अधिसंख्य बच्चे 'लंका में सोना है, लेकिन हमारे किस काम का' के फेर में ही फंसे रह जायेंगे.

यदि बाल फ़िल्मों की कमी का मामला सुलझाने की और कोई तरकीब फ़िलहाल कारगर नहीं हो पा रही हो तो बाल फ़िल्म समाज एक बहुत बड़े पुण्य का काम यह कर सकता है कि चैप्लिन की दर्जनों मूक फ़िल्मों की अधिकाधिक प्रतियाँ प्राप्त कर उसे देश भर के बच्चों के लिए वितरित करवाये. इन फ़िल्मों के शाब्दिक विवरणों के भाषांतरण में कोई दिक़्क़त नहीं होनी चाहिए; भाषांतरण न किया जा सके तो भी कोई खास फ़र्क नहीं पड़ेगा. अकेले चैप्लिन ही फ़िलहाल हमारे बच्चों को मनुष्यता के गहरे तहों तक ले जा कर उन सदेच्छाओं से स्फूर्त कर सकते हैं, जो हम तक नहीं पहुँच सकीं अथवा जो हम में मर रही हैं या मर चुकी हैं. अकेले चैप्लिन ही हमारे बच्चों पर हमारी अकर्मण्यता के दबाव को कम कर सकते हैं. बच्चों में जिन की दिलचस्पी है उन्हें यह जानने में कतई कोई दिक़्क़त नहीं होनी चाहिए कि चैप्लिन की अधिकांश फ़िल्में आईस्टीन, निझिनिस्की और आइज़ेंस्ताइन के लिए हैं और वे ही बच्चों के लिए भी हैं. चैप्लिन की फ़िल्म 'गोल्ड रस' दिल्ली के सप्रू हाउस में 5 या 6 बार दिखाई जा चुकी है और यह स्तंभकार ऐसे बच्चों को जानता है जो इस फ़िल्म को हर बार देखते हैं. चैप्लिन की और फ़िल्मों की प्रतियाँ प्राप्त की जा सकें तो बच्चों में उन की लोकप्रियता भी निश्चित है.

बच्चों के लिए पर्याप्त फ़िल्में न बन पाने का यह कारण तो हो ही नहीं सकता कि अनुकूल विषय या कथानक नहीं मिल पा रहे हैं. भारत की हर भाषा लोककथाओं का भंडार है. बाल फ़िल्म समाज के अधिकारियों को इस संस्था के पुनर्गठन के लिए इतना समय अवश्य मिल चुका है कि वे अपनी आधारभूत नीतियों का खुलासा दें. बच्चों और उन की दुनिया में दिलचस्पी लेने वालों को जल्द से जल्द अब यह सूचना दे दी जानी चाहिए कि बाल फ़िल्मों की यात्रा पंचतंत्र की कुछेक कथाओं तक ही सीमित रहेगी या वे लोककथाओं के भंडार की ओर भी जा सकेंगी? बाल फिल्में यदि इसलिए कम बन रही हैं कि उन के लिए फ़िल्में बनाने वालों की कमी है तो क्या कारण है कि युवा फ़िल्मकारों की एक पूरी जमात, जो पिछले 5-6 सालों में उभर कर सामने आयी है और जो पर्याप्त काम न मिलने की तकलीफ भी जतलाती रहती है, अपने इस कर्त्तव्य से विमुख है? यदि बाल फ़िल्म समाज के अधिकारी इन के रवैये का खुलासा दे सकें तो उस हमदर्दी का वज़न सही करने में मदद मिल सकती है, जो प्रतिभाशाली युवा फ़िल्मकारों को एक-दो प्रखर फिल्में बना लेने के बाद अगली फ़िल्म की लागत जुटाने में अपना खून सुखाते देखने पर उत्पन्न होती है. यदि ये बच्चों के लिए फ़िल्में बनाने की इच्छा से वंचित हैं तो इन की इच्छा में दिलचस्पी लेने और न लेने वालों को यह बात भी मालूम हो जानी चाहिए.

Regd. No. D-(C)-183
Licence No. U-107
to post without prepayment

एयर-इंडिया प्रस्तुत करती है सप्ताह में पैंसठ उड़ानें—५ महाद्वीपों के लिए.
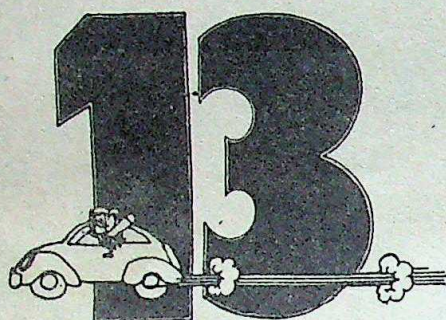
यूरोप

यूरोप के लिए सप्ताह में १३ उड़ानें
लंदन ? नौ ७४७ विमानों को आपका इंतज़ार है. इनमें से तीन, शुक्रवार, शनिवार और मंगलवार को, तेज़ गतिवाले हैं. अन्य छह में आपको रोम, पेरिस या फ़्रैंकफ़र्ट हो कर जाने की सुविधा मिलती है. इसके अलावा दो ७०७ विमान जिनेवा हो कर. मॉस्को ? दो ७०७ विमान.
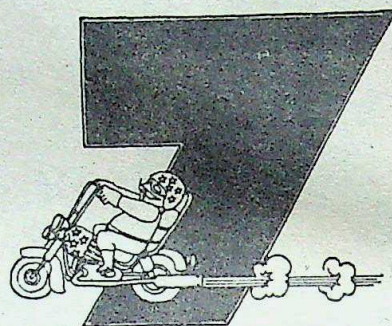
न्यू यॉर्क

न्यू यॉर्क के लिए सप्ताह में ७ उड़ानें
हर दिन ७४७ विमान की एक उड़ान, मध्य पूर्व और यूरोप होते हुए. हमारे विशेष एक्सकर्शन फ़ेयर के अन्तर्गत न्यू यॉर्क जा कर वापस लौटने का किराया आम तौर पर लगनेवाले एकतरफ़ा किराये से भी कम पड़ता है.
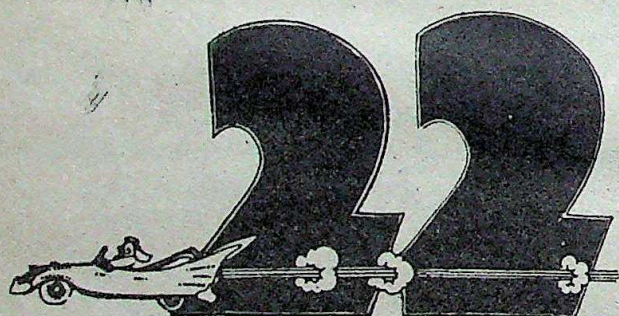
मध्य पूर्व

मध्य पूर्व के लिए सप्ताह में २२ उड़ानें
बेरूत ? पाँच ७४७ विमान उड़ान भरने को तैयार. कुवैत ? चार ७४७ तथा दो ७०७ विमानों में से आप मनपसंद चुनाव कर सकते हैं. दुबई के लिए चार ७०७ विमानों में से कोईसा भी चुनिए. बहरैन तथा मस्कत के लिए तीन उड़ानें तथा आबू धाबी, कैरो और तेहरान में से प्रत्येक के लिए दो उड़ानें. इसके अलावा अदन, दौहा या दहरान में से प्रत्येक के लिए एक ७०७ विमान.

साथ ही हर सप्ताह :
६ उड़ानें
जापान के लिए हाँग काँग हो कर—
४ टोकियो के लिए
२ ओसाका के लिए. १० उड़ानें
दक्षिण पूर्व एशिया के लिए—
६ बैंकॉक के लिए और
४ सिंगापुर के लिए.
२ उड़ानें
ऑस्ट्रेलिया के लिए
३ उड़ानें
पूर्व अफ़्रीका के लिए
२ उड़ानें
मॉरिशस के लिए.

एयर-इंडिया
आपकी मनपसंद एयरलाईन

AI. 9064

बैनेट, कोलमैन एंड कंपनी लिमिटेड, के स्वाधिकारी के लिए रमेशचंद्र द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, 10 दरियागंज, दिल्ली-6 से मुद्रित और प्रकाशित.

साप्ताहिक
दिनमान
नये मंत्री
नगा समभौता
आइफैक्स वार्षिकी
शिक्षा की प्राथमिकता
मुस्लिम स्त्री समाज
संयुक्तराष्ट्र में तीसरी दुनिया
7-13 दिसंबर, 1975
16-22 मार्गशीर्ष, 1897
1 रुपया

सही पालन पोषण का आधार
पराग
(स्प्रे-ड्राईड)
शिशु दुग्ध आहार
parag
INFANT MILK FOOD
(SPRAY DRIED)

मत और सम्मत

'प्रबुद्ध श्रद्धा के पक्ष में' : 2 नवंबर : राजी नरसिंहन के विद्वतापूर्ण विचार पढ़ कर प्रसन्नता हुई और उलझन भी. उत्तर महा-काव्यकालीन सभ्यता की प्रामाणिकता और संदिग्धता के विवाद को उन्होंने एक नये अंदाज में देखा है परंतु जब स्वयं उन के अनुसार ही 'मिथ' और इतिहास दो अलग-अलग चीजें हैं तो इतिहास की इन खोजों से उन की विरक्ति का क्या अर्थ है ? लगता है उन के अनुसार यह एक 'मिथ' मात्र है जहाँ तर्क और खोज बेमानी हैं. मिथ को उन्होंने समाज के मूल्यों और लक्ष्यों का परम बिंदु माना है—भला क्यों ? वैसे हमें तो अब तक यही मालूम है कि महाभारत 'मिथ' भी है और 'इतिहास' भी. क्या अनुभूत सत्य (मिथ) के बचाव के लिए यथार्थ (इतिहास) का अन्वेषण तक न करें ? मैं मानता हूँ कि अपने देश में सत्य का व्यापक अर्थ होता है और उस के कई आयाम हैं. आत्मा की छटपटाहट निश्चय ही महान सत्य है पर इन 'मिथों' में क्या आत्मा की छटपटाहट को माना गया है ? सच पूछा जाये तो इतिहास और मिथ में वही फर्क है जो 'जैसा होता है' और 'जैसा होना चाहिए' में है. 'जैसा होना चाहिए' से हमारा भावनात्मक रुझान भले न हो, 'जैसा होता है' से हमारा प्रत्यक्ष वास्ता होता है. इसीलिए किसी भी विवाद का निर्णय न्यायाधीश के दिलोदिमाग के अनुसार पलता और ढलता है. देश, काल और पात्र के अनुसार एक ही घटना रंग बदलती चलती है. रामायण और महाभारत के परस्पर विरोधी मिथ प्रचलित हैं. पुराणों में कभी एक को, कभी दूसरे को श्रेष्ठतम घोषित किया जाता रहा. अधिकांश मिथ, स्वार्थ, शोषण और कुंठा के संवाहक हैं. जिस हिंदू धर्म को बचाने का आग्रह इस रचना में झलकता है उस के सुविधाभोगी वर्ग की मानसिकता इन्हीं मिथों द्वारा बुनी हुई है, जो मेहतरों का मल ढोना उन का कर्त्तव्य और नियति मानता है और जिस का शिक्षित वर्ग भी आधुनिकता की खाल ओढ़ लेने के बावजूद अपनी जातिगत उपाधि वगैरह के दंभ और सांस्कारिकता से उबर नहीं पाया है. तभी तो यह वर्ग कभी उपेक्षित हिंदुओं के बौद्ध या इसाई होने से तिलमिला उठता है, कभी महाकाव्यकालीन सभ्यताओं के अस्तित्व डगमगाते देख, सांस्कृतिक शून्यता का आतंक दिखा कर उसे पकड़े रहना चाहता है.

किसी आशंकित मोहभंग के भय से आँखें मूंद लेना वांछनीय नहीं. इतिहासकार या पुरातत्वविद जो कुछ कर रहे हैं उन का स्वागत होना चाहिए. कम से कम इस लिए कि मिथक, क्षेपक या अन्यान्य विकृतियों में फँसे सत्य की असलियत का अहसास तो हो. ज़रूरी नहीं कि सत्य सदा चाक्षुष ही हो या हमारी आकाश-कुसुमी कल्पना के अनुरूप ही हो. सांस्कृतिक नवनिर्माण के लिए भी इन मिथों का तिलस्म टूटना चाहिए जिन्हें आज तक अस्त्र के रूप में प्रयोग किया जाता रहा ताकि हम पूर्वग्रहों से मुक्त हो जीवन को सहज और स्वाभाविक रूप में ग्रहण कर सकें. अमूर्तन और निराकारवाद निश्चय ही एक महान उपलब्धि है पर पृथ्वी पर जन्म लेने वाले प्राणी के लिए देख सकने और छू सकने के मृण्मय सत्य के अवलंबन की विवशता रहेगी ही. इस पार्थिवता से ऊपर उठ कर उस स्तर (जो फिलहाल वायवीय जैसा है) पर पहुँचने में शायद सभ्यता की कई सीढ़ियाँ बाकी हैं. अभी तक यह कुछ ही लोगों द्वारा संभव हो पाया है.

—संजीवन, मुख्य प्रयोगशाला,
भारतीय लौह एवं इस्पात कंपनी,
कुलटी जनपद, बर्द्धमान.

नून मीम राशिद : 'दिनमान' में उर्दू की नयी कविता पर आलोचनात्मक लेख प्रकाशित होते रहे हैं. जब अक्तूबर में नून मीम राशिद का देहांत हुआ तो सोचा गया कि 'दिनमान' में उर्दू नज़्म को नई दिशा देने वाले शायर पर कोई लेख अवश्य ही प्रकाशित होगा. इस कमी को श्री शकील सिद्दीकी ने किसी हद तक पूरा किया.

नून मीम राशिद ने अपनी जिंदगी में कभी शोहरत की ओर ध्यान नहीं दिया. वह खामोशी के साथ सर्जनात्मक कार्य में लगे रहे. उन्होंने उर्दू नज्म को नये आयामों एवं नयी अनुभूतियों से परिचित किया. वह हमेशा काव्य को राजनैतिक हथियार बनाने वालों का विरोध करते रहे. 'ईरान में अजनबी' काव्य संग्रह की भूमिका में उन्होंने लिखा कि 'सही बात यह है कि कारी हो या नक्काद, जब तक वह शायर के साथ एक हद तक हमसफर होने पर आमादा न हो उस की ज़बान या उस के मिजाज से वाकिफ नहीं हो सकता.' यह बात भी दिलचस्प है कि उर्दू के नये कवियों ने फैज की काव्यशैली से बचने का प्रयत्न किया जब कि यह नून मीम राशिद की काव्यशैली से प्रभाव ग्रहण करते रहे. शकील सिद्दीकी ने उन के काव्य संग्रहों में केवल 'मावरा' और 'ईरान में अजनबी' का उल्लेख किया है. उन का तीसरा काव्य संग्रह 'ला इंसान' भी प्रकाशित हो चुका है. कुछ समय पहले हैदराबाद से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'शैरो हिकमत' ने नून मीम राशिद के व्यक्तित्व एवं काव्य पर एक विशेषांक भी निकाला था.

—खलील तनवीर,
राजकीय संग्रहालय,
डूंगरपुर, राज.

'कर्षण वितरण सिरोपरि उपस्कर' : यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि उत्तर रेलवे के इलाहाबाद मंडल के अधीक्षक महोदय ने 19 नवंबर से इलाहाबाद मंडल का समस्त कार्य हिंदी में करने का आदेश दिया है. लेकिन इलाहाबाद स्टेशन के प्लेटफार्म नं. 1 के पुल के नीचे एक कोठरी पर लिखे हुए चार शब्दों ने सारी प्रसन्नता पल भर में समाप्त कर दी. वे चार शब्द हैं—'कर्षण वितरण सिरोपरि उपस्कर'. इन शब्दों को पढ़ कर बुद्धि के सभी द्वार खटखटाये, 25-26 वर्ष में जितनी भी हिंदी सीखी थी याद की परंतु इन चार शब्दों का अर्थ न निकाल सका. हिंदी प्रदेश का निवासी, मातृभाषा हिंदी और हिंदी में सामान्य से अधिक रुचि होते हुए भी सार्वजनिक स्थान पर लिखे हुए चार शब्दों का अर्थ न निकाल सका. बहुत दुःख हुआ. अगल-बगल खड़े दो-चार व्यक्तियों से उन का अर्थ पूछा तो वे भी असफल रहे. अब दुःख का स्थान क्रोध ने ले लिया. सार्वजनिक स्थानों पर ऐसी हिंदी लिखने से क्या लाभ जो जनसाधारण की समझ में ही न आये. पढ़ने से यही नहीं समझ में आता कि किसी पद का नाम लिखा है या कोई मशीन का नाम या किसी कार्यालय का नाम या कोई संस्कृत का श्लोक है. मेरी समझ में नहीं आता कि किस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ऐसी हिंदी का प्रयोग किया जाता है ? वह कौन सी भावना है जो ऐसी हिंदी को प्रयोग

चंदे की रियायती दरें

अवधि	देश में	विदेश
		(साधारण डाक से)
वार्षिक	42 रु.	61 रु.
छमाही	22 रु.	32 रु.
तिमाही	12 रु.	16 रु.

आप फ़रमाते हैं:—

व्यंग्यचित्र : लक्ष्मण

'तुम आज का अखबार पढ़ रहे हो—यह कल का है और यह परसों का.'

में लाने के लिए प्रेरित करती है.? मुझे तो स्पष्ट रूप से षड्यंत्र की झलक दिखायी देती है और इस षड्यंत्र का उद्देश्य है कि ऐसी भाषा बोली या लिखी जो जनसाधारण की समझ में ही न आये. मेरे विचार से हिंदी के प्रयोग पर इस लिए बल दिया जाता है कि अंग्रेजी के कारण लोगों के बीच जो दूरी है वह समाप्त हो जाये. आशा है कि मंडल अधीक्षक महोदय इस ओर ध्यान देंगे और अंग्रेजी का इस तरह की हिंदी में अनुवाद करने में जनता की जिस गाढ़ी कमाई का दुरुपयोग हो रहा है, उस को रोकेंगे.

—उत्तमदेव, स्टेट बैंक आफ इंडिया, पुलिस लाइंस के सामने, इलाहाबाद.

स्पष्टीकरण : भाई अर्जुनप्रसाद ने अपने आक्षेप (मत सम्मत, 16 नवंबर) को दिनमान के हजारों पाठकों से जोड़ कर शायद ज्यादती की है. आप का प्रश्न भी अन्य ईर्ष्यालु पुरुष संवादियों की तरह ही है जब कि प्रश्न चर्चा 102 का सीधा संबंध संपूर्ण नारी जाति के स्वातंत्र्य से है. यह स्वतंत्रता न तो उस की अनाधिकार चेष्टा है और न ही पुरुष के किसी क्षेत्र पर कुठाराघात है. मेरे कहने का ध्येय तो मात्र इतना ही है कि सभ्यता की इस दौड़ में एक के निर्णय को दूसरे पर लादना असभ्यता है. मेरी माँग में यह स्पष्ट है कि प्रकृति के इतने बड़े गुरुतर भार (गर्भ धारण) को स्त्री की इच्छा के बिना उस से उठवाना असभ्यता और दुराचार होगा. संतान उत्पत्ति के बाद स्त्री का दूसरा जन्म होता है क्योंकि प्रसव पीड़ा होती ही इतनी कठिन है. प्रश्न चर्चा में भी यह स्पष्ट है कि स्त्री के प्रकृति प्रदत्त माँ बनने या न बनने के अधिकार में पुरुष की ज़बरन दखलंदाज़ी के निर्णय के विरोध में वह क्या करे ? उपरोक्त विशाल प्रश्न का उत्तर मेरे भाई ने मेरे ही संवाद में ढूंढ़ने का असफल प्रयास किया है जब कि उन्हें दूसरों के संवाद भी पढ़ने चाहिए थे.

इस अंतरराष्ट्रीय महिला वर्ष में भी आप स्त्री को पुराने चश्मे से ही देखते हैं जब कि यह बात सर्वमान्य है कि स्त्री को पुरुष के बराबर स्वतंत्रता मिले तो किसी क्षेत्र में भी वह पुरुष से पीछे नहीं रहेगी. फिर क्या विवाहित स्त्री पति के आर्थिक बोझ को उठाने के लिए अपना कंधा लगाने में सक्षम नहीं है ? संतान की वैधता और अवैधता के प्रश्न को पुरुष के साथ जोड़ना ही असभ्यता है. मैं पूछती हूँ कि कबीर और ईसा पुरुष जाति के रहते हुए भी अवैध क्यों कहलाये ? वैधता और अवैधता के संबंध में मेरा यही दृष्टिकोण है कि स्त्री का इच्छित गर्भ वैध और अनिश्छित गर्भ अवैध कहलाये. यही तो विश्वसमुदाय से मेरी माँग है और इसी में स्त्री जाति की सच्ची [illegible] निहित है. यह बात अब तक के समाज [illegible] अटपटी जरूर है क्योंकि अब तक के सारे विधान पुरुष निर्मित ही रहे हैं जिस में स्त्री की इच्छा का समावेश नहीं है.

—मीना कुमारी, द्वारा श्री भीमजी मिश्र, पेपर इलेक्ट्रीकल इंजीनियरिंग, डालमिया नगर, जिला रोहतास, बिहार.

बंधुआ मजदूरी : 2 नवंबर : यह प्रधानमंत्री के 20 सूत्रीय आर्थिक कार्यक्रम के अंतर्गत समाज के सब से निचले और उत्पीड़ित वर्ग को नया विश्वास और भरोसा है तथा स्थूल रूप से एक बड़ा संबल जैसा है. अब देहातों में अतिरिक्त काम और रोजगार के नये अवसरों को अविलंब उपलब्ध कराना बेहद ज़रूरी हो गया है. यदि बंधुआ मजदूरी की अतिप्राचीन प्रथा से पीड़ितों को स्वतंत्र कर के पुनर्स्थापित करना है तो हदबंदी से प्राप्त भूमि तथा खेती योग्य बेकार भूमि का पुनरुद्धार कर के उस पर उन की सहकारी खेती समितियाँ गठित करना शुरू कर दिया जायें, जिस से समस्या का इलाज़ बहुत हद तक संभव होगा.

'दिनमान' में अधुनातन राजनीति, अर्थ, कृषि, विज्ञान, उद्योग, व्यापार, साहित्य एवं संस्कृति विषयक विश्लेषणात्मक, समीक्षात्मक, शोधपूर्ण, तर्कयुक्त तथा एकदम ताजी जानकारी दी जाती है. इन सभी विशेषताओं के नाते 'दिनमान' एक संपूर्ण पत्रिका के रूप में प्रसिद्ध है. देश की कोई अन्य साप्ताहिक पत्रिका इतनी कम क़ीमत में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र की स्तरीय और विशद किंतु गहरी जानकारी एक साथ कदाचित ही दे पाती होगी. साथ ही सोचने-समझने और काम करने की जो सूक्ष्म दृष्टि और सत्साहस अपने पाठकों को 'दिनमान' देता है, वह अद्वितीय है. यह सब पत्रिका का श्वेत पक्ष है. इस के श्याम पक्ष (जो बात मेरे दिलोदिमाग़ में बार-बार खटकती है) के संबंध में मेरा ख्याल है कि 'दिनमान' की भाषा और अभिव्यक्ति का लाभ केवल उच्च स्तरीय शिक्षित या औसत दर्जे से अधिक सूझबूझ रखने वाले ही उठा पाते होंगे क्योंकि ज़्यादातर सामग्री जनसाधारण की समझ के परे होती है. अतएव अच्छा होगा कि प्रामाणिकता घटाये बगैर ही यह पत्रिका जनसाधारण की पहुँच के लायक बना दी जाये. सरल, सीधी और सुबोध भाषा का प्रयोग कर के कुछ सामग्री देने की व्यवस्था से ऐसा हो सकता है. एक सुझाव और! . . .देश भर के सभी ज़िलों के अंतर्गत एक महीने में घटित या घटने वाले समाचारों (अपने प्रतिनिधियों से प्राप्त) में से सर्वोपरि महत्त्व के (लगभग 5) कुछ समाचारों का संक्षिप्त ब्यौरा दो-चार पृष्ठों में नियमित रूप से प्रकाशित किया जाये. ऐसा किया जाना बेहद ज़रूरी है. इन दो-चार पृष्ठों से पत्रिका की अहमियत काफ़ी बढ़ जायेगी, क्योंकि 'दिनमान' और कुछ के पूर्व समाचारप्रधान साप्ताहिक है.

—राधा मोहन श्रीवास्तव, बड़हलगंज, गोरखपुर, उ.प्र.

पिछले सप्ताह

(20 नवंबर से 26 नवंबर, 1975 तक)

देश

20 नवंबर : गंगकोट में विशाल जन समूह में प्रधानमंत्री ने कहा कि भारत बंगलादेश की घटनाओं पर चुप नहीं बैठा रह सकता.

21 नवंबर : भूमिगत विद्रोही नेताओं से शीघ्र समझौते की आशा. कांग्रेस अध्यक्ष बरुआ के अनुसार अभी आगामी चुनावों के बारे में कोई निर्णय नहीं किया गया.

22 नवंबर : भारत और पाक के बीच हवाई उड़ान शुरू होने की संभावना.

23 नवंबर : कलकत्ता में हुई तीसरी 'ग्रां प्री' प्रतियोगिता के फाइनल में भारत के विजय अमृतराज ने स्पेन के मैनुअल ओरांतीस को हरा दिया. तमिषनाडु में संगठन कांग्रेस में फूट.

24 नवंबर : अखिल भारतीय प्राथमिक-शिक्षक सम्मेलन का समापन. भारत पर अनुचित दबाव डालने वाले देशों को प्रधानमंत्री की चेतावनी. मंगोलिया के विदेशमंत्री रिंचिन द्वारा भारत की 'शांति नीति' का समर्थन. प्रसिद्ध उर्दू शायर सुखदेव प्रसाद बिस्मिल का देहांत.

25 नवंबर : स्वेच्छा से काले धन की घोषणा की मियाद अब और नहीं बढ़ेगी. श्री जयप्रकाश नारायण को नकली गुर्दा लगाया गया.

26 नवंबर : बंगलादेश में भारत के उच्चायुक्त श्री समर सेन घातक हमले में गोली लगने से ज़ख्मी. भारत सरकार द्वारा इस घटना पर विरोध प्रकट किया गया.

विदेश

20 नवंबर : स्पेन के जनरल फ्रांको का देहांत.

21 नवंबर : ढाका विश्वविद्यालय में छात्रों और सेना के बीच मुठभेड़.

22 नवंबर : स्पेन के राजकुमार जुआन कार्लोस ने स्पेन नरेश की शपथ ग्रहण की.

23 नवंबर : चीन के प्रधानमंत्री चाऊ-एन लाई अस्वस्थ. अमेरिका द्वारा बंगलादेश को हर प्रकार की मदद देने का आश्वासन.

24 नवंबर : संयुक्त राष्ट्र के महासचिव कुर्त वाल्दहाइम दमिश्क से तेल अबीब पहुँचे. अमेरिका के राष्ट्रपति फोर्ड 1 दिसंबर को चीन जायेंगे.

25 नवंबर : सूरीनाम द्वारा तटस्थता की नीति अपनाने का संकल्प.

26 नवंबर : लिस्बन में 'मार्शल ला' लागू होने से वामपंथी सैनिक विद्रोह का दमन. मस्क्वा में भारी हिमपात.

मिस्र के नये मित्र

मिस्र के राष्ट्रपति श्री सआदत की हाल ही की अमेरिका यात्रा तथा मिस्र और अमेरिका के बीच बढ़ते हुए संबंधों को ले कर पश्चिमी यूरोप के समाचारपत्रों में काफ़ी चर्चा है. प्रसिद्ध ब्रितानी पत्र **गार्डियन** ने अपने संपादकीय में स्पष्ट कहा है कि काफ़ी अरसे के बाद मिस्र का झुकाव पश्चिमी यूरोप की ओर दिखाई पड़ता है. पत्र का कहना है:

'अब से तीन वर्ष पहले जब से मिस्र ने अपने यहाँ से तेरह सोवियत सलाहकारों को बाहर निकाला था, तब से पश्चिम यूरोपीय देशों की तरफ़ उस का रुझान बढ़ता ही जा रहा है. मिस्र में पूंजी विनियोग का स्रोत पश्चिमी यूरोप बन गया और कुछ कुछ सैनिक सहायता भी मिस्र को पश्चिम यूरोपीय देशों से मिलने की संभावना है. इस का मतलब है कि अरब-इस्राइल संघर्ष के निपटाने में यूरोपीय देशों और अमेरिका की भूमिका का महत्त्व बढ़ गया है. मिस्र और पश्चिमी यूरोप के देशों में द्विपक्षीय सहयोग का लाभ दोनों को ही मिला है. हाल ही में मिस्र के राष्ट्रपति सआदत की लंदन यात्रा से भी यही साबित होता है कि अरब जगत में ब्रिटेन की दिलचस्पी का मिस्र स्वागत करता है. यहाँ तक कि मिस्र ने तो यह भी कहा है कि तेल उत्पादन करने वाले देशों की संस्था की अध्यक्षता ब्रिटेन करे, इस का मतलब यह है कि तेल उत्पादन करने वाले देशों के कार्यकलापों में ब्रिटेन की भूमिका बहुत ही महत्त्वपूर्ण होगी.

परमाणु संरक्षण के संबंध में भी मिस्र के राष्ट्रपति ने ब्रिटेन से अनुरोध किया है. लेकिन इस अनुरोध के कारण ब्रिटेन का कुछ परेशानी में पड़ जाना स्वाभाविक है. नैतिक दृष्टि से ही नहीं बल्कि कूटनीतिक दृष्टि से भी ब्रिटेन के लिए यह काफ़ी उलझन की बात है. वाशिंगटन से लौटते हुए राष्ट्रपति सआदत का लंदन आना संभवतः परमाणु अस्त्रों की खरीद के बारे में था. लेकिन ब्रिटेन के लिए मिस्र को परमाणु अस्त्र देने का सवाल ही नहीं उठता क्योंकि इस संबंध में ब्रिटेन की प्रणाली अमेरिका से काफ़ी भिन्न है. हो सकता है इस संबंध में ब्रितानी प्रधानमंत्री ने राष्ट्रपति सआदत से जो वायदा नहीं किया वह फ्रांसीसी राष्ट्रपति कर बैठें.

लेकिन अगर ब्रिटेन कुछ परमाणु अस्त्र मिस्र को दे भी दे तो इसे परमाणु शक्ति प्रसार के खतरे की संज्ञा नहीं दी जानी चाहिए. यह भी नहीं कहा जा सकता कि इस प्रकार पश्चिम एशिया में शक्ति संतुलन बिगाड़ा जा रहा है क्योंकि ब्रिटेन ने अपनी परमाणुशक्ति इस्राइल से गुप्त नहीं रखी है. उस ने सारी दुनिया को बता दिया है कि परमाणु शक्ति के क्षेत्र में उस की क्या ताकत है. प्रचलित अस्त्रों के संबंध में तो शक्तिसंतुलन की बात अलग मायने रखती है. यह मामला विवादास्पद भी हो सकता है. चाहे जो भी हो मिस्र को प्रचलित अस्त्र देने का प्रश्न भी विचाराधीन है. अभी अंतिम रूप से नहीं कहा जा सकता कि ब्रिटेन मिस्र को इस तरह के अस्त्र देने पर सहमत हो गया है. लेकिन इतना तो निश्चित ही है कि परमाणु अस्त्रों का देना निश्चय ही विनाशकारी सिद्ध होगा. मिस्र को परमाणु अस्त्र देने के बारे में एक दलील यह भी दी जा रही है कि यदि मिस्र को यह विश्वास हो गया कि पश्चिम का कोई भी देश, आक्रमण होने की स्थिति में उसे परमाणु संरक्षण देने को तैयार नहीं है तो वह स्वयं ही परमाणु बम बनाने की बात सोच सकता है.

अब से कोई चार वर्ष पहले असवान बांध के ऊपर नील नदी के पास अमेरिका ने दो असैनिक परमाणु भट्टियाँ बनाने का एक कार्यक्रम शुरु करवा दिया था. यह उस वक्त की बात है जब कोई दस वर्ष पहले मिस्र ने पश्चिमी यूरोप के साथ संबंध अच्छे बनाने की कोशिश की थी. तब से ले कर अब तक इन परमाणु भट्टियों का इतना विकास तो हो ही गया होगा कि कम से कम मिस्र अपने लिए एक परमाणु बम तो बना ही सकता है. अरब परमाणुशक्ति संस्थान ने अभी हाल ही में संकेत भी दिया था कि परमाणु बम बनाने की सामर्थ्य कुछ हद तक उस में पैदा हो गयी है. गुप्त रूप से इस तरह की तैयारी के बारे में भी कुछ समाचार मिले थे. ठीक ऐसे ही जैसे हाल ही में भारत और ब्राज़ील, परमाणु विस्फोट करने में सफल हुए हैं.

लेकिन अभी इस संबंध में स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता. हो सकता है भारत और ब्राजील की तरह शांतिपूर्ण कार्यों के लिए ही मिस्र भी अपने यहाँ परमाणु विस्फोट की तैयारी कर रहा हो. यदि ऐसा है तो इसे पश्चिमेशिया में शांति प्रयत्नों के विरुद्ध नहीं माना जा सकता. लेकिन ब्रितानी मंत्रिमंडल को राष्ट्रपति सआदत के अनुरोध पर बहुत ही सावधानी से विचार करना चाहिए. मुख्य प्रश्न यह है "कि ऐसे समय जब कि पश्चिमेशिया में तनाव कम करने और संघर्ष को बिलकुल समाप्त करने के प्रयत्न हो रहे हैं तब क्या अस्त्रशस्त्रों की राष्ट्रपति सआदत की माँग ब्रिटेन को स्वीकार करनी चाहिए? हम समझते हैं कि राष्ट्रपति सआदत को कितनी ही निराशा क्यों न हो. ब्रिटेन को यह तो स्पष्ट कर ही देना चाहिए कि वह इस तरह के अस्त्र-शस्त्र मिस्र को देने में बिलकुल असमर्थ है.

यदि पश्चिमी यूरोप की तरफ़ मिस्र का झुकाव इस कारण है कि वह अपने आप को अस्त्रशस्त्रों से लैस करे और परमाणुशक्ति संपन्न बनाये तो निश्चय ही यह शांति के हित में नहीं है.

प्रेस जगत

पुनर्गठन की समस्या

22 नवंबर को दिल्ली जर्नलिस्ट एसोसिएशन के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर संगठन के नये अध्यक्ष ने अपने अध्यक्षीय भाषण में पत्रकारों की विभिन्न समस्याओं के सिलसिले में अपने विचार व्यक्त करते हुए पत्रकार और राजनीति के आपसी संबंधों पर भी प्रकाश डाला. श्री दत्तात्रीय तिवारी के अनुसार पत्रकार संगठनों का यह ध्येय होना चाहिए कि 'सभी पत्रकारों को उन के कर्त्तव्य कार्य में सुविधाएँ मिलें तथा आर्थिक संकट की स्थिति में उन के वेतनों में तदनुरूप वृद्धि हो. परंतु पत्रकार संगठन, पत्रकारों के हितों को अपनी राजनीतिक शतरंज का मोहरा या दलीय लाभ का साधन बना लें तब स्थिति दुःखद हो जाती है. . . . पत्रकारों के अपने राजनीतिक विचार हो सकते हैं तथा होते भी हैं परंतु वे यदि उन्हें अपनी पत्रकारिता से भी अधिक महत्त्व देते हैं तब वे मूलतः पत्रकार न हो कर राजनीतिक अधिक हैं. ऐसी दलीय राजनीति से न केवल पत्रकार संगठनों को अपितु किसी भी उद्योग के श्रम संगठन को हानि होती है. श्रमजीवियों की सामूहिक सौदेबाजी की शक्ति कमज़ोर पड़ जाती है.' मगर इसी भाषण में अध्यक्ष महोदय ने कुछ समय पहले यह भी कहा था, 'स्वतंत्रता से पूर्व-पत्रकारों के लिए निर्भीक विशेषण बड़ा सम्मान-पूर्ण था. उस समय तब पत्रकारिता राजनीति का एक बलिष्ट माध्यम थी. वह समय मिशनरी भावना का था . . . समाचारपत्र उद्योग में जब से मिशनरी भावना समाप्त हो गयी तब से एक नयी स्थिति पैदा हो गयी है. पत्रकार कला की गहराई भी इस उद्योग के चक्कर में चोट खा गयी है. पत्र शिक्षा प्रधान न हो कर अर्थ प्रधान हो गये हैं.' तिवारी जी के उक्त विचार कुछ इस प्रकार की भावना पैदा करते हैं कि अब क्योंकि त्याग और बलिदान की भावना पत्रकारों में नहीं रह गयी है तो क्यों न धन और सुविधा के लिए ही लड़ा जाय.

इस अधिवेशन के दौरान दो महत्त्वपूर्ण विषयों पर विचार व्यक्त किये गये. नेशनल यूनियन आफ जर्नलिस्ट ने केंद्रीय सरकार द्वारा प्रस्तावित समाचारपत्रों के प्रबंध और समाचार समितियों के पुनर्गठन पर कुछ सुझाव दिये हैं. इस के अनुसार समाचारपत्र मूलतः स्वयं पत्रकारों और अन्य ऐसे लोगों द्वारा संचालित होना चाहिए जो स्वतंत्र निर्भीक और उत्तरदायी पत्रकारिता में विश्वास रखते हों. मगर संस्था यह महसूस कर रही है कि भारत या अन्य किसी देश में भी सामाजिक विकास के वर्त्तमान चरण में शायद यह संभव नहीं है. फिर भी वर्त्तमान परिस्थितियों में संपादक और संपादकीय कर्मचारियों को

संचालकों के गलत प्रभाव से मुक्त करने के बारे में कदम उठाये जा सकते हैं. पत्रकारों को यह जान कर प्रसन्नता हुई है कि सरकार भी इसी दिशा में विचार कर रही है. इस सिलसिले में सूचना और प्रसारणमंत्री ने क्षेत्रीय बोर्ड स्थापित करने के लिए क़ानून बनाने का आश्वासन दिया है. ये बोर्ड मालिकों के हितों और संपादकीय विभाग के बीच संतुलन क़ायम करेंगे. नेशनल यूनियन आफ जर्नलिस्ट के अनुसार इस योजना को अधिक विस्तार दिया जाना चाहिए, ताकि इस के कार्यक्षेत्र में संपादकों की समिति द्वारा बनाये गये दिशा निर्देशों को लागू करवाने, संपादकीय संचालन समिति द्वारा प्रस्तावित कई नामों में से संपादक का चुनाव करने, संपादकीय संचालन समिति के परामर्श के पश्चात् संपादक और अन्य कर्मचारियों को सेवामुक्त करने, प्रेस परिषद् के वर्तमान कार्यों को सँभालने का काम भी शामिल हो. प्रेस परिषद् को समाप्त करने का फ़ैसला सरकार ले चुकी है और उन कर्मचारियों को अपने अपने स्थानों पर भेजा जा रहा है जो दूसरे विभागों से परिषद् में काम करने के लिए लाये गये थे.

उक्त कार्य को पूरा करने के लिए ज़रूरी होगा कि प्रत्येक समाचारपत्र या पत्रिका में एक संपादकीय संचालन समिति और एक व्यापार संचालन समिति हो. दोनों समितियों में विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधि होंगे. मगर संपादकीय समिति में संपादकीय कर्मचारियों की संख्या 50 प्रतिशत और व्यापार संचालन समिति में संस्थापक संचालकों का प्रतिनिधित्व 40 प्रतिशत रखने का प्रस्ताव दिया गया है.

नेशनल यूनियन आफ जर्नलिस्ट ने संपादकीय नीति के सिलसिले में कहा है "ऐसे अवसर आये हैं जब कि व्यक्तिगत रूप से महत्त्व के स्थान पर होते हुए भी, संपादकों ने संपादकीय नीति विशेष कर राष्ट्रीय मामलों में अपने व्यक्तिगत विचारों के आधार पर कार्यान्वित की है. सभी व्यक्तिगत विचारों का आदर होना चाहिए. उन्हें अभिव्यक्ति का पूरा मौका मिलना चाहिए. फिर भी उन की अभिव्यक्ति की सुविधा अलग से हस्ताक्षर-युक्त लेखों के रूप में की जानी चाहिए न कि संपादकीय नीति के रूप में.' इसी प्रकार की ग़लत नीति नियुक्तियों और तबादलों आदि में भी अपनायी गयी है. इस लिए यह सुझाव दिया गया है कि संपादक के पास एक परामर्श-दात्री संस्था होनी चाहिए जो ऐसे मामलों में उचित कार्रवाई का परामर्श दे.

समाचार समितियों के पुनर्गठन के सिलसिले में यह सुझाव दिया है कि इन समितियों को आर्थिक रूप से मज़बूत किया जाना चाहिए. मगर निष्पक्ष समाचार और बहुपक्षीय सूचनाओं के लिए एक से अधिक राष्ट्रीय समाचार समितियों का अस्तित्व रखना उचित होगा.

अधिवेशन के बाद समाचारपत्रों के पुनर्गठन के सिलसिले में एक विचार गोष्ठी का आयोजन भी किया गया. इस विचार गोष्ठी में संस्था के महामंत्री प्रथीश चक्रवर्ती ने बताया कि पत्रकारों को क़ानून के अंतर्गत काम कर के वर्तमान दिशानिर्देशों को स्वीकार करते हुए पत्रकारों की कार्य की शर्तों को सुधारने की कोशिश करनी चाहिए और इसी दिशा में जो रचनात्मक सुझाव दिये जा सकते हैं, वही भारतीय पत्रकारिता के हित में होगा. राजनीतिक मामलों पर बहस करना या उन की अच्छाई बुराई का फ़ैसला राजनीतिकों पर ही छोड़ना चाहिए. इस गोष्ठी में कुछ पत्रकारों ने यह सुझाव रखा कि पहले यह जानने की कोशिश करनी चाहिए कि क्षेत्रीय बोर्डों की स्थापना से सूचना मंत्रालय क्या उद्देश्य पूरा करना चाहता है. इस योजना का पूरा विवरण प्राप्त होने के बाद ही कोई नये सुझाव दिये जा सकते हैं.

केंद्रीय प्रसारण और सूचनामंत्री **श्री विद्या चरण शुक्ल** ने लखनऊ में दूरदर्शन केंद्र का उद्घाटन करते हुए पत्रकारों से बातचीत में बताया कि सरकार किसी प्रकार की समाचार संहिता 'लादना' नहीं चाहती. वास्तव में यह आचारसंहिता संपादकों की केंद्रीय समिति ने विभिन्न पत्रकार संस्थाओं और संचालकों की संस्थाओं के साथ परामर्श कर के तैयार की है. उद्देश्य है कि इस प्रकार की आचार संहिता हो जिस से सभी उत्तरदायी पत्रकार सहमत हों. इस आचार संहिता का संबंध सेंसर से नहीं है. इसी अवसर पर श्री शुक्ल ने कहा कि सरकार ने अखबारों के पुनर्गठन के सिलसिले में फैसला कर लिया है.

नगालैंड

लेख और फोटोः सूर्यनारायण

आप के लेखन की विधा क्या है, आप नगालैंड पर क्या क्या लिखेंगे, दिमापुर में नगालैंड के लिए प्रवेशपत्र देने वाले युवा नगा अफसर अपने सामने फैले कागज़ों पर दस्तखत भी करते जा रहे थे और मुझ से प्रश्न, प्रतिप्रश्न भी. उन के प्रश्नों की व्यापकता ने मुझे सहज ही यह बोध करा दिया कि यहाँ के लोगों का मानस कितनी तेजी के साथ देश के मानस के साथ जुड़ता जा रहा है.

मेरा प्रवेशपत्र कुछ ही मिनटों में तैयार हो गया.

कोहिमा के लिए अब बस कल सुबह ही मिलने वाली थी, अतएव मैं अपने हमसफर मित्र कामेश्वर के साथ इस शहर में ही घूमने चल दिया.

दिमापुर नगालैंड का प्रवेशद्वार है. यहाँ से उत्तरपूर्वीय सीमांत रेलवे की एक लाइन गुजरती है, एक सड़क कोहिमा होते हुए मणिपुर को जाती है और एक वायुपथ इसे शिलांग से जोड़ती है. अब यह नगालैंड में खड़े हो रहे उद्योग धंधों का भी आधारक्षेत्र बनता जा रहा है. हाल ही में यहाँ एक चीनी का कारखाना लगा है.

नगा लोगों को जीवन में पहली बार इतने नजदीक से देखने का अवसर आया था. कुछ मेरे पूर्वग्रह थे जो मुझे सीधे उन से पूछताछ करने से रोक रहे थे और मैं गैर नगा दूकानदारों से ही शहर की जानकारी प्राप्त कर आगे बढ़ता जा रहा था. कहना नहीं होगा कि यहाँ के लगभग सारे के सारे दुकानदार गैर नगा मारवाड़ी, बंगाली और असमी हैं. नगा लोग अभी तक मात्र कुछ छोटे मोटे होटल भर ही खोल पाये हैं.

कुछ ही दूर आगे बढ़ने पर नगाओं के जीवन प्रवाह का दर्शन होने लगा—बाजार में सौदा-सुलफ करती हुई खुशमिजाज़ लड़कियाँ, मेहनत मजदूरी कर लौटते हुए नगा पुरुष और सिनेमा हाल की ओर बढ़ता हुआ युवा वर्ग.

सुबह 7 बजे बस खुली. बगल की सीट पर सहयात्री एक नगा युवक ही था, काफी बातूनी और हंसोड़, उस की कुछ बातें तो समझ में आती थीं, कुछ नहीं. फिर भी हम उस के साथ हँसते ज़रूर थे, ताकि मेरा वह नगा मित्र कहीं मुझे दंभी न समझ ले. वह मुझ से असम ट्रिब्यून' ले कर पढ़ने लगा और मैंने उस के 'डरा टाइम्स' (नगालैंड का प्रमुख अर्द्ध-साप्ताहिक) पर अधिकार जमाया. फिर तो रास्ते भर आदान प्रदान का सिलसिला चलता रहा—च्यूइंगगम से ले कर इमली की डली तक का.

थोड़ी ही देर बाद 'इनर लाइन' आया और एक पुलिस अधिकारी ने आ कर हम लोगों का 'प्रवेशपत्र' देखा. कहीं कोई गड़बड़ी नहीं हुई.

फिर भी मन को अच्छा नहीं लगा, अतीत की कुछ घटनाएँ मन को कुरेदने लगीं. अंग्रेज़ों के शासनकाल में विश्वकवि रवींद्रनाथ ठाकुर को इसे पार कर मणिपुर जाने की इजाजत नहीं दी गयी और वह चित्रांगदा की धरती पर जाने से वंचित रह गये. अब यह रेखा काफी लचीली हो गयी है और कोई भी भारतीय एक दो दिन के सहज प्रयास से ही दिमापुर के सहायक उपआयुक्त आफिस से इसे लांघने का अधिकारपत्र प्राप्त कर सकता है.

बस आगे बढ़ती गयी—समतल से ऊँचाई पर, फिर एक पहाड़ी से दूसरी पहाड़ी पर. दृश्य काफ़ी मनोरम था. एक के बाद एक उभरती हुई दूसरी पहाड़ियाँ और उन पर फैले पसरे जंगल, जंगल में तरह तरह के पेड़, झाड़ी, लताएँ और कदली कुंज. सड़कों के किनारे बसे गाँव घर भी दीखते गये. अधिकांश घर तो लकड़ी के उठे हुए आधार पर बाँस, फूस और लकड़ी के संयोजन से ही बने थे, पर कई घरों के ऊपर चदरे के छाजन भी चमकते हुए मिले. सब कुछ साफ सुंदर और सुरुचिपूर्ण. अगर खेतों में काम कर रहे पुराने लिबास पहने हुए कुछ नगा किसान मिले तो वहीं साफ पैंट सर्ट पहन कर कुदाली चलाते हुए हृष्टपुष्ट नगा युवक भी दीखे.

जगह जगह सैनिक छावनियाँ दिखलायी पड़ीं. कहीं किसी पहाड़ी सोते से फौजी ट्रक में पानी जमा किया जा रहा था तो कहीं अपनी लंबी सी गर्दन वाली सुराही लिए ग्रामीण नगा बालाएँ भी खड़ी थीं—निर्भय, निःशंक. पहाड़ों ने इन लड़कियों को निडरता बख्शी है और दीर्घ प्रवास ने सैनिकों में साथ साथ रहने की समझदारी.

पहाड़ों को काट कर बनाये गये सीढ़ीनुमा खेत बहुत आकर्षक लग रहे थे. कुछ में धान रोपे जा रहे थे और कुछ यों ही वीरान बंजर से पड़े थे. पूछने पर पता चला कि बंजरनुमा जमीन को त्याग दिया गया है. जंगल काटो, पत्थर तोड़ो, नयी खेती बनाओ और फिर साल दो साल बाद उसकी उर्वरा शक्ति चूक गयी मान कर नयी जमीन बनाने को चल निकलो—यही झूम पद्धति की खेती है. इस से जंगलों का बेतहाशा विनाश होता जा रहा है. सरकार को अब तक इसे रोकने में आंशिक सफलता ही मिल पायी है.

कोहिमा शहर बिल्कुल पहाड़ पर बसा हुआ है और जहाँ कहीं भी जाना हो सारी दूरी पाँव पैदल ही तय करनी पड़ती है क्योंकि किराये की टैक्सी यहाँ उपलब्ध नहीं है. एक सड़क को दूसरे से जोड़ने वाली सीढ़ी ही वह सकून है जो दूरी और ऊँचाई को उसी प्रकार कम कर देती है, जिस प्रकार समतल पर बसे शहरों में गलियाँ दूर दूर वाले इलाकों को भी नज़दीक ला देती हैं.

अपने आवास स्थल मद्रासी होटल से निकल कर चढ़ते उतरते, भटकते हम लोग आकाशवाणी केंद्र पहुँचे. हिंदी के प्रसिद्ध लेखक कृष्णचंद्र शर्मा 'भिक्खु', जो इन दिनों यहाँ के केंद्र निदेशक हैं, बड़े प्रेम से मिले, काफ़ी देर तक बातें होती रहीं—भारत के इस सीमांत प्रदेश और उस के अनोखे निवासी नगा लोगों की भाषा और और संस्कृति पर. नगा भाषाओं की अपनी कोई लिपि नहीं है. अब रोमन लिपि का व्यवहार होने लगा है. इस केंद्र से 16 नगा बोलियों में से 13 में तथा अंग्रेज़ी में नियमित रूप से कार्यक्रम प्रसारित किये जाते हैं. भिक्खु जी केंद्रीय सरकार के एक प्रमुख अधिकारी होने के नाते इस बात के लिए सतत सचेष्ट रहते हैं कि उन के किसी व्यवहार से जनभावनाओं को कहीं कोई ठेस नहीं पहुँचे. चलते समय उन्होंने हम लोगों को भी कुछ हिदायतें दीं. यहीं से संग्रहालय की ओर बढ़े जो नगर के उत्तरी छोर पर स्थित है. जब तक वहाँ पहुँचे, बाहरी दरवाजा भी बंद हो चुका था. हमें केवल उस की बाहरी आकृति और वहाँ से शहर का एक विहंगम दृश्य देख कर ही लौटना पड़ा.

संध्या होने जा रही थी. सचिवालय के पास वाले फ़ुटबाल मैदान में, जो हेलीकॉप्टर पड को छोड़ कर यहाँ की एकमात्र समतल जमीन है, काफ़ी भीड़ जमा थी. शहर के सभी स्कूलों के छात्र छात्राओं की खेलकूद प्रतियोगिता का आज अंतिम दिन था. पुरस्कार प्रदान करने वाले शिक्षा पदाधिकारी कहते जा रहे थे—'आप लोग पढ़ने के साथ साथ खेलकूद में भी अपनी दिलचस्पी बनाये रखें, जिस से कि एक दिन देश के अन्य भागों में भी जा कर आप लोग नगालैंड का नाम रोशन कर सकें'. चुस्त, फुर्तीले बच्चे और किशोर विजेता आते, प्रमाणपत्र स्वीकारते, हाथ मिलाते और उत्फुल्लतापूर्वक आगे बढ़ जाते. जब कोई चपलतावश हाथ मिलाना भूल जाता तो सारा मैदान किलकारियों से गूँज जाता था.

मुझे लग रहा था कि मैं अपने ही शहर के खेल के मैदान में हूँ.

होटल वापस आते समय बिहार के दो बाँके फेरी वाले व्यापारी केशव प्रसाद और रामदेव से भेंट हुई. यों तो इन का आइसक्रीम और चना भाजा काफ़ी महँगा है, पर ये किसी बच्चे को पैसे कम पड़ जाने पर भी निराश नहीं करते. शायद इसीलिए शहर के सारे बच्चे इन्हें पहचानते हैं. वे लोग आज दस वर्षों से इसी शहर में रह कर गुजरबसर कर रहे हैं. पहले तो इन्हें काफ़ी दिक्क़तें उठानी पड़ी थीं पर अब वैसी कोई बात नहीं है. इन्हें नगा लोगों से तो नहीं, पर स्थानीय पुलिस और कोर्ट कचहरी से थोड़ी बहुत शिकायत है. इन लोगों ने अपने कई अच्छे नगा दोस्त भी बना लिये हैं जो मुसीबत के वक़्त इन की मदद करते हैं.

फिर भी शाम होते ही वातावरण में एक दहशत सी फैल जाती है और बाहरी लोग जल्दी जल्दी अपने घरों को लौटने लगते हैं. एक फैले हुए शहर का इस प्रकार सिकुड़ जाना मुझे अच्छा नहीं लगता है. कोई बड़ी बात नहीं होती है, पर कोई छोटी बात ही कहीं कोई तूल नहीं पकड़ ले, इसलिए बाहरी लोगों ने खुद ही ऐसी परहेजी व्यवस्था कायम कर रखी है. फिर रात भी तो यहाँ बड़ी तेजी से गहराने लगती है.

कोहिमा का युद्ध स्मारक

मद्रासी होटल का शांत कमरा. मेरे मित्र सो चुके हैं. पर मेरी आँखों में नींद नहीं आ रही है. कोहिमा की मेरी पहली रात इतिहास के संग बीतने लगती है. किसी जाति की धरती पर आ कर उस के इतिहास को उलटना पलटना उस की घटनाओं के साथ साथ हमसफर बन कर चलने जैसा होता है.

अंगामी, आओ, सेमा, रेंगमा, लोठा, चांग, कनियाक, संगतम, यमचुगर, फोम, जलियांग और खेमगोमन आदि उपजातियों में बँटे तिब्बती बर्मी-मंगोल रक्त के नगा लोगों का भारत के इस पूर्वीय भूभाग पर कब आगमन

द्वितीय विश्वयुद्ध की यादगार एक टैंक
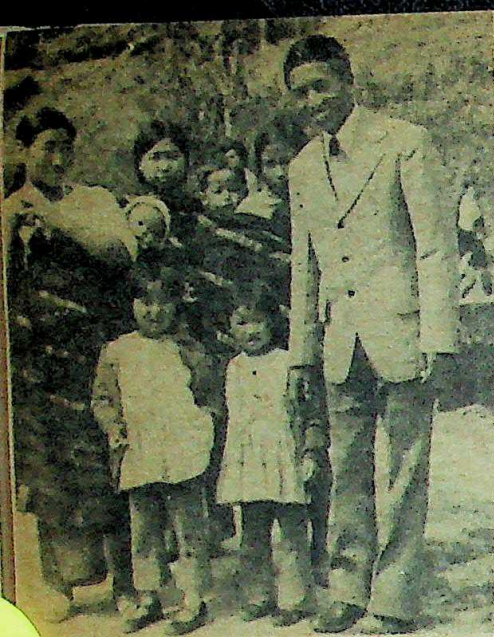
गिरजाघर जा रहा एक नगापरिवार

शुरू हुआ, इस के बारे में इतिहास मौन है. प्राचीन धर्मग्रंथों में वर्णित 'किरात' संभवतः नगा जाति के ही लोग थे. इन का प्रथम उल्लेख ईसा की दूसरी शताब्दी में लिखित तालेमी की प्रसिद्ध पुस्तक 'ज्याग्रफिया' में मिलता है. पर प्रामाणिक ऐतिहासिक जानकारी अहोम राजाओं की 'बुरजियों' (वंशावली के रूप में लिखा गया इतिहास) से ही मिलनी शुरू होती है. 1228 ई. में प्रथम अहोम राजा सुकफा ने नगा भूमि पर आक्रमण कर उन्हें पराजित किया और अपनी शर्तों को मनवाया. तब से विभिन्न राजाओं के शासनकाल में बार बार लड़ाइयाँ हुईं और फिर फिर नये शर्त बद गये. न तो स्वतंत्रताप्रिय नगाओं को हमेशा के लिए वशवर्त्ती बनाया जा सकता था और न अहोम राजा उन के प्रति तटस्थ ही रह सकते थे. संघर्ष और मित्रता का यह मिलाजुला रिश्ता कोई छः सौ साल तक चलता रहा. इस के फलस्वरूप नगा कुमारियाँ अहोम रनिवास में आती रहीं और वीर, विश्वसनीय नगा युवक अहोम सेनाओं में प्रथम पंक्ति में स्थान पाते रहे. जारी रहा नगा व्यापारियों का अपनी जंगली जड़ीबूटियों के साथ पूर्वीय असम के व्यापारिक केंद्रों में आना और वहाँ से दवा, कपड़ा, नमक आदि सामानों के साथ लौटना. निर्वासित अहोम राजकुमार गपापाणी ने अपने अज्ञातवास के कई साल नगा लोगों के बीच गुजारे, जिस की कहानियाँ आज भी नगालैंड और असम में समान रूप से कही और सुनी जाती हैं. अंग्रेज़ों को भी इन्हें सर करने बार बार अपनी फौजें भेजनी पड़ीं. तब कहीं जा कर इन लोगों पर उन का नाममात्र का शासन स्थापित हो पाया. पर चर्च के पादरियों ने अपनी सेवा और साधना के बल पर इस क्षेत्र में अपना पूरा प्रभाव जमा लिया. उन्हें उन के बीच शिक्षा का प्रचार कर उन को आधुनिक जगत के नजदीक लाने का पूरा श्रेय प्राप्त है.

बिहार तथा उत्तर प्रदेश के छोटे रोजगारी

नृतत्वशास्त्रियों के अनुसार दुश्मनों का सिरोच्छेदन, ऊँचे आधार पर गृह निर्माण, पान चर्वण, कपड़ा बुनना, लंबी सुराही का उपयोग, दूध से वितृष्णा आदि स्वभाव नगा लोगों की जातीय विशेषताएँ रही हैं. कालक्रम से सिरोच्छेदन तो अब बंद हो चुका है, पर अन्य विशेषताएँ कमोवेश रूप से आज भी कायम हैं. पान की दूकानों पर वैसी ही भीड़ जमती है जैसी बनारस में. आज खेती ही इन का प्रमुख उद्योग बन चुका है. मांसाहार के लिए जानवर भी पाले जाते हैं. चावल और मांस की इन के भोजन में प्रधानता है. स्थानीय शराब का बहुतायत से प्रयोग किया जाता है.

संघर्ष और स्वतंत्रता नगा लोगों का जातीय स्वभाव रहा है. इसी कारण लंबे अर्से तक ये लोग शेष भारत के साथ अपनेपन का संबंध नहीं स्थापित कर पाये थे. अब स्थिति में काफ़ी बदलाव आया है.

इतिहास के इस चौराहे पर आ कर मैं रुक जाता हूँ. इस के आगे तो वर्त्तमान है, जिसे जानने और अपनाने को मैं पटना से सैकड़ों किलोमीटर की दूरी तय कर यहाँ आया हूँ.

कोहिमा का दूसरा दिन—रविवार, नगाओं की मौज मस्ती का दिन. सुबह से ही चारों ओर रंगारंग है. लोग सजधज कर अपने घरों से निकल रहे हैं, कोई चर्च की ओर तो कोई प्रमोदस्थल पर. सिनेमा शो में भी काफ़ी भीड़ है.

मैं काफीहाउस के नजदीक खड़ा हो कर नगालैंड की नयी पीढ़ी को एक बार सामूहिक रूप से देखने का प्रयास करता हूँ.

अन्य पर्वतीय प्रदेशों की तरह यहाँ के युवक और युवतियाँ भी 'सेक्स' की कुंठाओं से मुक्त हैं. आधुनिकता को इन लोगों ने कई मामलों में दो कदम और आगे बढ़ कर स्वीकार किया है. लड़कों के वेश तो अब वैसे ही बन गये हैं जैसे भारत के अन्य शहरों में हैं. पर लड़कियों ने अपने पहरावे को विशेष नहीं बदला है, वही पूरी या घुटने तक की आधी लुंगी, ऊपर टी शर्ट जैसा कुछ और उस पर से धारीदार रंगीन चादर.

सरकारी भाषा अंग्रेज़ी है. इस का भारत के अंग्रेज़ीदां लोग बड़े जोरशोर के साथ प्रचार करते हैं. पर मैं यहाँ शायद ही किसी को अंग्रेज़ी में बातचीत करते हुए पाता हूँ. अपनी जाति के बीच तो ये लोग अपनी ही बोली में बातचीत करते हैं पर जब दो जातियों के नगा मिलते हैं तो 'नगामी' में बातचीत शुरू हो जाती है. नगामी कोई मान्यताप्राप्त भाषा या बोली नहीं है. इसे सुविधा की भाषा कहा जा सकता है और इसी कारण इस का उद्भव भी हुआ जान पड़ता है. इस में असमी तथा कई नगा बोलियों के चालू शब्द मिले हुए हैं. हिंदी भी यहाँ अच्छी तरह से समझी जाती है और कई बार तो नगा युवक और युवतियाँ अपनी ओर से हिंदी में प्रश्न पूछ पूछ कर पर्यटकों को आश्चर्य में डाल देती हैं.

पर्यटन स्थल की ओर बढ़ता हूँ. यहाँ का सब से सुंदर और दर्शनीय स्थान वह कब्रिस्तान है जहाँ द्वितीय विश्वयुद्ध में मारे गये कोई 1200 ब्रितानी सैनिकों की अस्थियाँ सोई पड़ी हैं. सभी मारे गये सैनिकों के लिए अलग अलग नामपट्ट लगे हुए हैं, जिन्हें नरम नरम दूब की चादरें चारों ओर से समेटे हुए हैं.

कोहिमा का युद्ध इतिहास प्रसिद्ध है. अप्रैल 44 में जापानी सैनिक यहाँ तक बढ़ आये थे. पूरे महीना भर तक चलने वाली इस लड़ाई में एक-एक कर सारे जापानी सैनिक मारे गये और यहीं से अंग्रेज़ी फौजों की जीत का सिलसिला शुरू हुआ. एक शिलापट्ट पर शहीद सैनिकों की ओर से लिखा गया है—ह्वेन यू गो होम टेल देम ऑफ अस एंड से फौर देयर टुमारो, वी गेव अवसर टुडे (जब तुम अपने घर लौटो तो हमारे बारे में बताना और कहना कि उन के भविष्य के लिए हमने अपना वर्त्तमान दिया है).

राजभवन वाला इलाका काफ़ी सुंदर है. राज्यपाल तो स्थायी रूप से शिलङ में रहते हैं, पर यहाँ नियमित रूप से आते जाते रहते हैं. फिर इन दिनों तो यहाँ राष्ट्रपति शासन है जिस में राज्यपाल श्री लल्लन प्रसाद सिंह अपनी अहम् भूमिका निभा रहे हैं.

दोपहर का भोजन 'भिक्खु' जी के यहाँ हुआ. वहाँ से सीधे 'पीस सेंटर' गया डॉ. एम. अरम से मिलने. डा. साहब मूल रूप से एक शिक्षा शास्त्री हैं और आज से कोई दस साल पहले कोहिमा आये थे नगालैंड में शांति स्थापना के कार्यों में हाथ बँटाने के लिए. तब से लगातार यहीं रह रहे हैं. हाल ही में उन की एक पुस्तक 'पीस इन नगालैंड' प्रकाशित हुई है जो अपने आप में खतरों और उलझनों के बीच भी मानवता पर विश्वास रख कर काम करते जाने का एक दस्तावेज है. 'पीस सेंटर' के निदेशक के रूप में डॉ. साहब अभी भी शांति स्थापना के कार्यों में अपना योगदान दे रहे हैं. वह बड़े ही मनोयोग से 'पीस मिशन' से 'पीस सेंटर' तक के शांति प्रयत्नों की कहानी सुनाते हैं.

फिर होटल और रात. बगल के कमरे में देहातों से आये कुछ पुराने वेशभूषा वाले नगा ठहरे हुए हैं जिन से दिन में ही कई बार भेंट हो चुकी थी. उन की अपनी ही बोली में चलती हुई बातचीत सुनायी पड़ने लग जाती है. बीच बीच में अंग्रेज़ी और हिंदी के भी कई शब्द आ जाते हैं. मैं उन्हीं शब्दों के सहारे उन की बातचीत को पकड़ने की कोशिश करता हूँ. कुछ दूर

पहुँचता हूँ और फिर भाषा की भूलभुलैया में खो जाता हूँ. पर यह खो जाना भी कितना अच्छा लगता है.

फिर सुबह और उसी होटल की चाय के टेबुल पर किशोरवयी नगा लड़के-लड़कियों से आमना सामना. यों तो वे लोग आगे बढ़ कर अजनबियों से कुछ नहीं पूछते, पर जब मैं अपनी ओर से बातचीत शुरू कर देता हूँ तो जैसे वर्षों से अटकी हुई उन की जिज्ञासाओं की झड़ी फूट पड़ती है. देश को अधिक से अधिक जानने की इच्छा नयी नगा पीढ़ी की नयी उपलब्धि है.

कभी तो मैं उन की बातचीत सुनता हूँ और कभी उत्तर देता हुआ भी उन के स्वरूप में खो जाता हूँ—औसत कद, गठीला शरीर, गौर-वर्ण, किंचित चपटे नाक और छोटी छोटी आँखें. सुंदरता अपना प्रतिमान आप गढ़ती है. हिंदी साहित्य में इस सुंदरता को अब तक वह स्थान नहीं प्राप्त हुआ है, जिस की वह अधिकारिणी है.

छोटे छोटे रोज़गार और मेहनत मजदूरी कर रोज़ीरोटी कमानेवाले बिहारी, बंगाली, असमी, नेपाली और मद्रासियों से इन्हें कोई शिकायत नहीं है. रोज़गार धंधों में साझेदारी और सहयोग इस का सुंदर नमूना पेश करते हैं. खानपान और सामाजिक दृष्टि में उदारता रखने वाला कोई भी व्यक्ति इन का अच्छा मित्र बन सकता है. मगर इन के साथ पदार्थों की सूची काफी लंबी है. शायद ही कोई जीवजंतु उस से अलग हो. और यहीं बाहर वालों की गाड़ी रुक जाती है.

कुछ देर बाद होटल से उठ कर चौक पर आ जाता हूँ. एक सर्वथा नया दृश्य, एक नूतन अनुभूति. नगा युवतियाँ पीठ पर अपना लंबा सा झांका लादे जा रही हैं, जिस में होते हैं उन के छोटे छोटे औजार—कुदाली, कुल्हाड़ी, गैंती आदि. ये सड़कों पर काम करेंगी, जंगलों में लकड़ी काटेंगी और खेतों में कुदाली चलायेंगी और फिर शाम को होगा इन के हाथों में गिटार या अन्य कोई वाद्य. यों तो इन का जीवन वन नृत्यों से भरपूर है, पर ईसाइयत के प्रभाव ने इन्हें पश्चिमीय धुनों से भी परिचित करा दिया है. श्रम के साथ गंदगी, फटेहाली और विवशता देखने को अभ्यस्त मेरे मन को इन दृश्यों को देख कर एक नयी तृप्ति होती है.

स्कूल-कॉलेज और दफ्तर जाने का समय हो रहा है. बसें आती जा रही हैं जो इकट्ठे हो रहे छात्र-छात्राओं और दफ्तर जाने वालों को ढो कर उन के शिक्षण केंद्र और कार्यालयों तक पहुँचा देंगी और फिर उन्हें वापस ले आयेंगी.

कुछ देर बाद मणिपुर के लिए विदा हो जाऊँगा, अतएव इसी चौक पर खड़ा हो कर नगालैंड के दीखे-अनदीखे शहर, गाँव, पहाड़, खेत, किसान, युवक सब से विदा लेता हूँ.

शायद फिर कभी आ सकूँ.

(क्रमशः)

समाजसेवी डॉक्टर भोलानाथ

"मैं जब छोटा था अक्सर पिताजी के साथ दशाश्वमेघ घाट जाता. वहीं मैंने अज्ञानता और अंधविश्वास के कारण ग़लीज़ ज़िंदगी जीते कुष्ठ रोगियों को पहली बार देखा. मेरा मन करुणा से भर उठा था और तभी मैंने संकल्प लिया था कि बड़ा हो कर डॉक्टर बनूँगा और इन कुष्ठ रोगियों को यंत्रणा की ज़िंदगी से मुक्ति दिलवाने का प्रयत्न करूँगा."

अपनी ज़िंदगी के अंतिम क्षणों तक इस संकल्प प्रक्रिया को दुहराते सक्रिय समाज सेवी डाक्टर भोलानाथ का गत 14 नवंबर को वाराणसी में 70 वर्ष की अवस्था में निधन हो गया. पिछले दो सप्ताह से वह अस्वस्थ थे और अपने डाक्टर पुत्र टी. पी. श्रीवास्तव के काशी विश्वविद्यालय स्थित निवासस्थान पर इलाज करवा रहे थे. इंडियन मेडिकल असोसिएशन के वित्त समिति के सदस्य, जिस के वह भूतपूर्व अध्यक्ष भी भी रह चुके हैं, डाक्टर

डॉ. भोलानाथ

भोलानाथ का कार्यक्षेत्र मुख्य रूप से वाराणसी जनपद ही रहा, जहाँ हर एक हज़ार की जनसंख्या में 6 कुष्ठ रोगी हैं.

अत्याचार, उपेक्षा और त्रास की जिंदगी जीते कुष्ठ रोगियों के प्रति समर्पित मुंशी रुद्रप्रसाद मुख्तार के द्वितीय पुत्र 'भोला' वाराणसी के थियोसाफिकल सोसायटी स्कूल, क्वींस कालेज लखनऊ मेडिकल कालेज से एम. बी.बी. एस. की परीक्षा पास कर वह स्थानीय मारवाड़ी अस्पताल में सर्जन के रूप में नियुक्त हुए थे और तभी से वह अपने इस मिशन में जुटे रहे.

अपनी अस्पताली जिंदगी से बचे बाकी समय कुष्ठ रोगियों के बीच ही व्यतीत करते. 1960 से उन्होंने कुष्ठ सेवा संघ की स्थापना कर सलीके से काम शुरू किया. 60 से 68 तक उन्हें दशाश्वमेघ और राजघाट पर, जहाँ कि कुष्ठ रोगी बैठे रहते हैं, स्वयं जा कर उन्हें समझाना पड़ा और चिकित्सा के लिए उन की मानसिकता बनानी पड़ी.

गत वर्ष मंगलाप्रसाद कुष्ठ एवं क्षय अस्पताल, आशापुर में एक भेंट में उन्होंने कहा था, "अपने इस आश्रम में मैं सिर्फ़ निराश्रित, कंगाल तथा साधनरहित रोगियों को ही रखता हूँ, विशेष स्थिति की बात दूसरी है."

सारनाथ के आश्रम में सेवारत डाक्टर साहब को देख कर जाने क्यों गांधी और परचुरे शास्त्री का बहुप्रचारित चित्र ही सामने आता रहा है. डाक्टर भोलानाथ के निःशुल्क अस्पताल में 75 व्यक्तियों के लिए स्थान है. इस के अलावा 68 से 70 तक वह बरहनी, सैयदराजा और जमनियां में क्लीनिक खोल कर सेवा सुश्रुषा करते रहे. 70 में नौबतपुर में क्लिनिक खोला जो सब से बड़ा क्लिनिक है. वह नौबतपुर में सिर्फ़ दवा ही नहीं बाँटते थे अपितु रोगियों को तिरपाल और जूते भी बाँटते थे.

सामाजिक स्थिति को विश्लेषित करने के लिए उन के पास साफ नजर थी. वह चाहते थे कि रोगी सिर्फ़ रोग से ही नहीं 'मन' से भी स्वस्थ हो पाये ताकि समाज उसे पूरी प्रतिष्ठा के साथ स्वीकार करे. उपचार के बाद रोगी को फिर समाज में जा कर हाथ न पसारना पड़े. इस संभावित स्थिति को सोच कर डाक्टर भोलानाथ के कुष्ठाश्रम में रोगी को जीविकोपार्जन योग्य भी बनाया जाता है, सूत कातना, चमड़े का काम, पशुपालन, कागज़ की थैली बनाना, करघा चलाना जैसे काम भी उन्हें सिखलाया जाता है ताकि वे समाज में अपनी पूरी क्षमता के साथ जी सकें.

अत्याचार, यंत्रणा, उपेक्षा, घृणा और त्रास की ज़िंदगी जीते कुष्ठ रोगियों की संख्या समूची दुनिया में 3 करोड़ है. पिछली शताब्दी के अंत से नार्वे के डाक्टर ऐंसन, फ्रांसीसी लेखक राउल फैलोरी, गांधी, ठक्कर बापा जैसों ने एक सतत सामाजिक चेतना फैलायी कि कुष्ठ रोगी, रोगी है, पापी नहीं. डॉ. भोलानाथ मानते थे कि कुष्ठ रोग है और दवा से ठीक हो जाता है. लेकिन दवा के समांतर यदि ज़रूरत किसी बात की है तो यह कि समाज का विचार परिवर्तन किया जाये. बिना सामाजिक मनःस्थिति में परिवर्तन लाये 'कोढ़' से छुटकारा संभव नहीं. शताब्दियों की इस अभिशप्त विचारधारा को खत्म करना होगा कि 'कोढ़' पापी का लक्षण है.

और यही से शुरू है एक लड़ाई. मानना होगा कि यह लड़ाई एक अकेले भोलानाथ के लिए संभव नहीं थी. उन्होंने कहा था, 'मेरे यहाँ डाक्टरों की कमी है. यहाँ कोई कार्य नहीं करना चाहता. सभी छूत से डरते हैं जब कि छूत से कोई ख़तरा नहीं है, और तो और घरेलू नौकर भी यहाँ नहीं टिकते". नौजवान डाक्टरों को इस चुनौती को स्वीकार करना चाहिए तभी इस सामाजिक शारीरिक समस्या को समूल नष्ट किया जा सकेगा.

जूता और प्रतिष्ठा

अभी एक सुबह इस स्तंभकार की बच्ची स्कूल का थैला लटकाये सामने आ खड़ी हो गयी :

"जल्दी से एक कागज़ पर लिख दीजिए कि मेरे पैर में तकलीफ़ है इस लिए जूता नहीं पहन रही हूँ."

उस के पैर में एक मामूली चोट थी जो पक रही थी. जूता मोज़ा पहनने में तकलीफ़ होती थी. उस का स्कूल वैसे संभ्रांतवर्ग का पब्लिक स्कूल नहीं है. पर स्कूली पोशाक जैसे अनेक छोटे मोटे मामलों में उन का अनुकरण ही स्कूल का अभीष्ट है.

"क्या यह चोट स्कूल वालों को दिखाई नहीं देगी?"

"पता नहीं. कहते हैं 'ड्रेस' में न आओ तो लिखा कर लाओ. नहीं तो सज़ा मिलती है."

"लेकिन तुम ड्रेस में हो. जूतों की जगह बस चप्पल है. क्यों है, यह कोई अंधा भी जान लेगा. बता देगा."

"क्यों देर करते हैं, जल्दी एक लाइन लिख दीजिए, वरना बस छूट जायेगी. यह सब कोई नहीं सुनता."

और वह लिखा कर ले गयी. मैं सोचता रहा यह कौन-सा अनुशासन है? यदि मैं न लिख कर देता तो क्या सचमुच उसे जूता न पहनने की सजा मिलती? स्कूल वालों को वह चोट दिखा कर नहीं समझा सकती थी? पिता की गवाही ज़रूरी थी?

तभी उस दिन के अखबार पर नज़र गयी. समाचार मद्रास का था. लिखा था, 'एक कन्वेंट स्कूल का चार साल का बच्चा जूता पहनने पर चिल्लाने लगा. माँ बाप ने उस की चिल्लाहट पर ध्यान नहीं दिया. डाँट डपट और धमका कर स्कूल रवाना कर दिया. स्कूल पहुँच कर भी वह रोता रहा. शिक्षक को भी यही उपाय समझ में आया कि उसे सजा दे, कोने में खड़ा कर दिया जाये. आधे घंटे में बच्चा नीला पड़ गया, गिरा और मर गया.'

बाद में पता चला कि उस के जूते में एक बिच्छू था. बिच्छू ने इतना काटा था कि बच्चा जान से गया और खुद बिच्छू भी जूते के भीतर से मरा हुआ निकला.

इस खबर को 'हृदय विदारक' कहना दुख को छोटा साबित करना है. यह ऐसी बेचैनी देती है जिस को बताया नहीं जा सकता. शिक्षा के सहारे हम किस प्रकार का समाज बनाने जा रहे हैं? यह कैसा समाज है जहाँ बच्चे की तकलीफ़ न माँ-बाप समझ सकते हैं न स्कूल? वह कौन सी प्रतिष्ठा है और उस प्रतिष्ठा का क्या मतलब है जो इन सब को प्यारी है? मद्रास के संदर्भ में तो, जहाँ की जलवायु ही ऐसी है कि जूते भारी अखरते रहें, उसे इस हद तक लाज़िली बनाना क्या बताता है? इस साहबी शिक्षा का भविष्य क्या होगा? यह सवाल कब तक हम खुद से नहीं पूछेंगे?

माँ बाप को क्या अधिकार है कि अपनी झूठी सामाजिक प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए बच्चों के साथ ऐसा हृदयहीन व्यवहार करें जो अमानुषिकता में बदल जाये. और स्कूली शिक्षक? जिन्हें हर कहीं नर्सरी कक्षा के बच्चों के रोने का एक ही इलाज मालूम है सज़ा देना. लगता है एक सजायाफ्ता समाज में सज़ा के अतिरिक्त कोई कुछ भी देख पाने में असमर्थ है.

क्या कोई भी उस पीड़ा को महसूस कर सकता है जो उस मासूम बच्चे ने तिल तिल झेली होगी? जूते में कैद पैर को बिच्छू चलनी कर रहा होगा और बच्चा माता पिता, स्कूल, समाज सब के भय से जूता उतार कर नहीं फेंक पा रहा होगा. उस की इस यातना का अनुमान लगा पाना असंभव है जब तक कि यही सज़ा ज़िम्मेदार लोगों को भी न झेलनी पड़े.

अब वह बच्चा नहीं है. लेकिन उस जैसे लाखों बच्चों के प्रतिष्ठापूजक माता पिता हैं और वह पूरी शिक्षा व्यवस्था है जो जाने कब तक एक बिच्छू की तरह कैद हमारे बच्चों के मासूम पैरों को डंक मारती रहेगी. यह केवल एक चूक नहीं है इस बात का प्रतीक है कि कैसे छोटी छोटी आज़ादियाँ अंततः एक बड़ी मानसिक आज़ादी से ही जन्म ले सकती हैं और वह हमें नसीब नहीं है.

नाट्य संयोग

दिनमान के एक नाटक प्रेमी पाठक ने, जिन्होंने हाल ही में राजधानी में **बृजमोहन शाह** लिखित नाटक **युद्धमन** देखा था, **दिनमान** को एक किताब का पन्ना फाड़ कर भेजा है. यह पन्ना एक जेबी किताब का है जिस का नाम है **दूसरा शोला** और इस के लेखक हैं **विमल चटर्जी**. पृष्ठ नंबर 109.

उन का कहना है, संयोग देखिए कि 'युद्धमन' देखने के बाद जब मैं घर पहुँचा तो वहाँ बच्चों द्वारा लायी गयी एक जेबी किताब पड़ी थी. उठा कर उलटने लगा तो संयोग से जो पृष्ठ खुला वह 109 ही थी. पहली निगाह जिस वाक्य पर पड़ी वह इस प्रकार है :

"मैं नहीं जानता तीसरा विश्वयुद्ध किस से लड़ा जायेगा. यह मेरा दावा है कि तीसरे युद्ध के बाद चौथा विश्व युद्ध भी लड़ा गया तो वह केवल पत्थर और लाठी से होगा."

उन का कहना है ठीक यही वाक्य कुछ घंटे पहले मैंने 'युद्धमन' में सुने थे. हू ब हू यही वाक्य उस नाटक में भी थे! क्या संयोग है!

एक मरीज़ का दर्द

इस स्तंभकार को अभी राजधानी के एक अस्पताल में एक मरीज़ के सिरहाने हाथ से लिखी एक कविता उस की रोग शैय्या के पास दीवार पर चिपकी दिखायी दी. इस के पहले कि वह इसे उतार पाता वार्ड की नर्स उतार चुकी थी. स्तंभकार की उस से मिन्नत करने और उस कागज़ के टुकड़े (उस के लिए कागज़ का टुकड़ा ही था) में ज़्यादा रुचि दिखाने के कारण यह उस के हाथ आ गयी. मरीज़ ज़ाहिर है पेट के रोग से बहुत परेशान होगा और दलिया खाने की हर किसी की सलाह से इतना ऊब गया होगा कि सिवा रचनात्मक भड़ास निकालने के उस के पास कोई चारा शेष नहीं रहा होगा:

हाज़मा खराब है थोड़ा खाओ
छोड़ो पकवान अब दलिया बनाओ.
चाहे नमकीन हो चाहे हो मीठा
ताज़ा पिसा हो, बासी हो, सीठा,
खूब खुश रहो अपना जियरा जुड़ाओ
थोड़ा खाओ न मरो न मुटाओ
हाज़मा खराब है बच कर खाओ
छोड़ो पकवान अब दलिया बनाओ.
दलिया में बड़े गुण कहता है डॉक्टर
चिंता नहीं इस में खाने की बाँट कर
इस के लिए किसी को चक्की नहीं पीसना
थोड़ा दरेदना है, निपोरो खीस ना
हाज़मा खराब है मत शरमाओ
छोड़ो पकवान अब दलिया बनाओ.
लवणभास्कर या यूनीज़ाइम
कार्मिनेटिव मिक्सर, सोडा, लाइम,
फ़ायदा क्या खाते रहने से हर टाइम
फिर भी डकारते, करते जैसे माइम
हाज़मा खराब है मत घबराओ
छोड़ो पकवान अब दलिया बनाओ.
दलिया सही नुस्खा है हिकमती हकीम का
वरना पड़ेगा करना सेवन नीम का
इस को खा जिये सौ वर्ष महर्षि कर्वे
पाचक है यह बहुत जैसे छंद बरवे.
हाज़मा खराब है तो देर मत लगाओ
छोड़ो पकवान अब दलिया खाओ.
पकवान का शोर करते हैं छोटे बच्चे
या वे जो होते हैं अक्ल के कच्चे
सीधी बात यह है अगर आदमी हो सच्चे
जीवन में नहीं खाना चाहते गर गच्चे
कहा मानो पकवान पर हाथ मत लगाओ
कम से कम दलिया खाने के योग्य रह जाओ
पकवान के हित रोना बेकार है
दलिया ही माता, पिता, प्रभु, प्रिया, यार है
दलिया ही यह सारा संसार है
दलिया बिना आज जीवन बेकार है
दलिया खाओ और दलियामय हो जाओ
दलिया वीर, दलिया सिंह, कहलाओ
जाओ, जाओ, न हमें सताओ
पकवान छोड़ो दलिया खाओ.

मुक्त होना है

अमेरिकी आलोचक **लायोनेल ट्रिलिंग** का पिछले दिनों 70 वर्ष की उम्र में कैंसर से निधन हो गया. ट्रिलिंग 1931 में **कोलंबिया विश्वविद्यालय** के अंग्रेज़ी विभाग से संबद्ध हुए थे और 44 वर्षों तक विश्वविद्यालय पढ़ने को आयीं अनेक पीढ़ियों ने इस अध्यापक की लिखने पढ़ने की बड़ी और रचनात्मक दुनिया का लाभ उठाया. ट्रिलिंग मुख्यतः साहित्या-लोचक और अध्यापक के रूप में ही जाने जाते हैं पर वह एक महत्त्वपूर्ण विचारक भी थे. लेकिन उन के विचारक होने के ढाँचे में इस बात को जान लेना भी ज़रूरी है कि उन्होंने अपनी किसी ख़ास अलग विचारधारा को प्रतिपादित नहीं किया—ट्रिलिंग ने विचारों के इतिहास को साहित्यालोचना का एक सक्रिय औज़ार बनाया. मिसाल के लिए मनोविश्लेषण की खोजों पर आधारित उन के अनेक अध्ययन बहुत काम के हैं.

ट्रिलिंग ने 1939 में **मैथ्यू आर्नल्ड** पर अपना शोधकार्य प्रकाशित करवाया था और कोई आश्चर्य नहीं कि उन की आलोचना शैली की बुनियाद में यह आर्नल्डवादी विश्वास है कि साहित्य एक मुक्त करने वाला नैतिक तथा सांस्कृतिक कार्य है. ट्रिलिंग के अनेक निबंध आलोचना शैली की स्पष्टता की मिसालें हैं चूँकि उन में हमें बहुत बारीक और एकाग्र बहस मिलती है. ट्रिलिंग का ऐसा एक निबंध 'फ्रायड और साहित्य' प्रसिद्ध है. यह विशेषता ट्रिलिंग की अन्य चर्चित पुस्तकों में भी देखी जा सकती है : 'संस्कृति से परे' (बियांड कल्चर), 'विरोधी मानसिकता' (**द अपोज़िंग सेल्फ**), 'उदार कल्पनाशक्ति' (**द लिबरल इमेजी-नेशन**) तथा 'ईमानदारी और प्रामाणिकता (**सिंसेरिटि ऐंड ऑथेंटिसिटी**). 'ईमानदारी और प्रामाणिकता' एक छोटी सी पर महत्वपूर्ण पुस्तक है जिस में ट्रिलिंग के 6 व्याख्यान संक-लित हैं जो उन्होंने 1970 के वसंत में **हॉर्वर्ड विश्वविद्यालय** में दिये थे. मनोविश्लेषण में ट्रिलिंग की रुचि सिर्फ़ फ्रायड तक ही सीमित नहीं थी, इस बात की एक अच्छी मिसाल यह भी है कि 'ईमानदारी और प्रामाणिकता' में अवचेतन की दुनिया के अध्ययन के सिलसिले में ट्रिलिंग **रोनाल्ड डेविड लैंग** जैसे आधुनिक और उग्र विचारधारा रखने वाले मनो-चिकित्सा के विचारकों का भी सामना करते हैं.

ट्रिलिंग के पिता न्यूयॉर्क के एक व्यवसायी थे. उन की स्वयं की विश्वविद्यालय की पढ़ाई कोलंबिया में ही हुई. 1929 में उन्होंने **डिआना रयूबिन** से विवाह किया जो स्वयं एक महत्त्वपूर्ण आलोचक हैं. ट्रिलिंग का मुख्य कार्यक्षेत्र अकादमिक ही था पर उन्हों ने अपनी विद्वता को हमेशा एक सर्जनात्मक चुनौती समझा, इस वजह से वह अध्यापक के रूप में भी विशेष सम्मान पा सके.

ट्रिलिंग ने एक उपन्यास भी लिखा : 'यात्रा के बीच में' (**द मिडल ऑव द जर्नी**) और इस उपन्यास ने उन्हें एक दिलचस्प क़िस्म के संकट में डाल दिया चूँकि आलोचकों से अधिक इस उपन्यास ने 'केंद्रीय गुप्तचर पुलिस' (एफ़. बी. आई.) को मुश्किल और परेशानी में डाल दिया. इस उपन्यास में एक कम्युनिस्ट के दल छोड़ने के निर्णय से उत्पन्न बौद्धिक तनाव को विषय बनाया गया था. ट्रिलिंग ने अपने एक सहपाठी **ह्वाइट चेंबर्स** के जीवन से प्रभावित हो कर यह उप-न्यास लिखा था. जब उपन्यास छपा तो उन्हीं दिनों चैंबर्स को ले कर एफ़. बी. आई. चिंतित थी. 'रास्ते के बीच में' दरअसल बीसवीं शताब्दी के चौथे और पाँचवें दशक में अमेरिकी राजनैतिक जीवन की एक नैतिक जाँच है. ट्रिलिंग ने दो कहानियाँ भी लिखी थीं जिन में से एक कहानी 'इस वक़्त की, उस जगह पर' (**ऑव दिस टाइम, ऑव दैट प्लेस**) एक ऐसे अध्यापक के बारे में है जो एक सनकी किस्म के छात्र की ज़िम्मेवारी अपने सर पर ले लेता है. ट्रिलिंग की एक अन्य कहानी 'दूसरी मार्ग्रेट' (**द अदर मार्ग्रेट**) एक युवा लड़की की उस हालत की हमें जानकारी देती है जहाँ व्यक्ति की राजनैतिक और नैतिक चेतना के नाज़ुक संबंधों से हमारा सीधे सामना होता है.

ट्रिलिंग का आलोचनात्मक साहित्य मानवतावादी तथा नैतिक मानदंडों से निर्धा-रित हो कर साहित्य को मनुष्य की मानसिकता की एक पूर्ण अभिव्यक्ति मानता है : संस्कृति को उस की पूर्णता में देख कर वह इस बात तक आता है कि कला की मुक्त कल्पनाशक्ति एक प्रमुख सामाजिक मूल्य है. रूमानी साहित्य तथा उस के फ़ौरन बाद के साहित्य को ट्रिलिंग ने अपनी इस समझ की जाँच का आधार बनाया पर पिछले कुछ समय से उन के लेखन में यह चिंता भी दीख रही थी कि साहित्य ने 'अलगाव' जैसी धारणाओं में अपनी निष्ठा दिखा कर मानव व्यवहार की समझ को काफ़ी **सीमित** कर दिया है. ट्रिलिंग 'नयी आलोचना' की परंपरा के ही आलोचक थे पर समाजशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक तथा दार्शनिक पद्धतियों के इस्तेमाल और इन क्षेत्रों की गहरी जानकारी ही उन्हें 'नयी आलोचना' के दूसरे आलोचकों से अलग और ऊपर करती है.

जैसा कि दो ढाई साल पहले **शाम लाल** ने **टाइम्स ऑव इंडिया** में ट्रिलिंग की किताब 'ईमानदारी और प्रामाणिकता' की समीक्षा करते हुए संकेत भी किया था ट्रिलिंग अपनी पुस्तक में ईमानदारी और प्रामाणिकता के अर्थ तक पहुँचने के लिए इतने गहरे पानी में चले जाते हैं कि हमें (पाठक को) डर लगता है कि कहीं हम डूब ही न जायें. इस डर की बुनियाद इसी बात में है कि ट्रिलिंग ने इस

लायोनेल ट्रिलिंग : मानव मूल्यों की खोज

किताब में अधिकांश उन समस्याओं पर विचार किया है जो बीसवीं शताब्दी के विचार की केंद्रीय समस्याएँ रही हैं. अब चूँकि ट्रिलिंग विचार के उन सभी विस्तारों के विरोधी रहे हैं जो मनुष्य को **मशीनी सिद्धांत, दमन सिद्धांत** तथा **प्राप्ति सिद्धांत** में सीमित कर देते हैं इस लिए उन की तर्क प्रणाली निषेधी हो जाती है.

व्यक्ति की ज़िंदगी की **प्रामाणिकता** को (उस के **मानवीय होने** को) जिन ताक़तों से ख़तरा पहुँचा है उस में एक ओर उस की आर्थिक ज़िंदगी है जहाँ व्यक्ति अपने उत्पादनों को अगर अपने अस्तित्व के गुणों और रोशनी से नहीं जोड़ता है, तो जो चीज़ें पैदा होंगी वे मृत हैं. इस के अलावा अवचेतन मानसिकता भी दमन के माध्यम से ज़िंदगी को ग़ैर प्रामाणिक बनाती रहती है.

शाम लाल यह भी मानते हैं कि ट्रिलिंग सामाजिक मानदंडों को ले कर सभी प्रकार के विद्रोहों के प्रति संवेदनशील तो हैं पर दरअसल वह उग्र चिंतन को पचा नहीं पाते. उन्होंने **हर्बर्ट मारकुस** और **रोनाल्ड लैंग** के चिंतन की मिसालें ली हैं. (ईमानदारी और प्रामाणिकता' में दोनों की चर्चा है.) मारकुस प्रौद्योगिकी से हुए फ़ायदे में ही ख़तरा भी देखते हैं चूँकि प्रौद्योगिकी के विकास ने अगर दमन को कम किया है, तो इस से यह ख़तरा भी बढ़ा है कि व्यक्ति के **अहम्** की शक्ति कम हो जायेगी चूँकि उसे परिवार में शासनकारी तत्वों का मुकाबला अब पहले के मुकाबले कम करना होगा. दूसरी ओर लैंग मनोविदलता जैसे रोगों के अपने अध्ययनों से (यानी मानसिकता के ग़ैरप्रामाणिक होने की मिसालों) इस निष्कर्ष पर आते हैं कि व्यक्ति परिवार में बलि का बकरा बनाया जाता है और मनो-विदलता के अँधेरे में जा कर वह अपने को समाज की तर्कहीनता और ग़ैर प्रामाणिकता से बचाने की कोशिश करता है. व्यक्ति की **अलगाव, तर्कहीनता** (वह जो समाज की दृष्टि में तर्कहीन है) और **पागलपन** की स्थिति ही सामान्य स्थिति है.

आर्नल्ड और फ़ॉस्टर की दुनिया में अपनी पहचान करने वाले ट्रिलिंग के लिए निश्चय ही चिंतन के ये विस्तार गहरे पानी में जा कर हड़बड़ा देने वाले हो जाते हैं. पर इस से ट्रिलिंग के लेखन की गहरी मानवीयता का महत्त्व कम नहीं हो जाता.

मुसलमान औरतें : सदियों पुरानी दासता

नौ वर्ष पहले उन सिर्फ सात मुस्लिम औरतों ने देश में इतिहास बनाया था जब हमीद दलवई की प्रेरणा से उन्होंने महाराष्ट्र विधान सभा भवन पर अपनी माँगों के लिए प्रदर्शन किया था. अपनी सदियों पुरानी सामाजिक दासता के विरुद्ध संगठित रूप में पहली बार मुस्लिम स्त्रियाँ उस समय रास्ते पर आयीं. तब से आज तक मुस्लिम सत्य शोधक मंडल के नेतृत्व में महाराष्ट्र के मुस्लिम स्त्री-पुरुष स्त्री विरोधी तथा समता विरोधी मुस्लिम व्यक्तिगत कानून के खिलाफ एवं सभी भारतीय नागरिकों के लिए समान नागरी कानून बनाने की माँग को ले कर साहस के साथ लड़ रहे हैं. इस आंदोलन की विशेषता यह है कि उस के नेतृत्व में केवल स्त्रियाँ ही नहीं मुस्लिम युवक भी काफी संख्या में हैं. उन के विचार उन्हीं के शब्दों में जानना एक उपयोगी अनुभव है.

'मर्दों द्वारा सदियों से हो रही बेइंसाफी के खिलाफ हिंदुस्तान की मुसलमान औरत किस के पास जायेगी ?' देश की साढ़े तीन करोड़ मुस्लिम स्त्रियों के इस आक्रोश को इन शब्दों में बंबई समाज सुधारक श्रीमती सुलताना फैजी हमारे सामने पेश करती हैं.

महाराष्ट्र के मुस्लिम सत्य शोधक मंडल के एक प्रमुख नेता सैयद मेहबूब इस संदर्भ में पूछते हैं. 'स्त्रियों के गौरव के समर्थन में संप्रति हमारे देश में बड़े अखबारी बोलबाले के साथ अंतरराष्ट्रीय स्त्री वर्ष मनाया जा रहा है. हम पूछते हैं कि क्या स्त्री मुक्ति की हामी भरने वाले लोगों को आज भी इस आक्रोश का ख्याल है ?'

सैयद मेहबूब इस तथ्य को मानते हैं कि सिर्फ मुसलमान स्त्री ही नहीं देश के सभी धर्मों एवं जातियों की औरतें बेसहारा हैं. लेकिन वे कहते हैं कि इस स्पष्ट तथ्य को भी नज़रअंदाज नहीं किया जाना चाहिए कि मुस्लिम स्त्रियों की दासता के पीछे इस्लामी परंपराओं, श्रद्धाओं व क़ानूनों की भी जबरदस्त ताकत खड़ी है. इस दृष्टि से मुस्लिम औरतों के सवाल को बाकी स्त्रियों के आम सवालों से अलग देखा जाना चाहिए.

मुस्लिम स्त्रियों के प्रमुख प्रश्नों के मूल में मुस्लिम व्यक्तिगत कानून है जो विवाह, विवाह विच्छेद, वारसीयत आदि से संबंधित सवालों का नियमन करता है. यह कानून स्त्रियों के हितों के बिल्कुल विरुद्ध है. लगभग बारह या तेरह सौ वर्ष प्राचीन व काल विसंगत शरियत में अंग्रेज़ों ने 1937 में कुछ सुधार कर के हिंदुस्तान के लिए शरियत कानून बनाया. लेकिन इस कानून ने भी शादी, तलाक आदि के बाबत मुस्लिम औरतों की पहले की स्थिति लगभग ज्यों की त्यों रखी. आम तौर पर सभी मुस्लिम राजनैतिक व सामाजिक नेता तथा समग्र मुसलमान समाज ने इन बातों में मुस्लिम कानून में तबदीली कर के मुस्लिम औरतों को न्याय दिलाने का विरोध ही किया.

मुनीर सैयद मुस्लिम सत्य शोधक मंडल के और एक प्रमुख कार्यकर्त्ता हैं. वे पत्रकार भी हैं. शरियत कानून के संदर्भ में मुस्लिम औरतों की स्थिति व उन की माँगों का ज़िक्र करते हुए वे बताते हैं, 'हिंदुस्तान का संविधान देश के सभी स्त्री पुरुष नागरिकों को 'समान दर्जा' देता है. लेकिन जहाँ तक मुसलमान स्त्रियों का सवाल है वह निरर्थक है. शरियत के दकियानूसी व समता विरोधी कानून की आड़ में मुस्लिम पुरुषों को अपनी औरतों पर तलाक, शादी वगैरह के संबंध में निर्मम अन्याय करने की जब तक छूट है तब तक मुस्लिम स्त्री कभी भी समता की धनी नहीं हो सकती.

बंबई महानगर पालिका के कानून विभाग में किसी ओहदे पर काम करने वाली एडवोकेट नज़मा शेख ने कहा, 'मुस्लिम औरतों को पुरुषों के साथ समान दर्जा देने की बात छोड़िये. हम को तो हिंदू स्त्रियों के साथ समान दर्जा भी नहीं है. 1956 में हिंदू कोड बना कर हिंदू स्त्रियों को विवाह, विवाह विच्छेद व उत्तराधिकारित्व का अधिकार आदि के बारे में पुरुषों के साथ समान हक दिये गये. लेकिन हमारे लिए ऐसा कोई कानून नहीं बनाया गाय. समता प्रस्थापना के प्रयत्नों के इस प्रवाह से केवल मुस्लिम औरतों को अलग रखने का क्या मायने है ?

पुणे की एक अध्यापिका श्रीमती साबिरा बेग मुस्लिम राजनैतिक दलों के बारे में दो टूक बातें कहती हैं, 'मुस्लिम समाज के हितों के एकमेव रक्षक के रूप में अपने को पेश करने वाले इन दलों से हम कोई आशा नहीं करते. क्यों कि हमारे समाज के सही सामाजिक व आर्थिक सवालों को नज़र अंदाज़ कर के सांप्रदायिक राजनीति के चक्कर में मुसलमानों को गुमराह करना यही उन का एकमात्र धंधा है. इन लोगों के हिसाब में औरतों का एक मूल्य है ही नहीं. उन के पुरुष हितैषी राजनीति व स्वार्थ के पीछे बिना कोई शिकायत दौड़ने वाला बेजबान जानवर बस, हम लोगों की उन के लिए इतनी ही कीमत है.'

मगर पिछले सात-आठ वर्षों में इन कथित 'बेज़बान जानवरों' को, लगता है, जबान मिल गयी है. शरियत व इस्लाम की परंपराओं के आधार पर औरतों पर हो रहे भीषण अन्यायों व अत्याचारों के विरोध में मुस्लिम सत्य शोधक मंडल जो आंदोलन चला रहा है उस से मुसलमान औरतों की सदियों से बंद जबान कुछ खुली है. वे पहली बार निर्भयता से व संगठित रूप में अपनी सामाजिक स्थिति व माँगों पर देश के सजग जनमत को सोचने के लिए मजबूर कर रही हैं. इस आंदोलन के दरमियान अनेक मुसलमान स्त्री पुरुषों के बयानों तथा सभा सम्मेलनों के प्रस्तावों द्वारा जो माँगें सामने आती हैं वे संक्षेप में इस प्रकार है : (1) जबानी तलाक का मनमानी क़ानून ख़त्म हो. भारतीय क़ानून द्वारा प्रस्थापित न्यायालयों में ही तलाक संबंधी सभी मामलों पर फ़ैसले हों. (2) बहु-पत्नीत्व व बाल विवाह प्रथाएँ बंद की जायें. (3) वारसीयत में स्त्रियों को संपत्ति पर न्याय संगत हक़ मिले. (4) सभी धर्मियों के लिए समान नागरी कानून बनाने से मुस्लिम औरतों की ये माँगें पूरी हो सकती हैं. जब तक इस तरह का क़ानून नहीं बनाया जाता तब तक के लिए 1937 के शरियत क़ानून में इन माँगों के संदर्भ में अनुकूल परिवर्त्तन किये जायें.

इन के अलावा पर्दा, मुस्लिम लड़कियों को अन्य धर्मीय लड़कों के साथ व समान शिक्षा, परिवार नियोजन आदि माँगें भी सामने आयी हैं.

'मुस्लिम औरतों पर हो रहे सामाजिक अन्यायों का इतिहास तलाक संबंधी हज़ारों अत्यंत विचित्र और निर्मम घटनाओं से भरपूर है. मुसलमान स्त्री मनमानी तलाक पद्धति से जितनी पीड़ित व असुरक्षित है उतनी बहु-पत्नीत्व से भी नहीं है.' इन शब्दों में इस प्रश्न की गंभीरता की ओर ध्यान खींचते हुए सैयद मेहबूब आगे बताते हैं. 'तभी तो मुस्लिम क़ानून के विख्यात अंतरराष्ट्रीय विशेषज्ञ प्रो. जे. एन. डी. अंडरसन ने कहा है कि सिर्फ बहुपत्नीत्व पर रोक लगाने से औरतों की रक्षा नहीं हो सकती, एकतरफ़ा तलाक पर पाबंदी लगाने की ज्यादा ज़रूरत है. मुस्लिम पुरुष अपनी स्त्री को किसी भी फ़ालतू कारण के लिए अथवा बिना कारण बताये भी तलाक दे सकता है. तलाक देने की विधा भी इतनी आसान है कि आप विश्वास नहीं करेंगे. किसी साक्षी (गवाह) के सामने तीन बार 'तलाक', 'तलाक', 'तलाक' कहने से अपनी बीवी से मर्द एक मिनट में बरसों का विवाह संबंध विच्छेद कर सकता है. मगर बीवी के लिए यह आसान नहीं है. पुरुष पर तलाक़ के बाद स्त्री के व लड़कों के आजीवन निर्वाह की भी ज़िम्मेदारी नहीं है. केवल तीन महीनों का निर्वाह धन (मेहर) दे कर वह स्त्री को विदा कर सकता है. कई मामलों में पति पत्नी को यह भी हक़ नहीं कि वह न्यायालय में अपने ऊपर लगाये कलंक को धो ले. आज कल किसी साधारण अस्थायी नौकर को भी नौकरी से निकालना है तो उस को क़ानून के मुताबिक नोटिस देनी पड़ती है, कारण देना पड़ता है ग्रेच्युइटी देनी पड़ती है. मुस्लिम औरतों को उतना भी संरक्षण नहीं है.' इस बेरहम तलाक पद्धति की शिकार हुई सैंकड़ों मुसलमान औरतों के अनुभव उस के नुरंत

खात्मे के समर्थन में लंगड़ा सबूत है.

सैयद मेहबूब खुद अपनी ही दो बहनों पर गुजरे प्रसंग का ज़िक्र करते हुए कहते हैं, 'मेरी छोटी बहन खातिजा बी. दो लड़कों की मां— बड़ा डेढ़ बरस का व छोटा उस से भी कम उम्र का.—एक दिन खतिजा के मर्द ने कोई भी कारण बताये बिना उस को तलाक दिया. उस की शिक्षा भी ज्यादा नहीं हुई है. वह क्या करेगी ? पति ने निर्वाह धन के रूप में सिर्फ सवा सौ रुपये देना कबूल किया. लेकिन वे भी नहीं दिये. हमारे कुछ रिश्तेदारों व दोस्तों ने सलाह दी कि उस की फिर से शादी कर डालो. लेकिन दो लड़कों की माँ से कौन करेगा शादी? फिर भी मैंने खतिजा से इस विषय में बात की. उस का जवाब था, 'कृपा कीजिये, मुझे उस नरक में दुबारा मत फेंको'. मेरी दूसरी बहन सुब्रा बी को भी आठ वर्षों के वैवाहिक संबंधों के बाद उस के पति ने तलाक दिया. उस के भी दो लड़के हैं.

और एक स्त्री का अनुभव : वह अपना नाम जाहिर करना नहीं चाहती. बताती है, 'शादी के समय मैं कच्ची उम्र की थी. कुछ समय बाद मेरे चेहरे पर जवानी के फोड़े दिखने लगे. घर वाले कहने लगे, इस को कोई भयानक बीमारी है. हम को पहले नहीं बताया. असल में शादी के पहले मेरी सास और उस की एक रिश्तेदार हमारे मायके के घर में आठ दिन रही थीं. उन्होंने मुझे अच्छी तरह देखा था. और पसंद किया था. इस बेबुनियाद शक पर मुझे तलाक दिया गया. मेरे पिता ने घर वालों को समझाने बुझाने की कोशिश की. लेकिन वह नाकामयाब रहे. इस बीच हमारे आदमी ने दूसरी लड़की से शादी की. कुछ दिनों बाद मेरे पिता जी ने किसी चमड़ी के रोगों के विशेषज्ञ डाक्टर से मेरी जाँच करवायी. उन्होंने निर्दोषी का सर्टिफिकेट दिया. तब मेरे पति को विश्वास हो गया कि मुझे कोई गंदी बीमारी नहीं है. मुझे फिर से अपने घर लिया और नयी बीवी को तलाक़ दिया. उस बेचारी लड़की को देख कर रोना आता है.'

कुमारी मरियन शेख, श्रीमती साबिरा बेग, आयेशा शेख, जहानारा बेगम (कलकत्ता) अस्मा मस्केती, हवाबी शेख, बानूबी पठाण वगैरह स्त्रियों की जबानों पर इस तरह के अनेक विचित्र व करुणापूर्ण उदाहरण हैं. एक सभ्य पुरुष ने अपनी पत्नी को विवाह के पश्चात केवल आठ दिनों में तलाक दिया. अजीब से कारण के लिए. महाशय को लगा कि अपनी श्रीमती जी का सर हिसाब से ज़्यादा बड़ा है, दूसरे एक की शिकायत थी कि लड़की वालों ने दहेज में जो फर्नीचर दिया वह पुराना है. बस, दे दिया तलाक़. तीसरे एक मर्द ने अपनी बीवी के पाँवों में शादी के बाद कोई दोष पाया. वह ठीक चलती नहीं थी. तलाक के लिए उन्होंने यह दोष काफी समझा. एक स्त्री की बहन अचानक बीमार हुई उस औरत का पति कहीं बाहर गाँव गया था. उस की अनुपस्थिति में उस की पत्नी अपनी बहन की शुश्रुषा करने के लिए उस के घर गयी. वहाँ उस को अधिक दिनों तक रहना पड़ा पति से बिना पूछे बहन के यहाँ चले जाने के कारण पति ने उस को तलाक दिया. इस तरह के अनगिनत उदाहरण हैं जिन को सुन कर गुस्से के साथ सहज हँसी भी आती है.

इन अनिर्बंध विवाह विच्छेदों ने मुस्लिमों में एक गंभीर सामाजिक समस्या को जन्म दिया है. निराश्रित स्त्रियों की समस्या. इस का ज़िक्र करते हुए सैयद मुनीर कहते हैं, 'परित्यकता औरतों व लड़कों का एक गंभीर सवाल हमारे समाज में उपस्थित हुआ है. इन में अधिकतर औरतों को किसी का भी सहारा नहीं होता. परदे तथा झूठी प्रतिष्ठा के कारण वे मज़दूरी भी नहीं करती. जो करती हैं वे कोई भी गंदा काम करना पसंद करती हैं. जो पढ़ी लिखी हैं उन को भी नौकरी मिलना मुश्किल होता है. लेकिन जो अनपढ़ हैं उन को तो मज़दूरी या देहविक्रय कर के ही गुजारा करना पड़ता है. उन के लड़के हज़ारों की संख्या में रास्ते के भिखारी या चोर बनते हैं. सब से रहम करने लायक हालात उन तलाकशुदा औरतों की है जो ढलती आयु में पहुँची हैं. मैं इस तरह की एक औरत को जानता हूँ. उस को पचास वर्षों की आयु में तलाक़ दिया गया है. स्त्री व लड़के समाज के सब से दुर्बल घटक हैं. जो धर्म और क़ानून उन को इस दशा में पहुँचाते हैं वह धर्म नहीं है, वे क़ानून नहीं हैं.

वारसीयत को ले कर हो रहे अन्यायों का उल्लेख करते हुए दिल्ली की फकर बेगम ने अपना ही अनुभव सुनाया है. वे दिल्ली की 'नेशनल विमेंस कौंसिल' की एक प्रमुख कार्यकर्त्ता हैं. फकर की शादी एक बड़े मौलवी घराने में हुई है. उन के ससुर के बाद उन के पति मौलवी पद पर आये. पति का असामयिक देहांत हुआ तब किसी अड़चन के कारण फकर के लड़के को मौलवी पद नहीं मिल सका. इस मौलवी परिवार की बड़ी भारी ज़ायदाद है. फकर के पति जीवित थे तब वे पूरी संपत्ति के स्वामी थे. लेकिन पति को मृत्यु के बाद संपत्ति सास के नाम हो गयी. क्यों कि मुस्लिम क़ानून के अनुसार पति की पूर्ण संपत्ति पत्नी को नहीं मिलेगी. लड़के हैं तो चौथा हिस्सा मिलता है और नहीं हैं तो केवल आठवाँ हिस्सा. लड़के की मृत्यु अगर माँ-बाप के पहले होती है तो बाकी जायदाद लड़के की औरत व पुत्रों को नहीं मिलती. वह वापस माँ-बाप के पास जाती है. फकर ने कहा है कि उन जैसी पढ़ी लिखी औरतें कहीं भी नौकरी कर के अपना व अपने लड़कों का गुज़ारा कर सकती हैं. लेकिन अनपढ़ औरतों की हालत वारसीयत में उन को कुछ भी न मिलने पर एकदम खस्ता हो जाती है.

एक लड़ाकू मुस्लिम सुधारवादी युवा नेता वज़ीर पटेल का आरोप है कि मुस्लिम पुरुष बहुपत्नी प्रथा का समर्थन इस कारण भी करते हैं कि वे अपनी दो-दो, तीन-तीन बीवियों की कमाई पर खुद कुछ भी काम धंधा किये बगैर आराम से रह सकें. वे बताते हैं निम्न व ग़रीब तबके में ऐसे कई मुस्लिम परिवार हैं जिन के पुरुषों की औरतें बर्तन माँजना, कपड़े धोना, वगैरह हलके व मज़दूरी के कामों तथा बीड़ी हाथ बुनाई आदि छोटे धंधों में काम कर के पूरे परिवार का आर्थिक भार उठाती हैं और पुरुष अपनी पत्नियों की आय पर मौज-मज़ा करते हैं. इन लोगों के लिए एक से अधिक औरतें करना यह एक आर्थिक दृष्टि से लाभकारी धंधा है.'

मरियम रफाई साफ़ शब्दों में फ़रमाती है, 'यह ज़ाहिर है कि अपने लिए एक से अधिक औरतें शादी में हासिल करने के पीछे पुरुषों की वह असीम काम लालसा है जिस की भर्त्सना किसी भी सभ्य समाज में होनी चाहिए. इस प्रथा ने औरतों को औरतों का दुश्मन बनाया है यह बिल्कुल असंभव व झूठ है कि कोई भी एक पुरुष अपनी दोनों या तीनों पत्नियों को समान प्यार या समान न्याय दे सकता है. जो बहुपत्नी पद्धति का समर्थन करते हैं वे स्त्री को या तो बिना किराये लायी हुई मज़दूरिन या फिर भोगवस्तु समझते हैं. जो मुस्लिम स्त्री क़ानून या धार्मिक परंपराओं की दासता के कारण इस पद्धति को मूक स्वीकार करती है वह खुद को स्त्री जाति का शत्रु साबित करती है.'

मरियम रफाई आगे कहती है, "इस पद्धति ने हज़ारों मुस्लिम परिवारों को बरबाद किया है. मैं इस बात को अपने शब्दों में नहीं पाकिस्तान के भूतपूर्व अध्यक्ष अय्यूब खाँ के लफ्ज़ों में दुहराना चाहती हूँ. अपनी आत्मकथा 'फ्रैंड्स नाट मास्टर्स' में अय्यूब लिखते हैं, 'किसी विशेष परिस्थिति में इस्लाम ने एक से ज्यादा औरतों से शादी करने की छूट दी है. लेकिन इस छूट का अनिर्बंध उपयोग कर के अनगिनत ज़बान बंद औरतों व निरपराध लड़कों को असीम दुख व कष्टों की खाई में ढकेल दिया जाता है और इस तरह हज़ारों परिवार नष्ट हुए हैं.' उन्होंने पाकिस्तान के संबंधित क़ानूनों को वास्तव में 'इस्लामी' बनाने तथा मुस्लिम औरतों को यथासंभव न्याय देने के लिए सन् 1967 में कानून बनाया. सिर्फ़ पाकिस्तान ने ही नहीं, सऊदी अरब व लीबिया जैसे दो तीन मुस्लिम देशों को छोड़ कर, दुनिया के सभी मुस्लिम राष्ट्रों ने पिछले सौ बरसों में औरतों को शादी, तलाक, वारसीयत वगैरह के बारे में समान न्याय देने के लिए शरियत में बार बार कई परिवर्त्तन किये हैं.

भारत में इस तरह के परिवर्त्तन के विरोधी कट्टरपंथी मुसलमान व राजनैतिक समूह कई तरह के तर्क व कारण देते हैं. महाराष्ट्र सत्य-

शोध मंडल द्वारा चलाये मुस्लिम स्त्री मुक्ति आंदोलन के प्रभावी समर्थक व पिछले 40 वर्षों से स्वयं इस आंदोलन को चलाने वाले प्रो. ए. ए. फैज़ी ने इन सभी तर्कों का अपने कई बयानों में खंडन किया है. प्राध्यापक फैज़ी मुस्लिम क़ानून के जगविख्यात पंडित हैं. वे कश्मीर विद्यापीठ के कुलपति व मिस्र में भारत के राजदूत भी रह चुके हैं. अगर सरकार की कुछ करने की इच्छा व संकल्प है तो वह कुछ भी कर सकती है. इस संदर्भ में अध्यक्ष नासिर का एक उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा, "नासिर अपने मंत्रिपरिषद में एक स्त्री प्रतिनिधि लेना चाहते थे. मगर मिस्र के प्रसिद्ध अल अजहार विद्यापीठ ने आक्षेप उपस्थित किया कि औरतों को शासन चलाने का इस्लाम में हक़ नहीं है. तब नासिर साहब ने शेख को धमकी दी, "आप अपनी यह राय नहीं बदलेंगे तो मैं विद्यापीठ के मौलवी पद पर किसी दूसरे व्यक्ति की नियुक्ति करूँगा. शेख ने अपना मत तुरंत बदल दिया. ज़ाहिर है कि औरत को राज्य शासन में लेने के लिए इस्लामी धर्मशास्त्र का कोई भी विरोध नहीं है.

मिस्र जैसे मुस्लिम बहुसंख्यक देशों में सरकारों को इस्लामी क़ानून में बदलाव करने का अधिकार है लेकिन हिंदुस्तान जैसे मुसलमान अल्पसंख्यक देश की सरकार को वह नहीं है— इस तर्क और अन्य तर्क पर खंडन करते हुए फैज़ी साहब कहते हैं, 'यह झूठ है. हिंदुस्तान का संविधान सरकार को यह अधिकार देता है. यह इस्लाम में भी कोई हस्तक्षेप नहीं है. किसी भी धर्म के कुछ बुनियादी सिद्धांत अपरिवर्त्तनीय होते हैं लेकिन उस के क़ानून समय के तकाज़ों के अनुसार बदलते हैं. शरियत क़ानून का मज़हब से कोई संबंध नहीं है. बहुविवाह, तलाक से संबंधित क़ानूनों में बदल करने से संविधान में प्रदत्त व्यक्ति स्वतंत्रता को बाधा नहीं आती. क्यों कि बहुपत्नित्व यह कोई भारतीय मुस्लिमों का मौलिक अधिकार नहीं है जिस को समाप्त करने से संविधान की धारा 25 का उल्लंघन होगा.'

मुस्लिम व्यक्तिगत क़ानून में स्त्रियों के हित में बुनियादी परिवर्त्तन करने की तथा देश के सभी धर्मीय नागरिकों के लिए समान कानून बनाने की जो माँग अब इस आंदोलन के कारण विशेष रूप में सामने आयी है उस को पहले से और आज भी कई जाने माने मुस्लिम अधिकारी व्यक्तियों का समर्थन प्राप्त है. उच्चतम न्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री हिदायतुल्ला ने कहा है, "कि हिंदुओं के क़ानूनों में सुधार किया गया है लेकिन मुस्लिम औरतों के हितों की रक्षा की उपेक्षा की गयी है. "दुनिया के अधिकांश मुस्लिम देश के मुसलमान मुस्लिम क़ानून में समयानुकूल परिवर्त्तन के लिए रज़ामंद हुए मगर हमारे देश के मुस्लिम कुरान के नाम पर हेरफेर का विरोध करते रहे. इस का ज़िक्र करते हुए हिदायतुल्ला पूछते हैं, "क्या और मुस्लिम देशों के मुसलमान हमारे देश के मुस्लिमों से कुरान से कम श्रद्धा रखते हैं?" मुस्लिम क़ानून के और एक विशेषज्ञ श्री रा. जी. तुराणी का कहना है "मुस्लिम व्यक्तिगत क़ानूनों में बदलाव लाने का अगर देश के मुस्लिम विरोध करते हैं तो वे साहस का नहीं बल्कि नैतिक भीरुता का परिचय दे रहे हैं." उच्चतम न्यायालय के एक न्यायाधीश श्री बेग का मत है कि सभी नागरिकों के लिए समान नागरी कायदा बनाना अत्यंत आवश्यक है. इस तरह के क़ानून को मुसलमानों पर ज़बरदस्ती लागू करना सरकार को अगर कठिन मालूम होता है तो जो मुस्लिम शरीयत को नहीं मानना चाहते उन के लिए समान नागरी क़ानून कम-से-कम उपयोगी होगा. केरल उच्चन्यायालय के न्यायाधीश श्री मोईदू कहते हैं, "रूढ़ियों के कारण शरीयत में उत्पन्न दोषों को क़ानून द्वारा हटाया जाना चाहिए. कुरान में बहुविवाह की जो छूट अपवादात्मक स्थितियों में दी है उस को रूढ़ि ने पुरुषों के आम अधिकार के रूप में परिवर्त्तित किया है. यह अनिष्ट है. "बहुविवाह का विरोध करते हुए केरल न्यायालय के और एक न्यायमूर्ति श्री खलीद ने माँग की है, "मुस्लिम क़ानूनों की संहिता बना कर उस को देश की क़ानून संहिता का हिस्सा बनाना चाहिए धार्मिक रूढ़ि व परंपराओं को धर्म के सिद्धांतों की जगह नहीं दी जा सकती. रूढ़ियों को बदल कर इस्लाम का क़ानून मूल धर्मतत्त्वों के अनुरूप बनाया जाना चाहिए. सर्वश्री मोहम्मद छागला, बैंगलूर विधि महाविद्यालय के प्राध्यापक बशीर हुसेन, मराठावाड़ा (महाराष्ट्र) विद्यापीठ में राज्यशास्त्र के प्राध्यापक मोईत साकीर वगैरह अन्य मुस्लिम विद्वान् भी हैं जिन्होंने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में मुस्लिम सुधारवादी आंदोलन का समर्थन किया है.

आज की कविता

सूर्यदेव सिबरत

मारिशस के युवा कवि. ज. 12 मार्च 1944. शिक्षक, पर आजकल क्रीड़ा मंत्रालय में. नये युवा लेखकों में प्रमुख स्थान. नाटक में भी गहरी रुचि. हिंदी कविताओं की उन की पांडुलिपि से ये कविताएँ :

सीमा

आम का एक पेड़
मेरे आँगन के उस
 कोने में
जिसे लगाया था
मेरे 'मालबार' दादा ने.
उस के असंख्य
फलों के लिए
मेरे कृपण, लोभी
पड़ोसी की
कभी बंद नहीं होती थी
लोलुप आँखें
और अँधेरे में
मुक्त चोरी.
आज—
वह पेड़ मैंने दान कर दिया उसे.
कितना धन्य हूँ
कितना परोपकारी जीव हूँ
समुद्र पार, रहने वाले
उस के ससुर ने एक पार्टी दी
मेरे नाम
मुझे हार पहनाया उस ने.
साथ, उस से
लिये मैं ने, कई सुईदार तार
अपने घर के, चारों ओर
लगा दिया घेरा मैंने
ताकि बच्चे मेरे
उस पेड़ के, आम की
चोरी न करें.

अछूत

तुम !
कुलीवंशी नहीं हो
तुम ! कुलीवंश का हो
सफेद कलंक
टीका मत समझो
कुली मर्यादा की
तुम ने की है
कायर हत्या.
कुली, कुली पर
शासन नहीं करता
पर
तुम करते हो
कुली, कुली का
शोषण नहीं करता
पर तुम करते हो.
उस अत्याचारी सत्ता की
अब तुम हो
नींव.
बंदूक चलाना सीख गये
तुम उन से
जंगल में
सूखी लकड़ी खोजने वाली
कुली औलाद को
तुम ने
हरिण समझ लिया
मूल से.
भाई मेरे !
कुली बिरादरी से अब
करते हैं तुम्हें
बहिष्कृत
जाओ ! तुम अछूत हो.

भारत-बंगलादेश

समरसेन पर आक्रमण

ढाका में भारतीय उच्चायुक्त **श्री समरसेन** की हत्या का प्रयास एक ऐसा कृत्य है जिस पर भारत सरकार और सभी भारतीयों का चिंतित होना स्वाभाविक है. न केवल इसलिए कि इस से भारत के वरिष्ठ अधिकारी और प्रतिनिधि पर आक्रमण हुआ है बल्कि इसलिए भी कि इस आक्रमण के पीछे शायद वही भारत विरोधी प्रचार कार्य कर रहा है जो कुछ समय से बंगलादेश में जारी हो गया है. ऐसा लगता है कि बंगलादेश में विभिन्न प्रकार के शरारती तत्त्वों ने कानून व्यवस्था को छिन्न भिन्न कर दिया है और अधिकारी विदेशी नागरिकों और प्रतिनिधियों के जानमाल की रक्षा के सिलसिले में पर्याप्त तत्परता नहीं दिखा पा रहे हैं.

26 नवंबर को ढाका में भारतीय उच्चायुक्त श्री समर सेन पर जो आक्रमण हुआ उस में वह बाल बाल बचे, मगर उन के कंधे में गोली लगी जिस के कारण उन्हें गंभीर हालत में अस्पताल ले जाना पड़ा. डाक्टरों ने शल्यक्रिया द्वारा कंधे की हड्डी से गोली निकालने में सफलता प्राप्त की है और श्री सेन अब धीरे धीरे ठीक हो रहे हैं.

समाचारों के अनुसार श्री सेन के कार्यालय में आने से पहले प्रातः 9 बज कर 30 मिनट पर छह युवक उच्चायोग में आये और उन्होंने उपस्थित अधिकारियों से श्री सेन से मिलने की इच्छा व्यक्त की. इन युवकों को स्वागत कक्ष में बिठाया गया. थोड़ी देर बाद जब भारतीय उच्चायुक्त की गाड़ी आयी तो ये युवक बड़ी तेज़ी के साथ स्वागतकक्ष से बाहर आये. उन में से एक युवक ने श्री समरसेन पर गोली चलायी जो उन के कंधे में लगी. इस अफरा-तफरी में श्री सेन नीचे गिर पड़े. उच्चायोग में तैनात एक सुरक्षा सिपाही ने आक्रमणकारियों पर जवाबी हमला किया और चार व्यक्तियों को उसी स्थल पर गोली से मार दिया. दो अन्य भी घायल हुए और सुरक्षा सैनिकों ने उन्हें तुरंत गिरफ्तार कर लिया. श्री सेन को उसी समय अस्पताल ले जाया गया जहाँ बंगलादेश के सरकारी डाक्टरों ने उन की आपत्कालीन चिकित्सा शुरू की.

यह बात महत्त्वपूर्ण है कि इस आक्रमण से कुछ दिन पहले भारतीय उच्चायोग में कुछ शरारती तत्त्वों ने एक हथगोला रखा था. मगर समय पर सुरक्षा अधिकारियों ने उसे खोज निकाला और कोई क्षति नहीं हुई.

इस घटना के तुरंत बाद बंगलादेश सरकार ने उच्चस्तरीय जांच का आदेश जारी किया है ताकि दोषियों को पूरी पूरी सजा दी जा सके. एक सरकारी प्रवक्ता ने बताया कि विदेशी नागरिकों की व्यक्तिगत सुरक्षा हर कीमत पर की जायेगी. बंगलादेश राष्ट्रपति के मुख्य सचिव और सैनिक सचिव अस्पताल में ही श्री सेन से मिले. बाद में बंगलादेश के सेनाध्यक्ष **मेजर जनरल जियाउर रहमान** भी उच्चायुक्त से मिलने आये. पुलिस के महानिदेशक और अन्य नेताओं ने उच्चायोग का निरीक्षण किया और सुरक्षा सुविधाओं को और भी अधिक सख्त बनाने के लिए आदेश जारी किये गये. राष्ट्रपति के सचिव हबीबुल आलम और श्री नज़रुल इस्लाम ने अस्पताल में श्री समर सेन को बताया कि बंगलादेश सरकार इस सिलसिले में किसी प्रकार की उदासीनता नहीं बरतेगी और दोषियों को सज़ा देने में कोई कोताही नहीं की जायेगी.

इस आक्रमण की सूचना प्राप्त करते ही भारत सरकार ने श्री समर सेन को इलाज के लिए वापस बुलाने का फैसला किया और एक विमान तथा कुछ चिकित्सकों को ढाका भेज दिया. मगर बंगलादेश के इस आश्वासन पर कि सरकार हर हालत में अपने पड़ोसी देश के साथ मित्रता का संबंध बनाने की इच्छुक है और विदेशी नागरिकों के संरक्षण की हर कोशिश की जायेगी श्री समर सेन ने यह फैसला किया है कि वे फिलहाल बंगलादेश में ही रहेंगे. 'उचित स्तर पर भारतीय प्रतिनिधित्व को बनाये रखने' के हित में श्री सेन ने ढाका में ही इलाज करवाने का फैसला किया है. इसलिए भारतीय वायसेना का विमान चिकित्सकों के दल समेत वापस लौट गया है. अंतिम समाचारों के अनुसार श्री सेन पर शल्यक्रिया सफल हुई है और उन्हें अस्पताल से वापस अपने निवासस्थान पर जाने की इजाज़त मिल गयी है.

श्री सेन पर इस भयानक आक्रमण से दोनों देशों के समझदार और हितचिंतक लोगों की चिंता बढ़ गयी है क्यों कि शेख मुजीबुर्रहमान की हत्या के बाद से लगातार किसी न किसी रूप में बंगलादेश में भारत और भारतीयों के विरुद्ध प्रचार शुरू हो गया था. कुछ विदेशी शक्तियों और समाचारपत्रों ने भारतीय हस्तक्षेप के झूठे समाचार प्रचारित कर के बंगलादेश के कुछ संकुचित विचारों वाले गुटों को भारत के विरुद्ध भड़काने में सफलता प्राप्त की. मुजीब की मृत्यु के बाद इन घटनाओं ने बंगलादेश की राजनैतिक अस्थिरता को और भी बढ़ा दिया है और कानून व्यवस्था को बनाये रखना अधिकारियों के लिए भी मुश्किल होता जा रहा है. इसलिए श्री समरसेन पर भयानक आक्रमण भारत विरोधी प्रचार का परिणाम तो है मगर इस बात का भी द्योतक है कि बिना

दिनमान

समाचार - साप्ताहिक

'राष्ट्र की भाषा में राष्ट्र का आह्वान'

भाग 11 7-13 दिसंबर, 1975

अंक 48 . 16-22 मार्गशीर्ष, 1897

*

इस अंक में

*

दिनमान

संपादक : रघुवीरसहाय. संपादकीय सहकर्मी: जितेंद्र गुप्त (सहायक संपादक), श्रीकांत वर्मा (विशेष संवाददाता), सर्वेश्वरदयाल सक्सेना (प्रमुख उपसंपादक), श्यामलाल शर्मा, योगराज थानी, रामसेवक श्रीवास्तव, जवाहरलाल कौल, शुक्ला रुद्र, त्रिलोक दीप, महेश्वरदयाल गंगवार, नेत्रसिंह रावत, प्रयाग शुक्ल और विनोद भारद्वाज. सज्जा : विजय कोहली

टाइम्स आफ इंडिया प्रकाशन,

10, दरियागंज, दिल्ली-110006

राजनैतिक उद्देश्यों के भी महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों की हत्या के षड्यंत्र बंगलादेश की राजधानी में हो सकते हैं क्योंकि अभी भी एक सशक्त प्रशासन और हुकूमत के आसार नज़र नहीं आते. सेना, जिस के हाथ में सत्ता है, भी एक ही नेता के पीछे खड़ी नहीं है. ऐसी हालत में चिंता होते हुए भी श्री सेन पर आक्रमण के मामले को ले कर बंगलादेश विरोधी भावना के बदले इस संकटग्रस्त और भाग्यहीन राष्ट्र के प्रति सहानुभूति से काम लिया जाना चाहिए. इस संदर्भ में नये राष्ट्रपति सयेम की भारत के साथ मित्रता बनाये रखने और संबंध सुधारने की इच्छा से आश्वासन पैदा होता है कि दोनों देशों के बीच अच्छे संबंध कायम रह सकते हैं. बंगलादेश के राष्ट्रपति ने व्यक्तिगत रूप से 26 नवंबर की घटना पर खेद व्यक्त करने के लिए श्रीमती गांधी से टेलीफोन पर संपर्क स्थापित किया. उन्होंने इस आक्रमण की निंदा की. बंगलादेश राष्ट्रपति ने श्रीमती गांधी को बताया कि वह एक उच्च-स्तरीय प्रतिनिधिमंडल शीघ्र ही भारत भेजना चाहते हैं जो भारत सरकार के साथ आपसी मामलों पर बातचीत करेगा. इस प्रतिनिधि-मंडल का नेतृत्व शायद बंगलादेश राष्ट्रपति के विशेष सहायक **अब्दुस्सत्तार** करेंगे. संयुक्त राष्ट्र में बंगलादेश के प्रतिनिधिमंडल ने भी श्री सेन पर आक्रमण को निंदनीय बताया. प्रतिनिधिमंडल के अनुसार यह आक्रमण ऐसे तत्त्वों ने किया है जो भारत और बंगलादेश के बीच संबंध बिगाड़ने की कोशिश कर रहे हैं. उस ने बंगलादेश पुलिस की इस बात के लिए प्रशंसा की कि तुरंत कार्रवाई कर के आक्रमण-कारियों को विफल कर दिया गया है. ढाका में भारत के उच्चायुक्त का पद सँभालने के पहले श्री समरसेन भारत की ओर से संयुक्त राष्ट्र में प्रतिनिधि थे.

केंद्र राज्य

बहुगुणा के बाद

अब श्री हेमवतीनंदन बहुगुणा 'एक मुक्त नागरिक हैं.' मुख्यमंत्री पद से त्यागपत्र देने के बाद संवाददाताओं से बातचीत करते हुए उन्होंने कहा कि उन का विचार सन् 47 से ले कर आज तक के बीच का कांग्रेस का इतिहास लिखने का है.

राज्यपाल डॉ. चेन्ना रेड्डी द्वारा उन का त्यागपत्र स्वीकार कर लिये जाने के साथ उन की जो रपट राष्ट्रपति के पास पहुँची उस के आधार पर राज्य को राष्ट्रपति शासन के अधीन कर दिया गया है. दिल्ली में मंत्रिमंडल की एक बैठक के बाद संविधान के अनुच्छेद 356 के अंतर्गत राष्ट्रपति ने राज्य को अपने शासन के अंतर्गत लेने की उद्घोषणा की. केंद्रीय गृहमंत्री श्री ब्रह्मानंद रेड्डी ने बताया कि यह व्यवस्था थोड़े ही समय के लिए की गयी है. ऐसा इस लिए किया गया ताकि कांग्रेस विधायक दल के नेता के चुनाव से ले कर कुछ अन्य छोटी मोटी समस्याओं का समाधान किया जा सके. स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस राज्य में चौथी बार राष्ट्रपति का शासन लागू हुआ है. इस के पहले 12 जून 1973 को राज्य की सशस्त्र पुलिस दल के विद्रोह के परिणामस्वरूप राष्ट्रपति शासन लागू किया गया था. वह शासन 2 नवंबर 73 तक रहा जिस के बाद केंद्र के तत्कालीन संचार राज्यमंत्री श्री बहुगुणा ने मुख्यमंत्रीत्व का भार सँभाला था. कुल मिला कर अब तक राष्ट्रपति शासन के अंतर्गत यह राज्य 1 साल 5 महीने और 23 दिन रहा है. इस प्रकार का शासन पहली बार 24 फरवरी 1968 को लागू हुआ था जब तत्कालीन संयुक्त विधायक दल की सरकार में मतभेद और दलबदल हुआ था. दूसरी बार अक्तूबर 1970 में ऐसा हुआ. तब सरकार भारतीय क्रांति दल की थी.

शासन का भार सँभालने के बाद राज्य-पाल डॉ. रेड्डी ने प्रशासन को बेहतर बनाने के लिए एक 12 सूत्रीय कार्यक्रम की घोषणा की. इस का उद्देश्य प्रधानमंत्री के 20 सूत्रीय कार्यक्रम का कार्यान्वयन, प्रशासन को चुस्त बनाना तथा सभी प्रकार की सरकारी राजस्व की वसूली के लिए एकीकृत अभिकरण का निर्माण करना है. डॉ. रेड्डी ने विभागीय सचिवों को संबोधित करते हुए 12 सूत्रीय कार्यक्रम को अमल में लाने के उद्देश्यों की चर्चा की और कहा कि ऐसे क़दम उठाये जाने चाहिए जिस से प्रशासन और सक्षम प्रभावशाली हो सके. हरिजनों और अल्पसंख्यकों को पर्याप्त सुरक्षाएँ मिलें तथा गाँव सभा की उपलब्ध सारी भूमि 2 महीने में भूमिहीनों में वितरित की जा सके. उन्होंने पुलिस को भी यह आदेश दिया कि वह हरिजनों को आवंटित ज़मीनें ग़ैरकानूनी ढंग से कब्ज़े में किये हुए लोगों से दिलाने में मदद दें. डॉ. रेड्डी ने यह भी कहा कि राष्ट्रपति का शासन चाहे छोटी अवधि के लिए हो चाहे बड़ी अवधि के लिए उस को ले कर उन्हें कोई चिंता नहीं है. न ही इस से उन के लिए कोई फ़र्क पड़ता है. 1-2 दिनों में ही वह यह निर्णय भी कर लेंगे कि प्रशासन के सिलसिले में परामर्शदाता या परामर्श देने वाली कोई समिति गठित करनी है या नहीं. इसी के साथ साथ वह इस बात पर भी विचार करेंगे कि बहुगुणा मंत्रिमंडल के अनुभवी मंत्रियों का सहयोग आवश्यक कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के सिलसिले में लिया जाये या नहीं. 20 सूत्री कार्यक्रम को आगे बढ़ाने के लिए राज्य और ज़िला स्तर पर जिन कार्या-न्वयन समितियों का निर्माण नहीं हो सका था वे भी शीघ्र ही गठित की जायेंगी.

विश्वविद्यालय के कुलाधिपति के रूप में डॉ. रेड्डी ने इस शिक्षण वर्ष के दौरान की कुछ अशांतियों पर चिंता व्यक्त की और कहा

हेमवंती नंदन बहुगुणा : मुक्त नागरिक

कि अभी भी कुछ विश्वविद्यालयों में प्रवेश की प्रक्रिया पूरी नहीं की जा सकी है और कुछ में परीक्षाफलों की घोषणा नहीं हुई है. वह कुलपतियों से पूछ रहे हैं कि इस विलंब के कारण क्या हैं. उन्होंने कहा कि छुट्टियों को छोड़ देना जाना चाहिए और परीक्षाएँ अप्रैल, मई में समाप्त कर के नये सत्र की शुरूआत जुलाई से हो जानी चाहिए.

डॉ. रेड्डी ने ज़िला परिषदों को एक सक्रिय और गतिशील संस्थान का रूप देने की भी इच्छा व्यक्त की. उन्होंने कहा कि सभी ज़िला-धिकारियों को ज़िला परिषदों की बैठक में हिस्सा लेने के आदेश दिये जा रहे हैं. जो लोग इन आदेशों का उल्लंघन करेंगे उन के विरुद्ध अनुशासन की कार्रवाई की जायेगी. श्री रेड्डी इस बात की भी जाँच पड़ताल कर रहे हैं कि क्षेत्रीय आयुक्तों को क्या अधिकार दिया जाये ताकि वे अधिक प्रभावशाली और उद्देश्यपरक सिद्ध हो सकें और साथ ही इस बात का भी आश्वासन मिल सके कि फाइलें तेज़ी से निपटायी जाती हैं और सचिवालय के स्तर पर जो निर्णय होता है उस का कार्यान्वयन शीघ्रता के साथ किया जाता है.

डॉ. रेड्डी के अनुसार किसानों को उन के खेतों के आकार और उस के मूल्य का बोध कराने वाली पासबुकें देने का भी प्रस्ताव है ताकि वे बैंक में जा कर उस पासबुक के आधार पर कर्ज़ प्राप्त कर सकें. श्री रेड्डी का विचार इस सिलसिले में बैंक के अधिकारियों से भी बातचीत करने का है.

संविधान सम्मत समझौता

नगालैंड की बारहवीं वर्षगाँठ (1 दिसंबर) की पूर्वसंध्या को केंद्रीय गृहमंत्री ब्रह्मानंद रेड्डी ने नयी दिल्ली में एलान किया कि विद्रोही नगाओं से भारत सरकार का जो

समझौता हुआ है उस के कारण अब नगालैंड निश्चित हो कर पूरी शक्ति से राज्य के विकास कार्य को आगे बढ़ा सकेगा. श्री रेड्डी ने बताया कि विद्रोही नगाओं ने देश के संवैधानिक ढाँचे में अपनी निष्ठा व्यक्त की है और अनिधिकृत हथियार सरकार को सौंप देने का फ़ैसला कर लिया.

समझौते में, जो 11 नवंबर को नगाओं के अधिकृत प्रतिनिधियों और केंद्र सरकार के बीच संपन्न हुआ, यह भी कहा गया है कि 'अंतिम समझौता' करने के लिए अन्य विषयों पर विचार विमर्श के लिए 'पर्याप्त समय' दिया जायेगा. श्री रेड्डी ने एक सवाल के जवाब में बताया कि शिलङ समझौता अंतरिम नहीं, अंतिम समझौता है. अनुमान है कि जिन विषयों पर अभी और बातचीत होनी बाक़ी है वे सरकार में भूमिगत नगाओं के प्रतिनिधित्व, नगा संस्कृति और परंपराओं की सुरक्षा आदि से संबंधित हैं.

केंद्र सरकार ने समझौते का जो मूल पाठ प्रकाशित किया है उस से यह स्पष्ट है कि भूमिगत नगाओं ने बिना किसी शर्त के भारतीय संविधान में अपनी निष्ठा प्रकट की है और वे अनधिकृत हथियार वापस कर देने के लिए राज़ी हो गये हैं. श्री रेड्डी ने पत्रकारों से बातचीत में यह भी कहा कि नगाओं के आत्म-निर्वासित नेता श्री ए. जेड. फ़िज़ो की प्रतिक्रिया की कोई चिंता नहीं—क्योंकि वह ब्रिटेन में 1957 से रह रहे हैं, इस लिए इस क्षेत्र की वास्तविकताओं से उन का कोई परिचय नहीं रह गया है, और दूसरे वह ब्रिटेन के नागरिक बन चुके हैं. श्री रेड्डी ने यह भी बताया कि श्री फ़िजो के भाई श्री केवी येले, जो कि भूमिगत नगाओं की 'संघीय सरकार' में मंत्री है—इस समझौते पर हस्ताक्षर किये हैं. इस तरह से यह स्पष्ट हो जाता है कि समझौते पर हस्ताक्षर के बाद विद्रोही नगाओं की 'संघ सरकार' नगा राष्ट्रीय परिषद्' और 'नगालैंड सेना' का अस्तित्व अपने आप समाप्त हो जाता है. अब नगालैंड में एक ही सर्वमान्य सत्ता बच रहती है जो भारतीय संविधान के अनुसार अस्तित्व में है.
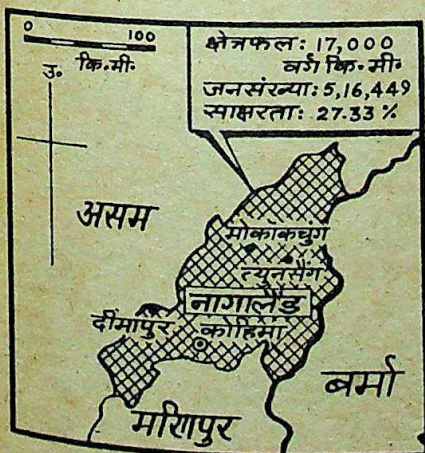
श्री ब्रह्मानंद रेड्डी ने यह संकेत भी दिया कि उन विद्रोहियों को माफ़ी दी जा सकती है जो सरकारी जेलों में बंद हैं. परस्पर विश्वास और व्यवहार के वातावरण में अगर 200 बंदी नगाओं के रिहाई का फ़ैसला किया जाता है तो यह पूरी तरह उचित ही होगा, क्यों कि मौजूदा समझौता एक राजनैतिक समझौता है.

नगालैंड से संबद्ध राजनैतिक क्षेत्रों में इस बात की प्रसन्नता के साथ प्रतीक्षा की जा रही है कि भूमिगत नागाओं के प्रतिनिधियों और केंद्र सरकार के बीच 11 नवंबर को हुए शिलङ समझौते पर विद्रोही नगाओं की बैठक अपनी अनौपचारिक स्वीकृति भी प्रदान कर देगी. इस में दो मत नहीं कि शांतिप्रिय और उदारवादी विद्रोही नगाओं के साथ ही प्रदेश की बहुसंख्यक नगावासी इस बात की पूरी उम्मीद लगाये बैठे हैं कि अब भूमिगत नगाओं की गतिविधियों के नतीजे समझौते की भावना के अनुकूल ही निकलेंगे. और प्रदेश में बरसों से चला आ रहा अव्यवस्था का सिलसिला ख़त्म हो जायेगा.

शिलङ समझौते पर अपनी औपचारिक सहमति व्यक्त करने के लिए प्रमुख भूमिगत नगा नेताओं की दो दिवसीय बैठक 28 और 29 नवंबर को उत्तरी कोहिमा के अगामी क्षेत्र में दिहाया गाँव में हुई. बैठक में विभिन्न नेताओं के साथ ही भूमिगत सेनाओं के 'सेनापति' और 'भूमिगत संसद' के सदस्यों ने हिस्सा लिया. बैठक में भाग लेने वालों में विद्रोही नेता फीजो के छोटे भाई केवी येले महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं. केवी येले के अतिरिक्त 'संघीय नगा सरकार' (एन. एफ. जी.) के प्रमुख जेशी हूरे, बिना विभाग के मंत्री ब्रेड रामयो, सहमंत्री बीसेतो और संघीय नगा सेना के सर्वोच्च 'सेनापति' मेजर जनरल आसा भी बैठक में भाग लिया.

कोहिमा पहुँचने वाली ख़बरों के अनुसार बैठक में इस बात पर आम सहमति व्यक्त की गयी कि विद्रोही नगाओं को अपनी लड़ाई समाप्त कर के बदली हुई परिस्थितियों के अनुकूल बरतना चाहिए और सशस्त्र लड़ाई का दौर ख़त्म कर के शिलङ में हुए समझौते का सम्मान करना चाहिए. बैठक के पूर्व भूमिगत नगा सेना के प्रमुख जनरल विचाले मेथा ने भी आश्वासन दिया था कि वे शिलङ में हुए समझौते के बारे में श्री केवी येले से बात करेंगे और नगालैंड में शांति स्थापना की दिशा में किए गये ऐसे किसी भी समझौते का सम्मान करेंगे.

स्वतंत्र नागालैंड की माँग को ले कर पिछले 20 वर्षों से चली आ रही भूमिगत नागा विद्रोहियों की लड़ाई 11 नवंबर को उस समय ठहराव पर आ गयी थी जब केंद्र सरकार की हैसियत से बात कर रहे प्रदेश के राज्यपाल लल्लनप्रसाद सिंह और भूमिगत नागाओं के 'प्रतिनिधियों के बीच समस्या के मूल मुद्दों को ले कर समझौता हो गया. लंबी चर्चाओं की सफलता के साथ ही राज्यपाल ने नगा विद्रोहियों की इस बात को स्वीकार कर लिया कि समझौते को लागू करने के लिए ग़ैरक़ानूनी गतिविधियों से संबंधित अधिनियम (अनलॉफुल एक्टीविटीज़ एक्ट) स्थगित कर दिया जाये. समझौते की दिशा में सक्रिय पहल करने के लिए राज्यपाल ने नागालैंड शांति मिशन के लोगों को भी धन्यवाद दिया. 48 वर्षीय डा. आरम के नेतृत्व में नगालैंड शांति मिशन पिछले ग्यारह वर्षों से प्रदेश में शांति स्थापना के काम में लगा हुआ है. नगालैंड की बैप्टिस्ट चर्च के लोगों और शांति मिशन की कोशिशों से 30 सितंबर 1964 को विद्रोही नागा नेताओं और सरकार के बीच युद्धबंदी की घोषणा का समझौता हुआ था, जो 30 सितंबर 1972 तक चला था. समझौता समाप्त हो जाने के बाद जब संसद द्वारा भूमिगत नागाओं के संबंध में 'अनलाफुल एक्टीविटीज़ एक्ट' दो वर्ष के लिए लागू कर दिया गया तो भूमिगत नागाओं के साथ राज्य सरकार, चर्च कौंसिल और शांति मिशन के लोगों का 1964 से जो प्रत्यक्ष संपर्क था वह टूट गया था. प्रदेश में शांति स्थापना की दिशा में पहल करने के संबंध में नगा विद्रोहियों की एक प्रमुख माँग यह भी रही थी कि उक्त अधिनियम को समाप्त कर दिया जाये.

समझौते की शांतिपूर्ण उपलब्धि के बाद राज्यपाल ने विश्वास व्यक्त किया कि प्रदेश के लोग अब ऐसी स्थिति में हो जायेंगे कि वे शांति, समृद्धता और प्रगति की दिशा में अपना योगदान दे सकें.

समझौते के तत्काल बाद हालांकि राज्यपाल ने इस दिशा में कोई संकेत नहीं दिया कि भूमिगत नागाओं के साथ केंद्र सरकार की सहमति किन मुद्दों पर हुई है और यही कहा कि किन्हीं महत्त्वपूर्ण कारणों से समझौते की धाराओं की गोपनीयता बनाये रखना अनिवार्य है. पर जानकार सूत्रों के अनुसार समझौते की उपलब्धि का एक और प्रमुख कारण यह भी रहा है कि भूमिगत नागाओं द्वारा 'पृथक नगालैंड' जैसी माँग को बीच में नहीं लाया गया. शिलङ वार्ता से पूर्व ही भूमिगत नगाओं द्वारा शायद इस तरह का आश्वासन भी दे दिया गया था कि वे ऐसी कोई माँग नहीं उठायेंगे और नगा समस्या का समाधान भारतीय संविधान की मर्यादाओं के अंतर्गत ही करना चाहेंगे.

कश्मीर समस्या के शांतिपूर्ण समाधान के बाद नगालैंड के बारे में केंद्र द्वारा किया गया समझौता निश्चित ही एक बड़ी उपलब्धि है. पूर्ण राज्य का दर्जा मिलने के बाद पिछले 12 वर्षों में एक के बाद दूसरी सरकारों का आना जाना चलता रहा, पर भूमिगत नगाओं की समस्या का कोई समाधान नहीं निकल पाया.

जहाँ एक ओर लगातार दस वर्षों तक राज्य करने के बावजूद केंद्र समर्थित नगा राष्ट्रीय संगठन (नागालैंड आर्मनाइज़ेशन) की सरकार इस दिशा में कुछ ठोस नहीं हासिल कर सकी, वहीं अपने एक साल के कार्यकाल के दौरान भूमिगत नगाओं द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से समर्थित संयुक्त जनतांत्रिक मोर्चे की विज़ोल सरकार भी नगा नेताओं के साथ अपने मधुर संबंधों को केंद्र के साथ शांतिपूर्ण समझौते के लिए नहीं भुला सकी. विज़ोल सरकार के पतन के बाद जौन बोस्को जसूकी के नेतृत्व में मार्च 1975 में नागा राष्ट्रीय संगठन की सरकार कुछ दिनों के लिए फिर अस्तित्व में आयी पर दल बदल का सिलसिला ऐसा चलता रहा कि कोई भी सरकार ज़्यादा दिन नहीं चल सकी और प्रदेश में राष्ट्रपति शासन लागू करना पड़ा. भूमिगत नगाओं के साथ केंद्र सरकार का समझौता प्रदेश में राष्ट्रपति शासन के दौरान ही हुआ.

नये मंत्री

नये उत्तरदायित्व

30 नवंबर को प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने अपने मंत्रिमंडल में फेरबदल किया. इस फेरबदल में प्रतिरक्षामंत्री **सरदार स्वर्ण सिंह** और परिवहन तथा जहाज़रानी मंत्री **श्री उमाशंकर दीक्षित** के स्थान पर हरयाणा के मुख्यमंत्री **चौधरी बंसीलाल** और लोकसभा के अध्यक्ष **सरदार गुरदयाल सिंह ढिल्लों** को मंत्रिमंडल में शामिल किया गया. श्री ढिल्लों को परिवहन और जहाज़रानी विभाग के लिए मंत्रिमंडलीय स्तर का मंत्री नियुक्त किया गया है, जब कि श्री बंसीलाल के लिए अभी विभाग तय करना बाकी है. इन के अतिरिक्त दिल्ली प्रदेश के कांग्रेस अध्यक्ष **हरकिशन लाल भगत** को सार्वजनिक निर्माण का राज्यमंत्री और **श्री विट्ठल गाडगिल** को पेट्रोल और रासायनिक विभाग में राज्यमंत्री का कार्य सौंपा गया है. प्रसिद्ध वकील **डा. सैयद मोहम्मद** और **चौधरी रामसेवक** को क्रमशः क़ानून और कंपनी मामलों तथा स्वास्थ्य और परिवार नियोजन विभागों में राज्यमंत्री घोषित किया गया है. मंत्रिमंडल छोड़ने वाले अन्य मंत्रियों में पुनर्वास राज्यमंत्री **आर. के. खाडिलकर** और पेट्रोल रासायनिक मामलों के मंत्री **के. आर. गणेश** भी हैं.

सरदार स्वर्ण सिंह स्वतंत्र भारत में सब से अधिक समय तक मंत्रिमंडल स्तर के मंत्री रहे हैं. वह गणतंत्र भारत के पहले मंत्रिमंडल में 1952 में ही शामिल हुए. पिछले 23 वर्षों में इन्होंने विभिन्न विभागों को संभाला है जिन में महत्त्वपूर्ण विदेशी मामले और प्रतिरक्षा हैं. अपने त्यागपत्र में श्री स्वर्ण सिंह ने लिखा है कि वह काफ़ी समय से एक मंत्री का कार्य करते रहे हैं. और अब यही उचित समझते हैं कि दूसरे व्यक्तियों के लिए स्थान बना दिया जाये.

उमाशंकर दीक्षित ने अपने त्यागपत्र में लिखा है कि उन्होंने राज्यसभा के लिए दोबारा चुनाव न लड़ने का फ़ैसला किया है. उन की राज्यसभा की सदस्यता 1976 के आरंभ में ही समाप्त हो रही है. इसलिए उचित यही है कि वे मंत्री पद से त्यागपत्र दें. चारों मंत्रियों ने यह घोषणा की है कि उन्हें प्रधानमंत्री द्वारा उठाये गये कदमों और उन की नीतियों में पूरा पूरा विश्वास है और श्रीमती गांधी के नेतृत्त्व में आस्था है. प्रधानमंत्री ने इस बात की आशा व्यक्त की है कि इन कार्यमुक्त मंत्रियों के अनुभव और कौशल का उपयोग राष्ट्र आगे भी करता रहेगा.

प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने फ़िलहाल प्रतिरक्षा विभाग स्वयं संभालने का फ़ैसला किया है. सार्वजनिक निर्माण और आवास मंत्री के. रघुरमैया को अस्थायी रूप से आपूर्त्ति और पुनर्वास विभाग का कार्य संभालने को कहा गया है. इसी विभाग के उपमंत्री दलबीर सिंह फ़िलहाल परिवहन और जहाजरानी विभाग का कार्य देखेंगे. इन परिवर्त्तनों के कारण केंद्रीय मंत्रिमंडल में मंत्रियों की संख्या 15 ही रह गयी है जब कि राज्यमंत्रियों की संख्या 22 से 24 तक पहुँच गयी है. चौधरी बंसीलाल को छोड़ कर सभी नये मंत्री संसद सदस्य हैं.

बंसीलाल के केंद्र में आने के कारण हरयाणा के नये मुख्यमंत्री के रूप में **श्रीबनारसी दास गुप्त** ने शपथ ली है. श्री गुप्त ने मंत्रिमंडल में फ़िलहाल कोई परिवर्तन न करने का फ़ैसला किया है. यदि उन्हें परिवर्तन करने की ज़रूरत महसूस हुई तो वह हरयाणा विधानसभा द्वारा विधिवत विधानमंडलीय नेता निर्वाचित होने के बाद ही होगा.

तलाक़

मुस्लिम स्त्री सम्मेलन

मुस्लिम सत्यशोधक समाज की प्रेरणा से तलाकशुदा मुस्लिम औरतों का एक विशेष सम्मेलन पुणे में श्रीमती नजमा शेख की अध्यक्षता में संपन्न हुआ. परिषद् का उद्घाटन प्रो. कुलसुम पारेख, राजनीतिशास्त्र एवं इतिहास की प्राध्यापिका इस्माईल यूसुफ़ कालेज, बंबई ने किया.

तलाक की मारी मुस्लिम स्त्री परिषद् का उद्घाटन करते हुए प्रो. कुलसुम पारेख ने कहा कि आज मुस्लिम इतिहास में पहली बार मुस्लिम औरतें इस सार्वजनिक मंच पर एकत्र हुई हैं. यह क्रांतिकारी घटना है.

उन्होंने कहा कि तलाक़ ज़रूरी है इस में कोई शंका नहीं है लेकिन तलाक़ की बुनियाद मानवता की नींव पर होनी चाहिए. आज हमारे समाज में जो तलाक़ विषयक ग़लत धारणाएँ बनी हैं, उन का सामना मुस्लिम बहनों को करना चाहिए. मुस्लिम भाई अपना क़ानून ही सर्वश्रेष्ठ समझते हैं, लेकिन मैं यह कहना चाहती हूँ कि हमारे मुस्लिम क़ानून से हमारी औरतें 14 सौ वर्ष पीछे रह गयी हैं, जब कि हिंदू औरतें हिंदू क़ानून के कारण बहुत आगे बढ़ गयी हैं.

मुस्लिम भाई कहते हैं कि दूसरे समाज के लोगों को हमारे समाज के मामलों में दखल नहीं देना चाहिए, यह बिल्कुल ग़लत है, क्योंकि अगर 5 करोड़ मुस्लिम औरतें जानवर की तरह जीवन गुज़ारेंगी तो उस का बुरा प्रभाव समाज के दूसरे वर्गों पर भी पड़ेगा. तथा अन्य समाजों की 35 करोड़ स्त्रियाँ भी इस से प्रभावित होंगी. इस लिए दूसरे समाज के लोगों को यह अधिकार है कि वे हमारे समाज की अच्छाई तथा बुराई बतायें.

उन्होंने आगे कहा कि तलाक़ पीड़ित मुस्लिम औरत आज समाज में बुरी मानी जाती है तथा उस की फिर से शादी होना बहुत कठिन है. इसी कारण उस की संतान बेसहारा हो जाती है. हमारे बच्चों को हमारे समाज की ग़लत बातें बचपन में ही बतायी जाती हैं और वे उन पर बचपन से भरोसा करते हैं. इसलिए

राष्ट्रपति भवन (1 दिसंबर) शपथग्रहण समारोह (बायें से) सर्वश्री बंसीलाल, एच. के. एल. भगत, गुरदयालसिंह ढिल्लों तथा शपथ दिलाते राष्ट्रपति.

श्रीमती गांधी द्वारा प्राथमिक अध्यापक सम्मेलन का समापन : 'नींव मजबूत होनी चाहिए'

उन के ग़लत मानसिक विचारों को दूर करने के लिए निधर्मी स्कूलों की आवश्यकता है. इस लिए मुस्लिम सत्यशोधक मंडल ऐसे स्कूल खोलने में सहायता दे. प्रो. कुलसुम पारेख ने एक 60 वर्षीय पति और 20 वर्षीय पत्नी का हाल सुनाते हुए कहा कि पति ने यह कह कर पत्नी को छोड़ दिया कि उसे सलवार पहनने वाली पत्नी पसंद नहीं है. बाद में उस ने एक अन्य 16 वर्षीय साड़ी पहनने वाली लड़की से शादी कर ली. पहली पत्नी को विवश हो कर एक और बूढ़े से शादी करनी पड़ी.

अध्यक्षीय भाषण में श्रीमती नजमा शेख ने कहा कि पहले मुसलमानों को युद्ध के कारण चार चार शादियों की आवश्यकता थी, लेकिन आज नहीं है. आज सिर्फ़ एक पत्नी की ही आवश्यकता है.

सम्मेलन में जब एक स्त्री बोलने खड़ी हुई तो उस से कुछ बोला ही न गया. उस की दुख भरी कहानी को एक अन्य स्त्री ने सुनाया. तीन सौ से अधिक स्त्रियाँ अपनी ही एक बहन का हाल सुन कर विहवल हो उठीं. मुस्लिम सत्य शोधकमंडल के नेताओं ने अमानवीय तलाक़ पद्धति के खिलाफ़ एक आंदोलन चलाया है जिस का नाम एक जहाद तलाक है.

21 वर्षीय बेगम नजमा शेख यह कहते रो पड़ीं कि उन के कमज़ोर पति ने चार वर्ष पहले उन्हें तलाक दे दिया था लेकिन उन्हें किसी ने आज तक कोई काम नहीं दिया जब कि उन के पास प्रशिक्षण योग्यता का प्रमाणपत्र भी है.

श्रीमती शाहजहाँ की कहानी यह है कि उन के टैक्सी ड्राइवर पति ने चालचलन खराब होने का आरोप लगा कर उन्हें तलाक़ दे दिया. उस ने फिर एक ऐसी औरत से शादी कर ली जिस ने शादी के पहले ही एक लड़के को जन्म दे दिया था.

तलाक पीड़ित मुस्लिम स्त्री सम्मेलन में निम्नलिखित प्रस्ताव पास किये गये :—

मुस्लिम समाज में आज जो क़ानून प्रचलित है वह समाज की आवश्यकता को पूर्ण नहीं कर सकता है. उस में तलाक़, बहुपत्नीप्रथा तथा जो संपत्ति अधिकार बच्चों को प्राप्त हैं वह अन्यायपूर्ण हैं. इस लिए इस क़ानून को शीघ्र समाप्त करना अनिवार्य है. आज मुस्लिम औरतों को क़ानूनी अधिकार प्रथा सुरक्षा प्राप्त होनी चाहिए. उन्हें उन के अधिकार मिलने चाहिए. इसी की आज आवश्यकता है. इस लिए समान नागरिक क़ानून तुरंत जारी करना चाहिए. इस से राष्ट्रीय एकता की भावना पैदा होगी तथा मुस्लिम औरतों पर हो रहे अन्याय समाप्त होंगे.

प्रस्ताव में यह भी कहा गया है कि आज जो ज़ुबानी या इकतरफ़ा तलाक़ दिया जाता है वह समाप्त किया जाये. जिन विवाहित दंपति को विवशता के कारण तलाक़ देना पड़ता है वह कोर्ट द्वारा ही हो तथा एक पत्नीत्व संबंधी क़ानून मुसलमानों पर भी लागू हो. पहली पत्नी के जीवित रहते हुए यदि दूसरी शादी की जाती है तो उसे गुनाह समझा जाये.

बिना कारण तलाक़ देने के कारण मुस्लिम स्त्री समाज में बदनाम होती है. इसी लिए पति की ओर से उसे विशेष क्षतिपूर्ति दी जाये तथा उस की जब तक शादी न हो तब तक भरणपोषण का पूरा प्रबंध किया जाये.

तलाक़ पीड़ित स्त्रियाँ समाज का दुर्बल अंग हैं इस कारण सरकारी नौकरियों में तथा स्वतंत्र व्यवस्थाओं में भी उन्हें प्राथमिकता दी जाये तथा उन के बच्चों की शिक्षा तथा रहने का प्रबंध सरकार तथा शिक्षा संस्था की ओर से किया जाये.

ट्रस्ट का पैसा समाज का पैसा है उस में से दस करोड़ रुपया तलाक़ पीड़ित मुस्लिम स्त्रियों के उद्धार के लिए रखा जाये तथा इन स्त्रियों को व्यावसायिक शिक्षा उपलब्ध करायी जाये.

तलाक पीड़ित महिला परिषद् के संयोजक पुणे के मुस्लिम सत्यशोधक मंडल के कार्यकर्ता श्री सैयद भाई थे.

शिक्षा

समाज के प्रति जागरूकता

प्रधानमंत्री **श्रीमती इंदिरा गांधी** ने शिक्षा-शास्त्रियों से अनुरोध किया है कि वे शिक्षा को जीवनोन्मुख बना कर देश के युवकों को राष्ट्रीय पुनरुत्थान की ओर प्रेरित करें. उन्होंने शिक्षा को समाज के प्रति अधिक उत्तरदायी और जागरूक बनाने पर ज़ोर दिया है.

प्रधानमंत्री ने 28 नवंबर को नयी दिल्ली में आयोजित केंद्रीय शिक्षा परामर्श बोर्ड के 38वें सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए कहा कि मैं इस बात से सहमत हूँ कि शिक्षा को देश की आयोजना में प्राथमिकता देनी चाहिए. उन्होंने इस क्षेत्र के विकास के लिए आर्थिक स्रोतों को खोज निकालने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया क्योंकि धनाभाव के कारण शिक्षा के विकास में बाधा नहीं आनी चाहिए. इस संदर्भ में प्रधान-मंत्री ने कहा कि यह धारणा सही नहीं है कि शिक्षालयों के लिए बड़ी बड़ी इमारतें ज़रूरी हैं. मगर स्कूलों और कालेजों में उपयुक्त और ज़रूरी सामान होना ही चाहिए. अधिक से अधिक उपकरण स्थानीय ढंग से प्राप्त किये जायें तो ज़्यादा अच्छा है. श्रीमती गांधी ने शिक्षाविदों को सुझाव दिया कि शिक्षा के लिए जो कोई भी योजना बनायी जाये उसे रूढ़ न होने दिया जाये ताकि उस में सुधार और प्रयोग की भावना बनी रहे. गत वर्षों में कई शिक्षा संस्थाओं और शिक्षा सुधारकों ने शिक्षा को हमारी आवश्यकताओं के अनुरूप बनाने के लिए काफ़ी काम किया है. हमें पश्चिम से वहाँ के अनुभवों को सीखना तो चाहिए मगर उसे अपनी संस्कृति और मनोविज्ञान के अनुरूप परिवर्तित करना होगा. इस सिलसिले में आदिम जन-जातियों की संस्कृतियों को इतना महत्त्व देना चाहिए कि ये जातियाँ राष्ट्रीय मुख्यधारा में शामिल हो जायें. श्रीमती गांधी के अनुसार मानव मन में एक उथलपुथल मची हुई

जिस के कारण नया सामाजिक विकास—सभी लोगों के बीच भ्रातृभाव पैदा हो गया है. इस भावना को मानवीय आधार पर स्वीकार करना चाहिए.

श्रीमती गांधी ने कहा कि हमारे देश में 9 करोड़ बच्चे स्कूल जाते हैं. यदि शिक्षाव्यवस्था को लचीला बनाया जाये तो इस संख्या को बढ़ाया जा सकता है.

इस अवसर पर शिक्षामंत्री **प्रो. नुरुल हसन** ने अगले दो या तीन वर्षों के लिए एक आठ सूत्रीय कार्यक्रम पर प्रकाश डाला. उन्होंने इस संभावना पर भी ज़ोर दिया कि शिक्षालय और अन्य शिक्षा संस्थानों की अपनी आय का स्रोत बढ़ाया जाय. इस कार्यक्रम का एक सूत्र गरीब और पिछड़े वर्गों के बच्चों को उच्चस्तरीय माध्यमिक और उच्चमाध्यमिक शिक्षा प्रदान करना भी है.

इस से पूर्व 24 नवंबर को अखिल भारतीय प्राथमिक अध्यापक सम्मेलन के समापन समारोह में भाषण देते हुए प्रधानमंत्री श्रीमती गांधी ने कहा कि नये भारत की मज़बूत नींव संपन्न परंपरा और संस्कृति पर आधारित है. यह नींव और भी मज़बूत बनेगी अगर इसे नये दृष्टिकोणों से पुष्ट किया जाये. श्रीमती गांधी के अनुसार एकता का अभाव और प्रगति के प्रति उदासीनता देश के रास्ते की बाधाएँ रहेगी. अब जब कि भारत आज़ाद हो गया है, हमें अपने संघर्ष को भूलना नहीं चाहिए. इस तथ्य को उचित महत्त्व नहीं दिया गया और छात्र इस गलत धारणा में पड़ गये कि हिंसा ही ताक़त है. प्रधानमंत्री ने कहा कि दुनिया में कोई दो प्रजातंत्र एक जैसे नहीं हैं और भारत को अपना अस्तित्व अक्षत रखना चाहिए. आपात स्थिति ने वह अनुशासन पैदा कर दिया है जिस की पहले भी ज़रूरत थी. मगर हम सब का यह कर्त्तव्य है कि हम देखें कि यह अनुशासन जनता की ज़िंदगी का हिस्सा बनता है और राष्ट्र की आदत. उन्होंने कहा कि देश में बहुत बड़ा परिवर्त्तन आया है मगर अभी और भी परिवर्त्तन की ज़रूरत है. प्रधानमंत्री ने जनता को देश के इर्दगिर्द बढ़ने वाले दबावों और तनावों के प्रति सचेत किया.

प्राथमिक शिक्षकों की माँगों का वर्णन करते हुए प्रधानमंत्री ने कहा कि इस सिलसिले में राज्यों को पूरे अधिकार हैं. मगर केंद्रीय सरकार को एक ढाँचा तैयार करना चाहिए जिस के आधार पर राज्य सरकारें कार्य करें.

अखिल भारतीय प्राथमिक शिक्षक सम्मेलन का उद्घाटन 22 नवंबर को नयी दिल्ली में शिक्षा के उपमंत्री **डी. पी. यादव** ने किया. 10वें अखिल भारतीय अधिवेशन में श्री यादव ने अध्यापकों से अनुरोध किया कि वे देश की आर्थिक और सामाजिक प्रगति के लिए कठिन परिश्रम करें. 64 हज़ार प्राथमिक शिक्षकों के सामने बोलते हुए राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद के निदेशक **प्रो. रईस अहमद** ने अपने भाषण में कहा कि अधिकारियों के सामने एक प्रस्ताव है जिस के अनुसार प्रथम से 10वीं कक्षा तक भारतीय स्कूलों में विज्ञान को देश की आवश्यकताओं के अनुरूप अनिवार्य बनाया जाय. इस अवसर पर शिक्षक महासंघ के महामंत्री जगदीश मिश्र ने बताया कि संपूर्ण देश में प्राथमिक शिक्षा में एकरूपता होना ज़रूरी है. उन्होंने कहा कि शिक्षक इस बात से भी चिंतित हैं कि 83 प्रतिशत बच्चे प्राथमिक शिक्षालयों में जाते हैं मगर 11 वर्ष की आयु तक पहुँचते पहुँचते 60 प्रतिशत पढ़ाई छोड़ देते हैं.

केंद्रीय शिक्षा परामर्श बोर्ड ने शिक्षा के लिए अतिरिक्त साधन जुटाने के लिए एक शिक्षा अधिशुल्क का सुझाव दिया है. अपने दो दिन के सम्मेलन में इस बोर्ड ने यह सुझाव दिया है कि संपूर्ण शिक्षा पद्धति को आधुनिक और नयी धारणाओं के अनुरूप परिवर्तित किया जाये. इस सिलसिले में शिक्षा की स्थायी समिति को ठोस प्रस्ताव पेश करने को कहा गया है.

आर्थिक कठिनाइयों के सिलसिले में बोर्ड के सचिव श्री जे. पी. नाईक ने कहा कि स्वतंत्रता के बाद कभी भी ऐसा समय नहीं आया जब कि शिक्षा पद्धति को इस प्रकार के आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा हो. इस संकट के बावजूद यह जागरूकता पहले से कहीं अधिक है कि निरक्षरता को समाप्त किया जाये. इसलिए एक ऐसा समय आ गया है जब कि राष्ट्र को वर्तमान शिक्षा के ढाँचे पर पुनर्विचार करना चाहिए. बोर्ड ने यह महसूस किया है कि यदि शिक्षा के लिए निर्धारित राशि में वृद्धि नहीं की गयी तो कठिनाई महसूस होगी. इसने सुझाव दिया है कि केंद्रीय और राज्य सरकारें पाँचवीं पंचवर्षीय योजना के शेष तीन वर्षों के लिए अधिक साधन जुटायें ताकि उन का अधिक से अधिक उपयोग किया जा सके. इस संदर्भ में इस बात पर भी चिंता की गयी कि शिक्षा सर्वेक्षण ने यह सिद्ध किया है कि 6 से 11 और 11 से 14 वर्ष के आयुवर्गों में 1973-74 के दौरान छात्रों की भर्ती में कमी आ गयी है. इस झुकाव को रोकना ज़रूरी है क्यों कि इस आयुवर्ग में ही आगे की शिक्षा की नींव पड़ती है.

जयप्रकाश नारायण

स्वास्थ्य लाभ

बंबई के जसलोक अस्पताल में भरती ज.प्र. के स्वास्थ्य में लगातार सुधार हो रहा है. वह पिछले 12 नवंबर को चंडीगढ़ से पेरोल पर रिहा किये गये थे. पहले वह चंडीगढ़ से सीधे बंबई आने वाले थे पर बाद में वहाँ से दिल्ली होते हुए बंबई आये. भूतपूर्व केंद्रीय जहाजरानी मंत्री उमाशंकर दीक्षित इस बीच उन से मिलने बंबई गये. उन्हें ज.प्र. का हालचाल जानने के लिए प्रधानमंत्री ने विशेष रूप से भेजा था.

दिल्ली के अखिल भारतीय चिकित्सा संस्थान में ज.प्र. की जाँच करने वाले डॉक्टरों ने पाया कि उन का गुर्दा कमजोर हो गया है और इस वजह से उन के ख़ून में पेशाब जाने लगी है. दूषित ख़ून के ही कारण उन के शरीर, खासतौर से चेहरे पर सूजन बनी रहने लगी थी. उन्हें ठीक तरह से भूख भी नहीं लगती थी. तथा बीच-बीच में विस्मृति के लक्षण भी दिखते थे.

22 नवंबर को वह हवाई जहाज से बंबई आये. हवाईअड्डे पर लोगों ने उन का स्वागत किया. 23 नवंबर को जसलोक अस्पताल में उन की फिर जाँच की गयी. 24 को उन का एक आपरेशन किया गया जिस के आधार पर 25 तारीख को उन के शरीर से कृत्रिम गुर्दा मशीन जोड़ी गयी. मशीन ने कमजोर हो चुके गुर्दे की जगह ली और सुबह से शाम तक

जयप्रकाश नारायण : 'हाँ, कुछ ठीक हूँ'

दूषित रक्त की सफाई की. शाम को मशीन हटा लेने के बाद उन्हें सतत निगरानी में रखा गया.

26 नवंबर से दिन में दो बार, दोपहर 11 बजे और शाम 8 बजे उन के स्वास्थ्य संबंधी बुलेटिन जारी किये जाने लगे हैं. नियमित बुलेटिनों के अनुसार उन के स्वास्थ्य में बराबर सुधार हो रहा है. जसलोक अस्पताल के निदेशक डॉ. शांतिलाल मेहता के अनुसार जी मिचलाने की उन की शिकायत में कमी आती जा रही है, कुछ भूख भी लगने लगी है और नींद भी ठीक आ रही है. फीकी काफ़ी, उपमा, दही जैसी चीज़ों के अलावा ज.प्र. ने इस बीच माँस से बनी हुई कुछ चीज़ें भी ली हैं. बरसों पहले वह माँस खाना छोड़ चुके थे.

चंडीगढ़, दिल्ली और अब बंबई में उन से मिलने वालों की सूची में ढेर सारे सर्वोदय कार्यकर्त्ताओं के अलावा सर्वश्री एन. जी. गोरे, गंगाशरण सिंह, आचार्य कृपलानी, श्रीमती सुशीला नैयर, श्रीमती लक्ष्मीकांत झा, ए. के. गोपालन, बाबूभाई पटेल, छागला, अच्युत पटवर्धन, पालकीवाला, संजीव रेड्डी, मज़दूर नेता वी. बी. कुलकर्णी, महाराष्ट्र और तमिलनाडु के कुछ मंत्री तथा विदेशमंत्री श्री चव्हाण भी शामिल हैं.

प्रदेश

तमिषनाडु

सुरक्षा शिविर में

गुमशुदा की तलाश के लिए प्रायः रोज ही दैनिक पत्रों में गुम हो गये व्यक्तियों की तस्वीरें प्रकाशित होती हैं. कल्पना कीजिए कि कोई लड़का गुम हो कर या भाग कर भटकता हुआ मद्रास जा पहुँचा हो और रात में वहाँ की सड़कों के किनारे सोया या घूमता हुआ पकड़ा गया हो और उसे मेलापक्कम शिविर में ले जा कर रख दिया गया हो फिर आप उस का पता कैसे पायेंगे? मेलापक्कम भिखारी सुरक्षा जैसे शिविर अन्य राज्यों में भी होंगे. लेकिन मेलापक्कम शिविर में पिछले दिनों हुई जिन मौतों के समाचार मिले उन से यह आशंका होती है कि वहाँ की व्यवस्था में कहीं न कहीं गड़बड़ी जरूर है. भिखारियों, भटके हुए लोगों, बिना टिकट यात्रा करते हुए पकड़े गये यात्रियों का शरणस्थल मेलापक्कम केंद्र मद्रास से 25 मील दूर स्थित है. वहाँ जो मौतें हुईं वे सुरक्षा व्यवस्था के नाम के सामने एक बहुत बड़ा प्रश्नचिन्ह लगाती हैं. 25 नवंबर को जब मृत्यु का यह समाचार प्रकाश में आया तो अनेक लोगों ने इस शिविर को तमिषनाडु के 'काले पानी की संज्ञा दी' और वहाँ की व्यवस्था पर छींटाकशी की.

इस शिविर में 25 नवंबर, '75 तक, अर्थात् एक वर्ष में 131 व्यक्तियों की मृत्यु हुई. 25 नवंबर के पहले वाले हफ़्ते में 14 लोग मरे. राज्य सरकार के समाजकल्याण विभाग के अधिकारी से पूछने पर पता चला कि इस वर्ष 90 लोगों की मृत्यु शिविर में और 40 लोगों की विभिन्न सरकारी अस्पतालों में हुई.

अक्तूबर, 1973 तक इस शिविर की देखरेख राज्य के पुलिस महानिरीक्षक के अंतर्गत होती थी. उस के बाद शिविर निदेशक समाज कल्याण (समाजकल्याण विभाग नहीं) की देखरेख में संचालित होता रहा है. तमिषनाडु भिखारी सुरक्षा क़ानून 1945 के अंतर्गत पकड़े गये भिखारियों को एक वर्ष की अवधि तक रखने का प्रावधान है. चालू वर्ष में इस शिविर में 1031 लोगों को रखा गया. इस समय शिविर की व्यवस्था का भार एक पुलिस अधीक्षक पर है, जिन के अधीन एक सब-कांस्टेबल, 5 मुख्य कांस्टेबल और 20 कांस्टेबल हैं. इस वर्ष शिविर में रखे गये लोगों में 25 से 40 वर्ष की आयु वर्ग के 15, 40 से 50 वर्ष के 30, 50 से 70 वर्ष के 56 तथा 70 से 90 वर्ष की आयु वर्ग के 30 लोगों की मृत्यु हो गयी. डॉक्टरों के अनुसार मौत का कारण कई बीमारियाँ बतायी गयीं जिन में क्षयरोग से 1, गैस्ट्रो इंट्राइटिस से 2, हृदयगति रुक जाने से 13, यूरेनिया से 8 और हृदयगति रुक जाने से 29 तथा रक्ताल्पता से 1 व्यक्ति की मृत्यु हुई. इस समय शिविर में 454 व्यक्ति हैं, जिन में 92 औरतें और 6 बच्चे भी शामिल हैं. '73 और '74 में हुई मौतों की संख्या 20 थी. इस वर्ष प्रारंभ से ही मौतों की संख्या अधिक रही—यानी जुलाई में 23, अगस्त में 15, सितंबर में 40, अक्तूबर में 20 और नवंबर में (25 तारीख तक) 23 रही.

शिविर के अंदर रखे गये प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन 1 रु. 60 पै. मूल्य तक की ख़ुराक देने की व्यवस्था है, जिस का अर्थ होता है लगभग 530 ग्राम तैयार भोजन एक समय में उपलब्ध कराना. लेकिन आम शिकायत यह पायी गयी कि इस पर ढंग से अमल नहीं किया जाता. कुछ लोगों के अनुसार 25 नवंबर के पहले के दो हफ़्तों में परिवार के लोगों को भोजन में केवल रागी दी जाती रही. लेकिन जो लोग यह भोजन पसंद नहीं कर पाते उन के लिए कठिन है. शिविर कार्यालय की ओर से जो बिल प्रस्तुत किया जाता है उस में लगभग सभी प्रकार की तरकारियों और खाद्य सामग्रियों का उल्लेख रहता है. तरकारियों में विशेष कर टमाटर, सेम और केले आदि का उल्लेख रहता है. यदि वहाँ के निवासियों की आम शिकायत कोई अर्थ रखती हो और यदि इतनी बड़ी संख्या में हुई मौतें कोई इतर संकेत देती हों तो संबंधित अधिकारियों के लिए यह जरूरी हो जाता है कि वह यह विश्वास दिलायें कि क़ानूनी तौर पर खानपान की जो व्यवस्था वहाँ के लोगों के लिए है उस का ठीक ढंग से पालन किया जाता रहा है. ध्यान देने की बात यह भी है कि जब से शिविर में रागी भोजन की व्यवस्था की गयी वहाँ पर तैनात अधिकारियों ने शिविर में भोजन करना लगभग बंद कर दिया. शिविर के लोगों को गुटों में भोजन कराने की व्यवस्था यों समझ में नहीं आती कि क्यों अधिकारी इस बात पर निरंतर बल देते रहे कि भोजन करने वाले पाँच-सात मिनट में ही भोजन क्रिया समाप्त कर दें. एक प्रत्यक्षदर्शी ने बताया कि कुछ बीमार व्यक्ति शयनागार में पड़े हुए थे, लेकिन वे अस्पताल इस लिए नहीं ले जाये जा सके थे कि शिविर के काम में आने वाली गाड़ी खराब पड़ी थी. शिविर में रहने वाले अधिसंख्य लोग यह चाहते हैं कि उन के नाम बीमारों की सूची में लिखे जायें. वे ऐसा इस लिए चाहते हैं कि अस्पताल में जा कर वहाँ से भागने का मौका पा सकें. अब बीमारों को अस्पताल ले जाया जाता है और वे शहर के विभिन्न अस्पतालों में मरती कर दिये जाते हैं.

व्यवस्था संबंधी गड़बड़ी की शिकायतों की सूची लंबी है. उदाहरण के लिए शिविर में एक व्यक्ति को पहनने के लिए तीन कपड़े और दो चादरें दिये जाने का प्रावधान है. शिविर के लोगों के बदन पर जो कपड़े थे उन्हें देख कर तो यह आभास ही नहीं होता कि उन में महीनों से साबुन लगा हो. दूसरे यह कि ज्यादातर लोगों के बदन पर वे कपड़े नहीं देखे गये जो शिविर द्वारा दिये गये हों. वे कपड़े उन 30 व्यक्तियों के बदन पर ज़रूर थे जो यहाँ मैस्ट्रीज के नाम से जाने जाते हैं. शिविर का स्नानगृह भी अपेक्षाकृत अधिक गंदा पाया गया. शिविर के लोगों को वॉलीबॉल, कबड्डी आदि खेल खेलने की छूट है, लेकिन ऐसी कोई गतिविधि वहाँ दिखायी नहीं दी. बुनाई, सिलाई, बढ़ईगिरी आदि का काम करने वालों की भी संख्या बहुत कम है. ऐसा नहीं है कि इस शिविर में केवल भिखारियों को ही रखा जाता हो. पकड़े गये लोगों में पश्चिम बंगाल के मुर्शिदाबाद ज़िले की दसवीं कक्षा का एक छात्र भी है जिस का नाम अशरफ़ अली है. वह पाँच महीने पहले तमिषनाडु घूमने के लिए आया था. उस के पास जो सामान और रुपये थे उसे कुछ लोगों ने चुरा लिया था. उस के बाद वह इस शिविर में भेज दिया गया.

शिविर में 6 ऐसे व्यक्ति भी हैं जो धाराप्रवाह अंग्रेज़ी बोलते और लिखते हैं.

तमिषनाडु भिखारी सुरक्षा क़ानून 1945 के अनसार पकड़े गये भिखारियों तथा अन्य लोगों के लिए क़ानूनी तौर पर एक पोस्टकार्ड दिये जाने का नियम है, ताकि वे अपने संबंधी को वहाँ होने की सूचना दे सकें. अधिकारियों द्वारा दी गयी यह जानकारी दिलचस्प हो सकती है कि शिविर के कितने लोगों ने पोस्टकार्ड प्राप्त कर के अपने-अपने संबंधियों को वहाँ की सूचना दी. इस शिविर में रखे गये बहुत से लोग दिल्ली, बंबई तथा अन्य दूरदराज़ के शहरों के भी हैं.

तमिषनाडु की द्रमुक सरकार वैसे भी गरीबों और वंचितों का अधिक हमदर्द होने का दावा करती रही है. उसने रिक्शाचालकों को रिक्शे दे कर तथा निचले तबके के अनेक लोगों को विभिन्न किस्म की सुविधाएँ दे कर अपनी भावना का परिचय दिया है, लेकिन यदि उसी राज्य में एक शिविर में इस तरह की शिकायतें सुनने को मिलती हैं और वहाँ की व्यवस्था के जिम्मेदार लोगों पर गड़बड़ियाँ करने के संदेह किये जाते हैं तो वैसी स्थिति में और भी ज़रूरी हो जाता है कि द्रमुक सरकार इस की वास्तविकता की जाँच पड़ताल करे. साथ ही उसें यह भी चाहिए कि शिविर में रखे गये जिन लोगों की मियाद पूरी हो गयी हो उन्हें वापस घर भेजने की न केवल व्यवस्था करे बल्कि उन लोगों को भी रिहा करे जो न तो भिखारी हैं और न ही किसी प्रकार के अपराधी.

...और अब तदर्थ समिति

30 नवंबर को अखिल भारतीय संगठन कांग्रेस समिति ने तमिषनाडु राज्य की पुरानी समिति को मुअत्तल कर दिया और उस के स्थान पर एक नयी तदर्थ समिति की स्थापना की, जिस का अध्यक्ष रामचंद्रन को नियुक्त किया गया. इस के साथ ही अखिल भारतीय समिति ने रामचंद्रन के क्षेत्राधिकारों को और बढ़ाते हुए उन्हें इस बात का अधिकार दे दिया कि वह समय-समय पर अपनी कार्यसमिति में जैसा चाहें फेर-बदल या पुनर्गठन कर सकते हैं.

राज्य में संगठन कांग्रेस के सत्ता कांग्रेस में विलय की स्थिति अब पहले से काफ़ी स्पष्ट हो गयी है; यानी अब अधिसंख्यक गुट सत्ताधारी कांग्रेस में विलय के पक्ष में है और अल्पसंख्यक गुट अपने गिने चुने सदस्यों के सहारे अब भी विरोध किये जा रहा है.

26 नवंबर को जब कार्यकारिणी समिति की एक बैठक बुलायी गयी तो 27 सदस्यों में से 16 सदस्यों ने और 19 ज़िला कांग्रेस समिति के अध्यक्षों में से 12 ने खले आम यह कहा कि अब हमें अपने अध्यक्ष पी. रामचंद्रन में कोई आस्था नहीं रही है, इस लिए हम अपने वरिष्ठ उपाध्यक्ष श्री महादेवन पिल्लाई को यह अधिकार देते हैं कि वह जल्दी से जल्दी प्रदेश संगठन कांग्रेस की आम सभा बुलाएँ, ताकि उन्हें पता चल सके कि हमारी पार्टी के अधिकांश नेताओं और कार्यकर्त्ताओं में सत्ता कांग्रेस में मिलने की कितनी इच्छा है.

जैसे ही इस कार्रवाई की सूचना रामचंद्रन को मिली उन्होंने अपने दो सचिवों को, जो कि विलय का पक्ष लेते रहे थे, पद से हटा दिया. लेकिन इसी बीच प्रसिद्ध अभिनेता शिवाजी गणेशन और पी. ककन ने भी विलय के पक्षधारियों का समर्थन करना शुरू कर दिया, जिस के फलस्वरूप महादेवन पिल्लाई का पलड़ा भारी और रामचंद्रन का पलड़ा कमज़ोर पड़ने लगा. इसी बीच विधानसभा के भूतपूर्व अध्यक्ष एस. चेला पंदियन ने बाक़ायदा एक वक्तव्य जारी कर दिया, जिस में यह कहा गया कि 'रामचंद्रन राष्ट्रविरोधी तत्त्वों के साथ समझौता कर रहे हैं.'

उधर रामचंद्रन ने अपना सिंहासन डाँवाडोल होते देख अपने उपाध्यक्ष महादेवन पिल्लाई को ही पद से हटा दिया. एक के बाद एक कर के सभी चोटी के नेताओं को पार्टी से अलग करने के फलस्वरूप तमिषनाडु की राजनीति में संगठन कांग्रेस की साख दिन व दिन घटने लगी. रामचंद्रन जहाँ एक ओर यह कहते रहे कि वह विभिन्न ज़िलों का दौरा अपने पूर्व निर्धारित कार्यक्रमानुसार करते रहेंगे वहीं दूसरी ओर विलय के पक्षधर नेता यह कहते रहे कि इस प्रकार के दौरों का अब कोई अर्थ नहीं रह गया है, क्यों कि विभिन्न ज़िलों के नेताओं को आम सभा की बैठक का आयोजन करके बुलाया जा सकता है और उन की राय प्राप्त की जा सकती है.

रामचंद्रन की हठधर्मी के कारण मुख्यमंत्री करुणानिधि भी काफ़ी असंतुष्ट हो गये और उन्होंने भी स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि अब उन की राज्य संगठन कांग्रेस की गतिविधियों में कोई दिलचस्पी नहीं रही. हाँ, यदि उस के कार्यकर्त्ता द्रमक पार्टी में शामिल होने के इच्छुक हैं तो उन का स्वागत है.

राज्य में एक स्थान पर महादेवन पिल्लाई की अध्यक्षता में एक बैठक होती है, तो दूसरे स्थान पर (एक दो मिनट के अंतराल पर) रामचंद्रन की अध्यक्षता में दूसरी. फिर वही आरोप और प्रत्यारोप का सिलसिला शुरू हो जाता है. एक दूसरे के अधिकार क्षेत्र को चुनौती दी जाती है, जिस के फलस्वरूप राज्य में संगठन कांग्रेस की साख और धाक घटती जा रही है.

बिहार

क़र्ज़ से मुक्ति

बिहार जैसे गरीब एवं पिछड़े राज्य में प्रधानमंत्री के बीस सूत्री आर्थिक कार्यक्रम के कार्यान्वयन एवं उस की सफलता की विशेष ज़रूरत है. राज्य की कुल आबादी के 74.46 प्रतिशत लोग गरीबी की सीमा रेखा के भीतर गुज़र बसर कर रहे हैं. खेती पर राज्य की 90 प्रतिशत आबादी आश्रित है, जिस में 33.3 प्रतिशत हिस्सा खेतिहर मज़दूरों का है. वे समाज के सब से अधिक शोषित प्रताड़ित हैं. न उन के रहने का ठौर है न खाने का ठिकाना. बीस सूत्री आर्थिक कार्यक्रमों की घोषणा से उन में फिर से नयी आशा का संचार हुआ है और नयी-नयी उम्मीदें बँधी हैं.

आर्थिक कार्यक्रम को सफल बनाने के क्रम में बिहार सरकार ने खेतिहर मज़दूरों एवं छोटे किसानों की दशा में सुधार के लिए अनेकानेक क़दम उठाये हैं. खेतिहर मज़दूरों के सामने कम मज़दूरी की समस्या बड़े ही विकराल रूप में रही है. अभी भी कहीं-कहीं उन्हें आठ दस घंटे की कड़ी मेहनत के बदले डेढ़ दो सेर खेसारी का सत्तू मिलता है, जिसे डॉक्टरों ने स्वास्थ्य के लिए हानिकर ठहराया हैं. राज्य सरकार ने मज़दूरी में सत्तू देने पर रोक लगायी है और खेतिहर मज़दूरों को सिंचित क्षेत्र में पाँच रुपये एवं असिंचित क्षेत्र में साढ़े चार रुपये न्यूनतम मज़दूरी दिलाने की घोषणा की है. मज़दूरों को पहले से मिलने वाली सुविधा में किसी तरह की कटौती नहीं की जायेगी. न्यूनतम मज़दूरी को लागू करने के लिए राज्य के कुल 587 प्रखंडों में से 120 प्रखंडों में कृषि श्रम निरीक्षकों की नियुक्ति की गयी है और बाक़ी प्रखंडों में जल्द ही श्रम निरीक्षकों की नियुक्ति हो जाने की संभावना है. तब तक के लिए मज़दूरी संबंधी विवादों की देखरेख का भार अंचलाधिकारी के ऊपर सौंपा गया है. किंतु कृषि मज़दूरी की समस्या को केवल प्रशासनिक स्तर पर नहीं सुलझाया जा सकता. इस के लिए गाँवों में सामाजिक राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं को विशेष सक्रिय होने की ज़रूरत है. अब तक मज़दूरी मज़दूर और किसानों के आपसी रिश्ते पर ही तय होती रही है. इस के अतिरिक्त मज़दूरों की मज़दूरी तय करने में मज़दूरों की माँग और पूर्त्ति एक महत्त्वपूर्ण कारक रहा है. अभी भी बिहार के जिन इलाक़ों में मज़दूरों की माँग के अनुपात में पूर्त्ति नहीं है दूसरे इलाक़े से आ कर मज़दूर खेती के मौसम में श्रम की पूर्त्ति करते हैं. उन इलाक़ों में अपेक्षाकृत अधिक मज़दूरी मिलती है. सिंचित इलाक़े में मज़दूरों को अधिक मज़दूरी देने की क्षमता भी किसानों में होती है और मज़दूर तरह-तरह के कामों में रोज़गार भी पाते हैं. इस लिए खेतिहर मज़दूरों की दशा में सुधार के लिए न्यूनतम मज़दूरी दिलाने के साथ उन के बीच फैली हुई बेकारी एवं अर्द्धबेकारी की समस्या को हल करने की प्राथमिक ज़रूरत है. यह तभी हो सकता है जब खेतों में सिंचाई की स्थायी व्यवस्था हो. अभी तक बिहार के कुल फ़सली क्षेत्र के 10 प्रतिशत में सिंचाई की स्थायी व्यवस्था हो पायी है. बरसात न होने पर सिंचाई के अभाव में फ़सल मारी जाती है. कभी अतिवृष्टि के कारण प्रलयकारी बाढ़ का शिकार होना पड़ता है.

खेतिहर मज़दूरों की दशा में स्थायी सुधार के लिए खेती पर से निर्भरता को कम कर के छोटे मोटे लघु कुटीर उद्योगों में लोगों को लगाना होगा. खेती से संबंधित व्यवसायों (मुर्गी पालन, सूअर पालन, मछली पालन एवं पशु पालन) को अपनाने के लिए सरकार को आर्थिक मदद करनी चाहिए. लेकिन इस के लिए सब से पहले ज़रूरी है कि उन के पास गाँवों में इतनी ज़मीन हो जिस पर वे व्यवसाय शुरू कर सकें. आपात्कालीन स्थिति के बाद राज्य सरकार इस दिशा में सचेष्ट है. उसने इस अवधि में हरिजन आदिवासियों के बीच सात लाख आवासीय भूखंड के पर्चों का वितरण किया है. भूमिहदबंदी अधिनियम के अंतर्गत तीन महीनों के भीतर 21 हज़ार एकड़ अधिशेष भूमि की अधिसूचना है और वर्तमान वित्तीय वर्ष में एक लाख एकड़ भूमि प्राप्ति होने की आशा है.

खेतिहर मज़दूर कर्ज़ के बोझ से लदा रहा है. एक बार कर्ज़ लेने भर की देर है, फिर तो इतनी कड़ी दर से साहूकारों द्वारा सूद वसूल की जाती है कि उस से मुक्ति 'अंतिम मुक्ति' के बाद भी नहीं मिलती और पुश्त दर पुश्त कर्ज़ का बोझ बढ़ता ही जाता रहा है. राज्य सरकार ने दो एकड़ तक वाले किसानों, ग्रामीण कामगारों एवं खेतिहर मज़दूरों तथा चार

एकड़ तक ज़मीन रखने वाले आदिवासियों को कर्ज़ से मुक्त करने के लिए अध्यादेश जारी किया है. सात बरसों से अधिक से बंधक रखी हुई ज़मीन किसानों को स्वतः वापस करने के लिए साहूकार अधिनियम, 1974 का प्रावधान है. इस से लाभ उठा कर बंधकदारों ने तीन महीने के भीतर अक्तूबर माह तक लगभग 4 हज़ार हेक्टेयर भूमि अपने क़ब्ज़े में किया है. क़ब्ज़े के सिलसिले में कहीं-कहीं से फ़ौजदारी की भी खबर आयी है, जो बहुत ही दुखद है. बंधकदार को ज़मीन पर कब्ज़ा दिलाने के लिए प्रशासन के अधिकारियों को और **अधिक** चुस्ती दिखाने की ज़रूरत है.

सरकार ने घोषणा की है कि राज्य में बंधक मज़दूरी प्रथा वर्त्तमान नहीं है. फिर भी **जनजाति अनुसंधान परिषद, अनुग्रह नारायण समाज शोध संस्थान** एवं कृषि श्रम सलाहकार समिति पर यह भार सौंपा गया है कि वे पता लगायें कि किसी और रूप में बंधक मज़दूरी की प्रथा मौजूद है या नहीं.

राजस्थान

सम्मेलन में माँग

पटना में अंतरराष्ट्रीय फ़ासीवाद विरोधी सम्मेलन के पहले अन्य कई राज्यों की तरह राजस्थान में भी राज्य प्रखंड और ज़िला स्तर पर अनेक सम्मेलन हुए. राज्य सम्मेलन जयपुर में हुआ. इन सम्मेलनों में कांग्रेस जनों ने स्वभावतः और भारतीय कम्युनिस्टों ने अंतरराष्ट्रीय क्षितिज के वृहद आकाश से हट कर फ़ासीवाद से स्थानिक अर्थों को पहचानने की कोशिश की. भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के महासचिव श्री राजेश्वर राव ने कहा कि स्वाधीनता और जनतंत्र की रक्षा के लक्ष्य में कांग्रेस और कम्युनिस्ट पार्टी एक दूसरे के साथ है और वे कंधे से कंधा मिला कर काम करेंगे. इन दोनों ही दलों में इस लक्ष्य के प्रति कोई मतभेद नहीं है.

आनंद मार्गियों पर देश के बड़े नेताओं की हत्या की साज़िश का आरोप लगाते हुए श्री राव ने आनंद मार्ग के अलावा राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ को देश में फ़ासीवादी शक्तियों के रूप में रेखांकित किया, जब कि राजस्थान के मुख्य-मंत्री हरिदेव जोशी ने धर्म और सांप्रदायिकता का सहारा ले कर राजनीति में आने वालों को फ़ासीवादी शक्ति बता कर कहा कि फ़ासीवादियों से बचने के लिए बलिदान करना ज़रूरी है और 20 सूत्रीय आर्थिक कार्यक्रम को पूरा करने में योग देना होगा.

केंद्रीय उपमंत्री श्री जगन्नाथ पहाड़िया ने विषमता को फ़ासीवाद का मूल आधार बताते हुए माँग की कि शहरी संपत्ति की अधिकतम सीमा निर्धारित की जाये. इस के बाद ही आर्थिक विषमता समाप्त होगी. जब तक यह नहीं होता तब तक वर्ग भेद भी समाप्त नहीं होगा.

सम्मेलन ने 20 सूत्री आर्थिक कार्यक्रम को सफल करने के लिए फ़ासीवाद विरोधी आम जनता का उस में सक्रिय भाग लेना ज़रूरी समझा और माँग की कि आर्थिक कार्यक्रम के कार्यान्वयन का काम नौकरशाही के भरोसे पर न छोड़ा जाये. फ़ासीवाद विरोधी अध्यापकों ने विश्वविद्यालय तथा सरकारी और ग़ैर-सरकारी शिक्षण संस्थाओं और फ़ासीवाद की पहचान की ओर प्रस्ताव में कहा कि जमायते इस्लामी, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और आनंद मार्ग से संबद्ध अध्यापकों और कर्मचारियों को शिक्षण संस्थाओं से निष्कासित किया जाये.

राजस्वमंत्री श्री परसराम मदरेणा ने प्रति-व्यक्ति कृषि भूमि की अधिकतम सीमा तय करने वाले क़ानून पर अमल की भूमिका का ज़िक्र किया और कहा कि राज्य सरकार ने जोत का क़ानून ठीक तरह से लागू करने में स्थानीय स्तर पर समितियों का निर्माण करने की आवश्यकता का अनुभव किया. फलस्वरूप राज्य भर में 800 समितियाँ बनेंगी, जिन में साढ़े नौ हज़ार से ज़्यादा सरकारी और ग़ैर-सरकारी सदस्य होंगे.

प्रदेश फ़ासीवाद विरोधी सम्मेलन में जोत की पूर्व निर्धारित सीमा को अमल में लाने की बात हुई. इस से 24 घंटा पहले संपन्न हुए जयपुर ज़िला फ़ासीवाद सम्मेलन ने कहा कि जोत की निर्धारित सीमा को और घटाया जाये. बड़े ज़मींदारों के पास निर्धारित से अधिक जो भूमि है उस भूमि में से आधी भूमिहीन किसानों को दिलवायी जाये.

सम्मेलन के मौक़े पर एक दुर्घटना हुई. जोधपुर के नेता श्री राधाकृष्ण बोहरा 'तात' प्रतिनिधि बन कर आये और याद छोड़ कर चले गये. वह राजस्थान में साम्यवादी आंदोलन के संस्थापकों में थे. हृदय रोग विशेषज्ञ डॉ. सुशील ने उन की जाँच की और परिश्रम करने से मना किया. उन्हें दवा खिलायी. वह स्वास्थ्य और चिकित्सामंत्री श्री मोहन छंगानी के मेहमान थे. मोटर में बैठ कर प्रतिनिधि सम्मेलन में पहुँच गये और वहाँ से चुपचाप उठे और दो मील पैदल चले. फिर रात को सोये तो सुबह उठ नहीं सके.

मारवाड़ के स्वाधीनता संग्राम, देशी राज्य लोकपरिषद के आंदोलन और बुद्धिजीवी पराक्रम की अन्य स्मृतियाँ उन से जुड़ी हैं.

मध्यप्रदेश

युवाशक्ति के आयाम

युवा शक्ति का रचनात्मक विस्फोट समाज के लिए कितना लाभकारी सिद्ध हो सकता है इस का प्रमाण हाल ही में राज्य में **राष्ट्रीय सेवा योजना** के अंतर्गत आयोजित शिविरों में प्रत्यक्ष रूप से देखा गया. ध्वंस और हिंसा में प्रयुक्त होने वाली शक्ति, नहरें और सड़कें बनाने, गाँव की सफ़ाई करने और कमज़ोर वर्ग को लाभ पहुँचाने में इस्तेमाल में आये तो वास्तव में यह शक्ति के विस्फोट का सही प्रयोग माना जायेगा. दशहरा-दीवाली अवकाश में प्रदेश भर में छात्रों के 113 शिविर लगे. किंतु उन में से दो विशेष रूप से उल्लेखनीय रहे. खरगोन महाविद्यालय के छात्रों का **बड़वानी** में लगा शिविर राष्ट्रीय सेवा योजना के उद्देश्यों की पूर्णतः पूर्ति करता था. उस में छात्रों की सेवा भावना, संकल्पनिष्ठा और स्वयं को भूल जाने की सीमा तक समर्पित होने का भाव स्पष्ट था. दूसरी तरफ़ उज्जैन ज़िला की खाचरोद तहसील के **पचलासी** गाँव में लगा पश्चिम क्षेत्रीय अंतरप्रदेशिक छात्रा शिविर अपने प्रकार का अकेला शिविर था.

बड़वानी शिविर : खरगोन से लगभग 8 किलोमीटर दूर खरगोन-खंडवा मार्ग से लगभग डेढ़ फ़र्लांग हट कर उत्तर-पूर्व में स्थित बड़गाँव भी आम भारतीय गाँव की विविध समस्याओं से विजड़ित है. 315 परिवारों के गाँव में अधिकांश काछी जाति और कुछ हरिजन और कोल जाति के हैं. इन का मुख्य व्यवसाय मज़दूरी है. गाँव की हर सड़क या गली में कहीं से भी गुज़रती हुई नाली, बिखरे हुए घूरे, गंदे पानी के डबरे, कुएँ और घरों के आसपास गंदगी आदि बीमारियों को निमंत्रण देते हुए प्रतीत होते थे. मलेरिया यहाँ आम बात है. टिटेनस के लिए तो बड़गाँव और उस के निकट का गाँव नागझिरी पूरे पश्चिम निमाड़ में प्रसिद्ध है. मानसिक रोगों की भी यहाँ कमी नहीं है. अस्पृश्यता अभी अपने वास्तविक स्वरूप में जीवित है. परिवार नियोजन को ईश्वर के वरदान को नकारना और चेचक को देवी के रूप में पूजना अधिक सामान्य बात है.

रोग और गंदगी से ग्रस्त इस गाँव में **गंदगी और रोग बनाम तरुण शिविर** लगाने का बीड़ा उठाया खरगोन महाविद्यालय के परियोजना अधिकारी डॉ. जे. पी. श्रीवास्तव और उन के सहयोगी प्रो. आर. सी. गुप्त ने. अक्तूबर के पहले 11 दिनों में 91 छात्र और 20 छात्राओं के दल ने मानो गाँव का कायाकल्प ही कर दिया. खेत में दवा छिड़कते, नालियों की सफ़ाई करते, सड़क बनाते या रोग निरोधक टीके लगवाते छात्र-छात्राओं को देख कर ग्रामीणों का एक सुखद आश्चर्य में डूब जाना स्वाभाविक ही था. गाँव में 35 फुट लंबे मार्ग का और निकट के गाँव मेहरजा में 500 फुट लंबी सड़क का निर्माण किया गया. मार्ग में आने वाली तीन-चार चट्टानों को छात्रों ने चुनौती भरी मुद्रा में काट डाला. 124 नालियों की सफ़ाई और उन के पुनर्निर्माण के साथ ही 100 सोख्ता गढ्ढों का निर्माण किया गया. 5 कुँओं के आसपास सफ़ाई की गयी. इन में से 2 हरिजनों के हैं. सैकड़ों बच्चों को चेचक, टिटेनस, पोलियो, ट्रिपुल एंटीजन (हैज़ा, टाइफ़ॉइड और पैराटाइफ़ॉइड के) टीके लगाये

गये. गाँव वालों को स्वास्थ्य संबंधी विभिन्न जानकारियाँ दी गयीं. छात्र-छात्राओं द्वारा की गयी सेवा से ग्रामीण जन किस हद तक प्रभावित हुए, इस का प्रमाण भी शिविर के समापन के साथ ही दो बातों में मिल गया. एक तो परिवार नियोजन से वितृष्णा रखने वाले ग्रामीणों में से 75 नसबंदी ऑपरेशन के लिए तैयार हो गये और दूसरे छात्रों की सलाह पर ग्रामीणों ने 219 बचत खाते खोले और बड़गाँव अल्पबचत ग्राम घोषित हो गया.

कोमल करों में कुदाल : अंतरराष्ट्रीय महिला वर्ष के अंतर्गत उज्जैन के पचलासी गाँव में आयोजित छात्राओं का पश्चिम क्षेत्रीय शिविर अपने प्रकार का पहला शिविर था. पहला केवल इस लिए नहीं कि उस में तीन, राज्य की छात्राओं ने भाग लिया, बल्कि इस लिए भी कि भिन्न आर्थिक, सामाजिक और मानसिक परिवेश में जीने वाली शहरी जीवन की आदी छात्राओं ने न केवल ग्रामीणजन में मिलने का प्रयास किया बल्कि उस की सारी कुरूपताओं के साथ उसे सहेजने और सँवारने का भी प्रयास किया. कोमल, सुंदर युवतियों के हाथ में फावड़ा और कुदाल, कीमती वस्त्रों के धूलधूसरित हो जाने की परवाह किये बिना गोशाला से गोबर उठाती, गंदे बच्चों को स्वयं नहला कर साफ़ रखना सिखातीं, घरों की स्वयं सफाई कर के दिखातीं शहर की छात्राएँ, जो आमतौर पर मामूली काम से थकान और उदासीनता का शिकार हो जाती हैं, घर-घर जा कर लोगों से उन की तबीयत का हाल पूछती थीं. दवा बाँटती महिला डॉक्टर—स्वप्न सा लगने वाला यह सारा दृश्य गाँव वालों के सामने एक यथार्थ के रूप में प्रस्तुत था.

पचलासी गाँव का अपना एक महत्त्व है. इस गाँव की पंचायत ने 1973-74 में श्रेष्ठ कार्यों के लिए अखिल भारतीय स्तर का द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किया. 785 की आबादी वाले इस गाँव में 325 हरिजन रहते हैं. लेकिन अन्य अनेक गाँवों की तरह वे हीनता की भावना से उतने ग्रस्त नहीं लगते. यहाँ के हरिजनों के पक्के मकान हैं, सिंचाई की पर्याप्त सुविधा है और भरपूर खेती होती है. एक उद्वहन सिंचाई योजना के अतिरिक्त गाँव में 35 विद्युतपंप हैं, जिन में से 5 हरिजनों के हैं. पंचायत और प्राथमिक विद्यालय भवन पक्के बने हैं. बिजली तो है ही, पंचायत ने पानी की एक टंकी भी बना ली है. पाइप डलवाना शेष है. मछलीपालन और मुर्गीपालन के केंद्र हैं. गाँव को इस प्रकार सुविधा संपन्न बनाने का श्रेय वहाँ के 30 वर्षीय युवा सरपंच श्री रणछोर लाल आंजना को है, जिन्होंने अपनी संपन्नता को सामाजिक कार्यों का सहायक बनाया. छात्रा शिविर के दौरान भी **दिनमान** प्रतिनिधि ने देखा कि श्री आंजना के ट्रैक्टर, उन के आदमी और वह स्वयं किसी भी वक्त किसी भी प्रकार की निःस्वार्थ सेवा के लिए तत्पर थे. आखिर आप इतना सब क्यों करते हैं? प्रश्न पूछने पर उन्होंने भोलेपन से उत्तर दिया, 'शिविर लगाने की कोशिश इस लिए थी कि गाँव बाहर वालों की नज़र में आता रहे तो काम होते रहते हैं.'

आँकड़ों का साक्ष्य : इस शिविर में महाराष्ट्र, गुजरात और मध्यप्रदेश के 19 विश्वविद्यालयों की 233 छात्राओं ने भाग लिया. शिविर में गोआ की छात्राएँ भी भाग लेने वाली थीं, किंतु वे किसी वजह से नहीं आ सकीं. परियोजना के अंतर्गत पचलासी, नावटिया, विक्रमपुर, बुटानाबाद और पाड़सूतिया गाँव में कार्य किये गये. दस दिनों के भीतर 3,010 फ़ुट लंबी लघु सिंचाई नहर और नावटिया गाँव को जोड़ने वाली 10 फ़ुट चौड़ी 2,400 फ़ुट लंबी सड़क निर्माण किया गया. बागेड़ी नदी पर 15 फ़ुट लंबी लकड़ी का अस्थायी पुल बनाया गया. 426 निरक्षर लोगों को अपना नाम लिखना सिखाया गया और 665 लोगों को ग्राम विकास के संबंध में जानकारी दी गयी. 20 गगन चूल्हे, 8 गोशालाएँ तथा 2 सोख्ता गड्डे बना कर दिखाये गये. गांधी मेडिकल कॉलेज, भोपाल की प्राध्यापिका डॉ. श्रीमती बोस के नेतृत्व में चिकित्सा इकाई ने 1,966 लोगों का परीक्षण किया, दवाएँ बाँटी, चेचक और टिटिनस के टीके लगाये और चिकित्सा संबंधी आवश्यक सलाह दी.

सौंदर्य के रूप : पचलासी गाँव से पश्चिम में दो किलोमीटर दूर बागेड़ी नदी के तट पर लगा शिविर प्राकृतिक सौंदर्य के साथ और अधिक सुंदर हो गया था. लेकिन शिविर का आंतरिक सौंदर्य ही उस का वास्तविक सौंदर्य था. सुबह 8 बजे से रात के 9 बजे तक चलने वाली प्रार्थना, प्रभातफेरी, श्रमदान, स्वाध्याय, सर्वेक्षण और मनोरंजन आदि के कार्यक्रम एक प्रकार के स्वयं आरोपित अनुशासन के प्रतीक बन गये थे. भौतिक सौंदर्य के साथ शिविर का एक मानसिक सौंदर्य भी था. शायद इस का एक प्रमुख कारण प्रसिद्ध सर्वोदयी कार्यकर्त्ता श्री सुब्बाराव का कार्यक्रमों का निर्देशन करना भी था. **दिनमान** से बातचीत के दौरान उन्होंने कहा, 'सुबह हम अध्यात्मिक प्रेरणा प्राप्त करते हैं, फिर श्रमरूपी शारीरिक तपस्या करते हैं और शाम को बौद्धिक तथा मानसिक आनंद की प्राप्ति.'

संकल्प की परीक्षा : छात्राओं के उत्साह और उन के संकल्प की परीक्षा प्रकृति ने शिविर लगने के तीसरे दिन ही ले ली. भारी वर्षा के कारण तंबू भीग कर टपकने लगे. तीन शामियाने गिर गये, तंबुओं में पानी भर गया और भीगती हुई छात्राएँ तंबुओं से पानी निकालने और सामान बचाने के लिए संघर्ष करने लगीं. शिविर के आयोजकों ने उन्हें सुरक्षा की दृष्टि से पचलासी गाँव में पहुँचा दिया. कुछ छात्राओं के लिए यह स्थिति कष्टप्रद और डरावनी अवश्य थी, लेकिन अधिसंख्य

जाँच करते हुए चिकित्सा दल की एक छात्रा

ने इसे एक मज़ेदार अनुभव के रूप में ग्रहण किया. देवचंद कॉलेज, अर्जुननगर की बी. ए. की छात्रा **प्रेमा कुलकर्णी** का यह पहला शिविर था. परिश्रम उन्हें कुछ अधिक लग रहा था, पर, 'उस रात की वर्षा ने तो मुझे बहुत डरा दिया था. ठंड भी बहुत लगी थी.' लेकिन ज़्यादातर छात्राओं का मत न्यू कॉलेज, कोल्हापुर की बी. ए. प्रथम वर्ष की छात्रा **मंगला पाटील** के मत से मिला था. उन्होंने कहा, 'बड़ा मज़ा आया पानी में भीगने में. उस में दिलचस्पी से भरा एक जोखिम था. जैसा कभी-कभी फ़िल्मों में देखते हैं वैसा ही . . .' बंबई विश्वविद्यालय की **सुरेखा वेद पाठक** का उत्तर था, 'पानी में भीगना तो अच्छा लगता ही है. घर पर भीगते तो माँ-बाप डाँटते, यहाँ तो किसी ने डाँटा भी नहीं.'

विभिन्न प्रदेशों की छात्राओं के मिलन से जिस भावनात्मक एकता की कल्पना की गयी थी उस में कुछ सफलता मिलती दिखायी दी. सांस्कृतिक या बौद्धिक गतिविधियों से संबद्ध छात्राएँ तो कुछ हद तक एक दूसरे से घुल मिल सकी. किंतु शेष एक दूसरे से एकात्म नहीं हो सकीं. गुजरात से आयी सरदार पटेल विश्वविद्यालय की **कुमारी भावना** का कहना था कि कार्यक्रमों की व्यवस्था और विशेष कर अत्यधिक श्रमदान से बुरी तरह थकावट पैदा हो जाती है. भाषा संबंधी कठिनाई भी है ही. ऐसी स्थिति में सहज संकोच को तोड़ कर हम घुलमिल सकने की स्थिति में नहीं रहते. रायपुर विश्वविद्यालय की **सीताराम जाई** और **मेरलिन रॉबर्ट** को शिकायत थी कि अन्य

बड़गाँव (जिला खरगोन) में गंदगी और रोग बनाम तरुण शिविर में गंदगी हटाते हुए छात्र

प्रदेशों की लड़कियाँ कटी-कटी और अपने ही गुटों में बँटी रहती हैं. लेकिन इस के बावजूद ऐसी छात्राओं की कमी नहीं थी जो आपस में एक दूसरे से खूब घुलमिल गयी थीं.

शिविर के विषय में भी विभिन्न छात्राओं की अपनी-अपनी प्रतिक्रियाएँ थीं, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन की **कुमारी सचिता सरन** (जो सेवा योजना के 2, खेल के 3 और गाइड के 1 शिविर में पहले भी भाग ले चुकी थी) को पचलासी शिविर में अपने ही ज़िले की ग्रामीण दयनीयता की तस्वीर देखने को मिली. गुजरात विश्वविद्यालय की **किरण गोपानी** को शिविर का अनुशासन और वातावरण बहुत पसंद आया. बंबई विश्वविद्यालय में राष्ट्रीय सेवा योजना की परियोजना

हस्ताक्षर करना सिखाते हुए शिविरार्थी एक छात्रा

अधिकारी और समाज विज्ञान की अध्येता **कुमारी हेलन चिबा केसरी** को तो मानों ज्ञान वृद्धि का अपूर्व अवसर प्राप्त हुआ था. झुग्गियों में रहने वालों के जीवन पर उन्होंने कार्य किया है. किंतु उन के अनुसार बंबई की झुग्गियों में भी इन गाँवों से अधिक सुविधाएँ और संपन्नता है. इन गाँवों में काम करने के लिए बहुत गुंजाइश है.

चर्चा के दौरान शिवाजी विश्वविद्यालय की **अमिता भट्ट** हों या सरदार पटेल विश्वविद्यालय की **भावना** या इंदौर विश्वविद्यालय की **कलावती** सभी को दुखते हुए हाथ-पाँव और हाथ में पड़े छालों की पीड़ा का स्मरण हो जाता था. यद्यपि उन्होंने अतिपरिश्रम की शिकायत नहीं की किंतु उन के मन की बातों से आभास यही हुआ. अहमदाबाद से आयी परियोजना अधिकारी **श्रीमती बसुमति क्रिश्चियन** ने बातचीत में कहा, 'शिविर में अपेक्षाकृत अधिक श्रम कराया जाता है. श्रम कार्य लड़कियों की क्षमता के अनुरूप दिया जाना चाहिए. श्रम के बाद हमारी लड़कियाँ इतनी थक जाती हैं कि शाम के बौद्धिक सांस्कृतिक कार्यक्रमों में वे रुचि ही नहीं ले पातीं'.

बाढ़ संवाद प्रतियोगिता

भुक्तभोगियों की कलम से

दिनमान बहुधा अपने पाठकों में संवाद की प्रतियोगिताएँ आयोजित करता रहा है. महँगाई, कचहरी आदि पर की गयी संवाद प्रतियोगिताएँ लोकप्रिय होने के साथ-साथ 'दिनमान' पाठकों की कलम सामने ला चुकी हैं. इस बार हमने बाढ़ संबंधी प्रतियोगिता आयोजित की थी.

अगस्त-सितंबर 1975 की बाढ़ ने देश के विभिन्न भागों में कहर ढाया. पटना में सोन का तटबंध टूटने से नगर का अधिकांश भाग जलमग्न हो गया. अस्तव्यस्त जनजीवन किसी प्रकार सामान्य हुआ. इस सिलसिले में हमने बाढ़ संबंधी एक संवाद प्रतियोगिता आयोजित करते हुए अपने पाठकों से पूछा था—

'हो सकता है आप कहीं बाढ़ में घिरे आदमी के कष्ट और उस के **संघर्ष और साहस** अथवा जो घिरे नहीं हैं उन के **सेवाकार्य और साहस** के साक्षी रहे हों. हो सकता है स्वयं आप ही इन दोनों में से कोई आदमी हों. हो सकता है आप किसी छोटे नगर में, कस्बे में, गाँव में रहते हों और इतने बड़े भारतवर्ष को वहाँ का वृत्तांत दे सकते हों जो स्थापित समाचार साधन नहीं दे सकते.

'बाढ़ का सामना आपने और दूसरोंने कैसे किया, यह वृत्तांत भेजने का निमंत्रण हम आप को दे रहे हैं.'

इस आमंत्रण के उत्तर में हमें सैकड़ों पत्र प्राप्त हुए. गाँव, कस्बे और शहर के बाढ़ के अनुभवों से गुजरे लोगों से ले कर बाढ़ सहायता कार्य करने वाले भूतपूर्व सैनिकों और अधिकारियों तक ने अपने अपने अनुभव हमें भेजे. इस प्रतियोगिता में पटना की उन छात्राओं-युवतियों ने तो अत्यंत रुचि से हिस्सा लिया जो बाढ़ में फँस गयी थीं. प्रायः सभी पत्रों में मनुष्य के संघर्ष, उस की जिजीविषा और उस की व्यथा के ऐसे मर्मस्पर्शी चित्र हैं जो प्रकाशित होने पर उन स्थितियों का स्पष्टीकरण करते जिन के बीच से लोग ऐसे दिनों में गुजरते हैं. कुछ पत्र ऐसे भी थे जिन का संबंध इस वर्ष की बाढ़ से नहीं था, लेकिन उनमें वर्णित अनुभव उल्लेखनीय हैं. स्थान के अभाव के कारण हम उन सब का उपयोग नहीं कर पा रहे हैं. केवल नमूने के तौर पर कुछ चुने हुए पत्र 'दिनमान' के इस तथा अगले अंक में प्रकाशित किये जा रहे हैं और हमें विश्वास है कि इन्हें पढ़ते हुए हमारे पाठक उन वास्तविकताओं और स्थितियों से साक्षात्कार करेंगे जिन का ज़िक्र मोटे रूप से स्थापित समाचारपत्रों में नहीं हो सका था.

* * *

ज़रा कल्पना कीजिए उस महिला की जो आठ दस फ़ुट ऊँचे बाढ़ के पानी में घिरी आसन्न प्रसव पीड़ा से तड़प रही है. उस का घर पानी में डूब रहा है. चौकी के ऊपर चौकी और फिर उस के ऊपर खाट रख कर महिला को उस का पति बैठाता है, पर जलस्तर इतनी तेज़ी से बढ़ रहा है कि खाट भी डूबने लगती है. प्रसव का समय नज़दीक आता जा रहा है. मकान के चारों तरफ़ अथाह पानी है. 25-30 गज़ दूर एक मकान की छत से बाढ़ में घिरी उस की सास एवं ननद तथा पासपड़ोस की महिलाएँ बेबस निगाहों से उसे देख रही हैं. प्रवाह इतना तेज़ है कि अच्छा तैराक भी एक बार चक्कर में पड़ जाये. फिर हिम्मत कौन करे ?

हिम्मत करता है उस का पति. अथाह पानी में दहेज में मिले पीतल के एक बड़े घड़े को उलटा कर वह अपनी पत्नी को उस पर बैठाता है और किसी तरह उसे बगल वाले निर्माणाधीन मकान की छत पर ले आता है जहाँ बालू और कंकरीट की ढेर है—न खिड़की है, न दरवाज़ा और न छत. ऐसे स्थान में लगभग घंटा भर बाद उस की पत्नी प्रथम बालक को जन्म देती है. पति किंकर्त्तव्यविमूढ़ है—न दाई है, न कपड़े हैं, न कोई दवा है और न ओढ़ना-बिछौना. उन दोनों के शरीर पर के सारे कपड़े भी बाढ़ के गंदे पानी में भीगे हुए हैं. ऐसी स्थिति में उस प्रसूति और उस के पति को किन किन मुसीबतों का सामना करना होगा, यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है.

पटना में आयी बाढ़ की विभीषिका के दिनों में अपनी पुत्रबधू की व्यथा कथा सुनाती हुई नेहरूनगर (पाटलिपुत्र कालोनी से सटे, सदाकत आश्रम के ठीक पीछे की नयी बस्ती, जहाँ बाढ़ का पानी बहुत अधिक था) निवासिनी, संपन्न परिवार की पेंतालीस वर्षीया श्रीमती शांति देवी ने बताया : '25 तारीख (अगस्त) की भोर में इस क्षेत्र में बाढ़ का पानी बहुत तेज़ी से बढ़ रहा था. मेरा मकान डूब गया, तब शरण लेने अपनी बेटी के घर (नेहरू नगर) आयी, लेकिन उस के घर में भी ठेहुना भर पानी भर गया था. घर का सारा सामान

श्रीमती शांति देवी (दाएँ) अपनी पुत्रवधू और बाढ़ के दिनों में पैदा हुए पोते के साथ

बाढ़ के पानी में डूब रहा था. इतना सारा सामान ले कर कहाँ जाती ?. . इधर कभी बाढ़ तो आयी नहीं, इस लिए हम लोग निश्चित थीं. बाढ़ कह रही थी—चाहे हम, चाहे तुम. अपने परिवार के तीन छोटे छोटे बच्चों (अवस्था 10 वर्ष, 9 वर्ष और 1 वर्ष) को ले कर छत पर चली आयी. जल्दी में खाने पीने का कुछ सामान न ला सकी—यहाँ तक कि ओढ़ना बिछौना भी नहीं. जो कपड़ा पहने थी, वही पहने रह गयी. घबराहट के मारे हाथ पैर ठंडे हो रहे थे.

'सामने वाले मकान में मेरा बेटा रहता है. उस की औरत सुबह से ही दर्द में थी. 24 की रात में तय किया था कि सुबह उसे अस्पताल ले जाऊँगी, मगर यहाँ तो भोर में ही भयानक बाढ़ आ गयी. बेटे के घर के पास इतना पानी था कि मेरे लिए पहुँचना कठिन. लड़के ने इशारे से बताया कि दर्द बढ़ रहा है. तड़प कर रह गयी. टुकुर टुकुर देखने के सिवा कुछ कर नहीं सकती थी.

'तीन दिनों तक कितने नाव वालों का निहोरा किया—'ए नाव वाले बाबू एमरजंसी केस है, अस्पताल जाना है, जरा नाव इधर ले आओ मेरे भइया'. मगर कोई नाव ले कर नहीं आता. हाँ, नाव पर चढ़ कर बाढ़ का तमाशा देखने वालों की कमी नहीं थी. . . बच्चा सब भूख से बिलबिला रहा था. पास पड़ोस की छतों से लोग कभी भुंजा, कभी रोटी आदि कपड़े में बाँध कर फेंकते तो उसे खिला कर बच्चों को सान्त्वना दे देती. 25-26 अगस्त को न अन्न से भेंट हुई और न पानी से. सोचा, जे दू दिन निर्जला एकासी (एकादशी) किया है. . अन्न या पानी के बिना हमारा नाती पोता सब छटपटा के रह गया. . .

'27 तारीख की रात में आयी बारिस. हवा के तेज झोंकों के साथ मूसलाधार पानी! शरीर पर के सारे कपड़े भीग चुके थे—छोटे छोटे बच्चों के साथ जाड़े से काँपने लगी. तेज बारिस में बच्चों को समेटे, उन्हें बारिस के बचाने की नाकामयाब कोशिश करती रही. . वह रात बड़ी भयंकर थी (उन दिनों की याद में श्रीमती शांति देवी का गला भर आता है).

'चार रोज बाद हेलिकाप्टर उड़ना शुरू हुआ—दिन भर में पचासों बार. लोगों ने कहा कि हेलिकाप्टर खाना गिरायेगा मगर, हमारी छत पर कभी कुछ नहीं गिराया—घिरनी ऐसा नाच के चला जाता था. . . जीवन में कभी किसी के आगे हाथ नहीं पसारा लेकिन, पापी पेट के लिए कलेजे पर पत्थर रख हाथ भी पसारा तो कुछ नहीं मिला. पास पड़ोस की छतों से जो कुछ खाने का सामान मिल गया, उस से अपने इस कुनबे को सोलह दिनों तक किसी तरह जिंदा रख पायी.

'अंधेरी रात में कभी इधर 'छप', कभी उधर 'छप'—चोर सब मँडराते चलता था. कहाँ मौका मिले कि हाथ मारा जाये. कालोनी के लोग रात भर पहरा करते थे.

'उधर उस मकान में प्रसूति दवा और डाक्टरी सहायता के बिना पिछले तीन दिनों से भूखे प्यासे पड़ी थी. हालत बिगड़ती जा रही थी. बुलाने पर भी कोई नाव वाला आता नहीं था. . चौथे दिन एक नाव पर चार लौंडे सवार हो कर बाढ़ का नजारा देखने आये. एक बाबू ने मकान की छत से बंदूक तान कर कहा—नाव इधर लाओ, नहीं तो गोली मार देंगे. वे सब नाव ले कर भागने लगे लेकिन एक फायर होते ही नाव नज़दीक ले आये. . उसी नाव से पुत्रवधू को अस्पताल भेजा. . चार दिनों के बाद पोता का मुंह देखना नसीब हुआ. . .

यह है पटना में आयी अप्रत्याशित बाढ़ की विभीषिका के दिनों की एक महिला की व्यथा कथा. हज़ारों लोगों ने उस विभीषिका को कैसे झेला है, उस की याद में आज भी उन के रोंगटे खड़े हो जाते हैं.

—सत्यदेव नारायण सिन्हा,
पटना सिटी

24 अगस्त की रात में माईक से यह सूचना प्रसारित की गयी कि पश्चिम पटना को बाढ़ का खतरा उपस्थित हो गया. दानापुर तटबंध कमज़ोर होने के कारण शास्त्रीनगर, पटेलनगर, राजवंशीनगर, पाटलीपुत्र कालोनी और पुनाईचक वगैरह में पानी प्रवेश कर गया है. . . . यह भी कहा जा रहा था कि लोग नीचे की मंजिलें खाली कर के अपने सामानों के साथ छत पर या कहीं अन्यत्र सुरक्षित स्थानों में चले जायें.

सरकारी सूचना से मेरे शरीर की एक एक नस हिल गयीं. आँतों में हरकतें शुरू हो गयीं. अनेक बार उस रात मुझे टट्टी से निपटना पड़ा. साथ में परिवार था. दो-तीन छोटे छोटे बच्चे-बच्चियाँ थीं, एक बड़ा पुत्र, पुत्रवधू और दो रिश्तेदार मित्र. आठ-नौ लोगों के जीवन की रक्षा का प्रश्न अचानक सामने खड़ा हो गया. लखनऊ की बाढ़ में उस साल मैंने रिवर बैंक कालोनी में चौमहले मकान को डूबते देखा था. पटने में तो बोरिंग रोड के निचले भाग में मेरा मकान था जिस के पूरा डूबने का भावी चित्र मेरी आँखों में नाचने लगा. आँखों की हरकतों के पीछे लखनऊ की बाढ़ की स्पष्ट भूमिका थी. पटना में जिस मकान के निचली मंज़िल में हूँ वह दुमहला है. ऊपर मकान मालिक का परिवार है. वे लोग शाम से ही हमारे परिवार के लोगों को सामान ऊपर ले जाने का आग्रह कर रहे थे. घर में वरुण देवता का प्रवेश होने के पहले सामान और बाल बच्चे ज़मीन छोड़ कर ऊपर चले गये. प्रलय का महासमुद्र. बड़े मकानों की छतों पर अड़ोसपड़ोस, अगलबगल के छोटे मकान वाले बुलाये—बिना बुलाये सपरिवार आपत्कालीन अतिथि बन गये. जो आ गये एक हो गये. मकान की छतों पर कुछ समय के लिए अनेकता स्वतः एकता के महासमुद्र में विलीन हो गयी. छत पर आने वालों के सामने अनेक समस्याएँ उठ खड़ी हुईं. बहुतों के पास न खाने का सामान था, न वस्त्र न बिछावन, न कोयला, न जलावन, न चूल्हा, न चक्की. फाकाकशी के अलावा चारा क्या था. बचे खुचे सामानों में ही आपस में बाँट चट कर आधा पेट खा कर दिन काटने को बाध्य हो गये. ऐसी हालत कहीं चार दिन और कहीं पाँच दिन तक रही. हमारे साथ भी ऐसे चार-पाँच परिवारों का जीवन गुजरा. खुले आसमान में सोना, दिन में तपती धूप और रात में ओसकण का सामना, टट्टी, पानी, बिजली और अन्न के अभाव का संकट अलग. बगल की एक छत पर बगैर किसी की जानकारी के एक छोटे परिवार ने अपने चार दिन बिना दाना पानी के काटे. बाद में ज्ञात होने पर हम लोगों ने सहायता की. थोड़ी दूर पर पड़ोस में ही एक सक्षम मारवाड़ी परिवार कोयले और जलावन के अभाव में चावल भिगो कर चार दिनों तक पेट की ज्वाला बुझाते रहे. बर्दाश्त नहीं होने पर संयोग से एक नाव आने पर कहीं अन्यत्र चले गये.

बगल के एक अन्य मोहल्ले में एक विधवा माँ पूर्व की भाँति अपने दो निरीह बच्चों को घर में ताला लगा कर कहीं अन्यत्र पढ़ाने गयीं. दो घंटे में इतना पानी आ गया कि सारा मोहल्ला डूब गया. विधवा अध्यापिका घर लौटने में असमर्थ हो गयी थीं.

—एक भुक्तभोगी
पटना

गया जिला का एक गाँव—बेलसार. एक युवक ब्राह्मण बार बार रोता हुआ बेहोश हो जाता है. यह क्रम कई रोज से चल रहा है. होश होने पर कहता है—पतरा सगुन कह इत है कि सभे बाढ़ में मर गेलन. . हे भगवान, फिर हिचकियाँ. . . बोहोशी. लोग उपचार करते हैं, होश में लाते हैं, उपदेश देते हैं—का करेला है ? धीरज रखउ बाबू, अब जो चल गेलन से लौटतन थोड़े. मगर तभी एक दिन चमत्कार होता है. उस की पत्नी, अपने नवजात शिशु को गोद में लिए, गाँव में घुसती है. साथ में उस की ननद और दो अजनबी हैं. एक शोर आग की तरह पूरे गाँव में व्याप जाता है—फलना के माउग—बहीन जिंदे हथिन. . . उवका नउका बच्चा—गोदी में हइई. . साथे दूगो आउर मरद हइइ कोनो. भीड़ दरवाजे पर मनभना रही है. लोग बाग अजनबी लोगों के पाँव छू छू कर कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं—तोहनी देउता ह बाबू.

यह कोई 'कहानी नहीं, पिछली बाढ़ से उत्पन्न एक घटना का सही ज़िक्र है. गाँव का एक युवक किसान, सीधा साधा, अपने पहले बच्चे के जन्म के लिए अपनी पत्नी को होली फैमिली अस्पताल, कुरजी (पटना) में भरती करवाता है. गाँव की बहू और शहर पटना. . . साथ में उस की नवविवाहिता ननद भी है देख-माल के लिए. परसों बच्चा हुआ है, पेट

काट कर. . यानी सिजेरियन और आज हल्ला है. . सोन का पानी बढ़ रहा है. . . पटना शहर में किसी भी दिन पानी घुस सकता है. . और, दूसरे ही दिन सोन का तटबंध टूटता है. . देखते देखते दैत्य की तरह बाढ़ का पानी समूचे पटना शहर को रौंद देता है. सड़कों पर छाती भर पानी. . . तेज धार. अच्छे अच्छे तैराक भी हिम्मत नहीं कर रहे हैं. अपने संबंधियों की खोज खबर कैसे ली जाये ' हे प्रभु अब क्या हो. . . . ?'

अस्पताल की सीढ़ियां डूब रही हैं. . पानी बढ़ता ही जा रहा है. . खाली कर दें . . खाली कर दें. . ऐलान हो रहा है—सभी लोग. . मरीज और उन के आदमी. . शाम से पहले अस्पताल खाली कर दें. बेसमेंट डूब चुका है. खाना पानी दवा दारू. . कुछ भी नहीं बचा. जच्चा भौजाई, युवती ननद, तीन-चार दिन का नन्हा बच्चा और बाढ़ का प्रलयकारी दृश्य. . कहाँ जाये कोई ? कैसे जाये ? सड़क पर छाती भर पानी दौड़ रहा है.

पास वाले बड़े का मरीज जा रहा है. उस का रिश्ते का कोई भाई लेने आया है. ये सब लोहिया नगर (पटना का एक मुहल्ला) जायेंगे. मगर जायेंगे कैसे ? एक रिक्शेवाला तैयार हुआ है पचास रुपये पर. शर्त है—भुगतान पहले लेगा. ले ले ससुर. . . जान है तो जहान है. मगर ये ननद-भौजाई क्या करें. . . संकोच मन को जकड़ता है लेकिन, मुँह तो खोलना ही पड़ेगा—हमनी के भी लेते चलिए. . हम लोग का हींया पर कोई नहीं है. . आदमी गये थे रजिस्टर नगर लौट कर नहीं आ पाये. . (हिचकियाँ). . पता नहीं कइसे हैं ? आदमी कितना लाचार हो जाता है कभी कभी.

एक रिक्शा सीट तक डूबा हुआ. उस पर दो जच्चाएँ अपने अपने नवजात बच्चों को छाती से चिपकाएँ बैठ गयी हैं. कमर तक पानी में डूबी हुई. रिक्शावाले ने अपने मजबूत हाथ से हैंडिल सँभाल लिया है. चार जन. . . औरत-मर्द. . पीछे से रिक्शे को ठेल कर आगे बढ़ा रहे हैं. रिक्शा अब उल्टा कि तब. . . हे भगवान पार लगावउ. . . हे गंगा मइया. . तोरा बताशा चढ़ाके पूजबो. . . तभी एक बोट दिखाई पड़ती है. है. . माई. . जरा इधर लाइए. . सभी रोगी हैं. . मेहरबानी कीजिए . . ऐ साहब. और बोट थोड़ी दूर से निकल जाती है. स्साले झांझर खेल रहे हैं, और यहाँ जान/कर पड़ी है. पानी में डूबा हुआ भी आदमी पसीने से तर बतर है.

कुर्जी से लोहियानगर का रास्ता. . लगभग आठ किलोमीटर लंबी जल यात्रा साढ़े पाँच घंटे में तय होती है. घर पर पहले लोग परेशान होते हैं. एक और मुसीबत कहाँ से ले आया गोपाल. परंतु, जब सारी बात मालूम होती है, लोग च्. . च्. . करने लगते हैं. . बेचारी. अच्छा किया ले आये. मगर, यहं जगह भी कब तक बच पाती. पानी तो बस एक-एक जगह को डूबा कर छोड़ेगा. तीन रोज बाद यहाँ भी पानी. . अब क्या हो ? बेर के मारे बबूल तल. . मगर, गंगा मइया को बताशे का लोभ हो गया है शायद. . विक्रम बजरंगी को लाल लंगोट चाहिए. . पानी हाते भर में फैल कर शांत हो गया है. घर में नहीं घुसेगा अब.

पाँच रोज बाद मेरा गोपाल लौटा है. उन सब को उन के गाँव छोड़ कर सारी बातों का खुलासा करता है. सुन कर रोमांच होता है.

—परेश सिनहा
पटना-16

. . . मुझे बरसात से डर लगता है कारण मैं प्रकृति के इस रूप से ही अनभिज्ञ नहीं हूँ. मुझे नहीं भूलते वे अनूठे क्षण जब बाढ़ के भयानक संसर्ग के वे दिन व्यतीत करने पड़े थे. मैं भी प्रथम बार ऐसे नगर में पहुँचा जहाँ दो बड़ी नदियों का प्रवेश था. यमुना नदी के ही किनारे हमें भी निवास का अवसर मिला. श्री कृष्ण की चिरसंगिनी यमुना का संग, 30-35 फुट की ऊँचाई पर हमारा मकान था. नीचे गहराई में नाविकों मछुआरों तथा निर्धनों के कच्चे घरों की लंबी पंक्ति थी. हर घर के सम्मुख पशुधन के रूप में बकरियाँ बंधी थीं और जीवनयापन के साधनों में औरतों के परिश्रम रूप में कंडों के ऊंचे टीले खड़े थे. . वर्षा ऋतु का प्रारंभ हुआ. एक दिन ऐसे प्रतीत हुआ मानो नदी बढ़ गयी हो. बाढ़ की संभावना का अनुभव कर पुल हटा दिया गया था जो बड़े बड़े ड्रमों द्वारा निर्मित किया गया था. नावों द्वारा यातायात प्रारंभ हो गया था. नदी का जल बढ़ोत्तरी पर था. वहाँ के निवासियों में हलचल सी व्याप्त हो गयी थी. गहन निराशा की लालिमा उतर आयी थी. उन के प्रफुल्लित मुखों पर एक ही चिंता थी, अब क्या होगा. . . पानी बढ़ रहा था. विनाशकारी दृश्य उपस्थित होने लगा. रात्रि की कालिमा से ग्रस्त वह नीरवता हाहाकार से भर उठी, 'जल्दी उठाओ' इधर भी पानी आना शुरू हो गया. किसी स्त्री की चीख सुनायी दी और यह दीवाल ढह गयी. नीचे मुन्ना था.' किसी को दूसरे की सुध न रही. मकान गिरने प्रारंभ हो गये थे. अचानक मेरा बंधा हुआ नाविक रामभरोसे प्रकाश में दिख गया. कल तक की युवावस्था आज क्षण में वृद्धावस्था में परिवर्तित हो चुकी थी.' 'रामभरोसे ठीक तो हो.' सहानुभूति का स्वर संयम के बांध को तोड़ गया. 'बिट्टी' हिचकियों में बंधे स्वर में बोला—पता नहीं वह कहाँ रह गयी. अभी तो बच्चों को यहाँ पहुँचा कर उतरा रहा था कि फिसल गयी. आगे की बात सिसकियों में विफल कर दी. . मैं कुछ कहना ही चाहती थी कि एक अजनबी युवक ने भरोसे का कंधा पकड़ लिया. 'अभी चल मेरे साथ.' मास्टर साहब जगतबाबू आप इतने गहरे में कैसे ढूंढ सकोगे. किंतु उस की बात बिना सुने उसे खींचता हुआ एक हाथ में टार्च चमकाता जगत नीचे अंधकार में खो गया. अथक परिश्रम के पश्चात दो शरीरों की छाया दिखायी दी. समीप आने पर फूली सांस पानी और पसीने से लथपथ जगतबाबू और रामभरोसे स्पष्ट हुए. दोनों एक अस्वस्थ नारी शरीर को मंदिर में ले गये. रामभरोसे की बिलखन से प्रत्यक्ष था कि उस की पत्नी थी. जगतबाबू ने पेट से पानी निकाला. स्त्री चेतन हुई. मैंने गरम दूध भेज दिया था. थोड़ी देर पश्चात स्त्री की दशा सुधरने लगी.

. . . मुझे प्रेरणा मिली क्यों न मैं भी कुछ सहायता करूं. नारी होने से क्या. अध्यापक जगत से मैं सलाह कर चुकी थी. मेरी योजना पर उसे हार्दिक प्रसन्नता हुई तथा मेरी सफलता की कामना करता हुआ चला गया. योजना अनुसार कुछ महिलाओं को संगठित कर चंदा एकत्रित करना था. इस के अतिरिक्त हम सब महिला सदस्यों की ओर से विभिन्न गृह से संबंधित वस्तुओं की प्रदर्शनी लगा कर और कुछ सांस्कृतिक कार्यक्रमों द्वारा भी चंदा एकत्रित करना था. मैं तत्काल स्त्रियों से संपर्क स्थापित करने के लिए चल दी थी किंतु शीघ्र ही मुझे असफलता नजर आने लगी. जिन महिलाओं ने संगठन सदस्य बनने से इनकार कर दिया था, उन से कारण पूछने पर स्पष्ट हुआ कि समाज और उस की रूढ़ियों से टकराना उन के वश की बात नहीं. वे अपने कार्यों द्वारा चरित्र की असुरक्षा नहीं चाहते. ऐसे कार्यों की छोटा समाज अवहेलना करता है. कुछ महिलाओं ने साथ देने का प्रयत्न किया. किंतु चार दिन में उन के घरों से उलाहने आने का सिलसिला प्रारंभ हो गया. पता चला, 'घूमने का खूब बहाना मिल गया.' घरों में कार्यभार बढ़ गया. क्यों कि जब गृहणियाँ बाहर का 'निरर्थक' कार्य कर समय गंवा सकती हैं तो घर का कार्य तो अवश्य है. घबरा कर महिलाओं ने संपर्क तोड़ दिया. इतना ही नहीं पिताजी ने भी एक दिन कहा, 'बेटे यह संकीर्ण विचारधारा का शहर है' यदि तुम्हें कुछ करना है तो घर चली जाओ वहीं से चंदा भेज देना. . .' लेकिन बाद में जगत अध्यापक के सेवाभाव और छात्रों के सहयोग से स्थिति बदल गयी और महिलायें भी राहत के काम में जुट गयीं.

कुमारी कमल अग्निहोत्री
झांसी

हम अजमेरवासी या कहिये कि राजस्थानवासी पुस्तकों अथवा पत्रों के माध्यम से ही बाढ़ से परिचित थे. जहां पीने के पानी की ही समस्या हो वहां बाढ़ की समस्या का भान तो कुछ कल्पनाशील व्यक्तियों के मस्तिष्क में ही संभव है. लेकिन बाढ़ के संदर्भ में अजमेरवासियों के लिए 18 जुलाई '75 का दिन कभी न भूला जा सकने वाला सिद्ध हुआ. अजमेर नगर के पश्चिम में स्थित पहाड़ों का बरसाती जल एकत्र हो गया

और अजमेर नगर के निचले भागों में भरने लगा. धीरे धीरे क्वाटर के कमरों में पानी भरने लगा. परिवार के सदस्य पलंग और कुर्सी पर बैठ गये. लेकिन जब पानी का स्तर उन से ऊपर जाने लगा तो चिंता बढ़ने लगी. अंत में रोशनदानों की छड़ों को पकड़ कर हम ने अपने को भगवान की दया पर छोड़ दिया.

इस सिलसिले में एक हृदयविदारक दृश्य ने मेरी हड़प्पा और मोहनजोदड़ों की इतिहासजन्य स्मृति को हरा कर दिया. एक यात्री बस जो उन दिनों अजमेर नगर में चल रहे उर्स के यात्रियों से भरी थी बाढ़ में बह कर आ गयी और एक स्थान पर बाढ़ द्वारा लायी गयी मिट्टी में दब गयी. जब उस बस को निकाला गया तो ज़ियारत करने वाले कई लोगों के पार्थिव शरीर बस में थे. उन की भावभंगिमाएँ इस आकस्मिक प्रकोप की साक्षी दे रही थीं. एक व्यक्ति का एक पैर बस के पीछे बनी सीढ़ी पर था. उस ने हाथों से ऊपर की सीढ़ियों को पकड़ रखा था. उसे देख कर ऐसा प्रतीत होता था कि वह बस पर अभी चढ़ जायेगा. लगा कि हो न हो हड़प्पा और मोहनजोदड़ो में भी अचानक भीषण बाढ़ आयी हो और सैकड़ों फीट ऊंची मिट्टी में वे नगर दब गये हों.

रोम के जलने के वक्त नीरू के वंशी बजाने की कथी भी चरितार्थ करने वाली घटनाएँ घटीं. अजमेर नगर का धन-जन संकटग्रस्त था और उस में कुछ लालची व्यक्ति बहती संपत्ति को हथियाने का भी प्रयास कर रहे थे. ऐसा ही एक व्यक्ति नोटों से भरे पानी में बहते खुले सूटकेस को पकड़ने के लिए कंबल ले कर पानी में घुस गया और कंबल को सूटकेस के ऊपर फेंका. उसे सूटकेस तो न मिला लेकिन कंबल खो गया.

नवलकिशोर गौतम
अजमेर

एक व्यक्तिगत काम से पटना गया हुआ था. होटल में लेटा था कि शोर सुनायी पड़ा कि बाढ़ का पानी राजभवन में घुस गया.--रिक्शा ले कर चल पड़ा श्रीकृष्ण पुरी की ओर. वहां से भारी मन से लौट रहा था. अचानक बचाओ, बचाओ मां गो दुर्गा का शब्द सुन कर चौंक उठा. नज़र फिराने पर चारों ओर से पानी से घिरा एक छोटा सा एकतल्ले का मकान दीखा. 10-15 मीटर के बीच अन्य कोई मकान नहीं. पानी दरवाजे और खिड़की का ऊपरी हिस्सा छू लेने को उद्यत. एक युवती खिड़की की सलाखें पकड़े सहायता के लिए चिल्ला रही थी. तैर कर दरवाज़े के पास पहुँचा. दरवाज़ा भीतर से बंद. बोला दरवाज़ा खोलें तभी तो बाहर निकल पायेंगी. 'भीतर तबालाबंद, चाबी टा जले पड़े गेछे (भीतर ताला बंद है, चाबी पानी में डूब गयी है) पहली बार बंगलाभाषा के ज्ञान से प्रसन्नता हुई. भावी आशंका से मन हिल उठा. डूबती हुई युवती को कैसे बचाया जाये. सलाखें काफ़ी मजबूत दिखायी पड़ीं. रिक्शा पानी में फंस रहा है. जल्दी चलिए रिक्शेवाले का समझाया हुआ स्वर सुनायी पड़ा. पूरी शक्ति से लोहे की छड़ को झकझोरा. कई बार झकझोरने पर एक छड़ खींचने में समर्थ हुआ. फिर उसी के सहारे दूसरा भी खींचा. फिर युवती को जो अब तक बेहोश थी बाहर खींचा और उसे छत पर ले गया. पानी छत से एक हाथ नीचे. भीगे हुए कपड़े में युवती बेहोश. प्राथमिक उपचार के ज़रिये पेट का पानी निकालना चाहा पर व्यर्थ. उसी अवस्था में उसे छोड़ कर होटल की ओर गया. लौटते समय रिक्शा किया. एक मील की दूरी के लिए 20 रु. भाड़ा. सोचने का समय नहीं था. एक कंबल, दो चादर, दियासलाई, मोमबत्ती, कोडोपायरिन तथा दो डबलरोटी ले कर रिक्शे पर सवार हुआ. कई लोगों से चलने का निवेदन भी किया लेकिन सभी अपनी जान बचाने में मशगूल थे. कमर भर पानी में रिक्शा चला. उस के बाद भी आधा फर्लांग की दूरी. हिम्मत कर दो बार में सूखे कपड़े की पगड़ी बांध कर छत पर पहुँचा: अख़बार जला कर युवती का हाथ पांव गरम किया. कंबल से बदन को ढक कर गरमी पहुँचायी. फिर वह होश में आयी. उस ने बताया 'पति कलकत्ता गये हैं. अकेले अच्छी तरह दरवाज़ा बंद किये बिना सोना निरापद नहीं अतः भीतर से ताला बंद कर लिया. पानी जब चारपाई के नीचे से बदन को छूने लगा तो नींद खुली. हड़बड़ा कर जगी चाबी से दरवाज़ा खोलने. भय के मारे चाबी पानी में गिर गयी. बहुत हाथ मारा लेकिन नहीं मिली. तब से लगातार चिल्लाती रही. लोग आये किंतु बंद दरवाज़े से निकालना किसी से संभव नहीं हुआ. अंधकार हो गया. लौटना चाहा किंतु भयभीत युवती ने आने नहीं दिया. धीरे धीरे बूंदें गिरने लगीं. 10 बजे रात तक पानी छत के ऊपर बहने लगा. उपलब्ध सामान ले कर दोनों खड़े हो गये. पानी का बहाव चार-पाँच इंच के करीब था. ऊपर से पानी नीचे पानी. सांय सांय हवा. ठंड से काँपता बदन, बंगभाषी युवती, काली को याद कर रही थी और मैं शिव की स्तुति. अचानक छत से कोई वस्तु टकराई. हाथ बढ़ाया तो एक बेंच. उसे खींच कर ऊपर किया और दोनों उस पर बैठ गये. रात भर बैठे रहे. निर्जन अंधकार में दो जन और मृत्यु भय के अलावा और किसी प्रकार का कोई अहसास नहीं. सबेरा हुआ. पानी की रफ़्तार में वृद्धि देख कर जाने का साहस नहीं हुआ. रह रहकर अपने पर कोफ्त होती रही कि क्यों दूसरे के लिए अपनी जान आफ़त में डाल ली. वर्षा तेज़ हो गयी. पानी ने कपड़े को बदन से चिपका दिया. मृत्यु के भय ने सारी भावनाओं को खत्म कर दिया. हेलिकाप्टर की गड़गड़ाहट से वातावरण गूंज उठा. सामान गिराये जा रहे थे. छत न तो ऊंची थी न ही वहां लालझंडा था. एक नाव आती दीखी. ज़ोर से चिल्लाया. एक परिचित विधायक अपने आवास जा रहे थे. वे आये और हम लोगों को उस होटल में छोड़ गये, जहाँ मैं ठहरा हुआ था. कलकत्ते के लिए ट्रेन सेवा उपलब्ध न होने के कारण युवती को मेरे साथ होटल में रहना पड़ा. यह जगह सुरक्षित थी. मैंने अपने सोने की व्यवस्था बाहर की. प्राणरक्षा सुनिश्चित होने पर युवती का आत्मविश्वास जागा. फिर उसने रवींद्र संगीत भी सुनाया. चौथे दिन कार्यालय जा कर युवती के पति को खोज निकाला. वह अपनी पत्नी को मृत समझ चुके थे. समाचार पा कर प्रसन्न हुए.

मिथलेश कुमार मिश्र
रेणुकूट, मिर्जापुर

यह वर्ष अंतरराष्ट्रीय महिलावर्ष है. 18 जुलाई 1975 को अजमेर में आयी बाढ़ में कुछ महिलाओं ने भी अपने साहस का परिचय दिया. वह दिन हम कभी नहीं भूलते. उस दिन उन्होंने बहते हुए कुछ बच्चों को बचा कर अपने साहस की मिसाल दी. अजमेर के प्रसिद्ध अनासागर में उस दिन पानी भर गया था जिस के कारण निचली बस्ती में स्थित बहुत से घरों में पानी आ गया. हज़ारों लोग बेघरबार हो गये. भजनगंज स्थित मेरे मित्र ने 10-12 घंटे पानी में रह कर किस प्रकार बच्चों की जान बचायी उस की कथा यों है: नाम सुरेशचंद्र माथुर, हाल ही में तीन महीने पहले घड़ी की दूकान खोली. घर में 7-8 फीट पानी, पड़ोस में एक महिला रहती है जिन का इन से पहले से ही झगड़ा था. लेकिन उस बाढ़ के दिन उन्होंने उसी महिला की बेटी की जान बचायी. उन की बेटी बीमार थी. घर में पानी भरने पर वह चीख रही थी कि मेरी बेटी को बचाओ. उन्होंने सुरेश को देखा जो पानी में डूबते कुछ बच्चों की जान बचाते हुए अपने साहस का परिचय दे रहा था. महिला ने चिल्लाना शुरू कर दिया तो सुरेश ने उस की बेटी को कंधे पर रख कर अपने घर की दूसरी मंज़िल पर पहुँचा दिया. लड़की को बहुत तेज़ बुखार था. दूसरी तरफ़ कुछ महिलाएँ भी किसी किसी की जान बचा रही थीं. लोग घर छोड़ कर जाने की कोशिश कर रहे थे. कुछ घरों की छतों पर जा रहे थे. उधर अनासागर का पानी बढ़ कर भजनगंज, वैशालीनगर, बिहारीगंज आदि स्थानों में भर रहा था. अजमेर की स्थिति बहुत ख़राब थी. लोगों के पास खाने के लिए कुछ नहीं था. मेले का सारा मज़ा ख़राब हो गया. दूर-दूर से ज़ियारत करने के लिए आये हुए धर्मप्रवण मुसलमान बाढ़ की चपेट में आ गये. रेल स्टेशन की हालत बहुत ख़राब थी. प्लेटफार्म पर खड़ी गाड़ियों में पानी भर गया था. सुरेश और उस महिला की कहानी ज़रूर दिलचस्प है. जब सुरेश रात में उस के घर पहुँचे तो उस ने उन्हें लाख लाख धन्यवाद दिया और झगड़ा करने पर पश्चाताप करने लगी. ज़ाहिर है कि दोनों के बीच का वैमनस्य समाप्त हो गया और दोनों के बीच का रिश्ता काफ़ी मधुर हो गया.

संजय शांतनु भट
अजमेर

विश्वसंस्था का विश्वव्यापी रूप

संयुक्तराष्ट्र की स्थापना से ले कर अब तक उस की रचना में कितने ही महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आये हैं. लेकिन हाल ही का परिवर्तन तीसरी दुनिया के देशों से संबंध रखता है. संवैधानिक और तकनीकी दृष्टि से संयुक्तराष्ट्र में एशियाई-अफ़्रीकी देशों का बहुमत हो गया है. एशियाई-अफ़्रीकी देशों के बहुमत से जो निर्णय लिये जाते हैं उन्हें लागू करने में और पश्चिमी देशों के प्रस्तावों पर निर्णयों को अमल में लाने में कुछ न कुछ अंतर ज़रूर दिखायी पड़ता है. लेकिन यह संतोष की बात है कि संवैधानिक और तकनीकी दृष्टि से संयुक्तराष्ट्र पर अफ़्रीकी और एशियाई देशों के बहुमत का प्रभाव पहले की अपेक्षा बढ़ा ही है.

हाल ही में संयुक्तराष्ट्र महासभा ने अरब गुट के देशों का वह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जिस में सियोनवाद नस्लवाद के रूप में स्वीकार किया गया है. इस प्रस्ताव के पक्ष में 72 मत और विरोध में 35 मत थे. 32 सदस्यों ने किसी ओर वोट नहीं दिया और तीन अनुपस्थित थे. इस प्रस्ताव पर विचार को स्थगित रखने की कोशिश भी बहुत हो रही थी. प्रस्ताव स्थगित रखा जाये या नहीं, इस पर भी बहुमत 67 के मुक़ाबले 65 था. 15 तटस्थ थे और 6 अनुपस्थित. स्पष्ट है इस तरह के प्रस्ताव को लाने में देरी की कोशिश बेकार हुई. सुझाव यह था कि महासभा के 1976 के अधिवेशन में यह प्रस्ताव लाया जाये. भारत ने अरब गुट के पक्ष में ही वोट दिया, जब कि सुरक्षापरिषद् में पाकिस्तान की सदस्यता के लिए अरब गुट के देशों ने पाकिस्तान के लिए मत दिया था.

इस के अलावा महासभा ने बहुमत से यह भी निर्णय लिया कि पश्चिमेशिया में शांति स्थापना की किसी भी बातचीत में फ़िलीस्तीनी मुक्ति संगठन की मौजूदगी आवश्यक है. इतना ही नहीं महासभा ने इस के लिए विधि विधान तैयार करने का भी निश्चय कर लिया. इस से फ़िलीस्तीनी संयुक्तराष्ट्र में अपनी माँग प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत कर सकेंगे.

जिस समय महासभा सियोनवाद को एक नीति के रूप में मान्यता देने के प्रस्ताव पर विचार कर रही थी सदन में तनातनी का वातावरण था. कोशिश यह थी कि प्रस्ताव अगले अधिवेशन के लिए स्थगित कर दिया जाये. अमेरिका तथा यूरोपीय आर्थिक समदाय के देश स्थगन पर ज़ोर दे रहे थे और उन का साथ देने वालों में थे पुर्तगाल, कैनाडा, जापान, ऑस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड तथा अन्य बहुत से दक्षिण अमेरिकी देश. कई अफ़्रीकी देशों ने भी स्थगन के प्रस्ताव का समर्थन किया. इस्राइल के मुख्य प्रतिनिधि ने इस अवसर पर अपने भाषण में कहा कि सियोनवाद विरोधी मसौदे पर मत लिया जाना 10 नवंबर के दिन इस लिए भी अजीब है कि सन् 1938 में आज के दिन हिटलर की सेनाओं ने जर्मनी के यहूदियों के विरुद्ध अभियान किया था और जर्मनी के सभी शहरों में यहूदी जाति को तहसनहस करने और उस की नस्ल को नेस्तनाबूद करने के लिए कोई कसर नहीं उठा रखी थी. इस्राइल के प्रतिनिधि का भाषण बहुत ही मर्मस्पर्शी था. भाषण के दौरान अमेरिकी और पश्चिमी यूरोपीय देशों की सीटों पर से भी हर्षध्वनि सुनायी पड़ रही थी.

संयुक्तराष्ट्र में शक्ति संतुलन : संयुक्तराष्ट्र महासभा द्वारा पारित इस प्रस्ताव की घटना के संदर्भ में यह देखना होगा कि अनेक महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर पश्चिमी यूरोप के देशों और एशियाई-अफ़्रीकी देशों के बीच किस प्रकार का संतुलन रहता है. एक सर्वेक्षण से पता चलता है कि प्रमुख प्रश्नों पर 35 देश हमेशा अमेरिका का साथ देते हैं. 35 ही ऐसे है जो अमेरिका पर कम निर्भर करते हैं. लेकिन उन्हें अमेरिका विरोधी नहीं कहा जा सकता. 70 देश बिल्कुल अमेरिका विरोधी है. अभी हाल ही में सुरक्षापरिषद् की एक जगह के लिए महासभा के निर्णय से संकेत मिलता है कि भारत और पाकिस्तान को एक दूसरे के विरुद्ध खड़ा कर दिया गया था. भारत ने अपना नाम वापस ले कर स्थिति बचा ली. लेकिन महासभा में भारत की स्थिति अन्य एशियाई-अफ़्रीकी देशों से भिन्न नहीं है. जहाँ तक सोवियत संघ का सवाल है उसे मालूम है कि वह संयुक्तराष्ट्र में कहाँ है. संयुक्तराष्ट्र में अमेरिका के स्थायी प्रतिनिधि ने एक बार अपने विश्लेषण में कहा था कि संयुक्तराष्ट्र में कोई बारह देश पूर्णतः लोकतांत्रिक हैं. कोई तीस देश ऐसे हैं जिन में कुछ चंद नागरिक अधिकार सुरक्षित है. लेकिन अधिकांश देशों में दक्षिण अथवा वामपंथी सरकारें हैं. निस्संदेह यह स्थिति संयुक्तराष्ट्र में अमेरिका के यकायक स्वयं ही बहुमत हो जाने की स्थिति से पहले ही है और उन दिनों में भारत संयुक्तराष्ट्र में विकासशील देशों का अनौपचारिक नेता ही माना जाता था. लेकिन तथ्य तो तथ्य ही है. किसी भी प्रश्न पर गुट बना कर वोट डालना आज संयुक्तराष्ट्र में एक आम बात हो गयी है. इस प्रकार के मतदान के जो परिणाम निकलते हैं वे भी स्पष्ट ही हैं. गुटों की दृष्टि से पुराने गुट अब कमज़ोर पड़ते जा रहे हैं. नये गुट बनते जा रहे हैं. अब संयुक्तराष्ट्र में नाटो का कोई गुट नहीं है. वारसाउ संधि के देशों की स्थिति भी संयुक्तराष्ट्र में अब पहले जैसी नहीं है. मस्क्वा और पीकिङ के बीच मतभेदों के कारण अब स्थिति बदल गयी है. सभी जानते हैं जातिवाद और उपनिवेशवाद जैसी बुराइयों के प्रश्न पर अफ़्रेशियाई देशों के गुट ने एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की. इन प्रश्नों पर एशियाई अफ़्रीकी देश बिल्कुल एक दिखायी दिये. लेकिन तेल संकट उत्पन्न होने पर पेट्रोलियम का उत्पादन करने वाले देशों की स्थिति कुछ भिन्न हो गयी. फिर कुछ वर्षों में इस्लामी देशों का गुट भी उभर कर सामने आया. अभी पिछले दिनों
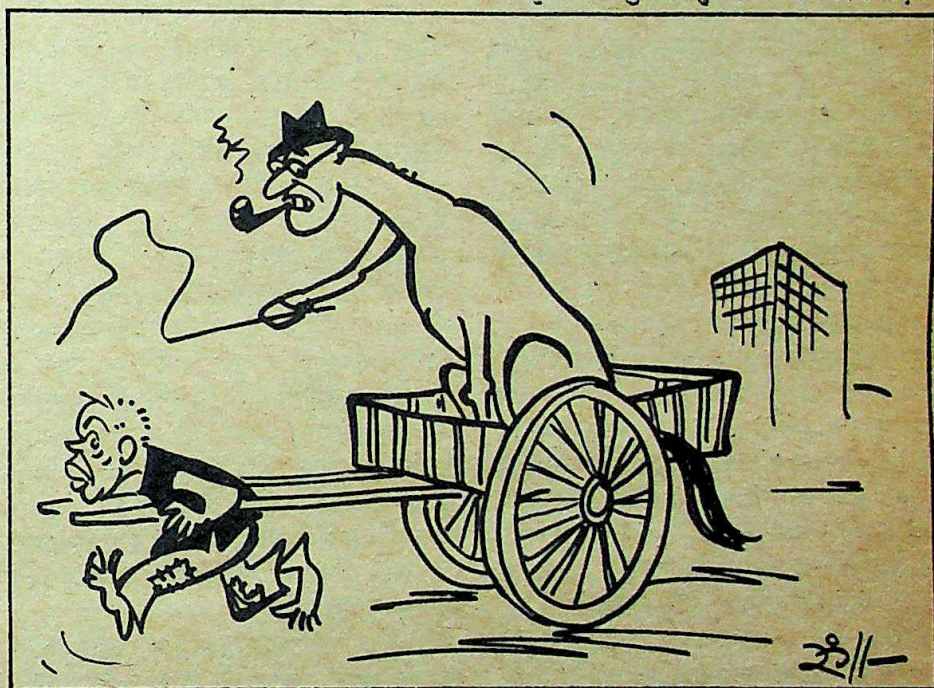
बीसवीं शताब्दी में भी अमीर देश गरीब देशों की सवारी करने से चूकते नहीं हैं पर संयुक्तराष्ट्र की समस्या सिद्धांत और संख्या दोनों का मुकाबला है!

जब बड़ी मुश्किल से अमेरिका को इस बात के लिए राजी किया गया कि वह जाति भेद विरोधी प्रश्नों पर एशियाई अफ़्रीकी देशों का साथ दे तो पेट्रोलियम का उत्पादन करने वाले कुछ इस्लामी देश सियोनवाद विरोधी प्रस्ताव के विपक्ष में उभर कर सामने आये. इस विश्लेषण में कहा गया है कि सियोनवाद अच्छा हो या बुरा लेकिन इस समय यह प्रश्न संयुक्तराष्ट्र में उठाया जाना उचित मालूम नहीं होता जब अरब-इस्राइल झगड़े को स्थायी रूप से निपटाने की कोशिश की जा रही हो.

अरब जगत से आशाएँ : अभी पिछले कुछ वर्षों की घटनाओं से सिद्ध होता है कि मिस्र सहित अनेक अरब देश इस्राइल के साथ सह-अस्तित्व के सिद्धांत पर संबंध बनाने को तैयार हैं. प्रश्न केवल सीमाओं का है. ऐसी स्थिति में सियोनवाद पर महासभा की भूमिका अरब इस्राइल संघर्ष को तय करने में सहायक होगी या नहीं, यह एक विवादास्पद प्रश्न है. चाहे जो भी हो संयुक्तराष्ट्र और उस की अन्य संस्थाओं में अफ़्रीकी-एशियाई देशों का बहुमत बढ़ने के बावजूद कुछ प्रश्नों पर गुट बना कर मत देने की प्रणाली शुरू हो चुकी है. इस तरह के मतदान के परिणाम कोई बहुत अच्छे नहीं सामने आये हैं. इस लिए संयुक्तराष्ट्र में शक्ति संतुलन में परिवर्तन आने के बावजूद एक नये रवैये की आवश्यकता है. पश्चिमी देशों के ही कुछ राजनैतिक समीक्षकों का विचार है कि गुट बना कर वोट देने की प्रणाली को संतुलित करने में भारत एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है. पहली बात तो यह है कि कुछ विवादास्पद प्रश्नों पर भारत को भी तटस्थ रवैया अपनाना चाहिए. भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है और जब भी जातिवाद का कोई अहम मामला महासभा में किसी कारण उपस्थित हो तो भारत तटस्थ रह सकता है.

संयुक्तराष्ट्र उद्देश्यों की समीक्षा : 24 अक्तूबर 1975 को संयुक्तराष्ट्र की तीसवीं वर्षगाँठ के अवसर पर उस के अब तक के कार्यों की व्यापक समीक्षा की गयी थी. यह तो सभी ने स्वीकार किया कि अपनी स्थापना से ले कर अब तक के तीस वर्षों में दुनिया की आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक प्रगति के लिए संयुक्तराष्ट्र उपयोगी संस्था साबित हुई है. इस अवसर पर संयुक्तराष्ट्र ने विकसित विकासशील सदस्य देशों तथा बाहर के सभी देशों ने इस विश्व संस्था में अपनी आस्था व्यक्त की और सभी ने स्वीकार किया कि संयुक्तराष्ट्र अंतरराष्ट्रीय जीवन का अभिन्न अंग है. लेकिन इस अवसर पर संयुक्तराष्ट्र के पुनर्गठन पर भी कुछ सुझाव पेश किये गये. सभी ने स्वीकार किया कि आज का संयुक्तराष्ट्र नाजुक दौर से गुज़र रहा है. महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर निर्णय लेने और उसे लागू करने की क्षमता बढ़ानी ही होगी. तभी संयुक्तराष्ट्र विश्व को सही दिशा देने के अपने उद्देश्य में सफल हो सकता है. विश्व के कुछ राजनीतिज्ञों ने संयुक्तराष्ट्र के घटते हुए प्रभाव पर भी चिंता व्यक्त की. इस बात पर सभी एकमत थे कि नीति निर्धारण के साथ साथ निर्णयों को लागू करने का सदस्य देशों का संकल्प ही संयुक्तराष्ट्र को नयी दिशा दे सकता है. आज संयुक्तराष्ट्र के सामने चुनौतियाँ हैं और गुटबंदी के कारण उस की प्रतिष्ठा भी ख़तरे में है.

इस व्यापक समीक्षा में संयुक्तराष्ट्र की अनेक त्रुटियों का उल्लेख भी हुआ है. संयुक्तराष्ट्र पर बड़े देशों के प्रभाव की चर्चा भी हुई. ऐसे प्रश्नों का भी उल्लेख हुआ जिन्हें निपटाने में संयुक्तराष्ट्र बिल्कुल ही असफल रहा है. मिसाल के तौर पर सिप्रस में हिंसा, पश्चिमेशिया संघर्ष, कांगो, कश्मीर और इसी तरह के अन्य सवाल. संसार के सामने कुछ ऐसी समस्याएँ हैं जिन से स्थिति विस्फोटक हो सकती है. इन समस्याओं में भूख, बेरोज़गारी, अन्याय, रोग और आर्थिक विषमताएँ भी हैं. समूचे विश्व की अर्थव्यवस्था आज इतने बड़े संकट में है कि उस का अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता. इन सभी समस्याओं के तत्काल समाधान की आवश्यकता है. विश्व को एक नयी अर्थव्यवस्था की भी नितांत आवश्यकता है. संयुक्तराष्ट्र ने अप्रैल से मई, 1974 तक के महासभा के अधिवेशन में नयी अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था के लिए कुछ घोषणाएँ स्वीकार की थीं और देशों के आर्थिक कर्त्तव्य तथा अधिकारों की परिभाषा भी की थी. लेकिन इस दिशा में अब तक कोई विशेष प्रगति नहीं हुई. महासभा के अधिवेशनों में प्रश्नों पर लंबी-लंबी बहसें होती हैं. प्रस्ताव स्वीकार भी कर लिये जाते हैं. लेकिन उन के परिपालन का कार्य अधूरा ही पड़ा रहता है. ऐसी स्थिति में संयुक्तराष्ट्र की रचना और उस में नया शक्ति संतुलन बहुत महत्त्व रखता है. फिर भी विश्व को आज संयुक्तराष्ट्र जैसे विश्वसंगठन की आवश्यकता है. नये शक्ति संतुलन में ग़रीब और अमीर देशों के बीच ज़बर्दस्त खाई एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है. इस संबंध में मात्र प्रस्तावों से काम नहीं चल सकता. एशियाई-अफ़्रीकी देशों का बहुमत यदि विकसित देशों को आर्थिक विषमताओं के बारे में एक ठोस कार्यक्रम अपनाने के लिए राज़ी कर सकता है तो निश्चय ही संयुक्तराष्ट्र विश्व में एक ऐसी नयी अर्थ-व्यवस्था को जन्म दे सकता है जिस में इस प्रकार की विषमताएँ नहीं रहेंगी और विकसित देशों तक सीमित समृद्धि का लाभ समूचे संसार को मिल सकेगा. यदि अफ़्रीकी-एशियाई देशों के बहुमत को संयुक्तराष्ट्र में शक्ति संतुलन का आधार बनाया जाता है तो निश्चय ही यह विश्वसंस्था अपने वास्तविक लक्ष्य को पूरा नहीं कर सकती.

कुछ प्रेक्षकों के अनुसार सियोनवाद संबंधी संयुक्तराष्ट्र के हाल ही के प्रस्ताव को पश्चिम में इस दृष्टि से देखा जा रहा है कि संयुक्तराष्ट्र पर तीसरी दुनिया के देशों का प्रभाव बढ़ने की आशंका है. पश्चिमी देशों के कुछ प्रेक्षक तो यहाँ तक भी कहने लगे हैं कि संयुक्तराष्ट्र पर अरब देशों का प्रभुत्व अधिक है. पश्चिमी देशों के प्रेक्षकों की राय में अरब सेनाएँ यूरोप के लिए ही एक ख़तरा बन गयी हैं और संयुक्तराष्ट्र के सियोनवाद संबंधी इस प्रस्ताव को इस ख़तरे के बढ़ने का एक बहुत बड़ा संकेत माना जा रहा है. लेकिन यदि पश्चिमी देश विश्व संस्था के इस प्रकार के प्रस्तावों को अपने लिए ख़तरों का सूचक मानने लगेंगे तो निश्चय ही अफ़्रीकी-एशियाई देशों का बहुमत उन के लिए एक शक्ति परीक्षा बन जायेगा. तब संयुक्तराष्ट्र का क्या होगा? इधर कुछ प्रश्नों पर अमेरिका ने संयुक्तराष्ट्र में विकासशील देशों के विरुद्ध आक्रामक रवैया अपनाया है. अभी हाल ही में संयुक्तराष्ट्र के सामाजिक और मानवाधिकार आयोग की एक बैठक में जब सभी देशों से राजनैतिक बंदियों की रिहाई के अनुरोध का प्रस्ताव आया था तो इस प्रश्न पर विकासशील देशों और अमेरिका के बीच बहुत ही गहरा मतभेद देखने में आया. बल्कि ब्रिटेन ने इस प्रश्न पर अमेरिकी प्रतिनिधि का विरोध भी किया. अमेरिका को इस पर आश्चर्य हुआ, क्यों कि वह अपने इस रवैये के लिए सभी यूरोपीय देशों से समर्थन की आशा करता था. कुछ प्रेक्षकों ने संयुक्तराष्ट्र में अमेरिका के इस रवैये को विश्वसंस्था के प्रति अमेरिका की एक नयी नीति की संज्ञा दी है, जिस का उद्देश्य अफ़्रीकी-एशियाई देशों के हर प्रस्ताव का विरोध करना बताया जाता है.

इस प्रश्न को ले कर आयोग की बैठक में काफ़ी गरमागरमी हुई थी. बात बहुत साधारण थी. प्रस्ताव में केवल राजनैतिक बंदियों को आम मुआफ़ी देने की माँग मानवीय आधार पर की गयी थी. पर साथ ही यह भी देखने में आया कि इस प्रश्न पर अनेक पश्चिमी देश अमेरिकी नीति के आलोचक बन गये. इस का मतलब यह है कि वह अफ़्रीकी-एशियाई देशों से बदला लेने की जिस तरह की भावना का प्रदर्शन संयुक्तराष्ट्र में कर रहा है उस से उस के अनेक मित्र देश ही सहमत नहीं हैं. संयुक्तराष्ट्र में पश्चिमी देशों के कुछ राजनयज्ञों का तो यहाँ तक विश्वास है कि अमेरिका संयुक्तराष्ट्र में अफ़्रीकी-एशियाई देशों को अलग-थलग करने की नीति अपना रहा है.

इन सभी घटनाओं के संदर्भ में इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि यदि बड़े देश संयुक्तराष्ट्र में अफ़्रीकी-एशियाई देशों के बहुमत को संवैधानिक दृष्टि से नहीं देखते तो विश्वसंस्था राजनीति से अलग हट कर समस्त मानव जाति की आर्थिक और सामाजिक प्रगति में सहायक होने का अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकती.

ब्रिटेन

लोकतंत्र : परीक्षा की घड़ी

गौरीशंकर जोशी

ब्रिटेन को संसदीय लोकतंत्र का गढ़ और ब्रितानी संसद को दुनिया भर की संसदों की 'जननी' मानना जिन लोगों के लिए यों अनिवार्य हो कि यह बात घुट्टी में पिला दी गयी थी उन्हें भी आज कई प्रश्न कुरेद रहे हैं. जागरूक ब्रितानी भी पिछले दस वर्षों की उखाड़-पछाड़ देखने के बाद आज कुछ बेज़ार सा दीखता है क्योंकि दो प्रमुख राजनैतिक दलों—टोरी और लेबर—में से कोई भी देश को आर्थिक संकट से उबारने और खोई हुई प्रतिष्ठा वापस दिलाने में सफल नहीं रहा. भूतपूर्व कंजर्वेटिव नेता एडवर्ड हीथ और मौजूदा प्रधानमंत्री (लेबर नेता) हेरल्ड विल्सन के शासन से समान रूप से तंग आया हुआ साधारण ब्रिटेन-वासी आज अनिश्चितता के दलदल में फँसा है और स्वयं को बहला रहा है कि उस के दिन शायद तब फिरें जब उत्तरी सागर में खोजा गया तेल भुगतान-संतुलन की स्थिति सुधारने लगे. . . या मौजूदा सरकार की कटु आलोचना करने वाली नई टोरी नेता मार्गरेट थैचर नये चुनाव में विजयी हो कर कोई नया करिश्मा कर दिखाये.

1966 के बाद ब्रिटेन में अब तक कोई ऐसा अवसर नहीं आया है जब जनता किसी एक दल को सत्ता में बिठा कर अगले पाँच वर्षों के लिए अपनी समस्याओं के प्रति निश्चित हो गयी हो. चाहे विल्सन हों या हीथ, दोनों अपनी अपनी टोपी बचाने के जुगाड़ में लगे रहे हैं. अपने संसदीय बहुमत को बढ़ाने—या कम से कम बनाये रखने की खातिर इन नेताओं ने दस वर्षों में अपनी राय में 'उचित अवसर' की तलाश करने के बाद चार चुनाव (1966, 1970, फ़रवरी 1974, अक्तूबर 1974) करा लिए हैं. पिछले साल अक्तूबर में विल्सन ने यह सोच कर पांसा खेला कि वे नये चुनाव में लेबर बहुमत बढ़ा लेंगे. लेकिन उन के दल को केवल 3 का बहुमत प्राप्त हुआ और वह भी इस कीमत पर कि स्कॉटलैंड में लेबर की 41 सीटों में से 36 के चुनाव में स्कॉटिश नेशनल पार्टी ने साबित कर दिखाया कि वह बहुत पीछे नहीं है और उन के सूबे की उपेक्षा की जाती रही तो वहाँ न केवल भविष्य में लेबर दल के 'निश्चित' वोट खटाई में पड़ जायेंगे बल्कि पृथकतावादी आंदोलन के लिए मार्ग भी प्रशस्त हो जायेगा.

ब्रिटेन की घरेलू राजनीति में शायद यह पहला अवसर है जब कि लोकसभा में केवल 3 के बहुमत से टिकी सरकार प्रतिपक्षी दलों (कंजर्वेटिव, लिबरल, स्कॉटिश नेशनलिस्ट पार्टी, वेल्स की नेशनलिस्ट पार्टी और उत्तरी आयरलैंड की लॉयलिस्ट पार्टी) से इतनी डरी हुई जान पड़ती है. सदियों से स्कॉटलैंड और वेल्स दिखावे के लिए ग्रेट ब्रिटेन की इकाई के अभिन्न अंग रहे हों परंतु इन प्रदेशों में अंदर ही अंदर यह शिकायत सुलगती रही है कि बहु-संख्य अंग्रेज़ स्कॉटलैंड या वेल्स के अपने 'भाइयों' के साथ सौतेलापन बरत रहे हैं, आर्थिक और औद्योगिक दृष्टियों से वेल्स और स्कॉटलैंड ग्रेट ब्रिटेन के 'पिछड़े हुए इलाके' बन कर रह गये हैं. यही कारण है कि (ब्रिटेन के इतिहास में पहली बार) सिद्धांत रूप में यह माँग स्वीकार कर ली गयी है कि स्कॉटलैंड की राजधानी एडिनबरा और वेल्स की राजधानी कार्डिफ़ में लगभग स्वायत्त प्रांतीय असेंबलियाँ हों. लंदन में कोई भी ब्रितानी सरकार इतनी रियायत तो नहीं देगी कि ये असेंबलियाँ स्कॉटलैंड या वेल्स की पार्लियामेंट बन कर रह जायें, लेकिन असलियत को आँकने के बाद इतना सिद्धांत रूप में स्वीकार कर लिया गया है कि इन दो प्रांतों में बाकायदा मंत्रिमंडलीय प्रणाली के आधार पर (बशर्ते उस के अध्यक्ष को प्रधान-मंत्री नहीं, प्रमुख कार्यकारी पार्षद की संज्ञा दी जाये) शासन चलाया जा सकता है, स्वास्थ्य, भवन-निर्माण, शिक्षा, स्थानीय शासन, कृषि, आयोजना और पुलिस कामकाज की जिम्मेदारी प्रांतीय शासन को सौंपी जा सकती है. लेकिन साथ ही लंदन की केंद्रीय संसद इन प्रदेशों के संसद-सदस्य पूर्ववत निर्वाचित होने के बाद ग्रेट ब्रिटेन का प्रतिनिधित्व करते रहेंगे. दूसरे शब्दों में लंदन का 'प्रभुत्व' भी बना रहेगा और उग्र (स्कॉटिश या वेल्स) राष्ट्रवादी भावना भी दबी रहेगी.

ऐसी बात नहीं है कि इस प्रकार के सत्ता-विकेंद्रीकरण के प्रति लेबर दल वचनबद्ध हो. टोरी दल हो या लेबर, अपने देश के कुछ इलाकों में 'होम रूल' की स्थापना नहीं चाहेगा. लेकिन पिछले वर्ष के दूसरे आम चुनाव में स्कॉटिश राष्ट्रवादियों द्वारा प्रस्तुत चुनौती को ध्यान में रख कर विल्सन सरकार ने यह सेहरा अपने सिर ले कर अपनी पार्टी की स्थिति मज़बूत बनाने का प्रयास किया है. अधिकांश प्रेक्षक यह मानते हैं कि इससे (विशेष रूप से स्कॉटलैंड में) पृथकतावादी ज्वर थमने के स्थल पर और प्रबल होगा क्योंकि उत्तरी सागर में अच्छी मात्रा में तेल मिल जाने के बाद अधिकांश स्कॉटलैंड वासी अब यह समझने लगे हैं कि उन के पिछड़े-पन का युग समाप्त हो गया है. और इस तेल-संपदा के फलस्वरूप (शेष ब्रिटेन प्रगति करे या न करे) उन का अपना तो बेड़ा पार हो ही जायेगा. असली समस्या उस समय पैदा होगी जब (एडिनबरा में असेंबली निर्वाचित हो जाने के बाद) स्कॉटलैंड वाले पायेंगे कि अपनी रुग्ण अर्थव्यवस्था का उपचार करने की खातिर लंदन में केंद्रीय संसद स्कॉटलैंड के विकास के मार्ग में अनावश्यक रोड़े अटका रही है. अभी हाल में अपनी ब्रिटेन यात्रा के दौरान कुछ स्कॉटिश राष्ट्रवादी नेताओं ने मुझे बताया कि फिर भौगोलिक दृष्टि से उत्तरी सागर और उस की संपदा पर स्कॉटिश स्वामित्व का दावा और भी प्रखर हो जायेगा.

स्कॉटलैंड और वेल्स की माँग स्वीकार कर के विल्सन सरकार अंततः लिबरल पार्टी की इस माँग से भी नहीं कतरा सकती कि समूचे देश में

प्रधानमंत्री हेरल्ड विल्सन : मुश्किलें बहुत हैं

चुनाव प्रणाली में सुधार किया जाये ताकि प्रत्येक दल को आनुपातिक प्रतिनिधित्व मिल सके. (पिछले अनेक चुनावों में लिबरल दल को 12-15 प्रतिशत मतदाताओं के वोट मिले हैं लेकिन 635 सदस्यों की लोकसभा में उस के निर्वाचित प्रतिनिधियों की संख्या सिर्फ़ डेढ़-दो प्रतिशत रही है).

पिछला आम चुनाव हार जाने के बाद टोरी दल हाथ पर हाथ धरे नहीं बैठा है. लगभग सुनिश्चित विजय को पराजय में बदलने का दोषी उस ने अपने नेता एडवर्ड हीथ को पाया और इस वर्ष दल का नेतृत्व 50-वर्षीया श्रीमती मार्गरेट थैचर को सौंप दिया ताकि न केवल स्त्री होने के नाते बल्कि 'हेडमास्टरनी' की सी 'प्रतिमा' वाली यह नयी नेता पार्टी के लिए अधिक वोट भी जुटाये और टोरी कार्यकर्त्ताओं में नई जान भी फूंके. टेलीविजन की लोकप्रियता के कारण सभी पश्चिमी देशों में बड़ी सार्वजनिक राजनैतिक सभाएँ या रैलियाँ बीते युग का इति-हास बन कर रह गयी हैं. और ब्रिटेन कोई अपवाद नहीं है. संयोगवश ब्रिटेन की राजधानी लंदन में लेबर और कंजर्वेटिव दलों के केंद्रीय कार्यालय एक ही सड़क पर आमने-सामने स्थित हैं. वहाँ जा कर मैंने पाया कि कंजर्वेटिव पार्टी इस समय मध्यमार्गियों की सहानुभूति जुटाने में जी जान से लगी हुई है. पार्टी के कार्यालय में बाकायदा एक टेलीविजन स्टुडियो है जहाँ टोरी समर्थक युवक-युवतियों को दीक्षित

कर के प्रशिक्षण दिया जा रहा है कि टेलीविजन पर होने वाली राजनीतिक बहसों में वे क्या और किस तरह बोलें ताकि दर्शक अधिक प्रभावित हो सकें. टोरी आक्रमण के प्रमुख मुद्दे हैं : लेबर सरकार 15 लाख लोगों की बेरोज़गारी (ब्रिटेन में दूसरे विश्वयुद्ध के बाद किसी एक वर्ष में इतने बेरोजगार कभी नहीं थे), ब्रितानी मुद्रा पाउंड की अधोगति (पाँच साल पहले ढाई डॉलर के और अब सिर्फ़ 2 डॉलर के बराबर), कमरतोड़ महँगाई में भी वेतनवृद्धि पर रोक और बैंक दर 12 प्रतिशत तक पहुँचा देने की ज़िम्मेदार है. टोरी नेता श्रीमती थैचर अतलांतिक पार अमेरिका जा कर भी परंपरागत ब्रितानी शिष्टता से हट कर लेबर सरकार के 'दिवालियेपन' की चर्चा करने से नहीं चूकीं और अब भी अपने इस राजनैतिक व्यवहार को 'युक्ति संगत' मानती हैं.

राजनैतिक दलों की आज़ादी के सिद्धांत पर आधारित ब्रिटेन की संसदीय प्रणाली अब कशमकश के दौर से गुज़रने लगी है. परंपरागत उदारता, शिष्टता और लोकतंत्रीय ईमानदारी की परीक्षा का समय आने लगा है. जिस देश ने सोलहवीं शताब्दी से ले कर दूसरे विश्वयुद्ध तक निरंतर सफलता ही सफलता, प्रगति ही प्रगति देखी वह आज अपने आप को दलदल में फँसा-सा अनुभव करने लगा है. उस का आत्मविश्वास इस लिए नहीं डिगा है कि अब उपनिवेश हाथ से जाते रहे, बल्कि इस लिए कि अचानक आज की दुनिया में उस का शुमार 'ग़रीब' देशों में होने लगा है. फ्रांस और जर्मनी में आज ब्रिटेन की तुलना में 40 प्रतिशत अधिक खुशहाली है. पिछले 25 वर्षों में ब्रिटेन में विकास की जो दर रही है उस हिसाब से 1990 तक कुछ विकासशील देश तक उस से आगे निकल जायेंगे. लेकिन राजनीतिज्ञों का यह हाल है कि इस वर्ष अक्तूबर में उत्तर-पश्चिमी समुद्र-तट पर स्थित ब्लैकपूल नगर में अपने अपने पार्टी सम्मेलनों में लेबर

टोरी दल की नेता श्रीमती थैचर : शिष्टता से काम नहीं !

नेता स्वयं को बधाई देते रहे कि देश ने उन्हें अपना शासक माना है और कंज़र्वेटिव नेता देश की स्थिति से सबक सीखने के स्थान पर सभाभवन में उपस्थित श्रोताओं की वाहवाही लूटने में जुटे रहे. दोनों यह भूल गये कि दो साल पहले जब कोयला-खानों में काम करने वाले मजदूरों ने हड़ताल की थी और देशवासियों को सप्ताह में केवल तीन दिन काम करने पर बाध्य होना पड़ा था तब की तुलना में आज ब्रिटेन में उत्पादन कम हो रहा है और वेतन तब की तुलना में 30 प्रतिशत बढ़ गये हैं. जिस स्वास्थ्य सेवा पर 6 अरब पाउंड खच होते हैं उसी में आज डॉक्टर हड़ताल करने पर उतर आये हैं.

इस स्थिति के परिणामस्वरूप ब्रितानी ट्रेड-यूनियन आंदोलन भी विभक्त हो रहा है. अब तक उस में कम्युनिस्ट प्रभाव प्रबल होता सा दीख रहा था लेकिन अब (इतिहास में पहली बार) कज़र्वेटिव तत्त्वों की घुसपैठ बढ़ रही है. अपनी परिस्थिति से ऊबा हुआ ब्रितानी मज़दूर वर्ग अब सिर्फ़ लेबर पार्टी की जेब में नहीं रहा. एटली की लेबर सरकार (1945-51) के ज़माने में भी पार्टी के वार्षिक सम्मेलनों में मार्क्सवादी धंआधार आलोचनात्मक भाषण देते रहते थे. लेकिन वह सरकार टिकी रही तो इस बलबूते पर कि उसे अरनेस्ट बेविन जैसे दिग्गज ट्रेड-यूनियन नेताओं का पूर्ण समर्थन प्राप्त था. कम्युनिस्ट जानते हैं कि ब्रिटेन में उन की पार्टी की सदस्य संख्या कुल 29,943 है और संसदीय प्रभाव शून्य के बराबर (फ़रवरी 1974 के आम चुनाव में पार्टी के 44 उम्मीदवारों को कुल 32,741 वोट मिल पाये और एक उम्मीदवार को छोड़ शेष सब की ज़मानतें ज़ब्त हो गयीं. अक्तूबर 1974 के आम चुनाव में 29 कम्युनिस्ट उम्मीदवारों को कुल मिला कर केवल 17,426 वोट मिले.) इस लिए ट्रेड यूनियनों पर ही ध्यान केंद्रित करना श्रेयस्कर है. लेकिन पिछले महीने 14 लाख सदस्यों वाली सशक्त इंजीनियरिंग यूनियन के चुनावों में दक्षिणपंथियों की विजय इस बात का संकेत है कि असंतुष्ट ब्रितानी मजदूर भी कम्युनिस्टों का बोलबाला स्वीकार नहीं कर सकते.

ब्रिटेन में संसदीय प्रणाली के एक और स्तंभ—हाउस ऑव लॉर्ड्स् (ऊपरी सदन)—पर भी संकट के बादल छाये हैं. परंपरा यह रही है कि इस सदन को हाउस ऑव कामंस द्वारा पास किये गये विधेयकों पर आपत्ति जता कर उन के क़ानून बनने में ढील डालने का सिद्धांत-रूप में अधिकार भले ही हो पर वह ऐसा किया कम करता था. आज स्थिति यह है कि निचले सदन में बहुमत वाली लेबर सरकार और (पितृगत अधिकारों के फ़लस्वरूप) टोरी बहुमत वाले ऊपरी सदन में टकराव प्रखर होता जा रहा है. अब लगभग सुनिश्चित लगता है कि विल्सन सरकार हाउस ऑव लॉर्ड्स् के अधिकारों पर कैंची चला कर उस के ढील डालने

नये कम्युनिस्ट नेता गॉर्डन मैकलेनन : संसद पर जोर नहीं है !

की क्षमता को सीमित करने ही वाली है. स्वीडन और न्यूज़ीलैंड में अभी हाल में ऊपरी सदनों को समाप्त कर के सिर्फ़ निर्वाचित सदस्यों वाले एक सदन का ढर्रा अपनाया जा चुका है. ऐतिहासिक कारणों से ब्रिटेन में इतना बड़ा क्रांतिकारी क़दम उठाया जाना संभव नहीं है.

ब्रिटेन में लोकतंत्रीय परिपाटी के लिए शायद सब से बड़ा ख़तरा उत्तरी आयरलैंड की विस्फोटक स्थिति ने पैदा कर दिया है. पिछले 6 वर्षों से वहाँ धार्मिक (प्रोटेस्टेंट-कैथलिक) मनमुटाव हिंसा और घृणा के ज़हरीले पौधों को सींचता आ रहा है और ब्रितानी सेना न स्थिति सँभाल सकती है न वहाँ से हटने का जोखिम मोल ले सकती है. उत्तरी आयरलैंड में दिन दहाड़े गोली चलाने और हत्या करने की वारदातें ब्रितानी समाचार-जगत और टेलीविजन चित्रों के लिए अब 'सामान्य' घटनाएँ बन चुकी हैं. बी.बी.सी. के संवाददाता घटनास्थल से इन घटनाओं के ध्वनिचित्र इस तरह प्रसारित करते हैं मानों किसी गार्डन पार्टी का वृत्तांत सुना रहे हों. अब सुसभ्य लंदन भी इस घटनाचक्र की परिधि में आ गया है. आयरी अतिवादी लंदन में 250 से भी अधिक बम विस्फोट कर चुके हैं, जिन में 60 से अधिक लोग जानें गँवा चुके हैं और 1000 घायल हो चुके हैं. क़ानून की लपेट में आये हुए अपराधियों को जो 'आजीवन' कारावास का दंड मिलता है उस के बावजूद वस्तुतः वे कुछ ही वर्षों में जेल से बाहर निकल आयेंगे. ब्रितानी सरकार सख्त कार्रवाई की धमकी देती भी है तो उस का मतलब अधिक से अधिक यह होता है कि जेल में इन हिंसक तत्त्वों को 'विशेष' दर्जे में न रख कर 'साधारण' अपराधियों की श्रेणी में शामिल किया जाये. 6 साल से चले आ रहे इस गृह युद्ध का निदान अब तंग आये हुए अनेक ब्रितानियों की दृष्टि में केवल मार्शल लॉ रह गया है. ऐसा हुआ तो ब्रिटेन दूसरे देशों में लोकतांत्रिक अधिकारों के हनन का राग भी नहीं अलाप सकेगा.

ज़िम्मेवार कौन ?

अमेरिकी गुप्तचर विभाग की गतिविधियों को ले कर हाल ही में अमेरिका में जितना उग्र विवाद उठ खड़ा हुआ है वह अमेरिका से बाहर के देशों में भी अब तक देखने में नहीं आया. सी. आई. ए. अपनी गतिविधियों के कारण समूची दुनिया में बदनाम है. परंतु अमेरिका में ही इस संस्था की गतिविधियों की निंदा होना यह सिद्ध करता है कि अमेरिकी जनता इस संस्था को पसंद नहीं करती.

अत्यधिक विवादास्पद प्रश्न सी. आई. ए. द्वारा राजनैतिक नेताओं की हत्या कराने जैसी गतिविधियों का है. अमेरिकी सीनेट में अब यह रहस्य खुला है कि सी. आई. ए. ने सरकारों को उलटने के षड्यंत्रों के सिलसिले में अनेक प्रसिद्ध राजनैतिक नेताओं की हत्या कराने के प्रयत्न किये. यह दूसरी बात है कहीं उसे सफलता मिली और कहीं नहीं मिली. राष्ट्रपति फोर्ड ने अपने हाल के एक वक्तव्य में सी. आई. ए. की गतिविधियों पर रोक लगाने के अमेरिकी लोकमत का आदर नहीं किया पर इतना ज़रूर कहा कि इस संस्था के हत्या के प्रयत्नों की पूरी जाँच की जायेगी. प्रसिद्ध अमेरिकी शांतिप्रिय नीग्रो नेता स्वर्गीय मार्टिन लूथर किंग की पत्नी ने भी अपने पति क़ी हत्या में सी. आई. ए. का हाथ बताया है. इधर सीनेट की गुप्तचर समिति ने रहस्योद्घाटन किया कि 1960-65 के बीच सी. आई. ए. ने दो विदेशी नेताओं की हत्या का प्रयत्न किया था लेकिन इस में सफलता नहीं मिली. फिर तीन देशों में असंतुष्ट लोगों को हथियारों की सप्लाई सी. आई. ए. ने की जिस से कि वहाँ वे अपने विरोधी राजनैतिक नेताओं की हत्या कर सकें.

चीले के भूतपूर्व राष्ट्रपति आयेंदे का अंतिम समय : आयेंदे की साम्यवादी रुझान रखने वाली सरकार में सी. आई. ए. की गहरी दिलचस्पी के आरोप रहे हैं

सीनेट की इस समिति के अनुसार कांगो के प्रधानमंत्री पैट्रिक लुमुम्बा और क्यूबा के श्री फीदेल कास्त्रो पर सी. आई. ए. की निगाह थी. इसी प्रकार डोमिनिकन रिपब्लिक के तानाशाह रैफल तुजिलो भी सी. आई. ए. के निशाना थे. दक्षिण वीएतनाम के राष्ट्रपति की हत्या का षड्यंत्र भी रचा गया. कास्त्रो को छोड़ कर बाकी सभी नेता सी. आई. ए. षड्यंत्रों का शिकार हुए. चीले के समाजवादी राष्ट्रपति आयेंदे की हत्या में सी. आई. ए. का हाथ बताया ही जाता है.

बताया जाता है कि आइसनहॉवर, केनेडी और जॉनसन प्रशासन के कार्यकाल में ये उच्च स्तरीय षड्यंत्र रचे गये थे. लेकिन अभी यह एक रहस्य ही है कि आख़िर सी. आई. ए. को हत्याओं आदि करने जैसे जघन्य कार्यों के आदेश राष्ट्रपति से ही मिलते हैं या सब काम सी. आई. ए. के अपने भीतरी मामले हैं. सी. आई. ए. की प्रबंध और नियंत्रण व्यवस्था के बारे में अमेरिका में भी कुछ स्पष्ट नहीं है. इस लिए यह कहना मुश्किल है कि इस गुप्तचर संस्था को राजनैतिक हत्याओं का अधिकार कौन देता है. लेकिन सी. आई. ए. के इन जघन्य कार्यों की जिम्मेदारी अंततः अमेरिकी राष्ट्रपति की ही है. सीनेट की समिति ने इस प्रसंग में शायद यह ठीक ही सुझाव दिया है कि अमेरिकी संसद् द्वारा नया क़ानून बना कर अमेरिका से बाहर किसी भी राजनैतिक नेता की हत्या करने के प्रयत्न को एक अपराध माना जाना चाहिए और यदि सी. आई. ए. ऐसा करती है तो न्यायपालिका की दृष्टि में वह अपराधी हो. वैसे वर्तमान अमेरिकी क़ानून के अंतर्गत यदि क़िसी विदेशी अधिकारी को अमेरिका में मारने का प्रयत्न किया जाता है, तो वह एक जुर्म है.

सीनेट समिति के निष्कर्ष : सीनेट समिति ने अपनी रपट में काफ़ी दिलचस्प तथ्य सी. आई. ए. के बारे में प्रस्तुत किये हैं. और इन्हीं तथ्यों के आधार पर वह यह निष्कर्ष पर पहुँची है कि इस गुप्तचर संस्था की गतिविधियों पर किसी न किसी रूप में सीनेट का नियंत्रण होना चाहिए. रपट के अनुसार 1960 में कांगो के प्रधानमंत्री श्री लुमुम्बा की हत्या करने का कार्य दो सी. आई. ए. अधिकारियों को सौंपा गया था. विशेष प्रकार का जहर कांगो भेजा गया और लुमुम्बा की हत्या के लिए उन के निकट पहुँचने के सभी उपाय किये गये. 1961 में अचानक समाचार मिला कि कांगो में श्री लुमुम्बा को विरोधियों ने मार दिया.

क्यूबा में कास्त्रो की हत्या का षड्यंत्र सफल नहीं हुआ. लेकिन क्यूबा के ही नेताओं के साथ मिल कर सी. आई. ए. ने इस तरह का प्रयत्न किया और अमेरिका से इस काम के लिए वहाँ कुछ आवश्यक सामान भेजा गया. मतलब यह कि जो लोग क्यूबा में कास्त्रो की हत्या करना चाहते थे उन्हें पूरा प्रोत्साहन अमेरिका की ओर से दिया गया.

डोमिनिकन रिपब्लिक के तुजिलो को 1961 में उन के विरोधियों ने गोली मारी थी. 1960 के शुरू के वर्षों से ले कर उन की हत्या के प्रयत्न बराबर चल रहे थे और अमेरिकी सरकार उन के विरोधियों को प्रोत्साहन दे रही थी. इस देश के सरकारी अधिकारियों को मालूम था कि विरोधी तुजिलो को मारना चाहते हैं. अमेरिकी अधिकारियों ने इस के लिए हत्या का प्रयत्न करने वालों को तीन पिस्तौलें तथा दूसरा सामान दिया था. वैसे मशीनगनें भी माँगी गयी थीं लेकिन अमेरिका ने इनकार कर दिया था. अभी इस बारे में कोई स्पष्ट सबूत नहीं मिले हैं कि ये हथियार तुजिलो की हत्या के लिए दिये गये थे या वहाँ पहुचाये गये थे, जिन से कि विरोधियों को हत्या करने का मौका मिल गया.

दक्षिण वीएतनाम में दीएम और उन के भाई नूह 21 नवंबर 1963 को दक्षिण वीएतनाम के एक सैनिक विद्रोह में मारे गये. सभी जानते हैं कि इस सैनिक विद्रोह को अमेरिका का पूरा समर्थन प्राप्त था. लेकिन अभी इस बारे में सबूत नहीं मिले हैं कि हत्या में सी. आई. ए. की कितनी भूमिका थी. लगता यह है कि सैनिक विद्रोह का उद्देश्य दीएम की हत्या करने का न रहा हो लेकिन विद्रोह की उथलपुथल में यह काम हो गया हो. पर इतना निश्चित है कि विद्रोह में सी. आई. ए. का हाथ था.

सीनेट समिति के अनुसार अमेरिकी अधिकारीं ऐसे सभी सैनिक नेताओं को वित्तीय और अस्त्र-शस्त्रों की सहायता देते हैं जो उस देश की सरकार को पटलना चाहते हैं जिन के प्रशासन को अमेरिका पसंद नहीं करता. रपट में कहा गया है कि कुछ मामले तो स्पष्ट हैं और

निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि राजनैतिक नेताओं की हत्या जैसे जघन्य कार्य यह अमेरिकी गुप्तचर संस्था कराती रहती है. लेकिन कुछ मामलों के बारे में अभी संदेह है. पर इतना जरूर है कि सी. आई. ए. में सरकारों को उलटने और राजनैतिक नेताओं की हत्या के षड़यंत्र रचने का काम होता रहता है. विचार विमर्श चलता ही रहता है कब क्या किया जाये इस की योजना भी बनती रहती है लेकिन यह पता नहीं चलता कि अमेरिकी प्रशासन कब और किस तरह के आदेश सी. आई. ए. को ऐसे कार्यों के बारे में देता है.

सीनेट समिति की यह रपट 347 पृष्ठों की है और 5 महीने की खोजबीन के बाद लिखी गयी है. डेमोक्रेटों के 6 और रिपब्लिकनों के 5 प्रतिनिधियों ने रपट का अनुमोदन किया है. सीनेट के गुप्त अधिवेशन में पूरी रपट को सुना गया है. राष्ट्रपति फोर्ड द्वारा कड़ा विरोध करने के बावजूद रपट प्रकाशित भी कर दी गयी

कम्युनिस्टों द्वारा लिस्बन में प्रधानमंत्री आसेबेदो के खिलाफ़ प्रदर्शन : सब तरफ़ बेचैनी है

पुर्तगाल

संकट की घड़ी

25 नवंबर को छतरी सेना ने अति वामपंथी नेतृत्व के समर्थन से सत्ता पलटने की जो कोशिश की, उस का तनाव अभी भी बना हुआ है. दरअसल सत्ता हथियाने की यह कोशिश आसेबेदो सरकार के संकट तथा पुर्तगाल में गृहयुद्ध छिड़ने की संभावना को ही नाटकीय ढंग से सामने लाती है. पुर्तगाल की राजनैतिक हालत घोर वामपंथी तथा समाजवादी रुझान रखने वाले इन दो हिस्सों में बँटी हुई है. सालाज़ार के बाद के पुर्तगाल के सामने अब इन दोनों में से किसी एक को चुनना मुख्य समस्या है.

पुर्तगाल के सैनिक नेतृत्व ने सत्ता पलटने की असफल कोशिश के बाद आपत्कालीन स्थिति की घोषणा कर के अति वामपंथियों के हाथ कमजोर किये हैं. अब स्थिति नियंत्रण में बतायी जाती है और धीरे-धीरे राजनैतिक तथा सैनिक हालत सामान्य हो रही है. जो अखबार बंद कर दिये गये थे उन में से कुछ को प्रकाशित करने की अनुमति दी जा रही है. गिरफ्तारियाँ काफ़ी की गयी हैं.

अति वामपंथी रुझान के दो प्रमुख सैनिक अधिकारियों **जनरल कारवाल्हो** (आंतरिक सुरक्षा संगठन, **कोपकोन** के अध्यक्ष) तथा सेनाध्यक्ष **जनरल कारलोस फ़ावीआओ** ने इस्तीफ़ा दे दिया है. ये इस्तीफ़े फ़ौरन स्वीकार कर लिये गये और साथ ही यह घोषणा भी कर दी गयी कि कोपकोन को विघटित कर दिया गया है चूंकि सेना के परस्पर सहयोग के लिए यह संगठन खतरा बन गया था. वामपंथियों को कुचलने के लिए 50 से भी अधिक अफ़सर गिरफ़्तार किये गये हैं, कारवाल्हो तथा फ़ावीआओ के इस्तीफ़े का एक मतलब साफ़ है कि उन्हें सैनिक परिषद् की सदस्यता से भी अलग कर दिया जायेगा.

निरंतर हड़ताल और विद्रोह की स्थिति ने आसेबेदो की सरकार को लगभग व्यर्थ कर दिया है. 25 नवंबर के विद्रोह के बाद राष्ट्रपति गोमेस ने आपत्कालीन स्थिति में प्राप्त शक्ति से वामपंथियों के स्वप्न तोड़े जरूर हैं पर कम्युनिस्ट दल आसानी से अपनी हार मानने वाला नहीं है. आसेबेदो की सरकार को संकट की घड़ी का सामना इस लिए भी करना पड़ा है कि अभी तक क्रांतिकारी परिषद् के मध्यमार्गी सदस्यों में ही तीव्र आपसी मतभेद थे. शुरू में मध्यमार्गियों ने जनरल कारवाल्हो की ताक़त को कम कर के स्थिति को नियंत्रित करना चाहा पर कारवाल्हो के समर्थकों ने जब तीन हवाई अड्डों पर कब्जा कर लिया, तो अति वामपंथियों के इस विद्रोह को रोकने का एक ही तरीक़ा था कि मध्यमार्गी एक हो कर स्थिति का सामना करते.

लिस्बन क्षेत्र में स्थिति पर नियंत्रण लाने के लिए राष्ट्रपति गोमेस ने मार्शल ला के अंतर्गत 9 सूत्री कार्यक्रम को लागू किया. इस कार्यक्रम के अंतर्गत ये नियम लागू किये गये : बंदी प्रत्यक्षीकरण का निलंबन, प्रेस तथा डाक पर सेंसरशिप, आधी रात से सुबह पाँच तक का कर्फ्यू, सार्वजनिक शांति के विरुद्ध अपराधों पर गौर करने के लिए सैनिक अदालतों की स्थापना, घर की चहारदीवारी के संरक्षण को समाप्त करना तथा सैनिक अनुमति के बिना सार्वजनिक सभाओं पर प्रतिबंध.

लिस्बन के अनेक महत्त्वपूर्ण अखबार, जो पिछले साल की क्रांति के बाद पुर्तगाल की राजनैतिक स्थिति पर कड़ी टिप्पणियाँ करते रहे हैं, 25 नवंबर के सैनिक विद्रोह से पहले अपनी टिप्पणियों में इस बात पर सहमत थे कि यह संकट की घड़ी है. आसेबेदो की सरकार (जो क्रांति के बाद की छठी सरकार है) जनरल कारवाल्हो के नेतृत्व में कोपकोन से अपने को सुरक्षित नहीं महसूस कर रही थी. 21 नवंबर को जब थोड़े समय के लिए कारवाल्हो को हटा कर उन की जगह पर मध्यमार्गी **कैप्टन वास्को लाऊरेंसो** की नियुक्ति कर दी गयी तो अति वामपंथी क्षेत्र ने इस का सख्त विरोध किया था. नतीजा यह हुआ कि 19 सदस्यीय क्रांतिकारी परिषद् को अपना निर्णय बदलना पड़ा. इस घटना पर कारवाल्हो की टिप्पणी थी कि परिषद् के पहले निर्णय से मुझे ऐसा महसूस हुआ था कि मेरा बलात्कार किया गया है. उधर समाजवादी, जो छठी सरकार के समर्थन में हैं, कारवाल्हो की वापसी के निर्णय से क्षुब्ध थे.

जुलूसों, हड़तालों और हिंसा की वारदातों ने पिछले 3 सप्ताह से आसेबेदो सरकार को लगभग निष्क्रिय कर रखा है. बल्कि अगर बात को पूरी तरह से समझा जाये, तो पिछले छह महीनों में पुर्तगाल सरकार ऐसे काम नहीं कर सकी है जो देश की आर्थिक हालत में सुधार लायें और परिवर्त्तन की प्रक्रिया शांतिपूर्ण हो सके. लोगों की हड़तालों में दिलचस्पी कम हुई है, इस की एक बड़ी मिसाल यही है कि 24 नवंबर को कम्युनिस्ट पार्टी ने जब दो घंटे की आम हड़ताल की घोषणा की थी, तो वह सफल न हो पायी.

स्पष्ट है कि लोगों के लिए 19 महीनों में 6 सरकारों का बनना बिगड़ना महत्त्वपूर्ण नहीं है. उन्हें एक ऐसा समाज चाहिए जो उन की जरूरतें एक विवेकपूर्ण ढंग से पूरी करता हो. एक ऐसी क्रांति जो फूलों की क्रांति के नाम से जानी जाती है, सैनिक इच्छाओं और महत्त्वाकांक्षाओं से रौंद दी जायेगी, तो पुर्तगाल के लिए यह एक दुखद बात होगी.

आर्थिक क्षेत्र से सभी क्षेत्रों में

तीसरी दुनिया के विकासशील देश अभी वे बीते दिन भुला न पाये होंगे जब विकसित देशों, विशेषकर यूरोप और अमेरिका के धन लोभी उन को विकास में मदद देने के बहाने वहाँ पहुँचते थे और दोनों हाथों से, जायज़ या नाजायज़ तरीक़ों से, पैसे बटोरते थे. इतना ही नहीं, उन का प्रभाव फैलते-फैलते आर्थिक क्षेत्र से निकल कर विकासशील देशवासियों के जीवन के हर क्षेत्र पर इस तरह हावी हो जाता था कि वे महसूस करने लगते थे कि इन विदेशी घुसपैठियों के बिना उन का जीवन दूभर हो जाएगा. ऐसी संस्थाओं की सूची खासी लंबी है जिन्होंने तीसरी दुनिया की पिछड़ी अवस्था का भरपूर फ़ायदा उठाया और आज उन की संपन्नता के मूल में विकासशील देशों का शोषण है. मध्य अमेरिका में यूनाइटेड फ्रूट कंपनी नामक संस्था का फैलाव देखते हुए उस का नाम ही 'ऑक्टोपस' पड़ गया था, जो अंग्रेज़ी में सौ पैरों वाले जानवर का नाम है. दक्षिण अफ्रीका की सोने और हीरों की खानों को विकसित करने के बहाने सेसिल रोड्स वहाँ गये, लेकिन वह व्यवसाय के मामलों में स्थानीय अफ्रीकियों के साथ जिस जुल्म से पेश आते थे उस की गाथा अभी तक बिसारी नहीं जा सकी है. फ़ायरस्टोन का लाइबेरिया पर ऋण अदायगी के मामले में इतना अहसान था कि 1952 में जब इस देश को इस ऋण अदायगी से मुक्ति मिली तो उस की याद दिलाने के लिए एक स्मारक बनाया गया, जिस पर ये शब्द अंकित हैं, 'ज़लील करने वाली और दमघोंटू राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की याद में, जो उसे 1926 से चले आ रहे ऋण की अदायगी के बदले मिली थी. बेल्ज़ियम के सम्राट लिओपोल्ड की बात जग-प्रसिद्ध है कि उन का पूरे यूरोप जितने बड़े देश कांगो पर ऐसा दबदबा था कि वहाँ क़ानून भी उन्हीं की इजाज़त से बनते थे. उन की सेना ने स्थानीय लोगों पर जो अत्याचार किये उन की कहानी इतिहास में लिखी गयी. अनुमान लगाया गया कि इस बदक़िस्मत देश के रबड़ उद्योग को पूरी तौर पर विकसित करने के लिए 23 वर्षों के दौरान 50 से 80 लाख कांगोवासियों को अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी. 1960 में जब आज़ादी दी गयी तो इस विशाल देश का लगभग 48 प्रतिशत, खनन कार्यों के नाम पर, कुछ बड़ी विदेशी संस्थाओं के कब्ज़े में था. इन्हीं में से एक संस्था यूनियन मिनिएरे के मूल कार्यालय के बारे में कहा जाता है कि कटंगा के असफल युद्ध के पीछे उस का बहुत बड़ा हाथ था.

धंधा करने के नाम पर विकासशील देशों में आ कर उन के अंदरूनी मामलों में हस्तक्षेप करने की मिसालें भी बहुत हैं. लेकिन समय बदलने के साथ नैतिक और राजनैतिक स्तर भी कुछ ऊँचे हुए हैं और बहुराष्ट्रीय निगम अब 'आतिथेय देशों की राजनीति से स्वयं को अलग रखना ही उचित समझने लगे हैं.' लेकिन इस का मतलब यह नहीं है कि इन बहुराष्ट्रीय निगमों का विश्व के मामलों में राजनैतिक महत्त्व बचा नहीं रह गया है. आज उन का प्रभाव अन्य किसी कारण से नहीं, बल्कि संपन्नता की वजह से है. यह भी देखा गया है कि इन निगमों का एक दल अपनी सरकार को बाध्य कर सकता है कि वह 'दोषी' निर्धन देश को सहायता देना बंद कर दे. उदाहरण के लिए देश से निकाले गये व्यक्तियों की संपत्ति के बारे में जो मतभेद हैं उसी का परिणाम है कि अमेरिकी सरकार ने, हाल ही में, चीले, पेरु और बोलिविया को सबक सिखाने के उद्देश्य से विभिन्न प्रकार की विदेशी सहायता पर रोक लगा दी है. ज़ाहिर है कि ऐसी कार्यवाही का आर्थिक और राजनैतिक प्रभाव तीसरी दुनिया के राष्ट्रों पर पड़ेगा ही.

सब से महत्त्वपूर्ण बहुराष्ट्रीय निगमों का यह फ़ैसला है कि वे अमुक देश में अपनी पूँजी लगायें या न लगायें. बहुत से विकासशील देशों ने अपनी तकनीकी, आर्थिक और संगठन की ज़रूरतों को महसूस करते हुए, सहायता देने वालों की सुविधानुसार अपनी घरेलू नीतियों तक को बदल दिया है. साथ ही इन निगमों से विकासशील देश कुछ भयभीत भी रहते हैं, क्यों कि उन्हें बीते साम्राज्यवादी दिनों का वंशधर माना जाता है. अपने को परिवर्त्तन, नये विचारों और मूल्यों का प्रतीक मानने वाले इन निगमों ने अपने रूढ़ दृष्टिकोण की वजह से कभी भी इन देशों में लोकप्रियता हासिल नहीं की, यद्यपि उन्हें तकनोलाजी द्वारा अमीरी और ग़रीबी के बीच की खाई पाटने के लिए सब से उपयुक्त साधन माना जाता है.

बहुराष्ट्रीय निगम अक्सर ही किसी न किसी रूप में अपने देश का प्रतिनिधित्व अन्य देशों में करते हैं. मिसाल के तौर पर अमेरिकी सरकार विदेशों में पैर पसारे हुए अपने देश की संस्थाओं को दुनिया भर में स्वतंत्र उद्यम का संदेश देने वाले दूत के रूप में देखती है. यही वजह है कि साम्यवाद और समाजवाद में विश्वास रखने वाले अक्सर ही इन संस्थाओं की कटु आलोचना करते हैं. इस के बावजूद अमेरिका विश्वास करता है कि तीसरी दुनिया के देशों को ग़रीबी, अंधकार से बाहर निकाल कर आधुनिक औद्योगिक समाज की रोशनी में लाने का सब से कारगर उपाय बहुराष्ट्रीय निगमों के फैलाव को प्रोत्साहन देना है. इसी भावना को व्यक्त करते हुए हेनरी कीसिंगर ने 1 सितंबर को संयुक्त राष्ट्र महासभा में बहुराष्ट्रीय निगमों की उपयोगिता समझाने में पूरे दस मिनट का समय लिया. उन के विभाग ने अब इन निगमों के लिए एक सलाहकार समिति की नियुक्ति की है, जिस की बैठक, नियमित रूप से, महीने में एक बार बुलायी जाती है. अपने देश की विदेश नीति समझाते हुए कीसिंगर ने उस में यह पंक्ति भी जोड़ी कि ये बहुराष्ट्रीय उद्यम 'विकास के सब से प्रभावशाली तरीक़ों में से एक है.' इसी भाषण को ख़त्म करते हुए उन्होंने बताया कि उन की सरकार बहुराष्ट्रीय निगमों और उन की सरकारों के लिए आचार संहिता बनाये जाने के पक्ष में है. 'यदि विश्व समुदाय आर्थिक विकास के प्रति समर्पित है तो वह बहुराष्ट्रीय निगमों को आर्थिक युद्ध का ज़रिया नहीं समझ सकता.'

बहुराष्ट्रीय निगमों को इतना अधिक महत्त्व दिये जाने के पीछे एक कारण और भी है—वह है विदेशी मामलों में अर्थव्यवस्था का बढ़ता हुआ महत्त्व. आणविक जगत् की वर्त्तमान स्थिरता और गेरिल्ला युद्ध शैली में बहुत हद तक सेना की स्थिति को निकम्मा बना दिया है. इन हालातों में शक्ति की राजनीति का महत्त्व कम हो गया है. इसी का परिणाम है कि राष्ट्रीय नेता आजकल अंतरराष्ट्रीय आर्थिक संबंधों पर विशेष ध्यान दे रहे हैं, जिस में बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका अहम है, आज की स्थिति को देखते हुए यह कहना उचित है कि बहुराष्ट्रीय निगम वर्त्तमान और भविष्य दोनों के लिए ज़रूरी हो गये हैं.

पंजाब और महाराष्ट्र के बीच खेला गया हाकी-फाइनल

खेल और खिलाड़ी

राष्ट्रीय स्त्री खेलकूद : पंजाब और महाराष्ट्र

अंतरराष्ट्रीय स्त्री वर्ष में केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय और नेताजी सुभाष राष्ट्रीय खेलकूद संस्थान, पटियाला द्वारा आयोजित चार दिवसीय राष्ट्रीय स्त्री खेलकूद समारोह का उद्घाटन (19 नवंबर) जितना रंगारंग था उस का समापन समारोह (22 नवंबर) उतना ही आकर्षक. यह ठीक है कि समय समय पर विभिन्न खेलों में स्त्री राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाता है लेकिन इस बार राजधानी के खेल प्रेमियों को एक साथ सात विभिन्न प्रतियोगिताओं को देखने का सुअवसर प्राप्त तो हुआ ही इस के साथ साथ उन्हें इस बात की झलक भी मिल गयी कि किस खेल में देश का कौन सा प्रदेश सब से आगे है.

कुल मिला कर टीम चैंपियनशिप में पंजाब और महाराष्ट्र की टीम को समान अंक (13-13) प्राप्त हुए इस लिए दोनों को संयुक्त विजेता घोषित किया गया. सिक्के को उछाल कर यह फ़ैसला किया गया कि पहले छः महीने कौन सी टीम ट्राफी पर अपना अधिकार जमायेगी और सिक्के ने महाराष्ट्र का साथ दिया. इस प्रकार पहले छः महीने तक ट्राफी महाराष्ट्र के पास रहेगी और बाद के छः महीने पंजाब की टीम के पास. दिल्ली की टीम को तीसरा स्थान (12 अंक) और पश्चिम बंगाल को चौथा स्थान (10 अंक) प्राप्त हुआ.

हॉकी : समारोह के अंतिम दिन पंजाब और महाराष्ट्र के बीच खेले गये हॉकी फाइनल में लोगों की सब से ज़्यादा दिलचस्पी थी. लेकिन यह मैच एक मायने में एकतरफ़ा ही रहा. इस में पंजाब ने महाराष्ट्र को 4–0 से हरा दिया. महाराष्ट्र की तुलना में पंजाब की खिलाड़िनें ज़्यादा तेज़ और गेंद नियंत्रण में ज़्यादा कुशल थीं. पंजाब की ओर से पहला गोल इनसाइड राइट उमा जग्गी ने और शेष तीन गोल (तिकड़ी) इनसाइड लेफ्ट हरप्रीत गिल ने किये.

एथलेटिक : एथलेटिक में तमिषनाडु की खिलाड़िनों का बोलबाला रहा और उस ने 15 अंक प्राप्त कर टीम चैंपियनशिप प्राप्त की. ओडिसा और कर्नाटक को संयुक्त रूप से दूसरा स्थान (12 अंक) प्राप्त हुआ. दिल्ली को 11 अंक प्राप्त होने पर चौथा स्थान प्राप्त हुआ.

4 × 100 मीटर रिले दौड़ काफ़ी दिलचस्प रही और इस दौड़ में दिल्ली को पहला, तमिषनाडु को दूसरा और कर्नाटक को तीसरा स्थान प्राप्त हुआ. 100 मीटर बाधा दौड़ में तमिषनाडु की कुमारी नाडु वी. राजन प्रथम (15.9 सैकिंड) और ओडिसा की उषारानी मिश्रा दूसरे स्थान पर रहीं. 400 मीटर में हरयाणा की गीता जुत्शी प्रथम (57.9 सैकिंड) ओडिसा की अनंदिनी दोरजी दूसरे और महाराष्ट्र की कैरोल पात्रिक तीसरे स्थान पर रहीं.

वालीबाल : वालीबाल का फाइनल संयुक्त विश्वविद्यालय और पंजाब की टीमों के बीच खेला गया जिस में विश्वविद्यालय की टीम ने पंजाब को 15–13, 15–10, 15–13 से हरा दिया. तीसरे स्थान के लिए केरल और पश्चिम बंगाल के बीच मुकाबला हुआ जिस में केरल ने 15–13, 15–18, 15–7 से यह मैच जीत लिया.

बैडमिंटन में विश्वविद्यालय और केरल के बीच मैच हुआ जिस में विश्वविद्यालय ने 2–1 से मैच जीत लिया. इस में पंजाब का तीसरा स्थान रहा.

बास्केट बाल के फाइनल में पश्चिम बंगाल की टीम ने दिल्ली को हराया. इस में महाराष्ट्र को तीसरा स्थान प्राप्त हुआ था.

जिम्नास्टिक की प्रतियोगिता में बलविंदर कौर (चंडीगढ़) को व्यक्तिगत स्पर्द्धाओं में पहला स्थान प्राप्त हुआ.

संक्षेप में विभिन्न खेलों में विभिन्न राज्यों की स्थिति इस प्रकार रही : **एथलेटिक :** 1–तमिषनाडु, 2–ओडिसा, 3–कर्नाटक, 4–दिल्ली. **बैडमिंटन :** 1–संयुक्त विश्वविद्यालय, 2–केरल, 3–पंजाब, 4–मध्यप्रदेश. **बास्केट बाल :** 1–पश्चिम बंगाल, 2–दिल्ली, 3–महाराष्ट्र, 4–कर्नाटक. **जिम्नास्टिक :** 1–पंजाब, 2–त्रिपुरा, 3–पश्चिम बंगाल, 4–हरयाणा. **हॉकी :** 1–पंजाब, 2–महाराष्ट्र, 3–चंडीगढ़, 4–हरयाणा. **खो-खो :** 1–महाराष्ट्र, 2–दिल्ली, 3–मध्यप्रदेश, 4–पश्चिमी बंगाल. **कबड्डी :** 1–महाराष्ट्र, 2–दिल्ली, 3–पश्चिम बंगाल, 4–हिमाचल प्रदेश.

महाराष्ट्र और दिल्ली के बीच खेला गया कबड्डी-फाइनल

रणजी ट्राफी

गोरखपुर में पहली बार

'मध्य क्षेत्र रणजी ट्राफी क्रिकेट मैच (14 से 16 नवंबर तक) का आयोजन गोरखपुर के खेलप्रेमियों के लिए एक सुखद अनुभव था. 14 नवंबर को प्रातः 9।। बजे गोरखपुर मंडल के आयुक्त श्री गोयल ने प्रतियोगिता का उद्घाटन किया. रेलवे के कप्तान हैदरअली ने टास जीत कर पहले खेलना शुरू किया. रेलवे की ओर से चंदन गुप्ते और अंसारी की जोड़ी (प्रारंभिक बल्लेबाज़) मैदान में खेलने के लिए आये. गुप्ते 43 रन और अंसारी 90 रन बनाने में सफल हुए. लेकिन मोहम्मद तारीफ ने अविजित शतक (135 रन) बना कर रेलवे की स्थिति को काफी मजबूत कर दिया. खेल के दूसरे दिन भोजन के समय से एक घंटा पहले रेलवे के कप्तान हैदरअली ने 4 विकेट पर 357 रन बनने पर अपनी पहली पारी की समाप्ति की घोषणा कर दी.

उत्तरप्रदेश की ओर से विजय चोपड़ा और कमल जुनेजा ने अपनी पारी की शुरुआत काफी आत्मविश्वास के साथ की. 113 रन होते होते अनिल कुमार की एक गेंद को ग्लांस करने की कोशिश में जुनेजा एल. बी. डब्ल्यू. हो गये. उस के बाद तो उत्तरप्रदेश के विकेट गिरने का सिलसिला ही शुरू हो गया. कप्तान रफीउल्लाह 3 रन बनाने के बाद ही आउट हो गये. इसी बीच उत्तरप्रदेश के आनंद शुक्ला ने एक शानदार छक्का लगा दिया. यह मैच का पहला छक्का था. आनंद शुक्ला ने 37 रन बना कर रणजी ट्राफी क्रिकेट प्रतियोगिता में अपने व्यक्तिगत रनों की संख्या 3 हज़ार से ऊपर पहुँचा दी. जैसे ही रनों की संख्या 136 हुई विजय चोपड़ा को मुश्ताक ने एल. बी. डब्ल्यू कर दिया. दूसरे दिन के खेल समाप्त होने पर उत्तरप्रदेश की टीम 7 विकेट पर 224 रन बना लिये. लेकिन तीसरे दिन के खेल शुरू होने के लगभग 40 मिनट बाद ही उत्तर प्रदेश की पूरी टीम केवल 239 रनों पर ही आउट हो गयी. इस प्रकार रेलवे को उत्तरप्रदेश के मुकाबले 118 रनों की बढ़त मिल गयी और उस ने अपने पाँच अंक सुरक्षित कर लिये.

लेकिन दूसरी पारी में उत्तरप्रदेश के गेंदबाज़ रेलवे के बल्लेबाज़ों पर हावी हो गये. केवल 6 रन बनने पर रेलवे के तीन चोटी के बल्लेबाज़ आउट हो गये. जैसे जैसे उस के खिलाड़ी आउट होते गये वैसे वैसे मैच दिलचस्प होता गया. चाय काल के 15 मिनट पहले रेलवे के कप्तान हैदरअली ने 9 विकेट पर 119 रन बनने के बाद पारी समाप्ति की घोषणा कर दी.

इस प्रकार मैच जीतने के लिए उत्तरप्रदेश को 239 रन बनाने की चुनौती मिली.

उत्तरप्रदेश ने जिस आत्म-विश्वास के साथ दूसरी पारी शुरू की उस से इतना तो स्पष्ट होता था कि यदि समय होता तो उत्तर प्रदेश की टीम को विजयश्री अवश्य प्राप्त हो सकती थी. लेकिन 238 रन बनाने के लिए उस के पास केवल 100 मिनट का ही समय था जो कि हर सूरत में नाकाफी ही था. उत्तर प्रदेश ने काफी तेज़ गति से रन बनाने शुरू किये और 1 विकेट गँवा कर उस ने 106 रन बना लिये.

यों मैच तो अनिर्णीत रहा लेकिन रेलवे को अपनी पहली पारी की बढ़त के कारण पाँच अंक प्राप्त हुए और उत्तरप्रदेश को तीन. इस प्रकार रेलवे की टीम जीत गयी.

गोरखपुर में क्यों कि पहली बार रणजी ट्राफी प्रतियोगिता का आयोजन किया गया था इस लिए स्थानीय क्रिकेट प्रेमियों में कुछ कुछ वैसा ही उत्साह था जैसा कि किसी टेस्ट में होता है.
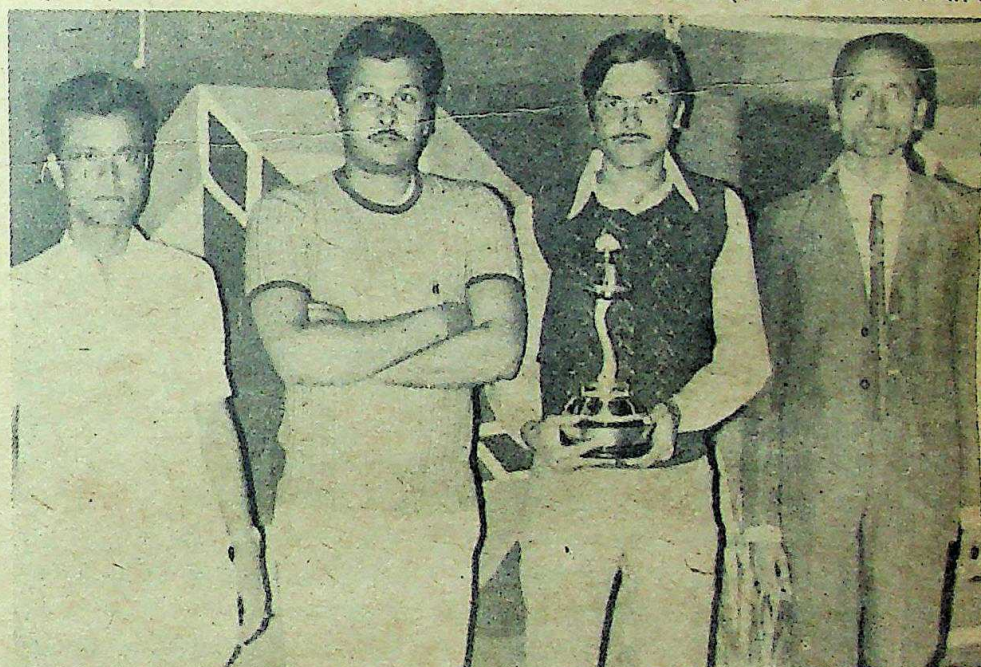
राष्ट्रीय चैंपियन पश्चिम बंगाल ब्रिज संघ की टीम : रुइया गोल्ड ट्राफी

राष्ट्रीय ब्रिज प्रतियोगिता

बंग बन्धुओं को विजयश्री

सत्रहवीं राष्ट्रीय ब्रिज प्रतियोगिता कानपुर के हृदय फूलबाग में पुरस्कार वितरण समारोह के साथ पिछले 20 नवंबर को समाप्त हुई. 12 दिवसीय राष्ट्रीय ब्रिज प्रतियोगिता में देश की कुल 116 टीमों ने भाग लिया. पिछली बार की तरह इस बार भी कानपुर में एक नयी 'नेवेटिया ट्राफी' की शुरुआत की गयी. यह ट्राफी सर्वश्रेष्ठ चार खिलाड़ियों की टीम को दी जाती है. 1964 में जब कानपुर में राष्ट्रीय ब्रिज प्रतियोगिता हुई थी तब भी एक नयी 'सिहानियाँ ट्राफी' शुरू की गयी थी. राष्ट्रीय ब्रिज में कोई नयी ट्राफी शुरू करने के लिए विश्व ब्रिज संघ से आज्ञा लेना आवश्यक होता है. प्रतियोगिता का फाइनल गत वर्ष के विजेता आंध्र प्रदेश ब्रिज संघ तथा पश्चिम बंगाल ब्रिज संघ के बीच खेला गया. यह मुकाबला अत्यंत संघर्षपूर्ण रहा. इस में सफलता बंग बंधुओं को प्राप्त हुई. पश्चिम बंगाल ब्रिज संघ ने आंध्र प्रदेश को 39 विजयी अंकों से पराजित कर राष्ट्रीय चैंपियनशिप की प्रतीक रुइया ट्राफी पर अधिकार कर लिया.

इस ब्रिज मैराथन के प्रथम पाँच दिन मैच 'स्विस लीग' आधार पर खेले गये. प्रथम तीन दिन हैदराबाद के आर्मी इंजीनियर्स का दल शीर्ष स्थान पर रहा. ऐसा लगता था कि विजयश्री हैदराबाद को ही मिलेगी. परंतु इस के बाद यह टीम इस बुरी तरह हारी कि लीग टेबुल पर इसका स्थान 41वाँ आ गया.

लीग मैचों के चौथे दिन दिल्ली के करोल बाग ब्रिज ने अप्रत्याशित विजय प्राप्त की. करोल बाग ब्रिज क्लब ने इस दिन अपने तीनों मैचों में देश की शक्तिशाली टीमों को पराजित किया. प्रथम मैच में इस ने तीन दिनों तक शीर्ष स्थान पर रहने वाले हैदराबाद के आर्मी इंजीनियर्स के दल को पराजित किया. दूसरे मैच में इस ने प्रतियोगिता की विजेता टीम पश्चिम बंगाल ब्रिज संघ को पराजित किया. दोनों ही टेबुलों (भीतर और बाहर) पर पश्चिम बंगाल की टीम का खेल इतना खराब रहा कि उसे −9 अंक प्राप्त हुए.

अंतिम खेल में इस ने कलकत्ते की गोपाल सिन्हा की टीम को हरा कर लीग टेबुल पर शीर्ष स्थान पर कब्जा कर लिया. पाँच दिवसीय स्विस लीग मैचों के अंतिम दिन निम्नलिखित आठ टीमों ने क्वार्टर फाइनल में प्रवेश किया. 1. पश्चिम बंगाल ब्रिज संघ, 2. ए. के. कुमार (कलकत्ता) 3. आंध्र प्रदेश ब्रिज संघ 4. एस. के. अग्रवाल 5. करोल बाग (दिल्ली) 6. टिबरी वाला 7. मुकुल चटर्जी 8. गोविंद सिन्हा. इन दलों के बीच क्वार्टर फाइनल मैच

खेला गया. उपरोक्त आठ दलों में से प्रथम चार दलों ने सेमी-फाइनल में प्रवेश किया।

सेमी-फाइनल : सेमी-फाइनल का पहला मुकाबला पश्चिम बंगाल ब्रिज संघ तथा लखनऊ के एस. के. अग्रवाल के दल के बीच हुआ. 48 बोर्ड के इस मैच में लखनऊ की ओर से एस. के. अग्रवाल तथा भूपेंद्र रस्तोगी तथा पश्चिम बंगाल की ओर से सुखरंजन घोष और विकास राय ने खेला. परंतु इस खेल में पश्चिम बंगाल की टीम ने अग्रवाल के दल को 54 (आइ. एम. पी.) से पराजित कर दिया. इस प्रकार मेजबान उत्तर प्रदेश ब्रिज संघ की अंतिम टीम भी प्रतियोगिता से बाहर हो गयी.

दूसरे सेमी-फाइनल खेल में आंध्र प्रदेश ब्रिज संघ ने कलकत्ता के ए. के. कुमार के दल को 36 इंटर नेशनल मैच प्वाइंट (आइ. एम. पी.) से पराजित कर फाइनल में पश्चिम बंगाल ब्रिज संघ से खेलने का अधिकार प्राप्त कर लिया.

फाइनल मैच : राष्ट्रीय ब्रिज प्रतियोगिता का फाइनल मैच वास्तव में देश की दो शक्तिशाली टीमों के बीच खेला गया. फाइनल की यह भिड़ंत कुल 64 बोर्डों के चार सत्रों में संपन्न हुई. पहले सत्र में पश्चिम बंगाल 19 अंक (आई. एम. पी.) से आगे बढ़ गया. परंतु दूसरे सत्र में आंध्र प्रदेश ब्रिज संघ के अंतरराष्ट्रीय खिलाड़ी मिन्हाज और कादरी ने अच्छा खेल दिखाया और 22 अंक अधिक प्राप्त कर लिया. इस प्रकार वे 3 अंक से आगे बढ़ गये.

परंतु तीसरे और चौथे सत्र में गत वर्ष की विजेता आंध्र प्रदेश को घुटने टेक देने पड़े. इस प्रकार पश्चिम बंगाल ब्रिज संघ कुल 39 अंकों से विजयी रहा. आंध्र प्रदेश की टीम में तीन अंतरराष्ट्रीय खिलाड़ी एस. एम. कादरी, बी. एम. मल्हानी तथा मुज्तबा हुसैन थे. प्रतियोगिता के दौरान राष्ट्रीय ब्रिज संघ के अध्यक्ष श्री के. के. बिड़ला शुरू से अंत तक मौजूद रहे.

नेवेटिया ट्राफी—इस वर्ष से प्रारंभ नेविटिया ट्राफी के फाइनल में कानपुर के श्रीमती गुप्ता के दल ने चमत्कारिक विजय प्राप्त की. स्त्रियों की स्पर्धा में चार खिलाड़िनों की टीम भाग लेती है. कानपुर की स्त्री टीम ने बंबई की प्रसिद्ध रुइया की टीम को हराकर कानपुर तथा उत्तर प्रदेश का नाम राष्ट्रीय ब्रिज के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा दिया. बंबई के रुइया के दल में देश की प्रसिद्ध खिलाड़िनें श्रीमती अंतारकर तथा के. नाटू खेल रही थी. कानपुर की टीम की श्रीमती तारा अग्रवाल और मनोरमा गुप्त का चयन उन के शानदार प्रदर्शन के कारण बैंकाक में होने वाले सुदूर पूर्व ब्रिज चैंपियनशिप के लिए कर लिया गया.

केडिया ट्राफी—स्त्रियों की युगल स्पर्धा में बंबई की श्रीमती के. नाटू और श्रीमती अंतारकर ने फाइनल मैच में श्रीमती बसाक और आर. मूर्ति को हरा कर केडिया ट्राफी पर कब्जा कर लिया. पिछले वर्ष श्रीमती कानितकर और श्रीमती केलकर ने यह ट्राफी जीती थी.

होल्कर ट्राफी—राष्ट्रीय ब्रिज की खुली युगल स्पर्धा में बंबई के एफ. एच. दस्तूर और जे. मेहता ने विजय प्राप्त कर होल्कर ट्राफी जीती.

सिंहानिया ट्राफी—चार खिलाड़ियों वाली इस प्रतियोगिता में टिबरी वाला बंबई के दल ने प्रथम स्थान प्राप्त किया. कलकत्ता का न्यू कार्ड दल द्वितीय स्थान पर रहा.

लाल भाई ट्राफी—मिश्रित युगल में इस बार 28 युगल सम्मिलित हुए जिन में अधिकतर वास्तविक जीवन में भी पति पत्नी थे. इस में श्रीमती दस्तूर (बंबई) ने अपने पति एफ. एच. दस्तूर के साथ खेल कर विजयश्री प्राप्त की. नागपुर की श्रीमती एस. गोखले तथा एम. आर. गोखले ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया.

शतरंज

अंतरराष्ट्रीय खेल के नियम

दिनमान के शतरंज प्रेमी पाठकों के बार-बार अनुरोध करने पर अंतरराष्ट्रीय खेल के नियम-उपनियम आदि, जो दिनमान के 17 और 24 दिसंबर 1972, 2 दिसंबर और 9 दिसंबर, 1973, 8 दिसंबर और 15 दिसंबर, 1974 के अंकों में प्रकाशित हुए थे, उन्हें एक बार फिर प्रकाशित किया जा रहा है, ताकि **दिनमान** के शतरंज प्रेमी पाठकगण न केवल हिंदी में ही, बल्कि अंग्रेजी में भी छपी बाजियों को आसानी से समझ सकें और अपने खेल स्तर में सुधार कर सकें.

अंतरराष्ट्रीय नियमानुसार बिसात इस ढंग से बिछाना आवश्यक है कि सामने की पहली पट्टी के दायीं ओर का पहला खाना या घर सफ़ेद या और किसी हल्के रंग का और बायीं तरफ़ का काला या किसी गहरे रंग का हो, सफ़ेद बादशाह (किंग) दायीं ओर से चौथे खाने पर और वजीर (क्वीन) पांचवें खाने पर रखना चाहिए जैसा कि खेल में किया जाता है; परंतु काला बादशाह सफ़ेद बादशाह के सामने और वजीर सफ़ेद वजीर के सामने रखना चाहिए अथवा काले खिलाड़ी की दायीं ओर से वजीर चौथे खाने पर और बादशाह पांचवें खाने पर होना चाहिए. बाकी सब मोहरे देसी ढंग से ही रखे जाते हैं अथवा बादशाह और वजीर के दूसरी ओर एक एक फीला (बिशप), उन से मिले हुए खानों में एक एक घोड़ा (नाइट) और उन के बाद पहले और आखिरी खानों पर एक रुख (रुक) और दूसरी पट्टी के आठों खानों पर एक एक पैदल (पॉन).

सब मोहरों की चालें भी देसी चालों की तरह ही होती हैं. हाँ, पैदलों की चाल में जरूर थोड़ा अंतर है. देसी नियमानुसार पैदल एक ही एक घर आगे चलता है परंतु अंतरराष्ट्रीय नियमों के अनुसार पहली चाल पर हर पैदल एक या दो घर चल सकता है. यदि कोई पैदल दो घर की चाल चले और पहले या बीच के खाने पर विरोध के किसी पैदल की जद है तो विरोधी पहले खिलाड़ी के पैदल को एक घर पीछे हटा कर अपने पैदल से पीट सकता है. इस तरह पैदल पीटने की चाल को आं पासां कहते हैं. एक और बहुत महत्वपूर्ण अंतर यह है कि किसी भी आठवें घर पर पहुँचने पर पैदल के बदले खिलाड़ी अपनी इच्छानुसार मोहरा, वजीर, रुख, फीला या घोड़ा ले सकता है चाहे उस घर का मोहरा बिसात पर मौजूद हो, परिणामस्वरूप एक ही समय में एक खिलाड़ी के पास 9 वजीर, 10 रुख, 10 फीले या 10 घोड़े हो सकते हैं.

बादशाह की चाल में भी देसी और अंतरराष्ट्रीय नियमों में थोड़े बहुत अंतर हैं. देसी में जब तक बादशाह को शह न पड़े वह एक बार घोड़े अथवा ढाई घर की चाल चल सकता है. अंतरराष्ट्रीय नियम इस की इजाजत नहीं देते परंतु बादशाह और रुख की एक मिली हुई चाल होती है जिसे 'कास्लिंग' या किलाबंदी कहते हैं. यह चाल इस तरह चली जाती है कि बादशाह और रुख के बीच कोई मोहरा न हो, रुख या बादशाह अपने पहले घरों से न हटे हों और न ही बादशाह को शह पड़ रही हो और न बादशाह के दायीं या बायीं ओर के दो घरों पर विरोधी के किसी मोहरे की जद हो. ऐसी स्थिति में बादशाह को दायीं या बायीं ओर दो घर चल कर उधर का रुख बादशाह की दूसरी ओर बराबर के खाने पर रखते हैं.

आखिरी बाजी में देसी की तरह बर्द या चौमोहरी नहीं होती, अथवा चाहे बादशाह अकेला रह जाये या दोनों खिलाड़ियों के पास बादशाह और एक एक मोहरा रह जायें तब भी खेल जारी रहेगा और अगर मात हो सकती है तो होगी.

अगले अंक में

नगालैंड यात्रा की दूसरी किस्त

रिल्के : विशेष लेख

कला : सूज़ा से बातचीत

बाढ़ संवाद प्रतियोगिता की दूसरी किस्त

आधुनिक जीवन

उपभोक्ता संस्कृति

कचरे से कच्चा माल

19 नवंबर को युवा उद्यमियों के वार्षिक अधिवेशन में भाषण देते हुए भारी उद्योगमंत्री श्री पै ने कहा कि हमें अपने प्राकृतिक स्रोतों का इस्तेमाल इस ढंग से नहीं करना चाहिए कि भावी पीढ़ी के लिए कुछ न बचे. विश्व में प्राकृतिक साधनों की कमी का अहसास संपन्न देशों में हो रहा है और विशेषज्ञ इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यदि कोई ऐसी व्यवस्था विकसित नहीं हुई जो प्राकृतिक संपदा के समुचित उपयोग और पुनरुर्पयोग के लिए मानव जाति को व्यवस्थित नहीं करती तो अगले सौ वर्षों में विश्व के बहुत से क्षेत्र में प्राकृतिक स्रोतों की बहुत अधिक कमी महसूस होगी जो संपूर्ण मानव जाति के लिए संकट का कारण होगा. संपन्न देशों, विशेष कर संयुक्त राज्य अमेरिका में विशेषज्ञों ने इस सिलसिले में वैज्ञानिक आँकड़े प्रस्तुत किये हैं जिन के आधार पर अगली कुछ शताब्दियों में होने वाली कमी का स्पष्ट अनुमान लगाया जा सकता है. इस सिलसिले में पर्यावरण परिषद् की रपट के अनुसार '6 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वर्त्तमान खपत वृद्धि की दर पर चांदी, कलई, यूरेनियम इसी शताब्दी के अंत तक आवश्यकता से कम पड़ जायेंगे. 2050 ईसवी में वर्त्तमान खपत दर पर ही बहुत से अन्य खनिज समाप्त-प्राय हो जायेंगे.' इस परिषद् के अनुसार यदि खपत में वृद्धि न भी हुई तब भी प्लेटिनम, सोना, और जस्ता की उपलब्धि में भारी कमी आयेगी, क्योंकि यह धातु अब भी पर्याप्त नहीं.

यह सही है कि भारत जैसे विकासशील देश के लिए प्राकृतिक संपदा की कमी की यह समस्या उतनी विकट नहीं है जितनी कि औद्योगिक देशों के लिए. मगर प्रश्न यह नहीं है कि भारत में यह स्थिति अमेरिका के कितने वर्ष बाद आयेगी बल्कि यह है कि क्या इस स्थिति को हम किसी हद तक टाल सकते हैं. यह कहना शायद तर्कसंगत नहीं होगा कि प्राकृतिक स्रोतों के इस्तेमाल की गति कम कर दी जाये. विकास के इस चरण में शायद यह तर्क देश के हित में नहीं होगा. साथ ही साथ इस हल से प्राकृतिक स्रोतों की समाप्ति की दर कम हो जायेगी, रुक नहीं जायेगी. इस लिए एक ही रास्ता वैज्ञानिक रूप से उचित और प्राविधि की दृष्टि से संभव दिखायी देता है. और वह रास्ता है पुनरुपयोग का. किसी हद तक यह भी औद्योगिक देशों की ही एक बड़ी समस्या है, क्यों कि इन देशों में खनिज पदार्थों और उन से बने हुए माल की रद्दी और कचरे की मात्रा इतनी ज्यादा होती है कि उसे न केवल प्रदूषण को समाप्त करने के लिए कोई नया रूप देना ज़रूरी है ताकि उस के व्ययन की समस्या हल हो जाये बल्कि इसलिए भी कि उस कचरे में खनिज और अन्य उपयोगी वस्तुओं की इतनी मात्रा होती है कि विशेषज्ञों के अनुसार उन्हें 'शहरी खदानें' कहा गया है. औद्योगिक देशों के मुकाबले में विकासशील देशों में कचरे के अंबार छोटे हैं. साथ ही विकासशील देशों के कचरे में अधिकतर ऐसा कचरा है जो कम स्थायी है, अस्थिर है और यही अस्थिरता वर्त्तमान परिस्थितियों में प्रदूषण और गंदगी का कारण होने के बावजूद भविष्य में वरदान भी सिद्ध हो सकता है.

इस तथ्य को समझने के लिए यह देखना होगा कि एक संपन्न औद्योगी देश में कचरे का स्वरूप क्या होता है. संयुक्त राज्य अमेरिका में जहाँ धातु और अधातु पदार्थों जैसे प्लास्टिक की इतनी बड़ी मात्रा केवल डिब्बों और बोतलों के रूप में इस्तेमाल होती है कि सामान्य शहर में इतनी बड़ी संख्या में डिब्बे और बोतलें फैंकी जाती हैं कि नगर अधिकारियों के लिए उन से निपटना अत्यंत कठिन कार्य हो जाता है. संपन्नता का स्तर काफी ऊँचा होने के कारण अनेक वस्तुओं—पुर्जों और उपकरणों का इस्तेमाल तब तक नहीं किया जाता जब तक कि उन की उपयोगिता समाप्त नहीं होती. यहाँ तक कि वाहनों का उपयोग भी अपनी पूरी क्षमता तक नहीं हो पाता. इस लिए मोटर गाड़ियों और इस प्रकार के अन्य बड़े और जटिल उपकरणों के अंबार अमेरिकी-शहरों में दिखायी देते हैं. इस लिए ऐसे औद्योगिक देशों के लिए कचरे के पुनर्रुपयोग का अर्थ वही नहीं होता जो भारत जैसे देश के लिए हो सकता है. संपन्न देशों के लिए कचरे को फिर से इस्तेमाल करने की समस्या उच्च टेक्नोलाजी और लाभदायक अर्थतंत्र की है. इस सारे औद्योगिक कचरे को किस तरह इकट्ठा किया जाये और किस प्रकार उस को अपने मूल धातुओं या यौगिकों में वितरित किया जाये. इस सिलसिले में प्रसिद्ध पेय पेप्सीकोला बनाने वाले व्यापारिक संस्थान का उदाहरण महत्त्वपूर्ण है. इस संस्थान ने इस्तेमाल की हुई बोतलों को वापस खरीदने का प्रस्ताव रखा और 1 करोड़ 44 लाख नयी बोतलें बाज़ार में डाल दीं. बोतलें वापस लाने के लिए इस ने कई प्रकार के प्रोत्साहन दिये. मगर 6 महीने के भीतर पता चला कि सब की सब बोतलें गायब हो गयी हैं. मतलब यह कि बोतलें कचरे के ढेरों में शामिल हो गयीं. इसी प्रकार वाहनों के पुनरुपयोग का मतलब यह होता है कि उन्हें तोड़ा जाये और धातु, प्लास्टिक, कपड़ा, शीशा, रोगन आदि को अलग अलग छांट लिया जाये और इन सब या कुछ पदार्थों को फिर से उपयोग के लायक कच्चे माल का रूप दिया जाये. स्पष्ट है कि स्वचालन के इस युग में औद्योगिक देशों में मानव शक्ति पर निर्भर रहने की बात नहीं सोची जा सकती. अर्थात् इस कचरे के पुनर्रुपयोग की समस्या उच्च प्राविधि की समस्या है.

इस के विपरीत भारत जैसे देश के कचरे का रूप भिन्न है. यहाँ कचरे का सब से बड़ा स्रोत स्वयं मनुष्य है. इस लिए औद्योगिक कचरे की अपेक्षा यहाँ जैविक कचरा अधिक मात्रा में पाया जाता है. नगरों में पशु मलमूत्र, वनस्पति आदि ही अभी तक हमारे देश का प्रमुख कचरा है. जहाँ तक औद्योगिक कचरे का सवाल है उस में धातु या प्लास्टिक के डिब्बे और शीशे की बोतलों की मात्रा इतनी कम है कि उस से संपूर्ण अर्थतंत्र पर कोई महत्त्वपूण असर नहीं पड़ सकता. इस के अतिरिक्त हमारे देश में इन डिब्बों और बोतलों के उत्पादन का मूल्य इतना अधिक है कि आसानी से उन्हें फेंकने की स्थिति नहीं आती. इस के साथ ही यह भी महत्त्वपूर्ण है कि अपने मूल रूप में उपयोग के लायक न रहने वाले ऐसे डिब्बे और बोतलें आसानी के साथ गला कर नये कच्चे माल के रूप में इस्तेमाल करना हमारे लिए अभी भी लाभदायक औद्योगिक प्रक्रिया है. वास्तव में प्लास्टिक और अन्य कृत्रिम पदार्थों के सिलसिले में यह प्रक्रिया काफी अच्छे पैमाने पर चालू हो गयी है. हमारे लिए यदि कोई औद्योगिक

पुराने प्लास्टिक सामान से बने दानों से नयी बोतलें बनाना अब सरल काम है

कचरा है तो वह विभिन्न कारखानों में बची हुई राख, चूना और इसी प्रकार के अन्य लवण और क्षार मिश्रित खनिज पदार्थ हैं जो उस कारखाने में व्यर्थ फेंक दिये जाते हैं. इस खनिज कचरे को व्यर्थ फेंकने से न केवल हम बहुमूल्य कच्चे माल से हाथ धोते हैं बल्कि इस के कारण बहुत बड़ा क्षेत्रफल भी बेकार हो जाता है. कचरे का दूसरा रूप वह रासायनिक कूड़ा है जो पानी के साथ वह कर नदियों में चला जाता है. नदियों और जलाशयों को बहुत बड़े पैमाने पर विषाक्त करने के अतिरिक्त इस का प्रभाव भी कालांतर में कृषियोग्य भूमि को बंजर बनाने और वनस्पति तथा प्राणियों के स्वास्थ्य और संतति को बिगाड़ने का होता है.

देहाती क्षेत्रों में गोबर एक महत्त्वपूर्ण आर्थिक स्रोत है. यह ईंधन है और खाद है. मगर जिस ढंग से इस को रखा जाता है उस ढंग से यह प्रदूषण का भी काम करता है. सच तो यह है कि गोबर का सही उपयोग हम नहीं कर पा रहे हैं. खाद के रूप में भी वह अपनी आंशिक क्षमता का ही लाभ हमें दे पाता है. दूसरे शब्दों में यह कहना गलत नहीं होगा कि एक महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक साधन का बहुत बड़े पैमाने पर अपव्यय भारत और अन्य विकासशील देशों में हो रहा है. पिछले कुछ वर्षों में ही पशुमल (मनुष्यमल भी) की बहुसूत्रीय उपयोगिता का अहसास विशेषज्ञों को हुआ है.

इस से यह निष्कर्ष निकालना सही नहीं है कि हमारे देश में कचरे के पुनर्रुपयोग के सिलसिले में तेजी से कदम उठाने की ज़रूरत नहीं और न ही इस का मतलब यह होता है कि कचरे को फिर से उपयोगी बनाने के लिए नयी तकनीकों और वैज्ञानिक विधियों के विकास और अध्ययन की ज़रूरत नहीं है. सच तो यह है कि यदि इस स्थिति में कचरे के पुनर्रुपयोग के प्रति स्पष्ट कार्यक्रम और लक्ष्य बनायें तो हमारे लिए यह संभव हो जायेगा कि भविष्य में हम प्राकृतिक स्रोतों की समाप्ति के भयावह अनुभवों से बच जायें और विश्व में प्राकृतिक संपदा के संतुलन को बनाये रखने में महत्त्वपूर्ण योगदान दे पायेंगे.

विश्व की बढ़ती हुई जनसंख्या को दृष्टि में रखते हुए यह अहसास तेज़ी से बढ़ रहा है कि शायद सामान्य कृषि द्वारा मनुष्य अपनी खाने की ज़रूरतें पूरी नहीं कर पायेगा और वैकल्पिक स्रोत खोजने की सख्त ज़रूरत है. वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि बहुत से कचरे को मनुष्य और पशुओं के योग्य आहार में बदला जा सकता है. हाल ही में ब्रिटेन में विशेषज्ञों के एक सम्मेलन में वेस्टर्न बयोलाजिकल इक्युपमेंट, डारसेट के **डॉ. प्रीस्टले** ने यह सिद्ध कर दिया है कि विभिन्न प्रकार की शैवाल उगाने के लिए किसी उच्च प्राविधि की ज़रूरत नहीं. और इस का विकास बड़ी आसानी के साथ विभिन्न प्रकार के कचरे से किया जा सकता है. विशेष रूप से देहातों में पाये जाने वाले कृषिकर्म से उत्पन्न कचरे में इस प्रकार की काई आसानी से उग सकती है. यह तथ्य भी सिद्ध हो चुका है कि शैवाल को भी सुपाच्य बनाया जा सकता है. वास्तव में हाल ही में भारत में आयोजित जैविक गैस सम्मेलन में भी इस बात की ओर संकेत किया गया कि भारत के देहातों में गोबर गैस को भारतीय ग्राम के समुचित आर्थिक विकास के साथ जोड़ा जा सकता है जिस में गोबर से गैस और खाद बनाने के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के शैवाल तैयार किये जा सकते हैं जो मनुष्यों और पशुओं के लिए पुष्ट प्रोटीन खाद्य में परिवर्त्तित की जा सकती है. इसी प्रकार कागज़ को भी भावी खाद्य पदार्थों का एक स्रोत माना जाता है. यद्यपि हमारे देश में कागज की खपत उतने बड़े पैमाने पर नहीं होती कि उसे खाद्य में परिवर्त्तित करने के सिलसिले में अनुसंधान पर भारी व्यय उठाया जाये. इस परिवर्त्तन के पीछे केवल एक तथ्य है कि कागज़ में पाये जाने वाले सेल्यूलोज को शक्कर में बदला जा सकता है. आगे की प्रक्रियाओं में इस से खाद्य पदार्थों के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की दवाइयाँ और तेजाब भी बनाये जा सकते हैं. हमारे देश में कागज़ के पुनर्रुपयोग का सब से आसान तरीका उस को फिर से कागज़ बनाना है. संपन्न देशों में इस प्रक्रिया को इस लिए उपयोगी नहीं पाया है कि वहाँ कागज को इकट्ठा करने और फिर से नये कागज़ में परिवर्त्तित करने का मूल्य गूदे से नया कागज़ बनाने के मूल्य से अधिक बैठता है. यह समस्या हमारे देश के लिए नहीं है. सच तो यह है कि स्वीडेन जैसे देश ने भी एक नया कानून बना कर रद्दी कागज़ के पुनर्रुपयोग की व्यवस्था की है. इस देश में कागज़ बहुत बड़े पैमाने पर होता है.

पशुमल के उपयोग की समस्या हमारे देश के लिए महत्त्वपूर्ण है. इस समस्या को दो दृष्टियों से देखा जा सकता है. एक यह कि बड़े शहरों को प्रदूषण से बचाया जाना चाहिए और इस लिए शहरों के मलमूत्र को साफ़ करने के लिए नयी प्राविधि का विकास ज़रूरी है. दूसरी दृष्टि यह है कि इस से कुछ उपयोगी खनिज प्राप्त किये जा सकते हैं जो पानी में सघन रूप में या तो कृषि के लिए उपयोगी हों या उन में विभिन्न प्रकार की काइयों के विकास से एक कोशीय प्रोटीन का निर्माण किया जा सके. यह सब व्यापारिक रूप से भी संभव हो गया है.

हाल ही में भारत की विज्ञान और प्राविधि की राष्ट्रीय समिति ने एक योजना तैयार की है जिस से सवा तीन करोड़ हेक्टेयर भूमि को विभिन्न प्रकार के औद्योगिक कचरे से सुधारा जायेगा. बरसों से गलत प्रकार के जल और खाद व्यवस्था के कारण करोड़ों एकड़ भूमि बंजर हो गयी है. इन में या तो अम्लीय तत्त्व अधिकता में पाये जाते हैं या यह भूमि क्षारीय हो गयी है. विभिन्न संस्थाओं की सहायता से एक वैज्ञानिक अध्ययन शुरू किया जा रहा है जिस में विभिन्न प्रकार की भूमि के लिए उपलब्ध औद्योगिक कचरे का चुनाव होगा. आरंभिक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध होता है कि इस प्रकार का सुधार संभव है. पंजाब, हरयाणा, उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, गुजरात, आंध्र और पश्चिम बंगाल में बहुत बड़ा क्षेत्रफल क्षारीय हो गया है और इन में से बहुत सी भूमि को इस्पात कारखानों से प्राप्त
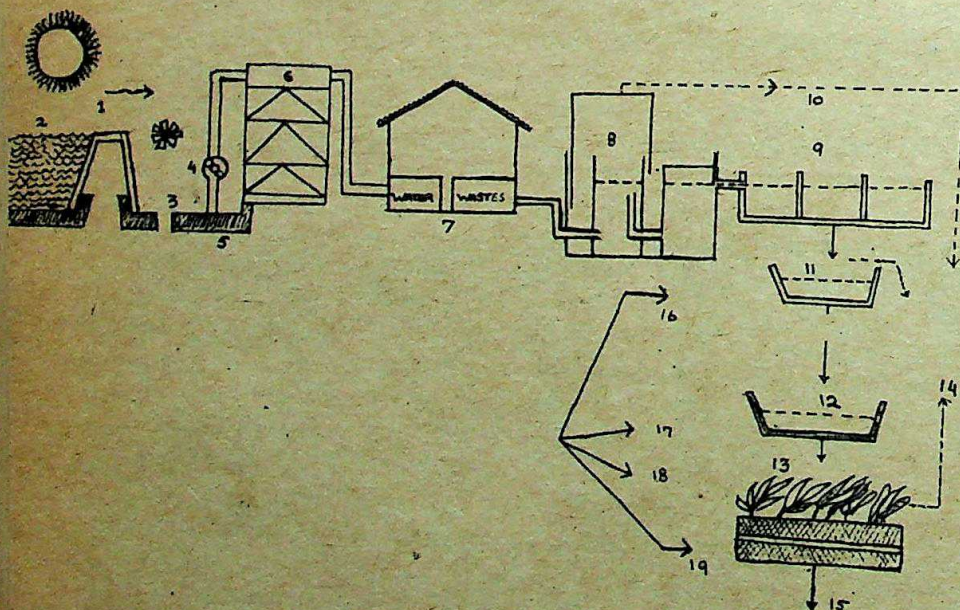
1. वायु 2. जलाशय 3. नहर 4. पम्प 5. पानी 6. टैंक 7. पशुगृह 8. पाचन-कुण्ड 9. शेष द्रव 10. गोबर गैस 11. शैवाल 12. प्लांकटन 13. खनिज 14. खाद्य 15. शुद्ध जल 16—18 शैवाल, मछली और अन्य कुण्ड

राख से सुधारा गया है क्योंकि इस में अम्लीय विशेषताएँ होती हैं. इस के विपरीत असम, बिहार, केरल, कर्नाटक और ओडिसा के बहुत से क्षेत्रों में भूमि अम्लीय है. यहाँ चूने से युक्त राख और मिट्टी का उपयोग किया जा सकता है. यह चूने की राख बड़े कारखानों में कचरे के रूप में फेंक दी जाती है. विशेषज्ञों को आशा है कि तीन करोड़ बीस लाख हेक्टेयर भूमि को सुधारने और कृषि योग्य बनाने के अतिरिक्त 17 करोड़ हेक्टेयर ज़मीन ऐसी भी है जिस पर खेती तो होती है मगर अम्लीय या क्षारीय गुणों के कारण उत्पादन बहुत कम है. विशेषज्ञों की उक्त समिति के अध्ययन से यह दोहरा लाभ प्राप्त हो सकता है कि बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाया जा सकेगा और बड़े कारखानों के आसपास औद्योगिक कचरे का सही प्रबंध होगा जो अन्यथा प्रदूषण का काम करेगा.

उस्ताद रहीमुद्दीन खाँ डागुर (गाते हुए) और उनके पुत्र फहीमुद्दीन खाँ डागुर

संगीत

उस्ताद रहीमुद्दीन खाँ डागुर नहीं रहे

प्राचीनकाल से आज तक निर्विवाद रूप से ध्रुपद का स्थान शास्त्रीय संगीत में सर्वोच्च माना गया है किंतु कुछ समय पूर्व यह शैली सौंदर्ययुक्त भाव प्रकाशन के स्थान में लय और ताल की जटिलताओं में फँस कर चमत्कार प्रदर्शन तक ही सीमित रह गयी थीः जिन महानुभावों ने ध्रुपद की प्राचीन आध्यात्मिक पृष्ठभूमि को पहचान कर सरस सुंदर रूप में इसे फिर प्रतिष्ठित किया उन में **उस्ताद रहीमुद्दीन खां डागुर** का स्थान अग्रगण्य है. कुछ ही समय पूर्व पं. विनायक राव पटवर्धन और श्री तारापद चक्रवर्ती के निधन के बाद उस्ताद रहीमुद्दीन खाँ के हाल ही में हुए निधन का समाचार संगीत के लिए वज्राघात के समान है.

रहीमुद्दीन खाँ का जन्म उदयपुर रियासत में सन् 1905 में हुआ. उन के पिता स्वर्गीय अल्लाबंदे खाँ तथा उन के अग्रज स्वर्गीय ज़ाकिरुद्दीन खाँ राजगायक के पद पर थे. बचपन में वह चंचल प्रकृति के थे. फिर भी 8 वर्ष की आयु से उन की विधिवत शिक्षा आरंभ हुई. 15 वर्ष की आयु तक अपने पितृव्य और पिता दोनों के मार्गदर्शन में उन की साधना निरंतर चलती रही. विशेषतया ज़ाकिरुद्दीन साहब तो रियाज़ के मामले में बहुत कठोर थे. शुद्ध सच्चे आकार की सिद्धि, सरगम और मेरुखंड प्रस्तार इस स्वर साधना के प्रमुख अंग थे.

15 वर्ष की आयु से उन्हें तालीम के 12 ध्रुपद सिखाने शुरू किये गये. इन में विशिष्ट स्वरों की विशिष्ट स्थिति और लगाव का अभ्यास किया जाता था-हनुमंत भैरव का निम्न ध्रुपद कोमल ऋषभ की साधना के लिए विशेष रूप से उपयुक्त है—

'प्रथम उठ भोर ही नाम लेत शिव शिव शिव'. इसी प्रकार नाद साधना के ध्रुपदों की तालीम उन्हें मिली जिन में एक स्वर से दूसरे पर अखंड रूप से जाना और राग में वर्जित स्वर को न लगने देने का पूर्ण ध्यान रखना होता है. ऐसे एक ध्रुपद की बानगी इस प्रकार है.

'नाद ब्रह्म को आधारलेत सरस्वती जब बूड़न लागी तब तूंबी को आधार लीनो' दम-सांस ठीक तरह सिद्ध होने पर ही ऐसे ध्रुपद गाये जा सकते हैं. 21 वर्ष की आयु तक उन्होंने ताल आलाप, ध्रुपद धमार में कुशलता प्राप्त कर ली थी. सन् 1925 में उन का पहला सार्वजनिक कार्यक्रम लखनऊ की बारादरी में हुआ. मधुर और सुरीले कंठ स्वर, शुद्ध मुद्रा और शुद्ध वाणी, राग की प्रकृति के अनुकूल भावपूर्ण ढंग से प्रस्तुतीकरण, लयकारी का वहीं तक मर्यादित उपयोग कि वह मारपीट का रूप धारण न कर ले—इन सब विशेषताओं से समन्वित होने के कारण उन की गायकी विद्वानों से ले कर सामान्य श्रोताओं तक—सभी के लिए आकर्षक सिद्ध हुई. धीरे धीरे उन्होंने इतनी लोकप्रियता प्राप्त कर ली कि देश के प्रमुख संगीत समारोहों तथा आकाशवाणी के आयोजनों में उन का कार्यक्रम प्रायः अवश्य रहता था. कार्यक्रम के आरंभ में प्रायः संस्कृत का कोई प्रसंगोचित श्लोक शुद्ध उच्चारण में स्पष्टता के साथ प्रस्तुत कर वह अनुकूल वातावरण का निर्माण कर देते थे.

सन् 1938 से 1953 तक का समय उन के लिए बहुत परेशानी का रहा. आकाशवाणी के (ऑडीशन) स्वर परीक्षा में बैठना अपने गौरव के अनुरूप न मानने के कारण काफी समय तक उन्होंने रेडियो प्रोग्राम नहीं किये. उन के तीन बच्चों की मृत्यु भी इसी बीच हो गयी. आखिर रेडियो वालों को झुकना पड़ा और बिना 'ऑडीशन' के उन्हें उन के उपयुक्त श्रेणी का कलाकार मान कर उन का नेशनल प्रोग्राम सन् 1955 में हुआ.

खाँ साहब मुस्लिम धर्मावलंबी होते हुए भी भारतीय संगीत को मनोरंजन का साधन मात्र न मान कर 'नाद योग' के रूप में इसे मनुष्य जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति का साधन मानते थे. ध्रुपद में असावधानीवश कई बार कोई कोई कलाकार हरकत या मुरकी ले लेते हैं. इस संबंध में वह एक ध्रुपद को ही उदाहरण के रूप में बताते थे 'दिगंबर सुर राख रे' अर्थात स्वर को बिना किसी वस्त्र, अनावश्यक सजावट के ही प्रस्तुत करना चाहिए.

लखनऊ के भातखंडे विद्यापीठ में वह कुछ वर्ष ध्रुपद के प्राध्यापक रहे. संगीत नाटक अकादेमी का राष्ट्रीय पुरस्कार भी उन्हें प्राप्त हुआ. भारत सरकार ने उन्हें पद्मश्री और बाद में 'पद्म भूषण' से अलंकृत किया.

रहीमुद्दीन खाँ साहब का स्वास्थ्य पिछले कुछ वर्षों से ठीक नहीं था. कुछ ही समय पूर्व उन्हें दिल का दौरा पड़ा था. दूसरी बार दौरा पड़ने पर 20 नवंबर को नयी दिल्ली के ऑल इंडिया मेडिकल इंस्टीट्यूट में उन की मृत्यु हो गयी. ध्रुपद शैली का एक बेजोड़ गायक हमारे बीच से उठ गया जिस ने इस शैली को 'नादयोग' के प्राचीन रूप में ही इसे पहचाना था. उन के सुपुत्र श्री फहीमुद्दीन खां डागुर कलकत्ता की रवींद्र भारती में संगीत के प्राध्यापक हैं. उन के सिर पर यह महान उत्तरदायित्व आ पड़ा है कि अपने पिता जी से प्राप्त विद्या का संरक्षण और संवर्धन करें. साथ ही लुप्त होती जा रही ध्रुपद गायकी अपने वास्तविक स्वरूप में अधिकाधिक सुयोग्य शिष्यों को सुलभ हो इस के लिए वह विशेष रूप से प्रयत्नशील रहें.

—विनयचंद्र मौद्गल्य

आइफैक्स वार्षिकी

लगता है हमारे यहाँ वार्षिक कला प्रदर्शनियाँ एक अर्थहीन अनुष्ठान बन कर रह गयी हैं.—**ललित कला अकादेमी** की वार्षिक प्रदर्शनी समेत. **आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसायटी** की **45वीं वार्षिक प्रदर्शनी** (जो नयी दिल्ली में 18 नवंबर से शुरू हुई) भी इस का अपवाद नहीं है. 120 कलाकारों के 84 चित्र, 43 ग्राफिक (छापे) और 19 मूर्तिशिल्प, प्रायः खराब काम का ही प्रतिनिधित्व करने वाले हैं, जिन्हें उतनी ही खराब तरह से प्रदर्शित भी किया गया है. इन कृतियों के आधार पर हम समकालीन कला के परिदृश्य को नहीं समझ सकते. इस तरह की प्रदर्शनियाँ अपनी प्रासंगिकता खो चुकी हैं. ये न तो नयी कला धाराओं के बारे में कुछ बताती हैं, और न ही नयी प्रतिभाओं की खोज करती हैं. अधिक से अधिक ये समकालीन कला की एक अधूरी, अपर्याप्त, और कभी कभी तो विरूपित छवि ही प्रस्तुत करती हैं. समय आ गया है कि इन प्रदर्शनियों को इस रूप में आयोजित करना समाप्त कर दिया जाये.

ऐसे आयोजनों में आयोजक केवल यह करते हैं कि वे पुरस्कारों की संख्या और राशि वाली एक नियमावली कलाकारों के पास भेज देते हैं और प्रतियोगी कृतियों के प्राप्त होने की अंतिम तिथि की घोषणा कर देते हैं, और बस. इस के बाद कलाकार की बारी आती है कि वह अपना काम आयोजकों के पास भेज दें. प्रतियोगी कृतियाँ आयोजकों के पास आती हैं, जिन्हें वे एक चयन और निर्णायक समिति के सामने पेश कर देते हैं और इस समिति के सदस्य अपनी अपनी 'दुर्बलताओं' और पसंदगी-नापसंदगी के आधार पर थोड़ा बहुत काम प्रदर्शनी के लिए चुन लेते हैं, और खैरात बाँटने वाले अंदाज में इन में से कुछ कृतियों को पुरस्कृत कर देते हैं. सालों से यह पद्धति चलती आ रही है और अनुभव के आधार पर हम ने जाना है कि यह नयी प्रतिभाओं को अपनी ओर आकर्षित नहीं करती.

इस प्रदर्शनी में 120 कलाकारों की 155 कृतियाँ हैं. यह नहीं मालूम कि चयन और निर्णायक समिति के सामने कुल मिला कर कितनी कलाकृतियाँ रखी गयी थीं (कैटलॉग में इस का कहीं उल्लेख नहीं है). बहरहाल इन 120 कलाकारों में से 70 तो कम से कम दिल्ली के ही हैं, बाकी 50 कलाकार ही विभिन्न क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं. कलकत्ता से केवल दो कलाकार हैं, 2 ही बड़ौदा से हैं, 1-1 बंबई और हैदराबाद से, और कुछ कृतियाँ सुदूर दक्षिण की हैं. संयोगवश ये केंद्र देश के सक्रिय कला-केंद्रों में से हैं और हो सकता है कि कलाकारों ने स्वयं ही इस प्रदर्शनी में भाग लेना न चाहा हो. दिल्ली के ही बहुत से युवा कलाकारों ने या तो प्रदर्शनी में भाग नहीं लिया या अगर लिया भी हो तो इन की कृतियाँ प्रदर्शनी के लिए चुनी नहीं गयी हैं. इस बात को रेखांकित करने के लिए यह समीक्षक उन कुछ युवा कलाकारों के नाम लेना चाहेगा जिन की समूह प्रदर्शनी ठीक इन्हीं दिनों दिल्ली में हो रही है. ये कलाकार हैं : **गोपी गजवानी, जय झरोटिया, सतीश गुप्त, माला मरवाह, अमिताभ सेन गुप्त.** नहीं मालूम कि इन कलाकारों ने आइफैक्स की वार्षिकी में अपना काम भेजा था या नहीं. लेकिन एक तथ्य की ओर संकेत करने के लिए यह समीक्षक बताना चाहता है कि उद्घाटन वाले दिन उसे यह बात मालूम हुई कि युवा चित्रकार **शमशाद** जिन के काम से हम लोग बखूबी परिचित हैं, की कृति प्रदर्शनी के लिए नहीं चुनी गयी जब कि कई साधारण कृतियाँ पुरस्कृत तक कर दी गयी हैं—जैसे **गोविंदराज** (प्रेमी : मूर्तिशिल्प) और **के. एल. रंगीन** (विशेष उल्लेख) की कृतियाँ.

इसी तरह **रामेश्वर बरूटा** की कृति **प्रक्षेपण,** जिसे हम आसानी से इस प्रदर्शनी की एक बहुत अच्छी कृति कह सकते हैं, पुरस्कार नहीं पा सकी. बरूटा ने इस में बराबर की तरह वानर रूप को आंदोलित किया है. लाल रंग के एक वानरी समूह को बरूटा ने, जैसे एक सुरंग-नुमा धरातल में व्याप्त किया है ('मेहराबों' का का रंग हरा है) यह निश्चित रूप से एक अच्छी और पोढ़ी कृति है. दरअसल यह कृति रजत पदक प्राप्त **भूषण** की कृति से कम घट कर नहीं है. लेकिन इस का मतलब यह नहीं कि भूषण की कलाकृति सक्षम नहीं है. बस यही कि जब 2 कृतियों के बीच में 19-20 से भी कम का फर्क हो तो उन पर कोई निर्णय थोपना फिर अन्यायपूर्ण लगता है, खास तौर पर तब जब कि ऐसे मौक़ों पर पुरस्कार एक आपा-धापी में दिये जा रहे हों.

भूषण की कृति (शीर्षक है **पीछे जाना-2**) एक अच्छी और पुष्ट कृति है. वह इस मुहावरे में लगभग 3 वर्षों से काम कर रहे हैं और अपने कोलाजों से होते हुए तैल रंगों में इस शैली तक पहुँचे हैं. इस में गहरे नीले से ले कर उद्दीप्त लाल तक की कई रंगतें हैं जो उन्होंने अत्यंत कुशलतापूर्वक कैनवास पर रखी हैं, जिस के बीच से कि मानव आकृति झाँक आती है. इस का कुल प्रभाव चाक्षुष स्तर पर अपने में देर तक उलझाये रखने वाला और प्रभावशाली है.

अन्य पुरस्कृत कृतियों में **शब्बीर हसन काज़ी** का चित्र **प्रत्यक्ष बोध 009, जयकृष्ण** की शीर्षकहीन कृति, **अनुपम सूद** का **खिड़की-2** (ग्राफिक) **मृणालिनी मुखर्जी** का मूर्तिशिल्प, **अमिताभ बनर्जी** का **अंधेरा नक्षत्र** (ग्राफिक) ब्रह्मप्रकाश का छापा **वास्तुशिल्पीय अवधारणा**—प्रशंसनीय और उल्लेखनीय कृतियाँ हैं. इन के अलवा कुछ और अच्छी कृतियाँ भी हैं जिन्हें न मालूम क्यों पुरस्कार के योग्य नहीं समझा गया. यहाँ हम केवल कुछ का उल्लेख कर रहे हैं : **जगदीश दे** की कृति **संरचना**

भूषण : पीछे जाना-2

रामेश्वर बरूटा : प्रक्षेपण

75-ए, माधवी पारेख की **ग्रामीण आपेरा-2, मनु जे. पारेख** की कृति प्रेमी, **विमान बी. दास** का मूर्तिशिल्प **देवी, रमेश बिष्ट** का मूर्तिशिल्प **स्वाती बूंद** और **एस. जी. वी. सत्पथी** की कृति **देवमूर्ति.**

यह एक दिलचस्प तथ्य है कि कम से कम 3 पुरस्कृत कलाकार या तो प्रदर्शनी समिति के सदस्य थे या फिर आइफैक्स की साधारण सभा के सदस्य हैं, और चयन और निर्णायक समिति के दो सदस्य स्वयं आइफैक्स के संयुक्त सचिवों में से हैं.

साधारणतः प्रदर्शनी में ग्राफिक का हिस्सा अपनी ओर सब से अधिक ध्यान खींचता है चित्रों और मूर्तिशिल्पों से कहीं अधिक. यह भी कि छापे प्राय: दूसरी कृतियों से बेहतर हैं. परमजीत सिंह के दो संवेदनशील सेरीग्राफों को छोड़ दें तो अधिकतर छापे या तो अम्लांकन हैं या फिर उत्कीर्णन पद्धति के. कृतियाँ प्रायः अमूर्तन संदर्भों की हैं. इन के बीच रेखा और धरातल की अभिक्रिया के माध्यम से ग्राफिक चित्रकार किसी न किसी छवि या बिंब की ओर बढ़ते हैं. लेकिन रचना के प्रति कुल दृष्टिकोण या तो प्राथमिक है या फिर औपचारिक. जो भी हो इन के बीच अनुपम सूद, जयकृष्ण, अमिताभ बनर्जी और ब्रह्मप्रकाश, माध्यम को बरतने में और छवि निरूपण में अपनी सक्षमता बताते हैं. **अनुपम सूद, जयकृष्ण** तो राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत ग्राफिक चित्रकार हैं और दरअसल ब्रह्मप्रकाश के काम की ओर अब विशेष रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए और देखा जाना चाहिए कि यह आगे किस तरह का काम करते हैं. अनुपम सूद का छवि निरूपण एक प्रकार का अतियथार्थवाद लिये हुए है और जयकृष्ण ज्यामितीय रूपाकारों को एक प्रतिमामय आयाम देते मालूम पड़ते हैं.

चित्रकला वाला हिस्सा केवल संख्या बल से ही हावी लगता है---रचना गुण के हिसाब से नहीं. हाँ, इस हिस्से में एक और बहुत अच्छी कृति है **के. खोसा** की जिस का शीर्षक है **गोदो के इंतजार में---समुअल बेकेट को समर्पित.** यह कृति प्रतियोगिता के लिए नहीं थी. श्री खोसा उन संवेदनशील कलाकारों में से हैं जो पिछले कई वर्षों से एक प्रकार के अतियथार्थवादी रूपों में अपनी अभिव्यक्ति ढूँढ़ते रहे हैं. हालाँकि उन का बिंब विधान आकृतिमूलक है, वह उसे कठोर किनारी (हार्डएज) पर कसते हैं. 2 अन्य कृतियाँ भी अतियथार्थवादी धारा की हैं---एक **डब्ल्यू. आर. कपूर** की कृति **तिरस्कृत** और दूसरी **रणवीर सिंह कालेका** की **वैवाहिक बुलबुले.** कालेका शिल्प कुशल मालूम पड़ते हैं और उन के काम से और भी उम्मीदें बाँधी जा सकती हैं. अभी एक कृति के आधार पर कोई फ़ैसला नहीं दिया जा सकता. यह बात कुछ दूसरी कृतियों के साथ भी लागू होती है.

मूर्तिशिल्पी प्रायः प्राथमिक रूपाकारों तक ही अपने को सीमित किये हुए हैं. **मृणालिनी मुखर्जी** का रस्सियों रेशों से बनाया हुआ मूर्तिशिल्प जरूर एक अपवाद है. यह एक संवेदनशील मूर्तिशिल्प है. मृणालिनी मुखर्जी
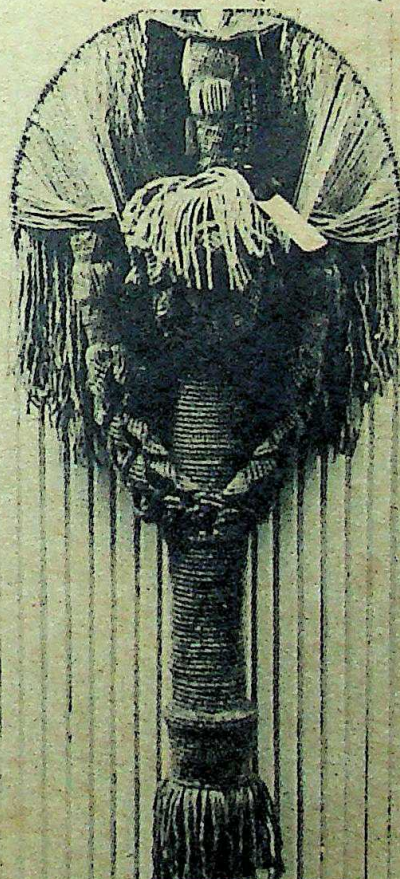
मृणालिनी मुखर्जी : रस्सियाँ और रेशे

रामचंद्रन : परमाणु रागिनी

रस्सियों और रेशों से दिलचस्प रूपाकार बुनने में प्रवृत्त लगती हैं. कुछ दिनों पहले उन्होंने अपनी कृतियों की एकल प्रदर्शनी भी की थी. वह अत्यंत कल्पनाशील हैं और अपने माध्यम को बखूबी जानती हैं. यह देखना दरअसल उत्साहवर्द्धक है कि मूर्तिशिल्प में हमारे यहाँ एक नये माध्यम को स्वीकृति मिल रही है.

अंत में हम यही कहना चाहेंगे कि आइफैक्स को इस बारे में पुनर्विचार करना चाहिए कि इस तरह के आयोजनों में कैसे एक नया जीवन भरा जाये. शुरू के दिनों में आइफैक्स वार्षिकी देश की एक अत्यंत प्रतिष्ठित प्रदर्शनी समझी जाती थी लेकिन दुर्भाग्यवश अब उस ने अपना पहले जैसा आकर्षण खो दिया है. इस तरह की खुली प्रतियोगिता वाली प्रदर्शनियों के बजाय वह 30 साल से कम आयु वाले कलाकारों के एक वार्षिक आयोजन के बारे में सोच सकती है. हो सकता है कि ऐसी प्रदर्शनी फिर वैसी ही प्रतिष्ठा प्राप्त कर ले जैसी कि आइफैक्स की शुरू की प्रदर्शनियों को प्राप्त रही है.

---आनंद दास गुप्त

अ. रामचंद्रन

आकृतिमूलक काम करने वाले समकालीन कलाकारों में **अ. रामचंद्रन** बहुत शिल्प कुशल हैं. साल दो साल पहले तक अ. रामचंद्रन मानव आकृति को बृहदाकार बना कर, एक पुष्ट मांसलता के साथ, बड़े कैनवासों में रखते रहे हैं : मानव आकृति के विभिन्न अंगों को---कभी एक विरूपण में, कभी एक प्रकार की छिन्न-भिन्नता में : चक्कर खाती आकृतियाँ, बदहवास दौड़ती आकृतियाँ, अपने पैरों को कहीं जमाने का---स्थिर करने का---प्रयत्न करती आकृतियाँ---रामचंद्रन की कृतियों को मानव नियति और मानवीय स्थितियों

से जोड़ती रही हैं : उसे एक समकालीनता भी देती रही हैं और उसे देश काल के 'पार' भी ले जाती रही हैं. याद कर लें कि वे आकृतियाँ प्रायः चेहरा विहीन हुआ करती थीं, जैसे कि उन की हाल की प्रदर्शनी (**कुमार गैलरी**) के सब से बड़े (म्यूरल के आकार के) चित्र 'पीछा' में हैं. लेकिन कुल मिला कर उन के नये चित्रों में चेहरे वाली आकृतियाँ ही हैं,ग्रामीण, हिंदुस्तानी.

रामचंद्रन ने इन आकृतियों को भी परिचित शिल्प कुशलता के साथ गढ़ा है. लेकिन इन में रामचंद्रन की कृतियों की पहली-सी नाटकीयता, त्वरा और भंगिमा नहीं है: हम उन के आकृति चित्रण की सराहना तो कर पाते हैं, लेकिन वे हमें अनुभव की नयी या पुनराविष्कृत स्थितियों से बहुत कम जोड़ती हैं. एक चित्र में दर्पण देखती स्त्री और दर्पण पर चिपका चेहरा, पास बैठा बंदर; एक दूसरे चित्र में एक परदे के पीछे एक स्त्री को छिपाती दो और स्त्रियाँ, एक और चित्र में ऊँट जैसी मानवाकृति में गुड़ी मुड़ी बैठी स्त्री आदि—कुछ नाटकीय स्थितियों की रचना करते मालूम पड़ते हैं और चाक्षुष स्तर पर थोड़ी देर के लिए भरमाते हैं—लेकिन हम इन चित्रों के रूपकों और प्रतीकों में अंततः ज्यादा कुछ पढ़ नहीं पाते. रामचंद्रन ने इन चित्रों का एक प्रमुख शीर्षक रखा है: **परमाणु रागिनी**. वह शायद परमाणु युग के गाँव गाँव तक फैल गये त्रास की ओर संकेत करना चाहते हैं. रामचंद्रन के रेखांकन (नायक नायिका) उन के चित्रों से बिल्कुल उलट हैं—उन में प्रकृति की चीजों का एक प्रस्फुटन है और इसी के बीच स्त्री-पुरुष की अंतर्निहित आकृतियों को उन्हों ने एक रेखा जाल में रखा है. रेखांकन अपने आप में एक चाक्षुष आकर्षण बुनते हैं.

रामचंद्रन की इन कृतियों में हम उन की एक नयी दिशा की ओर बढ़ने की इच्छा को तो लक्ष्य करते हैं, लेकिन यह भी अनुभव करते हैं कि उन की पिछली कृतियों और आने वाली संभावित कृतियों के बीच का फिलहाल एक संक्षिप्त पड़ाव भर है यह.

कृष्ण (माधुरी मौद्गल्य) और राधा (ताजेश्वरी शशांक)

नृत्य नाट्य

गीत गोविंद की कहानी

पं. मोतीराम संगीत नाट्य अकादेमी ने बंबई में नवंबर के तीसरे सप्ताह में अपने तीन दिवसीय संगीत नृत्य महोत्सव के पहले दिन जयदेव कृत 'गीत गोविंद' की प्रस्तुति हिंदी में की. बारह सर्गों में विभक्त राधा कृष्ण के इस संस्कृत प्रेम काव्य का संगीत और नृत्य की दृष्टि से अपना एक विशेष महत्व है. गीत गोविंद की प्रत्येक अष्टपदी को स्वयं जयदेव ने राग और ताल में निबद्ध किया था. उन के लिए इस का सांगितिक महत्व किसी कदर कम नहीं था. एक जगह वे संगीत रसिकों से आव्हान करते हैं कि वे गीत गोविंद को सुने. 16वीं शताब्दी के बंगाल में प्रचलित लोक गाथाओं के अनुसार बंगाल के संगीत मर्मज्ञ राजा लक्ष्मण सेन के यहाँ वह संगीतकार थे.

नृत्य की दृष्टि से भी 'गीत गोविंद' की अष्टपदियों का उतना ही महत्व है क्योंकि जयदेव की इस रचना के पीछे उन की सुंदरी पत्नी पद्मावती की प्रेरणा थी जो स्वयं संगीत और नृत्य में अपना विशेष स्थान रखती थी. गीत गोविंद में पद्मावती का अनेक बार उल्लेख है शायद जयदेव ने अपनी रचना को नृत्य की दृष्टि से भी लिखा था ताकि पद्मावती उस पर नृत्य कर सके. गीत गोविंद ने भारतीय नृत्य शैली पर भारी प्रभाव छोड़ा है. ओडिसी पर उस का अमिट प्रभाव है. 15वीं शती के अंतिम दशक में तो पुरी के जगन्नाथ मंदिर में गीत गोविंद के अलावा किसी अन्य रचना पर नृत्य गायन की मनाही थी.

गीत गोविंद, जिस के पीछे संगीत और नृत्य की एक लंबी परंपरा है, प्रस्तुत करना एक तरह की चुनौती है. समस्या यह भी थी कि पिछले पाँच सौ वर्षों से इसे लगभग सारे देश के वैष्णव मंदिरों में गाया जाता है इस लिए इसकी गायन शैली में भी खासा वैभिन्य है. फिर जयदेव ने जिन रागों में अष्टपदियाँ निबद्ध की हैं उन में से अनेक रागों की आज तो कोई जानकारी नहीं है या उन का रूप बिल्कुल बदल चुका है. लगभग यही समस्या नृत्य के साथ भी है.

इस समस्या को गायक **पंडित जसराज** और वादक **विजय राघव राव** तथा नृत्य गुरु **श्री केलुचरण महापात्र** ने सम्मिलित रूप से सुलझाया. चूँकि गीत गोविंद को मुख्यतः ओडिसी में प्रस्तुत किया जाता रहा है अतः इस के प्रस्तुतिकरण के लिए ओडिसी नृत्य शैली को चुना गया मगर संगीत के लिए हिंदुस्तानी शैली अपनायी गयी. मोतीराम अकादेमी के इस महत्त्वाकांक्षी आयोजन के लिए मंच सज्जा **एम. आर. अचरेकर** को, मंच आकल्पन **राम अडारकर** को तथा प्रकाश व्यवस्था **तापस सेन** को सौंपी गयी जिन का अपने अपने क्षेत्र में विशिष्ट स्थान है. इस का हिंदी अनुवाद **नंद किशोर मित्तल** ने किया. बताते हैं कि वे पिछले दस बारह वर्ष से इस काम में लगे हुए थे. पं. जसराज ने उन से यह अनुवाद लिया और पहले कुछ संस्कृत विद्वानों को दिखाया. यह आश्वस्ति प्राप्त करने के बाद कि अनुवाद मूल संस्कृत के अनुरूप है उन्होंने गीत गोविंद की धुनें पहले संस्कृत में बनायीं. फिर जब उन्होंने हिंदी अनुवाद को उन्हीं धुनों पर गाया तो वह उसी राग और ताल पर बैठ गया. गुरु केलुचरण महापात्र ने इस का भाव पक्ष एवं नृत्य मुद्राएं संस्कृत क्रम पर आधारित पायीं.

स्पष्ट ही मंच पर प्रस्तुत हिंदी अनुवाद में 'गीत गोविंद' के वे ही अंश लिए गये जो कथा सूत्र को आगे बढ़ाने में सहायक थे. लेकिन जयदेव की इस रचना की कथा कतई महत्वपूर्ण नहीं है. कृष्ण की क्रीड़ा, राधा का विरह और फिर दोनों का मिलन, यह है कुल जमा कथा. उस का पारंपरिक महत्व चाहे जितना सिद्ध किया जाये, आज के संदर्भ में वह किसी तरह महत्वपूर्ण नहीं है. हाँ, उस रचना के आत्यंतिक मूल्य जो उस के रचना सौंदर्य में ही निहित होंगे महत्व के हो सकते थे मगर 'गीत गोविंद' के इस लोकप्रिय संस्करण में उन्हें ज्यादा पनाह नहीं मिली है. लेकिन नृत्य और संगीत अपने आप में इतनी ज़बर्दस्त विधाएँ हैं कि वे शब्द को पचा लेती है और शब्द में जो छूट गया है उसे कह देती है.

केलु गुरु की नृत्य संयोजन कथा पक्ष को इतने ज़बर्दस्त ढंग से प्रस्तुत करता है कि 'गीत गोविंद' का हिंदी में होना कोई अर्थ नहीं रखता. वह भाव की एक एक बारीकी को चार स्तरीय मंच पर ओडिसी शैली में इस तरह प्रस्तुत करते हैं कि 'गीत गोविंद' का आत्यंतिक मूल्य भी स्पष्ट होता जाता है. यह समझने में मदद मिलती है कि पिछले सात आठ सौ वर्षों में 'गीत गोविंद' को ओडिसी ने किस प्रकार जीवित रखा.

पं. जसराज और **विजय राघव राव** ने शास्त्रीय संगीत को बिना हानि पहुँचाये उसे लोकप्रिय धुनों में बाँधा. हालांकि कहीं कहीं उस में भड़कीलापन भी है भटियार, यमन, भैरवी के अलावा अनेक रागों में उन्होंने बंदिशें प्रस्तुत कीं. जयदेव द्वारा निर्देशित रागों में सारी बंदिशें बाँधना तो असंभव था इस लिए संगीतकार द्वय ने अपनी रचनाओं में समय और ऋतु के अनुरूप रागों को चुना. पं. जसराज के शिष्य **पं. गिरीश** के साथ **अनुराधा पोडवाल** का गायन मुख्य था. इस नृत्य संगीत की रचना मधुरा जसराज ने की.

1973 में स्थापित मोतीराम संगीत नाटक अकादेमी बंबई से कुछ दूरी पर एक संगीत आश्रम की स्थापना का इरादा रखती है. जहाँ छात्रों को निःशुल्क शिक्षा के साथ आवास की सुविधा भी प्रदान की जायेगी.

'दूसरा सिनेमा' का वर्चस्व

कलकत्ता में आयोजित अंतरराष्ट्रीय फ़िल्म समारोह का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह था कि उस में भारतीय सिने दर्शकों को 'दूसरा सिनेमा' या 'स्वतंत्र सिनेमा' से परिचित कराने की पहल की गयी थी. 'तृतीय विश्व' की फ़िल्में दिखाने की दिशा में भी यह एक सराहनीय प्रयास था हालाँकि तृतीय विश्व की बहुत-सी ऐसी फ़िल्में नहीं दिखाई जा सकीं, जिन के मंगाये और दिखाये जाने की अपेक्षा की गयी थी. मेरी जानकारी के मुताबिक कारण का पूरा खुलासा नहीं हो सका. लातिनी अमेरिकी देशों की 'ब्लड ऑफ कंडोर' (गिद्ध का खून) और कुछ अन्य चर्चित फ़िल्मों तथा कोस्ता गावरास की फ़िल्म 'ज़ेड' को देखने के लिए दर्शक बहुत लालायित थे. 1972 में कलकत्ता में क्यूबा की फ़िल्मों का समारोह आयोजित किया गया था—उस से पहले और उस के बाद भी लातिनी अमेरिकी देशों की फ़िल्में शायद ही कभी भारत में दिखाई गयी हों. अकीरा कोरोसावा की फ़िल्म 'लोवर डेप्थ' (निचली तह) भी समारोह के विशेष आकर्षणों में से एक थी. 'निशांत' एकमात्र भारतीय फ़िल्म थी जो इस समारोह में दिखायी गयी फ़िल्मों के मुक़ाबले के लिए चुनी गयी. यह फ़िल्म समारोह प्रतियोगितात्मक नहीं था अतः इस 'अधूरेपन' की पूर्ति के लिए कई बार कई तरह से माँग उठी. समारोह के निदेशक जगत मुरारी ने यह आश्वासन दिया कि निकट भविष्य में ही कलकत्ता में प्रतियोगितात्मक अंतरराष्ट्रीय फ़िल्म समारोह के आयोजन का प्रयास किया जायेगा. व्यावसायिक दृष्टि से समारोह की सफलता का एक स्पष्ट संकेत तो यही है कि ज़बरदस्त अंधड़ और तूफ़ान में भी अधिसंख्य दर्शक विचलित नहीं हुए; टिकट की खिड़कियों पर उन का जमाव यथावत् रहा. समारोह के आयोजकों ने कहा है कि लातिनी अमेरिकी देशों की 16 एम. एम. की कुछ फ़िल्में प्रदर्शन के लिए कलकत्ता के 'फेडरेशन ऑफ फ़िल्म सोसाइटी' को दी जायेंगी. मृणाल सेन की बातें यह जतलाती रहीं कि लातिनी अमेरिकी फ़िल्मों और 'दूसरा सिनेमा' में ही उन की खास दिलचस्पी है. सत्यजित राय ने मुझ से कहा कि वह हिचकॉक की फ़िल्म देखने के लिए लालायित हैं.

अकीरा कोरोसावा की फ़िल्म 'लोवर डेप्थ' उन की फ़िल्म 'डौडिस डजेन' (वाहनों की आवाज) से अधिक सशक्त है. इस के कथ्य तथा 'लोवर डेप्थ' के कथ्य में काफ़ी समानता है. कोरोसावा को समुरायी परंपरा और राजशाही से गहरा लगाव रहा है और यह लगाव उन की अधिकांश फ़िल्मों में उद्घाटित होता रहा है. 'डौडिस डजेन' और 'लोवर डेप्थ' उन की सोच में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन के संकेत देते हैं. ये फ़िल्में यह भी जतलाती हैं कि शिल्प के स्तर पर भी वह इस नये आयाम का भरपूर निर्वाह कर सकते हैं. 'लोवर डेप्थ' में दलित जनों की नियति और उन के परिवेश के जीवंत चित्रण में उन की सफलता सराहनीय है. फ़िल्म का संदेश बहुत स्पष्ट है. फ़िल्म के अंत में एक संवाद है—'मूर्ख'; यह उन के विरुद्ध है जो समाज के एक वर्ग को अमानवीय परिस्थितियों में जीने के लिए मजबूर करते रहे हैं. कोरोसावा की अन्य फ़िल्मों में दर्जनों चरित्र हैं, सैकड़ों चरित्र हैं और इतने अधिक चरित्रों को ले कर वांछित प्रभाव उत्पन्न करने में बहुत कम विख्यात फ़िल्मकार ही उन की बराबरी में ठहर सकते हैं, लेकिन 'लोवर डेप्थ' में कुछ ही चरित्र (जो एक बस्ती के निवासी हैं) अतीत और वर्त्तमान में मनुष्य को मारक परिस्थितियों की ओर धकेलने वाले किसी भी समाज और किसी भी व्यवस्था के चरित्र को उद्घाटित करते हैं. एक खस्ताहाल बस्ती के लोगों की जुए, शराब और हर तरह की पतित आदतों में धंसी हुई ज़िंदगी में से बड़े सलीक़े से यह बात उभरती है कि यदि हम अपने गुनाह को महसूस कर सकें तो ज़िंदगी हर एक के लिए अर्थमय हो सकती है. फ़िल्म में दो भिन्न वर्गों के दो चरित्र शुद्ध प्रेम के सहारे एक होने का प्रयास करते हैं, लेकिन उन की लालसा पूरी नहीं होती—मूलतः इसलिए कि समाज उन्हें रास्ता नहीं देता. हम कह सकते हैं कि इस तरह कोरोसावा ने यथार्थ को ही कबूल किया है.

सॉइलं ग्रीन : रिचर्ड फ्लीशर द्वारा निर्देशित यह अमेरिकी फ़िल्म अत्यधिक बेचैन कर देने वाली फ़िल्म है. हैरी हैरीशन के उपन्यास पर आधारित यह फ़िल्म दर्शाती है कि प्राविधिक विकास का दूषण और घोर असंतुलन 2022 तक जीवन को कितना विषम और वीभत्स बना देगा. जनसंख्या में वृद्धि के मुकाबले खाद्यान्नों की कमी जीवन के मूल्यों को शून्य की ओर ले जायेगी. फ़िल्म में लोग सड़कों पर और सीढ़ियों के इर्दगिर्द बेहाल पड़े दिखाई देते हैं. इस के विपरीत चंद लोग ऐश कर रहे हैं—प्राविधिक विकास की सारी उपलब्धि को हथिया चुके हैं. एक पुलिस अफसर शहर का मुआयना करते हुए देखता है कि अपराधी भी अमीरों से खाद्य सामग्री प्राप्त करने का प्रयास कर रहे हैं. पुलिस अफसर के एक मित्र को खाने के लिए एक सेब मिल जाता है और वह उसे इस तरह खाता है कि 'द गोल्ड रस' फ़िल्म के उस प्रसंग की याद आती है, जिस में चैप्लिन और उस का भारीभरकम मित्र 'बिग जिम' जूता उबाल कर खाते हैं. लोग अपनी इच्छा से मरने के लिए एक ऐसी जगह जाते हैं, जहाँ मारने से पहले उन्हें खिला पिला कर बिस्तर में लिटाया जाता है और एक फिल्म द्वारा उन्हें प्राकृतिक दृश्य दिखाये जाते हैं. शायद इस लिए कि प्रकृति को देखने का सुख प्राप्त करने का यही एक उपाय शेष रह गया है. मारे गये लोगों के शव को एक ऐसे कारखाने में ले जाया जाता है जहाँ मनुष्य के मांस और लहू से बिस्कुट की तरह की कोई चीज़ बनायी जाती है. फिर राशनिंग द्वारा ये 'बिस्कुट' शहर के लोगों को दिये जाते हैं. इस माजरे को समझ कर फ़िल्म का नायक लोगों से कहता है—यह चीज़ मनुष्य के मांस और लहू से बनी है और लोगों के दुश्मन उसे मार डालते हैं. फ़िल्मकार की सब से बड़ी उपलब्धि यह है कि वह एक कठिन विषय को पूरी खूबी से दर्शाते हुए एक दुःस्वप्न का गहरा साक्षात्कार करा सका है.

'ब्लड ऑफ कंडोर' (गिद्ध का खून) : यह लातिनी अमेरिकी फिल्म ग्राम पंचायत के एक ऐसे नेता के संघर्ष की गाथा है, जो अपने लोगों को तरह-तरह के छल छद्म से आगाह करता रहता है. उसे यह जानकारी मिलती है कि कुछ अमेरिकियों ने एक जच्चा घर खोला है. उस जच्चा घर में ले जायी गयी औरतों का इस तरह 'उपचार' किया जा रहा है कि वे बांज हो जाती हैं. लोग अमेरिकी डॉक्टरों के खिलाफ शिकायत दर्ज करवाते हैं. प्रतिक्रिया यह होती है कि पुलिस अफसर शिकायत दर्ज करवाने वालों और अमेरिकी चिकित्सकों से जवाबतलब करने वालों को गोली मार देते हैं. नायक घायल हो जाता है. ग्रामीणजन उसे किसी शहर में ले जाते हैं, जहाँ उस का भाई एक कारखाने में काम करता है. अस्पताल में चिकित्सक कहता है कि घायल नायक की जान बचाने के लिए खून चाहिए. खून इतना महँगा है कि वे उसे खरीद नहीं सकते. कोशिश जारी रहती है, लेकिन खून की एक बूंद भी नहीं मिल पाती. नायक की मृत्यु के बाद उस का भाई यह शपथ ले कर गाँव लौटता है कि वह सत्ताधारियों को अपदस्थ कर के ही चैन लेगा—पूँजीपतियों के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष की तैयारी करेगा.

कई प्रेक्षक कह रहे थे कि बोलिविया के फ़िल्मकार **जॉर्ज संजेनेस** की इस फिल्म का शिल्प बहुत शिथिल है. सच्चाई यह है कि फिल्म के संदेश को आम लोगों तक पहुँचाने में शिल्प काफी सहायक है. ऐसी सोद्देश्य फिल्मों की सादगी और सहजता की सराहना की जानी चाहिए, शिल्पगत वैशिष्टय की ही नहीं. इस फ़िल्म को सही परिप्रेक्ष्य में देखा जाये तभी उस का उचित मूल्यांकन किया जा सकता है.

—सुखेंदु घोष

लिखिए—वॉटरमेन की स्याही से यानी सही स्याही से !

- स्याही जो पेन में जमती नहीं.
- लिखावट को चमक देती है.
- निब को जंग लगने से बचाती है.
- पेन अधिक दिन चलता है.
- पेन से समानान्तर बहती है.

वॉटरमेन स्याही से अच्छी लिखावट का सिलसिला पिछले ४० वर्षों से चला आ रहा है !

RACM-1-75

वी.पी.पी. द्वारा माल मंगाइये

भारतके बाजारमें अब अेक अनोखा उपकरण। यह उपकरण इलेक्ट्रोनिक कियासे मच्छरोंको दूर भगाता है। इसका स्वीच दबातेही आपका कमरा मच्छरोंसे तथा अैसेही अन्य जंतुओसे मुक्त हो जायगा। इसमे नाममात्र विद्युत खर्च होती है। मूल्य रु. 55/- *

युनीवर्सल चार्जर अेक उपकरण तीन काम :

टोर्च व ट्रांजिस्टर के पुराने सैल बहुमूल्य हैं। इन्हे फेंकिये नही। (१) इस उपकरणसे किसी भी मेक या प्रकारकी ड्राइ सैलें तथा एक्यूमलेटर (कार की बेटरीयाँ) फिरसे चार्ज की जा सकती है। (२) बेटरी इलीमीनेटर (अर्थात इसकी सहायतासे ट्रॉंजिस्टर, टेपरेकर्डर आदि अे. सी. मैन पर चलाने) का काम लिजीये। (३) नाइट लैंप की तरह प्रयोग किजीये। मूल्य रु. 60/- *

* पोस्टेज और टैक्स अलग

UNIVERSAL TRADERS
125,(DM) Zakaria Masjid Street BOMBAY-400009

प्रेक्टिकल इंग्लिश

नौकरी, परीक्षा, व्यवसाय तथा सामाजिक क्षेत्र में सफलता के लिए सशक्त अंग्रेजी आवश्यक है. अंग्रेजी में दक्षता प्राप्त करने के लिए हमारे पत्राचार पाठ्यक्रम में प्रवेश लें. विवरणी मंगाइये.

कहानी-लेखन महाविद्यालय (द)
अम्बाला छावनी-133001

सब ऊन धागा-पुस्तक विक्रेता से भी मिल सकती हैं

साप्ताहिक
दिनमान
टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रकाशन

द. पू. एशिया का रंग :
आॅस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, तिमोर

रुपया 21-27 दिसंबर, 1975
30 मार्गशीर्ष-6 पौष, 1897

मोलक्कस के छापामार

- ★ हम स्वप्न क्यों और कैसे देखते हैं?
- ★ सपने याद क्यों नहीं रहते?
- ★ क्या हम भावी घटनाओं को जान सकते हैं?
- ★ क्या हमारा पुनर्जन्म होता है?
- ★ मृत्यु के बाद आत्मा कहाँ जाती है?
- ★ आत्मा कितने जन्म ले सकती है?
- ★ पूर्व जन्म की बातें हमें याद क्यों नहीं रहतीं?
- ★ क्या भूतप्रेतों का अस्तित्व है?
- ★ भूतप्रेत कैसे होते हैं? क्या उनसे बात की जा सकती है?
- ★ क्या आत्मा से बात की जा सकती है?
- ★ मंत्र-तंत्र और श्राप में कितनी शक्ति होती है?
- ★ कुछ व्यक्तियों में असाधारण अलौकिक शक्ति क्यों आ जाती है?

रहस्यमय प्रश्नों के वैज्ञानिक उत्तर

इन तथा इन जैसे अनेक रहस्यमय प्रश्नों के वैज्ञानिक उत्तर पाठकों को नवभारत टाइम्स वार्षिकांक १९७६ में मिलेंगे, यह रोंगटे खड़े कर देने वाले उपन्यास से भी ज्यादा रोचक है. नवभारत टाइम्स वार्षिकांक १९७६ मोटे मुखपृष्ठ के साथ १४४ पृष्ठों का होगा— ३८ पृष्ठ रंगीन – आकार माधुरी के बराबर. कागज और छपाई बहुत सुंदर.

नवभारत टाइम्स वार्षिकांक १९७६

नवभारत टाइम्स

वार्षिकांक १९७६

मूल्य: केवल छह रुपये.

अपनी प्रति आज ही अखबार वाले के पास सुरक्षित कीजिए.

टाइम्स आफ इंडिया का गौरवशाली प्रकाशन

मत और सम्मत

'पुराने फैसले : एक सिंहावलोकन' : 30 नवंबर : अब समय आ गया है कि स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले की भारतीयों की सामाजिक मानसिकता के विषय में निरपेक्ष रूप से बात की जा सकती है क्योंकि होता बहुधा इस से भिन्न यह है कि लोग किसी एक प्रचलित विचारधारा का पक्ष लेते हुए उस से भिन्न हर किसी पक्ष की आलोचना करने लगते हैं. ऐसा करना सीमित अर्थों में ही लाभकारी है जैसे कि अगर हम किसी संप्रदाय का प्रचार करना चाहते हों या ऐसा करने में हमारा स्वार्थ निहित हो. इस प्रकार के विचार भारतीय आधुनिक कला के इतिहास को ले कर मेरे मन में भी आते रहे हैं. बंगाल स्कूल के नाम से प्रचलित कला आंदोलन भी वास्तव में बंगाली पुनर्जागरण का ही एक हिस्सा था जो निर्मल जी के अनुसार चुनौती का दूसरा विकल्प था. बंगाल स्कूल का प्रारंभ ही एक अंग्रेजी कलाविद् श्री हैवेल की अवनींद्र नाथ टैगोर को दी गयी प्रेरणा से होता है. इस में उस समय की पाश्चात्य दृष्टि और भारतीय मानसिकता का हाथ किस अनुपात में रहा, यह निर्धारित करने के लिए यह पत्र सही माध्यम नहीं है. देश के अतीत में जाने वाले इस कला आंदोलन से गांधी जी को भी कोई सहानुभूति नहीं थी. शांति निकेतन की एक घटना है : गांधी जी श्री नंदलाल बसु के कला मूल्यों से सहमत नहीं हुए तो मास्टर मोसाय ने गांधी जी से पूछा कि उनके कलाविषयक विचार क्या हैं. गांधी जी ने पेड़ की डालियों से झरते प्रकाश और उन की छाया की ओर इशारा करते हुए कहा : ये मुझे कहीं बेहतर लगते हैं. हमें पढ़ाने वाले कला भवन के अधिकतर शिक्षक इस उत्तर से सहमत नहीं दीखते थे और तब मेरे जैसे युवा छात्र के लिए गांधी जी का आशय समझना कठिन था. लेकिन आज मुझे लगता है कि उन्होंने अपनी संत वाणी में अवश्य ही वर्तमान की ओर मास्टर मोसाय का ध्यान खींचना चाहा होगा. स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देखते देखते बंगाल स्कूल अंतर्ध्यान हो गया और पहला विकल्प हमें पश्चिम की सड़ी हुई गलियों में दरारों से झांकते खड़ा किये है. चित्रकला या काव्य के क्षेत्र में विशुद्ध आधुनिक व्यक्तित्व का मूल्यांकन या सहज करना मेरे अधिकार से बाहर है, मगर मूर्ति शिल्प के क्षेत्र में, जहाँ संयोग से बंगाल स्कूल का अस्तित्व नहीं रहा, हम रामकिंकर को आधुनिक भारतीय व्यक्तित्व के उत्कर्ष का उदाहरण पाते हैं. चमनलाल दीवान की पुस्तक को, जिस में उन्होंने मैक्सिको में भारतीय संस्कृति के प्रभाव का उल्लेख किया है, पढ़ कर मैंने रामकिंकर से पूछा कि उन की राय क्या है ? उन्होंने पूछा : तुम इंसान की औलाद हो ? मेरे हाँ कहने पर उन्होंने कहा : मैक्सिको में भी इंसान रहते हैं फिर इस नाते तुम उन से अपनापन क्यों अनुभव नहीं करते. भारतीयता का प्रभाव खोजने की इस में आवश्यकता कहाँ है ?

मैं भारतीय और आधुनिक (पाश्चात्य) संस्कृति के बीच की चुनौती के संदर्भ में निर्मल वर्मा जी से पूर्णतः सहमत हूँ कि हमें किसी आदर्शवादी भविष्य की कल्पना करने और उस के लिए अपने वर्तमान को तिलांजलि देने के स्थान पर अपने वर्तमान के साथ न्याय करना चाहिए.—**रमेश नूतन, वास्तुकला विभाग, एम. ए. सी. टी., भोपाल-462007.**

निर्मल वर्मा ने अत्यंत सामयिक प्रश्न उठाया है. क्या उधार के भविष्य के मोह में वर्तमान को घिनौना बना दें ? क्या भारतीय परंपरा का गुणगान और समूची जीवन पद्धति में पश्चिम की नकल करने वाले बुद्धिजीवी अपनी अस्मिता और संस्कृति की रक्षा कर सकेंगे? भारतीय बुद्धिजीवी अपनी जीवन पद्धति के माध्यम से इन के समाधान नहीं दे सकते हैं पर देश की अस्मिता को बचाने के लिए इन के उत्तर देने ही होंगे. खुशी यह है कि निर्मल वर्मा ऐसा सोचने लगे हैं.—**छोटेलाल दीक्षित, अध्यक्ष, हिंदी विभाग, लालबहादुर शास्त्री महाविद्यालय, गोंडा.**

यूरोपीय संस्कृति को अच्छा बता कर उस का अंधानुकरण करने वालों को यह लेख मननपूर्वक पढ़ना चाहिए. ऊपरी आवरण से लुब्ध हो कर भीतर की गंभीरता तथा नींव के स्थायित्व की उपेक्षा उचित नहीं है. इसी बात को इकबाल ने भी कहा था, 'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी'. इस की रक्षा करना हर भारतवासी का कर्तव्य है. हमारी गरीबी में दरिद्रता लाने वाले यूरोपीय संस्कृत से लगाव ठीक नहीं. वह गरीबी गरीबी नहीं होती जिस में आदमी गौरवपूर्ण जिंदगी जीता है. हीन भावना को निकालने के लिए अपने अस्तित्व को पहचानना आवश्यक है.—**जितेंद्रकुमार तिवारी, व्याख्याता, शा. उ. मा. शाला, गोदम (बस्तर) म. प्र.**

काश ! भारतीय मनीषियों ने भारत के विकास का ढाँचा पश्चिमी साँचे में ढालने से पूर्व भारत की आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक परिस्थितियों को यहाँ के अतीत एवं वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में देखा होता. परिणामस्वरूप आज उत्पन्न विभिन्न समस्याओं का निराकरण अपने आप हो गया होता. वास्तव में हर देश की खुशहाली का रहस्य ही यह है कि उस देश के अतीत एवं वर्तमान की परिस्थितियों में एकता हो.—**उदय शंकर दीक्षित, आनंद नगर, भोपाल.**

दूसरा पहलू : तटस्थ दृष्टि से इतिहास की व्याख्या करते हुए भी निर्मल वर्मा का लेख अपने अंतिम निष्कर्ष में पूर्वाग्रहों से मुक्त नहीं है. यह सही है कि अंग्रेजों ने भारतीयों को पहली बार उन की अकिंचनता का बोध कराया था क्योंकि वे एक उन्नत सभ्यता साथ ले कर आये थे. अंग्रेज पूंजीवादी सभ्यता, संस्कृति एवं सामाजिक,आर्थिक और राजनैतिक चिंतन ले कर आये थे जब कि भारत उस समय सामंतवादी मूल्यों से चिपका हुआ था. पूंजीवादी व्यवस्था चूंकि सामंतवादी व्यवस्था की अपेक्षा अधिक प्रगतिशील थी अतः उसने सामंतवादी मूल्यों पर प्रहार किया और भारतीय समाज को झकझोर कर रख दिया. राजा राममोहन राय ने समाज के विकास की गति को भली भाँति समझा और उन्होंने इस द्वंद्व के हल के रूप में जो 'समन्वय का अभियान' प्रस्तुत किया वह समयानुकूल, भारतीय समाज को आगे बढ़ाने वाला था. पर समन्वय का अभियान आज प्रगति के मार्ग में रोड़ा बन चुका है. पश्चिम में ही पूंजीवादी आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक व्यवस्था पुरानी पड़ गयी है और इस का मूल कारण यह है कि पूंजीवाद से भी उन्नत व्यवस्था—साम्यवाद उस के दरवाजे पर दस्तक दे रहा है. लेखक का यह मत सही है कि अब वह समय आ गया है जब हमें उन निर्णयों का पुनर्मूल्यांकन करना चाहिए जो हमारे पूर्वजों ने 150 वर्ष पूर्व लिये थे. भारत को आज विश्व के सब

चंदे की रियायती दरें

अवधि	देश में	विदेश (साधारण डाक से)
वार्षिक	42 रु.	61 रु.
छमाही	22 रु.	32 रु.
तिमाही	12 रु.	16 रु.

आप फ़रमाते हैं

व्यंग्यचित्र : लक्ष्मण

"बहुत खूब ! क्या आप मुझे यह दे सकते हैं? मैं यही भाव शब्दशः दुहराना चाहता हूं."

से उन्नत दर्शन—मार्क्सवाद की आवश्यकता है. हां, भारतीय परिस्थितियों एवं परंपराओं के अनुसार उस में परिवर्तन करना होगा. **—रामबहादुर वर्मा, प्रवक्ता, राजनीति शास्त्र विभाग, फिरोज गांधी कालेज, रायबरेली, उत्तरप्रदेश.** जब 19वीं शताब्दी में अंग्रेज़ी भाषा और अंग्रेज़ी शासन के माध्यम से भारतीयों को यूरोपीय विचारधारा की जानकारी मिली तो उन्हें लगा कि जीने का आसान और सही तरीका वही है. परिणामस्वरूप स्वतंत्र रहने की इच्छा और प्रकृति पर विजय पाने की प्रेरणा से प्रेरित हो कर वे औद्योगिक संस्कृति के ढलान की तरफ बहते चले गये और आज हम इस परिवर्तन को पूर्णतः आत्मसात कर चुके हैं. यह संस्कृति न तो हमारे ऊपर थोपी गयी है और न ही यह ऐसा परिवेश है जिस में हमारी मनीषा समा नहीं पा रही है. अगर ऐसा होता तो हम इतने कम दिनों में इतनी अधिक औद्योगिक प्रगति न कर पाये होते. कामू और वर्मा जी की यह मान्यता कि हमें सब कुछ वर्तमान को दे देना चाहिए, नितांत भ्रामक है. ऐसा कामू का 'आउटसाइडर' जैसा व्यक्ति ही मान सकता है. सत्य यह है कि हमारा वर्तमान इतिहास द्वारा निर्धारित है, हमारी इच्छाशक्ति की स्वतंत्रता भविष्य निर्माण में ही निहित होती है. वर्मा जी पुराने निर्णयों का पुनर्मूल्यांकन कर यह दिखाना चाहते हैं कि अगर वह पुरानी पद्धति, जिस में हमारे सारे लौकिक कार्यकलाप धार्मिक भावनाओं में घुले रहते थे, अपना ली जायें तो सारे संकट दूर हो जायेंगे. परंतु इस युग में लौकिक क्रियाओं और धार्मिक भावनाओं की समग्रता स्थापित नहीं की जा सकती. लगभग 100 वर्ष पहले नीत्शे का 'जरादुंद्र' यह सोचता था कि क्या लोग सुन नहीं पा रहे हैं कि 'ईश्वर मर गया है.' आज अगर वह होता तो वर्मा जी जैसे नव परंपरावादियों के विचार पढ़ कर ठहाका लगाता. हमें आज अपने को धर्म में विलीन करने की आवश्यकता इसलिए नहीं है कि हम प्रकृति को वैज्ञानिक ढंग से समझने में समर्थ हैं, अब उसे समझाने के लिए किसी देवता का सहारा नहीं लेना पड़ता. कभी इमैनुअल कांट ने कहा था कि 'श्रद्धा को स्थापित करने के लिए मैं अपने सारे ज्ञान को नष्ट कर सकता हूं.' यदि आज वह होता तो शायद यह कहता कि 'श्रद्धा को नष्ट करने के लिए मैं अपने आपको नष्ट कर सकता हूं.' संक्षेप में हम जहाँ पहुँच चुके हैं वह हमारे लिए एक सही स्थिति है. सुंदर भविष्य के निर्माण में जुटे रहना ही हमारा एकमात्र लक्ष्य होना चाहिए. **—ठाकुर प्रसाद पांडेय, द्वारा राज होटल, 437—मुट्ठीगंज, इलाहाबाद, उत्तरप्रदेश.** निर्मल वर्मा 'आदिम स्रोत की मौलिक पवित्रता', 'अंदरूनी मर्म की गहरी परतों', 'आत्मा में छिपी खाई', जैसे अर्थलयहीन टुकड़ों से भारतीय इतिहासचेतना की सरहदों से जुड़ते हैं, हैरत होती है ! पता नहीं ये किन अंग्रेज़ी जुमलों के अनुवाद हैं. इतिहास की इस बहस में चेतना ही चेतना अटी पड़ी है, इतिहास एक सिरे से गायब है. उन्हें यूरोपीय मानस और मनीषा के तीखे मोड़ यूनानी संस्कृति के ह्रास में, रेनासां के उदय, चर्च की प्रभुसत्ता के पतन, औद्योगिक क्रांति से आज तक की प्राद्योगिकी के अद्भुत विकास में दिखायी पड़ जाता है मगर बौद्ध तत्ववाद और शांकर विवर्तवाद के समानांतर ह्रास, नवसामंतीय संस्कृति के विस्तार, सांप्रदायिकताओं के विरुद्ध आंदोलन, नामदेव, विद्यापति, कबीर, सूरदास, चैतन्य, मीरां के धर्मसहिष्णु दृष्टिकोण, हरिजन संस्कृति का उदय (भक्ति आंदोलन), जातीय चेतना में बहुभागीय जन की भागीदारी—वन्यजन, गिरिजन, आदिम जातियों का मूल सांस्कृतिक धारा में खिंच कर चला आना—जैसे तीखे मोड़ और परिवर्तन उन्हें दिखायी न दिये. 'अविभाजित भारतीय संस्कृति' की रट लगा कर उस की निरंतरता और अंतर्विरोध को नज़रअंदाज़ किया जाये यह गैरमुनासिब है. यूरोपीय मानस की खिड़कियाँ वहाँ के इतिहासकारों ने खोलीं. ऐसा उन्होंने सांस्कृतिक अनुभवों के आयाम में किया. काश! ऐसी खिड़कियाँ निर्मल वर्मा भी खोल पाते. मुझे तो लगता है कि उन्होंने खुले दरवाज़े भी भेड़ दिये हैं. ऐसे बासी लेख अंग्रेज़ी में हजारों की तादाद में रोज़ प्रकाशित होते हैं. जो दरवाज़े आचार्य रामचंद्र शुक्ल को अकेले हिंदी साहित्य के इतिहास में खुलते दिखायी पड़े थे वे भी इन्हें नहीं दिखे.

सामंतों और व्यापारी वर्ग की भूमिका को निर्मल वर्मा देखते ही नहीं. उन्हें वे परिवर्तन भी इसी लिए नहीं दिखे जो डॉ. कोसांबी को दिखे थे. बौद्ध धर्म पहला संगठित चर्च भी बन गया था जिस के ढर्रे पर शंकराचार्य ने पीठों की स्थापना की. उन के पतन से निर्मल वर्मा की इतिहासदृष्टि सीख न हीं लेती. प्राचीन और मध्ययुगीन भारतीय इतिहास के प्रति निर्मल वर्मा की उदासीनता आश्चर्यजनक है.

अब ज़रा उन के निष्कर्षों पर भी नज़र डाली जाये. उन की दृष्टि में असली द्वंद्व क्या है? यह कि हम ने अपने ऊपर से इतिहास को गुज़र जाने दिया. भारतीय प्राचीन धर्म मृतप्राय हो चुका है, अगर ईसाई धर्म उस की जगह न लेता तो दोष उस का है. अंग्रेज़ी राज ने पहली बार भारतीय बुद्धिजीवियों को आत्म मंथन करने को मजबूर किया. यही नहीं, उन्होंने जो ऐतिहासिक विकल्प रखे वे हमारे जातीय संस्कृति के अनिवार्य फलक बन गये. असली द्वंद्व को लाँघ जाने का इस से सरलतर मार्ग दूसरा नहीं हो सकता. **—सुरेंद्र चौधरी, 102, तेलबीघा, गया, बिहार.**

पिछले सप्ताह

(4 दिसंबर से 10 दिसंबर 1975 तक)

देश

4 दिसंबर : सीमा संबंधी मुद्दों पर भारत-बंगलादेश में समझौता. प्याज के निर्यात पर प्रतिबंध. जयप्रकाश नारायण मुक्त.

5 दिसंबर : बंगलादेश से दो सदस्यीय उच्चस्तरीय प्रतिनिधिमंडल का दिल्ली आगमन. उर्वरक के मूल्य में कटौती.

6 दिसंबर : बांबे हाइ में व्यापक सर्वेक्षण शुरू. बंगलादेश के प्रतिनिधिमंडल के साथ भारतीय नेताओं की सुवत वार्त्ता.

7 दिसंबर: गुरु तेगबहादुर बलिदान समारोह के संबंध में दिल्ली में विराट जुलूस.

8 दिसंबर : प्रेस काउंसिल की समाप्ति सहित राष्ट्रपति द्वारा तीन अध्यादेश जारी. भारत-बंगलादेश के संबंधों में सुधार के लिए नये क़दम.

9 दिसंबर : दिल्ली में देहाती भूमि की सीमा में कमी. छोटे इस्पात संयंत्रों के उत्पाद के करों में घटोतरी. संजय गांधी युवा कांग्रेस की राष्ट्रीय समिति के सदस्य निर्वाचित.

10 दिसंबर : विजय अमृतराज और अशोक कुमार सहित चौदह खिलाड़ियों को अर्जुन पुरस्कार.

विदेश

4 दिसंबर : अमेरिकी राष्ट्रपति जेराल्ड फोर्ड द्वारा मतभेदों के बावजूद अपनी चीन यात्रा सफल क़रार. राजा त्रिदिब राय की माता श्रीमती बिमला राय बंगलादेश राष्ट्रपति की सलाहकार नियुक्त. पाथेट लाओ के नेता राजकुमार सुफन्नवाङ लाओस के राष्ट्रपति नियुक्त.

5 दिसंबर : इस्राइली हमले पर संयुक्तराष्ट्र की बहस में भाग लेने के लिए फिलिस्तीनी मुक्ति मोर्चे को आमंत्रण.

6 दिसंबर : मनीला में अमेरिकी अड्डों के बारे में फोर्ड और मारकोस में वार्त्ता. क़ाहिरा में राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद और राष्ट्रपति अनवर सादात में विचारविमर्श.

7 दिसंबर : तिमोर की राजधानी डिली पर इंदोनेसियाई सेना का अधिकार.

8 दिसंबर : पुर्तगाल द्वारा इंदोनेसिया से राजनयिक संबंध विच्छेद.

9 दिसंबर : लेबनान की राजधानी बैरूत में संघर्ष के कारण जनजीवन अस्तव्यस्त. संयुक्तराष्ट्र के इस्राइल विरोधी प्रस्ताव पर अमेरिका द्वारा निषेधाज्ञा.

10 दिसंबर : थाईदेश द्वारा लाओस की नयी सरकार को मान्यता प्रदान.

पत्रकार संसद

अन्न के अभाव में

विश्व की अनेक समस्याओं में तात्कालिक और जटिल समस्या अन्न के विश्वव्यापी अभाव की है. अनेक प्रमुख समाचार पत्रों ने संसार का ध्यान इस ओर दिलाया है. विदेशी समाचार पत्रों में यही समस्या सर्वाधिक चर्चा का विषय है. प्रमुख अमेरिकी समाचार पत्र **क्रिश्चेन सायंस मानिटर** ने इस संदर्भ में एक वर्ष पहले के रोम सम्मेलन के निर्णयों की याद दिलायी है.यह सम्मेलन अन्न के अभाव की विश्वव्यापी समस्या पर विचार करने के लिए हुआ था. सम्मेलन ने समस्या के समाधान के लिए जो निर्णय लिए थे उन्हें लागू करने की प्रगति का ज़िक्र करते हुए पत्र ने अपने संपादकीय में लिखा है—

'एक वर्ष पहले रोम में कोई 130 राष्ट्रों ने विश्व में अन्न की कमी की समस्या पर विचार किया था. सम्मेलन ने कोई 20 प्रस्ताव पास किये थे.एक बार तो समूचे विश्व का ध्यान इसी समस्या पर केंद्रीत हो गया और सम्मेलन ने दुनिया के देशों को एहसास कराया कि अन्न का अभाव आज की दुनिया के लिए सब से बड़ा खतरा है. सम्मेलन के बाद से समस्या के समाधान की दिशा में कितनी प्रगति हुई है ? विशेषज्ञों का विचार है कि बहुत थोड़ी. इस प्रगति को संतोषजनक नहीं कहा जा सकता. फिर अभी हाल ही में बोस्ता में एक विचार गोष्ठी हुई, जिस में सम्मेलन की प्रगति पर विचारविमर्श हुआ. आशा और निराशा दोनों ही बातें समस्या के समाधान के प्रसंग में उभर कर सामने आती हैं. निस्संदेह अन्न का संकट विश्व के सामने बहुत गंभीर है. विचार गोष्ठी ने बीच का रास्ता निकाला है. इस गोष्ठी में वक्ताओं ने समस्या को कठिन और जटिल जरूर माना है, लेकिन बिल्कुल निराशानक नहीं.

जैसा कि अक्सर होता है सम्मेलन और विचारगोष्ठियाँ समस्या को उभारने में अथवा लोगों का ध्यान इस ओर खींचने में सफल होती है जिस का लाभ यह होता है कि यदि कोई समस्या संस्थागत अथवा लालफीताशाही के कारण हल नहीं हो रही है या उस में देर लग रही है तो राजनैतिक स्तर पर समाधान के कार्य को तेज किया जाता है. वैसे अमेरिका और समूचे एशिया में इस साल अनाज की फसल अच्छी होने की संभावना है. इस संभावना को ले कर निराशा से बचा जा सकता है. इस साल की अच्छी फसल के कुछ लाभ उठाये जा सकते हैं. अमेरिका ने कृषि की उपज बढ़ाने में पहले की अपेक्षा इस साल अधिक सफलता प्राप्त की है. फिर एक बात यह भी है कि विकसित देश विकासशील देशों को उदारता से अनाज की सहायता दे रहे हैं और अन्न के मामले में पहले से अधिक रियायतें भी विकासशील देशों को मिल रही हैं. लेकिन रोम सम्मेलन ने इस संबंध में जो निर्णय लिए, हैं उन्हें लागू करने की प्रगति निश्चय ही बहुत धीमी है.

रोम सम्मेलन ने पौष्टिक आहार उपलब्ध कराने का एक अभियान चलाने की बात की थी. लेकिन संयुक्त राष्ट्र में आपसी मतभेदों के कारण यह अभियान अभी तक नहीं चलाया जा सका. रोम सम्मेलन में गरीब देशों को अन्न की उपज बढ़ाने में सहायता देने के लिए एक अंतर्राष्ट्रीय कृषि विकास कोष की स्थापना का निर्णय लिया था. वह भी लागू नहीं हुआ. अमेरिका तथा अन्य विकसित देशों ने इस कोष के लिए 50 करोड़ डॉलर शुरू में देने का फैसला किया था. तेल उत्पादन करने वाले देशों ने भी धन राशि देने का वचन दिया था. लेकिन ये वायदे अभी पूरे नहीं हुए हैं. अगले वर्ष के शुरू तक भी पूरे होने की कोई उम्मीद नज़र नहीं आती. वैसे कोष के लिए कुल धन राशि 1.2 बिलियन डालर इकट्ठे करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था. अभी जब कि अमेरिका तथा विकसित देशों ने भी अपनी धन राशि पूरी तरह अदा नहीं की है तो समूचा लक्ष्य सिद्ध होने की आशा कैसे की जा सकती है ?

अन्न का विश्व संरक्षित भंडार स्थापित करने का निर्णय सम्मेलन ने लिया था. लेकिन सब से अधिक निराशा इसी निर्णय को लागू करने में हुई. अभी तक इस सिलसिले में कुछ नहीं किया गया है. लंदन की अंतर्राष्ट्रीय गेहूँ परिषद और गेहूं का आयात निर्यात करने वाले देशों के बीच अन्न के इस संरक्षित भंडार की स्थापना के बारे में अभी बातचीत चल ही रही है. सोवियत संघ भी इस बातचीत में हिस्सा ले रहा है. 6 महीने पहले अमेरिका ने इस भंडार के लिए 3 करोड़ टन अनाज अपने राष्ट्रीय संरक्षित अन्नभंडार में से देने का प्रस्ताव किया था. लेकिन यूरोपीय आर्थिक समुदाय के देशों ने इस का विरोध किया. क्योंकि ये देश चाहते हैं कि यदि इतना अधिक अनाज अमेरिका ने ही जमा करा दिया तो उन के यहाँ से बाहर जाने वाले अनाज की कीमत कम से कम उतनी ऊँची तो नहीं रह सकेगी जितनी वे चाहते हैं. लगता है कि यूरोपीय आर्थिक समुदाय के देशों को आशंका है कि विश्व में अन्न का इतना बड़ा संरक्षित मंडार बन जाने से मूल्यों में उतार चढ़ाव की स्थिति उत्पन्न हो सकती है. चाहे जो भी हो यह तो निश्चित ही है कि इस तरह का मंडार बनाने जैसे महत्वपूर्ण निर्णय में कोई प्रगति न होना निराशाजनक है. अगले कुछ सप्ताह में इसी प्रश्न पर और आगे बातचीत होगी. आशा करनी चाहिए कि कुछ न कुछ प्रगति तो इस दिशा में होगी ही. यह ठीक है कि समूचे विश्व में फसल अच्छी होने की आशा है लेकिन सवाल तो यह है कि आगे आने वाले किसी संकट का सामना करने के लिए दुनिया में काफी अनाज होना चाहिए.

संसार में अनाज के दीर्घकालीन संकट की संभावना को ले कर खाद्य विशेषज्ञों में काफी विचारविमर्श चल रहा है. इस संबंध में विश्व के प्रख्यात खाद्य विशेषज्ञ **लेस्टर ब्राउन** ने चेतावनी दी है कि जितनी तेजी से आबादी बढ़ रही है उतनी तेजी से अन्न की उपज नहीं बढ़ रही है. यह बहुत ही चिंताजनक स्थिति है. कुछ अन्न विशेषज्ञों की राय में स्थिति बहुत निराशाजनक नहीं है. अन्न की उपज तेजी से बढ़ाना संभव होता जा रहा है. लेकिन इस बात पर सभी सहमत हैं कि आगे आने वाले गंभीर खाद्य संकट का मुकाबला करने के लिए सब को तैयार हो जाना चाहिए. यह एक चुनौती है. जिस का सामना सभी को करना है. जिन देशों में ज़रूरत से अधिक अनाज होता है उन्हें अभावग्रस्त देशों की सहायता तो करनी ही है लेकिन विकासशील देशों को भी यह व्रत लेना है कि वे अपने यहाँ अन्न की उपज बढ़ायेंगे और यह उपज बढ़ाने के लिए आवश्यक आर्थिक तथा सामाजिक सुधार के कार्यक्रम बनायेंगे. निस्संदेह विश्व का खाद्य-संकट दूर करने के लिए रोम सम्मेलन ने शुरूआत की है. लेकिन इतना ही काफी नहीं है. रोम सम्मेलन के निर्णयों को लागू करने के साथ साथ देशों को अपने अपने ढंग से अन्न की उपज बढ़ाने के और प्रयत्न भी करने हैं.

प्रेस जगत

इतालवी अखबारों की मुश्किलें

इटली के 85 अखबारों को इस साल 7 करोड़ पौंड का घाटा होने का अनुमान है, मगर इस के बावजूद जनवरी 1976 में एक नये दैनिक 'रिपब्लिका' को प्रकाशित करने की योजना पर काम शुरू हो चुका है. इटली के अखबारों के बारे में विश्वस्त सूत्रों से मिलने वाली जानकारी को ही लगभग प्रामाणिक मान कर काम चलाने की मजबूरी इस लिए है कि तूरिन से प्रकाशित होने वाले **ला स्तांपा** के अलावा कोई भी अखबार अपना हिसाब बाहर नहीं आने देता. **ला स्तांपा** ने भी इस तरह की जानकारी एक साल पहले ही देनी शुरू की है. इतालवी संविधान की धारा 21 का कि 'प्रेस अपने वित्त के साधन घोषित करे' का रत्ती भर भी असर नहीं हुआ.

यही कारण है कि इन अखबारों की प्रकाशन संख्या भी एक रहस्य ही बनी रहती है. कुल मिला कर इटली में 50 लाख से कुछ ही ज्यादा अखबार बिकता है जो वहाँ की जनसंख्या को देखते हुए बहुत ज्यादा नहीं है. प्रत्येक 10—

व्यक्तियों के पीछे एक से भी कम अखबार पड़ता है.

इन अखबारों में से 60 प्रतिशत अधिक संख्या वालों की मिल्कियत भी बड़े उद्योगपतियों की है. 4,50,000 प्रकाशन संख्या वाले 'ला स्तांपा' की मालिक फिएट कंपनी है. रोम से प्रकाशित होने वाले **इल मेस्सागेरो** (2,50,000) में मोंतेदिसन की चलती है. मिलान के **इल कोरिएरे देल्ला सेरा** (5,50,000) और **इल गियोरनाले न्यूपो** (1,20,000) दोनों एक और बड़े उद्योग का ही अंग है. तेल के इजारेदार सिनोर मोंती का बोलोग्ना के **इल रेस्तो देल कार्लिनो** (1,70,000) और फ्लोरेंस के **ला नाज़ियों** (1,70,000) पर पूरा नियंत्रण है. मिलान का ही **इल गिओर्नो** (2,30,000) राज्य तेल कंपनी की मिल्कियत है.

ये अखबार अपने अपने दृष्टिकोण से राजनैतिक रवैये अपनाते हैं, लेकिन इन पर उद्योग के नियंत्रण के कारण उद्योग के दृष्टिकोण से इन के प्रभावित होने से कोई सीधे इनकार भी नहीं कर सकता. पश्चिम यूरोप की ही तरह अखबारी कागज के संकट से इतालवी अखबार भी ग्रस्त है. बढ़ रही कीमतों से पैदा होनेवाली मुश्किलों के अलावा इतालवी अखबारों की स्थानीय मुश्किलें भी हैं. इतालवी भाषा के अखबारों में पत्रकारों की गिनती बेशुमार है और ये पत्रकार अंग्रेजी अखबारों में काम करने वाले अपने साथियों की अपेक्षा दोगुना वेतन पाते हैं. इटली में अखबारों के वितरण पर होने वाला खर्च भी काफी ज्यादा है.

इन समस्याओं से अखबारों को उभारने के लिए इसी साल 6 जून को एक कानून बना कर अखबारों को आगामी दो सालों में 6.4 करोड़ पौंड देने की बात सामने आयी थी. इस कानून के हिसाब से इस राशि का 15 प्रतिशत पत्रिकाओं को राहत पहुँचाने के लिए है. लेकिन इतालवी लाल फीताशाही की हालत यह है कि इस कानून पर अमल ही नहीं किया जा रहा. इस तरह अखबारों को मिल पाने वाली कुछ राहत की भी संभावना अभी नहीं है.

1976 में प्रसिद्ध पत्रकार इयुजेनिओ स्काल फी के संपादकत्व और साप्ताहिक **ल एसप्रेस्सो** की लागत (50 प्रतिशत) से निकलने वाले अखबार का वर्तमान स्थिति के जारी रहने पर भविष्य उज्ज्वल नहीं ही कहा जा सकता. शुरू में इस की 150,000 प्रतियाँ प्रकाशित करने की योजना है. इटली के बड़े शहरों में ही इस की बिक्री होगी और स्थानीय समाचारों के लिए इस में कोई स्थान नहीं रहेगा. इस नये प्रारूप के बावजूद भी मौजूदा हालात में इस के चल पाने के बारे में शायद इस के परियोजक ही आशान्वित हो सकते हैं.

ग्राम विद्युतीकरण

सहकारिता की दिशा

भारत एक कृषि प्रधान देश है और उस की समृद्धि गाँव में रहने वाली 80 प्रतिशत जनता की समृद्धि पर निर्भर करती है. यह जनता मोटे तौर पर खेतिहर जनता है और खेती का विकास बहुत दूर तक सिंचाई की सुविधाओं पर निर्भर है. सिंचाई की सुविधाओं के लिए गाँव-गाँव में बिजली पहुँचाने की आवश्यकता है. जब तक यह व्यवस्था नहीं होती कृषि उत्पादन में वृद्धि और उस पर आधारित उद्योगों के विकास की पूरी संभावनाएँ सामने नहीं आ सकतीं. इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए 1969 में ग्राम विद्युतीकरण निगम नाम की एक संस्था स्थापित की गयी थी जिस ने 6–7 वर्षों में ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में ऐसे कई काम किये हैं जो मन में आशा और विश्वास जगाते हैं.

निगम एक स्वायत्तशासी संस्था है जो गाँव में बिजली पहुँचाने के लिए राज्य बिजली बोर्ड को आर्थिक सहायता प्रदान करती है लेकिन उस का एक अधिक महत्त्वपूर्ण काम है जनसहयोग से गाँव में बिजली का प्रसार. यह प्रयास नवीन और साहसिक है जिस में गाँव में बिजली का वितरण सहकारी समितियों के माध्यम से होता है. नवंबर 1965 में विभिन्न राज्यों के बिजली बोर्डों के अध्यक्षों का एक सम्मेलन आयोजित हुआ था और उस में यह सिफ़ारिश की गयी थी कि परीक्षण के रूप में प्रत्येक राज्य में एक-एक ग्राम बिजली सहकारी समिति स्थापित की जाये. विभिन्न राज्यों में ऐसी समितियों की स्थापना की गयी. सहकारी समितियों के निर्माण, संगठन और उस के क्रियाकलापों का अध्ययन करने के लिए निगम ने एक समिति गठित की थी जिस ने अपनी रपट में कहा है कि एक ग्राम बिजली सहकारी समिति क्षेत्र विकास कार्यक्रम को प्रभावशाली ढंग से लागू कर सकती है.

निगम के सचिव **श्री सी. बी. नायर** ने **दिनमान** से बातचीत के दौरान बताया, 'वर्तमान ग्राम बिजली सहकारी समितियों का मुख्य आधार परियोजनाएँ हैं जिन से एक क्षेत्र में विकास की गति को बढ़ाने के लिए बिजली का विस्तार किया जाता है तथा विकास की एक इकाई के रूप में संपूर्ण क्षेत्र में योजनाबद्ध तरीक़े से कृषि उत्पादन और ग्रामीण उद्योगों को बढ़ावा मिलता है. निगम ने 31 मार्च 1975 तक ग्राम बिजली सहकारी समितियों सहित 1068 योजनाओं के लिए सहायता के रूप में कुल 44244 करोड़ रुपये का ऋण स्वीकृत किया है. निगम द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त पाँच सहकारी समितियों की परियोजना के अंतर्गत 795 गाँव लाभान्वित होंगे तथा 38915 पंपिंग सैट और 63361 घरों और व्यवसायों को बिजली मिलेगी. निगम की नीति के आधार पर तथा ग्राम बिजली सहकारी समितियों की अब तक की सफलता को देखते हुए पाँचवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान कुछ और ग्राम बिजली सहकारी समितियों के गठन के लिए विभिन्न राज्यों को प्रेरित किया गया है. इसी नीति के आधार पर राजस्थान सरकार तथा बिजली बोर्ड से भी आग्रह किया गया कि वह ग्राम बिजली सहकारी समितियों के गठन पर विचार करें. निगम के इस आग्रह को ध्यान में रखते हुए राजस्थान सरकार तथा बिजली बोर्ड ने एक विशेष दल की नियुक्ति ग्राम बिजली सहकारी समितियों के गठन की संभावनाओं की जाँच पड़ताल के लिए की. दल से सहकारी समितियों के अंतर्गत आने वाले क्षेत्र तथा अन्य मुद्दों पर ध्यान देने के लिए कहा गया था. दल के निष्कर्षों के आधार पर राज्य में एक ग्राम बिजली सहकारी समिति की स्थापना का निर्णय किया गया. कृषि और उस पर आधारित उद्योगों की संभावनाओं के साथ-साथ भूमिगत जल की उपलब्धता को दृष्टि में रख कर जयपुर ज़िले के **कोटपूतली** क्षेत्र को परियोजना के लिए चुना गया. विशेष दल की इस रपट को स्वीकार कर राज्य सरकार ने विद्युतीकरण निगम के पास वित्तीय सहायता के लिए परियोजना रपट भेजी और उसे निगम ने आवश्यक जाँच-पड़ताल के बाद अनुमोदित कर दिया है. जयपुर ज़िले में स्थित कोटपुतली ग्रामीण बिजली सहकारी समिति 18 फ़रवरी '75 को पंजीकृत हुई थी.

इस समिति का कार्य क्षेत्र जयपुर ज़िले की संपूर्ण कोटपुतली तहसील का क्षेत्र होगा. इस में कुल 123 गाँव पड़ते हैं जिन में 18 गाँव का विद्युतीकरण पहले ही किया जा चुका है. समिति शेष 106 गाँवों में विद्युतीकरण के साथ ही साथ पहले से विद्युतीकृत गाँवों में बिजली के विस्तार में गति लायेगी. इस के अतिरिक्त क्षेत्र में 2226 जलकूपों और 209 लघु उद्योगों को ऊर्जायुक्त करने के साथ ही 3740 घरेलू और व्यावसायिक कनेक्शनों तथा 718 सड़क बत्तियों को भी बिजली रोशनी के लिए मिल सकेगी. 5 वर्षों में परियोजना की अवधि समाप्त होने पर समिति में कुल 8655 उपभोक्ताओं के होने का अनुमान है जिस में 2500 कृषि संबंधी, 255 औद्योगिक, 5000 घरेलू और व्यावसायिक तथा 900 सड़क बत्तियों के होने का अनुमान है. इस योजना की कुल लागत 1,50,03,500 रुपये आँकी गयी है.

विद्युतीकरण निगम के सहयोग से स्थापित की जाने वाली सहकारी समितियों और उस के कार्यकलापों का ब्योरा देते हुए निगम के संयुक्त निदेशक (सहकारिता) **श्री बीरेंद्र कुमार वर्मा** ने बताया कि पाँच सहकारी

समितियाँ तो काम कर ही रही हैं लेकिन ऐसी पाँच और समितियों की स्थापना शीघ्र की जाने वाली है; उत्तरप्रदेश में दो और कर्नाटक में दो. इसे वहाँ की राज्य सरकारों ने स्वीकृत कर लिया है. जम्मू-कश्मीर में भी एक समिति बनने वाली है. सिद्धांत के रूप में इसे राज्य सरकार ने स्वीकार कर लिया है और उस की परियोजना रपट तैयार हो रही है. पश्चिम बंगाल में भी एक समिति स्थापित करने का काम चल रहा है. इस प्रकार की सहकारी समिति की योजना मोटे तौर पर एक राज्य में एक तहसील या एक ताल्लुका या दो प्रखंडों को चुन कर क्रियान्वित की जाती है. क्षेत्र का चुनाव इस बात को ध्यान में रख कर किया जाता है कि वहाँ पर भूमिगत जल उपलब्ध हो और वह या तो पिछड़ा हुआ हो या विकासशील हो. हम राज्य सरकारों और वहाँ के बिजली बोर्डों को पहले प्रारूप भेजते हैं. अनुमानतः यह योजना डेढ़ करोड़ रुपये की होती है. 35 लाख रुपये राज्य सरकार को हिस्सा पूँजी के रूप में देना होता है लेकिन यह रकम भी ग्रामीण विद्युतीकरण निगम उसे कर्ज़ के रूप में देता है और उस पर सूद भी नाममात्र की यानी दो प्रतिशत से ले कर चार प्रतिशत तक ली जाती है.

इस में राज्य बिजली बोर्ड को भी हिस्सा पूंजी के रूप में 15 लाख रुपया लगाना होता है जो नकद रूप में नहीं होता है. आम तौर पर उस में विद्युतीकरण से संबंधित संयत्र तथा तार, ट्रांसफॉरमर आदि जैसी चीज़ें होती हैं. सदस्यों की साझेदारी भी इस के लिए आवश्यक है. उन से कहा जाता है कि वे पाँच साल के दौरान दस लाख रुपये इकट्ठा करें. इस में तारों को लगाने आदि (सर्विस कनेक्शन) की कीमत भी शामिल है. बाकी 90 लाख रुपया ग्रामीण विद्युतीकरण सहकारी समिति को राज्य सरकार की गारंटी पर कर्ज़ के रूप में देता है. यह रकम 30-35 साल में लौटानी होती है. सूद नाममात्र की है. यानी पहले पाँच साल में सवा चार प्रतिशत से ले कर सवा छह प्रतिशत तक. लेकिन पूरी अवधि में सूद की यह दर 9 प्रतिशत से अधिक नहीं होती.

ग्राम विद्युतीकरण निगम के कार्यकलापों में कुछ क्षेत्रों में विद्युत उत्पादन के लघु संयंत्र (मिनी जेनरेटर्स) लगाने की योजना भी शामिल है. यह पूछने पर कि इस की आवश्यकता और उपयोगिता क्या है श्री नायर ने यह बताया था कि यह अपेक्षाकृत एक सस्ता विकल्प है. इस का प्रयोग किया जा रहा है और अनुमान है कि 100 पंपों के संचालन पर जितनी लागत आती है उस से सस्ते में लघु संयंत्रों द्वारा बिजली पैदा की जा सकेगी. यदि हमारे प्रयोग सफल रहे तभी इस योजना को आगे बढ़ाया जायेगा.'

सूखा और सैलाब : एक अरण्य संदर्भ

यह एक संयोग ही है कि इस वर्ष जब कि एक नयी राष्ट्रीय वननीति का मसविदा विचाराधीन है, देश के कई भागों में अत्यधिक बाढ़ का प्रकोप हावी रहा है. बिहार में तो यह स्थिति बिल्कुल ही विनाशकारी साबित हुई. दरअसल पिछले कई वर्षों से यह देखने में आया है कि एक ही वर्ष के दौरान देश के एक भाग में अत्यधिक सूखा पड़ रहा है और दूसरे भाग में बला की बारिश हो रही है. नतीजा दोनों हालतों में विघटनकारी ही होता है. चाहे बाढ़ हो या सूखा, इन दोनों का सीधा संबंध नदी नालों के ऊपरी इलाक़ों में वनों के फैलाव से है.

किसी भौगोलिक क्षेत्र में कितनी मात्रा में वर्षा होनी है वनों का इस पर कोई प्रभाव नहीं होता है लेकिन जहाँ वन अथवा हरियाली प्रचुर मात्रा में होते हैं वहाँ वर्षा की अवधि अधिक समय तक फैल जाती है, और जहाँ हरियाली कम हो वहाँ उतनी ही मात्रा की वर्षा बहुत जल्द बरस कर एक प्रलयकारी रूप धारण कर लेती है. फिर, हरियाली वाले इलाके में बारिश बहते हुए धरती में जज्ब हो जाती है अतः एक साथ बहने की बजाय धीरे धीरे भूमि को और हरी बनाते हुए गुजरती है. इस के अलावा, जहाँ भूमि नंगी हो वहाँ पानी बरसने के ज़ोर से उतर कर अपने साथ काफी मिट्टी भी बहा ले जाती है. यह मिट्टी मैदानी इलाकों में पहुँच कर नदी नालों की तह में जमा होती चली जाती है. इस से नदी-नालों की पानी को सुरक्षित रख सकने की क्षमता कम हो जाती है. इस तरह जो पानी पहले एक नदी के दो पाटों में समा सकता था, वह सीमाएँ लाँघ कर चला जाता है.

सूखा, सैलाब की प्रक्रिया का ही दूसरा पहलू है. जब वर्षा के जल की अधिकतम मात्रा है तो शेष समय के लिए अत्यधिक गर्मी ही बाकी रह जाती है. इस क्रम का एक और घातक पहलू भी है—बार बार सैलाब और सूखा होने से भूमि की ऊपर की ऊर्वर तहें या तो ढह जाती हैं, या उन की उर्वरक क्षमता नष्ट हो जाती है.

यह सब देखते हुए यह बात कुछ अजीब सी लगती है कि अब तक हमारा ध्यान जहाँ बाढ़ नियंत्रण योजनाओं और सूखा राहत कार्यों में लगता रहा, वहाँ वनों के बचाव और विकास की दिशा में काफी कुछ क्यों नहीं किया गया. इस के कई एक कारण हैं. लेकिन इन में एक कारण यह भी रहा है कि वानिकी के बारे में हमारे विचार कुछ बुरी तरह उन्हीं मान्यताओं की साख लिये हुए रहे हैं जो साख उन्हें स्वाधीनता से पहले लगभग एक शताब्दी में अंग्रेज़ी राज के दौरान मिली.

वन कानून : ब्रिटेन में वानिकी का फैलाव काफी सीमित होने के कारण यह बात विस्मयकारी नहीं लगनी चाहिए कि भारत में अंग्रेज़ी शासकों का ध्यान इधर वन प्रशासन की ओर बहुत दिन तक नहीं गया है. आखिर जब उन्हें यह अंदेशा होने लगा कि उन के जहाज़रानी आदि उद्योगों में काम आने वाली लकड़ी का स्त्रोत आगे चल कर कभी क्षीण भी पड़ सकता है तो वनों की सुरक्षा की बात भी सामने आयी. अतः गवर्नर जनरल लार्ड डल्हौज़ी ने 1853 ई. में एक स्मरणपत्र का ज्ञापन किया जिस में वनों की सुरक्षा की बात पहली बार सरकारी तौर पर उठायी गयी. इस के कुछ वर्ष बाद 1864 में डा. डाइटरिख ब्रेंडिस को भारत का पहला वनसंबंधी महानिरीक्षक (इंस्पैक्टर जनरल, फारेस्ट्स) नियुक्त किया गया. इस के एक वर्ष बाद, 1865 में वानिकी संबंधी पहला कानून **भारतीय वन अधिनियम** (इंडियन फॉरेस्ट्स ऐक्ट) जारी किया गया. यद्यपि इस कानून में वनों के व्यापक सर्वेक्षण, सुरक्षण और वर्गीकरण की बात कही गयी थी, मगर शीघ्र ही यह ज़ाहिर होने लगा कि इस अधिनियम में कई एक खामियाँ हैं. अतः 1878 में कुछ संशोधित रूप में **भारतीय वन अधिनियम** को नये सिरे से लागू किया गया.

एक जर्मन विशेषज्ञ डॉ. वोल्कर के सुझाव पर वन संबंधी राष्ट्रीय नीति को पहली बार स्पष्ट शब्दों में 1894 में पेश किया गया. इस नीति के अंतर्गत एक ओर तो वनों की सुरक्षा की बात कही गयी, तो दूसरी ओर यह भी इंगित किया गया कि जहाँ ज़रूरत पड़े वहाँ खेती के लिए जंगलों को भी बलि चढ़ाया जाये. इस के बाद प्रथम विश्व युद्ध के दौरान यह बात और भी तीव्रता से महसूस की जाने लगी कि युद्ध कार्यों में भी वनिक स्रोत काफी महत्वपूर्ण साबित होते हैं. अतः 1927 में कुछ और परिमार्जन के साथ पुनः भारतीय वन अधिनियम को संशोधित रूप में और वन विकास के कुछ अन्य सुझावों के साथ लागू किया गया.

लेकिन फिर भी स्थिति को नये सिरे से देखने की कोशिश स्वाधीनता प्राप्ति के बाद ही शुरू हुई. 1950 में तत्कालीन केंद्रीय कृषि मंत्री स्व. कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी की पहल पर 'वन महोत्सव' का वार्षिक अभियान आरंभ किया गया. इस के दो ही वर्ष बाद एक नयी राष्ट्रीय वननीति को 1894 की ब्रितानी काल की वन नीति के स्थान पर स्थापित किया गया. 1952 के राष्ट्रीय वननीति प्रस्ताव में कई एक बातें नयी दृष्टि से देखने की कोशिश ज़रूर की गयीं. जहाँ 1894 की वन नीति में खेती को जंगलों के मुकाबले में अधिक महत्व दिया गया था वहाँ 1952 की नीति के अन्—

पाँचवीं योजना के अंतर्गत कार्यक्रम

विषय	1973-74 तक उपलब्धि	पाँचवीं योजना का लक्ष्य
1. औद्योगिक लकड़ी का उत्पादन	94	123 (लाख मीटर)
2. शीघ्र उत्पादन वाली लकड़ी	510	860 (हज़ार हेक्टर)
3. औद्योगिक और वाणिज्यिक उपभोगों के लिए	850	1.610 (हज़ार हेक्टर)
4. खेत वानिकी	80	160 (हज़ार हेक्टर)
5. मिश्रित	140	240 (हज़ार हेक्टर)
6. मार्गों, नदी तटों इत्यादि पर वृक्षारोपण	–	32 (हज़ार किलोमीटर)
7. सड़क इत्यादि संचार व्यवस्था	45	60 (हज़ार किलोमीटर)

सार सुझाया गया कि जंगल और खेती को एक दूसरे के पूरक तत्वों के रूप में देखा जाये तथा जंगल और खेती के लिए भूमि का निर्धारण उपयोगिता की दृष्टि से किया जाये. इस के अतिरिक्त, 1952 की वन नीति में कहा गया कि देश की भूमि के एक तिहाई भाग (33.3 प्रतिशत) को जंगल बनाये रखने का लक्ष्य मान कर वन विकास का कार्य हाथ में लिया जाये. इसी के अंतर्गत पहाड़ी इलाकों में न्यूनतम वानिक सीमा 60 प्रतिशत और मैदानी इलाकों में 20 प्रतिशत निर्धारित की गयी.

इन सभी उम्दा विचारों के बावजूद, 1952 के वन नीति प्रस्ताव के बाद आज हम पाते हैं कि इन 23 वर्षों में करीब 34 लाख हेक्टर भूमि जंगलों की परिधि से छूट कर अन्य कार्यों के लिए इस्तेमाल की गयी है. आज देश में जंगल कुल मिला कर 746 लाख हेक्टर यानी केवल 22.7 प्रतिशत भूमि पर फैले हैं. इस बीच चौथे आयोजन के अंत तक वन विकास कार्यों पर जो धनराशि खर्च की गयी है वह इन्हीं आयोजनों के कुल खर्च के 0.6 प्रतिशत के बराबर थी. कुछ ही समय पूर्व राष्ट्रीय कृषि आयोग ने अपनी एक अंतरिम रपट में इंगित किया कि 'वन महोत्सव' से जनता में वन विकास कार्यों के लिए उत्साह की वृद्धि होने की आशा की गयी थी लेकिन वैसा कुछ भी नहीं हुआ—'इस के विपरीत स्थिति ऐसी आ बनी है जिस में इसे (वन महोत्सव को) एक वार्षिक रस्म के तौर पर मुख्यतया सरकारी स्तर पर और वास्तविक स्थितियों को ध्यान में रखे बिना ही मनाया जाता है.'

राज्य सरकारें : 1952 के राष्ट्रीय वन नीति प्रस्ताव के साथ एक बड़ी दिक्कत यह रही कि उसे सभी राज्य सरकारों ने वैधानिक रूप में लागू करने का प्रयास भी नहीं किया. जिन राज्यों ने उसे वैधानिक रूप में पारित किया भी उन्होंने भी इसे तथ्य रूप में लागू कराने के लिए कोई विशेष ध्यान नहीं दिया. इस समय जो नया राष्ट्रीय वन नीति प्रस्ताव विचाराधीन है उस के बारे में यह एक सही शुरुआत ज़रूर है कि सभी राज्य सरकारों ने उसे पूर्ण रूप से लागू करना पहले से ही मान लिया है. संविधान के सातवें परिशिष्ट के अनुसार वनों का संचालन पूर्णतया राज्य सरकारों की प्रशासनिक परिधि में ही रखा गया है. राज्य सरकारों द्वारा वन विकास कार्यों में ढील रखने का एक मुख्य कारण यह रहा है कि वन विकास में जो भी धन आज लगाया जाये उस का आर्थिक प्रतिफलन इस से बीस साल बाद ही होना संभव बन जाता है. और प्रजातंत्र में कोई भी सरकार ऐसे कार्यों पर ही अधिक ध्यान देना चाहती है जिन के परिणाम शीघ्रातिशीघ्र जनता पर प्रकट हो सकें. आज भारत में प्रति हेक्टर वन पर 10 रुपये खर्च और 21.5 रुपये आय आती है. लेकिन ये दोनों ही संख्याएँ अपने अपने स्थान पर काफी कम हैं. इसी कारण राष्ट्रीय कृषि आयोग ने सुझाव दिया है कि राज्यों द्वारा स्वायत विकास वन निगमों की स्थापना की जाये तथा वनों से होने वाली आय का एक मुख्य भाग वन विकास कार्यों पर लगाना नियत किया जाये. आयोग ने यह भी कहा कि ये निगम राष्ट्रीयकृत बैंकों से कर्ज़े ले कर वन विकास कार्यों में लगायें. कई राज्य सरकारों ने हाल ही में वन निगमों की स्थापना की ओर कदम भी उठाये हैं.

महाराष्ट्र में राज्य वनविकास मंडल की स्थापना की गयी है जिस के अंतर्गत वनों से होने वाली आय का एक मुख्य भाग वन विकास कार्यों में लगाया जायेगा. इस के अतिरिक्त मैसूर और हिमाचल प्रदेश में वन विकास निगमों की स्थापना की गयी है. कुछ और अन्य राज्यों द्वारा इसी तरह के निगम बनाने के लिए विचार किया जा रहा है. वन विकास निगमों की स्थापना और इन निगमों द्वारा बैंकों से वन विकास कार्यों के लिए ऋण की व्यवस्था इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि पाँचवीं योजना के मसविदे के अनुसार वन विकास कार्यों पर खर्च की सीमा चौथी योजना के 93 करोड़ रुपयों के मुकाबले में 220 करोड़ रुपये बढ़ा दी गयी है, फिर भी यह राशि पाँचवीं योजना के कुल खर्च के 0.7 प्रतिशत से अधिक नहीं. पाँचवीं योजना में एक मुख्य लक्ष्य यह भी निर्धारित किया गया है कि शीघ्र उपजने वाले तथा अधिक बिकाऊ किस्म के पेड़ पौधों को उगाने पर अधिक ज़ोर दिया जायेगा. ऐसा करना नयी राष्ट्रीय वन नीति के अनुरूप ही होगा जिस के अंतर्गत स्वाधीनता पूर्व की 'सुरक्षा' वानिकी का स्थान अब 'उपजनन' वानिकी ने ले लिया है.

योजनाएँ	वानिकी पर (करोड़ रुपये)	कुल खर्च (करोड़ रुपये)	वानिकी का प्रतिशत भाग
पहली योजना (1951-56)	9	1,960	0.4
दूसरी योजना (1956-61)	21	4,600	0.4
तीसरी योजना (1961-66)	46	8,577	0.4
वार्षिक आयोजन (1966-69)	42	6,757	0.6
चौथी योजना (1969-74)	93	15,902	0.6

पाँचवीं योजना के अंतर्गत वानिकी पर खर्च

	(करोड़ रुपये)
1. राज्य	163.00
2. केंद्र शासित क्षेत्र	10.00
3. केंद्रीय योजनाएँ	28.50
4. केंद्र द्वारा संचालित योजनाएँ	19.00
कुल	220.50

प्रगति के चरण

पिछले दिनों रेल विभाग ने यह घोषणा की कि विदेशी मुद्रा बचाने के लिए भारी बोझ खींचने वाली मोटरों (ट्रैक्शन मोटर्स) के सुधार आदि का सारा काम रेल प्रशासन के अंतर्गत चलने वाले 46 कारखानों में युद्धस्तर पर शुरू किया जा रहा है. इस में पहियों को दुरुस्त करने तथा पुराने इंजनों को पुन: चलने के काबिल बनाना भी शामिल है. रेल के ये कारखाने डेढ़ करोड़ रुपये के वार्षिक बजट पर चलते हैं और इन में लगभग 1 लाख 20 हज़ार कुशल और अकुशल व्यक्ति काम करते हैं. निश्चय ही इन्हें काफी बड़ी ज़िम्मेदारी का निर्वाह करना पड़ता है क्यों कि इन्हें समय समय पर भाप से चलने वाले इंजनों के दस्ते की मरम्मत के अलावा 1700 डीज़ल से चलने वाले, और 700 बिजली से चलने वाले इंजनों, 37 हज़ार सवारी डिब्बों और 4 लाख माल डिब्बों की देखरेख करनी होती है. निश्चय ही यह काम श्रमिकों की सक्रिय भागीदारी के बग़ैर संभव नहीं. और जहाँ तक इस भागीदारी का प्रश्न है रेल प्रशासन शुरू से ही इस के प्रति न केवल सतर्क रहा है बल्कि उस ने समय समय पर अपनी योजनाओं को इस रूप में कार्यान्वित भी किया है जिस से श्रमिकों को यह अहसास हो सके कि वे रेल संसार के एक अभिन्न अंग हैं.

संभवत: इसी बात को ध्यान में रखते हुए कुछ हफ़्तों पहले भारतीय रेल कर्मियों के राष्ट्रीय महासंघ (नेशनल फेडरेशन ऑव इंडियन रेलवेमेन) की गोष्ठी का उद्घाटन करते हुए केंद्रीय रेलमंत्री **पं. कमलापति त्रिपाठी** ने प्रधानमंत्री के 20-सूत्री कार्यक्रम की पूर्ण सफलता के लिए रेल कर्मचारियों को उन के कर्त्तव्यों का बोध कराते हुए कहा था, 'रेल कर्मचारी और उन के परिवारों की संख्या लगभग 1 करोड़ के बराबर होगी. अत: इस आर्थिक कार्यक्रम में रेल कर्मचारियों का सक्रिय सहयोग सभी क्षेत्रों में उत्पादकता और आर्थिक संपन्नता बढ़ाने में बहुत ही सहायक सिद्ध हो सकता है.' पंडित जी ने कहा था कि कड़ी मेहनत, अनुशासन और उत्पादन बढ़ाने के सिवाय संपन्नता का और कोई रास्ता नहीं है... पिछले कुछ महीनों में रेलों पर उत्पादकता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है. गाड़ियों द्वारा समय पालन की स्थिति 50-60 प्रतिशत के आसपास रहती थी. इस में सुधार हुआ है और यह 90 से भी आगे बढ़ गई है. बुकिंग और आरक्षण में सुधार और बिना टिकट यात्रा और खतरे की ज़ंजीर खींचने की प्रवृत्ति को खत्म करने के लिए प्रशासन द्वारा उठाये कुछ क़दम सफल सिद्ध हुए हैं. कोई भी प्रशासनिक उपाय तब तक पूरी तौर से सफल नहीं हो सकता जब तक उसे हज़ारों कर्मचारियों का सहयोग और समर्थन न प्राप्त हो.'

रेल विभाग के बढ़े हुए खर्च का अंदाज़ा इस बात से भी लगाया जा सकता है कि 1973-74 में उस के ऊपर कर्ज की जो रक़म 208 करोड़ थी उस के 74-75 में 289.8 करोड़ और 75-76 में 396.33 करोड़ पर पहुँच जाने का अनुमान है.

इस सिलसिले में रेल बोर्ड के सदस्य सचिव **श्री जी.पी. वारियार** ने **दिनमान** से बातचीत में कहा कि 'हम एक तरफ तो उत्पादकता में वृद्धि का प्रयत्न कर रहे हैं दूसरी तरफ यह कोशिश भी हो रही है कि खर्च में कमी लाने के लिए मितव्ययिता के क़दम उठाये जायें. राजस्व में वृद्धि अवश्य हुई है लेकिन उस के साथ ही साथ खर्च में भी वृद्धि होती जा रही है. तीसरे वेतन आयोग की सिफ़ारिशों को लागू करने के कारण रेलवे को काफ़ी बड़ी रक़म अतिरिक्त ढंग से देनी पड़ रही है. इस के अलावा कोयले की क़ीमत बढ़ जाने से 80 करोड़ रुपये वार्षिक का व्यय बढ़ गया है. अनुमान तो यह है कि रेलों का कार्यकारी व्यय 200 करोड़ रुपये तक पहुँच जायेगा. रेलकर्मियों की कार्य दक्षता में निश्चित रूप से प्रशंसनीय वृद्धि हुई है. प्रमाण के लिए रेलों पर आपात्कालीन स्थिति लागू होने के तीन महीने के भीतर बिना टिकट यात्रा करते हुए 4 लाख 13 हज़ार व्यक्ति पकड़े गये. 62 हज़ार 938 के विरुद्ध मुक़दमा चला. 29 हज़ार 601 व्यक्तियों को जेल की सज़ा हुई और 54 लाख 27 हज़ार रुपये जुर्माने के रूप में वसूल किया गया. रेल में होने वाली चोरियों में भी कमी हुई. अपराधियों और उन के गोदामों की तलाशी में 25 लाख रुपये का माल बरामद हुआ. 74 की इसी अवधि के मुक़ाबले में यह चुस्ती प्रशंसनीय है.

श्री वारियार का कहना था कि श्रमिक साझेदारी की नीति को कार्यान्वित करने के तरीक़ों पर विचार विमर्श किया जा रहा है और हमारी कोशिश है कि हमारे रेलकर्मी अपने को प्रशासन का अंग मानें और स्वेच्छा के साथ अपने दायित्व का निर्वाह करने की प्रेरणा प्राप्त करें.

रेल में हिंदी की प्रगति के बारे में प्रश्न पूछने पर श्री वारियार ने कहा 'हिंदी पढ़ने के लिए बहुत कोशिश कर रहा हूँ. बोर्ड लेविल, मंडल लेविल और सेवा आयोग में भी . . . मैं भी तोड़ा तोड़ा नोटिंग करता हूँ—पढ़ने को मालूम है. पढ़ने के, लिकने के बोलने के लिए तोड़ा डरता हूँ. बोलने के प्रयास बचपन से आवश्यक है. अभ्यास कर रहा है. शब्द अच्छी है. रेल में टेकनीकल शब्द बहुत है. उन का हिंदी . . . अनुमान के अनुसार होने के कारण टेकनीकल चीज़ है. रेलमंत्रालय इस मामले में और मंत्रालयों से आगे है. हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा है. हिंदी ट्रेनिंग का काम भी हमारे यहाँ अच्छी तरह चल रहा है.' यह पूछने पर कि क्या जितने लोगों को प्रशिक्षित किया जा चुका है उन से हिंदी में काम लिया जा रहा है, उन्होंने कहा कि हमारे यहाँ हिंदी टाइपटाइटरों की कमी है. टाइपराइटर बनाने वाली फैक्टियाँ आवश्यकता के अनुकूल माँग की आपूर्ति नहीं कर रही हैं. कुछ मशीनों के की-बोर्ड बदलने की भी कोशिश चल रही है.

इस बीच रेल प्रशासन ने हिंदी संबंधी जिस नीति का कार्यान्वयन किया है उस से हिंदी-भाषी क्षेत्र के लोगों को निश्चय ही संतोष होगा. पहले तृतीय श्रेणी की जगहों की भर्ती में तीन विषयों में परीक्षा ली जाती थी. अंग्रेज़ी निबंध, सामान्य ज्ञान और अर्थमेटिक. परीक्षा में शामिल होने के लिए ज़रूरी था कि मैट्रिक या उच्चतर माध्यमिक परीक्षा में 40 प्रतिशत अंक मिले हों. भर्ती परीक्षा में अंग्रेज़ी के निबंध वाले पर्चे में भी 35 प्रतिशत अंक पाना अनिवार्य था. रेल प्रशासन के नये निर्णय के अनुसार अब तीन प्रश्नपत्रों की जगह पर चार प्रश्न पत्र कर दिये गये हैं. चौथा **प्रारंभिक अंग्रेज़ी** का है. तीन प्रश्नपत्रों का उत्तर अब उम्मीदवार हिंदी में दे सकता है. प्रारंभिक अंग्रेज़ी में उत्तीर्ण होना भी ज़रूरी नहीं है. यदि उसे परीक्षा में कुल 40 प्रतिशत नंबर मिले हैं तो उसे उत्तीर्ण माना जायेगा. ज़ाहिर है कि इस का लाभ अंग्रेज़ी में कमज़ोर उन सभी उम्मीदवारों को मिल सकेगा जो अब तक भाषा संबंधी एक कमज़ोरी के कारण परीक्षा में असफल होते रहे हैं. यह आदेश बंबई, इलाहाबाद और मुजफ्फरपुर रेल सेवा आयोग के क्षेत्रों के लिए लागू कर दिया गया है. पूर्वोत्तर, पश्चिम, मध्य, उत्तर, दक्षिण मध्य रेल के शोलापुर संभाग तथा पूर्व रेलवे के दानापुर और धनबाद के हिंदी-भाषी क्षेत्र के उम्मीदारों को इस से लाभ मिलेगा.

रेल प्रशासन प्रशिक्षण के लिए क्षेत्रीय स्कूल चलाता है. चंदौसी, भुसावल, उदयपुर और मुजफ्फरपुर के केंद्र में यह प्रशिक्षण अंग्रेज़ी के माध्यम से दिया जाता था. अब इस का माध्यम हिंदी कर दिया गया है.

हिंदी में काम करने की प्रक्रिया भी इस बीच काफ़ी तेज़ हुई है. पूर्वोत्तर रेलवे पूर्णतया हिंदी क्षेत्र में है. वहाँ पहले 10 प्रतिशत काम भी हिंदी में नहीं होता था. अब 90 प्रतिशत काम हिंदी में होने लगा है. उत्तर रेलवे के इलाहाबाद मंडल में सारा काम 19 नवंबर से हिंदी में होने लगा है. उस के वाराणसी स्थित दावा कार्यालय में संपूर्ण काम हिंदी में 1 जनवरी '76 से होने लगेगा. पश्चिम रेलवे के हिंदी भाषी क्षेत्र अजमेर, रतलाम और जयपुर में साल भर के भीतर सारा काम हिंदी में शुरू कर दिया जायेगा.

दिनमान

चरचे और चरखे

चूहा फूल और लंबू

एक प्रसिद्ध अंग्रेज़ी दैनिक के अनुसार कलकत्ते के कर्जन पार्क की एक सौ साल पुरानी बस्ती उजड़ गयी. यह बस्ती चूहों की थी—गणेश जी का 'अस्तबल!' इसे एक ज़माने से 'चूहानगर', 'चूहा चिड़ियाघर' या 'चूहा बागान' कहा जाता था. वैसे सैलानियों के दर्शनीय जगहों में इस का नाम नहीं था पर विदेशी सैलानी कलकत्ता पहुँचते ही अक्सर इस का नाम अपनी सूची में दर्ज कर लेते थे. स्थानीय लोगों के लिए यह दिलचस्प मनोरंजन था.

इस बस्ती के चूहे निडर थे. चना डालिए तो बिल से निकल कर हाज़िर. उन्हें फेंके हुए चने के लिए एक दूसरे पर पिले पड़ते, लड़ते झगड़ते देखना दिलचस्प था. बच्चों को बड़ा मज़ा आता. चने वालों का रोजगार इस बस्ती में फलता फूलता था.

चहा बस्ती में एक चने वाला था, लंबू—बिहार का रहने वाला. उस ने तो चूहों को इस कदर परचा लिया था कि उस की आवाज़ सुन कर चूहे बाहर आ जाते. अलग अलग चूहों के अलग अलग नाम उस ने रख छोड़े थे. चूहे भी अपना नाम पहचानते थे. बिना बाँसुरी बजाये चूहों को अपने इशारे पर चलाने की आधुनिक कहानी लंबू के साथ लिखी जा सकती है और कहा जा सकता है कि आज का चूहा संगीत प्रेमी नहीं, पेट प्रेमी है.

इस दैनिक के अनुसार एक दिन सरकारी कर्मचारी इस बस्ती में पहुँचे. उन्हों ने चूहों को मार डाला और चूहों के बिल बंद कर दिये. लंबू उन दिनों बिहार गया हुआ था. लौटने पर अब उसे यह बस्ती नहीं मिलेगी. सरकार वहाँ एक उद्यान लगाने की योजना बना चुकी है. पुरानी बाल कहानी में कहा जा सकता था कि लंबू के आते ही सारे फूल फिर चूहों में बदल गये.

टूटी कुर्सी का कारीगर

दिनमान के इस स्तंभकार को एक पत्र प्राप्त हुआ है जो एक हाथ का काम करने वाले कारीगर की तकलीफ़ बहुत सूक्ष्म स्तर पर दिखाता है. पत्र इस प्रकार है :

"धूप में अपनी बेंत की कुर्सी पर बालकनी में बैठा हुआ था. नीचे से बेंत का काम करने वाले एक कारीगर ने आवाज़ दी—'हुज़ूर जिस बेंत की कुर्सी पर आप बैठे हुए हैं उस के पाये का बेंत टूटा हुआ है. अगर इजाजत हो तो बना दूं.' यह कहते कहते कारीगर ऊपर आ कर मेरी बेंत की कुर्सियों का मुआयना कर रहा था : 'साहब कुर्सियाँ अच्छी हैं. बेंत भी अच्छा है. आप ने बड़े शौक से ली हैं. अगर इस वक्त इस कुर्सी के पाये का बेंत फिर में बँधवा लेंगे तो हुज़ूर कुर्सी की उम्र बढ़ जायेगी.'

'कहाँ के हो, कब से काम करते हो ?' कुर्सी की ओर उस की नज़र देख मैंने पूछा : 'हुज़ूर हम इलाहाबाद के हैं. बेंत का काम खानदानी है. एक से एक बढ़िया काम बेंत का करते थे. एक ज़माना था जब लोगों को बागीचों में और घर के बरामदों में बढ़िया बेंत की कुर्सियाँ डालने का शौक था. बेंत का काम हमारे यहाँ नफ़ासत से होता था. इलाहाबाद में आलम यह था कि हर रईस कहता था, कुर्सियाँ बनवानी हैं तो फ़िदा हुसेन से ही. हुज़ूर! वह मेरे वालिद थे. उनसे यह काम मैंने सीखा. तब सब जगह पूछ थी. एक से एक बढ़िया डिज़ाइन बनाते और पैसे के साथ दाद भी मिलती थी. आप वाकिफ़ होंगे हुज़ूर, पैसे से नहीं दाद से कारीगर का हौसला बढ़ता है. आप के घर में आ कर आप का मेहमान पूछ ले 'मियाँ कुर्सी किस ने बनाई—तो समझिए हमें बहुत कुछ मिल गया.' फिर एक ठंडी साँस भर कर बोला—'इलाहाबाद का रंग बदला. अब कोई घर बुलाने नहीं आता. दर दर सिर मारना पड़ता है. स्टील और लोहे की कुर्सियाँ ही अब बागीचों में दिखायी पड़ती हैं. बेंत की कुर्सी का शौक ही जैसे उठ गया. इलाहाबाद छोड़ कर दिल्ली आये. यहाँ भी वही हाल. बड़ी बड़ी कोठियों और बँगलों के आगे से गुज़रता हूँ. सब जगह लोहे और इस्पात की कुर्सियाँ. हुज़ूर! वे आँख में चुभती है. कोई खूबसूरती है उन में? कोई हुनर है? खानदानी कारीगरों का ज़माना ही गुज़र गया. खानदानी रईस भी नहीं रहे. किस के घर बेंत का काम करें ? हीरा बेकार है गर जौहरी न हो. लोग फर्नीचरों की कंपनियों से चमक दमक का माल उठा लेते हैं. सामने बैठ कर चीज़ें बनवाने की आदत अब नहीं रही. फर्नीचरों की दुकानों पर काम करने वाले लोग असल कारीगर नहीं हो सकते हैं यह अयाँ है... हाथ के असल कारीगर! आज इधर आप की कालोनी में बेंत की बढ़िया कुर्सियाँ पड़ी देखीं तो हुज़ूर से उम्मीद की जुर्रत कर बैठा. माफ़ कीजिएगा.'

उसके इस गुफ़्तगू के बाद अब आप ही सोचिए कुर्सी का पाया ठीक न कराता तो क्या करता? अगर टूटा न होता तो भी तोड़ कर ठीक करवाता, वह भी मुंहमाँगे दाम पर. आखिर मैं उस के हिसाब से रईस था, कला-पारखी था. कला संरक्षक था. क्या मैं नहीं हूँ?"

पत्र के अंत में कुछ व्यंग्य है. खीझ भी, कह सकते हैं. पर इस से यह वास्तविक सत्य नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता कि समाज में कोई भी हुनर तब तक पनप नहीं सकता जब तक उस हुनर के लायक समाज की मानसिकता न हो. 'टिकाऊ' के आगे हर चीज़ 'दिखाऊ' कह कर उड़ा दी जाती है. चाहे वह न भी हो. सब को कुर्सी टिकाऊ चाहिए—कुर्सी ही क्यों आलमारी, मेज, बक्से सभी कुछ. अतः सब इस्पात में बदलता जा रहा है. सब मशीन में ढल रहा है. हाथ का काम करने वाले क्या करें? उन का मन रखने के लिए दस्तकारी की बड़ी बड़ी संस्थाओं का नाम चलाया जाता है. अखिल भारतीय और अंतरराष्ट्रीय संदर्भ दिया जाता है. पर कारीगर की तकलीफ़ अभी भी गलियों की खाक छानती है. लेकिन क्या वह मानसिकता बनायी जा सकती है? यदि हाँ तो कैसे? यह कला-प्रेमियों की खोज का विषय है.

प्राचीन पश्चिमेशिया और भारत

आकाशवाणी में इस वर्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद भाषणमाला के अंतर्गत 'प्राचीन पश्चिम एशिया और भारत की संस्कृतियों के संयोजक सूत्र' शीर्षक से **डॉ. भगवतशरण उपाध्याय** के आमंत्रित श्रोताओं के सम्मुख दो भाषण हुए. इन भाषणों का संक्षप्त रूप यहाँ प्रस्तुत है—सं.

सामान्यतया यह माना जाता है कि हिमालय की दुर्लंघ्य पर्वत शृंखलाओं के कारण भारत संसार के अन्य देशों से अलग-थलग रहा. उत्तर दिशा से हुए हमलों के प्रसंग में यह बात भले ही कुछ सच हो, पर मकरान और समुद्र-तट के रास्ते सिंघु नदी के निचले कांठे तक पहुँचने वाला मार्ग ईसा से पहले अनेक सहस्राब्दियों तक काफ़ी चलने वाला मार्ग रहा है, भूमध्यसागर के पूर्वी तट से माल लाद कर चलने वाले कारवाँ फ़रात और दजला नदियाँ पार कर के उस रास्ते पर सफ़र करते थे जिस पर एलम और सूसा नगर बसे हुए थे और सिंघु कांठे के नगरों में माल बेच कर वहाँ से अपने काम का सामान खरीदते थे. प्राप्त प्रमाणों से विद्वानों ने यह अटकल भी लगायी है कि ईरान की खाड़ी और सिंघु नदी के मुहाने के बीच जहाज़ चलते थे और वे मोहेंजोदड़ो के अंतस्थलीय बंदरगाह पर आ कर खड़े होते थे. सुमेरिया और बेबिलोने के प्राचीन स्थलों पर भारतीय वस्तुओं की उपलब्धि और सिंधु घाटी के नगरों में मेसोपोटामिया की वस्तुओं की प्राप्ति से सिद्ध होता है कि भारत कभी अलग-थलग नहीं रहा और प्राचीनतम काल से संस्कृति से संबद्ध वस्तुओं का आदान-प्रदान करता रहा जिन के कारण पश्चिमेशिया और भारत की सभ्यताओं में सांस्कृतिक नाते-रिश्ते बनते-बढ़ते रहे.

सिंघ और भूमध्यसागर के मध्यवर्त्ती प्रदेश के नक्शे पर एक नज़र डालिये, आप देखेंगे कि सारे विस्तृत भूभाग पर सारे रास्ते जगह जगह ऐतिहासिक स्थल बिखरे पड़े हैं. सिंघ और बलोचिस्तान में मिले अवशेष दक्षिणी ईरान के एलम नगर से, और मेसोपोटामिया से, नदियों के पास के तथा ऊपरी भाग से, उत्तर पश्चिम में दमिश्क और ट्राय से तथा दक्षिण-पश्चिम में जेरूशलम और पिरामिडों के देश से जुड़े हुए हैं.

फ़रात और दजला नदियों के बीच एक प्रतप्त मरु-प्रदेश है जिस के गौरव की गाथाएँ दूर-दूर तक प्रसिद्ध हैं. यूनानी लोग इसे मेसोपोटामिया कहते थे और आज हम इसे ईराक कहते हैं. इस भूमि ने कितनी ही सभ्यताओं के उत्थान-पतन देखे—अगणित जातियों पर शासन करने वाले साम्राज्य इस निमान मरुभूमि के नीचे दफ़न हो गये. वहीं से चीन के अलावा शेष आधुनिक विश्व को हमारी वर्त्तमान लिपि और हमारे धार्मिक विश्वासों के अन्य बहुत से अंश प्राप्त हुए हैं.

ईरान की खाड़ी से जिस जगह फ़रात और दजला नदियों के मुहाने हैं, उस से ऊपर के भाग में सुमेरियों की बस्तियाँ और नगर—उ र, उ रुक, लरसम, उम्मा, लगश, शुरुप्पक, निप्पूर—बसे हुए थे. बहुत ऊपर की तरफ़ और नदियों के बीच तथा उन के ऊपरी भागों के साथ-साथ, आर्मीनिया की अरारात पर्वत शृंखलाओं तक, असीरियनों का देश था जो अपनी प्रजाति, अपने देवता और अपनी राजधानी को भी 'असुर' नाम से पुकारते थे. और असीरिया तथा सुमेरिया के बीच बेबिलोनिया देश था जहाँ हमुराबी संहिता का जन्म हुआ था— किश सिप्पर, बेबिलोन, एश्नुन्ना इस के मुख्य नगर थे. बेबिलोनी और असीरियन, दोनों प्रजातीय दृष्टि से शामी (सेमिटिक) थे, सुमेरी ग़ैर-शामी थे.

आलिगी-बिलिगी, अलाय-बलाय : इन प्रजातियों की और भारत की संस्कृतियों में संयोजक-सूत्र असंख्य हैं पर यहाँ आज के थोड़े से समय में हम कुछ ही सूत्रों की चर्चा कर सकते हैं. आज मैं केवल दो प्रमुख सूत्रों का उल्लेख करूँगा—एक तो "अलाय-बलाय' शब्द का, जो उत्तर भारत से ले कर भूमध्य-सागर के पूर्वी तट पर और ईजियन सागर के तट पर बसे सब देशों की भाषाओं में बोला जाता है, और दूसरे जल-प्रलय का.

पहले "अलाय-बलाय" या "अलैया-बलैया" शब्द लीजिए. ये शब्द कई सदियों से भाषा-वैज्ञानिकों के लिए सिरदर्द बने रहे हैं. इन का जन्म प्रलय पूर्व काल में सुमेरिया में हुआ था और इन का मूल रूप भारतीय आर्यों के अथर्ववेद और ऋग्वेद में दिखायी देता है.

ऋग्वेद की ही तरह अथर्ववेद में भी सर्पविष का प्रभाव दूर करने के लिए प्रयोग में आने वाले मंत्र आते हैं. . . (जिन का भावार्थ है) :

"जैसे धनुष की डोरी ढील देते हैं, घोड़े रथ से खोल देते हैं, ठीक वैसे ही मैं तुझे काले-भूरे सर्प तैमात और सर्वनाशी अपोदक के विष से मुक्त करता हूँ."

"आलिगी और बिलिगी, (तेरे) माता और पिता, तेरे सारे नाते रिश्तेदारों को हम जानते हैं. अपने विष से वंचित हो कर तू कर क्या सकता है?"

"काले (करैत) के साथ यह उरु गूला की पुत्री जन्मी है, उन सब सर्पों का विष निष्प्रभाव हो गया है और वे सब भाग कर अपने बिलों में छिप गये हैं."

'ताबुवं (या), न ताबुवं (अरे सर्प), तू कोई ताबुवं नहीं है. ताबुवं के द्वारा तेरा विष प्रभावहीन कर दिया गया है."

बाल गंगाधर तिलक ने भंडारकर स्मारक ग्रंथ में **'काल्डियन ऐंड इंडियन वेदाज़'** शीर्षक लेख में सब से पहले विद्वानों का ध्यान अथर्ववेद के इस अभिचार और इन मंत्रों की ओर खींचा था और तैमात, आलिगी, बिलिगी ऊरुमूला और ताबुवं की व्याख्या करने का यत्न भी किया था पर वे केवल पहले और अंतिम-तैमात और तोबा की ही ठीक व्याख्या कर सके थे. किंतु उन का यह संकेत सही था कि इन शब्दों का अर्थ कैल्डियन भाषिकीय स्तरों के नीचे दबा पड़ा है.

कुछ विद्वानों ने भाषिकीय कलाबाज़ी का सहारा लिया, कुछ ने व्युत्पत्ति के द्वारा बाल की खाल निकालने का यत्न किया, और कुछ अन्य ने कहा कि वे विभिन्न प्रकार के सर्पों के नाम हैं. स्वयं तिलक, 'उरुगूला' शब्द का अर्थ एक विशाल नगर ' लगाया और वेबर ने कहा कि यह प्राकृत 'रुख' और संस्कृत वृक्ष के लिए आया है और इस का अर्थ 'जंगल' है.

पाँचवीं दशाब्दि के अंतिम वर्षों में मैं ईराक के स्थलों और प्राप्त ऐतिहासिक वस्तुओं पर नज़र डाल रहा था और तुर्की तथा पश्चिमी यूरोप के संग्रहालयों में इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए सामग्री की परख कर रहा था कि क्या पश्चिमेशिया की खुदाइयों से वैदिक अनुसंधान पर कोई प्रकाश पड़ता है. मुझे यह देख कर खुशी हुई कि शिकागो और पेंसिलवानिया के जो विद्वान खुदाई करा रहे थे, उन्हें वैदिक-सादृश्यों-समरूपताओं की कोई धारणा नहीं थी. ब्रितानी संग्रहालय में अचानक मेरी नज़र सुमेरोअसीरियन सैक्शन वाली एक गाइड पर पड़ी, जिस का कुछ हिस्सा बाद में **कैंब्रिज एंशेंट हिस्ट्री'**, भाग एक, में प्रकाशित हुआ था—इस से मुझे कुछ सुराग मिला. मैंने डा. लियोनार्ड वुडले की 'कैल्डियों का उर' शीर्षक की वे रिपोर्टें बार बार पढ़ीं जो उन्होंने अपनी खुदाइयों के बारे में लिखी थीं और मैं जिस चीज़ की तलाश में था वह मेरे हाथ लग गयी. उन्हें उर की खुदाई में लगभग 3000 ई. पू. की एक पटिया मिली थी जिस पर सुमेरियों के उस महान नगर के प्रलय पूर्व काल के राजाओं की वंशावली खुदी हुई थी. उस में दो राजाओं के नाम थे एलुलु और बेलुलु—ये पिता और पुत्र थे तथा 'आलाय' और 'बलाय' तथा 'आलिगी' और 'बिलिगी', इन दोनों के ही जनक थे.

जब मैंने न्यूयार्क में एशिया इंस्टीट्यूट की विद्वद्गोष्ठी में अपनी स्थापना पेश की तब डा. बर्नहार्ड तथा चांसलर आर्थर उपहम पोप, जिज्ञासा प्रकट करने लगे कि ये शब्द ऋग्वेद और अथर्ववेद जैसे धर्मग्रंथों में कैसे घुस आये.

हमारे लिए इस की व्याख्या कुछ कठिन नहीं थी. वेदों में यह सर्पविष पर अभिचार का

मंत्र द्वारा झाड़-फूंक करने का प्रसंग है. इस में प्रयुक्त शब्दों का कोई अर्थ नहीं होता, बल्कि वे तो विचित्र, अजीबोग़रीब, अनसुने ही होने चाहिए ताकि श्रोताओं पर उन की रहस्यमय शक्ति का सिक्का बैठे, उदाहरण के लिए, भूतविष्य व्यक्ति पर झाड़-फूंक करने वाला ओझा इस तरह बोलता है : अकेन बकेन, पीपल पर की देन. झाड़-फूंक के इस मंत्र का पिछला हिस्सा कुछ सार्थक हो सकता है पर पहला हिस्सा तो बिल्कुल ही निरर्थक है. अधिकतर ओझा खुद भी अपने मंत्र के शब्दों को ठीक तरह नहीं समझते. स्पष्ट है कि अथर्ववेद का अभिचारकर्ता ओझा भी 'आलिगी' शब्द का अर्थ नहीं जानता पर वह इतना अवश्य जानता है कि यह शब्द प्राचीन, अजीब, निरर्थक होने के कारण प्रभावोत्पादक और इतना महत्त्वपूर्ण है.

इस प्रकार आलिगी, बिलिगी, तैमात, ताबुंव, उरुगूला, ये सारे शब्द अजीबोगरीब पर रहस्यमय और प्रभावकारी शब्द थे, और यद्यपि वेदों में उन का कोई अर्थ नहीं है और इसी कारण महान 'निरुताचारायास्क ने ऐसे शब्दों को 'अर्थहीन' कहा है, पर अन्यत्र—सुमेर-बैबिलोने देश में—उन का अर्थ होता है. आलिगी और बिलिगी शब्द, अलाय और बलाय की ही तरह, उर की खुदाई में मिली. प्रलय-पूर्व काल की राजवंशावली के एलुलु और बेलुलु नामक राजाओं के नाम से बने हैं. तैमात शब्द मेसोपोटामिया के ब्रह्मांड मीमांस-प्रसंग का तियामत है, इसी प्रसंग का ताबुवं शब्द भी है. यह अपवित्र 'तोबा' शब्द है जो सारे यहूदी और मुस्लिम जगत् में प्रचलित है और यूरोपीय टेबू का तुल्यार्थक है. उरुगूला या दुहिता ने विद्वानों को बहुत उलझाया है. उन्हों ने इस की व्याख्या कई तरह से करने की कोशिश की है—अधिकतर ने षष्ठी में अबू संधि का छेद उस्कू-उल या उला कर के 'उ-ल-उरुक् की पुत्री' अर्थ लगा कर यह शब्द समझने का यत्न किया है. पहले मैंने भी इस का यही अर्थ किया था पर अंत में एक दिन एक प्राचीन शब्दकोश मेरे हाथ लगा जो उसी जमाने का था—उस में असीरियन भाषा में गुले शब्द का अर्थ 'सर्पविष का विशेषज्ञ चिकित्सक' दिया था. अब यह बात स्पष्ट हो गयी कि इस शब्द का अर्थ संस्कृत भाषा के व्याकरण की रीति से नहीं निकाला जा सकता इस का विच्छेद तो 'उर'—सुमेर का इस नाम का महानगर—और 'गुल'—सर्पदंश की चिकित्सा का विशेषज्ञ करना होगा. यह बात अर्थपूर्ण है कि जिस पटिया पर खुदी वंशावली में एलुलु-बेलुलु शब्द थे—जो आलिगी, बिलिगी और अलाय-बलाय के पूर्वज थे—वह उर की खुदाई में ही मिली थी.

इस प्रकार, यदि अभिचार या झाड़-फूंक के मंत्रों का कोई अर्थ खोजा जा सकता है तो अथर्ववेद के उपर्युक्त मंत्रों का सीधा-सादा अर्थ यह हुआ—मैं तेरे माता-पिता को जानता हूँ—आलिगी और बिलिगी, उर के सर्पदंश चिकित्सा के विशेषज्ञ की यह पुत्री, और मैंने इस सांप के काटे हुए को तैमात या नाग के सर्वनाशी विष से मुक्त कर दिया है और मैं बोलता हूँ, तोबा, तोबा, तोबा.

कौन सोच सकता है कि पवित्र बेबिलोनियन के शब्द पवित्र वेदों के भीतर घुसे हुए होंगे ?

जल प्रलय की कथा : जल प्रलय का आख्यान एक मिस्र को छोड़ कर एशिया और यूरोप के सब देशों के साहित्यों में मिलता है. भारतीय साहित्य में इस का पहला उल्लेख संस्कृत के महान ग्रंथ 'शतपथ ब्राह्मण' में आता है. जिस का रचनाकाल एकमत से 8वीं सदी ई. पू. माना गया है. वही आख्यान पुराने अहदनामे (ओल्ड टेस्टामेंट) के सृष्टि उत्पत्ति या जेनेसिस प्रकरण के अध्याय 6-8 में कहा गया है—बाईबिल के जल प्रलय आख्यान का नायक नोआह है. स्पष्ट है कि हिब्रू लोगों ने यह आख्यान अपने बेबिलोनियन पड़ोसियों से लिया जो उन के महाकाव्य गिलगामेश में मिला है—इस महाकाव्य के नायक का नाम भी गिलगामेश है. बेबिलोने के इस महाकाव्य में गिलगामेश का पूर्वज जिउसुद्दु बाढ़ की कहानी सुनाता है चूंकि उसे जलप्रलय का नायक माना जाता है. पर यह कहानी बेबिलोनियन महाकाव्य से भी पुराने जमाने की है क्यों कि इस महाकाव्य की प्रलयकथा सुमेरी प्रलयाख्यान से ली गयी है जिस में नायक का नाम उत्लपिष्ठिम है—यह उत्लपिष्टिम मनु से जिउसुद्दु तक हुए सब प्रलयाख्यान नायकों से पुराना है.

जिउसुद्दु ने गिलगामेश को यह आख्यान इस रूप में सुनाया हैं : 'मैं तुझे एक गुप्त भेद बताऊँगा और तुझे ही देवों के रहस्य भी प्रकट करूँगा. शुरूप्पक नगर से तू परिचित है जो फरात नदी के तट पर बसा है—वह नगर बहुत पुराना हो गया था : और उस के भीतर रहने वाले देवताओं का, जो महान देवता थे, यह मन हुआ कि जल-प्रलय लायी जाये. . .

'प्रदीप्तनयन प्रभु, भगवान एंकी से उन का वार्तालाप होता था पर उस ने उन के शब्द एक सरकंडा-कुटी को सुनाये : 'ए सरकंडा-कुटी, ए सरकंडा-कुटी' ए दीवार, ए दीवार. ओ सरकंडा कुटी, सुन. ओ दीवार, इधर सुन.'

असल में भगवान चालाकी से वाछल कर रहा था—उसे पता था कि जिउसुद्दु कुटी में सो रहा है और उस के शब्द सुनेगा. अब उस ने सीधे उसे संशोधित कर के ये शब्द कहे :

'ओ शुरूप्पक के निवासी, उब्रर्दुदु के पुत्र, मकान गिरा दे, एक नाव बना ले, चीज बस्त छोड़ कर जान बचा. जायदाद परे फेंक और अपनी जान सँभाल. जीवन के सारे बीज नाव में ले आ.'

जिउसुद्दु ने उस वाणी के आदेश के अनुसार ही काम किया, अपनी नौका बनायी, बाँधी, उस में सामान भरा और अपने साथी नागरिकों को बताया कि महाबली वायु देवता एनमिल मुझ से इतनी नफरत करता है कि मुझे अब उन के बीच नहीं रहना चाहिए. उस ने छल करते हुए कहा कि जब मैं चला जाऊँगा तब देवता उन पर कृपावर्षा करेंगे. इस प्रकार वह अपने परिवार को ले कर नौका में बैठ गया और लंगर खोल दिये. इस के बाद एक भयानक तूफान आया जिस के काले बादलों में भयभीत जनता ने स्वयं देवताओं को मशालें लहराते देखा.

'भाई अपने भाई को न पहचान सकता था. आकाश से लोग दिखायी न देते थे. वही देवता जलप्रलय से भयभीत थे. वे सिर पर पाँव रख कर भागे. वे ऊपर अनदेवता के लोग तक गये. देवता देहली पर गड्डमगड्ड हुए कुत्तों की तरह दुबक रहे थे. देवी इतना प्रसव वेदना से पीड़ित स्त्री की तरह चीख रही थी. मधुरवाणी वाली वह देवी इस तरह विलाप कर रही थी.' दिन मिट्टी जैसा हो जाये क्योंकि मैंने देवों की सभा में अपशब्द कहे हैं, अपने लोगों के नाश के लिए अनाप शनाप आदेश दिये हैं. तो क्यों मैं अपने ही लोगों को जन्म दूं जिस से वे मछली के अंडों की तरह समुद्र पर डालें ?'

तूफान और बाढ़ छह दिन और सात रातों तक गड़गड़ाते रहे और जिउसुद्धपानी पर बहता फिरता हुआ अपने लोगों का नाश देख कर धाड़ें मार मार कर रोने लगा. केवल पर्वत के उच्च शिखर बाढ़ से बाहर रह गये और अंत में इन्हीं में से एक पर आ कर नौका जमीन में धँसी और एक सप्ताह तक वैसे ही अड़ी रही. जिउसुद्धु आगे कहता है.

'सातवाँ दिन निकलने पर मैंने एक फाख्ता (पंडूक) निकाला और छोड़ दिया. वह इधर उधर भटकता रहा पर उतरने की जगह वहाँ कोई भी न थी, इस लिए वह लौट आया. मैंने एक अबाबील निकाला और उसे छोड़ दिया. अबाबील उड़ गया. वह इधर उधर भटकता रहा पर वहाँ कोई उतरने की जगह न होने से वापस लौट आया. मैंने एक रैवेन (पहाड़ी कौआ) निकाला और उसे छोड़ा. वह उड़ गया और उस ने पानी उतरता देखा. उस ने पानी में घुस कर शिकार खाया और वह वापस नहीं आया. मैंने एक बलि पदार्थ निकाला. और उसे चारों वायुओं के निमित्त बलि कर दिया. मैंने पर्वत के ऊँचे स्थान पर पेय अर्पण किया, सात और सात फ्लैगन जमाए, उन से नीचे, बाँस, देवदार और मिरटल बखेरे. देवों ने गंध ग्रहण की, देवों ने मीठी सुरभि ग्रहण की. देवता यज्ञकर्ता के चारों ओर मक्खियों की तरह जमा

हो गये. अंत में दिव्य भगवती (अर्थात् इनन्ना) ने आ कर वह विशाल कंठहार ऊपर उठाया जो भगवान अन ने उस की इच्छा के अनुसार बनाया था. 'अरे देवताओ, जैसे मैं अपने कंठ की नीलम मणियों को नहीं भूलता, उसी तरह मुझे ये दिन भी याद रहेंगे. और मैं उन्हें कभी न भूल पाऊँगा. देवता यज्ञ में आवें, पर एनलिल यज्ञ में न आए क्योंकि उसे सलाह नहीं दी जायेगी, बल्कि वह जलप्रलय लाया और उस ने मेरे लोगों का नाश कराया. 'अंत में देवता एनलिल ने आ कर जहाज देखा. एनलिल गुस्से से भर गया. उस ने सवाल किया कि कोई मनुष्य कैसे बच सकता था. पृथ्वी का मेधावी और मधुर देवता एंकी उस के साथ तर्क करने लगा :

'अरे देवराज, महारथी, तुम ने ठीक राह पर न चल कर जलप्रलय क्यों ला दी. पापी पर ही उस के पाप का दोष है, अतिचारी पर ही उस के अतिचार का दोष है. दया करो ताकि वह बिल्कुल ही विच्छिन्न न हो जाये, कृपा करो जिस से वह पूरी तरह भ्रांत न हो जाये. जल प्रलय लाने से अच्छा तो यह है कि तू एक 'शेर ले आ और अपने लोगों की संख्या घटा दे. जालप्रलय लाने से अच्छा तो यह है कि एक लकड़बघा ले आ और अपने लोगों की संख्या कर कम दे. .'

जब एंकी थोड़े से लोगों के पापों के कारण बहुतों को दंड देने में प्रदर्शित उस की जल्दबाजी पर उस की प्रताड़ना करता रहा तब वह क्रुद्ध देवता कुछ नरम पड़ा. अंत में——

'एनलिल जहाज के बीच तक आया. उस ने मेरा हाथ पकड़ा और उस ने मुझे-मुझे भी—— बाहर निकाला. उस ने मेरी पत्नी को बाहर निकाला और उसे मेरे नजदीक झुकने को कहा. उस ने हमारे माथे छुए और हमारे बीच में खड़े हो कर हमें आशीर्वाद दिया. 'पहले जिउसुद्धु मानवीय था पर अब जिउसुद्धु और उस की पत्नी निश्चय ही हम देवताओं जैसे होंगे. जिउसुद्धु और उस की पत्नी नदियों के मुहानों पर दूर दूर रहेंगे.'

बाढ़ लगभग 3200 ई. पू. में जमदेत तम्र काल के अंत में आयी थी और सुमेरिया के नगर नष्ट हो गये थे. खुदाइयों से अवशेष प्राप्त हो गये हैं और उरुक तथा शुरुप्पक में धरती के नीचे एक स्वच्छ जलोढ़ चिकनी मिट्टी का मीलों तक फैला हुआ निक्षेप (जो उरुक में लगभग 7 से 9 फुट मोटा है) प्राप्त हुआ है.

यह आख्यान सब से पहले कीलकाक्षरों में लगभग 17वीं सदी ई. पू. में तीस ईंटों पर खोदा गया था जिन्हें बाद में संसार के सर्वप्रथम पुरातत्व शास्त्री और संग्राहक असीरिन विजेता असुरबनीपाल ने निनेवेह के विशाल पुस्तकालय में संगृहीत कर दिया था. अब वे लंदन के ब्रिटिश संग्रहालय में प्रदर्शनार्थ रखी है.

यह बात अर्थपूर्ण है कि इस आख्यान का पहला अभिलेख बेबिलोनिया में शतपथ ब्राह्मण की रचना से एक हजार वर्ष पहले लिखा गया था——शतपथ ब्राह्मण की रचना ज्यादा से ज्यादा, असुरबनी पाल से दो एक सदी पहले हुए थी. यह स्पष्ट ही है कि मनु की वाचना समसामयिक असीरियन वाचना से तैयार की गयी थी. यह बात बहुत ही अर्थपूर्ण है कि जब मनु ने जीवित वस्तुओं के जोड़ों से भरी नौका लिए हुए स्थल स्पर्श किया और उस ने बेबिलोनियन जिउसुद्धु की तरह ईश्वर का धन्यवाद करने के लिए यज्ञ करना चाहा तब उसे यज्ञ कराने के लिए कोई पुरोहित न मिला, यद्यपि वैदिक यज्ञ कराने वाले बीस प्रकार के पुरोहित हुआ करते थे, और उसे यज्ञ कराने के लिए असुर पुरोहितों को बुलाना पड़ा—— किलाताकुलि असुर ब्राह्मण इति आहत :निश्चय ही यह आख्यान उसी स्थान से आया था जिस से पुरोहित आये थे. यह आख्यान शतपथ ब्राह्मण की रचना होने से एक हजार वर्ष पहले ही ईंटों पर खोदा जा चुका था और एक जन से दूसरे जन तक, एक लोक-साहित्य से दूसरे लोक साहित्य तक पहुँचता रहा था.

अब वेदों के कुछ ऐसे प्रसंगों और भारतीय साहित्यों के कुछ ऐसे शब्दों पर विचार किया जाये जिन से ये संबंध सूत्र उजागर होते हैं. ये संबंध सूत्र भारत और मिस्र थी, भारत और सुमेरिया की, भारत और बेबिलोनिया की, भारत और असीरिया की, भारत और फीनिशिया की संस्कृतियों में, भारत की संस्कृति और अनातोलिया की हित्त संस्कृति में और भारत तथा ईरान की संस्कृतियों में पाये जाते हैं.

यहाँ हम केवल दो चार परिस्थितियों पर विचार कर सकते हैं. भारत हिब्रू संबंध की सूचना, अन्य बातों के अलावा, ईश्वर के हिब्रू नाम येहोवा और वैदिक यहवे से मिलती है. यह शब्द ठीक इसी रूप में यहुआ, यहवत तथा यहवती के रूप में, ऋग्वेद के अग्नि, इंद्र और सोम का विशेषण बन कर आया है. और इस का अर्थ शक्तिशाली है. यहूदियों में यहवे सब से शक्तिशाली, परम और एकमात्र प्रभु था जो लगभग 13वीं सदी ई.पू. में प्राचीन जगत में एकेश्वरवाद का एक मात्र उदाहरण है. बहुप्रचलित जौहर शब्द, जो राजपूत स्त्रियों के आत्म दाह के गौरवमय कार्य का वाचक है. हिब्रू भाषा का है. और इस का अर्थ 'प्रादीप्ति' होता है. प्रमुख यहूदी दार्शनिक मूसा ने रहस्यात्मक दर्शन संबंधी अपने प्रसिद्ध ग्रंथ का नाम **'जौहर** रखा था.

2. 'बल शब्द उत्तर भारत की अधिकतर भाषाओं में प्रचलित है और ऋग्वेद जैसे पुराने ग्रंथ में भी आता है. जिस में इस के दोनों रूप 'बाल' और 'वार' मिलते हैं——यह शब्द मूलतः सुमेरी भाषा का है. उस में इस का प्रयोग 'बेल' के रूप में मिलता है. जिसे हिब्रू लोग 'बाल' कहते थे——इस का अर्थ था देवाधिदेव, परम देव, व्युत्पत्ति की दृष्टि से, 'शिखर पर स्थित', अन्य देवताओं के ऊपर. इस का प्रयोग बालों के लिए होने लगा जो खोपड़ी के ऊपर होते हैं. और असंख्य होते हैं. उदाहरण के लिए, वैदिक वारांगना, बहुत पुरुषों द्वारा भोगी गयी स्त्री, या साठ हजार बाल खिल्य ऋषि जो, अँगूठे जितने आकार के थे और ब्रह्मा के बाल से पैदा हुए थे, गेहूँ का बाल जो सदा शिखर पर होता है, बलाई (दूध की मलाई) बाल,-खाना (सब से ऊपर का कमरा), बालाई आमदनी (रिश्वत की कमायी), बालम, सब से नजदीकी, सब से घनिष्ठ और सब से ऊपर प्रिय, बाल और बालक, तथा बाला और बालिका का मूल अर्थ खच्चर की पूंछ होता था जो ऊपर उठाने पर उस के शरीर का सब से ऊपरी भाग होती थी. फीनीशियन में 'बल' शब्द का अर्थ संस्कृत के'बल शब्द की तरह ही' शक्ति होता था जिस से सेना का अर्थ भी निकलता था. महान फीनीशियन जननेता और सेनापति हसरुबल और हन्निबल आदि के नामों में 'बल' शब्द ही आता था. भारत में श्री, बलराम, बलदेव, दधिबल (जिस की शक्ति दही थी), और बलादेन (जिस की शक्ति चावल थी) जैसे नामों से भी इसी तरह का अर्थ सूचित होता है. सुमेरी देवता 'बेल' और हिब्रू 'बाल' में, जिन का अर्थ है शिखरस्थ, इस का अर्थ असंख्य बाल, गेहूँ का बाल, अगणित सेना, और बलवान पुरुष भी हो गया.

3. बेबिलोनिया में 18वीं सदी ई. पू. में शासन करने वाले आर्य कसाइट राजाओं के नाम, ऋग्वेद के देवताओं की तरह, सुरियस् और मरुत्तस् थे. मीरोनीफ ने पश्चिम एशिया के नामों——स्वरदत, सुबंधु, सतुनर, इंदरुत, बीरसेन, अर्तमदम, बिरिदस्व, नम्यवज, सुत्तर्ण, अंदर्व, और सुमितरस् का समीकरण स्वरदत सुबंधु, सत्वर इंद्रोत, वीरसेन, ऋतधामन्, वृहदश्व, नम्यवाज, सुघर्मा, ऐंद्रव और सुमित्र से किया है. मितन्नी किक्कुलि ने रथ चलाने संबंधी अपने ग्रंथ में ऐक, तेर, पंज, सप्त, नवसंख्याओं का प्रयोग किया है जो संस्कृति की संख्याओं, एकम्, त्रीणि, पंच, सप्त, नव के मूल ईरानी रूप हैं. 14वीं सदी के प्रसिद्ध बोगाजकोई शिलालेख में, दो पथ, हित्ती और मितन्नी, संधि पर हस्ताक्षर होने के समय का साथी बनाने के लिए ऋग्वेदीय देवताओं का आव्हान करते हैं. वे हैं : मि-इत्-र-अस्-सि-इल (मित्र), अ-रु-ण-अस-सि-ञल (वरुण), इन्+द+र (इंद्र) और न-स-अत्-ति-य-अन्-न (नासत्यम्). हित्ती अरुणस्, जिस का मूल अर्थ 'समुद्र' था, परिवर्धित हो कर मितन्नी में उरुवन 'और वैदिक में 'वरुण' बन गया. हित्तियों की पुराण कथाओं में यह कहा गया है कि सूर्य का उदय समुद्र, अर्थात् अरुण.

से होता है जिस के कारण, और अपने लाल रंग के कारण, ,उदयकालीन सूर्य का नाम 'अरुण' पड़ गया—संस्कृत में यह शब्द 'लाल' रंग के लिए आता है.

4. फीनीशियन, मुख्यतः लीडियन, बैंक-कार्य, मुख्यतः हुंडीप्रणाली, शुरू करने के लिए प्रसिद्ध हो गये थे. कहते हैं कि उन के राजा क्रोसस ने संसार का पहला सिक्का बनाया था. प्राचीन अभिलेखों में उसे सब से धनी व्यक्ति माना जाता है और उस का नाम उत्तर भारत की भाषाओं में कारूंका खज़ाना पद में प्रचलित हो गया है. ईरानी सम्राट कुरुष के हाथों पराजित होने के बाद जब वह अपने परिवार तथा जयपाल जैसे तरुण लीडियनों के साथ अग्नि प्रवेश करने जा रहा था तब सम्राट ने उस की रक्षा की थी.

5. कुछ समय पहले तक भारत में काली देवी की वेदी पर बकरे की बलि देने का चलन था. पुजारी लगातार गोल नाचते जाते थे और अपने शरीर पर लंबे, मोटे डंडों पर चोट मारते हुए लोहू लुहान हो जाते थे. जब उन का नृत्य बहुत तीव्र गति पर पहुँच जाता था और वे लट्टू की तरह स्थिर हो जाते थे, तब उन में से एक आदमी के एक झटके से बकरे का सिर खच् से काट डालता था और चारों ओर खून छिड़क देता था और फिर वे सब इसे पीते थे और प्रसाद लेते थे. इसी प्रकार सीरिया और फ्रीनिया में बलि दी जाती थी—वहाँ बसंत विषक पर किबेले और अर्स्तीत के उत्सव के दिनों में आनंद मनाने की हलचल उन्माद की अवस्था तक पहुँच जाती थी. नपुंसक पुजारी आनंद से उन्मत्त हो कर अपने शरीर को चाकुओं से गोद लेते थे. फ्रीजियन पुजारी बलि करते हुए अपने शरीर पर इतने जोर से चोट करते थे कि सारी वेदी रक्त से आच्छादित हो जाती थी.

6. असीरियन या असुर लोग जिन की राजधानियाँ असुर, काल और निनेवेह थीं और देवता असुर था, महान और क्रूर बहुत निर्मम विजेता थे. जो पराजित पुरुषों के होंठों और नाक में डोरी डाल दिया करते थे और सारी की सारी जनता को निर्वासित कर देते थे जिस से नथ (नाक में पहनने का गहना) का चलन चला. भारतीय परंपरा में धर्म विजयी और असुर विजयी राजाओं में अंतर किया गया है. असुर महान भवन निर्माता भी हुए हैं. मय का भारतीय परंपरा में अनेक स्थानों पर उल्लेख है. इसी प्रकार आसुरी दर्शन की चर्चा है.

उन के नगर 'काल' के नाम से मजबूती के लिए 'किला' शब्द चला है—काल और जेरिको संसार के सर्वप्रथम परकोटे से घिरे नगर थे. आज के मिस्र की अलकिला मस्जिद और पाकिस्तान का कलात मूलतः उसी शब्द से बने हैं.

दिमाग की देखभाल

बीसवीं शताब्दी में मानसिक स्वास्थ्य को ले कर जिस तरह की चिंता देखने को मिलती है उस के पीछे एक बड़ा कारण यही रहा है कि मानसिक रोगों को धीरे धीरे जन स्वास्थ्य का अविभाज्य अंग माना जाने लगा है. आज हम जिस वातावरण को बनाने में लगे हुए हैं उस में यह प्रमुख परेशानी है कि चिंता और दाब की दशाएँ व्यक्ति की मानसिकता को गहरी चोट न पहुँचा सकें.

टैक्नॉलॉजी के विकास के साथ जुड़े मानसिक रोगों को ले कर विकसित और विकासशील दोनों ही तरह के देशों में चिंता है चूँकि पहले प्रकार के देशों ने जहाँ अपने को चिंता और दाब की दुनिया में फँसा हुआ देखा है वहीं दूसरे प्रकार के देशों में उसी दुनिया को लाये जाने की कोशिशें चल रही हैं जिस की रोगी तस्वीर आज काफ़ी साफ़ हो चुकी है. पश्चिमी दुनिया के विचारक इस समस्या को इस तरह से देखते हैं कि विकासशील देशों की जनता को टैक्नॉलॉजी तथा दूसरी तरह के सांस्कृतिक विचारों को लादे जाने से अलगाव की स्थितियों का सामना करना पड़ रहा है. यह आरोपित दुनिया उन की अपनी परंपरा से सीधे टक्कर लेती है.

बहरहाल औद्योगिक दुनिया ने जिस समाज को बनाया है उस में आदमी शोर, मशीनी क्रियाओं तथा डब्बेनुमा मकानों से घिरा उस प्रतियोगी दुनिया की अंध भागदौड़ में लग गया है जहाँ **उपलब्धि** सब से बड़ा मूल्य है. इस दुनिया में दिमाग़ की देखभाल करना एक महत्त्वपूर्ण काम हो गया है. **विश्व स्वास्थ्य संगठन** अपनी पत्रिका **वर्ल्ड हैल्थ** में अब मानसिक रोगों की समस्याओं पर काफ़ी ध्यान देता है और थोड़े ही समय में उस ने दो बार मानसिक रोगों पर विशेष अंक भी निकाले थे. इस पत्रिका के अक्तूबर, 74 के एक अंक में मुखपृष्ठ पर मानसिक रोगी का बनाया हुआ कोलाज चित्र है और अंदर पृष्ठ 2-3 पर प्रसिद्ध स्पानी चित्रकार **गोया** का 1799 का बनाया एक उत्कीर्णन है. गोया की इस कलाकृति में एक व्यक्ति का विभाजित व्यक्तित्व सामने आता है : एक परेशान आदमी अपने बचपन की तरफ़ भाग रहा है. इस चित्र के साथ पत्रिका की संपादकीय टिप्पणी है कि एक अतिप्रतिभाशाली व्यक्ति (जीनियस) और पागल में जो फ़र्क़ है वह बहुत थोड़ा ही है.

बारीक भेद : चित्र के साथ शीर्षक में उपरोक्त संपादकीय टिप्पणी हमें बताती है कि इस के पीछे वह आधुनिक समझ काम कर रही है जिस ने पागलपन की तमाम दशाओं को समाज का कलंक बनने से बचाया है. पर यह ज़रूरी है कि मानसिक रोगी की मानसिकता और एक जीनियस की मानसिकता के बारीक भेद को जाना जाये और कहीं यह न समझ लिया जाये कि मानसिक परेशानी की हालत कोई सामाजिक मूल्य है. ब्रितानी मनोचिकित्सक **डेविड कूपर**, जिन्होंने आज से क़रीब दस वर्ष पहले प्रतिमनोचिकित्सा की धारणाओं का काफ़ी प्रचार किया था, ने अपनी पहली पुस्तक 'मनोचिकित्सा-प्रतिमनोचिकित्सा' में पहले ही अध्याय में इस बात की ओर संकेत किया था कि जीनियस होने की मानसिकता और पागलपन की मानसिकता एक दूसरे के बहुत पास हैं और रेखाचित्र बना कर इस दूरी को नापा जाये, तो फ़र्क़ बहुत थोड़ा ही होगा. पर जहाँ एक ओर जीनियस अपनी मानसिकता के विकास में एक कठिन और लंबे रास्ते को साधता हुआ आता है वहीं दूसरी ओर मानसिक रोगी इस रास्ते के बीच में ही (बुनियादी रूप में सामाजिक तथा पारिवारिक दबावों के कारण) कहीं गिरफ़्त में आ कर उस बिंदु पर आ कर गिर जाता है जहाँ जीनियस बहुत दूर नहीं है और वह भी मानसिकता की ही खंडित अवस्था की ओर बढ़ रहा है और उधर मानसिक रोगी जीनियस की ऊँचाई की ओर बढ़ रहा है. पर वह उसे पा नहीं सकेगा.

हालाँकि स्वयं डेविड कूपर और उन के साथियों ने धीरे-धीरे इस बुनियादी और ज़रूरी भेद को मिटाना शुरू कर दिया जिस का नतीजा यह हुआ कि पागलपन की दशाएँ उन के विचारों में मानसिक स्वास्थ्य को पाने का रास्ता सा बन गयी. जो बातें शुरू में सिर्फ़ ज़ोर देने के लिए की गयी थीं वहीं बातें बाद में उग्र चिंतन के नाम पर एक रूढ़ विचार बनने लगीं. डेविड कूपर अपनी पहली पुस्तक में तर्क और विचार पर बल दे कर मनोचिकित्सा के पुरातनपंथी रूपों की धज्जियाँ उड़ा सके थे पर बाद में उन की पुस्तकें उग्र निषेध की धारणाओं से चिपट कर आत्मालाप सा बन गयीं.

प्रतिमनोचिकित्सकों ने मानसिक रोगियों को बिजली का धक्का देने और कैपसूलों से भर देने की प्रवृत्ति का ठीक ही विरोध किया था पर यह विरोध जब लगभग एक स्थायी मनोवृत्ति बन गया, तो इस में जान नहीं रह गयी. दरअसल मानसिक रोग एक ऐसी समस्या है जिस में आधुनिक समाज पर शासन करने वाले तथा दमनकारी तत्वों की पूरी जानकारी तो रहनी चाहिए पर यह भी सही है कि चिकित्सा की प्रचलित परंपरा से इस जानकारी से प्राप्त लाभों को अगर जोड़ा नहीं गया, तो समाज में बहुत कम वास्तविक परिवर्त्तन होंगे.

अखबार

कानून की लक्ष्मण रेखा

आपत्तिजनक सामग्री के प्रकाशन-निषेध के लिए 9 दिसंबर को जो अध्यादेश जारी हुआ वह समाचारपत्र जगत् के लिए पूर्ण रूप से अप्रत्याशित था, विशेष कर इस लिए कि केंद्रीय सूचना और प्रसारण मंत्रालय अखबारों को 'अधिक ज़िम्मेदार' बनाने के लिए अन्य अनेक उपायों की तजवीज़ कर रहा था. कुछ महीने पहले सरकार ने संपादकों की एक समिति भी बनायी थी जिस के परिणामस्वरूप क्षेत्रीय नियामक मंडलों की नियुक्ति का विचार उपजा था. ऐसा हो जाने पर पत्र की नीति तय करने में पत्रों के स्वामियों की भूमिका समाप्त हो जाती. सूचना मंत्रालय ने मंडलों की नियुक्ति का संकेत पत्रकारों के संगठनों को दिया था और उन की राय माँगी थी. इस के अलावा एक आचरण संहिता भी तैयार की गयी थी जो पत्रकारों के सामने स्वीकृति के लिए भेजी गयी थी. यही नहीं, अंग्रेज़ी और हिंदी की चारों संवाद समितियों को मिला कर एक राष्ट्रीय संवाद समिति बनाये जाने की पेशकश हो रही थी. यह प्रक्रिया पूरी होने के पहले ही तीन अध्यादेश जारी हो गये. (देखिए दिनमान 14 दिसंबर), जिन में से एक संसद् की कार्रवाई के प्रकाशन को निषिद्ध ठहराता है और दूसरा उन तमाम चीज़ों को अखबारों के दायरे से हटा देता है जिन्हें आपत्तिजनक सामग्री अध्यादेश की धारा 3 में पारिभाषित किया गया है. पहले जो प्रस्ताव था और अब जो सामने है उस में एक ज़बर्दस्त अंतर तो है ही—पहली स्थिति में स्वेच्छया चयन और प्रकाशन तथा नैतिक बंधन की गुंजाइश थी, अब सिर्फ़ क़ानून की एक बृहदाकार लक्ष्मण रेखा खींच दी गयी है.

अध्यादेश में निषेध का दायरा बहुत बड़ा है और धारा 3 के नीचे अंकित स्पष्टीकरण थोड़ी राहत देते नज़र आते हैं. पहले स्पष्टीकरण के अधीन 'किसी क़ानून, नीति या प्रशासनिक कार्रवाई' पर की गयी ऐसी 'असहमतिपूर्ण टिप्पणी अथवा आलोचना' को आपत्तिजनक नहीं माना जायेगा जो 'कानूनी तरीक़े से उन में परिवर्त्तन कराने या राहत पाने की गरज़ से की गयी हो.' इस से जो छूट मिलती है वह दूसरे स्पष्टीकरण द्वारा बहुत कुछ बाधित हो जाती है, क्यों कि आपत्तिजनक सामग्री का निश्चय करने के लिए शब्दों, चिह्नों या दृश्य प्रस्तुतिकरणों के 'प्रभाव' को जाँचा जायेगा. छापेखाने के मालिक, प्रकाशक या संपादक के 'मंतव्य' को नहीं.

अध्यादेश में निहित व्यवस्थाएँ एक लोकतंत्रीय देश के लिए, जिस में बहुदलीय प्रणाली को मान्यता दी गयी है अपने आप में बहुत सख्त हैं, क्योंकि साधारणतः नेकनीयत राजनैतिक बहस उठाये जाने की संभावनाएँ नौकरशाही द्वारा दबायी जा सकती हैं. अध्यादेश में नौकरशाही को ही निर्णय करने और आदेश देने का पूरा अधिकार होगा और पहली अपील भी कोई न्यायाधीश नहीं, बल्कि सरकारी अधिकारी ही सुनेगा. नौकरशाही की सूझबूझ संदेह से परे हो, तो भी वह लीक पर चलने के लिए प्रसिद्ध है, यह उस हालत में और भी सुगम होगा जब कि किसी भी आदेश के खिलाफ़ पहली अपील सुनने की ज़िम्मेदारी भी केंद्र सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारी के ही ज़िम्मे रखी गयी है. कई मामलों में व्यवस्था की गयी है कि अगर एक निश्चित अवधि में अपील का निपटारा न हो अथवा आदेश वापस न लिया गया या संशोधित न किया गया हो तो वह आदेश अपने आप रद्द समझा जायेगा. प्रकटतः यह व्यवस्था उदार है, मगर इस बीच किसी बेगुनाह को सिर्फ़ संदेह के कारण सज़ा मिल चुकी होगी. यों संभव है कि व्यवहार में अध्यादेश इतना सख्त साबित न हो, मगर यह तभी हो सकता है जब कि अधिकारीगण स्वस्थ राजनैतिक बहस को हमेशा संदेह की नज़र से न देखें.

धारा 5 के अधीन भारत की प्रभुसत्ता और अखंडता, राज्य की सुरक्षा, सार्वजनिक व्यवस्था के अलावा 'शालीनता' या 'नैतिकता' के विरुद्ध अथवा 'अपराधों को उकसा सकने वाली' सामग्री के—यानी ऐसी कही जा सकने वाली सामग्री के प्रकाशन पर भी दो माह के लिए रोक लगायी जा सकती है.

अध्यादेश की व्यवस्थाएँ समाचार जगत् के ज़िम्मेदार सदस्यों के मन में अनावश्यक भय, आशंका और संदेह को जन्म देंगी—बल्कि दे रही हैं जिस का असर उन की कार्यकुशलता और क्षमता पर पड़े बिना नहीं रहेगा. यह स्थिति समाचारपत्रों के लिए, और पत्रकारिता के पेशे के लिए हानिकर साबित होगी. उन का स्तर गिर जायेगा.

अध्यादेश के पीछे सरकार का तर्क रहा है कि समाचार पत्रों ने ग़ैर ज़िम्मेदाराना आचरण किया है इस लिए अध्यादेशों की व्यवस्था करनी पड़ी. यदि कुछ प्रकाशनों से ही शिकायत थी तो उन पर अंकुश लगाने के लिए अन्य मौजूदा क़ानूनों को, खास कर भारतीय दंड संहिता की धाराओं को सख्त बना कर उन का प्रयोग किया जा सकता था.

दिनमान

समाचार - साप्ताहिक

'राष्ट्र की भाषा में राष्ट्र का आह्वान'

भाग 11 21–27 दिसंबर, 1975

अंक 51 30 मार्गशीर्ष–6 पौष, 1897

*

इस अंक में

आवरण : एम्स्टर्डम में छापामारों के अधिकार में आये हुए इंडोनेसियाई वाणिज्य दूतावास की तीसरी मंज़िल से कूदता हुआ एक अधिकारी. (देखें पृ. 26-28).

*

दिनमान

संपादक : रघुवीरसहाय. संपादकीय सहकर्मी: जितेंद्र गुप्त (सहायक संपादक), श्रीकांत वर्मा (विशेष संवाददाता), सर्वेश्वरदयाल सक्सेना (प्रमुख उपसंपादक), श्यामलाल शर्मा, योगराज थानी, रामसेवक श्रीवास्तव, जवाहरलाल कौल, शुक्ला रुद्र, त्रिलोक दीप, महेश्वरदयालु गंगवार, नेत्रसिंह रावत, प्रयाग शुक्ल और विनोद भारद्वाज. सज्जा : विजय कोहली

टाइम्स आफ इंडिया प्रकाशन, 10, दरियागंज, दिल्ली-110006

इस व्यवस्था से, जो कि प्रेस सेंसरशिप और नैतिक आचार संहिता की स्थानापन्न प्रतीत होती है, सरकार को जनता की सही तकलीफ़ों, उन की रोज़मर्रा की उलझनों और स्थानीय प्रशासन की उदासीनता आदि की जानकारी मिलने में दिक़्क़त होने लगेगी.

अध्यादेश की व्यवस्थाएँ

9 दिसंबर को भारत सरकार ने जो अध्यादेश जारी किया उस में आपत्तिजनक सामग्री के प्रकाशन पर विभिन्न प्रकार के प्रतिबंध लगाये गये हैं. अध्यादेश के अनुसार 'आपत्तिजनक सामग्री' वह सामग्री होगी जो राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री या केंद्रीय मंत्रिमंडल के अन्य किसी सदस्य, लोकसभा के अध्यक्ष या किसी राज्य के राज्यपाल को बदनाम करती हो और ऐसी सामग्री जो अशोभनीय, अपमानजनक, अश्लील या किसी व्यक्ति की कमज़ोरी का नाजायज़ फ़ायदा उठाने की गरज़ से प्रकाशित हुई हो. आपत्तिजनक सामग्री प्रकाशन निरोध अध्यादेश 1975 (11) का कार्यक्षेत्र संपूर्ण भारतसंघ होगा और इस पर अमल तुरंत जारी किया जायेगा. अध्यादेश में प्रकाशन से मतलब समाचारपत्रों, पत्रकों, पत्रिकाओं और पुस्तकों से है. इस में शब्द और चित्र दोनों शामिल हैं.

अध्यादेश में आपत्तिजनक सामग्री की पूरी तरह से व्याख्या की गयी है. उदाहरण के लिए इस के अंतर्गत ऐसी सामग्री भी शामिल है जो भारत या उस के किसी राज्य में क़ानून सम्मत सरकार के प्रति घृणा फ़ैलाये या खाद्य या अन्य आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं या सेवाओं की व्यवस्था में अनुचित हस्तक्षेप करने के लिए किसी व्यक्ति को प्रेरित करे या सशस्त्र सेनाओं या ऐसे अधिकृत सैनिकों को, जिन को न्याय व्यवस्था बनाये रखने के लिए तैनात किया गया हो, अपने कर्त्तव्य से हटाने के लिए उकसाये या इस प्रकार की सेनाओं में नागरिकों की भर्त्ती किये जाने के प्रति असंतोष पैदा करें. देश में रहने वाले विभिन्न संप्रदायों, जातीय या भाषायी गुटों के बीच अविश्वास, नफ़रत और असंतोष का प्रचार करें. जनता में आतंक या घबराहट पैदा करे या किसी वर्ग को राज्य या जनशांति के विरुद्ध अपराध करने को प्रेरित करे या किसी व्यक्ति, वर्ग या संप्रदाय को हत्या, षड्यंत्र या अन्य प्रकार का अपराध कार्य करने के लिए प्रेरित करे.

इस बात का निर्णय करते समय कि कोई सामग्री उक्त अध्यादेश के अंतर्गत आपत्तिजनक है या नहीं शब्दों, चिह्नों और दृश्यात्मक अभिव्यक्ति के प्रभाव पर विचार होगा न कि प्रकाशक, संपादक आदि के उद्देश्य का. केंद्रीय सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारियों द्वारा इस अध्यादेश के कार्यान्वय के बारे में उनके निर्दिष्ट कार्य क्षेत्र में कार्रवाई शुरू हो जायेगी. यदि किसी व्यक्ति के विरुद्ध संबंधित अधिकारी ने कोई आदेश जारी किया हो तो वह व्यक्ति 10 दिनों के भीतर केंद्रीय सरकार के सामने अपील दायर कर सकता है और केंद्रीय सरकार उचित जाँच के बाद संबंधित अधिकारी द्वारा जारी किये गये आदेश की पुष्टि कर के, संशोधित कर के या रद्द कर के अपना फ़ैसला देगी. इस सिलसिले में यदि वह व्यक्ति जिस के विरुद्ध आदेश जारी किया गया हो लिखित रूप से यह प्रार्थना करे कि केंद्रीय सरकार द्वारा उस की दलील सुनी जाये तो उसे यह मौका दिया जायेगा.

यदि संबंधित अधिकारी को यह ज्ञात हो कि किसी प्रेस में किसी ऐसे प्रकाशन का कार्य हो रहा है जिस में अध्यादेश में वर्णित आपत्तिजनक सामग्री शामिल हो तो प्रेस के संचालक से 21 दिन के भीतर अधिकारी द्वारा निश्चित राशि सरकारी खज़ाने में जमा करने को कहा जायेगा. और यदि संबंधित अधिकारी को यह मालूम हो जाये कि इस आदेश के बावजूद आपत्तिजनक सामग्री का प्रकाशन प्रेस में हो रहा है तो उक्त राशि ज़ब्त की जायेगी या प्रेस के मालिक को नयी राशि जिस का निश्चय अधिकारी करेंगे, जमा करने को कहा जायेगा. आदेश के उल्लंघन की अवस्था में प्रेस की संपूर्ण या आंशिक संपत्ति ज़ब्त की जा सकती है. इसी प्रकार का आदेश आपत्तिजनक सामग्री छापने वाले प्रकाशक के विरुद्ध भी किया जा सकता है. यदि संबंधित अधिकारी को इस बात का विश्वास हो जाये कि किसी समाचारपत्र या पत्रक आदि में आपत्तिजनक सामग्री प्रकाशित हो रही है और संपादक से जमा राशि माँगने के लिए पर्याप्त कारण हैं तो इस प्रकार का लिखित आदेश जारी किया जायेगा और यह राशि (एक हज़ार रुपये तक) 21 दिन के भीतर जमा करनी होगी. शिकायतें सुनने के सिलसिले में सक्षम अधिकारी के पास प्रथम दर्जे के न्यायिक मजिस्ट्रेट के अधिकार होंगे.

यदि केंद्रीय सरकार को ऐसा लगे कि कोई समाचारपत्र, पत्रक या पुस्तक या दस्तावेज आपत्तिजनक सामग्री है तो प्रकाशित सामग्री को ज़ब्त किया जा सकता है. कस्टम अधिनियम 1962 के अंतर्गत कोई भी सीमा-कर अधिकारी या अन्य अधिकारी जिसे इस प्रकार का अधिकार दिया जाये किसी भी पार्सल, लिफ़ाफ़े आदि को ज़ब्त कर सकता है जिस में अध्यादेश के अंतर्गत वर्णित आपत्तिजनक सामग्री का संदेह हो. किसी डाकघर का अधिकारी जिसे केंद्रीय सरकार ने निरीक्षण का अधिकार दिया हो, डाक की किसी वस्तु को रास्ते में ही रोक सकता है यदि उसे उस में आपत्तिजनक सामग्री का संदेह हो. इस प्रकार की वस्तु केंद्रीय सरकार को सौंपी जायेगी और सक्षम अधिकारियों द्वारा जाँच करने पर या तो उस के सिलसिले में कार्रवाई की जायेगी या उसे निर्दोष पाने पर वापस डाकघर भेजा जायेगा. किसी भी पुलिस अधिकारी को राज्य सरकार संदेहास्पद सामग्री ज़ब्त करने का अधिकार दे सकती है. किसी भी मजिस्ट्रेट द्वारा जारी किये गये वारंट पर कोई भी सब-इंस्पेक्टर पुलिस या उस से बड़ा अधिकारी किसी भी क्षेत्र की तलाशी ले सकता है यदि उन्हें उस क्षेत्र में प्रकाशित आपत्तिजनक सामग्री या अघोषित प्रेस, जिस में ऐसी सामग्री प्रकाशित हो रही हो, का संदेह हो जाये.

कोई भी व्यक्ति जिस के विरुद्ध धारा 18 के अंतर्गत कोई आदेश जारी किया गया हो, अपने क्षेत्र के उच्च न्यायालय में उस आदेश के विरुद्ध अपील दायर कर सकता है. मगर यह अपील आदेश जारी करने के बाद 60 दिन के भीतर की जानी चाहिए. उच्च न्यायालय अभियोगी की दलील सुन कर उचित आदेश जारी करेगा.

अध्यादेश में विभिन्न आदेशों का उल्लंघन करने के लिए दंड भी निश्चित किये गये हैं. ऐसे प्रेस के मालिक को 6 मास की क़ैद या दो हज़ार रुपये तक के जुर्माने या दोनों की सज़ा दी जा सकती है यदि वह ऐसे समाचार-पत्र या पत्रक या पुस्तक को प्रकाशित करता हो जिस में आपत्तिजनक सामग्री हो और यदि उस ने आदेश जारी होने पर निश्चित राशि जमा न की हो. निश्चित राशि जमा न करने पर आपत्तिजनक सामग्री सहित किसी भी पत्र के प्रकाशक पर भी यही दंड लागू होता है. संपादक के सिलसिले में दंड तीन मास की क़ैद और एक हज़ार रुपये या दोनों रखा गया है. कोई भी व्यक्ति, जो ऐसे प्रकाशित पत्र को बेचता या वितरित करता है जिस में आपत्ति-

अगले अंक में

रामायण :
कथाओं के रूप और मूल्यों की समसामयिकता

भोपाल में एकत्र कलाएँ

भिलाई इस्पात कारखाना

हज़ यात्रा

स्वर लहरी : नये धरातल
जर्मन ग्राफ़िक कला

जनक सामग्री छपी हो, सक्षम अधिकारी द्वारा निश्चित कारावास या जुर्माने का भागी होगा.

संसदीय कार्रवाई, प्रकाशन अधिनियम 1956 को भी एक अध्यादेश जारी कर के रद्द कर दिया गया है. इस अधिनियम के रद्द होने के बाद संसदीय कार्रवाई को प्रकाशित करने पर किसी प्रकार का असाधारण संरक्षण संपादक, प्रकाशक या मुद्रक को नहीं है और आपत्तिजनक सामग्री के प्रकाशन पर वही नियम लागू होंगे जो कि अन्य समाचारों या लेखकों पर लागू किये गये.

प्रेस परिषद् को समाप्त कर दिया गया है, क्यों कि सरकार के अनुसार परिषद् ने उन उद्देश्यों को पूरा नहीं किया जिस के लिए उस का निर्माण किया गया था. परिषद् का गठन 1966 में किया गया था जब कि 1956 में प्रेस (आपत्तिजनक सामग्री) अधिनियम को अपने आप समाप्त होने दिया गया था. यह अधिनियम 1951 में पारित किया गया था. वर्त्तमान अध्यादेश 1951 के अधिनियम से कई बातों में भिन्न है. सब से महत्त्वपूर्ण
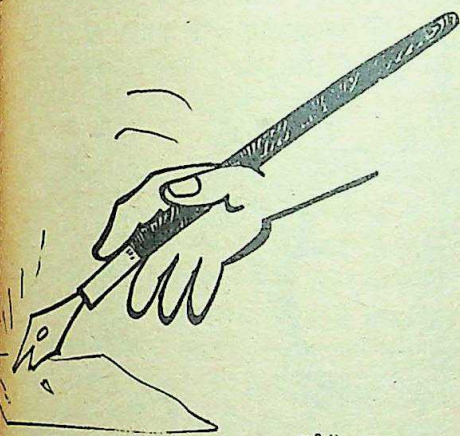
बात यह है कि यह न केवल समाचारपत्रों और पत्रिकाओं पर ही लागू होता है बल्कि इस में सभी मुद्रित प्रकाशन जैसे पुस्तकें, पत्रक, इश्तिहार, सूचनापट्ट आदि भी शामिल हैं. इसी प्रकार आपत्तिजनक सामग्री के दायरे में कुछ और भी शामिल किया गया है. '51 के अधिनियम में ऐसे शब्दों, चिह्नों या दृश्यात्मक अभिव्यक्तियों को आपत्तिजनक माना गया था जिस से किसी भी व्यक्ति को हिंसा, षड्यंत्र, तोड़फोड़ आदि के द्वारा क़ानून सम्मत सरकार को गिराने या हटाने की प्रेरणा मिले. मगर वर्त्तमान अध्यादेश के अनुसार ऐसे शब्दों, संकेतों या दृश्यात्मक अभिव्यक्ति को आपत्तिजनक माना जायेगा जो क़ानून सम्मत सरकार के प्रति नफ़रत, अपमान उत्पन्न करने के लिए किसी व्यक्ति को प्रेरित करें. इस के अतिरिक्त 1951 के क़ानून के अनुसार कोई भी व्यक्ति जिस पर आपत्तिजनक प्रकाशन का आरोप हो न्यायालय के सामने पूरे अभियोग का हक़दार था. मगर वर्त्तमान अध्यादेश में प्रथम अपील का स्थान केंद्रीय सरकार है. पुराने क़ानून की तुलना में वर्त्तमान अध्यादेश में अन्य सार्वजनिक अधिकारियों को शामिल नहीं किया गया है. जिस का मतलब यह होता है कि सरकारी अधिकारियों की आलोचना के संदर्भ में सामान्य अधिकारियों की स्थिति वही नहीं है जो कि राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और उन के मंत्रिमंडल, राज्यपाल, मुख्यमंत्री और उन के मंत्रिमंडलों तथा लोकसभा के अध्यक्ष की. इस समय संसद् का अधिवेशन नहीं चल रहा है और इस लिए अध्यादेश जारी करने की आवश्यकता महसूस हुई. इस बात की आशा है कि संसद् के अगले सत्र में एक विधेयक विधिवत् पेश होगा.

विदेशनीति

पाकिस्तानी प्रचार : फ्रांसीसी हथियार

(हमारे विशेष संवाददाता द्वारा)

पिछले कुछ समय से पाकिस्तान ने विदेशों में भारत के विरुद्ध प्रचार अभियान जारी कर रखा है. अब इस अभियान में पाकिस्तानी समाचारपत्र और रेडियो भी शामिल हो गये हैं. पाकिस्तानी समाचारपत्र और रेडियो धुंआंधार यह प्रचार कर रहे हैं कि भारत ने बंगलादेश और पाकिस्तान की सीमाओं पर अपनी सेना जमा कर रखी है. दूसरे शब्दों में पाकिस्तान यह भ्रांति उत्पन्न करना चाहता है कि भारत ने अपने दो पड़ोसी देशों के विरुद्ध आक्रामक रवैया अख्तियार कर लिया है.

भारत सरकार ने पाकिस्तानी रेडियो और समाचारपत्रों के इस मिथ्या प्रचार पर सख्त आपत्ति की है. भारत सरकार ने पाकिस्तान को एक टिप्पणी भेजी है, जिस में यह कहा गया है कि पाकिस्तानी रेडियो और समाचारपत्र भारत के विरुद्ध झूठा और बेबुनियाद प्रचार कर रहे हैं. टिप्पणी में आगे कहा गया है कि इस तरह के प्रचार अभियान से दोनों देशों के संबंधों के सामान्यीकरण की प्रक्रिया को मदद नहीं मिलेगी.

पाकिस्तानी रेडियो ने पिछले कुछ दिनों से यह प्रचार कर रखा है कि भारत ताबड़तोड़ अपनी सेनाएँ बंगलादेश और पाकिस्तान की सीमाओं की ओर भेज रहा है और यह कि सीमा पर भारतीय सेना का अच्छा खासा जमाव है. पाकिस्तानी रेडियो यह भी प्रचार कर रहा है कि सीमाओं पर तनाव पैदा करने और सेना का जमाव करने के उद्देश्य से ही श्रीमती गांधी ने रक्षा मंत्रालय अपने हाथ में लिया है.

10 दिसंबर को अनेक पाकिस्तानी समाचारपत्रों ने बड़ी-बड़ी सुर्खियों के साथ यह छूठी खबर छापी कि भारत ने पाकिस्तान और बंगलादेश की सीमाओं पर अपनी सेना इकट्ठी कर दी है.

भारत सरकार के विदेश मंत्रालय के एक प्रवक्ता ने इन आरोपों को बेबुनियाद करार देते हुए कहा कि पाकिस्तानी रेडियो और समाचारपत्र सीमाओं पर भारतीय सेना के जमाव की जो खबरें प्रचारित और प्रसारित कर रहे हैं उन में तनिक भी सत्य नहीं है. प्रवक्ता ने कहा कि भारत ने पाकिस्तान या कि बंगलादेश की सीमाओं की ओर अपनी सेनाएँ नहीं भेजी हैं. प्रवक्ता ने दोहराया कि भारत इस उपमहाद्वीप में शांति और स्थायित्व की अपनी नीति के प्रति अब भी अडिग है. प्रवक्ता ने कहा कि भारत अपने पड़ोसियों के साथ अच्छे संबंध बनाये रखने का कायल है. भारत सरकार की ओर से कहा गया, यह पहला मौक़ा नहीं है जब कि पाकिस्तान ने अपनी भीतरी समस्याओं की ओर से अपनी जनता का ध्यान हटाने के लिए इस तरह का झूठा प्रचार अभियान छेड़ा है. हमने पाकिस्तान से यह कह दिया है कि वह भारत के विरुद्ध जिस तरह का मिथ्या प्रचार अभियान छेड़े हुए है, उस से संबंधों को सामान्य बनाने की प्रक्रिया में मदद नहीं मिलेगी.

प्रवक्ता ने आगे कहा कि पिछले कुछ दिनों से पाकिस्तानी समाचारपत्रों और पाकिस्तानी रेडियो ने पाकिस्तान तथा बंगलादेश को सीमाओं पर भारतीय सेनाओं के जमाव की झूठी कमी प्रचारित और प्रसारित की है. हम स्पष्ट शब्दों में कह देना चाहते हैं कि पाकिस्तानी रेडियो और समाचारपत्रों द्वारा दी गयी खबरों में ज़रा-भी सत्य नहीं है. भारत ने पाकिस्तान तथा बंगलादेश की सीमाओं की ओर अपनी सेना नहीं भेजी है.

प्रवक्ता ने कहा कि इस उपमहाद्वीप में शांति और स्थायित्व बनाने रखने की भारतीय नीति में कोई परिवर्त्तन नहीं आया. यह पहला मौक़ा नहीं है जब कि पाकिस्तान ने अपनी भीतरी समस्याओं से जनता का ध्यान हटाने के लिए भारत के विरुद्ध प्रचार अभियान छेड़ा है.

एक ओर पाकिस्तान भारत के विरुद्ध देश-विदेश में झूठा प्रचार कर रहा है और दूसरी ओर अपने आप को हथियारों से लैस कर रहा है. राजनयिक स्रोतों से प्राप्त समाचारों के अनुसार पाकिस्तान बहुत बड़े पैमाने पर हथियार इकट्ठा कर रहा है. बहुत संभव है कि वह हथियारों के जमाव को न्यायसंगत और उचित करार देने के लिए भारत के विरुद्ध यह झूठा प्रचार कर रहा हो कि भारत पाकिस्तान और बंगलादेश की सीमाओं पर अपनी सेना इकट्ठी कर रहा है.

राजनयिक स्रोतों का कहना है कि पिछले तीन महीनों में पाकिस्तान के प्रधानमंत्री श्री जुल्फ़िकार अली भुट्टो ने संसार के अनेक देशों की यात्रा की है और कई जगह उन्होंने हथियारों का सौदा करने की कोशिश की. श्री भुट्टो को विश्वास है कि उन्हें फ्रांस और चीन से आधुनिकतम अस्त्र प्राप्त हो जायेंगे.

फ्रांस पाकिस्तान में 'मिरेज' लड़ाकू विमान की फ़ैक्टरी कायम करने की योजना बना रहा है. फ्रांस का यह ख्याल है कि वह पाकिस्तान में इन विमानों का उत्पादन कर उन्हें दक्षिणेशिया में बेच सकता है.

राजनैतिक स्रोतों से यह भी समाचार प्राप्त हुआ है कि पिछले तीन हफ़्तों में पाकिस्तान और चीन के बीच कई उच्चस्तरीय सैनिक वार्त्ताएँ हुई हैं और चीन पाकिस्तान को टी. यू.-16 बममार तथा टैंक देने जा रहा है. यह भी समाचार प्राप्त हुआ है कि पाकिस्तान ने एक पड़ोसी देश में एम-47 टैंक भेजे हैं.

भारत के विरुद्ध पाकिस्तानी प्रचार में कितना सत्य है, इस का अनुमान केवल इस से हो सकता है कि जिन दिनों पाकिस्तानी रेडियो और समाचार यह झूठी खबरें फैला रहे थे कि भारत ने बंगलादेश की सीमा पर अपनी सेना जमा कर रखी है, उन्हीं दिनों भारत और बंगलादेश के सीमा सुरक्षा दल के बीच कलकत्ते में एक कामयाब वार्त्ता हुई थी और दोनों देशों के विदेश मंत्रालयों के अधिकारियों ने आपसी हितों के सवालों को ले कर नयी दिल्ली में एक संयुक्त वक्तव्य पर हस्ताक्षर किये थे. भारत के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों को बंगलादेश की सरकार कितना महत्त्व देती है इस का पता केवल इस से चल जाता है कि बंगलादेश के राष्ट्रपति ने अपने विशेष प्रतिनिधि श्री अब्दुस्सत्तार तथा विदेश सचिव श्री तबारक हुसेन को बातचीत के लिए दिल्ली भेजा था.

बातचीत की समाप्ति पर जारी वक्तव्य में यह कहा गया कि दोनों ही देश आपसी दोस्ती और सहयोग को बढ़ाने के लिए आवश्यक वातावरण तैयार करने की दिशा में ज़रूरी क़दम उठायेंगे. भारतीय प्रतिनिधिमंडल ने प्रभुसत्ता और आपसी हितों के आधार पर दोनों देशों के बीच मैत्री और सहयोग बढ़ाने की अपनी नीति को दोहराया. बंगलादेश के प्रतिनिधिमंडल ने अपनी सरकार की इस इच्छा को भी दोहराया कि बंगलादेश भारत के साथ अपनी परंपरागत मैत्री और सहयोग में अभिवृद्धि करना चाहता है. बंगलादेश के प्रतिनिधिमंडल ने अपनी सरकार के इस वक्तव्य की ओर ध्यान दिलाया कि वह अपने समस्त नागरिकों की समानता में विश्वास रखती है, फिर वे चाहे किसी भी धर्म, मज़हब या ईमान के हों.

दोनों ही देशों के प्रतिनिधिमंडलों ने इस बात पर ज़ोर दिया कि जनता की प्रगति और कल्याण के लिए इस क्षेत्र के देशों के बीच सहयोग, शांति और स्थायित्व ज़रूरी है.

संयुक्त वक्तव्य में यह भी कहा गया कि दोनों पक्षों ने एक-दूसरे को अपने दृष्टिकोण से अवगत कराया और उम्दा संबंधों पर दोनों ही पक्षों ने ज़ोर दिया.

इस संयुक्त वक्तव्य से पाकिस्तानी प्रचार की कलई खुल जानी चाहिए. यदि भारत ने बंगलादेश की सीमा पर अपनी सेनाएँ इकट्ठी की होतीं तो भारत और बंगलादेश के प्रतिनिधिमंडलों के बीच न तो सौहार्द्रपूर्ण बातचीत होती और न ही यह संयुक्त वक्तव्य संभव होता. पाकिस्तानी प्रचार की सत्यता का पता इस से भी चलता है कि कुछ हफ्ते पहले अमेरिकी समाचारपत्रों ने यह समाचार छापा था कि भारत और बंगलादेश की सीमाओं पर सेना का कोई जमाव नहीं. अमेरिकी प्रशासन ने भी इस बात की पुष्टि की थी कि भारत और बंगलादेश की सीमा पर तनाव की स्थिति नहीं है.

वास्तविकता यह है कि पाकिस्तानी प्रचार पर विश्वास करने वाले देशों की गिनती उंगली पर की जा सकती है. और तो और मध्येशिया में भी पाकिस्तान संबंधित देशों को यह विश्वास दिला सकने में नाकाम साबित हुआ कि भारत का रवैया अपने पड़ोसी देशों के प्रति आक्रामक है. पिछले सप्ताह राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद की मिस्र यात्रा के दौरान राष्ट्रपति सआदत ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि मिस्र मानता है कि भारत एक शांतिपूर्ण देश है और वह एशिया क्षेत्र में शांति बनाये रखने का कायल है. राष्ट्रपति अहमद ने अपनी मिस्र यात्रा के दौरान भारत के विरुद्ध किये जा रहे झूठे प्रचार के प्रति मिस्र की जनता को आगाह करते हुए कहा था कि वह इन प्रचारों पर कोई विश्वास न करे. न केवल इतना ही बल्कि यह भी कि स्वयं मिस्र के एक प्रमुख पत्रकार ने राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद के स्वागत में आयोजित भाषण के दौरान कहा था कि पिछले दिनों मैं भारत यात्रा पर गया हुआ था. मैंने पाया कि वहाँ समस्त नागरिकों को समान अधिकार प्राप्त हैं तथा अल्पसंख्यकों को वहाँ आदर प्राप्त है.

देखो, देखो, . . . उधर कितना जमाव है !

राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद ने अपनी सूडान यात्रा के दौरान यह स्पष्ट किया कि भारत न केवल शांति चाहता है वह शांति पर अमल करता रहा है. उन की यात्रा की समाप्ति पर जो संयुक्त वक्तव्य जारी किया गया उस में यह कहा गया कि दोनों ही देश गुटनिरपेक्षता की नीति को दोहराते हैं और दोनों ही देश यह चाहते हैं कि गुटनिरपेक्ष देश शांति और सौहार्द्र के वातावरण में अपने आर्थिक पुनर्निर्माण का कार्य जारी रखें.

सूडान के राष्ट्रपति निमेरी और भारत के राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद के बीच आर्थिक प्रश्नों को ले कर विस्तार से बातचीत हुई और दोनों देशों के बीच आर्थिक और राजनैतिक सहयोग बढ़ाने का निर्णय लिया गया. सूडान ने अपनी ओर से यह स्पष्ट किया कि वह अपनी कई योजनाओं के विकास के लिए भारत का आर्थिक सहयोग चाहता है. दरअसल मध्येशिया तथा अफ्रीका के अनेक देशों में भारत को जो सद्भावना प्राप्त है वह पाकिस्तानी विदेशनीति की करारी शिकस्त है. पाकिस्तान विदेशनीति के मोर्चे पर अपनी पराजय से क्षुब्ध है और इसी लिए उस ने पिछले कुछ हफ़्तों में अपना भारत-विरोधी प्रचार तेज़ कर रखा है.

पाकिस्तान द्वारा भारत के विरुद्ध ज़हरीले प्रचार के पीछे एक दूसरी हताशा भी है. 15 अगस्त को बंगलादेश में विप्लव के बाद जो घटनाएँ घटीं, उन से पाकिस्तान ने यह निष्कर्ष निकाला कि बंगलादेश की सरकार भारत-विरोधी रवैया अपनायेगी और यह रवैया अंत में भारत और बंगलादेश के बीच एक ज़बरदस्त तनाव पैदा करेगा. लेकिन भारत और बंगलादेश के प्रतिनिधिमंडलों ने जो संयुक्त वक्तव्य जारी किया उस से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्थिति तनावपूर्ण नहीं है. दूसरे शब्दों में पाकिस्तान बंगलादेश में भी अपने उद्देश्यों में नाकाम साबित हुआ.

ऐसा लगता है कि भारत विरोधी प्रचार में पाकिस्तान अकेला नहीं है, बल्कि चीन भी उस में शामिल है. सोवियत संघ के एक समाचारपत्र 'सोवियतस्काया रोशिया' ने अपनी एक टिप्पणी में कहा है कि भारत और बंगलादेश के संबंधों में तनाव पैदा करने के उद्देश्य से माओवादी यह झूठा प्रचार कर रहे हैं कि दोनों देशों की सरहद पर झड़पें हो रही हैं. समाचारपत्र ने आगे कहा है कि 'चीन

बंगलादेश की कठिनाइयों से फ़ायदा उठाना तथा दक्षिणेशिया में संघर्ष और तनाव का वातावरण पैदा करना,' बल्कि यह कहना ज़्यादा उचित होगा कि 'भयानक अराजकता और विप्लव, जो कि उसे अत्यधिक प्रिय हैं पैदा करना चाहता है. माओवादी योजना के अनुसार इस से उस की सत्ता बढ़ेगी. समाचार-पत्र में माओवादियों पर सीधा हमला किया है. सोवियत समाचार एजेंसी ने पहले ही इस आशय के समाचार प्रकाशित किये हैं कि माओवादियों का उद्देश्य बंगलादेश तथा दक्षिणेशिया में तनाव और विप्लव पैदा करना है. सोवियत समाचारपत्रों ने इस संबंध में जो कुछ लिखा है वह बेबुनियाद नहीं है, बल्कि उस में काफ़ी उच्चाई है. चीन एशिया में भारत को अपने प्रतिद्वंद्वी के रूप में देखता रहा है. 1971 के भारत-पाक युद्ध में भारत की विजय बंगलादेश की आज़ादी के बाद से चीन का भारत विद्वेष और भी बढ़ गया. इस समूचे उपमहाद्वीप में अशांति पैदा करना चीनी योजना का एक अंग है. अपनी इसी योजना के अधीन चीन पाकिस्तान की तरह ही भारत के विरुद्ध प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से झूठा प्रचार कर रहा है.

जहाँ तक फ्रांस द्वारा पाकिस्तान को लड़ाकू विमानों और हथियारों की सप्लाई का प्रश्न है यह एक अलग सवाल है. फ्रांस के साथ भारत के संबंध मैत्रीपूर्ण रहे हैं और आज भी हैं. लेकिन फ्रांस एक यूरोपीय देश है और वह न केवल यूरोप के आर्थिक समुदाय के अंतर्गत बल्कि उस के बाहर भी अपने आर्थिक हितों को बढ़ाने का कायल है. लड़ाई के सामानों की बिक्री में उस की दिलचस्पी राजनैतिक न हो कर आर्थिक है. अगस्त 1973 में अपने फ्रांस प्रवास के दौरान प्रस्तुत संवाददाता ने फ्रांस के विदेशमंत्रालय के दक्षिणेशिया विभाग के सचिव से पूछा था कि क्या फ्रांस पाकिस्तान को अपने विमान बेचने जा रहा है? इस पर सचिव ने उत्तर दिया था कि हर देश व्यापार करता है. यदि पाकिस्तान हम से विमान खरीदने का इच्छुक है तो हमें उसे कृतार्थ करने में क्या आपत्ति हो सकती है? इस से यह स्पष्ट हो जाता है कि विमानों के क्रय को ले कर पाकिस्तान फ्रांस से पिछले दो तीन वर्षों से बातचीत कर रहा था. इस लिए पाकिस्तान में 'मिराज' लड़ाकू विमानों की फैक्टरी लगाने के फ्रांसीसी निर्णय पर किसी को विस्मय नहीं हुआ, लेकिन इस निर्णय का भारत की स्थिति पर क्या असर पड़ेगा यह विचारणीय है. फ्रांस के प्रधानमंत्री अगले वर्ष 23 जनवरी को भारत आ रहे हैं. यह संभव है कि भारत सरकार उन के साथ जो बातचीत करेगी उस में पाकिस्तान को हथियारों की सप्लाई के सवाल पर भी विचार किया जायेगा.

रजत जयंती

संविधान और संसद्

लोकतंत्री गणराज्य की 25वीं जयंती के सिलसिले में आयोजित समारोहों की शृंखला में 10 दिसंबर को संसद् भवन के केंद्रीय कक्ष में एक पुस्तक विमोचन समारोह हुआ, जहाँ कुछ दिन पहले राष्ट्रकुल संसदीय सम्मेलन हुआ था. रजत जयंती वर्ष के संदर्भ में 'संविधान और संसद् : गणतंत्र के पच्चीस वर्ष' (हिंदी संस्करण) और 'द कांस्टिट्यूशन ऐंड द पार्लियामेंट इन इंडिया : द 25 इयर्स ऑव द रिपब्लिक' (अंग्रेज़ी संस्करण) का प्रकाशन, प्रधानमंत्री द्वारा उस का विमोचन और उन का विमोचन भाषण सामान्य से अधिक महत्त्व का है.

प्रतिष्ठित संसद्विज्ञों, विधिवेत्ताओं, प्रशासकों, मंत्रियों और अध्येताओं के लेखों के पुस्तकाकार संकलनों का पठन पाठन के लिए 'प्रसन्नतापूर्वक' विमोचित करते हुए प्रधानमंत्री ने जो कुछ कहा उसे पुस्तक के प्राक्कथन के रूप में ग्रहण किया जाना चाहिए, हालाँकि वह पुस्तक में समाहित नहीं है. यों भी वह प्राक्कथन ही है क्योंकि वह विमोचन के पूर्व ही कहा गया. उन्होंने कहा था कि "कोई भी समाज क़ानून के बग़ैर नहीं रह सकता और कोई राष्ट्र संविधान के बिना नहीं जी सकता. संविधान में जन परंपराओं और आकांक्षाओं का समावेश होता है. लेकिन वह एक घोषणापत्र से अधिक होता है, क्यों कि वह आदर्शों को व्यावहारिक रूप देने दिलाने का क़ानूनी तंत्र भी मुहैय्या करता है. संविधान पर उत्तराधिकार में प्राप्त, मौजूदा स्थिति में सन्निहित और संभावित समस्याओं के निराकरण का दायित्व होता है. जो चीज़ें अचल और अनमनीय होती हैं वे बहुधा दबाव पड़ने पर टूट जाया करती हैं. अप्रत्याशित घटनाओं से साबिका पड़ने पर अनमनीय संविधानों का यही हाल देखने में आया है. किसी भी जीवंत और सामाजिक प्राणी के जीवन का सार है—नमनीयता और परिस्थिति अनुकूलता. मूल भावना की सुरक्षा के लिए कभी कभी ज़रूरी होता है कि स्वरूप और शब्दावली में परिवर्तन कर दिया जाये."

"संविधानों की संरचना इस इरादे से की जाती है कि वे लंबे समय तक रहें और जिन समाजों के लिए वे बने हैं वे भी दीर्घजीवी हों. लेकिन क्या कोई संविधान एक राष्ट्र को हमेशा के लिए बाँध कर रख सकता है? जवाहरलाल नेहरू ने भी हमारी संविधान सभा में ज़ोरदार तरीके से इस दिशा में संकेत दिया था और इसी कक्ष में मैं उन के शब्दों को उद्धृत कर चुकी हूँ." संविधान में परिवर्तनशीलता के पक्ष में अमेरिकी संविधान के एक मुख्य निर्माता टॉमस जैफर्सन का उद्धरण देने के बाद प्रधानमंत्री ने भारतीय संविधान निर्माताओं की अनुशंसा की. उन्होंने आगे कहा : "फिर भी हमारे संविधान निर्माताओं ने स्वयं को पूर्णतः त्रुटिरहित कभी नहीं समझा और न यह स्वीकार किया कि समय और परिस्थितियाँ बदलने पर भी उन की संरचना को बदलने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी. वे मूलतः क्रांतिदर्शी और सुधारक थे—यथास्थितिवाद के पक्षधर नहीं थे. हमारे संविधान में, जैसा कि वह अनुमोदित हुआ, अनेक संक्रमणकालीन व्यवस्थाएँ थीं, जिन के कारण देश का राजनैतिक पुनर्गठन संभव हुआ. अपना उद्देश्य पूरा कर चुकने पर उन की उपयोगिता समाप्त हो गयी. संविधान निर्माताओं ने आर्थिक रिश्तों में परिवर्तन की परिकल्पना की थी और अपने स्वप्नों को 'निदेशक' सिद्धांतों के रूप में निरूपित किया था. इन्हीं निदेशक सिद्धांतों को आगे बढ़ाने की दृष्टि से संविधान में अनेक बुनियादी संशोधन किये गये हैं."

श्रीमती गांधी ने एक ज़बर्दस्त विडंबना की भी चर्चा की : **"यह एक अजीब विडंबना है कि ऐसे बहुत से लोग हैं जो हमारी लोकतंत्री प्रणाली से संरक्षण प्राप्त कर रहे थे, वे ही उस की जड़ खोदने लगे. उन्होंने इमारत की नींव नष्ट करने में कोई कसर नहीं उठा रखी और ऐसा करने के पहले कोई विश्वसनीय और तर्कसंगत वैकल्पिक ढाँचा भी सामने नहीं रखा."**

प्रधानमंत्री ने यह आशा व्यक्त की कि प्रतिपक्षी दल "अब अधिक उत्तरदायित्व के साथ काम करने की कोशिश करेंगे."

"संविधान और संसद् : गणतंत्र के 25 वर्ष' लोकसभा सचिवालय (नयी दिल्ली) के लिए, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली द्वारा प्रकाशित किया गया है. इस के संपादक हैं श्यामलाल शकधर, जो लोकसभा के महासचिव और संसदों के महासचिव संगठन के अध्यक्ष भी हैं.

लगभग पौने पाँच सौ पृष्ठों की पुस्तक 14 भागों में विभक्त है. प्रत्येक भाग संविधान तथा उस के अंतर्गत स्थापित विभिन्न संस्थानों के कार्यकरण के किसी विशिष्ट पहलू पर प्रकाश डालता है. कुछ शीर्षक हैं : संविधान; प्रस्तावना, मूल अधिकार तथा निदेशक सिद्धांत; भारत में संसदीय प्रणाली; संसद् तथा उस का कार्यकरण; संसद्, प्रेस तथा जनता; संसद् में राजनैतिक दल. निर्वाचन तथा निर्वाचन प्रणाली में सुधार. लेखकों में पूर्वकालिक और मौजूदा मंत्रियों, राजनीति के आचार्यों, प्रशासकों, विभिन्न दलों के पूर्वकालिक या मौजूदा संसद् सदस्यों, पत्रकारों और विधि विशेषज्ञों के नाम हैं. लेखकों के नीचे अंकित तिथियों से मालूम होता है कि चयन, संपादन, अनुवाद और प्रकाशन में यथेष्ट समय लगाया गया है, क्यों कि अधिकतर सामग्री मई 1975 तक लिख ली गयी थी.

संविधान सभा के सदस्य, केंद्रीय रेलवे राज्यमंत्री और बाद में विंध्यप्रदेश के उपराज्यपाल **श्री के. संथानम्** ने संविधान में निहित विचारधारा के बारे में कहा है कि इस में ब्रितानी लोकतंत्र के निष्ठावान समर्थकों, जवाहरलाल नेहरू जैसे समाजवादियों और महात्मा गांधी की विचारधारा (अस्पृश्यता उन्मूलन, मद्यनिषेध, ग्राम पंचायतों का महत्त्व और घरेलू उद्योग) ये सभी संविधान में समाहित हैं.

विधि, न्याय और कंपनी कार्यमंत्रालय के सचिव **श्री पी. जी. गोखले** का कहना है कि संविधान की प्रस्तावना निदेशक सिद्धांत और मूल अधिकारों में परस्पर विरोध या असंगति नहीं है. उन की मान्यता है कि संविधान में मूल अधिकार भी उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं जितने कि निदेशक सिद्धांत. उन्होंने इस विषय पर डॉ. गजेंद्रगडकर को उद्धृत किया है : "भारतीय लोकतंत्र संविधान के भाग 3 में नागरिकों को दिये गये मूल अधिकारों का पालन करते हुए भाग 4 में निहित सामाजिक, आर्थिक सिद्धांत को कार्यान्वित करने के लिए प्रयत्न करने को वचनबद्ध है." उन का यह भी आशय था कि यदि "उक्त मूल अधिकार, सामाजिक समता और आर्थिक न्याय दोनों में किसी प्रकार की बाधा डालते हैं तो संविधान मूल अधिकारों के स्वरूप में संशोधन करने की भी अनुमति देता है जिस से भारतीय लोकतंत्र अपने उन लक्ष्यों की प्राप्ति कर सके."

वयोवृद्ध राजनेता **आचार्य कृपलानी** ने अपने आलेख 'मौलिक अधिकार' में मौलिक अधिकारों को सर्वोपरि माना है. उन का कहना है कि "विधानमंडल जनता नहीं है अगर ऐसा होता तो संसद् के बाहर जनमत कराने की या जनता की किसी विषय पर राय जानने की क्या आवश्यकता होती! अभी हाल में ब्रिटेन ने यूरोपीय साझा बाज़ार में शामिल होने के प्रश्न पर जनता की राय ली थी." फिर भी आचार्य जी ने स्वीकार किया है कि "कानून में विकासशील परिवर्त्तन होना चाहिए. संपत्ति के बारे में विचारों के परिवर्त्तन के साथ इस से संबद्ध कानून में भी परिवर्त्तन होना चाहिए."

भूतपूर्व न्यायाधीश और विधिमंत्री **श्री चागला** मानते हैं कि "हमारे यहाँ संसदीय प्रणाली काफ़ी सफल रही है. हमारे यहाँ कोई विप्लव नहीं हुआ. संसद् के निर्णयों का पालन किया गया और विधि शासन चलता रहा है. परंतु 25 वर्षों के कार्यकरण में बहुत से दोष भी पाये गये हैं." श्री चागला का परामर्श है कि "अब समय आ गया है कि जब हमें अपनी संसदीय प्रणाली के कार्यकरण पर नये दृष्टिकोण से देखना चाहिए. हम ने लोकतंत्र का वचन लिया है. हमें लोकतांत्रिक आदर्शों के प्रति निष्ठा रखनी चाहिए. परंतु अमेरिका भी ब्रिटेन से कम लोकतांत्रिक नहीं है. जो प्रणाली एक छोटे से देश के लिए, जिस में समेकित समाज और पुरानी परंपराएँ प्रचलित हैं, उपयुक्त हैं वह इस से भिन्न परिस्थितियों वाले देश में उपयुक्त नहीं हो सकती."

लोकसभा कार्यालय के महासचिव श्याम लाल शकधर ने अपने लंबे आलेख में कार्यपालिका और संसद् के परस्पर संबंधों का विश्लेषण किया और कहा है कि "भारतीय संविधान के अंतर्गत कार्यपालिका और संसद् के बीच सामंजस्यपूर्ण संबंध है, परस्पर विरोध नहीं. सत्ता के लिए दोनों में प्रतिस्पर्धा नहीं है." उन्हों ने दसियों उदाहरण दे कर अपनी इस स्थापना को साबित करने की कोशिश की है कि "राष्ट्रों के समक्ष जब भी अनेक बार विकट समस्याएँ आयीं और उन के संपूर्ण राष्ट्र को स्वीकार्य समाधान की आवश्यकता हुई, तब संसद् ही अंतिम निर्णायक के रूप में सामने आयी." इस प्रसंग में उन्होंने राज्यों के पुनर्गठन, बेरूबाड़ी, तेलंगाना, पंजाबी सूबा, वॉयस आफ अमेरिका समझौता, इंडो-यू. एस. फाउंडेशन, बंगलादेश का संकट आदि अनेक प्रसंगों का उल्लेख किया है.

संविधान सभा तथा संसद् के भूतपूर्व सदस्य मन्नूलाल द्विवेदी आपत्काल के बारे में आश्वस्त हैं, क्योंकि मूल अधिकारों के प्रयोग पर अस्थायी रोक ही लगती है—"आपत्काल की स्थिति के दौरान इन अधिकारों का प्रयोग रुका अवश्य रहेगा परंतु जैसे ही आपत्काल की स्थिति समाप्त होती है ये अधिकार स्वयंमेव जीवित हो जाते हैं और संसद् द्वारा पारित कोई भी अधिनियम मूलभूत अधिकारों को समाप्त नहीं कर सकते."

'संसद् और समाचारपत्र, जन संचार के साधन, सरकार और जनता' शीर्षक लेख में नेशनल हेरल्ड के संपादक **श्री चेलापति राव** का कहना है कि "भारत की परिस्थितियाँ ब्रिटेन की परिस्थितियों से भिन्न हैं. ब्रिटेन में विपक्षी दल बहुत समय तक स्वयं को परिकल्पित सरकार मानता रहा है. किंतु भारत में विशेषकर केंद्र में विपक्षी दलों ने कभी अपने स्वरूप को वैकल्पिक सरकार का स्वरूप नहीं माना है. यहाँ के विपक्षी दल न केवल सरकार का विरोध करते हैं वरन् स्वयं एक दूसरे का विरोध करते हैं. ऐसी स्थिति में निष्पक्ष समाचारपत्रों का कार्य और भी कठिन हो जाता है." वह मानते हैं कि "समाचार अब भी जन संचार का मुख्य साधन है. समाचार पत्र ही जनता को संसदीय लोकतंत्र में कार्यपालिका और विधानमंडल तथा सत्तारूढ़ दल और विपक्षी दल के पारस्परिक संबंधों और उन के कार्यों से अवगत कराते हैं. जनता को शिक्षित करने के साथ साथ समाचारपत्र प्रजातंत्र के दोषों को दूर करने में सहायता करते हैं."

"समाचारपत्रों का यह भी दायित्व है कि समय समय पर जनता के विचार व्यक्त करते रहें. **किंतु समाचारपत्रों के निजी विचारों को जनता के विचार नहीं माना जा सकता, फिर भी सही स्थिति का चित्रण कर के समाचारपत्र इस दायित्व का निर्वाह कर सकते हैं.**"

लोकसभा के महासचिव श्यामलाल शकधर (बायें) द्वारा प्रधानमंत्री को 'संविधान और संसद् : गणतंत्र के 25 वर्ष' की प्रति भेंट

प्रदेश

बिहार

आदिवासी जीवन में क्रांति

'आदिवासियों ने शराब पीना छोड़ दिया. उन्होंने सामूहिक खेती और पशुपालन शुरू कर दिया है. दो वर्ष के भीतर एक भी आदिवासी निरक्षर नहीं रह जायेगा. उन का सारा ऋण समाप्त हो गया. कोई आदिवासी भूमिहीन नहीं रह गया.'

सुन कर आश्चर्य होगा. लेकिन यह तथ्य है. इसे राज्य सरकार द्वारा संचालित **सामाजिक अध्ययन के ए. एन. सिंह संस्थान** (ए. एन. सिंह इंस्टीट्यूट ऑव सोशल स्टडीज़) ने भी स्वीकार किया है; कम से कम धनबाद ज़िले के 1 लाख आदिवासियों के जीवन में इस क्रांति के दर्शन हो रहे हैं. यह क्रांति है सामाजिक और आर्थिक और इस के जनक हैं 33-वर्षीय **श्री शिबू सोरेन.** श्री सोरेन ने मैट्रिक तक शिक्षा प्राप्त की है. उन्होंने वह काम कर दिखाया है जो आदिवासियों के किसी भी नेता से संभव नहीं हो सका. उन के कार्यों को देखने के लिए टुंडी प्रखंड के आदिवासी गाँव में घूमना आवश्यक है, जहाँ दो वर्ष पहले के दीन, हीन भूखे, नंगे आदिवासी अब दिखायी नहीं देते. अब उन के चेहरों पर चमक, बदन पर वस्त्र और पेट में दाना है. यह सारा परिवर्त्तन केवल सरकारी सहायता के बल पर नहीं निजी सामाजिक संगठन के बल पर आदिवासियों ने किया है. इस के लिए उन्हें एक ओर अपनी सदियों पुरानी परंपराओं और रिवाजों से लड़ना पड़ा है और दूसरी ओर अपने बीच कुंडली मार कर बैठे शोषकों से भी लोहा लेना पड़ा है. धनबाद के सरकारी अधिकारियों ने उन्हें बहुत सहयोग दिया है. यही कारण है कि गिरिडीह, हज़ारीबाग और संथाल परगना की तुलना में आदिवासियों का यह संघर्ष धनबाद में सफल हुआ है.

यह सामाजिक क्रांति कैसे हुई? श्री सोरेन के ही शब्दों में 'जब मैं 1957 में छठे वर्ग में पढ़ता था मेरे पिता को सूदखोरों ने मार डाला. इस का दिमाग़ पर गहरा असर पड़ा. मैट्रिक तक की पढ़ाई की. अर्थाभाव के कारण आगे पढ़ना संभव नहीं हुआ. मुरी (रांची) के अल्युमिनियम कारख़ाने में 1 रुपया रोज़ पर काम करने लगा. दिमाग़ में शोषण-उत्पीड़न की तस्वीर उभरती रहती थीं. सोचा 1 रुपया रोज़ पर काम करना भी शोषण को बढ़ावा देना है. घर लौट गया. खेती के आधुनिक साधनों को अपनाया. अच्छी फ़सल होने लगी, लेकिन समाज के शोषण ने तिलमिला दिया. 5 रुपये के सूदखोर 500 रुपये तक वसूल करते थे और वसूली में सभी तरह के अनैतिक काम करने को अमादा रहते थे. लगा कि यदि शोषण बंद नहीं कराया तो जीना व्यर्थ है. 1962 को **आदिवासी सुधार समिति** का गठन किया. जंगलों के ठेके का काम भी हाथ में लिया. लेकिन हर क़दम पर शोषकों से संघर्ष करना पड़ता था. उन दिनों आज जैसे क़ानून नहीं थे. ऐसी हालत में समाज सुधार का काम करना आवश्यक समझा. सामाजिक बुराइयों का अध्ययन किया. पाया कि शराबख़ोरी आदिवासी जीवन का सब से बड़ा अभिशाप है. सामाजिक बुराइयाँ—भारी संख्या में बारात, बहुविवाह और इन के कारण ही आदिवासी कर्ज़ में फँसते हैं. इन बुराइयों के ख़िलाफ़ आंदोलन शुरू किया. घर के लोग ही बिगड़ उठे. आदिवासी कहीं शराब छोड़ेगा? उस के देवता **मरांग गुरु** गुस्सा हो जायेंगे. शराब छोड़ना धर्म के ख़िलाफ़ है. घर में विरोध हुआ. उसे छोड़ कर भाग जाना पड़ा.

'यह साबित करने के लिए कि शराब न पीने से मरांग गुरु गुस्सा नहीं होते हैं रात में सुनसान में उस पेड़ के नीचे सोने लगा जहाँ मरांग गुरु का निवास बताया जाता था. आदिवासियों को विश्वास हो गया कि बिना शराब पिये जो उस जगह पर जायेगा मरांग गुरु उस का संहार करेंगे. जब कई रात सोने के बाद भी कुछ नहीं हुआ तब कुछ नौजवानों ने शराब के विरोध में साथ देना शुरू किया. इस बीच राज्य सरकार ने आदिवासियों के हित में कुछ क़ानून बनाये. एक क़ानून यह भी था कि पिछले कुछ वर्षों में आदिवासियों की जो ज़मीन दूसरे लोगों ने लिखा ली है वह ज़मीन उन्हें वापस कर दी जाये. अधिकारियों ने काग़ज़ की खानापूरी कर के उस ज़मीन का मालिक भी आदिवासियों को घोषित कर दिया. मगर जब आदिवासी कब्ज़ा करने जाते थे उन्हें मार पीट कर भगा दिया जाता था. पुलिस और अदालत से सहायता नहीं मिली और इसी की प्रतिक्रिया में कार्यक्रम का एक क्रांतिकारी रूप सामने आया. हज़ारीबाग, गिरिडीह, संताल परगना और धनबाद ज़िले में हज़ारों की संख्या में तीर-धनुष ले कर आदिवासी धान काटने लगे. कई जगह बड़े-बड़े जोतदारों से सामना हुआ. धान की कटाई के दौरान 10-20 हत्याएँ होने लगीं. आदिवासियों ने ऐसा सामाजिक संगठन बना लिया कि उन के गाँव में सरकारी कर्मचारियों के लिए जाना मुश्किल हो गया. किसी भी कर्मचारी को देखते ही नगाड़े बज उटते और हज़ारों आदिवासी तीर-धनुष ले कर पहाड़ों से विष बुझे तीर बरसाना शुरू कर देते. तोपचाची थाना के दारोग़ा ने आदिवासी गाँव में घुसने की कोशिश की तो मार डाले गये.'

इन घटनाओं ने श्री सोरेन को नक्सलवादी घोषित करवा दिया. श्री सोरेन के नाम का आतंक फैल गया. उन्होंने शराब पीना छुड़वाया. बरात की फ़िज़ूलख़र्ची पर रोक लगवायी. बहुविवाह और बालविवाह बंद करवाया. हर आदिवासी के लिए लिखना-पढ़ना अनिवार्य कर दिया. सिर्फ टुंडी प्रखंड में 100 रात्रि पाठशालाएँ शुरू करा दीं. धान की उन्नत खेती, रबी की पहली फसल, सामूहिक कृषि और पशुपालन आदि के भी प्रयोग शुरू कर दिये. जंगलों, पहाड़ों में सोये आदिवासी गाँव में एक परिवर्त्तन आया. यों श्री सोरेन के खिलाफ लूटपाट खूनखराबी के दर्जनों मुक़द्दमे हैं.

शिबू सोरेन : आदिवासियों के लिए

सरकारी अधिकारियों में सब से पहले धनबाद के तत्कालीन उपायुक्त श्री के. बी. सक्सेना ने श्री सोरेन की महत्ता को पहचाना और उन से सीधा संपर्क किया. मुलाक़ात के बाद अविश्वास और धुंध के सारे बादल छँट गये. श्री सक्सेना की मान्यता थी कि श्री सोरेन का सही उपयोग किया जाये तो वह ग्रामीण जीवन की पुनर्रचना में एक आदर्श उपस्थित कर सकते हैं. श्री सक्सेना की बात सच हो कर सामने आयी. एक साल के अंदर धनबाद के आदिवासी अंचल में एक भी हिंसक घटना नहीं हुई. धनबाद के धान की कटाई शांतिपूर्वक संपन्न हो गयी. श्री सोरेन ने आदिवासियों के बीच खेती के नये तरीक़ों की शुरुआत की. धनबाद के आदिवासी अंचल में इस वर्ष पहली बार गेहूँ बोया गया. इस वर्ष 90 एकड़ में पहली बार गरम धान की फसल उगायी गयी, जिस में पाँच हज़ार मन धान हुआ. मकई, चना और आलू आदि की फसल का भी सफल प्रयोग किया गया. समाज सुधार के अन्य काम भी इसी के साथ जारी रहे.

पिछले साल बिहार सरकार ने आदिवासियों को ऋण मुक्त करने का क़ानून बनाया. श्री सोरेन ने इस का भी भरपूर लाभ उठाया और सभी आदिवासियों को ऋण मुक्त करा दिया.

इन सभी कार्यों का नतीजा हर आदिवासी के चेहरे पर लिखा दिखायी पड़ता है. अब उन के चेहरे पर चमक और आत्मविश्वास
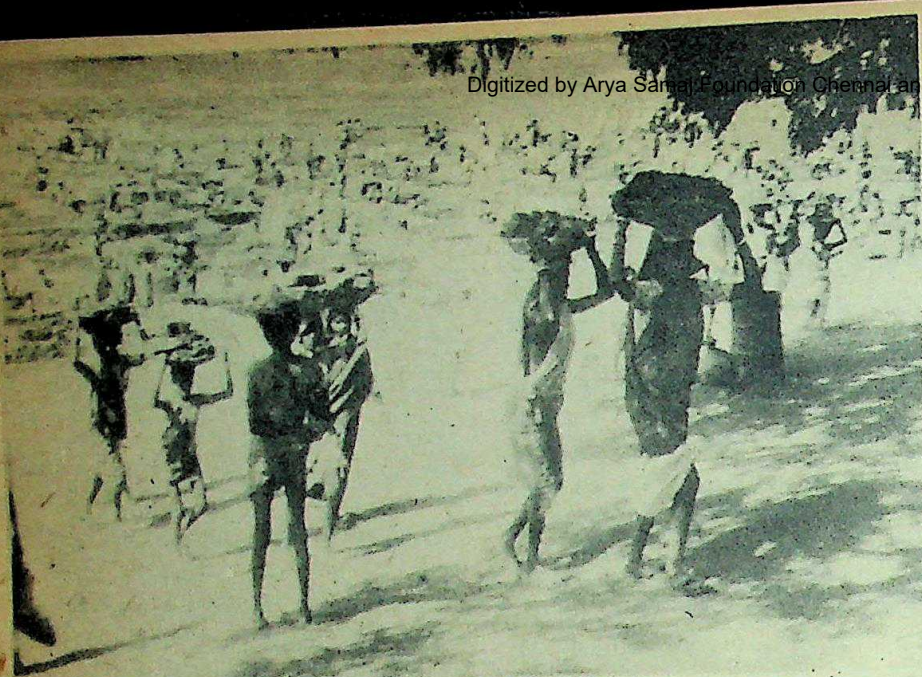
आमापेंडरी तालाब की खुदाई के काम में लगे हुए मजदूर

दिखायी देता है. श्री सोरेन नक्सलवादियों से भी किसी तरह के संपर्क की बात को स्वीकार नहीं करते. यों उन्होंने कहीं कहीं आतंक का भी सहारा लिया. शराब बंद कराने और समाज सुधार में उन्हें थोड़ा बहुत आतंक का सहारा लेना पड़ा. उन के कुछ तर्कों से कुछ लोग सहमत नहीं भी हो सकते हैं लेकिन उन्होंने आदिवासियों के जीवन में जो परिवर्त्तन पैदा किये वे निश्चय ही अनुकरणीय हैं.

स्वयंसेवी संस्थाएँ : समाजसेवा की दिशा में कुछ स्वयंसेवी संस्थाओं ने मध्यप्रदेश में जो काम किया है वह भी चर्चा और अनुकरण का विषय हो सकता है. अकाल और सूखा छत्तीसगढ़ के लिए नये शब्द नहीं हैं. इस के सात ज़िलों में कहीं न कहीं अकाल या सूखे की स्थिति रहती है. अकाल या सूखा नहीं पड़ा तो अतिवृष्टि होगी या फसल को कीड़े लगेंगे. लेकिन 74-75 में छत्तीसगढ़ में जैसा सर्वग्रासी अकाल पड़ा उस की मिसाल मुश्किल से मिलेगी. कर्मठ किसानों की सारी संपत्ति, उन का घर, बैल, बर्त्तन भूख की ज्वाला में राख हो गये. उस की हालत बहुत खराब हो गयी. धान का कटोरा उलट गया. यहाँ कुछ क्षेत्रों में स्वयंसेवी संस्थाएँ काम कर रही हैं. दुर्ग ज़िले के पाटन विकास खंड में यूनिसिफ, कासा और केयर जैसी संस्थाएँ राहत का काम कर रही हैं. एक जगह लिखा है **राम कृष्ण मिशन विवेकानंद आश्रम रायपुर द्वारा संचालित अकाल पीड़ित सेवा कार्य.** 3 मार्च 75 से शुरू हुए इस केंद्र द्वारा प्रतिदिन 74 गाँवों के लगभग 1 हज़ार लोगों को खाद्यान्न वितरित किया जा रहा है. मिशन ने पाटन विकास खंड के पाँच स्थानों पर तालाब निर्माण का कार्य प्रारंभ किया. 33.85 एकड़ भूमि में पाँच तालाबों का निर्माण हो रहा है, जिस से 490 एकड़ भूमि की सिंचाई होगी. विभिन्न गाँवों में पेय जल की व्यवस्था के लिए सात कुएँ खोदे गये. सारे काम की लागत लगभग 2 लाख 93 हज़ार रुपये है. एक दृश्य **तुमगाँव** में दिखायी दिया. अनाश्रितों और अपंगों की भारी भीड़ आश्रम के कार्यकर्त्ता व्यवस्था में लगे थे. पता चला कि 25 अप्रैल से यहाँ प्रतिदिन 37 गाँवों के 850 अपंगों को खाद्यान्न दिया जा रहा है. आश्रम के स्वामी जी ने बताया कि आश्रम द्वारा संचालित राहतकार्यों में 6 लाख 62 हज़ार रुपये व्यय होंगे जिस से 1 लाख 64 हज़ार अकालग्रस्त लोगों को सीधे लाभ पहुँचेगा. आगामी कार्यक्रम के बारे में पूछने पर उन्होंने बताया कि इस कार्यक्रम के अंतर्गत 142 गाँव आये हैं. अब बुआई का समय आ गया है लेकिन अधिकांश छोटे किसानों के पास बोने के लिए बीज नहीं हैं. अब हमारा यही प्रयत्न है कि इस दिशा में भी किसानों की सहायता कर सकें.

मध्यप्रदेश

13वाँ पुलिस सम्मेलन

पिछले दिनों मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल में जो तेहरवाँ अखिल भारतीय पुलिस सम्मेलन हुआ. उसे एक तरह से ऐतिहासिक सम्मेलन के तौर पर करार दिया गया. देश में आपातकालीन स्थिति लागू होने के बाद यह पहला पुलिस सम्मेलन था. इस सम्मेलन का उद्घाटन मध्यप्रदेश के राज्यपाल सत्यनारायण सिन्हा ने किया. उस में देश के 55 प्रतिनिधियों ने भाग लिया. सब से अधिक प्रतिनिधि मध्यप्रदेश के थे. मध्यप्रदेश पुलिस के महानिरीक्षक **एच. एम. जोशी** ने कहा कि नगरों की बढ़ोत्तरी और दिनोंदिन औद्योगीकरण के प्रचार प्रसार से पुलिस का महत्त्व और बढ़ गया है. आज पुलिस को न केवल नागरिकों के जीवन और संपत्ति की ही रक्षा करनी होती है बल्कि अपराधों की रोकथाम, उन की जाँच-पड़ताल, नगरों और राजपथ के यातायात को सुगम बनाने के अलावा दंगों पर रोक और औद्योगिक तथा शैक्षिक संस्थाओं में सुरक्षा की भावना पैदा भी करना है. यह तभी संभव हो सकता है जब कि राज्य की पुलिस व्यवस्था सुदृढ़ और प्रभावशाली हो. 1958 में पुलिस के महानिरीक्षकों के सम्मेलन में यह ज़रूरत महसूस की गयी थी कि पुलिस अधिकारी इस तरह की समस्याओं पर बातचीत करने के लिए साल में एक बार मिलें. लिहाज़ा 1960 में पटना में अखिल भारतीय पुलिस का पहला सम्मेलन आयोजित किया गया. निश्चित तौर पर हर देश की अपनी अपनी समस्याएँ होती हैं और उन से निपटने के अपने अपने तरीके भी होते हैं. मसलन अमेरिका में यातायात का मार्गदर्शन करने के लिए हेलीकॉप्टरों का इस्तेमाल किया जाता है तथा अन्य कुछ देशों में इलेक्ट्रॉनिक व्यवस्था का भी सहारा लिया जाता है. विभिन्न देशों की बढ़ती हुई आबादी के अनुसार पुलिस व्यवस्था भी पेचीदा होती जा रही है. शायद यही कारण है कि बहुत से यूरोपीय और अमेरिकी विश्वविद्यालयों में अपराधशास्त्र का एक विभाग भी होता है. श्री जोशी के अनुसार मध्यप्रदेश की कुछ अपनी समस्याएँ हैं जो देश के अन्य भागों में नहीं हैं. मध्यप्रदेश की बहुत कम संख्या वाली पुलिस को राज्य की बहुत बड़ी संख्या की सेवा करनी होती है. हालाँकि पिछले साल पुलिस के बजट में 50 लाख रुपये की बढ़ोत्तरी हुई लेकिन राज्य की जनसंख्या और आकार के अनुसार यह बढ़ोत्तरी नहीं के बराबर है. इस राज्य की कुछ अपनी समस्याएँ भी हैं. —मसलन आदिवासियों की समस्याएँ, डाकुओं की समस्याएँ आदि. इन समस्याओं से निपटने के लिए पुलिस के विशेष दस्तों की ज़रूरत होती है.

कठिन परिश्रम के बावजूद : श्री जोशी के अनुसार पुलिस के रास्ते में जो कठिनाइयाँ आती हैं उस का विश्लेषण भी करना शायद ज़रूरी है. जिस व्यक्ति का आम जनता के साथ अक्सर संपर्क होता है वह सिपाही होता है. उस में आवश्यक शिक्षा की पृष्ठभूमि नहीं होती. दूसरे पुलिस अधिकारियों के सामने दिये गये बयान न्यायालयों में अक्सर वैध नहीं ठहराये जाते. इस वजह से कभी कभी पुलिस की सारी मेहनत न्यायालयों द्वारा निरर्थक करार दे दी जाती है. अलावा इस के अपराधों की जाँचपड़ताल के लिए वैज्ञानिक साधनों के इस्तेमाल पर बल अवश्य दिया जाता है लेकिन इन वैज्ञानिक साधनों के प्रयोग की क्षमता बहुत कम लोगों में होती है. यह सर्वविदित है कि पुलिस का एक सिपाही या अधिकारी जितना कठिन परिश्रम करता है उस के अनुपात में उसे वेतन बहुत कम मिलता है. यही कारण है कि प्रतिभाशाली

एच. एम. जोशी : विभिन्न दायित्व

व्यक्ति पुलिस में आने से कतराते हैं. भारत में अपराधियों की जाँच करने वाले अधिकारियों और न्यायालयों की भी खासी कमी है. कभी कभी एक मुकद्दमे के निपटने में सालों साल लग जाते हैं. किसी मुकद्दमे की शुरुआत में जो स्थितियाँ होती हैं ज़रूरी नहीं वही स्थितियाँ उस समय भी हों जब मुकद्दमे का निपटारा हो रहा होता है. इस समय देश भर में 8161 पुलिस स्टेशन हैं. सब से अधिक 1062 उत्तरप्रदेश में हैं. इस के अलावा आंध्रप्रदेश में 876, मध्यप्रदेश में 870, तमिषनाडु में 839, बिहार में 658, मैसूर में 545, राजस्थान में 498, गुजरात में 394, महाराष्ट्र में 674, पश्चिम बंगाल में 350, ओडिसा में 342, असम में 261, केरल में 245, पंजाब में 180, हरयाणा में 116, जम्मू-कश्मीर में 82, हिमाचलप्रदेश में 72, दिल्ली में 49 आदि हैं.सर्वेक्षण से पता चलता है कि गाँवों में काम करने वाले एक पुलिस स्टेशन की हद में 200 से 300 वर्गमील का इलाका आता है जिस के अंतर्गत 6 हजार और उस से अधिक ही की आबादी होती है. मध्यप्रदेश में और खास तौर पर कबाइली क्षेत्रों में 60 हज़ार वर्गमील के क्षेत्र के लिए एक पुलिस स्टेशन है. इस के अलावा आज भी पुलिस के वही कानून हैं जो 1861 में हुआ करते थे. यह बात सही है कि उन में कुछ संशोधन हुए हैं.

प्रधानमंत्री का संदेश : भारत की वर्त्तमान स्थिति और प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा घोषित 20 सूत्री कार्यक्रम के अंतर्गत पुलिस की भूमिका और महत्त्वपूर्ण हो गयी है. इस विषय पर इस सम्मेलन में लगभग पूरा एक दिन विचारविमर्श हुआ. 17 नवंबर 1975 के हैदराबाद राष्ट्रीय पुलिस अकादेमी में प्रधानमंत्री ने आई. पी. एस. के नये रंगरूटों के सामने भाषण देते हुए कहा कि पुलिस को अपने रवैये में परिवर्त्तन करना है. उसे समाज के गरीब और कमज़ोर वर्ग की न केवल सहायता ज़रूरी है बल्कि उस के अभिभावक के रूप में भूमिका निभानी है. इसी तरह का वक्तव्य प्रधानमंत्री ने पिछले दिनों दिल्ली पुलिस के समक्ष भी दिया था. उन्होंने कहा कि पुलिस का कर्त्तव्य केवल कानून और व्यवस्था बनाये रखना नहीं बल्कि जनता का विश्वास प्राप्त करना भी है. लिहाज़ा 20 सूत्री कार्यक्रम के अंतर्गत पुलिस के जो दायित्व बढ़ गये हैं वे मुख्यत: इस प्रकार हैं : मूल्यों को स्थिर बनाये रखने के लिए मुनाफाखोरों और जमाखोरों के खिलाफ़ कार्रवाई करना, विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा जारी किये गये अध्यादेशों के अनुसार बेगार मज़दूरी पर रोक लगाना, लोगों को कर्ज़मुक्त करने के लिए उन की सहायता करना, तस्करों के खिलाफ़ व्यापक कार्रवाई करना. निस्संदेह पुलिस ने अपने दायित्व को समझा है और 20 सूत्री कार्यक्रम के अंतर्गत उसने जो समाजीकरण की भूमिका निभायी है उस का सर्वत्र स्वागत हुआ है.

संगणक युग : इस सम्मेलन में पुलिस के कार्य को उपयोगी बनाने के लिए आधुनिक प्रौद्योगिकी और संगणकों के इस्तेमाल की बात भी उठी. बहुत से अधिकारियों ने यह माना कि संगणकों का इस्तेमाल बड़े पैमाने पर हो रहा है. दरअसल भारत की पुलिस अब संगणक युग में प्रवेश कर गयी है. बहुत से अपराधों और अपराधियों के रिकार्डों का भी संगणकीकरण किया गया. मध्यप्रदेश के मुख्य सचिव **एस. सी. वर्मा** ने आदिम जातियों और ग़ैरआदिम जाति समाज के बीच व्याप्त समस्या के प्रश्न को रखते हुए कहा कि क्या इस क्षेत्र में पुलिस अपनी भूमिका सही ढंग से निभा रही है. मध्यप्रदेश में आदिम जातियों का बोलबाला है. उन की समस्याओं से निपटने के लिए एक अलग तरह के रवैये की आवश्यकता होती है. अपराध, अपराधशास्त्र और अपराध क़ानून के बारे में पाँच आलेख प्रस्तुत किये गये. इस बात पर भी ज़ोर दिया गया कि किसी तरह के बाहरी हस्तक्षेप को तरजीह न देते हुए पुलिस को क़ानून के अनुसार निष्पक्ष और बेधड़क हो अपने कार्य को न्यायपूर्ण ढंग से करना चाहिए. यद्यपि पुलिस राज्य का विषय है लेकिन आज जो उस की भूमिका है वह राष्ट्रव्यापी हो गयी है. इस सम्मेलन में सार्वजनिक हिंसा और पुलिस की भूमिका पर भी विचार हुआ तथा इस बात पर भी विचार हुआ कि पुलिस के कार्यों में सामुदायिक योगदान कैसे किया जाये. मध्यप्रदेश के माननीय न्यायाधीश **शिवदयाल श्रीवास्तव** ने अपने समापन भाषण में कहा कि 20 सूत्री सामाजिक-आर्थिक कार्यक्रम के अंतर्गत कार्य करते हुए पुलिस को अपनी गरिमा और आत्मसम्मान बनाये रखना चाहिए. इस से पूर्व पुलिस अनुसंधान विभाग के निदेशक **वेनुगोपाल राव** ने अपने आलेख में कहा कि इस सम्मेलन के विचारार्थ चार मुख्य क्षेत्र हैं—पुलिस संगठन और प्रशासन, अपराध और अपराध क़ानून, विज्ञान और टैक्नोलॉजी तथा पुलिस के सामुदायिक उत्तरादायित्व. ये चारों विषय अलग अलग होते हुए भी एक दूसरे से संबंधित हैं. लिहाज़ा आपस में तालमेल बनाये रखना बहुत ज़रूरी है.

इंदिरा उद्यान : जिस प्रकार प्रधानमंत्री के 20 सूत्री कार्यक्रम के अंतर्गत पुलिस के कार्यक्षेत्र की व्याख्या की गयी, वैसे ही प्रधानमंत्री के 20 सूत्री आर्थिक कार्यक्रम की स्मृति को स्थायी रूप प्रदान करने की दिशा में इंदौर की 'इंदिरा प्रियदर्शनी' गृहनिर्माण सरकारी संस्था द्वारा एक अनूठा क़दम उठाया गया. इंदौर से पांच किलोमीटर दूर विदुरनगर की भूमि पर इंदिरा उद्यान का निर्माण किया गया जिस में 20 सूत्री कार्यक्रम के प्रतीक स्वरूप 20 द्वार बनाये गये हैं. प्रत्येक द्वार पर आर्थिक कार्यक्रम का एक एक सूत्र अंकित है. इस उद्यान का उद्घाटन पिछले दिनों मध्यप्रदेश के वनमंत्री मथुराप्रसाद दुबे ने किया. इस अवसर पर प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की 58वीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में उस उद्यान में 58 वृक्षों का रोपण किया गया.
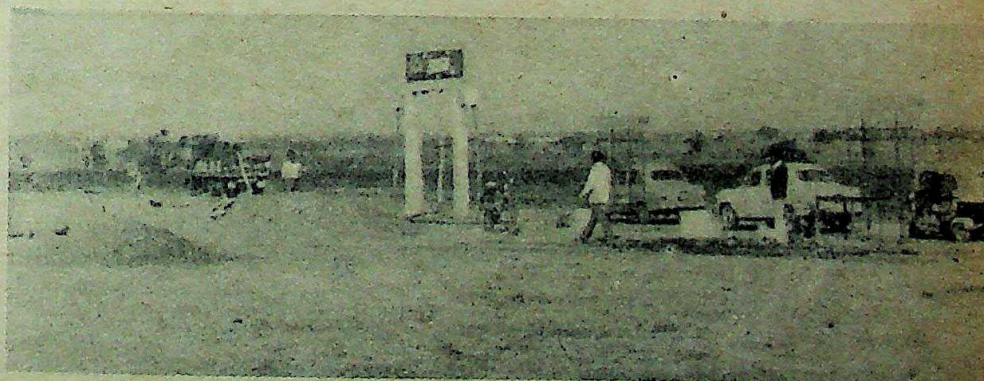
इंदिरा उद्यान का एक द्वार

माना शिविर : संपन्न बस्ती

त्रिलोक दीप

रायपुर से 12 किलोमीटर दूर एक बहुत बड़ा शिविर स्थित है—माना शिविर समूह. उस में पहले पाँच शिविर थे—माना, माना-भाटा, बड़ौदा-भाटा, कुरुद और नवागाँव. नवागाँव और कुरुद शिविर बंद कर दिये गये हैं. यहाँ के लोगों को विभिन्न राज्यों में ले जा कर बसाया गया है. इन शिविरों में रहने वाले लोगों की गतिविधियों की चर्चा तब भी सुनने को मिली जब पिछले दिनों मैं छत्तीसगढ़ के दौरे पर था. रायपुर में एक के बाद एक दो तीन चोरियाँ हुईं. छीना झपटी की घटनाएँ भी हुईं तो लोगों के मुँह से निकला—लगता है कि माना शिविर के लोग पुनः सक्रिय हो गये हैं.

माना शिविर की गतिविधियों का जायज़ा लेने के लिए जब इस लंबे चौड़े शिविर में पहुँचा तो पाया कि रायपुर के साथ होते हुए भी यह शिविर उस से अलग है. यह पूरी बस्ती है जो हर तरह से संपन्न है. माना जाने वाली मुख्य सड़क पर बंगला और हिंदी में लिखे हुए जो पट दिखायी देते हैं उन्हीं से यह पता चलता है कि यह शिविर अधिक दूर नहीं. माना शिविर मुख्य सड़क से तीन किलोमीटर हट कर है. उस सड़क पर कुछ युवक और छोटे बच्चे घूमते हुए नज़र आ जायेंगे—निठल्ले. थोड़ी दूर आगे जाने पर कुछ बैरकनुमा दफ्तर दिखायी देते हैं जहाँ पर ज़्यादातर लोग बंगला हावभाव के मिलेंगे.

लगभग 15 किलोमीटर में फैले इस शिविर की देखरेख का काम सैनिक और असैनिक मिल कर करते हैं. कमांडेंट (प्रशासन) **मोहन लाल गुप्त** ने एक विशेष भेंट में बताया कि माना शिविरों के इस समूह की स्थापना 1964 में हुई थी ताकि तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान के विस्थापितों को यहाँ बसाया जा सके. 1964 के दंगों के बाद यहाँ पर बड़ी तादाद में विस्थापित आये थे. जब इन शिविरों में आने वाले लोगों की संख्या निरंतर बढ़ती गयी तो माना शिविर के साथ साथ अन्य शिविर भी खोले गये. 1971 में बंगलादेश आंदोलन के समय भी बहुत बड़ी संख्या में यहाँ लोग आये थे. लेकिन बंगलादेश की स्थापना हो जाने के बाद 1971 में आये विस्थापितों को वापस भेज दिया गया. इस समय माना शिविर में जो परिवार हैं वे 1964 और उस के बाद आये परिवार हैं. ऐसे परिवारों की इस समय संख्या 10 हज़ार 758 है. 1 अप्रैल 1975 से 1 नवंबर 1975 तक साढ़े चार हज़ार परिवारों को अन्य स्थानों पर ले जा कर बसाया गया ताकि इस शिविर की भीड़ को कम किया जा सके. इन लोगों को मुख्यतया तवा नामक स्थान पर ले जाया गया, जहाँ उन्हें उन की योग्यता के अनुसार काम दिया जा सके. वैसे मध्यप्रदेश के अन्य शहरों के अलावा उत्तरप्रदेश, आंध्रप्रदेश, कर्नाटक और महाराष्ट्र में भी इन शिविरों से लोगों को ले जा कर बसाया जायेगा. इस समय माना शिविरों में जो लोग रहते हैं उन में केवल 8 प्रतिशत ऐसे लोग हैं जो 1970 से पहले आये थे. 92 प्रतिशत लोग 1970 के बाद आने वाले हैं. लेकिन 1971 के बंगलादेश आंदोलन के समय आने वाले 35 हज़ार 146 परिवारों में से कोई भी परिवार यहाँ अब नहीं है. 1970 से पूर्व आने वाले 80 प्रतिशत—1193 में से 1129 —परिवार गैरकृषि परिवार हैं. इन में से 546 परिवारों को उन परिवारों में शामिल कर लिया गया है जिन्हें स्थायी परिवारों की श्रेणी में रखा जाता है. अन्य गैरकृषि परिवारों में 234 दुकानदार हैं और 349 ऐसे परिवार हैं जो कि नौकरी-पेशा हैं.

हम बंजारे: श्री गुप्त ने बताया कि ज़्यादातर लोग खुलना, फरीदपुर आदि ज़िलों से आये हैं. इन लोगों का संबंध बंजारा कबीलों से जोड़ा जाता है. उन्होंने यह भी बताया कि ये लोग काम से जी चुराते हैं. बहुत से लोग रोज़गार कार्यालय में जा कर अपने नाम तक कटा आते हैं. ये लोग कठिन काम से भी घबराते हैं. या तो बाबूगीरी करना पसंद करते हैं या मछली पालना. बहुत से लोग सुंदरवन जाने के इच्छुक हैं. इस का कारण यह है कि एक तो वहाँ समान भाषी लोग मिल जायेंगे और दूसरे मछली पकड़ने की खुली छुट्टी होगी. लेकिन पश्चिम बंगाल की सरकार जो अपनी ही समस्याओं से जूझ रही है माना शिविर के लोगों को स्वीकार करने में अपनी असमर्थता व्यक्त कर रही है. श्री गुप्त ने बताया कि यहाँ के निवासियों को उन की रुचि और योग्यता के अनुसार सभी तरह की सुविधाएँ दी जाती हैं. पढ़ाई-लिखाई की पूरी सुविधा है. बावजूद इस के ये लोग—ज़्यादातर युवक—काम करने से जी चुराते हैं. एक वक़्त तो ऐसा भी आया जब इन लोगों ने माना शिविर के अधिकारियों के लिए अच्छी खासी समस्या खड़ी कर दी. मार्च 1973 में यहाँ के कुछ युवकों ने उदवस्तु उन्नयनशील समिति जिसे यहाँ के लोग यू. यू. एस. के नाम से पुकारते हैं का गठन किया. उन्होंने अपने घोषणापत्र में कहा कि यह समिति विस्थापितों की सहायता करना चाहती है और प्रति परिवार से उन्होंने 1-1 रुपया इकट्ठा किया. उस समय यहाँ पर 30-35 हज़ार परिवार थे. लिहाज़ा 30-35 हज़ार रुपये इकट्ठे हो गये. रुपया इकट्ठे होने से धाँधलियाँ शुरू हुईं और बहुत से आवांछित तत्त्व भी समिति में घुस आये. इन आवांछित तत्त्वों के उकसाने पर माना शिविर के प्रशासकों पर दबाव डाला गया. उन का घेराव किया गया और उन से विस्थापितों को अन्य स्थानों पर भेजे जाने के फ़ैसले को स्थगित करने की नीति त्यागने को कहा गया. 15 से 30 साल की आयु के लगभग एक हज़ार कार्यकर्त्ता इकट्ठे हो गये. इस समिति के लोग नहीं चाहते थे कि कोई और गुट यहाँ पनपे. दूसरे वे सरकारी नीतियों की आलोचना करते थे और नारे लगाते थे कि शिविर छोड़ कर नहीं जायेंगे. अगर जायेंगे तो सुंदरवन ही जायेंगे. ये लोगों को हर तरह से डराने धमकाने का काम करते थे. जो लोग इन का विरोध करते थे उन की वे पिटाई भी कर देते थे. माना शिविर के अधिकारियों को भी इन की हिंसक कार्रवाइयों का शिकार होना पड़ा. इन लोगों के पास ईंट-पत्थर, सब्बल,
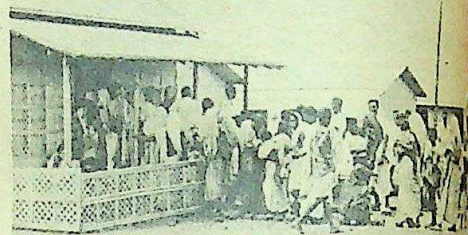
सभी मर्ज़ों का इलाज

साइकिल चैन, दराँती जैसे नुकीले हथियार होते थे. पहले प्रहार का दौर मार्च से मई 74 तक रहा, दूसरा अगस्त-सितंबर 74 और तीसरा मई-जून 75 तक रहा. 22 जून '75 के बाद कोई घटना नहीं घटी. इस समिति के दो प्रमुख व्यक्ति सतीश मंडल और रंगलाल गोल्दार को हिसरात में ले लिया गया तब से यहाँ शांति है.

श्री गुप्त का मानना है कि इन तथाकथित नेताओं के बहकावे में आ कर कुछ लोग चोरी छिपे सुंदरबन की ओर भागे भी. काफ़ी बड़ी संख्या में उन लोगों को वहाँ घुसने नहीं दिया गया. जो लोग पहुँचने में समर्थ हुए भी उन्हें उस तरह की कोई सुविधा देखने या भोगने को नहीं मिली जिस तरह का आश्वासन सतीश मंडल तथा उन के साथी दिया करते थे. इन असुविधाओं के कारण लोगों का विश्वास सतीश मंडल पर से हटने लगा. जब उन्होंने 22 जून को सारे शिविर को सुंदरबन ले जाने का आव्हान किया और उन की इस आलोचना को न केवल नाकामयाब कर दिया बल्कि समिति के 100 सक्रिय कार्यकर्त्ताओं को पकड़ लिया गया तो उदवस्तु उन्नयनशील समिति की लगता है रीढ़ ही टूट गयी. तब से ले कर शिविर में शांति है और लोग अपने आप को खासा संतुष्ट पाते हैं. कृषि के मौसम में शिविर के बहुत से लोग रायपुर और आसपास जा कर रोज़ी रोटी कमाते हैं. कुछ लोग घरेलू नौकरों का काम भी करते हैं. जो लोग पहले पढ़ाई-

माना से विदाई : नये स्थायी ठौर की ओर

लिखाई से मुँह चुराते थे वे पढ़ने भी लगे हैं.

माना शिविर के कुछ छोटे बड़े लोगों से बातचीत भी हुई. **लालचंद्र दास** ने बताया कि वह 1964 में यहाँ आया था. माँ खेत में काम करती है, कपड़े और किताबें उन्हें स्कूल से मिल जाती हैं **शांति मंडल** 1970 में इस शिविर में आयी. उसे 60 रुपये माहवार अनुदान मिलता है और 7 किलो चावल. लड़का पढ़ता है और खुद काम करती है. **हरिहरशाह पोद्दार** 1964 से यहाँ इस लिए आये कि वहाँ मारकाट का माहौल था. उन
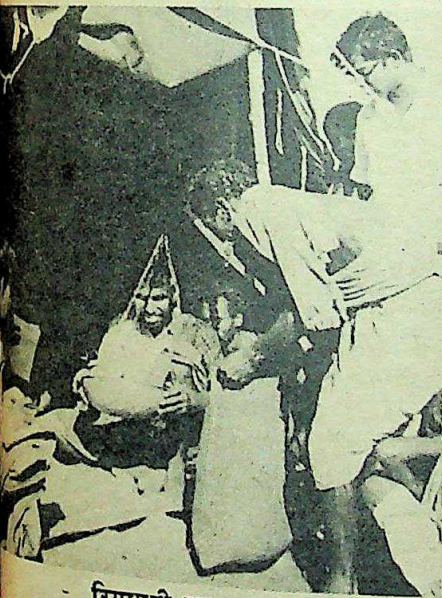
रियायती दर पर राशन

के परिवार के नौ सदस्य हैं. सरकार से उन्हें 140 रुपये माहवार अनुदान मिलता है. उन के बच्चे काम करते हैं. जब उन से पूछा गया कि अब जब बंगलादेश स्वाधीन हो गया है तो क्या वे वापस लौटना चाहते हैं. इस के उत्तर में उन्होंने न में सिर हिला दिया. उन के दिमाग़ में आज भी पुराने दृश्य कौंध जाते हैं. **कमलचंद्र सिन्हा** 1964 में फरीदपुर से आये थे. वह यहाँ के औद्योगिक संस्थान में काम सीख रहे हैं. माध्यमिक शिक्षा पास कर चुके हैं. आशा करते हैं कि शेष छह महीने का प्रशिक्षण पूर्ण हो जाने के बाद उन्हें अच्छी नौकरी मिल जायेगी. उन्होंने यह भी कहा कि सतीश मंडल के झांसे में आ कर वह भी सुंदरबन भाग गये थे लेकिन वह कलकत्ता से ही लौट आये. उन्हें बताया गया कि आगे जाना ख़तरे से खाली नहीं. **अरुति रानीपाल** 64 में ढाका से यहाँ आयी. वह आठवीं कक्षा में पढ़ती है. उस ने बताया कि जो अनुदान उन्हें मिलता है वह पूरा नहीं पड़ता. लिहाज़ा पेट भरने के लिए उन्हें और भी काम करना पड़ता है.

माना शिविर में एक बहुत बड़ा बाज़ार है, जहाँ हर तरह की चीज़ें मिलती हैं. यह भी बताया गया कि सस्ते भाव से यहाँ के लोगों को जो अनाज दिया जाता है बहुत से लोग उसे बढ़े हुए भाव पर बेच देते हैं. जब **मोहनलाल गुप्त** से पूछा गया कि क्या इस पर रोक नहीं लग सकती तो उन का उत्तर था कि अनाज अनाज ही होता है. पूछने पर लोग यही कहेंगे कि उन लोगों ने दूरदराज़ से धान ले कर चावल तैयार किया है. इस शिविर में रहने वाले बहुत से लोग अपनी कापियाँ-किताबें भी ज़्यादा दामों पर बेच देते हैं जो उन्हें स्कूल से मुफ्त मिलती हैं.

सहायताकार्य : जो परिवार माना शिविर में आये उन के पुनर्वास के लिए सरकार ने उचित व्यवस्था की है. परिवार के आकार के अनुसार प्रत्येक परिवार को 35 रुपये से ले कर 140 रुपये तक प्रतिमाह अनुदान दिया जाता है. यह अनुदान तीन किश्तों में दिया जाता है. 35 रुपये पाने वाले को यह रकम 10, 10 और 15 रुपये में दी जाती है जब कि 12 सदस्यों वाले परिवार को 140 रुपये 35, 40 और 65 रुपये की किश्तों में दिये जाते हैं. इस नकदी अनुदान के अलावा माना शिविर में रहने वाले लोगों को कम कीमत पर राशन दिया जाता है. रहने के लिए मुफ्त आवास की व्यवस्था है. इस के अलावा स्त्री, पुरुषों और बच्चों के लिए मुफ्त कपड़े, चिकित्सा तथा शिक्षा की भी व्यवस्था है. निवासस्थान दो तरह के हैं—एक में उन लोगों को रखा गया है जिन्हें स्थायी तौर पर यहाँ रखा जाना है. इस तरह के परिवारों को पी. एल. कहते हैं. इस का मतलब यह है कि ऐसे परिवार जिस में केवल औरतें ही होती हैं, बालिग पुरुष सदस्य नहीं होते. इस में वे लोग भी आते हैं जिस में कोई पुरुष सदस्य नहीं होता. इस परिवार को एक कमरे का मकान दिया जाता है जिस पर टीन की चादरें होती हैं. कमरों में बिजली नहीं है, लेकिन सड़कों पर बिजली की व्यवस्था है. इन मकानों की दीवारें पक्की हैं. अन्य परिवारों को जो मकान दिया जाता है उन की दीवारें बाँस की बनी होती हैं और छत्तें सीमेंट की शीट की. इन परिवारों को 400 ग्राम प्रति यूनिट प्रतिदिन के हिसाब से राशन दिया जाता है. राशन, चावल और गेहूँ या चावल या गेहूँ या दोनों हो सकते हैं. 8 साल और उस के ऊपर के बच्चे को पूरी यूनिट माना जाता है. यहाँ चावल 57 पैसे प्रति किलो और गेहूँ 51 पैसे प्रति किलो दिया जाता है. पुरुषों को हर साल दो जोड़ी तथा स्त्रियों को तीन जोड़ी कपड़े दिये जाते हैं. जब ये लोग माना शिविर में आये तो इन लोगों को मुफ्त बर्त्तन और लालटेनें भी दी गयीं. साथ ही कंबल और रजाइयाँ भी प्रत्येक परिवार को दी जाती हैं.

लोगों की देखभाल और शिक्षा के लिए 19 प्राथमिक स्कूल, दो माध्यमिक स्कूल और तीन मिडिल स्कूल हैं. प्राथमिक स्कूल में शिक्षा का माध्यम बंगला है लेकिन मिडिल और माध्यमिक स्कूल में हिंदी. किताबें, कापियाँ तथा पढ़ाई का अन्य सामान मुफ्त दिया जाता है. यदि ऊँची पढ़ाई के लिए छात्रों को होस्टल में रखना हो तो उस की भी व्यवस्था सरकार करती है. माना में इस समय दो अस्पताल हैं—एक 100 बिस्तर वाला और दूसरा 50 बिस्तर वाला. इस के अलावा 6 दवाखानें हैं. यहाँ के मरीज़ों के इलाज के लिए 17 प्रशिक्षित डॉक्टर भी हैं. सफ़ाई और स्वच्छता बनाये रखने के लिए भी इस शिविर में पूरा प्रबंध है. लगभग 200 सफ़ाई कर्मचारी और 40 सार्वजनिक स्वास्थ्य कर्मचारी हैं. यही वजह है कि ज्यों ही माना शिविर में कोई व्यक्ति प्रवेश करता है तो उसे यहाँ रायपुर से अधिक सफ़ाई दीखती है. यहाँ यह भी प्रचारित है कि जब पिछले दिनों रायपुर निवासी चेचक और हैजे से बुरी तरह ग्रस्त थे तो माना शिविर में इस तरह का कोई भी मामला सामने नहीं आया.

प्रशिक्षण केंद्र : केवल यही नहीं, माना शिविर में रहने वाले लोगों को प्रशिक्षित करने के लिए औद्योगिक प्रशिक्षण केंद्र, मेकेनिक और ड्राइवर प्रशिक्षण केंद्र तथा नर्सों के प्रशिक्षण केंद्र की व्यवस्था है. माना स्थित औद्योगिक प्रशिक्षण संस्था को राज्य की एक सर्वोत्तम प्रशिक्षण संस्था माना जाता है. यहाँ 13 क्षेत्रों में प्रशिक्षण दिया जाता है. आई. टी. आई. में 364 स्थान हैं. मेकेनिक और ड्राइवरी की शिक्षा के लिए 250 स्थान हैं. होस्टल में रहने वाले प्रशिक्षार्थियों को 83.50 रुपये

ओंकारप्रसाद दुबे : नया विश्वास

प्रतिमास मिलते हैं जब कि नर्सों का प्रशिक्षण लेने वाली लड़कियों को 90 रुपये प्रतिमास वज़ीफ़ा दिया जाता है. औद्योगिक केंद्र और बाँस से बनने वाली वस्तुओं के भी केंद्र हैं. यहाँ भी लोगों को प्रशिक्षित किया जाता है. इस के अलावा यहाँ के लोगों को यह पूरी छूट है कि वे जहाँ चाहें काम करें. जब तक उन्हें स्थायी तौर पर कोई रोज़गार नहीं मिलता तब तक उन का अनुदान चलता रहता है. स्थायी रोज़गार मिलने पर अनुदान बंद हो जाता है. लोगों को नौकरी दिलाने के लिए विशेष रोज़गार कार्यालय स्थापित किये गये हैं. सरकारी, अर्द्धसरकारी और ग़ैरसरकारी संस्थाओं के साथ इस रोज़गार कार्यालय का संबंध है. यदि किसी व्यक्ति को साक्षात्कार के लिए बाहर जाना होता है तो उसे आने जाने का द्वितीय श्रेणी का किराया और यात्रा भत्ता दिया जाता है. इस बात की पूरी व्यवस्था है कि यहाँ रहने वाले लोगों को पूरी तरह से स्वावलंबी बनाया जाये ताकि वे अनुदान पर ही अपना जीवन व्यतीत न करें.

रायपुर की स्थिति : माना शिविर और रायपुर का बड़ा घनिष्ठ संबंध है. माना शिविर रायपुर में ही आता है. इस लिए माना शिविर की हर गतिविधि का रायपुर पर प्रभाव पड़ता है और रायपुर में घटने वाली हर घटना का माना में रहने वाले लोग बारीकी से अवलोकन करते हैं. एक तो माना शिविर से नज़दीकी और दूसरे भिलाई इस्पात संयंत्र से क़रीबी के कारण रायपुर का दायित्व बहुत बढ़ गया है. रायपुर की आबादी भी दिनों दिन बढ़ती जा रही है. यही वजह है कि अगस्त 1967 में रायपुर की नगरपालिका का दर्जा बढ़ा कर नगर निगम का कर दिया गया. नगर निगम के लिए तब से चुनाव नहीं हुए. वहाँ के कार्यों को चलाने का काम प्रशासक बनाम आयुक्त करता है. रायपुर के वर्तमान प्रशासक और भूतपूर्व पत्रकार 37-वर्षीय **ओंकारप्रसाद दुबे** ने बताया कि रायपुर की एक विशेष स्थिति हो गयी है. इस लिए जब तक सतर्क नहीं रहा जायेगा तब तक इस की प्रगति नहीं हो सकती. उन्होंने बताया कि एक वक़्त था कि रायपुर में चुंगी की चोरी बड़े पैमाने पर हुआ करती थी.

जून 1971 में श्री दुबे ने अपने पद का कार्यभार सँभाला. उन का पहला निशाना चुंगी की चोरी पर रोक लगाना था. इस काम के लिए उन्होंने उड़न दस्ता की भी व्यवस्था की. लोगों को यह बता दिया कि वे चुंगी का भुगतान नियमानुसार करें. कर की चोरी करने वालों को किसी तरह से माफ़ नहीं किया जायेगा. उस के बाद उन्होंने कुछ गोदामों पर छापा मारा जिन लोगों के पास चुंगी अदा किये गये माल से अधिक माल निकला उन पर न केवल भारी जुर्माना ही किया गया बल्कि ऐसे लोगों के नाम अख़बारों में भी प्रकाशित किये गये. इस क़दम का माकूल असर यह हुआ कि न केवल लोग चुंगी कर ही अदा करने लगे बल्कि ऐसे करों की अदायगियाँ भी हुईं जो पिछले कई सालों से अदा नहीं किये गये थे. नगर निगम का क्षेत्रफल भी 7.7 वर्गमील से बढ़ कर 58.23 वर्गमील हो गया. इस से नगर निगम के अधीन बहुत से ऐसे गोदाम भी आ गये जो पहले रायपुर की हदबंदी में नहीं थे. लिहाज़ा व्यापारियों से सलाह मशविरा हुआ और उन्हें सलाह दी गयी कि कर चोरी की घटनाएँ जो बढ़ी हैं उन पर रोक लगाने में वह उन की मदद करें. श्री दुबे मानते हैं कि उन्हें व्यापारियों से पूर्ण सहयोग मिला. लेकिन उन आवांछित गुटों की ज़रूर कमर टूटी है जो चोरी छिपे माल ला कर अन्य दुकानों से सस्ता बेचते थे. रायपुर की दो प्रमुख चुंगियों भंगपुरी और खारुन में अचानक जा कर जाँच की जाती है. स्वयं प्रशासक कई बार चुंगियों पर पहुँच जाते हैं और स्वयं कुछ पैकेट उठा कर देखते हैं कि उन में घोषित माल से अधिक माल तो नहीं है. यदि उस में अधिक माल होता है तो तुरंत जुर्माना किया जाता है. जुर्माना न दिये जाने पर माल ज़ब्त हो जाता है. इस सख़्ती का असर यह हुआ है कि जहाँ 1970-71 में निगम की आमदनी 60 लाख थी वहाँ वह एक करोड़ से अधिक हो गयी है. प्रशासक को आशा है कि 1975-76 तक यह आमदनी डेढ़ करोड़ रुपये से अधिक हो जायेगी.

इस आमदनी के बढ़ने से कर्मचारियों को बढ़ी हुई दरों पर महँगाई भत्ता दिया गया है. स्कूल की इमारतें बनायी गयी हैं, सार्वजनिक शौचालयों का निर्माण हुआ है, सड़कें चौड़ी हुई हैं, सफ़ाई अभियान तेज़ हुआ है और लोगों में इस तरह की भावना पैदा हो रही है कि जो काम पहले सालों साल नहीं हुआ करता था अब वह शीघ्र हो सकता है. नगर निगम के प्रति लोगों का विश्वास भी बढ़ा है.

मोलक्कस द्वीपसमूह : षड्यंत्र तो नहीं?

मोलक्कस द्वीपसमूह से बहुत दूर हॉलैंड के एम्स्टर्डम नगर में गत 4 दिसंबर को घटी एक घटना ने इस द्वीपसमूह को चर्चा का विषय बना दिया. उस दिन अपरान्ह में दक्षिण मोलक्कस के निवासी तीन (दूसरे समाचार सूत्र के अनुसार छह) सशस्त्र आंतकवादी एम्स्टर्डम स्थित इंडोनेसियाई वाणिज्य-दूतावास में घुस गये. उन्होंने गोलियाँ चलायीं, जिस से आतंकित हो कर दूतावास के कर्मचारी बाहर की ओर भाग निकले. एक व्यक्ति घायल भी हो गया. आंतकवादियों ने वाणिज्य दूतावास पर अधिकार कर के आठ बच्चों समेत 27 लोगों को बंधक बना लिया. बाद के दिनों में उन्होंने बच्चों को दो किस्तों में छोड़ दिया. 9 दिसंबर को एक अन्य कर्मचारी को भी रिहा कर दिया गया. रिहा होने वाले काका दातुक वाणिज्य दूतावास के विद्यालय के प्रधानाचार्य हैं. उस दिन उन का 35वाँ जन्मदिन था.

इस घटना से दो दिन पहले अन्य पाँच आतंकवादियों ने पूर्वोत्तर हॉलैंड के एक अन्य नगर बीलेन में एक रेलगाड़ी का अपहरण कर के 31 यात्रियों को बंधक बना लिया था. ये सभी आतंकवादी दक्षिण मोलक्कस को स्वाधीन करने की माँग कर रहे हैं. इन दोनों घटनाओं में अब तक चार व्यक्ति आतंकवादियों की नृशंसता के शिकार हो चुके हैं. यह सूचना हालैंड सरकार के प्रवक्ता ने 9 दिसंबर को दी. आतंकवादी बंधकों की रिहाई के बदले में हॉलैंड सरकार से एक हवाई जहाज़ की माँग भी कर रहे हैं ताकि वे हॉलैंड से सकुशल बाहर जा सकें.

आतंकवादियों की इन कार्रवाइयों पर हेग स्थित इंडोनेसियाई दूतावास के प्रवक्ता ने

कहा कि हालैंड में रहने वाले इंदोनेसियाई लोगों की सुरक्षा का पूरा दायित्व हालैंड सरकार पर है. दूतावास बंधकों की रिहाई के लिए आतंकवादियों से कोई सौदेबाजी नहीं करेगा. किंतु आपसदारी के सिद्धांत के अनुसार यथासंभव सहयोग करेगा.

वाणिज्य दूतावास के कर्मचारियों के बंधक बनाये जाने के अगले ही दिन से समस्या के समाधान के लिए बातचीत शुरू हो गयी और आतंकवादियों के अनुरोध पर दक्षिण मोलक्कस के एक मंत्री समोल मतियारी मध्यस्थता के लिए एम्स्टर्डम पहुँचे और 5 दिसंबर को वाणिज्य दूतावास में आतंकवादियों से मिले. हालैंड में कोई 40,000 दक्षिण मोलक्कस निवासी रहते हैं. उन के कई नेताओं ने भी आतंकवादियों से संपर्क किया. किंतु इन पंक्तियों के लिखे जाने तक मामला अधर में ही लटका हुआ था और अभी 50 व्यक्ति आतंकवादियों के बंधन में हैं जिन्हें वे यातना भी दे रहे हैं. उधर इंदोनेसिया सरकार ने आतंकवादियों की कार्रवाई के प्रति आक्रोश व्यक्त करते हुए हालैंड सरकार के साथ यकर्त्ता में चल रही व्यापारवार्त्ता स्थगित कर दी है.

फिलिस्तीनी छापामारों की आतंकवादी गतिविधियों के बाद दक्षिण मोलक्कस के आतंकवादियों की यह कार्रवाई इस लिए और भी चर्चा का विषय बनी कि फिलीस्तीनियों की कार्रवाइयों के पीछे एक न्यायोचित कारण है जब कि इन आतंकवादियों की स्थिति भिन्न है. मोलक्कस द्वीपसमूह इंदोनेसिया का एक प्रदेश बनाता है और दक्षिण मोलक्कस द्वीपसमूह में इंदोनेसिया से अलग होने की माँग को ले कर कोई आंदोलन भी नहीं चल रहा है. प्रायः सभी नवस्वाधीन देशों को पृथकतावादी आंदोलनों का सामना करना पड़ रहा है. किंतु मोलक्कस द्वीपसमूह को ले कर इंदोनेसिया के सामने ऐसी कोई समस्या नहीं है. फिर भी दूर विदेश में रहने वाले दक्षिण मोलक्कस के कुछ लोगों ने स्वाधीनता की माँग बुलंद की है तो उस के पीछे कोई कारण होना चाहिए.

आतंकवादियों ने एक माँग यह भी की है कि हालैंड की जेलों में बंद सभी आतंकवादियों को तत्काल रिहा कर दिया जाये. इस माँग से यह पता तो चलता ही है कि हालैंड में दक्षिण मोलक्कस के आतंकवादियों का कोई संगठित समूह काफी पहले से सक्रिय है और हालैंड सरकार उन के विरुद्ध समय समय पर कार्रवाई करती रही है. इन आतंकवादियों की पीठ पर कौन है, यह स्पष्ट होने पर ही सारी स्थिति का कोई बिंब सामने आ सकेगा.

गर्म मसाले के द्वीप : मोलक्कस द्वीपसमूह के अंतर्गत व्यापकता की दृष्टि से मलय द्वीपपुंज के प्रायः सभी द्वीप आ जाते हैं. हालाँकि चर्चित मोलक्कस द्वीपसमूह का तात्पर्य उन द्वीपों से है जो इंदोनेसिया का अंग बने हुए हैं. मोलक्कस द्वीपसमूह को मसालों का द्वीपसमूह भी कहा जाता था. पश्चिम में सिलिबेस, पूर्व में न्यूगिनी, दक्षिण में तिमोर और उत्तर में खुले प्रशांत महासागर के बीच स्थित मोलक्कस द्वीपसमूह के अंतर्गत आने वाले सभी द्वीपों का क्षेत्रफल लगभग 35,000 वर्ग मील है. इन द्वीपों को छह अलग अलग द्वीपसमूहों में बाँटा गया है. ये हैं—1.वास्तविक मोलक्कस या तरनेत द्वीपसमूह. इस वर्ग में हल्महेरा सब से बड़ा द्वीप है. 2. बटयान (बचियान) और ओबी द्वीपसमूह; 3. अंबोइना द्वीपसमूह जिस में सेराम और बोयरो सब से विशाल द्वीप हैं; 4. बांडा द्वीपसमूह; 5. दक्षिण पूर्वी द्वीपसमूह जिस में तानिमबार, बबर इत्यादि द्वीप शामिल हैं; 6. काई और आरू द्वीपसमूह. मोलक्कस द्वीपसमूह इंदोनेसिया का एक प्रदेश है, ठीक दूसरे इंदोनेसियाई प्रदेशों की तरह. पहले यहाँ का शासन गवर्नर चलाता था जिस का मुख्यालय अंबोइना में था.

सुमात्रा और जावा द्वीपों में ज्वालामुखियों की जो लंबी श्रृंखला बिखरी हुई है पूर्व में उस का विस्तार मोलक्कस द्वीपसमूह तक हुआ है. तेरनेत और बांडा इस भूभाग के दो विशाल सक्रिय ज्वालामुखी हैं. ज्वालामुखियों के अलावा भूकंप भी इस द्वीपसमूह के लिए सुपरिचित हैं. प्रायः यहाँ भूकंप आते रहते हैं. इस द्वीपसमूह में चूना पत्थर, खड़िया मिट्टी जैसे खनिज भी उपलब्ध होते हैं. सेराम द्वीप में तेल भंडार भी हैं. अधिसंख्य द्वीप चट्टानी और सघन वनों वाले हैं. तानिमबार और आरू द्वीप इस के अपवाद हैं. ये द्वीप समतल और दलदली हैं. जलवायु प्रायः स्वास्थ्यवर्द्धक है. वर्षा 50 से 100 इंच तक वार्षिक होती है.

मोलक्कस द्वीपसमूह में वहाँ के मूलनिवासियों के अतिरिक्त जावा, मलयेसिया, पुर्तगाल और हॉलैंड के लोग भी बड़ी संख्या में हैं. इस द्वीपसमूह में बहुसंख्य लोग इस्लाम धर्म के अनुयायी हैं. अंबोइना में अवश्य ईसाई धर्मावलंबियों का बोलबाला है. यहाँ के निवासियों का मुख्य खाद्य साबूदाना है और मुख्य व्यवसाय शिकार तथा मछली पकड़ना. अधिकांश ग्रामीण क्षेत्र हैं, लेकिन प्रत्येक द्वीपवर्ग में कम से कम एक व्यापार केंद्र है.

समय सरकने के साथ साथ लोगों की व्यवसाय रुचि भी बदल रही है. सदाबहार वनों को काट कर कृषि योग्य भूमि तैयार की गयी है.

रिहा इंदोनेसियाई बच्चे : आतंक के क्षणों को याद

बंधक इंदोनेसियाई स्त्री

वनों में पाये जाने वाले वृक्षों में चंदन का वृक्ष मूल्यवान हैं. साबूदाना प्रायः दलदली इलाक़ों में पैदा होता है. उस की विधिवत् खेती भी की जाती है. खोपरा, धान मक्का. पीपर और फल अन्य प्रमुख उत्पादन हैं.

इस द्वीपसमूह पर सब से पहले 1494 की तोर्देसिलास संधि के अंतर्गत स्पेन ने अपना दावा जताया, किंतु 1528 में पुर्तगालियों ने उन्हें पछाड़ दिया. 17वीं शताब्दी के आरंभ तक मोलक्कस द्वीप समूह पर पुर्तगाल का प्रभुत्व रहा. फिर वहाँ हालैंड के लोग पहुँचे. किंतु उस समय उत्तरी मोलक्कस में तेरनेत के सुल्तान का दबदबा काफ़ी बढ़ा हुआ था और उसे परास्त करना हॉलैंड के लिए कठिन काम था. अतः हॉलैंड ने दक्षिण मोलक्कस में विशेषकर अंबोइना और बांडा द्वीपों में अपनी शक्ति केंद्रित की. (इसी भाग के निवासी हॉलैंड में बड़ी संख्या में हैं और उन में से ही कुछ आतंकवादी बने हुए हैं.) 1667 में हॉलैंड सरकार और तेरनेत के सुल्तान के बीच एक संधि हुई जिस के अंतर्गत उत्तरी मोलक्कस के द्वार हॉलैंड के लिए खुल गये. इस संधि से हॉलैंड ने व्यापक लाभ उठाया. 1685 में हॉलैंड ने सुल्तान के साथ हुए सभी अनुबंध अवैध घोषित कर के उत्तरी मोलक्कस और न्यूगिनी पर अपना प्रशासन थोप दिया. द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान जनवरी-फरवरी 1942 में जापान ने इस द्वीपसमूह पर अधिकार कर लिया. 1949 में जब मोलक्कस द्वीपसमूह की प्रभुसत्ता इंदोनेसिया को सौंपी गयी तो अंबोइना के नेता सोयेमेकिल ने इंदोनेसिया का प्रभुत्व स्वीकार करने से इनकार कर दिया. 24 अप्रैल, 1950 को अंबोइना में इंदोनेसिया के विरुद्ध विद्रोह हुआ और स्वाधीन दक्षिण मोलक्कस गणराज्य अस्तित्व में आया. किंतु इंदोनेसिया ने शीघ्र ही इस विद्रोह को कुचल दिया. तब से सारे मोलक्कस द्वीपसमूह पर इंदोनेसिया की प्रभुसत्ता है.

रोडेसिया

बातचीत का नया नाटक

प्रधानमंत्री इयान स्मिथ ने हालाँकि अफ्रीकी राष्ट्रीय परिषद् के नेता श्री जोशुआ न्कोमो से बातचीत करने का सुझाव स्वीकार कर लिया है लेकिन सिद्धांत रूप में उन्होंने रोडेसिया के लिए बहुमत शासन स्वीकार नहीं किया. शायद यही कारण है कि अन्य अफ्रीकी राष्ट्रीय नेता इयान स्मिथ के साथ किसी भी तरह की बातचीत को उपयुक्त नहीं मानते. लगता है कि इयान स्मिथ श्री न्कोमो को संवैधानिक प्रगति के बारे में अस्पष्ट आश्वासन देंगे. जिस से कि गोरों के प्रभुत्व को और अधिक सुदृढ़ बनाने के लिए उन्हें समय मिल सके. तांजानिया के राष्ट्रपति जूलियस न्येरेरे, श्री न्कोमो को पहले ही चेतावनी दे चुके हैं कि बातचीत के लिए इयान स्मिथ की सहमति को वह अधिक महत्त्व न दें. तांजानिया के राष्ट्रपति का तो शुरू से ही यह विचार रहा है कि रोडेसिया में अफ्रीकी बहुमत शासन स्थापित करने का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए छापामार लड़ाई के सिवाय और कोई चारा नहीं है. क्योंकि श्री इयान स्मिथ अपनी सरकार कायम रखने के लिए अब सशस्त्र सेनाओं का सहारा लेने लगे हैं और अफ्रीकी बहुमत शासन की माँग को दबाने के लिए उन्होंने दमन के अनेक तरीक़े अपना लिये हैं.

श्री इयान स्मिथ और अफ्रीकी राष्ट्रीय आंदोलन के एक पक्ष का प्रतिनिधित्व करने वाले श्री न्कोमो ने आपस में बातचीत करने के लिए एक समझौते पर दस्तखत किये हैं. लेकिन अन्य अफ्रीकी राष्ट्रीय नेताओं को संदेह है कि इस बातचीत का कोई अनुकूल परिणाम निकलेगा. समझौते पर दस्तखत करने की रस्म तो बड़ी धूमधाम से हुई और दोनों ही नेताओं ने इस बात पर संतोष व्यक्त किया कि समझौते की शर्तों में बातचीत की शुरुआत करने का अनुरोध किया गया है और उस के साथ ही साथ प्रस्तावित संविधान के हर पक्ष के अध्ययन के लिए एक उपसमिति बनाने का भी फ़ैसला किया गया है. समझौते पर विधिवत् हस्ताक्षर होने से पहले श्री इयान स्मिथ और न्कोमो के बीच चार बार बातचीत हुई. समझौते पर दस्तखत होने के बाद सरकारी सूत्रों ने इन समाचारों को ग़लत बताया कि श्री इयान स्मिथ ने श्री न्कोमो की यह माँग स्वीकार कर ली है कि संवैधानिक वार्त्ता में अन्य अफ्रीकी राष्ट्रीय नेताओं को आने की अनुमति दी जाये.

बहुमत शासन का प्रस्ताव : संयुक्तराष्ट्र महासभा ने अभी पिछले महीने ब्रितानी समर्थन से पहली बार अपना यह प्रस्ताव दोहराया कि बहुमत अफ्रीकी शासन का सिद्धांत मान लेने पर ही रोडेसिया की स्वतंत्रता के लिए बातचीत होनी चाहिए. प्रस्ताव में यह कहा गया है कि अफ्रीकी राष्ट्रीय परिषद् से बातचीत किये बिना रोडेसिया की समस्या का कोई समाधान नहीं निकल सकता क्योंकि यही संस्था रोडेसिया की जनता का प्रतिनिधित्व करती है. महासभा का ब्रिटेन से यह भी अनुरोध है कि रोडेसिया में श्री इयान स्मिथ की ग़ैर कानूनी सरकार को किसी भी हालत में और कभी भी ब्रिटेन से मान्यता नहीं मिलनी चाहिए. संयुक्तराष्ट्र महासभा ने अफ्रीकी जनता की स्वाधीनता की माँग का पूरा पूरा समर्थन किया और अफ्रीकी राष्ट्रीय परिषद् से कहा कि वह स्वाधीनता के लिए अपना आंदोलन जारी रखे.

सशस्त्र संघर्ष की आशंका : रोडेसिया में इयान स्मिथ की सरकार के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष की चेतावनी तांजानिया के राष्ट्रपति श्री न्येरेरे पहले भी दे चुके हैं. अभी पिछले महीने ब्रिटेन की अपनी यात्रा के दौरान उन्होंने फिर यह कहा कि रोडेसिया में सशस्त्र संघर्ष की आशंका है और वहाँ के प्रधानमंत्री इयान स्मिथ, इस आशंका को पूरी तरह जानते हैं. वैसे अफ्रीकी राष्ट्रीय परिषद् के नेता श्री न्कोमो के साथ प्रस्तावित बातचीत की सफलता की मैं कामना करता हूँ. पर मेरा यह पक्का विश्वास है कि बातचीत से रोडेसिया में कोई परिवर्तन आने वाला नहीं है क्योंकि श्री इयान स्मिथ वास्तव में कोई परिवर्तन नहीं चाहते.

जोशुआ न्कोमो : अस्पष्ट आश्वासन

उधर रोडेसिया में श्री इयान स्मिथ का दमनचक्र ज़ोरों पर है. छापामार लड़ाई की आशंका को देखते हुए सरकार ने राष्ट्रवादी अफ्रीकियों की गिरफ़्तारी बड़े पैमाने पर शुरू कर दी है. कुछ समाचारों के अनुसार छापामार लड़ाई में प्रशिक्षण के लिए अफ्रीकी युवकों को भर्ती किया जा रहा है. इस आरोप में एक प्रसिद्ध राष्ट्रवादी अफ्रीकी नेता को 15 साल तक सख्त कैद की सज़ा दी गयी है. अफ्रीकी राष्ट्रीय नेताओं के साथ प्रस्तावित बातचीत के संदर्भ में श्री इयान स्मिथ की सरकार ने लंदन में प्रकाशित इन खबरों को बिल्कुल गलत बताया है कि बहुमत शासन की स्थापना के सिद्धांत को स्वीकार करने के आधार पर यह बातचीत हो रही है. स्पष्ट है कि श्री इयान स्मिथ ने अफ्रीकी बहुमत के शासन का सिद्धांत न तो स्वीकार किया है और न उन्होंने कोई ऐसा संकेत भी दिया कि आगे चल कर वह इस सिद्धांत को स्वीकार कर लेंगे.

दक्षिणी अफ्रीकी समाचारपत्रों ने अभी पिछले दिनों इस आशय के समाचार प्रकाशित किये थे कि अफ्रीकी नेताओं से प्रस्तावित बातचीत के बाद श्री इयान स्मिथ अपने पद से त्यागपत्र दे कर राजनीति से अलग हो जायेंगे. इन खबरों के अनुसार श्री इयान स्मिथ 57 वर्ष की अवस्था में गोरी सरकार को बनाये रखने के विरुद्ध बढ़ते हुए दबाव को बर्दाश्त नहीं कर पा रहे हैं. विश्व लोकमत के साथ साथ उन के अपने साथी गोरों का प्रभुत्व बनाये रखने की उन की नीति का विरोध करने लगे हैं. बताया जाता है कि बातचीत सफल हो या न हो रोडेसिया की समस्या का कोई समाधान निकले या न निकले श्री इयान स्मिथ राजनीति से अलग होने का फ़ैसला कर चुके हैं. श्री इयान स्मिथ ने अपने शासन के दौरान रोडेसिया के कुछ कबाइली नेताओं को अपने साथ रखने की पूरी पूरी कोशिश की. लेकिन इस में उन्हें कोई सफलता नहीं मिली. अफ्रीकी जनता में गोरों के प्रभुत्व से मुक्त होने की आकांक्षा गाँवों, और यहाँ तक कि कबाइली क्षेत्रों में भी दिखायी पड़ती है. ऐसी स्थिति में श्री इयान स्मिथ की सरकार का बहुत अधिक समय तक टिके रहना मुश्किल ही नज़र आता है.

वैसे तो अफ्रीकी राष्ट्रीय परिषद् के अधिकांश नेता अफ्रीकी बहुमत शासन से कम किसी माँग पर सहमत होने वाले नहीं हैं लेकिन हो सकता है कि प्रस्तावित बातचीत में बहुमत शासन स्थापित करने की प्रक्रिया पर कहीं कुछ सहमति हो जाये, और अफ्रीकी नेता यह बात स्वीकार कर लें कि सत्ता हस्तांतरण धीरे-धीरे होना चाहिए. लेकिन अंततः रोडेसिया में गोरी सरकार का पतन तो होना ही है और बहुमत शासन की स्थापना प्रायः निश्चित है. अंगोला इस का एक स्पष्ट उदाहरण है. यह बात ठीक है कि उपनिवेशवाद के संदर्भ में अंगोला और रोडेसिया की स्थिति समान नहीं है. लेकिन उपनिवेशवाद से मुक्ति के लिए संघर्ष सभी जगह सफल होते दिखायी पड़ते हैं. कुछ क्षेत्रों का ख्याल है कि अंगोला की घटनाओं के बाद ही श्री इयान स्मिथ अफ्रीकी राष्ट्रीय परिषद् के नेता श्री न्कोमो के साथ बातचीत करने पर सहमत हुए हैं. अफ्रीका में गोरी जातियों की अल्पसंख्यक सरकारें बनाये रखने के लिए दक्षिण अफ्रीका और रोडेसिया के बीच गठबंधन ज़रूर हुआ है लेकिन संयुक्तराष्ट्र के जातिभेद विरोधी प्रस्तावों के संदर्भ में दक्षिण अफ्रीका और रोडेसिया जैसी सरकारें अधिक समय तक टिकी नहीं रह सकतीं. आज इन दोनों ही देशों के अफ्रीकी लोग अपनी स्वतंत्रता के लिए पहले से कहीं अधिक संगठित हैं और वे अपनी मुक्ति के लिए हिंसा का सहारा लेने को भी तैयार हैं. यदि श्री इयान स्मिथ अफ्रीकी बहुमत के शासन का सिद्धांत स्वीकार नहीं करते तो अफ्रीकी राष्ट्रीय नेताओं से उन की कोई भी बातचीत उपयोगी नहीं हो सकती.

तिमोर

दो पाटों के बीच

तिमोर के प्रश्न को ले कर न्यूयॉर्क के संयुक्तराष्ट्र मुख्य कार्यालय में पिछले कई दिनों से तेज़ राजनैतिक सरगर्मियाँ देखने में आ रही है. सुरक्षा परिषद् ने इस प्रश्न पर अपनी बैठक पिछले सप्ताह एकाएक स्थगित कर दी और सदस्यों ने आपसी विचारविमर्श का फ़ैसला किया. अब पता चला है कि वामपंथी फ्रेटिलिन आंदोलन (पूर्वी तिमोर की एकतरफ़ा आज़ादी की घोषणा 28 नवंबर को इसी संस्था की ओर से की गयी थी) का एक प्रतिनिधि न्यूयॉर्क पहुँच गया है और संभवतः वह सुरक्षा परिषद् की बैठक में भाग लेना चाहता है. उधर फ्रेटिलिन विरोधी प्रतिनिधि पहले से ही न्यूयॉर्क में हैं. उन्हें भी आशा है कि सुरक्षा परिषद् की बैठक में बोलने का अवसर उन्हें भी मिलेगा. लेकिन राजनैतिक सूत्रों के अनुसार सुरक्षा परिषद् में दोनों में से किसी को बोलने का अवसर मिलने की संभावना ही नहीं है. इधर पुर्तगाली और उधर इंदोनेसियाई प्रतिनिधि ही तिमोर के प्रश्न पर सुरक्षा परिषद् में भाषण करने वाले हैं. मलयेसिया को परिषद् में बोलने के लिए आमंत्रित किया गया है. ख्याल किया है कि मलयेसिया संयुक्तराष्ट्र से प्रार्थना करेगा कि तिमोर में रहने वाले लोगों के आत्मनिर्णय के अधिकार का प्रयोग करने की संभावनाओं का पता लगाने के उद्देश्य से संयुक्तराष्ट्र मिशन वहाँ भेजा जाये.

इंदोनेसी कार्रवाई की निंदा : संयुक्तराष्ट्र महासभा तिमोर में इंदोनेसिया के सैनिक हस्तक्षेप की निंदा का प्रस्ताव पहले ही पास कर चुकी है. प्रस्ताव में इंदोनेसिया से अपनी सेनाएँ तिमोर से तुरंत वापस बुलाने की माँग की गयी है. इस से पहले संयुक्तराष्ट्र संरक्षण समिति ने भी इसी आशय का एक प्रस्ताव पास किया था. लेकिन संयुक्तराष्ट्र स्थिति इंदोनेसी प्रतिनिधि ने महासभा के प्रस्ताव को मानने से इनकार कर दिया. उन का कहना था कि महासभा का प्रस्ताव तिमोर की वास्तविक स्थिति के संदर्भ में बिल्कुल बेतुका है. इंदोनेसी प्रतिनिधि के अनुसार तिमोर में पुर्तगाली अधिकारियों की उदासीनता को रोकने के लिए ही इंदोनेसिया ने सैनिक हस्तक्षेप किया है. उधर यकर्ता में इंदोनेसिया के विदेशमंत्री डॉ. आदम मलिक ने संवाददाताओं से कहा कि संयुक्तराष्ट्र संरक्षण समिति का प्रस्ताव मानने के लिए इंदोनेसिया बिल्कुल भी बाध्य नहीं है. उन के अनुसार पूर्वी तिमोर में इंदोनेसिया की कोई सेना नहीं है. पूर्वी तिमोर के लोग यदि स्वयंसेवकों की सहायता चाहते हैं तो वहाँ की स्थिति को देखते हुए यह स्वाभाविक ही है.
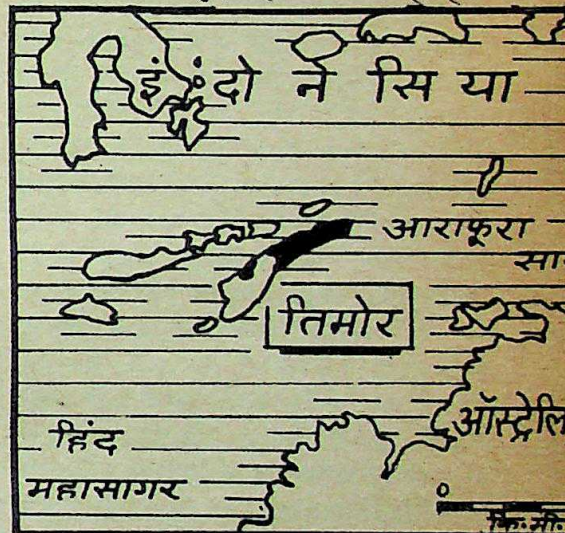
डॉ. मलिक का यह भी कहना था कि मैं नहीं समझता कि फ्रेटिलिन के बचेखुचे सैनिक कोई लंबे समय की छापामार लड़ाई चलायेंगे. उन्होंने बताया है कि स्थिति का अध्ययन करने के लिए वह स्वयं पूर्वी तिमोर की राजधानी **डिली** जायेंगे. उन्होंने स्वयंसेवकों की उपस्थिति से इनकार नहीं किया है. कहा है कि स्वयंसेवक कब वहाँ से वापस आयेंगे ? यह उन का अपना एक मामला है.

फ्रेटिलिन रेडियो के अनुसार तिमोर में इंदोनेसी विमानों का भी इस्तेमाल किया गया है. इस के बारे में इंदोनेसी विदेशमंत्री ने कहा कि कुछ विमान स्वयंसेवकों द्वारा वहाँ ले जाये गये हैं. उन्होंने बताया कि कोई भी व्यक्ति किराया दे कर विमान हाङकाङ या मनीला ले जा सकता है. स्पष्ट है कि तिमोर की लड़ाई में विमानों का उपयोग हुआ है. डॉ. मलिक के अनुसार फ्रेटिलिन सेनाएँ हज़ारों की संख्या में तिमोर में मौजूद हैं.

संयुक्तराष्ट्र संरक्षण समिति में दिलचस्प बहस : तिमोर के प्रश्न को ले कर इस से पहले

संयुक्तराष्ट्र संरक्षण समिति में बहुत ही दिलचस्प बहस हुई. इंदोनेसिया के सैनिक हस्तक्षेप की कड़ी आलोचना हो रही थी. इंदोनेसी कार्रवाई की निंदा और वहाँ से सेनाएँ हटाने का प्रस्ताव 11 के मुकाबले 69 मतों से पास हुआ. 38 देशों ने मतदान में भाग नहीं लिया. भारत, ईरान, मलयेसिया, साउदी अरब, फिलीपीन और थाईदेश प्रस्ताव का विरोध करने वाले देशों में थे. समर्थकों में पाकिस्तान, बंगलादेश, भूटान, नेपाल, श्रीलंका, चीन, कुछ अफ्रीकी देश और कुछ पूर्व यूरोपीय देश थे. मतदान से स्पष्ट पता चलता था कि इस प्रश्न पर इस्लामी देशों का गुट बँटा हुआ है. कुछ मुस्लिम देशों ने ही इंदोनेसिया का समर्थन किया. भारत, ईरान, साउदी अरब, मलयेसिया तथा दो अन्य देशों ने बिल्कुल ही नया प्रस्ताव लाने की कोशिश की. जब उन्होंने देखा कि संयुक्तराष्ट्र संरक्षण समिति से उन के प्रस्ताव को समर्थन नहीं मिल रहा है तो उन्होंने इसे वापस ले लिया है. भारतीय प्रतिनिधि श्री रिखी जयपाल ने कहा कि न तो पुर्तगाल और न इंदोनेसिया से हमारा कोई मतलब है हम तो केवल इतना चाहते हैं कि तिमोर प्रदेश में दोनों में से एक को कोई नुकसान पहुँचाये बिना ऐसी स्थिति पैदा हो जाये जिस से संयुक्तराष्ट्र वहाँ अपना मिशन भेज कर सही सही बातों का पता लगा सके. इंदोनेसिया की निंदा करना ही काफी नहीं है. जहाँतक भारत की जानकारी है इंदोनेसिया तिमोर से अपनी सेनाएँ हटाने में आनाकानी नहीं करेगा. शर्त यही है कि स्थिति सामान्य होने में मदद मिले. चीनी प्रतिनिधि ने इंदोनेसिया की कार्रवाई को आक्रमण की संज्ञा दी. उस का कहना था कि आक्रमण मान कर ही इंदोनेसी कार्रवाई की निंदा की जानी चाहिए.

तिमोर पिछले काफ़ी समय से लड़ाई का केंद्र बना हुआ है. इस पुर्तगाली उपनिवेश को ले कर इंदोनेसिया और पुर्तगाल के बीच युद्ध जैसी स्थिति उत्पन्न हो गयी है. उधर तिमोर में इंदोनेसी समर्थक लोगों ने तिमोर के एक इंदोनेसियाई हिस्से में इंदोनेसिया का झंडा लहरा दिया था. तिमोर में कुछ क्षेत्रों के लोग इंदोनेसिया के साथ विलय के पक्ष में हैं. पिछले दिनों इंदोनेसी समर्थक सेनाओं ने तिमोर के एक पुर्तगाली बंदरगाह पर अधिकार कर लिया था. उधर वामपंथी फ्रेटिलिन संस्था इंदोनेसियाई सेनाओं का मुकाबला कर रही है. कुछ राजनैतिक सूत्रों के अनुसार फ्रेटिलिन को उत्तरी आस्ट्रेलिया के एक शहर डार्विन से सहायता प्राप्त हो रही है. पूर्वी तिमोर की राजधानी दिली पर कब्जा करने के लिए फ्रेटिलिन और इंदोनेसियाई सेनाओं में जम कर लड़ाई हुई. दिली का काफ़ी बड़ा हिस्सा इंदोनेसियाई सेनाओं के कब्जे में चला गया. लेकिन फ्रेटिलिन का दावा है कि दो तिहाई हिस्सा अभी भी उन के कब्जे में हैं, जिस पर अधिकार करने के लिए इंदोनेसी विमानों और जहाजों का इस्तेमाल किया जा रहा है. वैसे तिमोर के पूरी तरह इंदोनेसिया के कब्जे में आने के समाचार मिल चुके थे. इंदोनेसियाई समाचार एजेंसी का दावा है कि पुर्तगाली पूर्वी तिमोर पूरी तरह इंदोनेसी समर्थक सेनाओं के कब्जे में है. फ्रेटिलिन के बहुत से लोग इंदोनेसी-समर्थकों से आ मिले हैं. हालाँकि फ्रेटिलिन के लोग छापामार लड़ाई की तैयारी कर रहे हैं लेकिन बहुत जल्दी ही उन की इस तरह की कोई योजना सफल नहीं हो सकती. फिर भौगोलिक स्थिति भी ऐसी नहीं है कि वहाँ छापामार जैसी लड़ाई की कार्रवाइयाँ सफल हो सकें. इंदोनेसिया ने तिमोर में अपनी समूची सैनिक कार्रवाइयों की जिम्मेदारी पुर्तगालियों पर डाल दी है. इंदोनेसिया का कहना है कि पुर्तगाली अधिकारियों ने इस प्रदेश के मामले में इस तरह की लापरवाही बरती है जिस का नुकसान आम जनता को

डॉ. आदम मलिक : 'स्वयंसेवक तो हैं . . .'

उठाना पड़ा है. संयुक्तराष्ट्र संरक्षण समिति में इंदोनेसियाई प्रतिनिधि ने इतना अधिक फ्रेटिलिन पार्टी को नहीं जितना कि पुर्तगाली अधिकारियों को खतरनाक स्थिति के लिए दोषी ठहराया है. वैसे इंदोनेसिया ने अपना यह विचार व्यक्त किया है कि तिमोर के लोग पुर्तगाल के साथ रहना चाहते हैं या इंदोनेसिया में मिलना चाहते हैं ? इस का निर्णय लेने की स्वतंत्रता उन्हें दी जानी चाहिए. इतना ही नहीं इस उपनिवेश में ऐसी स्थिति उत्पन्न की जानी चाहिए जिस से कि लोग स्वतंत्रता पूर्वक अपने आत्मनिर्णय के अधिकार का उपयोग कर सकें.

पिछले कुछ महीनों से तिमोर में जो कुछ हो रहा है उसे देखते हुए इंदोनेसिया के सैनिक हस्तक्षेप को आश्चर्यजनक घटना नहीं माना जा सकता. फ्रेटिलिन पार्टी ने पिछले महीने पूर्वी तिमोर में जब एकतरफ़ा आज़ादी की घोषणा की थी तो इंदोनेसिया के सैनिक हस्तक्षेप की संभावना काफ़ी बढ़ गयी थी. तिमोर के प्रश्न को ले कर पुर्तगाल और इंदोनेसिया के बीच काफ़ी समय से बातचीत भी चल रही थी. इस बातचीत के दौरान ही वामपंथी संस्था फ्रेटिलिन ने तिमोर की आजादी के मामले में उग्र रवैया अपना लिया. तिमोर में गृहयुद्ध के दौरान ही इंदोनेसियाई सेनाओं को सतर्क कर दिया गया था. इंदोनेसिया ने यह स्पष्ट कर दिया था कि वह तिमोर में कम्युनिस्ट शासन कभी बर्दाश्त नहीं करेगा. इस पुर्तगाली उपनिवेश पर इंदोनेसिया अपना दावा काफ़ी समय से पेश करता आ रहा है. संबद्ध पक्षों में से किसी ने भी इंदोनेसिया के इस दावे को चुनौती नहीं दी. आस्ट्रेलिया और मलयेसिया दोनों ने यही विचार व्यक्त किया है कि तिमोर के लोगों के इंदोनेसिया में मिलने की प्रक्रिया को सुगम बनाने के लिए पुर्तगाली अधिकारियों की सहायता की जानी चाहिए. तिमोर का पश्चिम का आधे से भी अधिक हिस्सा इंदोनेसिया का ही एक अंग है. अब केवल तिमोर के पूर्वी हिस्से का प्रश्न रह जाता है जिसे फ्रेटिलिन ने आजाद घोषित कर दिया है. तिमोर की स्थिति की तुलना इसी प्रकार के अन्य उपनिवेशों से नहीं की जा सकती. तिमोर पर से पुर्तगाल का नियंत्रण धीरे धीरे हट गया है. पुर्तगाल इस द्वीप का शासन चलाने में समर्थ भी नहीं है. ऐसी स्थिति में वामपंथी संस्था फ्रेटिलिन द्वारा तिमोर में जो आंदोलन किया जा रहा है उस की तरफ़ से इंदोनेसिया उदासीन भी नहीं रह सकता. अब प्रश्न रह जाता है संयुक्तराष्ट्र की सहायता से तिमोर की समस्या का समाधान. लेकिन इस के लिए स्थिति को सामान्य बनाना जरूरी है. जब तक समूचा तिमोर गृहयुद्ध की मुसीबत से मुक्त नहीं होता तब तक न तो वहाँ की जनता आत्मनिर्णय के अपने अधिकार का उपयोग कर सकती है और न संयुक्तराष्ट्र ही समस्या के समाधान में सहायक हो सकता है.

पूर्वी तिमोर में प्राकृतिक साधन काफ़ी हैं. वहाँ कॉफ़ी, चंदन की लकड़ी, रबड़ तथा अन्य ऐसी चीजें बहुत मात्रा में होती हैं जिन से विदेशी मुद्रा कमाई जा सकती है. पश्चिमी तिमोर में स्थिति थोड़ी भिन्न है. वहाँ भूमि को कटाव से बचाने की समस्या बहुत अधिक है. इंदोनेसिया के अंतर्गत इस क्षेत्र ने कुछ प्रगति की है. लेकिन गृहयुद्ध की स्थिति के कारण इस प्रगति का लाभ आम जनता को नहीं पहुँचता. तिमोर लगभग पिछले 400 वर्षों से विदेशी उपनिवेश रहा है. यदि अब भी यह उपनिवेश ही रहे भले ही यूरोप के बजाय एशिया का हो, तो इस क्षेत्र के लोगों की वास्तविक प्रगति किस प्रकार हो सकेगी ? प्रश्न तो यह है कि तिमोर द्वीप एक लोकतांत्रिक स्वतंत्र प्रदेश बन कर अपने प्राकृतिक साधनों का लाभ उठाते हुए खुशहाल देश बने. आशा करनी चाहिए कि संयुक्तराष्ट्र के प्रयत्नों से तिमोर की समस्या वहाँ की जनता के हित को ध्यान में रखते हुए ही हल की जायेगी.

स्पेन

'ख़तरे और दिक्कतें'

स्पेन में अब इस बात को प्रचार मिल रहा है कि देश का शासन **शाह कारलोस** या प्रधानमंत्री के हाथ न हो कर पुलिस तथा उस के मददगार घोर दक्षिणपंथियों के हाथ में है. शाह कारलोस के सत्ता में आने के बाद बनी पहली सरकार ने 14 दिसंबर को जब बाकायदा अपना कार्यभार सँभाला, तो प्रधानमंत्री **कारलोस आरीयास नाबारो** ने आने वाले समय को ख़तरों और दिक्कतों से भरा बताया. आरीयास ने यह भी कहा कि उन की सरकार जनता को स्वतंत्रता दिलाने की दिशा में काम करेगी ताकि कोई तानाशाही रुझान जनता के सच्चे व्यक्तित्व को नष्ट न कर सके.

आरीयास नाबारो की सरकार का शपथ-ग्रहण समारोह शाह कारलोस के सारसुऐला महल में हुआ. 37-वर्षीय शाह हुआन कारलोस, जो तीन सप्ताह पहले ही फ्रांको के उत्तराधिकारी के रूप में सत्ता में आये, समारोह में उपस्थित थे. नये मंत्रिमंडल ने फ़िलहाल अपनी आस्था फ्रांको के संविधान और राजनैतिक विचारधारा में ही प्रकट की है. शपथग्रहण समारोह में मंत्रिमंडल के उद्देश्यों की बाकायदा घोषणा नहीं की गयी. पुराने 19-सदस्यीय मंत्रिमंडल में से तीन के अलावा सभी मंत्रियों को हटा दिया गया है पर अभी भी नये मंत्रिमंडल में फ्रांको के कट्टर समर्थकों की कमी नहीं है. 67-वर्षीय आरीयास नाबारो जनरल फ्रांको के शासनकाल में दो वर्ष तक प्रधानमंत्री के पद पर काम कर चुके हैं. मंत्रिमंडल के अनेक नये सदस्यों ने वर्त्तमान संविधान में परिवर्त्तन की इच्छा प्रकट की है पर प्रधानमंत्री ने अपने वक्तव्य में इस पर कोई टिप्पणी नहीं की.

उधर नये विदेशमंत्री **होसे मारीआ दे आरीएल्सा** ने एक फ्रांसीसी अख़बार को दी गयी भेंटवार्त्ता में कहा कि स्पेन की वर्त्तमान राजनैतिक हालत को देखते हुए यह ज़रूरी हो जाता है कि समाजवादियों तथा क्रिश्चेन डेमोक्रेटों में शासन व्यवस्था में सुधार लाने के लक्ष्य से कोई समझौता हो जाये. "हमें एक राष्ट्रीय समझौते की ज़रूरत है, 10 वर्षों के समय का समझौता, जिस के अंतर्गत लोकतांत्रिक ढाँचे को बनाये रखने के लिए हिंसा के साधनों से दूर रहने की व्यवस्था हो. इस तरह से सभी ज़रूरी सुधारों को सारे देश का समर्थन मिल सकता है."

लेकिन आरीएल्सा यह भी मानते हैं कि फ़िलहाल इस तरह के किसी समझौते में कम्युनिस्टों को साथ लेने की ज़रूरत नहीं है. स्पेन की विदेशनीति पर टिप्पणी करते हुए आरीएल्सा ने कहा कि पहले हम पश्चिमी पड़ोसियों से संबंध मज़बूत करना चाहेंगे.
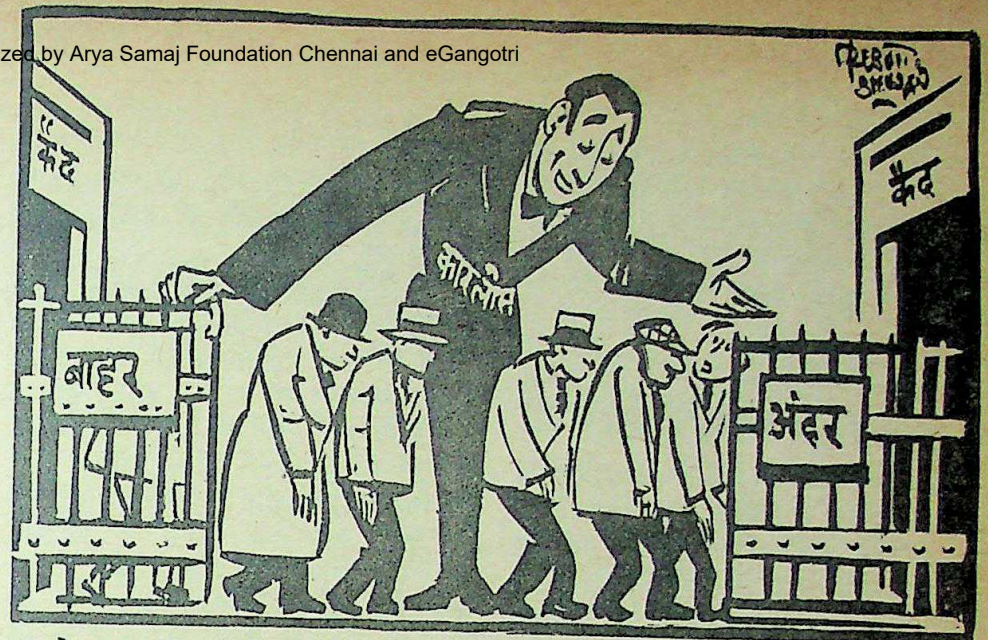
उस के बाद हम कम्युनिस्ट देशों की तरफ़ भी दोस्ती का हाथ बढ़ायेंगे.

उधर स्पेन के कम्युनिस्ट नेता, जो फ्रांको की तानाशाही सत्ता में पिछले 40 वर्षों से छिप कर काम कर रहे थे, अब यह कहने लगे हैं कि हम बरसों इंतज़ार नहीं कर सकते हैं. हाँ, कुछ हफ़्ते की बात हो तो इंतज़ार किया जा सकता है. 27 नवंबर को **'ल मांद'** के संवाददाता से बातचीत में स्पानी कम्युनिस्ट पार्टी के तीन नेताओं ने अपनी पार्टी के रुख को साफ़ किया. इन नेताओं की बातचीत से हमें स्पेन के कम्युनिस्टों की ताज़ा स्थिति की जानकारी मिलती है.

शाह कारलोस यह चाहते हैं कि कम्युनिस्ट फ़िलहाल एक ऐसी समझ का परिचय दें जिस से देश में उदारपंथी सुधार लाया जा सके. पर स्वयं कम्युनिस्ट नेता यह महसूस करते हैं कि शाह कारलोस में ऐसी योग्यताएँ नहीं हैं कि वह देश को सच्चे अर्थों में लोकतांत्रिक ढाँचा दे सकें. कम्युनिस्टों का यह भी मानना है कि कारलोस उन से जिस 'समझ' की माँग कर रहे हैं वह एकतरफ़ा है और फिर कारलोस अगर चाहें भी, तो भी सत्ता संतुलन को ठीक ठीक बिठाना उन के बस का नहीं है.

स्पेन में राजनैतिक बंदियों को माफ़ करने और छोड़ने की जो कोशिशें हुई हैं उन से फ़िलहाल स्थिति में कोई बड़ा परिवर्त्तन नहीं आ सकेगा. शुरू में कारलोस ने राजनैतिक बंदियों की माफ़ी से संबंधित जिन कागज़ों और दस्तावेज़ों को सामने रखा था उन में काफ़ी उदार रुख सामने आया था पर अनेक कट्टर फ्रांकोवादी नेताओं ने कारलोस पर दबाव डाला और कारलोस को उदार रुख छोड़ना पड़ा.

कम्युनिस्ट नेता यह भी मानते हैं कि फ्रांको के निधन का निश्चय ही बड़ा महत्व है पर वह काफ़ी नहीं है. सरकार के अनेक विरोधी तथा स्वयं सरकार के नरमपंथी राजनेता यह उम्मीद करते रहे हैं कि कारलोस शासन को उदार बनाने में सफल होंगे पर हमें (कम्युनिस्टों को) लगता है कि वे लोग भूल कर रहे हैं. ऐसा संभव नहीं है.

"अगर हुआन कारलोस सचमुच सत्ता को उदार बनाना चाहते हैं, तो तर्क यह कहता है कि उन्हें देश में ताकत का एक और केंद्र बनने देना चाहिए. पर वह केंद्र कहाँ होगा? वह होगा वामपंथ में, लोकतांत्रिक वामपंथ में. लेकिन लोकतंत्र का मतलब होगा **फ्रांको की सत्ता को तोड़ कर उस से अलग होना, उस का अनुकूलन करना नहीं.** हुआन कारलोस के पास जो कानूनी ताकतें हैं वे सत्ता को उदार बनाने के लिए नाकाफ़ी हैं जैसा कि एक कैथोलिक अखबार ने ठीक ही लिखा है, हुआन कारलोस विरासत में मिले कानून के कैदी हैं." कम्युनिस्ट नेता की यह टिप्पणी यह बात साफ़ कर देती है कि कारलोस को ले कर कम्युनिस्टों में इतना शक क्यों है.

स्पानी कम्युनिस्टों की फ़िलहाल यही योजना है कि अगर यह अस्पष्ट स्थिति बनी रहती है, तो हम शांतिपूर्ण कार्रवाई करेंगे. संघर्ष का पहला मुद्दा राजनैतिक बंदियों को आम माफ़ी दिलाना होगा. और यह एक ऐसा मुद्दा है जिस में कम्युनिस्टों को आम जनता की मदद मिलेगी और प्रबुद्ध वर्ग की भी. मिसाल के लिए 28 नवंबर को स्पेन के 26 प्रमुख नागरिकों ने प्रधानमंत्री को दिये गये एक ऐसे आवेदन पर हस्ताक्षर किये थे जिस में कुछ कम्युनिस्ट नेताओं को माफ़ करने के लिए अपील की गयी थी. और फिर माफ़ी अभियान को कैथोलिक चर्च का भी समर्थन प्राप्त है.

स्पानी कम्युनिस्ट इस बात को ले कर भी स्पष्ट हैं कि उन की हालत पुर्तगाली कम्युनिस्टों से भिन्न है. "स्पानी कम्युनिस्ट पार्टी लोकतांत्रिक तथा अनेकवादी व्यवस्था में विश्वास करती है."

इन दिनों स्पेन के वामपंथी तथा नरमपंथी रुझान रखने वाले समुदाय की बड़ी चिंता

यही है कि कहीं पुलिस से उन का खुला संघर्ष न शुरू हो जाये. इस बात का भय स्वाभाविक है क्यों कि पुलिस में फ़ासिस्ट अतिवादियों का ज़ोर चलने से इस तरह की मुठभेड़ की संभावना बढ़ गयी है. इस का नतीजा गृहयुद्ध भी हो सकता है. आज तो किसी भी वामपंथी प्रदर्शन को कुचलने के लिए पुलिस हमेशा तैयार दीखती है.

ऑस्ट्रेलिया-न्यूज़ीलैंड

अनुदारवादियों की वापसी

पहले न्यूज़ीलैंड और उस के बाद ऑस्ट्रेलिया के आम चुनावों में अनुदार नेशनल पार्टी की वैसे ही एक साथ वापसी हुई जैसे कि उन का एक साथ पतन हुआ था. न्यूज़ीलैंड में लेबर पार्टी फिर भी सम्मानित स्थान प्राप्त करने में सफल हुई लेकिन ऑस्ट्रेलिया में तो उस की लुटिया ही डुबो दी गयी. 13 दिसंबर को ऑस्ट्रेलिया के आम चुनावों में लिबरल-नेशनल कंट्री पार्टी के नेता 45 वर्षीय **माल्काम फ्रेज़र** को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ. लिहाज़ा 33 दिन पहले जिस नाटकीय ढंग से लेबर पार्टी के नेता गफ व्हिटलम की सरकार को बरखास्त कर गवर्नर जनरल कर ने अभूतपूर्व क़दम उठाया था उस से यह स्पष्ट हो गया कि जवर्नर जनरल का फ़ैसला तत्कालीन हालातों में वाजिब था. अब तक के चुनाव परिणामों के अनुसार 127 सदस्यीय प्रतिनिधिसभा में लिबरल नेशनल-कंट्री पार्टी को 90 स्थान और लेबर पार्टी को 33 स्थान मिले हैं. चार स्थानों से परिणाम अभी आने हैं. दिलचस्प बात यह है कि न तो लेबर पार्टी और न ही लिबरल-नेशनल कंट्री पार्टी ने ही सोचा था कि फ्रेज़र की यह जीत ऑस्ट्रेलिया के संसदीय लोकतंत्र के इतिहास में एक नयी मिसाल कायम करेगी. काफ़ी समय बाद यह पहला मौक़ा है जब किसी पार्टी को 45 स्थानों का बहुमत प्राप्त हुआ हो. उच्च सदन सेनेट के भी चुनाव निम्न सदन के साथ हुए थे. क्यों कि सेनेट के चुनाव अनुपाती प्रतिनिधित्त्व पद्धति के अनुसार होते हैं जो कि खासी पेचीदा पद्धति है लिहाज़ा

गफ व्हिटलम : भीड़ तो बहुत थी

उस सदन के चुनाव नतीजे मिलने में अभी वक़्त लगेगा. अनुमान है कि सेनेट के पूरे चुनाव परिणाम आने में लगभग एकमासलग जा येगा. राजनैतिक प्रेक्षकों का यह ज़रूर कयास है कि सेनेट में भी लिबरल पार्टी को स्पष्ट बहुमत प्राप्त होगा. कितना, इस पर तरह-तरह की अटकलें लग रही हैं.

नये नेता की तलाश : ऑस्ट्रेलिया के चुनाव परिणामों ने अटकलबाज़ियाँ करने वाले लोगों की सभी भविष्यवाणियाँ ग़लत क़रार दे दीं. व्हिटलम को सत्ता से हटाये जाने के बाद ऑस्ट्रेलिया भर में कई प्रकार की स्थितियाँ पैदा हुईं थीं. कई स्थानों पर क्रुद्ध भीड़ ने फ्रेज़र का विरोध किया और उन्हें भाषण तक नहीं देने दिया. कई अन्य स्थानों पर व्हिटलम समर्थक जुलूस निकाले गये और गवर्नर जनरल कर्र द्वारा व्हिटलम को बरखास्त करने पर रोष व्यक्त किया गया. इस बात के भी समाचार थे कि देश के मज़दूर संघों ने ऊपर से यद्यपि लेबर पार्टी के समर्थन में नारा दिया है लेकिन भीतर ही भीतर उन्हें व्हिटलम की नीतियाँ पसंद नहीं थीं. यही वजह थी कि जब चुनाव परिणाम आने शुरू हुए तो व्हिटलम से पहले अपनी पराजय की स्वीकृति मज़दूर संघ के अध्यक्ष बाब हॉक ने की. ऑस्ट्रेलिया की राजनीति में इस बात की भी चर्चा है कि 59 वर्षीय गफ व्हिटलम का स्थान 46 वर्षीय **बॉब हॉक** लेने वाले हैं.

पाँच मंत्री पराजित: 13 दिसंबर के दिन जब 82 लाख मतदाता मतदान केंद्रों पर पहुँच चुके थे तो राजनीतिज्ञों को यह गुमान नहीं था कि वे अपने मत का इस्तेमाल किस प्रकार करते हैं. इस का कारण व्हिटलम की बरखास्तगी और चुनाव के बीच के समय की अस्थिर स्थिति थी. यह स्थिति दोनों ही पार्टियों के लिए व्याकुलता का कारण बनी थी. मतदान की समाप्ति के बाद जब न्यू साऊथ वेल्स, विक्टोरिया, तस्मानिया और क्वींसलैंड की घनी आबादी वाले राज्यों से लिबरल-नेशनल पार्टी के पक्ष में परिणाम आने लगे तो चुनाव परिणामों का रवैया लगभग स्पष्ट हो गया था. पूर्वी राज्य व्हिटलम विरोधी राज्य रहे हैं लेकिन सिडनी और मेलबोर्न जो लेबर पार्टी समर्थक नगर माने जाते थे, वहाँ पर भी उन की पराजय से लेबर पार्टी की कमर टूट गयी. मतों की गणना ज्यों-ज्यों होती रही त्यों-त्यों एक के बाद एक नतीजा लेबर पार्टी के लिए गम का पैगाम लाता रहा. व्हिटलम मंत्रिमंडल के पाँच मंत्रियों को भी पराजय का मुँह देखना पड़ा. ये हैं एटारनी जनरल कैप एंडरवी, प्रतिरक्षा मंत्री विलियम मारिसन, आवास और निर्माण मंत्री जो रियोलडान, कृषिमंत्री डॉ. रैक्स पैटर्सन और एक अन्य मंत्री जो वोरिन्सन. इन के अलावा प्रतिनिधिसभा में लेबर पार्टी के अध्यक्ष गोर्डन शोज़ भी पराजित हुए.

माल्काम फ्रेज़र : ऐतिहासिक विजय

लेबर विरोधी लहर का असर इतना तीखा था कि सिडनी के जिस उपनगरीय निर्वाचन-क्षेत्र से व्हिटलम भारी बहुत से जीता करते थे उन का बहुमत 11 प्रतिशत गिर गया. इस चुनाव से यह सिद्ध हो गया कि फ्रेज़र ने अपने कार्यकारी प्रधानमंत्री के काल में लोगों को अपनी अर्थव्यवस्था संबंधी जो नीतियाँ दी थीं और व्हिटलम की जिन खामियों का उल्लेख किया था वे असरदार साबित हुईं. फ्रेज़र ने भारी बहुमत से चुनाव जीत जाने के बाद यह स्पष्ट कर दिया कि वह ऐसी कोई भी नीति नहीं अपनायेंगे जो कि देश के मज़दूरों के लिए नुकसानदेह साबित हो. 23 वर्ष पहले अनुदारवादी पार्टी की जिस प्रकार पराजय हुई थी उस की वर्त्तमान विजय बदलते हुए माहौल की प्रतीक मानी जाती है. प्रधानमंत्री फ्रेज़र ने कहा है कि इस भारी बहुमत से मेरी सरकार की ज़िम्मेदारी और बढ़ जाती है. फ्रेज़र की पत्नी तामा ने झूमते हुए कहा : मैं उस हर मतदाता का व्यक्तिगत तौर पर धन्यवाद करना चाहती हूँ जिस ने लिबरल पार्टी के पक्ष में मतदान किया है. बहरहाल, आने वाला समय यह बतायेगा कि नये युवा प्रधानमंत्री किस प्रकार अपनी नीतियों का प्रतिपादन करेंगे. उन के पास तीन साल का समय है. इतना ज़रूर हुआ है कि लिबरल पार्टी के भूतपूर्व प्रधानमंत्री गार्डन ने अपने राजनैतिक जीवन से संन्यास लेने का फ़ैसला किया है.

न्यूज़ीलैंड में भी : न्यूज़ीलैंड में 29 नवंबर को हुए चुनावों में भी अनुदारवादी नेशनल पार्टी ने लेबर पार्टी को पराजित कर दिया. न्यूज़ीलैंड में लेबर पार्टी की पराजय के बाद ऑस्ट्रेलिया में भी लेबर पार्टी की हार के कयास लगाये जाने लगे थे. यह माना जाता है कि दोनों देशों की राजनैतिक स्थितियों का प्रभाव एक दूसरे देश पर पड़ता है लेकिन न्यूज़ीलैंड में लेबर पार्टी का सितारा उस तरह से अस्त नहीं हुआ जिस तरह ऑस्ट्रेलिया में हुआ है. 87सदस्यीय निम्न सदन में नेशनल पार्टी को 53और लेबर पार्टी को 34 स्थान

मिले. न्यूज़ीलैंड के 54 वर्षीय प्रधानमंत्री रॉबर्ट मल्डून ने लोगों को विश्वास दिलाया है कि उनकी हर तरह की सुविधा का ध्यान रखा जायेगा. उन के मूल्यों की क़द्र की जायेगी. पराजित प्रधानमंत्री वेलेस राउलिंग ने मल्डून को बधाई देते हुए कहा है कि लेबर पार्टी की पराजय का यह मतलब नहीं कि वह अपने बुनियादी सिद्धांतों से हट जायेगी. हो सकता है कि उस के समाजवादी दृष्टिकोण में कुछ ख़ामियाँ आयी हों जो लोगों को नागवार गुज़री हैं. बहरहाल, राजनैतिक प्रेक्षकों ने लेबर पार्टी की हार के कारणों का जायज़ा लेते हुए कहा है कि लेबर पार्टी की सैलानी मंत्री श्रीमती व्हेट्टू तिरिकाटेने सुलीवान ने एक अख़बार के ख़िलाफ़ एक भेंटवार्त्ता के बारे में शिकायत की थी. इस पर न्यूज़ीलैंड प्रेस काउंसिल ने फ़ैसला दिया कि प्रधानमंत्री ने श्रीमती सुलीवान की ओर से जो बयान दिया वह भ्रामक था. संसद् में इस ग़लत बयानी पर ख़ासा हंगामा हुआ और लेबर पार्टी को भला बुरा कहा गया. दूसरा कारण न्यूज़ीलैंड के रग्बी खिलाड़ियों का आंदोलन था. लेबर पार्टी ने दक्षिण अफ्रीका की यात्राओं पर प्रतिबंध लगा दिया था. 1973 में आख़िरी बार दक्षिण अफ्रीका के खिलाड़ी न्यूज़ीलैंड खेलने के लिए आये थे. यहाँ के खिलाड़ियों को सरकार के प्रति रोष था. उन्होंने कहा था कि खेलकूद में सरकार को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए. लोगों को इस बात की भी शिकायतें थीं कि आनंदमार्गियों की गतिविधियों से भी आम लोग ख़ासे क्रुद्ध हैं. उन की आतंकवादी गतिविधियों के कारण चार व्यक्तियों को वेलिंगटन में बंद किया गया है.

विजय के न्यूज़ीलैंड के प्रधानमंत्री रॉबर्ट मल्डून अपने समर्थकों के साथ

संवैधानिक संशोधन

जैसी आशा थी 12 दिसंबर को नेपाल नरेश वीरेंद्र ने एक घोषणा में पंचायत संविधान में कुछ संशोधन किये हैं. यह संविधान उन के पिता स्व. महाराज महेंद्र ने देश में लागू किया था. इन संशोधनों की संख्या 50 से भी अधिक है.

इन में से सब से महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन हैं 'गाँव फ़र्क राष्ट्रीय अभियान' (गाँव लौटो अभियान) जिसे संवैधानिक मान्यता दी गयी है, जिस से राष्ट्रीय पंचायत के चुनाव का आधार विस्तृत हुआ है. कुछ अन्य परिवर्त्तनों के कारण कुछ राजनैतिक और प्रशासनिक परिवर्त्तन भी आवश्यक हो गये, क्यों कि धारा 82(1) के अनुसार इन्हें तत्काल लागू करना था और इस के लिए संशोधनों के साथ-साथ नरेश को 9 अध्यादेश जारी करने पड़े. 1962 के संविधान में यह दूसरा संशोधन था, जिस ने 1959 के संविधान का स्थान लिया था और जिस से संसदीय लोकतंत्र की नींव पड़ी थी. पंचायत संविधान का पहला संशोधन महाराजा महेंद्र द्वारा जनवरी 27, 1967 में लागू किया गया था.

गाँव फ़र्क अभियान को क़ानूनी दर्ज़ा दिया गया है जिस से देश की राजनैतिक पद्धति के दो रूप दिखाई पड़ रहे हैं. इस में राष्ट्रीय पंचायत और मंत्रिमंडल शामिल हैं और दूसरे यह अभियान स्वयं है. इस अभियान को कुछ अधिक महत्त्व दिया गया है, लेकिन साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि उसे मंत्रिमंडल की कार्रवाइयों में कोई हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं होगा. इस के बावजूद इस अभियान का पंचायत के विभिन्न स्तरों पर उम्मीदवारों के चुनाव में बहुत बड़ा हाथ होगा; यहाँ तक कि राष्ट्रीय पंचायत तक मंत्रियों, अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष के चुनाव भी इस की राय से होंगे. जल्द ही इस अभियान के कार्यक्रम घोषित किये जायेंगे.

इस अभियान की शुरुआत सितंबर 1967 में राजा महेंद्र द्वारा की गयी थी, जिस का मकसद पंचायत पद्धति को शक्तिशाली बनाना और देश के लोगों में अपने देश के लिए एक स्वाभिमान की भावना जगाना था. इस उपलक्ष में एक छोटी लाल पुस्तिका सारे राज्य में वितरित की गयी, जिस में सभी नागरिकों जिन में मंत्री और सरकारी अधिकारी भी शामिल हैं, के कर्त्तव्यों को स्पष्ट किया गया. इस पुस्तिका में कहा गया था कि हर मंत्री और सरकारी अधिकारी को साल में कम से कम एक सप्ताह गाँव में बिताना होगा. जहाँ तक संभव हो सके स्वदेशी चीज़ों का इस्तेमाल करना होगा. उस समय इस लाल पुस्तिका को बहुतों ने माओ की लाल पुस्तक की नकल बताया, जो कि चीन में 'सांस्कृतिक क्रांति' के दौरान चीनियों द्वारा नेपाल में उस के समर्थकों के बीच खुलेआम वितरित की गयी थी. समय-समय पर इस पुस्तिका में परिवर्त्तन किया जाता रहा. (पुस्तक की जिल्द का लाल रंग नेपाल के राष्ट्रीय ध्वज के रंग जैसा है. उस का माओवाद या मार्क्सवाद से कोई संबंध नहीं है.) लेकिन 12 दिसंबर के संशोधन से अभियान की केंद्रीय समिति को निश्चित ही महत्त्वपूर्ण दर्जा मिलेगा और उस का अध्यक्ष प्रधानमंत्री के समान ही महत्त्वपूर्ण माना जायेगा.

संविधान में अगला महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन राष्ट्रीय पंचायत में चुनाव के आधार को और विस्तृत करना है. इस से पहले हर ग्रामीण वयस्क या ग्रामीणों के दल 11 सदस्यों की एक संस्था बनाते थे, जिसे गाँव पंचायत कहा जाता था. इन पंचायतों के सभी सदस्य अपने ज़िले में मतदान करते थे और ज़िला सभा तैयार की जाती थी. नेपाल में 75 ज़िले हैं, जिन में से फिर 11 व्यक्तियों को चुना जाता था. इन 75 ज़िलों को 13 अंचलों में बाँटा गया और हर अंचल में 4 से 11 ज़िले आते हैं, जो कि जनसंख्या और प्रशासनिक सुविधाओं के अनुसार बँटे हुए हैं. अंचल के अंतर्गत आने वाले ज़िला पंचायत अंचल सभाओं का गठन उसी तरह करते थे जिस तरह ज़िलों के अंतर्गत ग्राम पंचायत ज़िला सभाओं का गठन करती थीं. यह अंचल सभा (कुल संख्या 14) राष्ट्रीय पंचायत की सदस्यता के लिए प्रतिनिधि मनोनीत करती थी, जिन की संख्या 90 होती थी. इस लिए राष्ट्रीय पंचायत में मतदान करने वालों की सूची बहुत छोटी होती थी.

4 ज़िलों के एक अंचल में केवल 44 व्यक्ति ही मतदान करते थे. अधिक से अधिक 11 ज़िला अंचलों में 121 व्यक्ति मतदान के हक़दार होते थे. कुछ और व्यक्तियों को भी मतदाताओं की सूची में शामिल किया गया था, लेकिन उस के बावजूद इन की संख्या इतनी छोटी रही कि मतदान में हेराफेरी एक आसान काम था.

संशोधन के अनुसार अब ज़िला सभा के सदस्य राष्ट्रीय पंचायत के चुनाव में मतदान कर सकेंगे. इस का मतलब यह हुआ कि अब कुल मतदाताओं की संख्या लगभग 44 हज़ार या उस से भी अधिक होगी, क्यों कि देश में 4 हज़ार गाँव पंचायत हैं और गाँव पंचायत के 11 सदस्य ज़िला सभा का गठन करते हैं. इस से पहले हज़ार से भी कम व्यक्ति राष्ट्रीय पंचायत के चुनाव में भाग ले सकते थे, जिन में से 825 व्यक्ति 75 ज़िला पंचायतों के सदस्य होते थे तथा 125 राष्ट्रीय पंचायत के सदस्य थे. कुछ अन्य व्यक्तियों को भी शामिल किया जाता था.

इस संशोधन से 1969 में उठायी गयी इस माँग की थोड़ी बहुत पूर्ति की जा सकेगी जिस में राष्ट्रीय पंचायत के चुनाव के आधार को विस्तृत करने के लिए कहा गया है. वयस्क मताधिकार के हिमायती और मतदाताओं की संख्या बढ़ाने का विरोध करने वालों के लिए यह एक बीच का रास्ता होगा. इस हद तक तो नरेश ने जनसाधारण की इच्छा की क़द्र की है क्यों कि शाही आयोग द्वारा संवैधानिक संशोधनों के सिलसिले में पूरे वर्ष किये गये दौरों के दौरान यह पाया गया कि जनसाधारण राष्ट्रीय पंचायत के चुनाव के आधार को विस्तृत करने के पक्ष में है.

इस संशोधन से राष्ट्रीय पंचायत में 90 के स्थान पर 112 सदस्य चुने जायेंगे और महाराज द्वारा जिन लोगों को राष्ट्रीय पंचायत में शामिल किया जाता है उन की संख्या अब 16 से 23 कर दी गयी है, जिस से कि कुल सदस्यों की संख्या 125 से 135 हो गयी है. इस पद्धति से 5 पेशेवर और चोटी के संगठनों का, जिन में किसान, युवा, स्त्रियाँ, मज़दूर और भूतपूर्व सैनिकों के संगठन शामिल हैं, प्रतिनिधित्व ख़त्म कर दिया गया है. अब इन संगठनों में से कुल 15 सदस्य चुने जायेंगे. लेकिन ये संगठन ग्रामीण ज़िला स्तर पर काम करते रहेंगे और राष्ट्रीय पंचायत के हर सदस्य के लिए इन पाँचों संगठनों में से किसी एक का सदस्य होना ज़रूरी है. इस के अलावा राज्य में स्नातकों के प्रतिनिधि के रूप में जिन 4 सदस्यों को चुना जाता था उन के लिए भी अब स्थान नहीं रहा है. इस से पहले स्नातकों के क्षेत्र से प्रतिनिधि चुनने के बारे में जनसाधारण में बहुत बहस हुई और इस से पंचायत पद्धति की कार्यकुशलता में फ़र्क़ आने का संदेह व्यक्त किया जाने लगा था. 1971 के चुनाव में जो 4 स्नातक राष्ट्रीय पंचायत में शामिल किये गये थे वे भी इस पद्धति के विरुद्ध थे, जो कि उस समय सरकार के लिए बहुत झेंप का कारण बना.

आवश्यकता पड़ने पर सदस्यता रद्द कर देने का प्रस्ताव भी बिलकुल नया है और देश भर में इस के प्रति बहुत रुचि दिखायी जा रही है.

इस संशोधन के अनुसार एक आयोग की भी नियुक्ति की जायेगी, जिस की ज़िम्मेदारी यह देखना होगा कि कोई भी सरकारी कर्मचारी अपने अधिकारों का दुरुपयोग न करे.

इन संशोधनों के बारे में महाराज वीरेंद्र ने जो भाषण प्रसारित किया उस में वह बार-बार सशक्त राजनैतिक ढाँचे और अनुशासन पर ज़ोर देते रहे, जिस से कि देश आर्थिक दृष्टि से सबल बन सके. उन्होंने इस उपलक्ष में यह भी कहा कि सबल नेपाल न केवल अपनी सहायता कर सकेगा बल्कि अपने पड़ोसियों की सहायता करने में भी सक्षम होगा. इस भाषण में उन्होंने अपने उस प्रस्ताव का भी उल्लेख किया जो उन्होंने इस वर्ष के आरंभ में राजगद्दी पर बैठते समय किया था. नेपाल को शांतिपूर्ण इलाक़ा बनाने की बात उन्होंने इस अवसर पर भी कही. यद्यपि इस के बारे में उन्होंने खुल कर कुछ अधिक नहीं कहा लेकिन यह स्पष्ट था कि बंगलादेश की घटनाएँ उन के दिमाग़ को कचोट रही हैं.

पाकिस्तान

विरोधी स्वर

दिसंबर के आखिरी दिनों में प्रधानमंत्री जुल्फ़िकार अली भुट्टो अपने सत्ता के पाँचवें वर्ष में जब प्रवेश कर रहे थे तो उन के कानों में तरह तरह की आवाज़ें गूँज रही थीं. कहीं से आवाज़ आ रही थी : भुट्टो इस्तीफ़ा दो, तो कोई माँग कर रहा था, राष्ट्रीय सरकार का गठन करो और उस के बाद नये चुनाव कराओ, तो एक तीसरी आवाज़ आ रही थी, भुट्टो संघर्ष और मुठभेड़ का रास्ता त्याग दो, सद्भावना से काम लो. इन आवाज़ों पर भुट्टो कभी ध्यान देते तो कभी उन की गंभीरता को अनदेखा करते हुए प्रतिपक्ष को दबाने की एक और घोषणा कर देते. यद्यपि विदेशियों की नज़रों में भुट्टो अपनी कुछ साख बनाये हुए हैं तथापि पाकिस्तान की भीतरी स्थिति निस्संदेह ख़तरनाक मोड़ पर है. अपने देशवासियों का ध्यान इन गंभीर स्थितियों से हटाने के लिए भुट्टो कभी पाकिस्तान-अफ़ग़ानिस्तान सीमा पर तनाव कह कर उन्हें हक़ीक़त से बेख़बर रखते हैं तो कभी यह कहते हैं कि भारतीय सैनिकों का पाकिस्तानी सीमा पर जमाव होता जा रहा है. लगता है कि भुट्टो की इस तरह की शब्दावली अब असरदार साबित नहीं हो रही है. यही वजह है कि पाकिस्तान में इस समय राजनैतिक अविश्वास का वातावरण बढ़ता जा रहा है.

मुस्लिम लीग सक्रिय : काफ़ी दिन पहले अपने एकमात्र सक्रिय विरोधी ख़ान वली ख़ाँ को उन्होंने गिरफ़्तार किया और उन की नेशनल अवामी पार्टी पर प्रतिबंध लगा दिया. निस्संदेह इस क़दम से वहाँ पर राजनैतिक स्थिति गंभीर हो गयी थी. लेकिन जब भुट्टो के दो भूतपूर्व विश्वसनीय व्यक्तियों—गुलाम मुस्तफ़ा खार और हनीफ रामे— ने बग़ावत का झंडा बुलंद किया तो भुट्टो की स्थिति निश्चित तौर पर कमज़ोर हुई. पंजाब के भूतपूर्व गवर्नर खार के पंजाब असेंबली के 17 और नेशनल असेंबली के तीन समर्थकों ने त्यागपत्र दे कर भुट्टो के लिए अच्छा ख़ासा सिरदर्द पैदा कर दिया. यहीं बस नहीं, खार और रामे जो कभी प्रतिद्वंद्वी थे, ने अपने समर्थकों सहित मुस्लिम लीग से मतभेद होते हुए भी उस में शामिल होने का फ़ैसला किया और इस बेजान पार्टी में नयी जान फूँकी. यद्यपि वैचारिक स्तर पर खार और रामे मुस्लिम लीग की नीतियों से इत्तिफ़ाक नहीं रखते बावजूद इस के वक़्त के तक़ाज़े को समझते हुए वे चाहते हैं कि प्रतिपक्ष अपने आप को संगठित करे तभी भुट्टो का सिंहासन डोलेगा.

संगठन का प्रयास : प्रतिपक्षी पार्टियों को इकट्ठा होने का मौक़ा मिल गया. 14 नवंबर को राष्ट्रीय असेंबली से 11 प्रतिपक्षी सदस्यों को ज़बरदस्ती सदन से बाहर निकाल दिया गया. उस के बाद उन्होंने न केवल सदन का बहिष्कार ही किया बल्कि अपने आप को संगठित करने के लिए क्या क़दम उठाये जा सकते हैं इस बारे में एक सम्मेलन भी आयोजित किया. अपने एक प्रस्ताव में 85 प्रतिपक्षी सदस्यों में से 55 ने अपने स्थानों से त्यागपत्र देने की पेशकश करते हुए कहा कि ऐसा होने से देश में राजनैतिक अस्थिरता का वातावरण बन जायेगा. ये 55 सदस्य राष्ट्रीय असेंबली, सेनेट और चार प्रांतीय असेंबलियों के हैं.

भुट्टो के ख़िलाफ़ इतने अधिक तत्त्व इकट्ठे हो गये हैं कि कोई दिन ऐसा नहीं जाता जब उन की 'दमनकारी नीतियों' के विरुद्ध प्रदर्शन न होता हो. हालाँकि प्रदर्शनों पर प्रतिबंध है लेकिन पिछले दिनों पत्रकारों ने दो घंटे का प्रदर्शन किया तो 600 वकीलों ने एक दिन का. हालाँकि अगले चुनाव अगस्त 1977 में होने हैं लेकिन प्रतिपक्षी पार्टियों की माँग है कि सर्वोच्चन्यायालय की देखरेख में तुरंत चुनाव होने से भुट्टो के ख़िलाफ़ व्याप्त संशय का माहौल समाप्त हो सकता है. वर्त्तमान स्थिति को देखते हुए यही लगता है कि भुट्टो प्रतिपक्ष की इच्छा की पूर्ति शायद ही करें.

प्रदूषण

कचरा फेंकने की समस्या

अणु विज्ञान की प्रगति के साथ एक बहुत बड़ी समस्या सामने आयी है—आणविक कचरे को किस तरह ख़त्म किया जाए, या उसे कहाँ डाला जाए. कुछ दिनों से यूरोपीय देश योजना बना रहे थे कि पश्चिम जर्मनी में हानोवर के पास जो गहरी नकम की परत है उस में हानिकारक आणविक कचरे को दबा देने से कोई ख़तरा नहीं रह जाएगा, इस लिए इस स्थान को कचरा डालने के लिए निरापद समझ कर वहीं सारा कचरा डाल दिया जाए. लेकिन बॉन सरकार के विश्वस्त सूत्रों से पता चला है कि बड़ी मात्रा में आणविक कचरा एक स्थान पर डाल देने से उस से इतनी गर्मी पैदा होती है कि नमक की बनावट में अस्थिरता पैदा होने की संभावना होती है, जो कि आणविक सुरक्षा से संबद्ध विभाग को मान्य नहीं हो सकता. एक रपट में कहा गया है कि इस विषय पर न केवल और अधिक शोध की ज़रूरत है बल्कि इस बारे में भी संदेह हो गया है कि जिस गहरी नमक की परत को धरती के एक कोने में, लोकालय से दूर और अगम्य होने के कारण कचरे के भंडार के रूप में इस्तेमाल किये जाने की बात सोची जा रही है वह अंततः इस समस्या का समाधान कर भी सकेगा या नहीं. समस्त यूरोप में आणविक कचरे की मात्रा दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है, जो प्रदूषण की समस्या को और भी गंभीर कर रही है. हानोवर के पास के नमक की परत को इस समस्या के समाधान के रूप में देखा गया जो कि शायद ही इस समस्या को लंबे समय तक दबाये रखने में सहायक हो.

अब तक आणविक कचरे को डालने के लिए विभिन्न स्थानों पर जो गड्ढे खोदे गये वे न केवल बहुत महँगे पड़े, बल्कि उन में कई और जोखिम भी नज़र आये. देश की क्षति करने वालों के लिए ये स्थान उन की कारवाइयों के लिए उपयुक्त आधार प्रदान कर सकते हैं, या दुर्घटनाएँ भी हो सकती हैं, जिन का प्रभाव ख़तरनाक हो सकता है. इस के अलावा हर 50 वर्ष के बाद इन गड्ढों की बनावट आदि बदलने की आवश्यकता हो सकती है और तब तक इन पर पैसा खर्च करना ज़रूरी होगा जब तक इस धरती पर एक भी प्राणी रहेगा. इन गड्ढों से किसी प्रकार का ख़तरा उत्पन्न न हो इस के लिए लगातार इन की पहरेदारी ज़रूरी है. यही वजह है कि भूगर्भीय कचरा भंडारों को प्राथमिकता दी जा रही है.

आणविक कचरे को काँच में परिवर्त्तित कर के उसे कहीं जमा करने की बात भी सोची गयी है. लेकिन वह तभी संभव हो सकेगी जब इस रूप परिवर्त्तन के दौरान निकलने वाले विषैले गैसों से वातावरण दूषित होने का ख़तरा न हो. लेकिन यदि रेडियोधर्मी गैसों को किसी तरह ख़त्म किया जा सके तो आणविक कचरे की समस्या का यह एक बहुत ही उपयोगी निदान साबित हो सकता है. लेकिन इस दिशा में अभी तक काम पूरा नहीं हो सका है और कम से कम अगले दशक तक पूरा होने की संभावना भी नज़र नहीं आती, यद्यपि ब्रितानी और अन्य यूरोपीय देश अपने विकास कार्यक्रमों में इस को बहुत महत्त्व दे रहे हैं.

बॉन के अणु वैज्ञानिक अब खुले आम कह रहे हैं कि भौतिकशास्त्री और अर्थशास्त्री दोनों मिल कर अणु शक्ति योजनाओं को इतनी तेज़ी से आगे बढ़ाने में लगे हुए हैं कि इंजीनियरी सुरक्षा की व्यवस्थाएँ उन से पिछड़ती जा रही हैं. उन का अनुमान है कि हानोवर में आणविक कचरा डालने के प्रस्ताव से जनसाधारण विचलित हो सकते हैं और उन की ओर से विरोध होने की संभावना भी है. इस का विपरीत असर पश्चिम जर्मनी में बड़े पैमाने पर होने वाले आणविक कार्यक्रमों पर पड़ सकता है. हाल ही में ब्रुसेल्स में संपन्न विश्वस्वास्थ्य संगठन की बैठक में इन सारी समस्याओं पर विचार विमर्श किया गया.

वर्त्तमान में हानोवर में नमक की परत को खोद कर उस में निम्न स्तरीय कचरा दबाया जाता है. कचरे को कंकरीट के पीपों में सीलबंद कर दिया जाता है. इस पद्धति को अब तक ख़तरे से खाली माना जाता रहा और आगे भी उस के इस्तेमाल की संभावनाएँ बनी हुई हैं. इस के विपरीत ब्रिटेन कचरा डालने की जिस पद्धति का उपयोग करता है वह जोखिम भरा है. सतही खाइयाँ खोद कर उस में जो कचरा डाला जाता है चूहे, ख़रगोश, और अन्य जानवर तथा कीड़े उस तक आसानी से पहुँच सकते हैं. यहीं से ये जानवर और कीड़े विभिन्न छूत की बीमारियों के जीवाणु फैला सकते हैं, जो कि निहायत ख़तरनाक रेडियोधर्मी तत्त्वों में मौजूद रहते हैं. यह माना जाता है कि विडस्केल नामक स्थान पर जो कचरा डाला जाता है उस में भरपूर मात्रा में प्लूटोनियम और अधिक समय तक सक्रिय रहने वाले समस्थानिक होते हैं, जो चिड़ियों या ख़रगोशों के द्वारा मनुष्य तक आसानी से पहुँचाये जा सकते हैं.

जनसाधारण अब दिन-ब-दिन आणविक समस्या के बारे में सचेत होता जा रहा है और देर-सबेर विभिन्न देशों की सरकारों में यह जागृति पैदा हुई है कि जनमत के प्रति उपेक्षा को, जो कि सैनिक क्षेत्रों में मान्य हो सकती है, ग़ैरसैनिक क्षेत्रों में कभी स्वीकार नहीं किया जाएगा.

हार्वेल अनुसंधानशाला में रेडीयधर्मी पदार्थों को अत्यंत सतर्कता से सँभाला जाता है
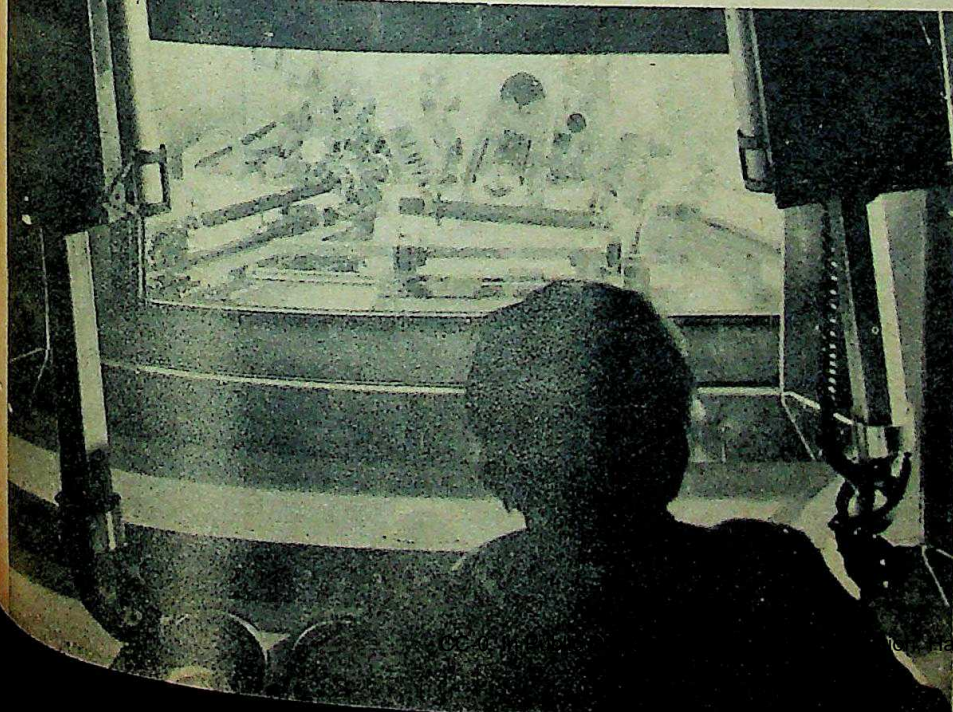
डेविस कप : दूसरा राउंड

सितंबर के महीने में अमृतसर में भारत और थाईदेश के बीच खेले गये डेविस कप (पूर्वी क्षेत्र) के पहले राउंड में भारत ने जब थाईदेश को 5-0 से हराया था तभी भारतीय कप्तान श्री रामनाथन कृष्णन ने यह कह दिया था कि जापान के विरुद्ध खेले जाने वाले दूसरे राउंड में मुकाबला काफ़ी सख्त होगा क्योंकि जापानी खिलाड़ी अपने जाने पहचाने मैदानों के बीच बहुत अच्छा खेलते हैं और वही हुआ भी.

6 दिसंबर को तोक्यो में खेले गये पहले मैच में (यह मैच आनंद अमृतराज और तोसिरो सकाई के बीच खेला गया था) तो भारत जीत गया लेकिन वर्षा के व्यवधान के कारण दूसरा मैच, जो 22 वर्षीय विजय अमृतराज और 28 वर्षीय जुन कामीवाजुमी के बीच खेला गया था, पूरा नहीं हो सका. लेकिन उस समय भी कामीवाजुमी एक सेट से आगे थे.

वर्षा से व्यवधान : लोग इस अधूरे मैच के परिणाम सुनने को काफ़ी आतुर थे. लेकिन लगातार तीन दिनों तक उन्हें मात्र यही समाचार मिलता रहा कि वर्षा के कारण मैच नहीं खेला जा सका. ख़ैर, तीन दिन बाद यह समाचार मिला कि भारत 2-1 से आगे हो गया है लेकिन यह स्थिति कोई ज्यादा संतोषजनक नहीं थी. क्योंकि विजय जुन आमीवाजुमी से हार गये थे लेकिन उस के बाद विजय और आनंद की जोड़ी ने जापानी जोड़ी तोसिरो साकाई और केंची हिराए को युगल मैच में हरा दिया था.

यहीं यह प्रश्न उठा कि जब जापान का नं. 2 खिलाड़ी भारत के नं. 1 खिलाड़ी को हरा देता है या कि दूसरे शब्दों में भारत का नं. 2 खिलाड़ी जापान के नं. 1 खिलाड़ी को हरा देता है तो नतीजा कुछ भी हो सकता है इस लिए अपनी जीत के बारे में इतना आश्वस्त नहीं होना चाहिए. 11 दिसंबर को खेले गये उलट एकल के पहले मैच में विजय अमृतराज ने जापान के साकाई को 3-6, 6-0, 6-4, 6-3 से हरा कर भारत की जीत पक्की कर ली. भारत 3-1 से आगे हो गया और अब औपचारिकता निभाने के लिए कुछेक दर्शकों की उपस्थिति में पाँचवाँ मैच शशि मेनन और जुन कुकी के बीच खेला गया जिस में जापानी खिलाड़ी की जीत हुई.

इस प्रकार भारत 3-2 से जीत गया. अब तीसरे राउंड में भारत का मुकाबला मनीला में फिलीपींस के विरुद्ध होगा. पूर्वी क्षेत्रीय डेविस कप मुकाबलों में भारत ने जापान को (1956 से अब तक) लगातार 12 बार हराया है. हाँ, 1930 में ज़रूर जापान ने भारत को हरा दिया था.

एकरूपता का अभाव : विजय अमृतराज, अब तो वह अर्जुन पुरस्कार से भी अलंकृत हो गये हैं, इस समय देश के चोटी के खिलाड़ी हैं और दुनिया के बड़े से बड़े खिलाड़ी को हरा सकने की क्षमता रखते हैं इस में कोई संदेह नहीं. लेकिन यह भी उतना ही सच है कि उन के खेल में एकरूपता नहीं है. छः दिनों में ही उन के खेल में कितना उतार चढ़ाव आ जाता है इस का अनुमान तो इसी बात से लगाया जा सकता है कि 23 नवंबर (रविवार) को कलकत्ता में उन्होंने स्पेन के मैनुअल ओरांतीस को जिस चमत्कारपूर्ण ढंग से हराया उस की शायद किसी ने कल्पना भी नहीं की थी लेकिन नयी दिल्ली के जीमखाना कोर्ट में राष्ट्रीय टेनिस प्रतियोगिता के फ़ाइनल में अमेरिका के टाम गोरमन से वह हार जायेंगे इस की भी शायद किसी ने कल्पना नहीं की थी. कहीं तो विजय हारते हारते जीत जाते हैं और कहीं वह जीतते जीतते हार जाते हैं. राष्ट्रीय प्रतियोगिता में भी यही हुआ विजय पहला सेट 4-6 से जीत गये थे, दूसरे सेट में भी गोरमन 0-3 से पीछे थे, इस पर भी जीत गोरमन की ही हुई और वह यह मुक़ाबला 4-6, 6-4, 6-4 से जीत गये.

राष्ट्रीय प्रतियोगिता में कुछ नये और होनहार खिलाड़ियों (शंकर कृष्णन्, रमेश कृष्णन् और अशोक अमृतराज) का प्रदर्शन काफी उत्साहवर्द्धक रहा. यों तो जूनियर के फ़ाइनल में रमेश अपने ही चचेरे भाई शंकर से हार गये लेकिन उन के खेल में कलात्मकता की झलक साफ दिखायी पड़ती थी. पुरुषों की युगल प्रतियोगिता आर. कृष्णन् और चिरदीप मुखर्जी ने, और स्त्रियों की एकल प्रतियोगिता बंबई की श्रीमती निरुपमा मांकड ने जीती थी.
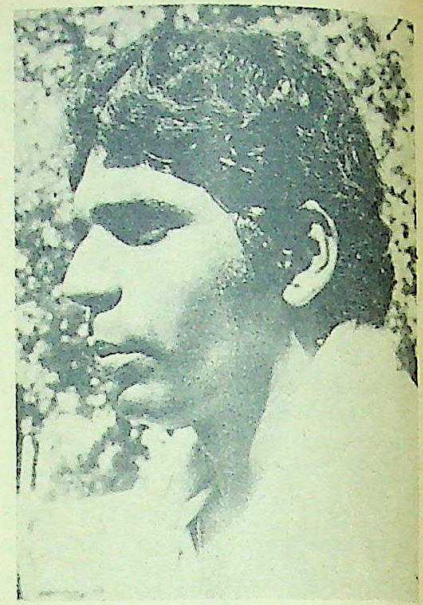
विजय अमृतराज : कभी जीत, कभी हार

हाकी

ध्यानचंद एकादश की जीत

दो दिसंबर को वाराणसी के संपूर्णानंद स्टेडियम में उत्तर प्रदेश की टीम ध्यानचंद एकादश ने 'स्पेन अंडर ट्वेंटी वन' टीम को एक प्रदर्शनी हाकी मैच में 1-0 से हरा कर खासी हलचल पैदा कर दी. उ. प्र. की ओर से ध्यानचंद के छोटे लड़के राजकुमार भी खेले और उन का खेल विशेष रूप से सराहनीय रहा.

ध्यानचंद एकादश टीम के सदस्य

उत्तर प्रदेश की टीम में सारे खिलाड़ी वे ही थे जो स्पोर्टस हास्टल लखनऊ की ओर से हाल ही में नेहरू हाकी प्रतियोगिता में खेले थे. सिर्फ एक मात्र राजकुमार ही बाहरी नाम था. यों स्पेन की टीम का भारत का यह दौरा बहुत सफल नहीं कहा जायेगा और स्पेनी दल इस के पूर्व आगरा में हुए मैच में भी पराजित हुआ था किंतु वाराणसी में वह अपने खराब खेल के कारण नहीं बल्कि खराब किस्मत के कारण हारी. पूरे मैच के दौरान (समयाभाव के कारण यह मैच पचास मिनट का ही था) कम से कम तीन अवसरों पर (एक पैनल्टी स्ट्रोक भी) स्पेनी दल को गोल करना चाहिए था किंतु हर बार उन की निशानेबाज़ी कमज़ोर रही और एक भी गोल नहीं हो सका. इस के विपरीत 'बाबू' द्वारा प्रशिक्षित की गयी मेज़बान हाकी टीम ने संयमित खेल का प्रदर्शन किया तथा उस के अग्रधावकों सईद अली तथा अशोक चोपड़ा ने एक से एक सुंदर आक्रमण किये और बराबर विपक्षी टीम पर हावी रहे. उत्तरार्द्ध के दसवें मिनट में मिले पेनल्टी कार्नर पर वीरेंद्र ने निर्णायक गोल कर दिया.

एशियाई खेल

अनिश्चय का दौर

आगामी एशियाई खेलों (1978) का आयोजन किस देश में होगा इस बारे में फिलहाल कुछ नहीं कहा जा सकता. तेहरान में हुए सातवें एशियाई खेलों की पूर्वसंध्या (30 अगस्त, 1974) को पाकिस्तान ने आगामी एशियाई खेलों का आयोजन अपने यहाँ करने में बड़ा उत्साह दिखाया लेकिन एक साल से भी कम समय में (जून 1975) उस का सारा उत्साह ठंडा पड़ गया और उस ने कहा कि आर्थिक कठिनाइयों के कारण हमारे लिए इस का आयोजन कर पाना एक दम असंभव है. उस ने कहा कि इस के लिए लगभग 5 करोड़ डॉलर की धन राशि चाहिए और हमारे लिए इतनी धन राशि की व्यवस्था कर पाना बहुत कठिन होगा.

बैठक हुई लेकिन. . . : इस सिलसिले में पिछले दिनों 7 और 8 दिसंबर को लाहौर में एशियाई खेल संघ की एक बैठक भी हुई. इस बैठक में 11 देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया. लेकिन वहाँ पर भी कोई ठोस परिणाम सामने नहीं आया. अर्थात् कोई भी देश इस के लिए तैयार नहीं हुआ. हाँ, सात सदस्यों की एक उपसमिति ज़रूर बना दी गयी जो क्वालालंपुर में होने वाली आगामी बैठक में फिर इस विषय पर विचार करेगी. इस समिति में भारत, पाकिस्तान, ईरान, मलयेसिया, जापान और इंडोनेसिया के प्रतिनिधियों को शामिल किया गया है. यह समिति आगामी खेलों के आयोजन की संभावनाओं पर विचार करेगी.

जापान और मलयेसिया पहले ही अपनी

दिनमान.

अनिच्छा व्यक्त कर चुके हैं. चीन का वैसे ही कोई प्रश्न नहीं उठता क्योंकि वह तो अभी तक अंतरराष्ट्रीय ओलिंपिक समिति का सदस्य भी नहीं बना. लाहौर में हुई बैठक में यह अपील ज़रूर जारी की गयी कि चीन को अंतरराष्ट्रीय ओलिंपिक समिति का सदस्य बना लिया जाना चाहिए. एशियाई खेल संघ के अध्यक्ष मलिक मेराज खालिद ने कहा कि इस बैठक में उपस्थिति सभी सदस्यों ने सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव पास किया था. उन का कहना था कि 80 करोड़ की आबादी वाले देश की अनुपस्थिति के कारण ओलिंपिक खेलों को 'आदर्श' नहीं माना जा सकता. फिर पिछले वर्ष तेहरान में हुए एशियाई खेलों में भी तो चीन को शामिल किया गया था.

श्री खालिद ने यह आशा भी व्यक्त की कि तेहरान को, जिस ने 1974 में अपने यहाँ एशियाई खेलों का आयोजन किया था, आगामी खेलों के आयोजन के लिए शायद फिर से राज़ी किया जा सकता है. और अगले ही दिन यह रपट छपती है कि ईरान भी तैयार नहीं हो रहा. एक प्रकार का विचित्र संकट खड़ा हो गया है.

सब से पहले 1972 में सिंगापुर को 1978 के एशियाई खेलों के आयोजन का अधिकार दिया गया था लेकिन एक साल बाद उस ने भी आर्थिक कारणों से अपनी असमर्थता प्रकट कर दी थी. बाद में पाकिस्तान ने इस के लिए आवेदन पत्र दिया जिसे मान लिया गया था और अब वह भी अपनी बात से पीछे हट रहा है. सुनते हैं कि इस बीच पाकिस्तान ने भी अपने ढंग से कुछ देशों के साथ बातचीत की. पहले उस ने जापान से विचार विमर्श किया लेकिन जापान ओलिंपिक समिति इस के लिए राज़ी नहीं हुई.

एशियाई खेल संघ के नियमानुसार जिस देश में एशियाई खेलों का आयोजन होता है वहीं पर चार साल के लिए संघ का प्रधान कार्यालय स्थापित किया जाता है तथा संघ का अध्यक्ष और सचिव भी उसी देश का होता है. इसी नियमानुसार श्री खालिद को इस का अध्यक्ष और शेख ज़फर को इस का सचिव चुना गया था. उस के बाद पाकिस्तान में बाकायदा एक 'आयोजन समिति' का गठन किया गया. जब उस समिति ने पूरे खर्चे का अनुमान लगाया तो पाकिस्तान के बड़े अधिकारीगण गहरी सोच में डूब गये. इसी बीच चीन ने पाकिस्तान को आश्वासन दिया कि वह इस्लामाबाद में खेल के स्टेडियम और खेल गाँव के निर्माण कार्य में उस की सहायता करेगा. इस सुझाव पर पाकिस्तान का थोड़ा हौसला बढ़ा लेकिन इसी बीच उस के खाद्यान्न के उत्पादन में भारी गिरावट आ गयी और उस की सारी अर्थव्यवस्था डांवाडोल हो गयी. आखिरकार उस ने जून 1975 को अपनी असमर्थता और अनिच्छा प्रकट कर दी.

संक्षिप्त समाचार

अर्जुन पुरस्कार—1974 : इस बार जिन 14 खिलाड़ियों को 1974 वर्ष के लिए अर्जुन पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया उस में मशहूर लान टेनिस खिलाड़ी विजय अमृतराज, हाकी के खिलाड़ी अशोक कुमार पहलवान सतपाल को भी सम्मिलित किया गया है. देश के श्रेष्ठ खिलाड़ियों को अर्जुन पुरस्कार से अलंकृत करने की परंपरा का शुभारंभ 1961 में किया गया था. तब से ले कर अब तक देश के 151 विशिष्ट खिलाड़ियों को यह पुरस्कार मिल चुका है. वर्ष 1974 के लिए जिन खिलाड़ियों को चुना गया उन के नाम इस प्रकार हैं :—

एथलेटिक : टी. सी. योहानन और शिवनाथ सिंह.
बैडमिंटन : रोमन घोष
हाकी : अशोक कुमार
स्त्री हाकी : कुमारी अजिंदर कौर
खो-खो: कुमारी नीलिमा चंद्र कांत सरोलकर
लान टेनिस : विजय अमृतराज
तैराकी (गोता) : कुमारी मंजरी भार्गव
तैराकी (लंबी दूरी) : अविनाश बी. सारंग
वालीबाल : एम. श्याम सुंदर राव
भारोत्तोलन : एस. वैलायसामी
बास्केट बाल : अनिल कुमार पुंज
कुश्ती : सतपाल
बहिर बधिर खेल—क्रिकेट : अंजन भट्टाचार्य

शतरंज

नया राष्ट्रीय चैंपियन रविशेखर

दिनमान 21 सितंबर के अंक में 13वीं राष्ट्रीय प्रतियोगिता के भाग 'बी' का वर्णन किया गया था. आज उस प्रतियोगिता के भाग 'ए' का परिणाम दिया जा रहा है.

भाग 'ए' में बीस खिलाड़ी भाग लेने को थे: 1—भूतपूर्व राष्ट्रीय चैंपियन एम. एरन, (तमिषनाडु), 2—नासिर अली (उ. प्र.), 3—एस. वी. नटराजन (त. न.), 4—एम. हसन (आं. प्र.), 5—अ. जब्बार (महा.), 6—अरुण वैद्य (महा.), 7— रविशेखर (त. न.) जिन्होंने भाग 'बी' में पहला स्थान प्राप्त किया, 8—एम. रफीक खां (म. प्र.), 9—शालिगराम (महा.), 10—वी. बी. अधिकारी (महा.), 11—राजेश बहादुर (म. प्र.), 12—एस. हसन (महा.), 13—एन. गालिब (आं. प्र.), 14—विजय राघवन (त. न.), 15—के. बा. एल. श्रीवास्तव दिल्ली, 16—माइकल लोबो (कर्ना.), 17—आर. नगेंद्र (आं. प्र.), 18—एस. मनाकंडासामी (त. ना.), 19—आर. वी. डंडेकर (महा.) और (20) पी. एम. महंती (ओडिसा). इन में से 3 खिलाड़ी कैंद,

शालिगराम और श्रीवास्तव प्रतियोगिता में सम्मिलित नहीं हुए.

सभी मुकाबले ज़ोरदार हुए. परंतु 15 चक्कर के अंत तक नासिर अली 1 अंक से सब से आगे थे और लोग समझ बैठे थे कि वे ही इस वर्ष चैंपियन होंगे. परंतु मालूम पड़ता है कि उन की सहनशक्ति जवाब दे गयी क्योंकि उस से पहले चक्कर में ही वे महंती जैसे खिलाड़ी से बाज़ी बराबर उठाने पर बाध्य हुए, फिर 16वें चक्कर में वे विजयराघवन से हार गये और उन के तथा रविशेखर और एरन के अंक ($10\frac{1}{2}$) बराबर हो गये. 17वें तथा अंतिम चक्कर में वे रविशेखर से बुरी तरह परास्त हुए. एरन उस चक्कर में जीते. इस तरह रविशेखर और एरन की अंक संख्या बराबर ($11\frac{1}{2}$) रही, परंतु एस. बी. गणना के अनुसार रविशेखर चैंपियन के $87\frac{3}{4}$ और एरन के 80 अंक बने. इस कारण 21 वर्षीय रविशेखर चैंपियन घोषित हुआ और एरन को जो 1969 से हर वर्ष चैंपियनशिप जीतता रहा, दूसरा स्थान मिला. तीसरा स्थान मिला अधिकारी को ($10\frac{1}{2}$–$78\frac{3}{4}$) चौथा एम. हसन को ($10\frac{1}{2}$–78), पांचवाँ नासिर अली को ($10\frac{1}{2}$–$69\frac{1}{8}$), छटा एस. हसन को (10), सातवाँ एस. वी. नटराजन को ($9\frac{1}{2}$) आठवाँ विजय राघवन को (9), नवां एन. गालिब को (8). दसवाँ महंती को (7–49), 11वाँ रफ़ीक खां को (7–$46\frac{1}{2}$) 12 वाँ राजेश बहादुर को (7–$44\frac{1}{8}$), 13वाँ ए. जब्बार को ($6\frac{1}{2}$), 14वाँ आर नगेंद्र को ($5\frac{1}{2}$), 15वाँ डंडेकर को ($4\frac{1}{2}$–$33\frac{1}{2}$), 16वाँ मनीकंडासामी को ($4\frac{1}{2}$–33), और 17वाँ लोबो को (3).

प्रथम छः खिलाड़ियों को 750 रू. 450रु., 300 रु., 150 रु., 115 रु., और 40 रु. क्रमानुसार पुरस्कार स्वरूप दिये गये. तीन बाज़ी भव्य मानी गयीं, पहली बाज़ी रवि शेखर और नासिर अली की, जिस के लिए रविशेखर को 200 रु. का विशिष्ट पुरस्कार मिला. दूसरी गालिब और रवि-शेखर के बीच जो गालिब जीता और उसे 50 रु. का विशिष्ट पुरस्कार दिया गया, और तीसरी बाज़ी जो विजयराघवन नासिर अली के मुकाबले में जीता. विजयराघवन को भी 50 रु. का विशिष्ट पुरस्कार मिला.

नासिर अली रवि शेखर वाली बाज़ी अगले अंक में छापी जायेगी.

पाठकों को यह जान कर हर्ष होगा कि इस वर्ष से अखिल भारत शतरंज संघ ने सब जूनियर चैंपियनशिप शुरू की है. उस प्रतियोगिता में 15 वर्ष से कम उम्र के बालक और बालिकायें भाग ले सकते हैं. इस साल यह प्रतियोगिता नवंबर में बंबई में आयोजित की गयी, जिस में कई प्रदेशों के लड़कों और लड़कियों ने भाग लिया. मैच 7 चक्कर स्विस के अनुसार खेले गये. सब जूनियर चैंपियन बना तमिषनाडु का 14 वर्षीय एम. रमेश. उस ने सभी सातों बाज़ियाँ जीतीं. दूसरा और तीसरा स्थान मिला क्रमशः महाराष्ट्र के सतीश थिप्सी और कु. जयश्री खादिल्कर को.

—इ. कृष्ण

विज्ञान

धातु परिशोधन में बैक्टीरिया

ब्रितानी वैज्ञानिक **ली रूक्स** ने एक अनुसंधानकर्त्ता **डॉ. टॉनी विलियम्स** के अनुसंधान के बारे में सुन रखा था. डॉ. विलियम्स 1974 में आइसलैंड के ऊष्ण चश्मों से बैक्टीरिया के नमूने इकट्ठा करने के अभियान पर गये. इस ठंडे क्षेत्र में बहुत सारे गर्म पानी के सोते हैं जिन का तापमान 50 से 60 अंश सेंटीग्रेड तक रहता है. अनुसंधानकर्त्ता यह जानना चाहते थे कि इस गर्म पानी में रहने वाले बैक्टीरिया अपनी प्रोटीन कोशाओं को किस प्रकार सुरक्षित रख सकते हैं. इस अभियान में वैज्ञानिक नॉरमन ली रूक्स की रुचि इसलिए बढ़ गयी कि वह यह जानना चाहते थे कि इन गर्म पानी के स्रोतों में एक विशेष प्रकार का बैक्टीरिया-**थयोबैसिल** ऑक्सीडंस होता है या नहीं. उन्हों ने डॉ. विलियम्स से उन चश्मों के पानी के कुछ नमूने भेजने का अनुरोध किया.

उक्त प्रकार के बैक्टीरिया के इर्दगिर्द पिछले कई वर्षों से वैज्ञानिकों का एक गुट इकट्ठा हो गया है क्योंकि इस बैक्टीरिया में धातुओं को ऑक्सीजनयुक्त बनाने की विशेष क्षमता है. इस क्षमता का उपयोग एक ऐसे क्षेत्र में करने का प्रस्ताव गंभीरतापूर्वक विचाराधीन है जो अभी तक जीवाणुओं के कार्यक्षेत्र में आता ही नहीं. यह क्षेत्र उत्खनन और धातु परिशोधन का है. सल्फाइडयुक्त खनिज धातुओं को प्राप्त करने के लिए खनिज को भूना जाता है. इस से सल्फाइड में अतिरिक्त ऑक्सीजन मिल कर सल्फेट बन जाता है जो सामान्यतया हल हो सकता है और बाद में विद्युत्धारा द्वारा धातु को अलग किया जा सकता है. इस के लिए बहुत बड़ी मात्रा में ईंधन की ज़रूरत पड़ती है. हाल ही के वर्षों में जीवाश्म ईंधन की लगातार कमी महसूस की जा रही है और वैज्ञानिक किसी वैकल्पिक रास्ते की खोज में हैं. बैक्टीरिया एक विकल्प प्रदान करता है, क्यों कि बैक्टीरिया द्वारा सल्फाइड खनिजों को स्वाभाविक रूप से ऑक्सीज़न युक्त कर के सल्फेटों में परिवर्तित किया जाता है. वास्तव में प्रकृति में यह प्रक्रिया शुरू से चल रही है. इस का महत्त्व ऐसे खनिजों में बहुत अधिक है जो निम्न स्तर के हैं. अर्थात् जिन की मात्रा मिश्रण में कम है. प्रायः इस प्रकार के खनिज को उपयोग के लायक न मान कर व्यर्थ छोड़ दिया जाता है. बैक्टीरिया इसे उपयोग योग्य बना सकता है. थयोबैसिलस ऑक्सीडंस धातुओं के हल होने की क्षमता को काफी बढ़ा देता है. इस के अतिरिक्त जो द्रव मिश्रण के रूप में प्राप्त होता है उसे बहुत आसानी के साथ परिशोधित किया जा सकता है. इस काम के लिए किसी शक्तिशाली अम्ल की ज़रूरत नहीं होती और प्रक्रिया काफी स्वच्छ है जिस से पर्यावरण प्रदूषण की अधिक समस्या पैदा नहीं होती. क्यों कि यह बैक्टीरिया 30 सेंटीग्रेड तापांश पर ही काम करता है. इसलिए यह काफी कम खर्चीला तरीका भी है. इस में ऊर्जा की खपत बहुत कम होती है क्यों कि आमतौर से 30 सेंटीग्रेड तापांश कमरे का तापांश होता है.

इस से उत्साहित हो कर अनुसंधानकर्त्ताओं ने कई प्रकार के बैक्टीरिया की विशेषताओं का अध्ययन शुरू किया. और यह महसूस किया गया कि विशेष परिस्थितियाँ पैदा कर के बड़ी संख्या में बैक्टीरिया का विकास नियंत्रित रूप से किया जा सकता है. बाद में इन में उचित चुनाव कर के उपयुक्त नस्लें भी विकसित की जा सकती हैं. जीव वैज्ञानिकों ने अधिक उपयोगी धातुओं के विकास के लिए 'बलात् विकास' का तरीका विकसित किया गया है जो कि सख्त नियंत्रित और कुशल वातावरण तैयार कर के संभव होता है. अनुवांशिक अभियांत्रिकी की नयी वैज्ञानिक विधा से धातुओं को हल करने योग्य बनाने वाले जीवाणुओं की अधिक कुशल जातियाँ पैदा करना अब व्यावहारिक बन गया है.

मगर कठिनाई यह है कि कम तापमान में काम करने वाले बैक्टीरिया की गति बहुत धीमी होती है. कम खर्चीला होने के बावजूद जितना समय परिशोधन में लगता है वह बड़े पैमाने पर धातुओं को प्राप्त करने के लिए उत्साहवर्द्धक नहीं है. निम्न कोटि के खनिजों को शुद्ध करने का काम अमेरिका और कैनाडा में कई वर्षों से हो रहा है. कम गति के कारण ही इसे बृहत्त् व्यापारिक और औद्योगिक रूप नहीं दिया जा सका है. इसीलिए ब्रितानी सरकार द्वारा संचारित **वारन स्प्रिंग प्रयोगशाला** के अध्यक्ष वैज्ञानिक ली रूक्स ने यह देखने की कोशिश की कि क्या इस प्रकार के भी बैक्टीरिया खनिजों को सल्फेटों में परिवर्त्तित करने की क्षमता रखते हैं जो स्वभावगत रूप से अधिक ऊँचे तापमान में रहते हैं. आइसलैंड के गर्म स्रोतों से प्राप्त बैक्टीरिया इसी सिलसिले में लाभदायक सिद्ध हुए हैं. डॉ. विलियम्स द्वारा भेजे गये नमूनों में 10 में से 9 नमूने इस प्रकार के मिले जो सल्फाइडों को सल्फेटों में बदल सकते हैं. विभिन्न प्रकार के धातुओं पर प्रयोग करने के बाद यह पता चला कि निकल के बारे में काफी कुशल, यूरोनियम के संबंध में उत्साहवर्द्धक, जस्त के बारे में अच्छे तथा तांबे के संबंध में क्षीण परिणाम मिल चुके हैं. जीववैज्ञानिक जगत् में यह क्रांतिकारी संभावना है, क्यों कि यदि पहला प्रयोग इतना सफल रहा तो इस बात की आशा की जानी चाहिए कि आगे और भी अधिक बैक्टीरिया प्राप्त होंगे जो इस से ऊँचे तापमान में काम कर सकेंगे. इस के अतिरिक्त जाति विकास से नयी और कुशल जातियों का उदय होगा ही.

यह पूछा जा सकता है कि यदि यह बैक्टीरिया ऊँचे तापमान में अधिक तेज़ी के साथ काम कर सकते हैं तो क्या धातुओं को उस तापमान तक गर्म करने में अधिक ऊर्जा की खपत नहीं होगी. ऊर्जा तो ज़रूर ज़्यादा लगेगी मगर केवल प्रारंभ में ही. क्यों कि यह प्रक्रिया काफी गर्मी अपने आप भी मुक्त करती रहती है. जिस का मतलब यह होता है कि अगर प्रक्रिया को इस ढंग से नियंत्रित किया जाय कि ताप व्यर्थ में बाहर न जाने पाये तो आवश्यक तापमान बनाये रखने के लिए बाहर से अधिक ऊर्जा की ज़रूरत नहीं होगी.

भारतविद्

इवान पाव्लोविच मिनायेव

स्वर्गीय मिनायेव (1840-90) रूसी भारतविद्या के संस्थापक माने जाते हैं. इस वर्ष उन की एक सौ पैंतीसवीं वर्षगाँठ पड़ती है और पहली भारत यात्रा को सौ वर्ष पूरे होते हैं. भारतविद्या के क्षेत्र में उन्होंने सर्वांगीण योगदान किया. प्रोफेसर व. प. वसीलेव और प्रोफेसर क. अ. कोस्सोविच से क्रमशः बौद्ध-धर्म और संस्कृति की शिक्षा ग्रहण कर अपनी बहुमूल्य रचनाओं के द्वारा उन्होंने रूस में भारत विद्या को एक विषय के रूप में स्थापित किया. इ. प. मिनायेव की परंपरा को उन के सुयोग्य छात्रों स.फ. ओल्देनबुर्ग, फ. ई. श्चेरबत्स्कोइ, द. कुद्रयाव्स्की, न. द. मिरोनोव आदि ने आगे बढ़ा कर गौरवान्वित किया. इ. पा. मिनायेव ने विशेष रूप से बौद्ध धर्म का अध्ययन किया था परंतु उन की लगभग डेढ़ सौ प्रकाशित और बहुत सी अप्रकाशित रचनाओं में अन्य विषयों के अतिरिक्त प्राचीन भारत से ले कर समकालीन भारत तक के विविध पहलुओं को समेटा गया है. भारतीय लोक साहित्य के वह कदाचित पहले रूसी अध्येता थे. मिनायेव घुमक्कड़ विद्वान थे, जिन्होंने भारत की तीन लंबी-लंबी यात्राएँ की थीं जिन के दौरान भारतवर्ष के अतिरिक्त लंका, बर्मा और नेपाल के भी छोटे छोटे इलाकों को निकट से देखा था (इन यात्राओं की तुलना के अंतर-राष्ट्रीय सम्मेलनों में भाग लेने वाले पेशेवर सम्मेलनबाज़ विद्वानों या सांस्कृतिक विनिमय कार्यक्रमों से अधिकाधिक लाभ उठाने वाले विद्वानों की वार्षिक, छमाही या मासिक हवाई यात्राओं से नहीं करनी चाहिए) कलकत्ता से प्रकाशित होने वाली शोध पत्रिका 'इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टरली' ने सन् 1934 में (खंड 10, अंक 4, पृष्ठ 811-826) में अलेक्सांद्रा श्नेइदेर द्वारा लिखित मिनायेव के विषय में एक लेख प्रकाशित किया था जिस

की प्रारंभिक टिप्पणी में प्रो. श्चेर्बत्स्कोइ ने मिनायेव के विषय में लिखा है. वह न केवल पालि और संस्कृत के उद्‌भट विद्वान थे जिन के प्रति हम इस लिए कृतज्ञ हैं कि उन्होंने भारतीय इतिहास और भूगोल संबंधी ग्रंथों के महत्वपूर्ण संस्करण हमें दिये बल्कि वह एक महान घुमक्कड़ तथा भारत और रूसी साम्राज्य के बीच स्थित देशों के इतिहास और भूगोल के आधिकारिक विद्वान भी थे.

इ. पा. मिनायेव का जन्म 21 अक्तूबर 1840 को मध्य रूस में स्थित तंबोव नामक जिले में हुआ था. स्कूली शिक्षा तंबोव में ही पूरी हुई. उन की शिक्षा की ओर उन की माँ का विशेष ध्यान था. इस के बाद सन् 1858 से 1962 तक मिनायेव ने सेंट पीटर्सबर्ग विश्वविद्यालय के प्राच्यभाषा संकाय के चीनी मंचूर में अध्ययन किया. विश्वविद्यालय की परीक्षा के एक अंश के रूप में लिखे गये उन के प्रबंध 'मंगोलिया विषयक भौगोलिक अध्ययन' के विषय में परीक्षकों की राय थी कि 'यह एक विशाल कार्य है जो अध्यापकों और परीक्षकों की आवश्यकताओं से कहीं अधिक ऊँचा है.'

मिनायेव को बौद्ध धर्म और चीनी भाषा की शिक्षा प्रो. व. प. वसीलेव से मिली तथा बौद्ध धर्म के मूल स्रोतों के अध्ययन की इच्छा ने उन्हें संस्कृत की ओर आकर्षित किया. यहाँ से मिनायेव का भारत अध्ययन आरंभ होता है. सेंट पीटर्सबर्ग विश्वविद्यालय में संस्कृत के सब से पहले प्रो. क. अ. कोस्सोविच से उन्होंने संस्कृत सीखी. फिर पालि और प्राकृत भाषाओं का भी अध्ययन किया. पालि के तो वह अपने समय में यूरोप के सर्वश्रेष्ठ विद्वान माने जाते थे. बाद में आधुनिक भारतीय भाषाओं का भी अध्ययन किया. उन की यात्रा डायरियों से हमें पता चलता है कि उन्होंने अपनी यात्राओं के दौरान संस्कृत, पालि, हिंदुस्तानी, अंग्रेज़ी आदि भाषाओं के द्वारा जनता के विभिन्न वर्गों के साथ सीधा संपर्क स्थापित किया.

सन् 1863 से 1868 तक मिनायेव ने जर्मनी, इंग्लैंड और फ्रांस में भारतविद्या का विशेष अध्ययन किया. जर्मनी में वेबर और बेंफी के साथ रह कर अपने संस्कृत ज्ञान को बढ़ाया और फ. बोप ने भारतीय भाषाओं के तुलनात्मक व्याकरण का अध्ययन किया, लंदन और पेरिस के पुस्तकालयों में प्राचीन पांडुलिपियों पर कार्य किया. पेरिस के राष्ट्रीय पुस्तकालय में उन्होंने पालि की पांडुलिपियों की सूची तैयार की थी जो कि वहीं पर हस्तलिखित रूप में पड़ी हुई है.

सन् 1868 में स्वदेश लौटने के एक वर्ष बाद सन् 1869 में उन का शोध प्रबंध 'प्रातिमोक्ष सूत्र, बौद्ध प्रार्थना ग्रंथ, प्रकाशित और अनूदित' प्रकाशित हुआ. इस के बाद वह सेंट पीटर्सबर्ग विश्वविद्यालय में रीडर नियुक्त हुए. सन् 1872 में उन्होंने 'पालि भाषा के ध्वनि विधान एवं रूपविधान की रूपरेखा' पर डी. लिट की उपाधि प्राप्त की. इस गहन 'रूपरेखा' का अनुवाद फ्रांसीसी और अंग्रेज़ी भाषाओं में हुआ और अकादेमिक अ. पे. बरन्निकोव के अनुसार पालि भाषा के अध्ययन के लिए अंग्रेज़ी अनुवाद का उपयोग भारतवर्ष में भी किया गया था.

इस के बाद इ. पा. मिनायेव ने अपना संपूर्ण जीवन अध्ययन-अध्यापन को अर्पित किया. इसी सिलसिले में लंबी यात्राएँ भी कीं. वह अफगानिस्तान होते हुए स्थल मार्ग से (अन्य तीन यात्रायें जल मार्ग से की गयी थीं) भारत की चौथी यात्रा की तैयारी कर रहे थे जो कि चार साल चलने वाली थी परंतु तपेदिक से स्वास्थ्य खराब हो जाने के कारण उन्हें इलाज के लिए यूरोप जाना पड़ा. जून 1880 को 49 वर्ष की आयु में सेंट पीटर्सबर्ग में उन का स्वर्गवास हो गया. इ. पा. मिनायेव अविवाहित ही रहे.

यद्यपि भारतविद्या में उन के योगदान का पूरा आभास संक्षिप्त परिचय से नहीं मिल सकता फिर भी इवान पाव्लोविच मिनायेव की रचनाओं का विषयविस्तार बहुत अधिक है और उन्हें निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है : (1) भाषा विज्ञान, (2) साहित्य, (3) बौद्ध धर्म (4) ऐतिहासिक भूगोल, (5) लोकसाहित्य और लोकजीवन (6) समकालीन समस्याएँ, (7) यात्रा डायरियाँ.

भाषा विज्ञान से संबंधित रचनाओं में पालि का ऊपर उल्लिखित व्याकरण सैद्धांतिक भाषा विज्ञान पर विश्वविद्यालय के अध्यापन भाषण (1882-83), 'संस्कृत व्याकरण के रूप', (1885) पाणिनी विषयक लेख (1888), रोमनियों (जिप्सियों) तथा उन की भाषा से संबंधित फ्रांत्स मिक्लोशिच के लेख की विस्तृत समीक्षा (सन् 1877) आदि आते हैं. साहित्य विषयक रचनाओं में 'संस्कृत की महत्वपूर्ण कृतियों का परिचय' (1880) विशेष उल्लेखनीय है जो 1962 में प्रकाशित रूसी भारतविदों के लेखों के संकलन में पुनर्प्रकाशित हुई थी.

बौद्ध धर्म और उस का इतिहास मिनायेव के अध्ययन का प्रमुख विषय था यद्यपि विश्वविद्यालय में वह भारोपीय भाषाओं के तुलनात्मक व्याकरण के आचार्य के रूप में कार्य कर रहे थे. इस क्षेत्र में पहला उल्लेखनीय कार्य था 'प्रातिमोक्ष सूत्र' का अनुवाद और संपादन. इन की सब से अधिक महत्वपूर्ण कृति है सन् 1888 में प्रकाशित 'बौद्ध धर्म' नामक पुस्तक जिस का फ्रांसीसी भाषा में अनुवाद भी हुआ है. इस में बौद्ध धर्म की उत्पत्ति और विकास का मौलिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है. इस के साथ साथ मिनायेव ने संस्कृत और पालि के मूल पाठ भी प्रकाशित किये. इस ग्रंथ का दूसरा खंड पूरा करने से पहले ही मिनायेव का देहांत हो गया. इस में कुछ सामग्री उन की मृत्यु के बाद उनके शिष्य अकादेमिक ओल्देन्बुर्ग ने प्रकाशित की थी. इस के अतिरिक्त पालीटैक्स्ट सोसायटी की पत्रिका में भी उन्होंने योगदान किया.

ऐतिहासिक भूगोल की रचनाओं का आरंभ विश्वविद्यालय के छात्र काल में लिखे मंगोलिया विषयक प्रबंध से होता है. अन्य कृतियों में विशेष उल्लेखनीय है 'अमू दरिया के उद्‌गम स्थल में स्थित देशों की जानकारी' (1878). मिनायेव के अनुसार इतिहासकार, पुरातत्ववेत्ता, भाषा वैज्ञानिक, नृतत्वशास्त्री सभी की इस इलाके के अल्पपरिचित देशों में रुचि है. यह इलाका पश्चिम में बल्ख से ले कर पूर्व में पामीर तक फैला हुआ है तथा उत्तर में रूस और दक्षिण में हिंदुकुश की सीमाओं के बीच पड़ता है. 'तटस्थ क्षेत्र' में पड़ने के कारण ये देश आंग्ल-भारतीय अधीनस्थ क्षेत्र को बाहरी चिंताओं से बचाते हैं तथा इस इलाके को ले कर उस जमाने में दीर्घकालीन राजनयिक बातचीत भी चली थी. इस के अतिरिक्त मिनायेव ने भारत और पश्चिम के पुराने संबंधों, मार्को पोलो और अफनासी निकीतिन की भारत यात्राओं, रूसी विद्वान यात्री न.म. प्रज्ञेवाल्स्की की मध्य एशिया की यात्राओं के विषय में भी महत्वपूर्ण रचनाएँ दी हैं. अफनासी निकीतिन की 'तीन समुंदर पार की यात्रा' के पाठ का संपादन करने के साथ-साथ उन्होंने पुराने घुमक्कड़ों, आधुनिक भूगोलवेत्ताओं, यात्रियों, इतिहासकारों की रचनाओं से समानांतर उदाहरण भी दिये हैं. एक अन्य रोचक रचना है 'पुराने जमाने में रूस के भारत के बारे में इरादे' (सन् 1884). यह किन्हीं द. कोवेको की पुस्तक की समीक्षा है जिस का शीर्षक था 'ज़ार अलेक्सेई मिखाइलोविच का मुहम्मद युसुफ कासिमोव को आदेश जिन्हें सन् 1675 में मुगल सम्राट औरंगज़ेब के पास भेजा गया था.' इस की समीक्षा में मिनायेव ने लिखा है कि कासिमोव के अतिरिक्त एक अन्य रूसी यात्री सेम्योन मालेन्की भी अपने व्यापारिक दल के साथ भारत आया था तथा दिल्ली में मुगल सम्राट से मिला था (यह बात सत्रहवीं शताब्दी के अंत तथा अठारहवीं शताब्दी के आरंभ की है) पहली भारत यात्रा के बाद सन् 1876 में उन्होंने 'व्येस्तिक येव्रोपि' नामक पत्रिका में यात्रा नोटों के आधार पर बिहार, मथुरा, कुमाऊँ, नेपाल और लंका का भौगोलिक तथा अन्य विवरण प्रकाशित किये जिन में से लंका, नेपाल और बिहार का परिचय उन्होंने बौद्ध धर्म के अध्येता के रूप में दिया है.

लोक साहित्य और लोकजीवन : लोकजीवन में मिनायेव की सहज रुचि थी. अपनी

पहली भारत यात्रा के समय उन्होंने जून से अगस्त 1875 तक चार महीने कुमाऊँ में भी बिताये और वहाँ की लोककथाओं, होली के गानों और स्वांगों का संग्रह किया. रूस लौट कर अल्मोड़ा के गायकों के बारे में एक विस्तृत लेख लिखा तथा सन् 1876 में लोककथाओं और दंतकथाओं का रूसी अनुवाद प्रकाशित किया. इस की भूमिका में उन्होंने वहाँ के लोक-जीवन पर प्रकाश डाला है तथा यह भी लिखा है कि एक यूरोपीय होने के नाते उन्हें इन कथाओं का संग्रह करने में किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा. कुमाऊँ के लोगों के बारे में उन्होंने स्पष्ट और सहज रूप में लिखा है, बातें बना कर वह नहीं लिखते. यह संग्रह सन् 1966 में रूसी भाषा में दुबारा प्रकाशित हुआ था. होली के गानों और स्वांगों का प्रकाशन मिनायेव की मृत्यु के बाद अकादेमिक ओल्देन्बर्ग ने किया. गीतों का रूसी अनुवाद नेवारी भाषा के रूसी विद्वान डॉ. कोनराद ने किया.

कुमाऊँनी लोकसाहित्य के क्षेत्र में मिनायेव का योगदान अद्वितीय है क्योंकि इस दिशा में अब तक बहुत कम काम हुआ है. मिनायेव द्वारा संकलित सामग्री का महत्त्व इसलिए और भी बढ़ जाता है कि उस में से कितनी तो अब तक वास्तविक जीवन से लुप्त हो गयी होंगी. इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि मिनायेव द्वारा संकलित कुमाऊँनी लोकसाहित्य को मूल कुमाऊँनी के साथ हिंदी में अनूदित कर प्रकाशित कराया जाये तथा सौ साल पुराने पाठ के आधार पर कुमाऊँनी भाषा में इन सौ सालों में हुए परिवर्तनों का अध्ययन किया जाये.

समकालीन समस्याएँ : इ. पा. मिनायेव की रचनाओं से समकालीन भारत, लंका, बर्मा, नेपाल और अफ़गानिस्तान के समकालीन जीवन और इतिहास की महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है. बर्मा में वह तब पहुँचे जब अंग्रेज़ों ने वहाँ कब्ज़ा किया ही था. यह उन की तीसरी यात्रा थी (1885-86). उन्होंने अंग्रेज़ों की लूटपाट और अत्याचारों को स्वयं अपनी आँखों से देखा. अंग्रेज़ लोग डाकुओं (विद्रोहियों) को मार कर उन की लाशों को लोगों को दिखाने के लिए रख देते थे, बौद्ध मठों के प्राचीन पुस्तकालयों से पुराने हस्तलिखित ग्रंथों को लूट रहे थे. इंग्लैंड और रूस के लिए अफ़गानिस्तान के राजनीतिकों पर तो उन्होंने बहुत लेख लिखे हैं. भारतवर्ष के खेतिहर मजदूरों, भूमिहीन किसानों की हालत, लोगों के रहनसहन, धार्मिक मतभेदों, अंग्रेज़ी शासकों के प्रति भारतीय जनता की भावना पर भी स्पष्ट ढंग से अपनी डायरियों में जगह-जगह लिखा है.

यात्रा डायरियाँ : समाकालीन समस्याओं की तरह यात्रा डायरियों को भी एक अलग विषय मानना होगा. सोवियत संघ में प्रकाशित मिनायेव की जीवनियों में इन दोनों को अलग विषय के रूप में नहीं रखा गया है परंतु ऐसा न करने से मिनायेव का व्यक्तित्व पूरी तरह से हमारे सामने नहीं आता जब कि मिनायेव के कृतित्व में इन दोनों का विशिष्ट महत्त्व है. मिनायेव की पहली यात्रा की डायरी अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है (उस का संपादन आजकल सोवियत विद्वान् ग. ग. कोतोव्स्की कर रहे हैं). दूसरी और तीसरी यात्राओं की डायरियाँ बहुत समय से तैयार रहने के बावजूद सन् 1955 में ही प्रकाशित हो सकी थीं जिस के प्रधान संपादक अकादेमिक अ. पे. बरान्निकोव थे. ये डायरियाँ मिनायेव ने व्यक्तिगत उपयोग के लिए लिखी थीं—संभवतः प्रकाशन के लिए नहीं. इस लिए इन की शैली भी व्यक्तिगत है तथा कहीं-कहीं उन में अधूरापन भी. परंतु फिर भी इन डायरियों से हमें अत्यंत महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है. इन डायरियों को उन की यात्राओं के साथ जोड़ कर देखना होगा.

इवान पाव्लोविच मिनायेव की यात्राओं की कहानी 'रूसी भौगोलिक सभा' की उन की सदस्यता से जुड़ी हुई है. दिसंबर 1871 को उन्हें 'रूसी भौगोलिक सभा' की सदस्यता प्राप्त हुई. अपनी सदस्यता को उन्होंने पूरी सक्रियता से निभाया. 'रूसी भौगोलिक सभा' ने ही उन की भारत यात्राओं का आयोजन किया था. पहली यात्रा सन् 1874 से सन् 1875 के बीच हुई और इस दौरान उन्होंने लंका, भारत और नेपाल का भ्रमण किया. दूसरी यात्रा सन् 1880 में हुई जिस के दौरान केवल भारत का ही भ्रमण किया; तीसरी यात्रा सन् 1885-1886 में हुई जिस के दौरान भारत और बर्मा का भ्रमण किया.

पहली यात्रा : (1874-75) : संस्कृत, पाली और आधुनिक भारतीय भाषाओं के विद्वान् के रूप में इ. पा. मिनायेव पहले रूसी भारतविद थे जिन्होंने इस प्रकार की भारत यात्रा की. इस यात्रा का उद्देश्य था बौद्ध धर्म से संबंधित स्थानों का प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त करना तथा प्राचीन पांडुलिपियाँ एकत्रित करना परंतु इस के साथ उन्होंने अन्य विषयों का भी अध्ययन किया, जैसे कुमाऊँनी लोकसाहित्य का संकलन, लंका में वेव्दा कबीले के जीवन और भाषा का अध्ययन. सब से पहले वह लंका गये, वहाँ से 1 जनवरी 1975 को बंबई पहुँचे. वहाँ से बिहार, नेपाल और अल्मोड़ा गये. नैनीताल से अल्मोड़ा, श्रीनगर, टिहरी होते हुए मसूरी तक की यात्रा उन्होंने पैदल पूरी की. अल्मोड़ा से श्रीनगर के मार्ग (रोड) की प्रशंसा करते हुए उन्होंने लिखा है कि अगस्त की बारिश के बावजूद सड़क कहीं टूटी-फूटी नहीं थी. अल्मोड़ा में वह तीन महीने से कुछ अधिक समय तक रहे.

दूसरी यात्रा (1880) : यह यात्रा केवल चार महीने की थी. पहले बंबई पहुँचे. फिर पूना, हैदराबाद, अजिंठा वेरूक (एलोरा) रतलाम आदि बहुत से स्थानों का भ्रमण कर के वापस बंबई लौटे. 7 फ़रवरी, 1880 के टाइम्स आफ इंडिया में लिखा है कि किस प्रकार इ. पा. मिनायेव ने बंबई के पंडितों के साथ धाराप्रवाह संस्कृत में शास्त्रार्थ किया. 24 जनवरी 1880 की डायरी में उन्होंने भारतीय छात्रों के बारे में लिखा है, "आज सुबह एक युवा स्नातक मेरे पास आया. उस से बात कर के मुझे छात्र जीवन के बारे में निम्न जानकारी मिली :—

'अधिसंख्य विद्यार्थी ब्राह्मण हैं. औसत स्तर के लोग 30 रुपया महीना खर्च कर के अच्छी तरह रह लेते हैं; वह 10 रुपये कालेज की फ़ीस देता है, 1 रुपया कमरे का किराया; 15 रुपये भोजन के." इन आँकड़ों की तुलना इलाहाबाद के एक छात्र (राधारमन) के बजट से की जा सकती है जो कि मिनायेव ने 4 अप्रैल की डायरी में दिया है, '5 रु. महीना कालेज की फ़ीस, 1 रुपया महीना कागज़ और पुस्तकालय, 2 रुपया महीना मकान का किराया, 2 रु. महीना नौकर, 4 रु. रसोइया, 8 रु. भोजन का. कुल 22 रुपया महीना. कपड़े के 10 रु. सालाना. कपड़ों की धुलाई— 20 कपड़ों के 4 आने; छोटे कपड़े मुफ़्त.'

तीसरी यात्रा (1885-1886) : इस बार मिनायेव दो रूसी सैनिक अफ़सरों के साथ आये थे जिन्हें आंग्ल-भारतीय सैनिकों के युद्धाभ्यास के अवसर पर निमंत्रित किया गया था. युद्धाभ्यास के बाद मिनायेव सीधे बर्मा चले गये जहाँ उन्होंने बहुत से हस्तलिखित ग्रंथ एकत्रित किये. बर्मा से वापस कलकत्ता आये, वहाँ से दार्जिलिङ गये जहाँ तिब्बतियों से मिले. इस डायरी से तत्कालीन बर्मा के इतिहास और वहाँ उपलब्ध प्राचीन बौद्ध ग्रंथों के विषय में आधिकारिक जानकारी मिलती है.'

इस प्रकार इवान पाव्लोविच मिनायेव बहुमुखी प्रतिभा संपन्न घुमक्कड़ भारतविद् के रूप में हमारे सामने आते हैं. अकादेमिक अ. पे. बरान्निकोव के शब्दों में, 'एक विद्वान् के रूप में इ. पा. मिनायेव विचित्र मार्ग से गुजरे. उन्होंने प्राच्य भाषा विभाग के चीनी मंचूर विभाग में शिक्षा पायी परंतु अपने को भारत अध्ययन में अर्पित कर दिया. वह पूर्व के इतिहास को पढ़ाने की तैयारी कर रहे थे परंतु भारतीय भाषाओं के तुलनात्मक व्याकरण की कुर्सी सँभालती पड़ी जिस विषय में उन की कमी भी सक्रिय एवं गहरी रुचि नहीं थी.'

इवान पाव्लोविच मिनायेव की अधिकांश रचनाएँ आजकल दुलर्भ हैं इस लिए उन का चुनाव कर के उन का नया संकलन छापना चाहिए जिस से भारत के विद्वानों को बहुत लाभ होगा.

—हेमचंद्र पांडे

कबीर का मुजरा

मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद् के तत्वावधान में नवंबर के अंतिम दो दिन रायपुर के रविशंकर शुक्ल हॉल में हुए कबीर उत्सव का उद्घाटन राज्य के शिक्षामंत्री अर्जुन सिंह ने किया. पहले दिन **पंडित विनय मोहन शर्मा** ने कहा कि हम कबीर को समन्वयवादी न कह कर चिंतक कह सकते हैं. दरअसल, उन की वाणी में अनुभूति थी, रस था. यही वजह थी कि वह आम आदमी के दिल तक पहुँच सके. कबीर जिस काल में पैदा हुए वह विसंगतियों से भरपूर था. उस समय सिकंदर लोधी का निरंकुश शासन था. ऐसे समय कबीर ने अत्याचारों को सहन करते हुए समाज की बुराइयों के विरुद्ध आवाज़ उठायी. उन की भाषा सहज, सरल के अलावा तीखी थी.

अंतिम दिन, 'वर्त्तमान संदर्भ में कबीर की प्रासंगिकता' पर परिचर्चा में हरिशंकर परसाई, प्रमोद वर्मा, विभुकुमार और डॉ. टी. नायक ने अपने आलेख पढ़े. डॉ. शिवमंगलसिंह 'सुमन' की अनुपस्थिति में **त्रिलोचन शास्त्री** ने अध्यक्ष पद सँभाला. **हरिशंकर परसाई** ने अपने आलेख में कहा, 'संत कबीरदास मध्ययुग के एक ऐसे कवि व्यक्तित्त्व थे जिन्होंने अपने समय के सत्य को आरपार देखा. एक फक्कड़ाना शक्तिशाली भाषा को गढ़ा और एक बेलौस शैली में उस सत्य को प्रकट किया. कबीर का सब से तीखा हमला जातिगत, संप्रदायगत पाखंड और अहंकार पर था. कबीर यथार्थवादी थे. जीवन के अनुभवों से सीधे जुड़े हुए थे. लिखित प्रमाण पर विश्वास नहीं करते थे. किस ने कब लिखा, क्यों लिखा, क्या लिखा, क्या हम उस लिखित को अंधे की तरह मानते जायें या बदलते जीवन को समझ कर यह नये विधान और विश्वास बनायें—यह प्रश्न कबीर के सामने सदैव रहा. इसी लिए कबीर दास कहते हैं : 'तेरा मेरा मनुआ बंदे कैसे एक होय रे, तू कहता कागज़ की लेखा मैं कहता आखन की देखा, तू कहता उलझावन-हारी मैं राखों सुलझाय रे.' वह इस बात पर भी सीधे हमला करते थे कि ज्ञान किसी की बपौती नहीं है. कबीर निरपेक्षता के महान् प्रतीक थे. इन की भक्ति में हिंदू मुसलमान सब थे. आज कबीर की प्रासंगिकता को समझने के लिए पहले तो कबीर के अपने युग और विसंगतियों को देखना चाहिए फिर यह देखना चाहिए कि वे विसंगतियाँ आज के समाज में किन रूपों में हैं. यदि वे आज भी हैं तो कबीर की प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है. परसाई का मानना है कि कबीर युग की विसंगतियाँ आज भी विद्यमान हैं. इस लिए कबीर के विद्रोही स्वर ने अपनी सार्थकता अभी भी खोयी नहीं है. परसाई ने तो यहाँ तक घोषणा कि मेरे जैसा लेखक भी कबीर से अपना रिश्ता मानता है. कारण यही है कि 'कबीरदास आज भी आधुनिक हैं. उन की वाणी आज भी सार्थक है और प्रेरणा देती है.'

प्रमोद वर्मा ने अपने आलेख में क़बीर और तुलसी की तुलना की लेकिन साथ ही उन्होंने यह भी कहा, 'कबीर अपने युग की विषमताओं और विसंगतियों से भलीभाँति परिचित हो कर भी धर्म विरोधी आचरण को ही तत्कालीन सामाजिक दुराव्यवस्था का कारण मान बैठे. कबीर और तुलसी दोनों ने त्रास और संताप झेले थे. लेकिन जहाँ कबीर संताप को अनुभव करते ही उस के कारण की खोज में सीधे सामाजिक वैषम्य तक पहुँच पाते हैं और इस विषमता को बनाये रखने वाली व्यवस्था के विरोध को ही अपना ध्येय बना लेते हैं वहाँ तुलसी अपने लिए सुरक्षित रास्ता चुनते हैं. आज हमारे विद्वान कबीर को समाज सुधारक के नाम से पुकारने का दम भरते हैं. लेकिन समाज सुधारक कहने वाले विद्वान स्वयं जानते हैं कि सुधारक के कोई विशेष लक्षण उन में नहीं हैं. इस लिए वे दूसरी ही साँस में उन के समाज सुधार वाले पक्ष को गौण बताते हुए उन की भक्ति रूप को सर्वोपरि घोषित कर देते हैं. कबीर का सामाजिक विद्रोह उन की भक्ति तत्त्व का उच्छिष्ट नहीं है जैसा कि कबीर साहित्य के मर्मज्ञ डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने बताया है बल्कि हमारी विनम्र सम्मति में उन की विशिष्ट तथा अनोखी भक्ति—पद्धति की उन की इस विद्रोह से उपज है. भक्ति साधारणतया मनुष्य को आत्म-केंद्रित बनाती है लेकिन सिर से ले कर पैर तक भक्ति में डूब कर भी कबीर न तत्काल से कटे न आधुनिकता से. उन की आध्यात्मिक दुनिया सामाजिक व्यवहार की दुनिया से अलग नहीं है.

रायपुर के **विभुकुमार** के अनुसार, 'कबीर ने अपने साहित्य को समय से जोड़ा. उन्होंने नारेबाज़ी नहीं की, फतवेबाज़ी और लफ्फाज़ी नहीं की. सामान्यजन की समस्याओं से सीधे साक्षात्कार किया. वर्त्तमान समय में कबीर प्रासंगिकता के संदर्भ में दो मुख्य बातें हैं—भाषा की समस्या की ओर ऐसे लेखन की जो आम आदमी की समझ में आ सके, आम आदमी की भाषा में हो और फिर भी साहित्यिक हो. जो लेखन व्यापक धरातल पर आम आदमी से जुड़ा होगा उसें भाषा की समस्या कभी नहीं सालेगी. कबीर की भाषा वर्त्तमान लेखन को उस की प्रासंगिकता को बरकरार रखने के लिए सार्थक उदाहरण है. दूसरी बात यह है कि आज लेखक दावा करता है कि वह आदमी से जुड़ा है. आम आदमी की लड़ाई में हिस्सेदार है लेकिन विडंबना यह है कि आम आदमी जिस भाषा को बोलता समझता है उस भाषा में वह लिखता नहीं. कबीर ने यह किया. फिर भी यह नहीं कि कबीर का वह लेखन जो चालू या बोलचाल की भाषा में है आध्यात्मिक और गंभीर साहित्य से उन्नीस हो.

प्रभातकुमार त्रिपाठी ने परिचर्चा में भाग लेते हुए कहा कि कबीर विद्रोही कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं. भाषा व्यक्ति को बदलने की भूमिका अदा करती है और कबीर ने जिस भाषा में अपनी वाणी की रचना की वह भाषा तब भी दमदार थी और आज भी दम-दार है. उन्होंने कहा जब हम समस्याओं का सामान्यीकरण कर देते हैं तब समस्या से हट जाते हैं. **डॉ. कृष्णकुमार चतुर्वेदी** का मानना था कि जिन शब्दावलियों को ले कर हम चल रहे हैं वे हैं भी या नहीं. तब एक आंदोलन सामाजिक चेतना से शुरू होता था, तोड़ दिया जाता था. जिन जिन व्यक्तियों ने सामाजिक चेतना का सहारा लेना चाहा उन्हें अध्यात्मिक तौर पर तोड़ दिया गया. लेकिन कबीर ने उस समय की विसंगतियों पर ऐसे तीखा प्रहार किया कि वह टूटती फूटती नज़र आयीं. **डॉ. माया अरोड़ा** का कहना था कि कबीर की कही हुई बातें चौंकाने वाली थीं. आज के परिवेश में कवि का आदर नहीं है. भक्ति का सम्मान नहीं. लेकिन कबीर की कविता ने जन जन के मन में सम्मान अर्जित किया. **नागानंद मुक्तिकंठ** ने कहा कि हमें कबीर की वाणी का गंभीरता से आकलन करना चाहिए. हमें यह भी देखना चाहिए कि हम भाषा को कितना समृद्ध कर सकते हैं. दरअसल, कबीर को आज सक्रिय किया जाना चाहिए. डॉ. **मलय** ने कबीर को हठयोगी के रूप में देखा है लेकिन **अशोककुमार झा** की मान्यता थी कि कबीर रहस्यवादी होने के साथ साथ धर्म-निरपेक्ष भी थे. धार्मिक उदारता से आगे बढ़ कर वह इहलौकिकता में देखते थे. आज कबीर की तुलना नीत्से और सार्त्र से कर के आधुनिक ठहराने की कोशिश की जाती है. लेकिन आधुनिकता और प्रगतिशीलता का जो आज अर्थ है उस में कबीर की अपनी सीमाएँ हैं. **रमाकांत श्रीवास्तव** ने कहा कि कबीर पहले कवि थे जिन्होंने जिस दुश्मन के खिलाफ़ तलवार उठायी वह कमोबेश आज भी विद्यमान है. तथ्य और भाषा दोनों ही स्तरों पर कबीर उच्चकोटि के थे. **निरंजन महावर** का कहना था कबीर को क्रांतिकारी कवि के रूप में ढूँढ़ना उन के प्रति अन्याय है. कबीर दरअसल जनवादी कवि थे. उन्होंने जनसमस्याओं से जुड़ कर संघर्ष किया. **गजेंद्र तिवारी** ने सहजता की कसौटी हाज़िर की और फ़रमाया सहज चीज़ों को पेचीदा न बनाइये. लगता है इस परिचर्चा ने कबीर जैसे सहज विचारों के व्यक्ति को पेचीदगी के दलदल में पहुँचा दिया है. **डॉ. नरेंद्रदेव वर्मा** ने कहा कवि सांप्रदायिक नहीं होते, पढ़ने वाले अलबत्ता हो सकते हैं. कबीर को जनवादी, मार्क्सवादी, पूँजीवादी और समाजवादी जैसे विश्व-

विद्यालयी चौखटे में मत कसिये, उसे केवल कबीर ही रहने दीजिए.

परिचर्चा समाप्त होते होते **हरिशंकर परसाई** ने कहा, क्रांति एक प्रक्रिया होती है. कबीर ने कुछ ऐसा ही प्रयास किया था. अपने अध्यक्षीय भाषण में **पं. त्रिलोचन शास्त्री** ने कहा कि कुछ समय पहले कहा गया था कि भाषा चुक गयी है. जिन शब्दों से पहले के साहित्यिकों ने काम लिया उन की विवेचना नहीं हो सकती. लेकिन जैसे जैसे जीवन में बदलाव आया वैसे वैसे भाषा भी बदलती रहती है. शैली अलग हो सकती है भाषा वही रहती है. कबीर घुमक्कड़ थे, इस लिए उन की भाषा में काफी शब्द आ गये. कुछ लोग उन्हें अपढ़ मानते हैं, लेकिन वह अपढ़ नहीं थे. कबीर ने जो भाषा दी है उस की अपनी खूबसूरती है. यह बात ठीक है कि उस में स्थानीय अनुशासन नहीं है. हकीकत यह है कि कबीर सब से ज्यादा जीवित कवि थे. कबीर ने व्याकरण का अनुशासन कभी नहीं माना. ऐसी कविता की है जो अपने आप में पूर्ण है. कबीर की तेजस्विता एकदम अनुशासन भंग करने वाली है. दरअसल कबीर की यह मान्यता है कि सब मनुष्य समान हैं. कबीर को जानने के लिए जो संदर्भ उस समय थे वह कमोबेश आज भी हैं. कवियों के सामने आज यह चुनौती है कि व्याकरण के दायरे को तोड़ कर कबीर की तरह समर्थ कवि बन सकें.

पुरस्कार

साहित्य अकादेमी

साहित्य अकादेमी के 1975 के पुरस्कारों की घोषणा के अनुसार इस बार 17 लेखकों को पुरस्कार दिया जायेगा. हिंदी में यह पुरस्कार **भीष्म साहनी** को उन के उपन्यास 'तमस' पर और राजस्थानी में **मणिमधुकर** को उन के काव्य-संग्रह 'पगफेरो' पर दिया गया है. डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी की अध्यक्षता में हुई कार्यकारिणी द्वारा अन्य पुरस्कृत लेखकों के नाम इस प्रकार हैं :

1–**असमिया** : नवकांत बरुआ; 'काका देउतार हर' (उपन्यास)

2–**बंगला** : निमल कार; 'असमाया' (उपन्यास)

3–**डोगरी** : कृष्ण स्माइलपुरी; 'मेरे डोगरी गीत' (कविता)

4–**अंग्रेजी** : नीरद चौधुरी; 'स्कालर एक्स्ट्रा आर्डिनरी' (जीवनी).

5–**गुजराती** : मनुभाई पंचोली; 'साक्रे टीज' (उपन्यास)

6–**हिंदी** : भीष्म साहनी; 'तमस' (उपन्यास)

भीष्म साहनी

7–**कन्नड़** : एस. एल. भैरप्पा; 'दातू' (उपन्यास)

8–**कश्मीरी** : गुलाम नबी खयाल; 'गाशिर मुनार' (निबंध).

9–**मैथिली** : गिरींद्र मोहन मिश्र; 'किछ देखल किछ सुनल' (संस्मरण).

10–**मलयालम** : ओ. एन. वी. कुरुप्प; 'अक्षरम्' (कविता).

11–**मराठी** : आर. बी. पाटनकर; 'सौंदर्य मीमांसा' (समीक्षा).

12–**उड़िया** : राधामोहन गडनायक; 'सूर्य ओ अंधकार' (कविता).

13–**पंजाबी** : गुरदयाल सिंह; 'अध चाननी रात' (उपन्यास).

14–**राजस्थानी** : मणि मधुकर; 'पगफेरो' (कविता)

15–**तमिष** : आर. दंडयुथम्; 'थरक्कल तमिष इलविकयम (निबंध).

16. **तेलुगु** : बोयी भिमन्ना; 'गुडिसेल कालिपोटुन्ने' (कविता)

17–**उर्दू** : कैफ़ी आज़िमी ; 'आवारा सजदे' (कविता)

मणि मधुकर

रंगमंच

राजधानी में भरत मुनि

मुंबई मराठी साहित्य संघ की नाट्यशाखा ने राजधानी के 'महाराष्ट्र रंगायन' में **विशाखदत्त** रचित संस्कृत नाटक **मुद्राराक्षस** का मराठी रूप भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के अनुसार निर्मित विशेष रंगमंच पर 11 दिसंबर को प्रस्तुत किया. जाहिर है कि छठवीं या आठवीं शताब्दी में पहली बार प्रस्तुत **मुद्राराक्षस** का वही रूप नहीं होगा जिसे भरतमुनि ने कोई पाँच सौ वर्ष पहले प्रतिपादित किया था. विशाखदत्त ने स्वयं, भरतमुनि के नाट्यशास्त्र की बहुत सी चीज़ें जो उतने अरसे में घिस गयी थीं अपने इस नाटक में छोड़ दी थीं और बहुत कुछ आज नाट्यकर्मियों को छोड़ना होगा. कितना छोड़ना है और कितना स्वीकार करना है जिस से भरतमुनि का शास्त्रीय आस्वाद भी बना रहे और आधुनिक प्रेक्षकमन को ग्राह्य भी हो जाये इस की सुंदर बानगी इस नाटक के द्वारा अनुवादक **डॉ. गो. के. भट** तथा निर्देशिका **विजया मेहता** ने प्रस्तुत की.

'मुद्राराक्षस' संस्कृत का पहला रूढ़िभंजक तथा शुद्ध राजनीतिक नाटक है. संस्कृत नाटकों की परंपरा के अनुसार इस में नायिका या प्रमुख स्त्री पात्र नहीं हैं, न ही वह गीत्यात्मकता है. नाटक का विषय राजनीतिक जोड़-तोड़ है. जासूसी, हत्या, आतंक सभी कुछ इस में बड़ी कुशलता से बुना गया है और नीतिज्ञ चाणक्य की, राजनीतिविद् राक्षस पर विजय दिखायी गयी है तथा विरोधी राक्षस को चंद्रगुप्त का महामंत्री बना कर चाणक्य की दूरदर्शिता भी स्थापित की गयी है. इस प्रकार यह नाटक सामाजिक प्रासंगिकता भी रखता है जिस की ओर निर्देशिका **विजया मेहता** का ध्यान रहा है, यह स्पष्ट है. यह कहा जा सकता है कि संस्कृत नाटकों में से मंचन के लिए आज मुद्राराक्षस का चुनाव सर्वथा उपयुक्त है.

भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में रंगमंच के स्वरूप की विस्तृत निर्धारण की है, उन का माप तक दिया है. निर्देशिका का कहना है, 'मुद्राराक्षस के प्रस्तुत मंचन के समय भरतमुनि द्वारा वर्णित रंगमंच का ही केवल विचार किया गया है और उस के अनुसार हमारे नाट्यगृहों के मंच पर यह किस तरह तैयार किया जाये, इस दृष्टि से ही यह प्रस्तुत रंगमंच भरतमुनि द्वारा वर्णित रंगमंच के प्रति प्रामाणिक ही है. परिस्थिति के अनुरूप उस में थोड़ा परिवर्तन करना अपरिहार्य था, जिस का संबंध मूल प्रकृति से नहीं केवल ब्योरों से है.' प्रस्तुत मंच में रंगशीर्ष है जहाँ गायक और वादक बैठते हैं. नट-नटी प्रवेश की प्रतीक्षा करते हैं, रंगपीठ है और उन के दोनों ओर चार खंभों पर मंडप वाली मत-

'मुद्राराक्षस' में चाणक्य (चित्तरंजन कोल्हटकर) और राक्षस (रवी पटवर्धन)

वारणी. ये सभी लकड़ी के नक्काशीदार थे और बहुत ही प्रभावशाली. भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के अनुसार अभिनय तो अक्सर होते रहे हैं पर कहा जाता है कि पिछले सौ वर्षों में पहली बार भरतमुनि के अनुसार रंगमंच की सृष्टि इस नाटक में की गयी.

रंगमंच केवल भरतमुनि के व्याकरण का ही निर्वाह नहीं था बल्कि मंचन में उस का भरपूर सार्थक उपयोग किया गया था. भीतरी प्रकोष्ठ के लिए रंगशीर्ष का, स्वगत, आने जाने, दूरी तय करने आदि के लिए मत्तवारणी का. अभिनय में मुद्राएं, भंगिमाएं, गति, संकेत आदि भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के अनुसार थे. और अपना प्रयोजन सिद्ध करते थे. चलने के ढंग और हाथ की मुद्रा से पात्रों का वर्गभेद आदि स्पष्ट था. अभिनेता अधिकतर एक दूसरे की ओर न देख कर प्रेक्षकों की ओर देख कर ही बात करते थे. केवल किसी विशेष तनाव की मनःस्थिति में ही एक दूसरे को देखते थे. आज के यथार्थवादी अभिनय की अभ्यस्त आँखों को भी इस सब का अभिप्राय अटपटा नहीं लगता था. इस का श्रेय अभिनेताओं को है.

अभिनय में परंपरागत, बुलंद, नियंत्रित स्वरों का निर्वाह था. मानसिक उद्वेलन को गति देने के लिए संगीत का क्लासिकी नियोजन था. तीव्र गति से ऊँचे स्वरों में ही आवाज़ का चढ़ाव उतार और उसी स्थिति में काफी लंबे टुकड़े (स्वगत के भी) जो मराठी व्यावसायिक मंच के लिए आम बात है, राजधानी के कोमलकांत प्रेक्षकों के लिए आश्चर्यजनक थे. इस मोटे सुनहरे तार में शैलीबद्ध संकेतों की भाषा की महीन बुनावट से जो काम उभरता था वह बेजोड़ अभिनय का था जिस का सर्वोत्कृष्ट रूप **चित्तरंजन कोल्हटकर** के अभिनय में दीखा जिन्होंने चाणक्य की भूमिका की. उन की आवाज़ और अभिव्यक्ति में वह दृढ़ता और गरिमा थी जिस से वह दूरदर्शी, चतुर, संकल्पसिद्ध चाणक्य का व्यक्तित्व प्रस्तुत कर सके. **रवि पटवर्धन** (राक्षस) **रामचंद्र कुलकर्णी** (चंदनदास), **दिलीप दाणी** (सिद्धार्थक) और **नारायण घोसालकर** (मलयकेतु) सब ने अपनी भूमिकाओं का सफल निर्वाह किया पर चित्तरंजन कोल्हटकर का अभिनय कौशल, अपने तेज और संतुलन के कारण सब पर हावी रहा. संतुलित कुशल रूपांतरण, संक्षेपण, अभिनय-रीति, मंच-विन्यास, प्रस्तुति में कल्पना प्रवणता, और शास्त्रीय शुद्धता के कारण यह नाटक दिल्ली के रंगप्रेमियों के लिए एक अरसे तक स्मरणीय रहेगा.

मुद्राराक्षस का भरत मुनि के अनुसार मंच : बीच में रंगशीर्ष—रंगपीठ और दोनों तरफ मत्तवारणी

किसी घटना के बारे में

ज्यामितीय गलियारों की (अपनी ही रची हुई) अँधेरी छायाओं से होते हुए मनु पारेख के चित्रों के रूपाकारों ने अब अपने को चटख रंगों में प्रकट कर दिया है : चित्र स्पेस का एक प्रकार का ज्यामितीय विभाजन अब भी उन के यहाँ बरकरार है लेकिन उन के चित्रों की ज्यामिति से बढ़ कर अब हम उन के रूपाकारों की गतिमयता की ओर अधिक ध्यान देते हैं. उन के रूपाकारों में मानव आकृति के अंगों के 'उदाहरण' हैं; यौन बिंबों के प्रत्यक्ष और परोक्ष संकेत हैं, और वे जैसे एक दूसरे का पीछा करते हुए एक समग्र प्रभाव में बदल जाना चाहते हैं. मनु पारेख (ज. 1939) के नये चित्रों को (**धूमिमल वीथी, नयी दिल्ली**) को देखते हुए हम दरअसल किसी मानवीय घटना (या घटनाओं) की एक आशंकित, बेचैन, उत्सुक, क्षुब्ध, सतर्क **प्रक्रिया** पर गौर करते हैं —और यह प्रक्रिया ही फ़िलहाल उन के चित्रों का मूल है.

इस प्रक्रिया को वह वर्णनात्मक ढंग से नहीं रखते—वैसा होने पर उन के चित्रों में हमारी दिलचस्पी कम हो जाती : एक **ज्यामितीय गर्भगृह** से उन के रूपाकार अपने सिर उठाते हैं, 'हाथ पाँव' बाहर निकालते हैं, और अपनी दिशाओं को टटोलते हैं : लेकिन इस **टटोलने** में एक प्रकार की ऊर्जा है और यही इन्हें गतिमयता प्रदान करती है : भिन्न दिशाओं की ओर अग्रसर उन के रूपाकार ही दरअसल चित्र स्पेस को 'घटनात्मक' बनाते हैं, वरना मनु पारेख के नये चित्रों का धरातल एक प्रकार की 'समरसता' ही लिए हुए है, उस के लिए 'गहराई' प्राप्त करने का अतिरिक्त प्रयत्न नहीं किया गया.

मनु पारेख के इन रूपाकारों और रंगों के बीच ही ज्यामितीय गर्भगृहों की आकार रेखाएँ हैं, और बहुत बारीक काती गयी रेखाएँ भी : ये रेखाएँ और उन के रूपाकारों की शैली—मनु के चित्रों को अभिव्यंजनात्मक (एक्सप्रेसनिस्ट) संदर्भ देते हैं, लेकिन यह 'शैलीबद्धता' फ़िलहाल उन की अभिव्यक्ति के आड़े आती नहीं मालूम होती. मनु पारेख के चटख रंग—जैसे एक चित्र में अत्यंत चटख नारंगी—ज़रूर कहीं कहीं वजनी नहीं लगते और उन के पीछे अभिव्यक्ति से अलग एक आकर्षण बुनने की कोशिश दिखायी देती है. यह आकस्मिक नहीं है कि मनु के इन चित्रों में से जहाँ सफ़ेद की प्रमुखता है—चित्ररूप और धरातल में उस की अधिक व्याप्ति है—वहाँ हम उन की अभिव्यक्ति को अधिक अच्छी तरह ग्रहण कर पाते हैं या फिर '**मध्य रात्रि का रहस्य**' जैसे चित्र में जहाँ चटखरंगी

प्रस्तुतियाँ कुल चित्ररूप से अलग नहीं हैं : चटखरंग क्षेत्र जहां 'अलग थलग नहीं' खड़े हुए.

मनु के इन चित्रों में से कुछ मस्तक (या शीर्ष) शीर्षक चित्र भी हैं : इन में रेखाओं का एक समूहन है, ऐसी रेखाओं और लंबोतरे आकारों का समूहन, जो अपने चाक्षुष रूप में हमें पीड़ा और एक व्यग्रता से जोड़ते हैं : जैसे एक धक्के के साथ कोई चीज़ बाहर आना चाहती हो और हम उस के स्वरूप को समझने की कोशिश कर रहे हों. लेकिन अंततः इस प्रदर्शनी में मनु के 'प्रमुख' रूपाकारों और ज्यामिति गर्भ वाले ही चित्र अधिक ध्यान खींचते हैं और यह स्वाभाविक भी है, क्यों कि उन्हीं से हम उन की शैली और अभिव्यक्ति को एक 'समग्रता' में देख पाते हैं.

चोलमंडलम (मद्रास) के युवा चित्रकार दंपति **वासुदेव** और **अरनबाज** ने तीन वर्षों

लोकशैली के रेखांकनों में बन सकते हैं, उन की रेखाओं में जैसे एक लिपि मूलकता भी है : और रंगों में इन सब की उपस्थिति का वह उत्सव मनाते हुए लगते हैं : यों देखें तो वासुदेव के चित्र अपने ही बनाये हुए—तय किये हुए—लक्ष्यों को जैसा पूरा करते हुए लगते हैं—लेकिन ज़्यादा देर के लिए अपने में उलझाते नहीं. हम उन की शिल्पकुशलता और रंगों तथा टेक्सचर को सराह लेने के बाद और इन के द्वारा रचे गये 'उत्सव' में थोड़ी देर के लिए शरीक हो जाने के बाद, इन से जैसे 'मुक्त' हो जाते हैं.

वासुदेव ने अपनी एकल प्रदर्शनी (श्रीधराणी दीर्घा) में धातु रिलीफ की कृतियाँ भी रखी थीं—ये उन के तैलचित्रों की बनिस्पत अधिक संश्लिष्ट, संवेगजनित और संवेदनशील मालूम पड़ती है—इन की तकनीकी बारीकियों और सफ़ाइयों को तो हम पसंद करते ही हैं, इन

मनु पारेख : रूपाकारों में एक आहट है

बाद दिल्ली में अपनी एकल प्रदर्शनियाँ आयोजित कीं. वासुदेव (ज. 1941) के चित्रों में प्रायः शुरू से एक 'टेक्सचर' बुनने की प्रवृत्ति रही है—चित्र धरातल पर गझिन रंगपरतों के बीच तूलिकाघातों से और सहसा खींच दी गयी आकार रेखाओं से (जो कैनवास सतह की सफ़ेद को झलका देती है) वह जो टेक्सचर तैयार करते हैं, उस का एक आकर्षण है ज़रूर, लेकिन 'फलक पर रंग-फल प्राप्त करने जा... और वह अपने चित्रों को अलंकरण प्रियता से बचा नहीं पाते : रंगफल की बात हम यहाँ किसी प्रतीक रूप में नहीं कर रहे—उन के चित्रों में एक वृक्ष प्रायः यों भी मौजूद है जिस में चटखरंगी फल—सचमुच में रंगफल—लगे ही रहते हैं. इसी वृक्ष को चौतरफ़ा घेरे हुए या कहें कि इस के आसपास विभिन्न जीवों की आकृतियाँ और मानव आकृतियाँ भी

की अभिव्यक्तियों से भी एक संबंध बना पाते हैं. वासुदेव ने इन में सूर्य, वृक्ष, आँख, पत्तों और जीवाकृतियों के आकार, और अभिप्राय जैसे उन्मुक्त भाव से चित्रित किये हैं, इन में भी एक लिपिमूलकता है—और यहाँ हम वासुदेव की लिपि के चाक्षुष रूपों का आकर्षण तो देखते ही हैं, इस लिपि के 'मिथकीय' रूप को भी किसी हद तक साकार होता हुआ देखते हैं. रजतवर्णी और तपे हुए रंग की इन कृतियों में अँधेरे क्षेत्र भी हैं—दोनों ही तरह के वर्ण एक दूसरे का लाभ यहाँ उठाते हैं.

अरनबाज (ज. 1945) की कला शिक्षा भी वासुदेव की तरह ही मद्रास के ललित कला महाविद्यालय में हुई है. रेखांकनों की अपनी एकल प्रदर्शनी की 'कथावस्तु' का नाम उन्होंने **'रामायण की रेखाएँ'** रखा है. अरनबाज के रेखांकनों में भी हम लोककला की एक छाप
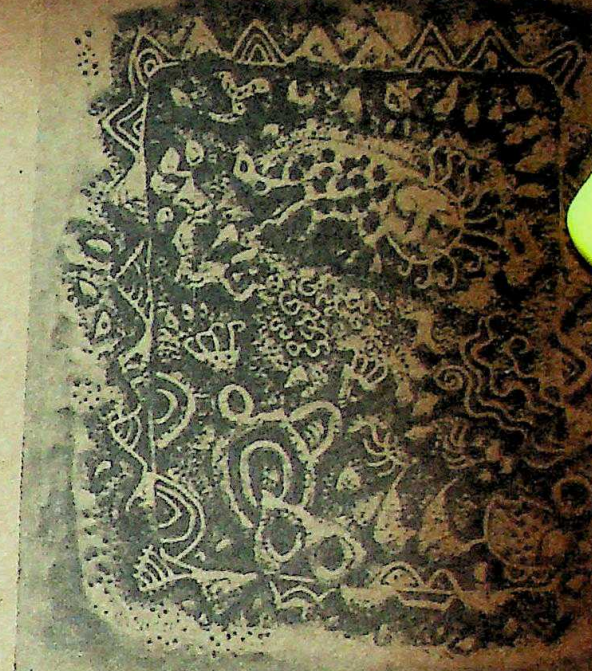
वासुदेव : धातु रिलीफ में एक कृति

देखते हैं : लोककला के अभिप्रायों और लोक शैली का ही अनुसरण उन्होंने इन रेखांकनों में किया है, और मंद, जलीय रंगों के से आभास के साथ उन्होंने इन रेखांकनों की रचना की है : रामायण के पात्र और प्रसंगों को इन रेखांकनों में उन्होंने 'स्वतंत्र' ढंग से रखा है—प्रत्येक रेखांकन में एक या दो पात्र या प्रसंग—उद्देश्य यों भी कथाक्रम की वर्णनात्मकता नहीं है, रेखाओं को मिथकीय रूपों में बुनना ही है—लेकिन अरनबाज ने इन रेखांकनों में फ़िलहाल न तो मिथकीय प्रतीति पैदा कर पायी हैं और न ही रेखाओं का एक स्वतंत्र आकर्षण बुन पायी हैं—लोकशैली के अनुसरण को उन के रेखांकनों में एक 'निजता' मिलनी अभी शेष लगती है.

मनु पारेख : ज्यामितिक गर्भगृह...

पासोलीनी की आखरी कृति

पीयर पाओलो पासोलीनी की अंतिम फ़िल्म **सोडम के 120 दिन** नवंबर में पेरिस में आयोजित प्रथम फ़िल्म समारोह में दिखाई गयी थी. दिवंगत फ़िल्मकार के अपने देश इटली में इस फ़िल्म के प्रदर्शन पर प्रतिबंध है. ब्रितानी समाचारपत्र **गार्डियन** में **गीडिओन बैंकमान** ने लिखा है कि पेरिस में इस फ़िल्म के प्रदर्शन की बारी आने पर काफ़ी हो-हल्ला हुआ था. इतालवी फ़िल्मकारों की एक टोली ने संवाददाता सम्मेलन में कम्युनिस्ट समर्थक वक्तव्य पढ़ कर अवसर के राजनैतिक उपयोग का प्रयास किया, इटली में फ़िल्म के प्रति सेंसर के रवैये का विरोध किया. बेर्तोलूची ('लास्ट टांगो इन पेरिस' के ख्यातिप्राप्त युवा इतालवी फ़िल्मकार, जो कुछ समय तक पासोलीनी के सहायक भी रह चुके हैं) ने इटली के युवा कम्युनिस्ट लीग की ओर से एक वक्तव्य पढ़ते हुए कहा कि पासोलिनी ने कम्युनिस्ट पार्टी की पाँत में सहकर्मिता का एक सार और संरक्षण पा लिया था. लिलीना कावानी ने आह्वान किया कि न केवल हताहत कामरेड की कृति की रक्षा की जाये बल्कि एक 'निर्णायक युद्ध' की तैयारी भी की जाये.

समीक्षक गीडिओन बैंकमान की राय है कि फ़िल्म देखने पर उन्हें इटली के फ़िल्मकारों की उक्त बातें हास्यास्पद लगीं. (3 अगस्त के **दिनमान** में पासोलीनी से भेंटवार्त्ता देखें, जिस में उन्होंने अपनी इस अंतिम फ़िल्म का पूर्वपरिचय दिया है.) पासोलीनी का वह तीखा प्रहार किसी को नहीं बख्शता जो उन्हों ने समाज के चेहरे पर किया है. पासोलीनी की अंतिम प्रकाशित पुस्तक के आखिर के कुछ दुस्साहसिक लेख पढ़ कर भी हम यह जान सकते हैं कि सही और लोकप्रिय मुद्दों को अभिव्यक्ति देने में पार्टी की योग्यता पर उन्हें सीमित विश्वास था. बेहतर होता कि इतने बड़े इतालवी प्रतिनिधिमंडल ने उस व्यक्ति और उस के कार्यों के बारे में बोलने में समय का सदुपयोग किया होता जिन्हें विदेशों में अक्सर ग़लत ढंग से समझा जाता है. उन्हें पासोलीनी की मृत्यु की परिस्थितियों के बारे में छपे प्रयोजनमूलक समाचारों पर बोलना चाहिए था.

'सोडम के 120 दिन' फ़िल्म मार्कुस द साद की पुस्तक पर आधारित है और पासोलीनी ने कहा है कि पुस्तक में दिये गये 'व्यभिचारमूलक संगठन ओर हत्याओं' के वृत्तांत में हम अधिक नहीं जोड़ना चाहते, लेकिन उन्होंने फ़िल्म में बहुत कुछ जोड़ा है : मार्कुस द्वारा की गयी समाज की तीखी आलोचना को बरकरार रखते हुए उन्होंने उसे समसामयिक आयाम दिया है. कथानक के 17वीं शताब्दी के परिवेश का उत्तरी इटली में फ़ाशियों के पिछलग्गू गणराज्य के परिवेश में रूपांतरण करते हुए और रोमा-नियत को तिलांजलि देते हुए उन्होंने यह दिखाया है कि निराशा एक राजनैतिक आयाम हो सकती है, एक वक्तव्य भी, जिसे फ़िल्म बनाने के कुछ दिन बाद उन की नियति ने मुहरबंद कर दिया. फ़िल्म कम कामोद्दीपक नहीं है. घटनाएँ वैसी ही हैं, जैसी पुस्तक में दी गयी हैं. शक्ति के प्रतिनिधि चार चरित्र (एक बैंक का मालिक, एक ड्यूक, एक न्यायाधीश और एक धर्माधिकारी जब कि बैंकमान ने लिखा है—एक मजिस्ट्रेट, एक प्रेज़ीडेंट और . . .) 16 कुंवारे लड़कों और कुवारी लड़कियों की एक टोली को अंततः 'आध्यात्मिक और शारीरिक' मृत्यु के लिए तैयार करते हैं. मानव शरीर के व्यावसायिक वस्तु की तरह प्रयोग को, जिस का द साद ने वर्णन किया है और मार्क्स ने जिसे सिद्धांतबद्ध किया है, फ़िल्म में तथ्यपरक आतंक में शैलीबद्ध किया गया है. हर चीज़ ऐसे रची गयी है कि प्रेक्षक को 'पासोलीनी के नर्क' में धकेल दिया जाये : अनुभूतियों का बहिष्कार, मनोविज्ञान, नाटकीयता, मानवीय क्रिया प्रतिक्रिया, स्वाभाविक शारीरिक क्रियाकलाप और सामाजिक मूल्यों का बहिष्कार. फ़िल्म बहुत अधिक शैलीबद्ध है और मुसोलीनी के वैभव को, स्थापत्य, वेशभूषा और फर्नीचर को पेश करने में तथा भाषा के प्रयोग में बहुत सावधानी बरती गयी है. भाषा बोली कम गयी है, ज्यादातर उस का पाठ किया गया है.

दार्शनिक स्थापनाओं की वायवीयता को जानबूझ कर उद्घाटित किया गया है. फ़िल्म की रूपरेखा तैयार करने में बुदैलेयर, नीत्शे, ब्लांको और क्लोसोवस्की पासोलीनी के लिए महत्त्वपूर्ण रहे होंगे, लेकिन ये भी उस अस्वीकार से नहीं बच पाये हैं, जो पासोलीनी उन का उद्धरण देने वाले चरित्रों पर उलीचते हैं. और स्थिर बिंबों की ठंडी और अमूर्त संरचना में वह उस बचाव तंत्र से भी हमें वंचित कर देते हैं जो शायद द साद के लिखित शब्दों की मुक्तता ने हमारी कल्पना को दी है. सारे दीवार उलट पलट कर गिर पड़ते हैं और सामाजिक रूढ़ियों की नग्न, क्रूर और अपरिमित नृशंसता का हमारे सामने पर्दाफ़ाश हो जाता है.

यथार्थ निरूपण पद्धति को बड़ी सावधानी से धारदार बनाया गया है. कृति से प्रेक्षक के तादात्म्य के क्षेत्र में कुछ चेष्टाएँ हैं—एक आत्महत्या, मृत्यु के समय एक हवा में उठा हुआ मुक्का. संगीतात्मक संकेत और सुंदर, सुकोमल और सुरसंगतिमय अंत शैली में बहुत अधिक हेरफेर का आभास देता है हालांकि यह फ़िल्म निस्संदेह पासोलीनी की निजी शिल्पगत उपलब्धि का ही प्रतिनिधित्व करती है. सभी चीज़ें मिल कर इस लक्ष्य के लिए सक्रिय हो जाती हैं कि प्रेक्षक की कृति से आशा ले कर अलग हो सकने की संभावना का खात्मा हो जाये. पासोलीनी की अन्य तमाम फ़िल्मों की तरह यह भी एक 'लिखित फ़िल्म' है, लेकिन पहली बार शब्दों की उपयोगिता में पासोलीनी का संदेह स्पष्ट हुआ है. कैमरा, संपादन और निर्देशन द्वारा 'स्फटिक-सा' या पारदर्शी होने की चेष्टा उन की इस अनुभूति का परिचायक है कि फ़िल्म में कथ्य का प्रेषण, बिंबों को अवधारणाओं में परिवर्त्तित करना शायद इस कला की मुख्य क्षमता नहीं हो सकती.

इटली के अपेक्षाकृत निकट अतीत से फ़ाशियों को मुख्य चरित्रों के रूप में चुन कर उन्होंने एक और अत्यंत चातुर्यपूर्ण, अति-सूक्ष्म कार्य कर दिखाया है : द साद की कृति में तो आततायी ईश्वर और स्थापित व्यवस्था के खिलाफ़ विद्रोह करते हैं, लेकिन फ़िल्म में वे शक्ति और स्थापित व्यवस्था के प्रतिनिधि बन गये हैं. इस प्रकार कोई क्रांतिकारी नहीं रह गया है. मूल कृति में और साथ ही गत समय और हमारे समय की असफल और असफल हो रही क्रांतियों द्वारा व्यक्त विचार बिना भेदभाव के घेरे में धकेल दिये गये हैं, उन का पर्दाफ़ाश किया गया है, उन्हें रद्द किया गया है और उन का वध किया गया है. जिस दिन मैं ('सोडम के 120 दिन' के निर्माण के दौर में') 'सेट' पर पासोलीनी से मिलने गया था उसी दिन उन्होंने पटकथा के हाशिये पर लिखा था, "तुम अभी तक नहीं समझे कि मैं—ईश्वर—नृशंसता का एक उदाहरण पेश कर रहा हूँ? तुम अच्छा काम करने पर ही इतना जोर क्यों दे रहे हो? क्या तुम सिर्फ़ मेरा अनुकरण नहीं कर सकते?' लेकिन फ़िल्मांकन के बाद अंतिम क्षणों में इसे काट कर अलग कर दिया जाना पासोलीनी के इस अभिप्राय का ही एक और साक्ष्य है कि वह दार्शनिक युक्ति-युक्तता नहीं चाहते, अन्योक्ति नहीं चाहते. हर दृश्य हमला करता है, हर तरह की संवेदना कुचल दी गयी है. हर तरह की व्याभिचारिक, परपीड़क और मनोविक्षेप-विषयक क्रियाएँ दिखाई गयी हैं, लेकिन वे इस तरह की सामान्य क्रियाओं से भिन्न बिल्कुल नहीं हैं. शाब्दिक विवरण एक ऐसी कृति के उन पक्षों का यथेष्ठ अंकन करने में अक्षम हो सकते हैं. जिस का प्रधान आकारिक आयाम रैखिक समस्तर संरचना है, सुस्पष्टता भी है, लाक्षणिक सरलता और चमोत्कर्ष-विहीन कालिक प्रवाह है. फ़िल्म हम से बार बार यह कहती है कि कोई इतिहास नहीं है, परिवर्त्तन नहीं है, विकास नहीं है और मानव जीवन का सातत्य अराजक शक्तिप्रयोग के सिद्धांत के परिवर्त्तित रूपों की शृंखला मात्र है. यह संदेश एक कृतिकार द्वारा इस से अधिक सशक्त और निर्दय अंकन ही नहीं बल्कि स्वीकृति भी, पहले कभी नहीं पा सका.

व्ही.पी.पी. द्वारा माल मंगाइये

इलैक्ट्रोनिक मोस्किटो रिपैलर :

भारतके बाजारमें अब अेक अनोखा उपकरण। यह उपकरण इलेक्ट्रोनिक क्रियासे मच्छरोंको दूर भगाता है। इसका स्वीच दबातेही आपका कमरा मच्छरोंसे तथा अैसेही अन्य जंतुओंसे मुक्त हो जायगा। इसमें नाममात्र विद्युत् खर्च होती है। मूल्य रु. 55/- *

युनीवर्सल चार्जर अेक उपकरण तीन काम :

टोर्च व ट्रांजिस्टर के पुराने सैल बहुमूल्य हैं। इन्हे फेंकिये नही। (१) इस उपकरणसे किसी भी मेक या प्रकारकी ड्राइ सैलें तथा एक्यूमलेटर (कार की बेटरीयाँ) फिरसे चार्ज की जा सकती हैं। (२) बेटरी इलीमीनेटर (अर्थात इसकी सहायतासे ट्रॉजिस्टर, टेपरेकर्डर आदि अे. सी. मैन पर चलाने) का काम लिजीये। (३) नाइट लैंप की तरह प्रयोग किजीये। मूल्य रु. 60/- *

* पोस्टेज और टैक्स अलग

UNIVERSAL TRADERS
125,(OM) Zakaria Masjid Street BOMBAY-400009

नयी पीढ़ी के बहुचर्चित हस्ताक्षर महेन्द्र मल्ला की सशक्त लेखनी से रंग-भेद के जलते हुए सवाल पर हिन्दी का पहला उपन्यास

दूसरी तरफ़

इनसान से इनसान की संज्ञा छीनकर उसे 'रंगीन' के खाने में बैठा देने की जिस क्रूर मनोवृत्ति से महेन्द्र मल्ला इंगलैण्ड में निरन्तर चार साल तक जूझते रहे, उसका निस्संग चित्रण करने वाला अत्यन्त मर्मस्पर्शी उपन्यास।

'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में इसके संक्षिप्त रूप का धारावाहिक प्रकाशन होता रहा है। अब पुस्तक-रूप में सम्पूर्ण उपन्यास पढ़िये!

मूल्य (सजिल्द संस्करण) रु० 25/-

साथ में बिल्कुल **मुफ्त !** उर्दू के महान उपन्यासकार मिर्जा हादी 'रुस्वा' का महत्त्वपूर्ण उपन्यास उमराव जान 'अदा'

१५ दिसम्बर १९७५ तक **दूसरी तरफ़** का प्रकाशन-पूर्व आदेश भेजने वाले पाठकों को उमराव जान 'अदा' का सुमुद्रित संस्करण, जिसका मूल्य १०/- है, उपहारस्वरूप दिया जायेगा!

'आलोचना पुस्तक-परिवार' के सदस्यों के लिये डाक-व्यय भी निःशुल्क।

अपना आदेश कृपया तुरन्त भेजें :

राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०
८, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-११०००२.

सिलाई कटाई व बुनाई की सर्वश्रेष्ठ पुस्तकें

शकुन्तला कटाई कला	6/-
कमर्शियल कटिंग (फैशन)	9/-
शकुन्तला स्वेटर बुनाई	10/-
टैरिंग करोशिया नई बुनाई	12/-
कुसुम कटवर्क कशीदाकारी	9/-
रंगीन दस्ती ,, ,,	12/-

डाक खर्च 2/- प्रति पुस्तक
20/- के आर्डर पर डाक खर्च **मुफ्त**

शकुन्तला कटाई कला — 16 TH EDITION 1976 — 6/-

शकुन्तला कला निकेतन (ध)
पोस्ट बाक्स-2146 दिल्ली-7 फोन 224035

सब ऊन धागा-पुस्तक विक्रेता से भी मिल सकती हैं

गारंटी सहित घर बैठे मंगायें

३ बैंड शक्तिशाली घुंघरु ग्राल वर्ल्ड ट्रांसिस्टर मूल्य १३०) रु०

विकास फोटोग्राफ़ी कैमरा मूल्य ५५) रु०

मीडियम वेव पाकेट ट्रांसिस्टर मूल्य ६०) रु०

सब खर्चों सहित
सुप्रीम ट्रेडर्स
41 पुरानी लाजपतराय मार्केट, दिल्ली-६

प्रैक्टिकल इंग्लिश

नौकरी, परीक्षा, व्यवसाय तथा सामाजिक क्षेत्र में सफलता के लिए सशक्त अंग्रेजी आवश्यक है. अंग्रेजी में दक्षता प्राप्त करने के लिए हमारे पत्राचार पाठ्यक्रम में प्रवेश लें. विवरणी मंगाइये.

कहानी-लेखन महाविद्यालय (द)
अम्बाला छावनी-133001

---

201 लेटेस्ट हेयर स्टायल्स

अब आप किसी से पीछे क्यों रहें! नये-नये केश-विन्यास करके आप भी अपने प्रेमी का, अपने पति का मन मोह लें, प्रत्येक को अपनी ओर आकर्षित कर लें। नारी के सौंदर्य को चार चांद लगाने वाले नये-नये माडर्न हेयर स्टायल्स इस पुस्तक में दिये गये हैं। केशों की अच्छी साज-संभाल, आकर्षक जूड़े बनाना, बालों को लम्बा व घना करने की युक्ति, हरेक का दिल लुभाने वाले आधुनिक केश-विन्यासों पर हिन्दी में एकमात्र सचित्र प्रामाणिक पुस्तक। चित्र 400 से अधिक पृष्ठ 356 मूल्य 12 रुपये

हिन्द पुस्तक भण्डार
खारी बावली, दिल्ली - 110006

भगवतीचरण वर्मा की सशक्त व्यंग्य-कथाओं का अनूठा संग्रह

मोर्चाबन्दी

ये कहानियाँ आपको सात्विक मनोरंजन में, हँसते हुए सोचने में और जीवन के उलझाव में निहित नयी चेतना ढूँढ़ने में मदद करेंगी।

मूल्य (सजिल्द) 20/-

साथ में बिल्कुल **मुफ्त !**
उर्दू के महान उपन्यासकार मिर्जा हादी 'रुस्वा' का महत्त्वपूर्ण उपन्यास उमराव जान 'अदा'

१५ दिसम्बर १९७५ तक **मोर्चाबन्दी** का प्रकाशन-पूर्व आदेश भेजने वाले पाठकों को उमराव जान 'अदा' का सुमुद्रित संस्करण, जिसका मूल्य १०/- है, उपहारस्वरूप दिया जायेगा!

'आलोचना पुस्तक-परिवार' के सदस्यों के लिये डाक-व्यय भी निःशुल्क।

राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०
८, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-११०००२.

साप्ताहिक
दिनमान
टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रकाशन
सरी शक्ति के अंकुर
र्थसंघर्ष का सत्य
के बाद आदमी
र्मभाषा
रज़ा
र्थव्यवस्था का निर्यात
30 दिसंबर, 1978
पौष, 1900
1.50
युयुत्सु, कुरुक्षेत्र और जनता

बैनेट, कोलमैन एंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए रमेशचन्द्र द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002 से मुद्रित व प्रकाशित. जनरल मैनेजर : डॉ. ... तरनेजा. पंजीकृत कार्यालय : डा. दादाभाई नौरोजी रोड, बंबई-400001. शाखाएं : 7, बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-110002; 139, आश्रम रोड, अहमदाबाद-380009; 105/7ए, एस. एन. बनर्जी रोड, कलकत्ता-700014. कार्यालय : 13/1, ... ईस्ट, कलकत्ता-700069; 15, मोंटियथ रोड, इग्मोर, मद्रास-600008; ..., तोरय भवन, क्वार्टर गेट, पुणे-411002; 26, स्टेशन एप्रोच, सडबरी, वैंबले, मिडिलसेक्स, लंदन, यू. के., लंदन टेलीफोन : 01-903-9696

मत और सम्मत

राष्ट्रीय अस्तित्व और राजमुकुट

पिछले दिनों नेपाल के महाराजाधिराज श्री वीरेंद्र तथा भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री वि. प्र. कोईराला के बीच मुलाकात हुई जिस में खुले वातावरण में राजनैतिक परिवर्त्तन संबंधी बातें हुई हैं. श्री कोईराला ने नरेश वीरेंद्र से यह बात स्पष्ट रूप से कह दी है कि उन का निहित स्वार्थ अपने 'मुकुट' को सुरक्षित रखना है तो उस के लिए 'राष्ट्रीय अस्तित्व व राष्ट्रीय एकता' भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है. इसलिए देश से बड़ा उन का 'राजमुकुट' नहीं हो सकता.

यह सर्वविदित है कि यह नेपाली कांग्रेस ही थी जिसने 'पिंजरे' में बँधे राजा को राणाओं के चंगुल से छुड़ाया था. नेपाल में प्रजातंत्र का अरुणोदय हुआ था. नेपाल की प्रजा ने राजा को —'राजमुकुट' को अपना संरक्षक माना था—क्योंकि प्रजातंत्र का कोमल पौधा—कौमल धरती पर रोपा गया था. वही 'राजमुकुट' आज उस कोमल पौधे का मूलोच्छेद करने पर उतारू है. पिछले दो दशक से नेपाली कांग्रेस को दबाने के लिए, मिटाने के लिए प्रशासन ने कोई कमी नहीं रखी. लेकिन ने. कां. आज भी उतनी ही शक्तिशाली व जनप्रिय है नेपाल में.

आज नेपाल में एक तरफ तो राजा वीरेंद्र तथा कोइराला के बीच हुई बातचीत को काफी महत्त्व दिया जा रहा है. वहीं दूसरी तरफ श्री कोइराला जिस किसी भी सामाजिक या सांस्कृतिक कार्यक्रम में आमंत्रित किये जाते हैं स्थानीय प्रशासन 'शांति सुरक्षा' लगा कर कार्यक्रम को ही रद्द करने का आदेश दे देता है. इस के दो उदाहरण—हाल ही में काठमांडो में बानेश्वर में नेपाली साहित्य के मूर्धन्य साहित्यकार स्व. लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा की प्रतिमा का अनावरण श्री कोइराला को करना था. उन के उपस्थित होते ही आयोजकों के बीच झगड़े का षड्यंत्र कर के कार्यक्रम को रद्द कर दिया गया.

श्री कोइराला को प. नेपाल के पोखरण नामक स्थान पर सामाजिक कार्यकर्त्ताओं की एक सभा को संबोधित करना था—यह सभा राजनैतिक नहीं थी. फिर भी प्रशासन ने श्री कोइराला का विरोध करने के लिए—गाँव से आदमियों को भाड़े पर लिया. पुलिस को सादी पोशाक दी गयी. नेपाल का संपूर्ण मंत्रिमंडल पोखरा पहुँच गया. लाखों रुपये खर्च किये गये. लेकिन इतना करने के बावजूद भी—प्रशासन संतुष्ट नहीं हुआ. जब देखा कि जनसमूह अपने प्रिय नेता के दर्शन के लिए उमड़ा आ रहा है. तो 'शांति सुरक्षा' के नाम पर उस हवाई-जहाज को हवाई अड्डे पर उतरने ही नहीं दिया गया जिस में श्री कोइराला आये थे. इसी तरह नेपाल में जो युवक, युवती, छात्र, मजदूर श्री कोइराला के विचारों का समर्थन करते हैं, उन्हें (अराष्ट्री तत्त्व) कह कर यातनाएँ दी जा रही हैं.—**वि. सिंह विष्ट, महामंत्री, नेपाली जन संपर्क समिति, रावलवाडी, ला. ब. शास्त्री मार्ग, मुलुंड (पश्चिम) बंबई.**

दिनमान की दरें

अवधि	देश में (साधारण	विदेश में डाक द्वारा)
तिमाही	18.00	29.00
छःमाही	35.00	56.00
वार्षिक	70.00	112.00
द्विवार्षिक	130.00	214.00
त्रिवार्षिक	180.00	306.00

दिनमान

किताब कैसे मिलेगी?

विगत कई साल से बिहार में पाठ्य पुस्तकों की वितरण व्यवस्था इतनी गंदी रही है कि छात्र एवं अभिभावक 9-9 महीना पुस्तक विक्रेताओं के यहाँ चक्कर लगाते रहते हैं. आने वाले नये वर्ष में स्थिति और बदतर एवं भ्रष्ट होगी ऐसी संभावना प्रतीत हो रही है. जरा गौर कीजिए, बिहार राज्य पाठ्य पुस्तक प्रकाशन निगम द्वारा घोषित थोक विक्रेताओं की नियुक्ति संबंधी शर्तों पर. जहाँ सरकार व्यवसाय को अधिक से अधिक हाथों में सौंपने का नारा देती है जब कि पाठ्य पुस्तक निगम नियम (4) एवं (6) के द्वारा पुस्तक व्यवसाय को चंद बड़े पुस्तक व्यवसायियों के हाथ में सौंपने जा रही है.

यह सर्वविदित है कि हर थोक विक्रेता अपना खुदरा स्टाल भी चलाते हैं. परिणामस्वरूप पुस्तकों का भारी मात्रा में स्टाक कर खुदरा या कालाबाजार में बेचने के लिए बाजार में कृत्रिम अभाव पैदा कर देते हैं. कुंजी एवं समानांतर पुस्तकें विद्यार्थी को खरीदने को भी बाध्य करते हैं. क्योंकि अभाव में हर प्रकार के भ्रष्टाचार की गुंजाइश होती है. बिहार सरकार एवं बिहार राज्य पाठ्य पुस्तक प्रकाशन निगम नियम (4) एवं (6) में संशोधन कर वितरण व्यवस्था में अधिक से अधिक दूकानदारों को सम्मिलित करें. निगम प्रत्येक जिला में अधिक से अधिक संख्या में थोक विक्रेताओं की नियुक्ति की प्रणाली अपना कर ही प्रांत के हर कोने में पुस्तकें आसानी से उपलब्ध कराने में समर्थ हो सकता है. संभव हो तो सरकार को पाठ्यपुस्तकों को आवश्यक वस्तु अधिनियम के अंतर्गत ला कर वितरण प्रणाली पर निगरानी रखनी चाहिए. साथ ही थोक एवं खुदरा विक्रेताओं को पुस्तकों के स्टाक की सूची दूकानों में प्रदर्शित करने की अनुज्ञा जारी करनी चाहिए.—**एल. बी. प्रसाद, नरकटिया गंज, पश्चिमी चंपारण, बिहार.**

चौथी पराजय

3-9 दिसंबर : 'तीसरी हार उर्फ मारे गये गुलफाम' लेख में लिखा है कि श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा 8 वर्ष में तीसरी बार चुनाव हारी हैं. यथार्थ यह है कि 8 वर्ष में श्रीमती सिन्हा की यह चौथी पराजय है. अब तक वह लोकसभा के दो आम चुनावों, एक उपचुनाव तथा बिहार विधानसभा के एक मध्यावधि चुनाव, जो 1971 के आम चुनाव के बाद हुआ था, में पराजित हो चुकी हैं.—**परमानंद, व्याख्याता, राजनीतिविज्ञान विभाग, राव तुलाराम महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली.**

मजदूर का स्वार्थ

3-9 दिसंबर : तुरकी महंत के खिलाफ चल रहे आंदोलन की विस्तृत रपट देने के लिए 'दिनमान' को बधाई. रपट के अंत में अशोक मोती ने लिखा है, 'परंतु स्थानीय नेतृत्व कैसे सही लोगों के हाथ में जाये, इस का प्रयास होना चाहिए. 'स्पष्टतः अशोक मोती के अनुसार फिलहाल आंदोलन का नेतृत्व सही हाथों में नहीं है. मैं भी संघर्ष वाहिनी का सदस्य होने के नाते वहाँ जा कर स्थिति को निकट से देखने के बाद इसी नतीजे पर पहुँचा हूँ. आज भी नेतृत्व बड़े एवं मध्यम किसान वर्ग के हाथ में ही है. पर ऐसा क्यों है और यह कैसे सही हाथों में पहुँचेगा, इसे समझना अत्यधिक आवश्यक है.

1952 के पहले इस मठ के महंत थे श्री नरसिंह भगत, जो कि जात के बढ़ई थे. इन की इच्छा अपने बाद भगवान भगत को महंत बनाने की थी. भगवान भगत जात के ब्राह्मण हैं. पर इस क्षेत्र की अधिकांश आबादी पिछड़ी जाति

आप फ़रमाते हैं —

व्यंग्य चित्र : लक्ष्मण

'दरअसल उन्होंने पद त्याग नहीं किया है क्यों कि वह दफ्तर नहीं आते इसलिए शत्रु ऐसी अफ़वाह उड़ा रहे हैं.'

की ही है, अतः यहाँ के लोगों को एक ब्राह्मण का महंत बनना पसंद नहीं था. इन लोगों ने ही एक बड़ा आंदोलन खड़ा कर भगवान भगत को महंत बनने नहीं दिया एवं 1952 में श्री गिरिजानंदन भगत को, जो कि जात के यादव हैं, महंत बना दिया. इसी कारण अदालत में श्री भगवान भगत एवं श्री गरिजानंदन भगत के बीच मुकद्दमा भी चलना शुरू हो गया. शुरू में श्री गिरिजानंदन भगत के पक्ष में लगभग सभी लोग थे एवं वह इस क्षेत्र में काफी लोकप्रिय भी हो चुके थे.

मुकद्दमे में काफी पैसा खर्च होने के कारण महंत ने धीरे धीरे मठ की जमीन बेचनी शुरू कर दी. दूसरी ओर मुकद्दमे के कारण अभी स्थिति मठ में बहुत सुरक्षित न पाने के कारण महंत ने गाँव की जमीन बेच कर अपने को शहर में स्थापित करने की कोशिश भी शुरू की. इसी कारण मठ की ओर से पहले जो भी तथाकथित धर्मकर्म के कार्य हुआ करते थे, वह भी श्री गिरिजानंदन भगत के आने के बाद बंद हो गये. इसी कारण महंत के खिलाफ आम लोगों में धीरे धीरे क्षोभ बढ़ने लगा.

दूसरी ओर 1966-67 में भारी अकाल के बाद इस क्षेत्र में बहुत अधिक संख्या में बोरिंग भी लगायी गयी. जिस के फलस्वरूप कृषि में उत्पादन बढ़ा और एक साल में चार चार फसल भी होने लगीं. फलस्वरूप उस क्षेत्र की जमीन का मूल्य काफी बढ़ गया. दूसरी ओर महंत का जमीन बेचना जारी रहा. 1970 में उच्चतम न्यायालय से केस जीतने के बाद महंत की जमीन बेचने की गति तेज हो गयी. महंत ने मठ की काफी जमीन गाँव के बाहर के लोगों को और कुछ इसी क्षेत्र में अपने निकट के लोगों को बेची. चूंकि महंत ने मठ की जमीन वहाँ के अधिकांश किसानों के हाथ नहीं बेची. अतः ये महंत के विरोधी हो गये. यही ठोस कारण दीखता है वहाँ के अधिकांश किसानों का महंत के खिलाफ होने का एवं 1973 से ही इन के नेतृत्व में सुधारवादी आंदोलन के चलने का.

आज भी आंदोलन का नेतृत्व स्पष्टतः इसी वर्ग के हाथ में हैं क्योंकि जहाँ महंत मजदूरों को 12 घंटे से भी अधिक काम करवा कर मात्र 2 रु. मजदूरी देता है (जिस में 2 आना उस का मैनेजर कर के रूप में काट लेता है) वहाँ मजदूरी को बढ़ाने के लिए कोई भी बड़ा आंदोलन नहीं चला है. साथ ही साथ जिस से पूरे बड़े किसान वर्ग के हित को चोट पहुँचती हो, वैसी मांगों को ले कर भी आज तक तथा आज भी आंदोलन नहीं चल रहा है.

अतः यह आंदोलन, जिस में काफी संख्या में मजदूर आ[illegible] हैं. कहीं बड़े किसानों के हित साधने एवं उन में से कोई बड़ा [illegible]ता पैदा करने मा[illegible] के लिए न रह जाये, इसे [illegible]खते हुए यह आवश्यक है कि इस आंदोलन के प्रवाह को कुछ ऐसे मोड़ा जाये कि यह सिर्फ महंत को ही न चोट पहुँचाये, बल्कि मजदूरों का सीधा स्वार्थ इस से जुड़े एवं बड़े किसानों का सीधा स्वार्थ इससे टकराये. वर्ग संघर्ष की स्थिति स्पष्ट हो.

—अजितकुमार, सदस्य छात्र युवा संघर्ष वाहिनी, पटना.

खंडन

10-16 दिसंबर: जनवादी विचार मंच की शिविर रपट में मुझे उद्धृत किया गया है—'पत्रिकाओं में छपने वाले अधिकांश साहित्य पर क्रांतिकारी यांत्रिकता व्यक्तिवाद हावी है'. मैंने बहस के क्रम में यांत्रिक लेखन को ले कर शिकायत जरूर की थी पर व्यक्तिवाद हावी है' ऐसा मैंने नहीं कहा था.**—अरुण प्रकाश, गेस्ट हाउस, पो. बरौनी उर्वरक नगर, जिला बेगूसराय, (बिहार).**

ताकि कुंठित न हों

मैं भी बिहार के पटना विश्वविद्यालय का छात्र था. लेकिन आरक्षण के कारण वहाँ व्याप्त अशांति को देखते हुए मुझे दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रवेश लेना पड़ा.

इस आरक्षण नीति के कारण सब से ज्यादा मध्यवर्ग प्रभावित नजर आ रहा है. इस में सभी जातियों के व्यक्ति शामिल हैं. इस नीति के कारण सवर्ण जातियों के लोगों को तो कोई फायदा नहीं ही है, अनुसूचित जातियों के लोग भी अच्छे दूरगामी परिणामों से दूर नजर आ रहे हैं. बिहार में भ्रष्टाचार पैसा, पैरवी, आदि का ही बोलबाला है और यह फायदा उन्हीं को मिलने जा रहा है जिन के पास ये सारे अवगुण मौजूद हों.

सरकार ने पिछड़ी जाति को नौकरियों में आरक्षण दे कर एक बहुत ही प्रगतिशील कदम उठाने की कोशिश की है. इस का जिक्र जनता पार्टी के चुनाव घोषणापत्र में भी किया गया था लेकिन घोषणापत्र में तो 'काम के अधिकार' को भी शामिल किया गया था, उस का क्या हुआ? इसे लागू करने पर सभी वर्गों को समान लाभ मिलता. मगर स्थिति कुछ विचित्र ही है. राज्य तथा केंद्र की सरकार इसे लागू करने में पूर्णतया असमर्थ है क्यों कि हमारे पास इतने साधन अभी मौजूद नहीं हैं.

इस समय बिहार के चिकित्सा कालेजों में 70 से 75 प्रतिशत अंक लाने पर भी उच्च-जातियों के विद्यार्थियों का प्रवेश पाना मुश्किल हो जाता है. वहीं दूसरी ओर अनुसूचित जातियों के छात्र को 40 से 45 प्रतिशत अंक प्राप्त करने के पश्चात् आसानी से प्रवेश मिल जाता है. क्या यह उचित न्याय है? किसी भी विशिष्ट उत्तरदायित्व के पदों पर भी नियुक्तियों में यह अंतर देखने को मिलता है. जिस के कारण अकुशल कमजोर, अयोग्य व्यक्ति भी चुन लिये जाते हैं. इस से देश की प्रगति कितनी हो पायेगी यह सोचना बहुत ही मुश्किल हो जाता है.

यदि पिछड़े वर्ग के लोगों को आवश्यकतानुसार आर्थिक मदद दी जाये तो वे आगे बढ़ सकते हैं. उन के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा, विशेष छात्रवृत्ति एवं छात्रावास, किताबें आदि मुफ्त या कम से कम दर पर मुहैया करायी जायें तो वे सवर्ण जातियों के बच्चों से भी ज्यादा तीव्र, कुशाग्रबुद्धि वाले तथा योग्य नागरिक बन सकते हैं. पिछड़े वर्ग के बच्चे जब तक पढ़ेंगे नहीं तब तक नौकरियों में आरक्षण की उपयोगिता कहाँ तक सार्थक हो सकती है, हम खुद सोच सकते हैं. यदि यह सुव्यवस्था श्री ठाकुर लागू कर सकते हैं तो यह शायद दोनों वर्गों को स्वीकार होगा.

—चंद्रशेखर सिंह, स्नातकोत्तर, राजनीति शास्त्र, दिल्ली विश्वविद्यालय.

आर्थिक न्याय

25 नवंबर-2 दिसंबर : उपर्युक्त शीर्षक से श्री तुलसी राम का पत्र पढ़ा. इस विचार से मैं सौ प्रतिशत सहमत हूँ कि पिछड़े वर्गों के साथ सदियों से आर्थिक एवं सामाजिक अन्याय होते आये हैं. आज उन की स्थिति इतनी खराब है कि सरकारी संरक्षण उन्हें मिलना ही चाहिए. किंतु जिस प्रकार का संरक्षण उन्हें प्राप्त है, जिस का लेखक ने कलम तोड़ समर्थन किया है, उचित नहीं है. आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करने के लिए आर्थिक न्याय की व्यवस्था मजबूत बनायी जाये. अर्थ के साधनों का उचित बंटवारा हो. पिछड़ों को आर्थिक सहयोग भोजन, आवास, और शिक्षा के रूप में उपलब्ध कराया जाये. सभी प्रतियोगी समान कसौटी पर कसे जायें ताकि चुने जाने के बाद निम्न जाति के अधिकारीगण उस हीन भावना से बच सकें जो आरक्षण के कारण उत्पन्न होती है **—भानुप्रताप सिंह, एम. एस. सी., कीट विज्ञान विभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान शाला, नयी दिल्ली.**

भंगी को भी वेतन की जरूरत है

बलिया की तीन तहसीलों (रसड़ा, बलिया बाँसडीह) के 18 प्रखंडों में कार्यरत लगभग 250 सफाई मजदूरों का एक से कई माह तक का वेतन रोक रखा गया है. आर्थिक और सामाजिक पहलू से पिछड़े इन सफाई मजदूरों को इस किस्म की ज्यादती का सामना लगातार करना पड़ रहा है. सिकंदरपुर, मनियर, बाँसडीह आदि कस्बों में कार्यरत सफाई मजदूरों का पुरजोर शोषण किया जा रहा है. सिकंदरपुर में कार्यरत भंगियों की एक अलग कहानी है. सरकार द्वारा न्यूनतम वेतन लागू करने से पूर्व यहाँ 40-45 सफाई मजदूर कार्यरत थे. अब 14 सफाई मजदूर कार्यरत हैं, जिन का 20-22 महीने का वेतन रोक रखा गया है.

वर्तमान समय में इस नोटिफाइड एरिया के न तो अध्यक्ष मौजूद हैं, न ही किरानी. किरानी का हाल ही में देहांत हो गया. और अध्यक्ष को कुछ कानूनी गैर जिम्मेदारी के कारण पदच्युत कर दिया गया. आजकल यहाँ के कार्य तहसीलदार की देखरेख में हो रहे हैं.

जनता पार्टी से जुड़े श्री परमेश्वर प्रसाद वर्मा ने भंगियों के वेतन रुक जाने के कारण को स्पष्ट करते हुए बताया कि सरकार द्वारा मनमाना कर वसूलने के खिलाफ यहाँ की जनता ने कर देना बंद कर दिया है. मामला अदालत तक पहुँच चुका है. जब कर की वसूली ही बंद है तो वेतन कहाँ से मिले. ऐसे में वेतन का रुक जाना लाजिमी है. पर उन्होंने आगे यह भी कहा कि जनता द्वारा कर देना रोक देने के पूर्व ही इन पर वेतन के रोक देने या मनमाने ढंग से वेतन देने की ज्यादती होती रही है.

भंगी जमादार एवं भंगियों से बातचीत करने पर पता चला कि इन्होंने इस ज्यादती की सूचना स्थानीय विधायक से ले कर जिलाधीश तक पहुँचायी. अखबारों में भी आवाज़ उठायी परंतु कोई सुनवायी नहीं हुई. स्थानीय कर की वसूली के संबंध में भंगियों ने स्पष्ट किया कि यह तो सरकार का काम है कि वह कर वसूले या नहीं. हम काम करते हैं. तो मज़दूरी ठीक समय पर मिलनी ही चाहिए. एक हरिजन युवक ने बताया कि कर की अदायगी को रोक देने की बात मात्र एक बहाना ही है. सच बात तो यह है कि इन्हें एकदम से नकारात्मक दृष्टि से स्वीकार किया जा रहा है. यदि ऐसी बात नहीं होती तो इन के न्यूनतम वेतन (165-170) का 31. 5 प्रतिशत, जो सरकार अदा करती है, तो कम से कम भुगतान हो जाना चाहिए था.

मनियर कस्बे के भंगियों की हालत और भी दयनीय है. यहाँ के दस भंगियों का वेतन बीसियों महीने से रोक रखा गया है. वेतन रुक जाने पर भंगियों ने इस क्षेत्र के विधायक श्री शिवमंगल सिंह (जो उत्तर प्रदेश के गन्ना विकासमंत्री भी हैं) को अपनी व्यथा सुनायी. आश्वासन मिला पर वेतन नहीं, मेरे कहने पर कि आप लोग इस का विरोध क्यों नहीं करते. एक बूढ़ी भंगिन ने अत्यंत गंभीर स्वर में कहा 'ऐ बाबू हमनी के विरोध का करीं, यह जालिमन के गाँव में हमनी के कुछ कहे सुन के कुबत कहाँ बा?'

बाँसडीह कस्बे के भंगियों के वेतन के संबंध में सुन कर अवाक रह जाना पड़ा. यहाँ 54 महीने से वेतन रोक रखा गया था, एक स्थानीय पत्रकार ने विस्तृत जानकारी देते हुए बताया कि पिछले दिनों साम्यवादियों के प्रयास से भंगियों को 18 महीने का वेतन देना पड़ा. अभी भी 36 महीने का वेतन बकाया पड़ा है. इसी प्रकार रसड़ा, नागर, रानीगंज आदि सभी कस्बों के भंगियों के साथ यही वारदातें होती रही हैं. वेतन रुक जाने से भंगियों पर कई किस्म की परेशानियाँ लद गयी हैं.

आर्थिक और सामाजिक शोषण से त्रस्त इन भंगियों की व्यथा हृदय विदारक है. एक तो इन के पास अचल नाम की कोई संपत्ति नहीं, न कोई दूसरा रोजगार. पीढ़ी दर पीढ़ी मैला कमाने की परंपरा.

किसी की बूढ़ी माँ बीमार पड़ी है जिस के लिए दवा दारू का कोई बंदोबस्त नहीं है तो किसी के यहाँ कई दिनों से दोनों समय चूल्हा नहीं जलता. किसी की नयी नवेली बहू का जिस्म फेरे चिटे कपड़ों से झाँक रहा है तो किसी का छोटा बच्चा, जाड़े के दिनों नंगा घूम रहा है. एकदम दयनीय ज़िंदगी.

28 वर्ष की उम्र में ही नितांत मरियल दिखने वाले एक भंगी ने लगभग सिसकते हुए बताया कि उसकी एकमात्र बच्ची पिछले दिनों से बीमार पड़ी है और उस के इलाज के लिए कोई साधन नहीं रह गया उस के पास. बहू के जेवर रेहन पड़ गये. कर्ज भी कोई नहीं देता. एक गिलास दूध भी उस के बच्ची को नसीब नहीं हो पा रहा है. गनीमत तो यह है कि उसकी पत्नी बाबू लोगों के यहाँ नरक कमा कर कुछ न कुछ आहार का बंदोबस्त कर रही है. नहीं तो इस कड़की के दिनों भूखों मरने की नौबत आ जाती.

यह सब देखते हुए; इस सवाल का उठ खड़ा होना स्वाभाविक है कि जिस तबके के उत्थान को ले कर वर्त्तमान सरकार जो इतना हो हल्ला मचा रही है, क्या वास्तव में इन के उत्थान के लिए कुछ कारगर कदम उठा रही है? या प्रचारतंत्र के माध्यम से सिर्फ राजनैतिक लाभ उठाना चाहती है? क्या इन्हें आदमी की शक्ल में सिर्फ़ वोट के दिनों में ही याद करना चाहिए या अन्य दिनों भी. क्या इसी प्रकार गैर बराबरी दूर की जा सकती है?

अगर सचमुच इस तबके को ऊपर उठाना है तो एक जीवित हाड़ माँस के जीव के रूप में स्वीकार कर इन के साथ उचित न्याय होना चाहिए.—**शैलेंद्र, द्वारा श्री अरविंद कुमार श्रीवास्तव, पो. प्रा. तीखमपुर जि. बलिया (उ. प्र.)**

पिछले सप्ताह

(7 दिसंबर से 13 दिसंबर 1978 तक)

देश

7 दिसंबर : श्रीमती इंदिरा गांधी के विरुद्ध विशेषाधिकार के मुद्दे पर लोकसभा में बहस शुरू. राज्यसभा द्वारा संशोधित संविधान 45वाँ संशोधन विधेयक लोकसभा द्वारा पारित. कर्नाटक के मुख्यमंत्री देवराज अर्स की भूतपूर्व गृहमंत्री चरणसिंह से दिल्ली में वार्त्ता. उत्तरप्रदेश में बिजली कर्मचारियों की हड़ताल.

8 दिसंबर: लोकसभा अध्यक्ष श्री के. एस. हेगड़े द्वारा प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई की हत्या के षड्यंत्र का रहस्योद्‌घाटन. चरणसिंह द्वारा मंत्रिमंडल में शामिल न होने का अंतिम फैसला. राजौरी और पुंछ में कानून और व्यवस्था बनाये रखने के लिए सेना का सहयोग प्राप्त.

9 दिसंबर: बिहार द्वारा सीमा सुरक्षा दल की सेवाओं की माँग. धनबाद में ज़हरीली शराब पीने से नौ कोयला खनिकों की मृत्यु.

10 दिसंबर: आचार्य कृपालानी द्वारा दिल्ली में चक्रवर्त्ती राजगोपालाचारी की प्रतिमा का अनावरण. उत्तरप्रदेश में 6000 कनिष्ठ इंजीनियरों की काम पर वापसी.

11 दिसंबर: मोहर्रम के अवसर पर पुराने लखनऊ शहर में शिया-सुन्नी संघर्ष के कारण कर्फ्यू. महाराष्ट्र से जनता पार्टी के मोतीराम लहाने राज्यसभा के लिए निर्वाचित.

12 दिसंबर: चरणसिंह गुट द्वारा जनता पार्टी के चुनावों के बहिष्कार का निर्णय. जम्मू के छात्रों द्वारा आंदोलन जारी रखने का निश्चय. सिंगापुर के प्रधानमंत्री ली क्वान यू का दिल्ली आगमन. पत्रकार बी. सी. सक्सेना का दिल्ली में देहांत.

13 दिसंबर: श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा विशेषाधिकार भंग से इनकार. ईरानी छात्रों का दिल्ली स्थित सस्कृति केंद्र पर कब्जा. धनबाद में जहरीली शराब से मरने वालों की संख्या 254. जम्मू बंद के दौरान हिंसा. भारत द्वारा एसियान देशों से संबंध बढ़ाने की इच्छा व्यक्त.

पिछले सप्ताह

(7 दिसंबर से 13 दिसंबर 1978 तक)

विदेश

7 दिसंबर: जापानी डायट (संसद्) द्वारा 68 वर्षीय मासायोशी ओहिरा नये प्रधानमंत्री निर्वाचित. श्रीलंका में सेना को सतर्क रहने के आदेश. स्पेन यूरोपीय लोकतंत्री क्लब में शामिल.

8 दिसंबर: इस्राइल की भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती गोल्डा मीर का देहांत. ब्रिटेन द्वारा गिलबर्ट द्वीपसमूह को जुलाई 1979 में स्वाधीन करने संबंधी एक समझौते पर हस्ताक्षर.

9 दिसंबर: ईरान के संघर्ष में 20 व्यक्तियों की मृत्यु. अंगोला के प्रधानमंत्री लोपो दो नाशीमेंतो बर्खास्त. ढाका में भारत-बंगलादेश संयुक्त नदी आयोग की बैठक. बैंकॉक में थाईदेश के सम्राट भूमिबल द्वारा आठवीं एशियाई खेलों का उद्घाटन.

10 दिसंबर: नेपाल के तीन मंत्रियों का त्यागपत्र. बंगलादेश की दो और पार्टियों द्वारा चुनाव का बहिष्कार करने का निर्णय. कुर्दों द्वारा 200 इराकी सैनिकों को मारने का दावा.

11 दिसंबर: बैंकॉक एशियाई खेलों में हॉकी में भारत द्वारा मलयेसिया को 5-3 से हराना. तेहरान में सैनिकों की गश्त पुनः शुरू. ओस्लो में मेनाहिम बेगिन और अनवर सादात को नोबेल शांति पुरस्कार प्रदान.

12 दिसंबर: इस्फाहन संघर्ष में दस व्यक्तियों की मृत्यु. रोडेसियाई बमवर्षकों का मोज़ांबीक स्थित छापामारों के ठिकानों पर हमला.

13 दिसंबर: चीन और वीएतनाम में बढ़ते हुए संघर्ष से चीन की कड़ी चेतावनी. अमेरिकी विदेशमंत्री साइरस वैंस की पश्चिमेशिया में शांति स्थापना को वास्तविकता की शक्ल देने के प्रयास शुरू. दक्षिण कोरिया के आम चुनाव में राष्ट्रपति पाक [illegible] ही की सत्तारूढ़ डेमोक्रेटिक रिपब्लिकन पार्टी को अधिक स्थान प्राप्त. बैंकॉक एशियाई खेलों में हॉकी मैच में भारत की हाङकाङ पर सात गोलों से विजय.

ईरान का संकट

ईरान के संकट को ले कर विश्व के समाचारपत्रों में व्यापक रूप से चर्चा है. परंतु पाकिस्तान जैसे पड़ोसी देश के समाचारपत्रों की ईरान पर टिप्पणी का अपना एक अलग ही महत्त्व है. ईरान और पाकिस्तान के वर्तमान संबंधों को देखते हुए यह उत्सुकता स्वाभाविक ही है कि शाह ईरान के विरुद्ध समूचे देश में व्याप्त असंतोष को पाकिस्तान किस दृष्टि से देखता है. पाकिस्तान के प्रमुख पत्र **डान** ने अपनी ताज़ा टिप्पणी में कहा है :

'ईरान का संकट अब ऐसे केंद्र बिंदु पर पहुँच गया है कि बाहर के लोगों को निश्चित रूप से यह लगने लगा कि तेहरान में सत्ता परिवर्त्तन होगा. इस परिवर्त्तन में संभवतः ईरान के शहंशाह की कोई भूमिका नहीं होगी. शाह ने अपने विरोधियों को प्रसन्न करने के लिए अनेक उपाय किये. जिन में से एक यह भी था कि उन्होंने अपने सुधार कार्यक्रमों में राजनैतिक कारणों से कुछ उदारता बरती. लेकिन इस का कोई अनुकूल परिणाम सामने नहीं आया. शहंशाह के खिलाफ ईरान में कुछ ऐसे तत्त्वों का गठजोड़ हुआ है जिन का आपस में एक दूसरे से कोई मतलब नहीं. अंततः शाह के लिए कानून व्यवस्था एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न बन गया और इस के लिए उन्होंने सेना का सहारा लिया. अभी कुछ दिन पहले वहाँ सैनिक सरकार की स्थापना हुई. लेकिन वह भी स्थिति पर काबू नहीं पा सकी. चारों ओर हिंसा का वातावरण आज भी है. शहंशाह ने अपने देश में उदारता के जो कार्यक्रम अपनाये उन का भी काफी विरोध होने लगा है. उपद्रवों को शांत करने के लिए शहंशाह के सभी राजनैतिक उपाय बेकार हो गये. लेकिन ईरान में जो भी लोग शहंशाह का विरोध कर रहे हैं, राजनैतिक स्तर पर वो एक दूसरे से इतने अलग अलग हैं कि वर्त्तमान सरकार का कोई विकल्प नहीं बन सकते. उधर इन लोगों ने अशांति और जन-असंतोष को चरम सीमा पर पहुँचा दिया है. अयातुल्ला खोमेनी इस समय फ्रांस में निष्कासित हैं. वह समस्त विरोधी आंदोलन का संचालन कर रहे हैं. वह राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक प्रश्नों पर शहंशाह के विरोध का प्रतीक बन गये हैं. नतीजा यह है कि देश में जो लोग संकट को हल करने के लिए कोई समाधान भी रख रहे हैं तो वह निरर्थक हो जाता है. अब स्थिति यह है कि यह राष्ट्रीय मोर्चे के नेता श्री करीम संजाबी ने शाह की सरकार से बातचीत करने तक से इनकार कर दिया. ऐसी स्थिति में ईरान में निकट भविष्य में किसी असैनिक सरकार की स्थापना के आसार नज़र नहीं आते. हालाँकि शहंशाह ने यह वायदा किया है कि देश में शीघ्र ही असैनिक सरकार शासन भार संभाल लेगी. राजनैतिक अस्थिरता अगर लंबे समय तक चलती रही तो ईरान में गृहयुद्ध का खतरा उत्पन्न हो सकता है. तेल के उत्पादन में कमी के कारण आर्थिक संकट भी उत्पन्न हो सकता है. कुछ लोगों को यह जान कर आश्चर्य होगा कि सैनिक सरकार और शहंशाह के बीच भी संबंध स्थायी नहीं हैं, क्योंकि ईरान की सेना का ढाँचा कुछ इस तरह का है कि वह वहाँ के राजतंत्र के प्रति वफादार रहने के लिए बाध्य नहीं है. कुछ पश्चिमी पत्रों ने तो यहाँ तक आशंका व्यक्त की है कि एक समय ऐसा आयेगा जब सेना भी शहंशाह का आदेश मानने से इनकार कर सकती है.

ईरान में संकट दिनोंदिन बढ़ने से वहाँ से तेल की सप्लाई के कार्य में ज़बर्दस्त बाधा पड़ गयी है. इस बाधा की वजह से बड़े देशों के लिए भी ईरान का संकट बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न बन गया है. सब का ध्यान अब इस संकट की तरफ लगा हुआ है. लेकिन ईरान में संकट उत्पन्न होने पर भी ब्रिटेन और अमेरिका के शहंशाह का समर्थन करने की नीति में कोई परिवर्त्तन नहीं आया. यह दोनों देश शुरू से ही शहंशाह का समर्थन करते रहे हैं और आज की संकटापन्न स्थिति में भी उन्हें ही अपना समर्थन प्रदान कर रहे हैं. परंतु अब कुछ नये परिवर्त्तनों की आशा की जा रही है. अमेरिका के साथ ईरान के बढ़ते हुए संबंधों की अनदेखी नहीं की जा सकती. आज ईरान की स्थिति इतनी पेचीदा है कि सोवियत संघ को भी अपने रवैये में परिवर्त्तन की आवश्यकता पड़ गयी है. वैसे वह शुरू से ही ईरान में उन आंदोलनों का समर्थन करता रहा है जो अमेरिका के विरुद्ध हैं या अमेरिका के विरुद्ध भावनाएँ भड़काने में सहायक होते हैं. पर आज की स्थिति में सोवियत संघ को अपनी नीति में बुनियादी परिवर्त्तन लाने पड़े हैं. सोवियत संघ ने अमेरिकी विदेशमंत्री साइरस वांस को यह आश्वासन दिया बताते हैं कि शहंशाह के स्थान पर किसी अन्य सरकार की स्थापना में उस की दिलचस्पी नहीं है. यह वास्तव में आश्चर्य में डालने वाली बात है. इस समय ईरान में शहंशाह का विरोध करने वाली शक्तियों में वामपंथी अथवा कम्युनिस्ट भी हैं. लेकिन सोवियत संघ का अमेरिकी विदेशमंत्री को इस प्रकार का आश्वासन देना वास्तव में सारी दुनिया के लिए अजीब है. ईरान के आंतरिक संकट ने इतना गंभीर रूप धारण कर लिया है कि बड़े देशों को भी ईरान के प्रति अपनी नीति पर नये सिरे से विचार करना पड़ रहा है.

प्रेस जगत

टाइम का बुरा टैम

ब्रिटेन के 193 वर्ष पुराने और सर्वाधिक प्रतिष्ठित पत्र 'टाइम्स' और 'संडे टाइम्स' 30 नवंबर को श्रमिकों और प्रबंधकों के बीच झगड़े के कारण बंद कर दिये गये. हालाँकि 'टाइम्स' के अंतिम अंक (30 नवंबर) के संपादकीय में खास तौर से इस बात का उल्लेख किया गया है—"यह कुछ समय के लिए संभवतः अंतिम अंक होगा. . यह बिलकुल तय है कि 'टाइम्स' की वापसी अवश्य होगी". इस के अतिरिक्त पत्र के संपादक **विलियम रीस मोग** ने एक फ्रांसीसी पत्र **फिगारो** के साथ भेंट वार्त्ता में आशा व्यक्त की है कि जनवरी से अखबार फिर निकलने लगेंगे. लेकिन अभी तक झगड़ा तय हो जाने के समाचार नहीं मिले हैं.

झगड़े का कारण: दोनों पत्रों में पिछले काफी समय से श्रमिकों और प्रबंधकों के बीच झगड़ा चल रहा था और दोनों ही पक्ष शक्तिप्रदर्शन के लिए तैयार थे. झगड़े का प्रमुख कारण प्रबंधकों द्वारा समाचार पत्रों में आधुनिक तकनालॉजी लागू किये जाने पर ज़ोर देना है. इस के अंतर्गत छपाई में संगणक टाइप प्रणाली का समावेश होगा जिस के फलस्वरूप सैकड़ों लोग रोज़गार से हाथ धो बैठेंगे. प्रबंधक समझौते के लिए इस बात पर ज़ोर दे रहे हैं कि श्रमिक संगठन इस बात की गारंटी दें कि भविष्य में वे अनधिकृत रूप से हड़ताल पर भी नहीं जायेंगे और पत्र का उत्पादन बराबर जारी रखेंगे. मज़दूर वर्ग इसे अपने अधिकारों पर एक आघात मानता है.

प्रबंधकों का तर्क है कि इस तरह की हड़तालों से चालू वर्ष में दोनों अखबारों को 1 करोड़ 30 लाख प्रतियों का घाटा हो चुका है. इस वर्ष 'टाइम्स' के उत्पादन में 40 बार और 'संडे टाइम्स' के उत्पादन में 28 बार व्यवधान पड़ा है. इन दिक्कतों से परेशान हो कर प्रबंधकों ने लगभग 6 माह पूर्व दोनों पत्र बंद करने से संबंधित चेतावनी दी थी. इस के बाद इन अखबारों में कार्यरत लगभग साढ़े चार हज़ार मज़दूरों को इस आशय का एक नोटिस भी दिया गया था. इस में कहा गया था कि यदि 30 नवंबर तक श्रम संगठनों ने समझौते पर हस्ताक्षर नहीं किये तो पत्रों को बंद कर दिया जायेगा. इस नोटिस का कोई खास प्रभाव नहीं पड़ा. 54 में से सिर्फ 4 यूनियनों ने ही समझौते पर हस्ताक्षर किये. बाकी ने समझौते को स्वीकार नहीं किया.

पत्र का इतिहास : 'थंडरर' (गर्जक) के नाम से लोकप्रिय 'टाइम्स' का पहला अंक 1785 में **डेलो यूनीवर्सल रजिस्टर** के नाम से प्रकाशित हुआ था. **डेलाने** जैसे विख्यात पत्रकार इस के संपादक रहे हैं. इस के संवाददाता के रूप में **रसेल** ने अपराध और अमेरिकी गृहयुद्धों की उत्कृष्ट रपटें लिख कर विश्व के संवाददाताओं के सामने एक अच्छी मिसाल पेश की थी. इस के साहित्यिक परिशिष्ट (टाइम्स लिटरेरी

'I'm afraid Daddy thinks the new technology means letters to the Times will go to press automatically'
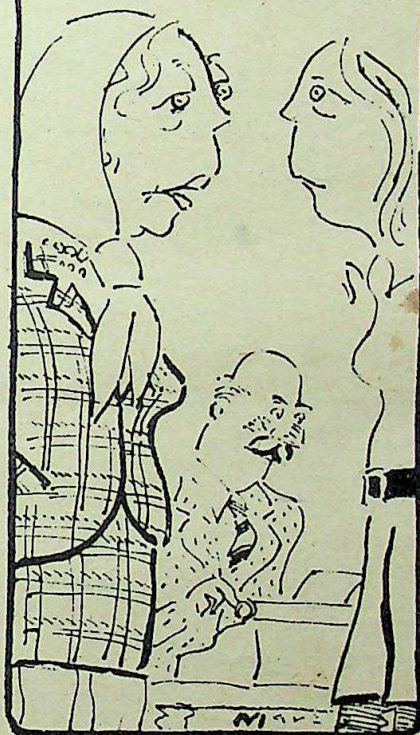
'मुझे तो डर है कि डैडी नयी तकनालॉजी मतलब यह लगाते हैं कि "टाइम्स" के नाम पत्र स्वयं ही सीधे प्रेस में पहुँच जाया करेंगे'

(30 नवबंर के टाइम्स में एक व्यंग्य चित्र)

सप्लीमेंट) में विश्व का जो साहित्य प्रकाशित होता था वह दुनिया भर के साहित्य प्रेमी पाठकों के लिए रुचिकर होता था. शुरू में इस की ग्राहक संख्या केवल पाँच हज़ार थी लेकिन उस वक्त इतनी ग्राहक संख्या वाले अखबार का ठहरना भी मुश्किल समझा जाता था. 'टाइम्स' ने दुनिया भर के प्रेस जगत के सम्मुख स्वस्थ, स्वतंत्र और निर्भीक पत्रकारिता का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किया था. इस पत्र ने सिद्ध कर के दिखाया कि किसी अखबार के लिए प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए केवल ग्राहक संख्या बढ़ाना ही काफी नहीं है. यही कारण है कि तीन लाख से भी कम ग्राहक संख्या होते हुए विश्व भर में 'टाइम्स' को प्रतिष्ठित और उत्कृष्ट समाचार पत्र माना जाता रहा है. अलबत्ता 'संडे टाइम्स' की ग्राहक संख्या 13 लाख 92 हज़ार थी.

ब्रिटिश संसद में गूंज : इन दो समाचार पत्रों के बंद होने का ब्रितानी जनता पर कितना असर हुआ, यह इसी से स्पष्ट होता है कि पत्र का प्रकाशन बंद होने की सूचना मिलते ही 'हाउस आफ कामंस' की इस विषय पर बहस करने के लिए आपात् बैठक बुलायी गयी. कंजरवेटिव सदस्य **पैटिक कोरमार्क** ने, जो कि स्वयं एक पत्रकार हैं, इस प्रश्न पर विशेष बहस के लिए प्रस्ताव रखा. इस प्रस्ताव में पत्रों के बंद होने पर ब्रितानी जनता की चिंता के विषय में सदन को अवगत कराया गया. सदस्यों ने प्रधानमंत्री केलेहन से भी मामले में हस्तक्षेप करने के लिए अनुरोध किया. लेकिन ब्रिटिश सरकार ने हस्तक्षेप करने के लिए मना कर दिया है.

अंतिम अंक में : टाइम्स के 30 नवंबर के अंक को देखने से मालूम होता है कि पत्र के इस अंतिम अंक में, जो ज़ाहिर है काफी दिक्कतों से साथ प्रकाशित हुआ होगा, लगभग हर चर्चित देशी और विदेशी समाचार ही नहीं बल्कि स्थायी स्तंभों में भी भरपूर सामग्री दी गयी है. हालाँकि स्वाभाविक रूप से प्रथम 'लीड' और पहला संपादकीय समाचारपत्र के बंद होने से ही संबंधित है. इस में भारत के समस्तीपुर लोकसभा उपचुनाव से संबंधित खबर भी है. ब्रिटेन के बहुचर्चित टोर्प मुकद्दमे से संबंधित विस्तृत रपट भी दी गयी है. खबरों के अलावा कला, खेल, संगीत, पुस्तक, समीक्षा आदि सभी स्थायी स्तंभ बरकरार हैं. संपादक के नाम पत्रों में अधिकांश 'टाइम्स' के संकट से ही संबंधित हैं जिनमें प्रबंधकों को भरपूर समर्थन देने वाले पत्रों के साथ साथ कड़ा विरोध प्रकट करने वाले पत्र भी शामिल किये गये हैं. संपादकीय में जहाँ पाठकों से असुविधा के लिए क्षमा याचना की गयी है, वहाँ श्रम संगठनों के कठोर रुख की आलोचना कर यह बताने का प्रयत्न किया गया है, समझौते को मानना मज़दूरों के हित में है.

प्रबंधकों ने काफी कहासुनी के बावजूद भी हालाँकि प्रकाशन बंद करने की तिथि को आगे बढ़ाने से इंकार किया था, किंतु वह इस बात के लिए [illegible] हो गया कि कर्मचारियों को बर्खास्तगी संबंधी नोटिस दो सप्ताह तक न दिये जायें. कर्मचारियों की ओर से सब से कठोर रुख **नेशनल ग्राफिकल एसोसिएशन** ने अपनाया है जो पत्र का प्रकाशन शुरू होने से पहले कोई समझौता करने को तैयार नहीं है.
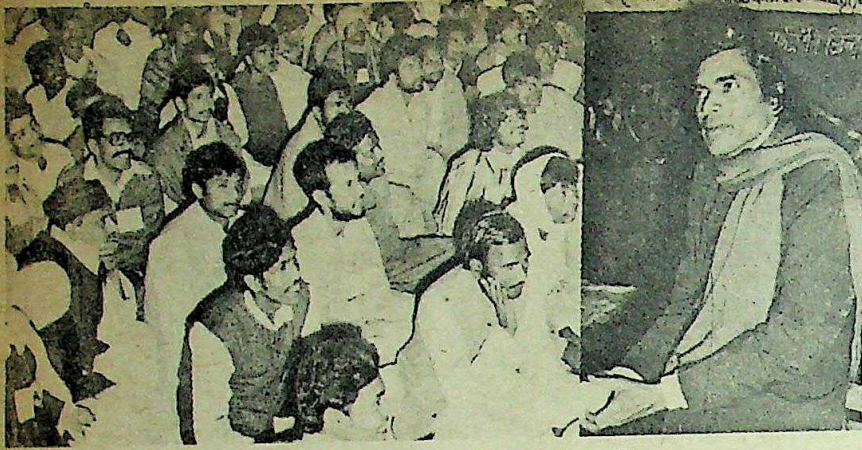
किशन पटनायकः ज.पा. का विकल्प इंका नहीं

युवा जगत

तीसरी शक्ति के अंकुर

वैशाली जिला के **सराय** में 28, 29 और 30 नवंबर को बिहार प्रदेश युवा जनता तथा संघर्ष के सहयोगी साथियों का प्रथम प्रांतीय सम्मेलन संपन्न हो गया. सम्मेलन का शुभारंभ जे. पी. के संदेश से हुआ. तदोपरांत समाजवादी नेता किशन पटनायक ने सम्मेलन का उद्घाटन किया. अध्यक्षता नीतीश कुमार ने की. इमरजेंसी हटने और केंद्र और राज्यों में जनता पार्टी की सरकार बनने के बाद यह पहला अवसर था कि मौजूदा स्थिति का विश्लेषण करने और अपने भावी कार्यक्रम पर विचार करने के लिए बिहार आंदोलन के सक्रिय युवा कार्यकर्त्ता इतनी बड़ी संख्या में जुटे हों. युवा नेता **अनुप्रकाश जायसवाल** ने सम्मेलन में आये हुए युवा कार्यकर्त्ता **रमेश कुमार सिन्हा** से मिलवाया जो 19 मार्च '74 को खगड़िया स्टेशन चौक पर पुलिस की गोली लगने के कारण विकलांग हो गये हैं. अब वह खाना भी नहीं खा सकते. उन की आर्थिक स्थिति बहुत ही दयनीय है. लेकिन अभी तक आंदोलन के गर्भ से पैदा हुई जनता पार्टी की सरकार की ओर से किसी तरह की सहायता नहीं मिली है. जे. पी. की ओर से एक बार सिर्फ हजार रुपये दिये गये हैं. रमेश की तरह बिहार आंदोलन के दौरान विकलांग हुए हजारों युवक हैं. लेकिन सरकार ने उन की ओर से आँखें मूंद ली हैं.

सम्मेलन में भाग लेने वाले अधिकांश कार्यकर्त्ता वैसे थे जो बिहार आंदोलन और इमरजेंसी के दौरान जेलों में बंद रहे थे. सम्मेलन में दूसरे छात्र युवा संघर्ष वाहिनी, एस. एफ. आई. विद्यार्थी परिषद्, सर्वोदय और लोहिया विचार मंच आदि अन्य संगठनों के प्रतिनिधियों ने पर्यवेक्षक के रूप में भाग लिया. संगठनों के प्रतिनिधियों के अतिरिक्त आंदोलन के दिनों में छात्रों एवं युवकों के साथ सक्रिय भूमिका निभाने वाले बुद्धिजीवियों एवं साहित्यकारों का सम्मेलन में भाग लेना उपलब्धि मानी जायेगी. विशेष अतिथि के रूप में समाजवादी विचारक और लेखक **सच्चिदानंद सिन्हा** और पटना विश्वविद्यालय के प्राध्यापक **डा. महेंद्र नारायण कर्ण** ने सम्मेलन में भाग लिया. संपूर्ण क्रांति की शुरुआत की तड़प युवा कार्यकर्त्ताओं और नुक्कड़ कवियों की रचनाओं में समान रूप से थी, लेकिन युवा कार्यकर्त्ताओं में सोच, अनुशासन और आत्मनिरीक्षण की कमी थी. सम्मेलन में 840 युवा कार्यकर्त्ता प्रतिनिधियों ने भाग लिया. आदिवासी और हरिजन युवा कार्यकर्त्ताओं की संख्या पर्याप्त थी. सम्मेलन की सब से बड़ी खूबी यह थी कि युवा कार्यकर्त्ताओं ने यह फैसला किया कि यदि युवा जनता की राष्ट्रीय समिति सम्मेलन में पास किये गये राजनैतिक दिशा और कार्यक्रम संबंधी प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करती है और संपूर्ण क्रांति के दूसरे चरण में रोड़ा बनती है तो अलग नाम से संगठन बना कर संघर्ष के लिए छात्रों और युवकों का आह्वान किया जायेगा. सम्मेलन में पारित प्रस्तावों को युवा जनता की राष्ट्रीय समिति के पास भेज दिया गया है. जनवरी के अंत तक यदि राष्ट्रीय समिति सम्मेलन में पारित प्रस्तावों के अनुसार अपने को बदलने और संघर्ष के लिए तैयार नहीं कर पाती है तो सम्मेलन के निर्णय के अनुसार अलग युवा संगठन की घोषणा की जायेगी. संगठन के नाम के चयन का भार प्रांतीय समिति के ऊपर सौंपा गया है.

जे. पी. का संदेशः लोकनायक **जयप्रकाश नारायण** ने युवा जनता के कार्यकर्त्ताओं के प्रथम प्रांतीय सम्मेलन के अवसर पर संदेश देते हुए कहा, "जनता पार्टी के नेतृत्व में लोकतंत्र की पुनरस्थापना के बाद जो अपेक्षाएँ जनमानस और युवा मानस में पैदा हुई थीं उन की पूर्ति की दिशा में कोई ठोस कदम नहीं उठाया जा सका है. भारतीय जनता ने यह आशा की थी कि नया शासन उन की रोजी-रोटी की समस्याओं को तेजी से हल करेगा और युवकों को उम्मीद थी कि जनता पार्टी सामाजिक-आर्थिक परिवर्त्तन की दिशा में दूरगामी कदम उठायेगी. ये आशाएँ पूरी नहीं होने के कारण जनता और युवकों के मन में भारी क्षोभ और असंतोष पैदा होने लगा है... तानाशाही शक्तियाँ फिर से सिर उठाने लगी हैं. श्रीमती इंदिरा गांधी ने इमरजेंसी का फिर से समर्थन कर तानाशाही में अपना विश्वास दुहराया है. वह युवकों के लिए एक चुनौती हैं. लोकशाही के प्रति आस्थावान युवक ही इस क्रांति का जवाब दे सकते हैं."

जे. पी. दोषीः युवा सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए समाजवादी नेता और चिंतक **किशन पटनायक** ने कहा कि एक खास उम्मीद ले कर आप लोगों के बीच आया हूँ. संपूर्ण क्रांति की प्रकट शक्ति अभी दिखाई नहीं दे रही है. संभावनाओं पर हम जी रहे हैं जो लोग संपूर्ण क्रांति की शक्ति की तलाश में लगे हुए हैं उन्हें एक साथ कई जगहों में संभावनाएँ दिखाई दे रही हैं. जनता पार्टी का विकल्प संभावनाओं में ही है. आप में भी वैसी संभावनाएँ छिपी हुई हैं. बिहार आंदोलन का विश्लेषण करते हुए श्री पटनायक ने जे. पी. को इस बात के लिए दोषी ठहराया कि उन्होंने चुनाव के वक्त छात्रों-युवकों को जनता पार्टी में शामिल हो कर चुनाव लड़ने की छूट दे दी. छात्रों-युवकों के प्रतिनिधि जो विधानसभा और संसद में गये वे अपना अलग अस्तित्व नहीं बना सके. उन का चरित्र जनता पार्टी के आम विधायकों से अलग नहीं रहा जिस से कि आंदोलनकारी युवक प्रेरणा ले सकें. कुछ मायनों में तो ये जनता पार्टी के विधायकों से भी गिर गये. आलीशान भवन और मोटर गाड़ियों के शिकार युवा विधायक राजनैतिक दल के विधायकों से अधिक हैं.

एक क्रांतिकारी युवा संगठन के लिए सत्ता के झगड़ों और तिकड़मों से अपने को मुक्त रखना अनिवार्य होता है. लेकिन युवा जनता सत्ता के झगड़ों में इस कदर फँस गयी है कि इसे किसी भी शर्त पर अभी हम क्रांतिकारी संगठन नहीं कह सकते. क्रांतिकारी संगठन के लिए दो चीज़ें बुनियादी तौर पर ज़रूरी होती हैं: (1) संगठन के कार्यकर्त्ताओं का जनसाधारण से कितना संपर्क है और (2) क्रांतिकारी विचारों से वह संगठन कितना ओतप्रोत है.

'युवा पीढ़ी में स्वाभाविक क्रांतिकारिता होती है. लेकिन उन में क्रांतिकारिता तब पनपती है जब गरीब मज़दूरों के बीच युवक काम करते हैं. उन के बीच काम करने के बाद जो संगठन बनता है वही क्रांतिकारी संगठन होता है. एक बात और ध्यान देने योग्य है कि क्रांतिकारी चरित्र के नवीकरण के लिए बारबार जनता के बीच जाना पड़ता है. एक बार कभी संघर्ष कर के उसे जीवन भर भुनाया नहीं जा सकता.

किशन पटनायक ने युवकों को संबोधित

स्कूल में शिविर : सादे साधन

करते हुए कहा कि गरीबों और मज़दूरों को संगठित करने का काम युवकों को अपने कंधों पर उठाना चाहिए. गरीबों एवं मज़दूरों को कुछ दिनों तक साम्यवादी और समाजवादी आंदोलन ने संगठित किया था लेकिन अभी दोनों इस ओर से उदासीन हैं. अभी जिम्मेदारी संपूर्ण क्रांति में विचार रखने वाले युवकों के ऊपर है. संघर्ष वाहिनी ने इस दिशा में कदम बढ़ाया है. उसने तुर्की और बोधगया महंत के खिलाफ संघर्ष छेड़ दिया है.

श्री पटनायक ने युवा जनता के कार्यकर्त्ताओं को सलाह दी कि वह भी कम से कम दो क्षेत्रों को चुन कर जमीन का आंदोलन चलायें. इस से युवा शक्ति के साथ श्रम शक्ति जुड़ेगी. इस के अतिरिक्त बेरोज़गारी और प्रतिनिधि वापसी के सिद्धांत को उठाना चाहिए. बेरोज़गारों की फेहरिस्त बना कर **काम का अधिकार दो या बेरोजगारी भत्ता दो** के नारे के साथ संघर्ष छेड़ने वाला युवा संगठन बिहार का सब से बड़ा संगठन बनेगा. इस से अपार युवा शक्ति संगठित हो सकती है. प्रतिनिधि वापसी के सिद्धांत के ऊपर बोलते हुए श्री पटनायक ने कहा कि जनता का यह अलिखित अधिकार है कि वह अपने प्रतिनिधियों को वापस बुला ले. इस से चमत्कारी परिणाम निकल सकता है. लेकिन आज की स्थिति में इसे बहुत सावधानी से उठाना चाहिए. कुछ आधे दर्जन क्षेत्रों को पूरे बिहार में चुन लेना चाहिए और वहीं इस माँग को उठाना चाहिए. इस के लिए उस क्षेत्र के मतदाताओं का परिषद् बना कर या जन-संघर्ष समिति बना कर इस माँग को उठाना चाहिए. परिषद् या समिति को इस तरह ठोस और शक्तिशाली होना चाहिए ताकि अगले चुनाव में वह अपना उम्मीदवार भी दे सके.

सम्मेलन के दूसरे दिन राजनीतिक दिशा का प्रस्ताव **वशिष्ठ नारायण सिंह** ने रखा और उस का समर्थन प्रदेश युवा जनता के उपाध्यक्ष **शिवाधार राम** ने किया. राजनीतिक प्रस्ताव में कहा गया है कि अखिल भारतीय युवा जनता के गठन के समय कागज पर मान लिया गया था कि यह संगठन संपूर्ण क्रांति के लक्ष्य को अपनायेगा और स्वशासित रहेगा. बिहार आंदोलन के लक्ष्यों और कार्यक्रमों के अमल के आधार पर ही जनता पार्टी से मित्र संगठन का संबंध रहेगा. लेकिन इस के विपरीत जनता पार्टी को क्या. उस के गुटों के संकीर्ण और तात्कालिक स्वार्थों का प्रभाव युवा जनता की गति में रुकावट पैदा करने लगा तथा उस के चरित्र को विकृत कर दिया. **सम्मेलन की राय में आज दल के आधार पर संगठित राजनीति उसी प्रकार बेमानी हो गयी है. जिस तरह 1973-74 में हो गयी थी. जनता पार्टी के राज में न सिर्फ 1974 का सांविधानिक ढाँचा वापस आ गया है बल्कि उस के साथ ही साथ प्रशासन और राजनीति की सारी संकीर्ण प्रवृत्तियाँ भी वापस आ गयी हैं और यह स्वाभाविक है कि उन के साथ ही साथ इंदिरा गांधी भी वापस आती हुई दिखायी दे रहीं हैं. इंदिरा गांधी के उत्थान के पीछे उस की अपनी ताकत नहीं है. जिस अनुपात में जनता सरकार असफल हुई है. उसी अनुपात में इस का असर बढ़ा है. इस लिए जनता पार्टी और उस की सरकार की गलत नीतियों का विरोध और उन्हें सही मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए मजबूर करने वाली ताकत पैदा नहीं होती है तो जनता यह समझ लेगी कि इंदिरा गांधी ही जनता पार्टी और उस की सरकार का विकल्प है.** आगे युवा जनता ने अपने राजनीतिक प्रस्ताव में कहा है कि आज भी सांप्रदायिक दंगे वैसे ही हो रहे हैं जैसे कांग्रेसी राज में होते थे. संगठित राजनीति में रा. स्व. सं. और कांग्रेस (इ) ऐसे तत्त्व हैं जो अपने राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सांप्रदायिक भेदभाव पैदा करते हैं. प्रामाणिक जाँच के द्वारा इन तथ्यों को उजागर करना सरकार का काम है. किंतु जब तक रा. स्व. सं. का प्रभाव केंद्र शासन और राज्यों पर है तब तक कोई जाँच निष्पक्ष नहीं हो पायेगी. **अतः सम्मेलन की ओर से माँग की गयी है कि रा.स्व.सं. जयप्रकाश नारायण की सलाह मान कर अपना दरवाज़ा मुसलमानों और हरिजनों के लिए खोल दे. जब तक वह ऐसा नहीं करता है तब तक जनसंघ घटक के लोगों को किसी भी सरकार में शरीक नहीं किया जाये.**

युवा जनता के नीति वक्तव्य के प्रस्ताव में सामाजिक विषमता और गैरबराबरी मिटाने के लिए औरतों, आदिवासियों, पिछड़ी जातियों और मुसलमानों को प्रशासन में राजनीतिक नेतृत्त्व में विशेष अवसर देने की नीति को स्वीकार किया गया है. नीति वक्तव्य के प्रस्ताव को पेश करते हुए बिहार युवा जनता के महा-मंत्री **रघुपति** ने बिहार सरकार द्वारा सरकारी सेवाओं में पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षण देने की घोषणा का स्वागत किया है. लेकिन जब तक आर्थिक समानता के लिए औद्योगिक विकेंद्रीकरण बड़े उद्योगों पर सामाजिक स्वामित्व, जमीन पर जोतने वालों का अधिकार, सबों को रोजगार का अधिकार नहीं मिलता है तब तक मात्र नौकरियों में आरक्षण देने से

रमेश कुमार सिन्हा : ताकि सनद रहे

समाज में बदलाव नहीं आ सकता. शहर बनाम गांव के विषय में प्रस्ताव में कहा गया है कि गांव को ही मुख्य मानवीय आवास बनाना चाहिए और शहर केवल बाजार मंडी, और सरकारी कार्यालयों का स्थान रहे. साथ ही उन लोगों को गाँववासी नहीं माना जाये जो गांव की संपत्ति के मालिक हैं लेकिन जिन का रहन सहन और भविष्य शहर के साथ जुड़ा हुआ है. नीति वक्तव्य के इस प्रस्ताव का समर्थन युवा नेता वशिष्ठ नारायण सिंह ने किया. उन्होंने प्रस्ताव के समर्थन में बोलते हुए पिछड़ी जातियों के लिए सरकारी सेवाओं में आरक्षण की नीति पर बल दिया और कहा कि यदि हम लोग संपूर्ण क्रांति की दिशा में आगे बढ़ना चाहते हैं तो आरक्षण उस की शुरुआत है. प्रस्तावक और समर्थक के लंबे और गंभीर भाषणों के बावजूद कुछ कार्यकर्ताओं ने इस प्रस्ताव का विरोध किया. अंत में प्रस्ताव बहुमत से पास हो गया.

इस के अतिरिक्त शिक्षा तथा कार्यक्रम और उस की दिशा संबंधी दो प्रस्ताव पास किये गये. शिक्षा संबंधी प्रस्ताव बिहार युवा जनता के उपाध्यक्ष **बालमुकुंद शर्मा** ने रखा और उस का समर्थन महामंत्री **मुमताज अहमद** ने किया. सम्मेलन में कार्यक्रम और उस की दिशा संबंधी प्रस्ताव युवा जनता के महामंत्री **तारकेश्वर आजाद** ने रखा और उस का समर्थन अखिल भारतीय युवा जनता के महामंत्री **शिवानंद तिवारी** ने किया. मांगों और कार्यक्रमों का समर्थन करते हुए श्री तिवारी ने कहा कि अभी तक अखिल भारतीय युवा जनता का जो चरित्र रहा है उस से यह आशा नहीं की जा सकती है कि सम्मेलन की मांगों और कार्यक्रमों को राष्ट्रीय समिति मान लेगी. बिहार का संदर्भ और राज्यों से अलग है. बिहार की युवा शक्ति ही पुनः पूरे राष्ट्र की युवा शक्ति को नेतृत्व देने और अगुवाई करने में सक्षम है.

सम्मेलन में यह तय किया गया कि बिहार युवा जनता अपनी तेरह सूत्री मांगों के समर्थन में हस्ताक्षर अभियान चलायेगी. यह अभियान सम्मेलन के बाद से शुरू हो जायेगा और 15 मई '79 तक चलेगा. युवा जनता, बिहार 30 प्रखंडों को सघन क्षेत्र मान कर काम करेगी. इन प्रखंडों में 15 मई '79 तक बेरोजगारों के सर्वेक्षण का काम पूरा कर लेगी. 5 जून को पटना में एक विराट प्रदर्शन किया जायेगा और उसी दिन बिहार के राज्यपाल को बेरोजगारों की सूची के साथ ज्ञापन दिया जायेगा.

अंत में 29 नवंबर को 12 बजे रात्रि में सम्मेलन इस विश्वास के साथ समाप्त हो गया कि आगामी वर्ष में युवा जनता सघन कार्य क्षेत्र बनायेगी और उस से जनशक्ति प्राप्त कर तीसरी शक्ति के रूप में अपने को भारतीय राजनीति में प्रतिष्ठित करेगी. किसी राजनैतिक दल की चाकरी युवा जनता के कार्यकर्ताओं को पसंद नहीं है.

चरचे और चरखे

साहित्य अकादेमी पुरस्कार और डाक्टरी जाँच

राजधानी में साहित्यकारों के बीच आजकल साहित्य अकादेमी पुरस्कार की बड़ी चरचा है. तरह तरह की अटकलें लगायी जा रही हैं कि पुरस्कार किसको मिलेगा, किस कृति पर मिलेगा और क्यों मिलेगा. कुछ लोग उन की चरचा करते हैं जिनके ऊपर अंग्रेजी में लेख छपे हैं, कुछ लोग उनकी जिन्होंने अपने ऊपर अंग्रेजी में लेख लिखवाये और छपवाये हैं. ऐसे लोग यह दावा करते हैं कि अंग्रेजीदां जमात में नाम होने का रौब हिंदी वालों पर पड़ता है क्योंकि असली मर्मज्ञ और बुद्धिजीवी तो अंग्रेजी वाले हैं. लेकिन ऐसे लोग भी हैं जो इस तर्क को पूर्णतया इंकार करते हैं. उन का कहना है कि अंग्रेजी में पत्र पत्रिकाओं में लेख छप जाने या चरचा हो जाने से कुछ नहीं होता. असल बात तो लेखकों के बीच अपनी और अपनी कृति की चरचा करा लेना है. और इस तर्क के तहत वे उन लोगों के नाम गिनाते हैं जिन्होंने अपनी कृति प्रकाशित होते ही उस का विमोचन समारोह कराया है, राजनेताओं और साहित्यकारों का जमघट इकट्ठा किया है. उस पर गोष्ठियाँ करवायी हैं और उन के लंबे लंबे विवरण अपनी या अपने प्रभाव की परिधि वाली साहित्यक पत्रिकाओं में छपवाये हैं. ठीक इन्हीं दिनों साहित्यिक कृतियों पर जो विचार गोष्ठियाँ आयोजित की जा रही हैं और जिन में भाग लेने वालों की सूची में बड़े बड़े नामों का एलान है. कुछ लोगों का कहना है कि यह पुरस्कार के लिए ही किया जा रहा है. कुछ लोग ऐसे भी हैं जो इन गोष्ठियों को महत्व नहीं देते. वह ज्यादा दो टूक खरा हिसाब सामने रखते हैं. साफ कहते हैं कि पुरस्कार उन को मिलेगा जिन्होंने अकादेमी में जिन लोगों का वर्चस्व है उन्हें पटा रखा है और साल भर उन के इर्दगिर्द घूमते, उन्हें खाने-पीने पर बुलाते पाये गये हैं. ऐसे लोगों के नाम उन की जबान पर हैं और धड़ल्ले से आप को बता देंगे. उन के पहले का व्यवहार और कृति छपने के बाद का व्यवहार आप को साफ साफ आँख में उंगली डालकर दिखा देंगे. बता देंगे की अपनी अमुक रचना छपने के बाद उन की सरगर्मियाँ क्या रही हैं. यह स्तंभकार ऐसे जमावड़ों में बैठा है और यह मानकर उठ आया है कि यह सब खाली दिमाग का फितूर है. इसके पीछे गंभीरता कम मनोरंजन का उद्देश्य ज्यादा है. कहते भी हैं, परनिंदा सुख से बड़ा सुख दूसरा कोई नहीं होता.

अक्सर ऐसे लोग भी मिले हैं जो पुरस्कारों में जातिभेद बड़ी गंभीरता से समझाते हैं. हिसाब लगाकर बताते हैं नये लोगों में अभी तक जिन्हें साहित्य अकादेमी पुरस्कार दिया गया है, उन में ठाकुर और ब्राह्मण ही थे. पिछली बार भी इसी वर्ग का प्रतिनिधित्व भी हो चुका. कायदे से अब हरिजन को मिलना चाहिए या किसी अल्पसंख्यक वर्ग के प्रतिनिधि को. पर किताबें कायस्थों की दौड़ में हैं जो न ठाकुर-ब्राह्मण वर्ग में आते हैं न जाट-अहीर. पर कायस्थों को मलेगा नहीं, क्योंकि कायस्थ कायस्थ का दुश्मन होता है. कायस्थ को मौका मिलेगा तो ब्राह्मण को गले लगा लेगा पर कायस्थ को नहीं. ठाकुर और ब्राह्मण जातिपरस्त होते हैं. देखना ठाकुर, ठाकुर को दिला देगा इस बार न सही अगली बार!

सो पाठको! यह जातिभेद राजनीति में ही नहीं साहित्य में भी देखने दिखाने वाले प्रपंची दिमाग मौजूद हैं, यह इस स्तंभकार को स्वप्न में भी ख्याल नहीं आता था. वह मन हल्का करने के लिए एक पुरस्कार प्राप्त साहित्यकार के पास चला गया. उन्होंने कहा—

'यह सब बकवास है. अकादेमी पुरस्कार या तो बिटिया की शादी के लिए मिलता है या अस्वस्थ हो जाने पर. कुछ दिल का दौरा वगैरह पड़ जाये. अब देखिए मुझे इसीलिए मिला. बीमार न पड़ा होता तो न मिलता. अमुक को भी और अमुक को भी बीमार होने के बाद ही मिला था. अमुक अमुक को बिटियों की शादी के लिए मिला था.'

स्तंभकार हैरत में रह गया पूछा—'और रचना?'

'रचना तो रहती है. भई लेखक है तो कोई न कोई किताब तो होगी ही. अच्छी बुरी से कोई फर्क नहीं पड़ता.'

'फिर आपके हिसाब से किसे पुरस्कार मिल रहा है?'

'भई, उसमें भी टाई पड़ी हुई. दो तीन नाम जो हैं सभी उच्च रक्तचाप से पीड़ित हैं. बीमार रह रहे हैं.'

'फिर क्या होगा?'

'सुनते हैं अब अकादेमी एक डॉक्टर तय कर रही है जो जा कर देखे किसका रक्तचाप सब से ज्यादा रहता है. उसे ही पुरस्कार दे दिया जायेगा.'

'और लड़की की शादी की बात?'

'उसमें भी टाई पड़ी है. इन सभी के पास शादी के उम्र की लड़कियाँ भी हैं. अब आप लोग सुझाव दीजिए एक ज्योतिषी भी तय किया जाये जो कुंडली विचार आये जिस का पहले सगुन बनता हो, उसे दे दे.'

स्तंभकार हैरत में था कि यह बात पुरस्कृत साहित्यकार बड़ी गंभीरता से कह रहे थे. यह उन के मुख पर मुस्कान की प्रतीक्षा ही करता रह गया.

दौलती अब भी वेश्या है

बंधुआ मजदूरों पर गांधी शांति प्रतिष्ठान द्वारा किये गये सर्वेक्षण के अनुसार अकेले उत्तर प्रदेश राज्य में लगभग साढ़े पाँच लाख बंधुआ मजदूर हैं. यहाँ के जिला बिजनौर, मुजफ्फर नगर मेरठ, मुरादाबाद, बरेली, खेरी, सीतापुर, बलिया, देवरिया क्षेत्रों में बंधक मज़दूरी प्रथा बहुत अधिक प्रचलित है. देहरादून के जौनसार बावर क्षेत्र की कोलटा जाति की स्त्रियों पर इस बंधक प्रथा की मार कुछ अधिक ही है. इसी रपट से प्रस्तुत है पहली कहानी :

हर गाँव की झोपड़ियाँ लगभग एक सी होती हैं जिस तरह सभी मज़दूरों के चेहरे एक जैसे दिखाई देते हैं. हर झोंपड़ी के साथ किसी एक भूमिहीन किसान का नाम जुड़ा होता है जो उसे दूसरी झोपड़ियों से अलग एक पहचान भर दे देता है. बस.

देहरादून के जौनसार बावर क्षेत्र में एक छोटा सा गाँव है धौरा. दौलती इसी गाँव की एक झोंपड़ी में रहती है. जीना क्या है अनजाने में प्रायश्चित कर रही है एक अवर्ण मजदूर के घर जन्म लेने का.

दौलती तब काफी छोटी थी. उस की बड़ी बहन विवाह लायक हो चुकी थी. पर पैसा हो तो विवाह की बात हो. लेकिन बेटी का ब्याह तो करना ही है चाहे खुद बिकना ही क्यों न पड़े. पैदा जो की है. बाप ने एक राजपूत जमींदार से इस विवाह के लिए बारह सौ रुपए का कर्ज लिया और बदले में उस की बंधुआ मज़दूरी स्वीकार कर ली.

बंधुआ मज़दूरी की परिभाषा जानने समझने की कोशिश में ही दौलती सोलह वर्ष की हो चुकी थी. विवाह की दहलीज़ पर अवर्ण बंधुआ मज़दूर की दूसरी बेटी. पर गाँव के ही एक धनाढ्य ब्राह्मण की नज़रों में वह खटक रही थी. उस ने दौलती के पिता से कहा कि अगर वह दौलती को उसे दे दे तो ऋण मुक्त हो सकता है. वह दौलती से शादी कर लेगा.

इस बंधुआ जीवन से मुक्त होने का अच्छा मौका है. साथ ही बेटी भी किनारे लग जायेगी. यह सोच कर पिता ने हामी भर दी. ब्राह्मण ने राजपूत ज़मींदार का ऋण चुका कर उसे बंधुआ मज़दूरी से मुक्त करा दिया. लेकिन अपने वचन के अनुसार दौलती से विवाह न कर के वह उसे सहारनपुर ले गया और वहाँ से मेरठ. वहाँ उसने दौलती को वेश्यावृत्ति करने के लिए मज़बूर किया. उस से होने वाली आय पर कर्ज़ वसूली के रूप में अधिकार करता रहा.

लेकिन तीस वर्ष की होते होते दौलती बूढ़ी सी दिखाई देने लगी. जवान जिस्म खरीदने वाले शहरी ग्राहकों के लिए दौलती आकर्षण-हीन हो चुकी थी. उस का बाजार भाव भी गिर गया था.

तब उसे यह धंधा गाँव में करने के लिए मज़बूर किया गया. कई बार उसने शादी करने की बात भी सोची लेकिन उस के ब्राह्मण मालिक ने हर बार उस की इस इच्छा को दबा दिया.

ब्राह्मण के बूढ़े होने पर जब उस के बेटे ने काम धंधा सँभाला तो पिता की संपत्ति के साथ साथ दौलती भी उस के शिकंजे में आ गयी. उस के दोस्तों के लिए मनोरंजन के एक साधन के रूप में.

अब वह ब्राह्मण के बेटे के लिए काम करती है. हर शाम वह अपनी कमाई ब्राह्मण के बेटे को उस ऋण चुकाई के रूप में देती है जो उस के पिता ने ब्राह्मण से लिया था.

बंधुआ मज़दूरी प्रथा ने उसे जीवन को एक विशेष ढर्रे पर जीने के लिए बाध्य किया है. संपत्ति के नाम पर उस के पास वही छोटी सी झोंपड़ी है जो गाँव आने पर ब्राह्मण ने बनवा कर दी थी. वह भी उस की नहीं है ब्राह्मण का बेटा कभी भी उसे निकाल कर बाहर फेंक सकता है. कोई संपत्ति रखने का उसे अधिकार नहीं है. उस की इच्छाओं का कोई महत्त्व नहीं रह गया है. वह अपने जीवन में क्या चाहती है, क्या नहीं चाहती उस के लिए यह सब अर्थहीन है. जिस तरह स्वप्न कोई अर्थ नहीं रखते. वह अपनी मर्जी से कोई और रोज़गार नहीं ढूँढ़ सकती ताकि इस बंधुआ जीवन से मुक्ति मिले. यहाँ तक कि अपने श्रम का बाजार भाव जानने की भी कोशिश करने की वह अधिकारिणी नहीं है. रोज़ शाम को अपनी दिन भर की आय ब्राह्मण के बेटे को दे देना ही उस की दिनचर्या बन गया है.

अगर आप उस से पूछें कि वह अभी तक ब्राह्मण के बेटे का ऋण क्यों चुकाये जा रही है वह तो कभी का पूरा हो चुका, तो वह इस सवाल पर अजीब सी दृष्टि से देखती हुई खड़ी रह जायेगी. उस की दृष्टि में इस बंधुआ जीवन की सच्चाई पर शक करने का कोई कारण ही नहीं है.
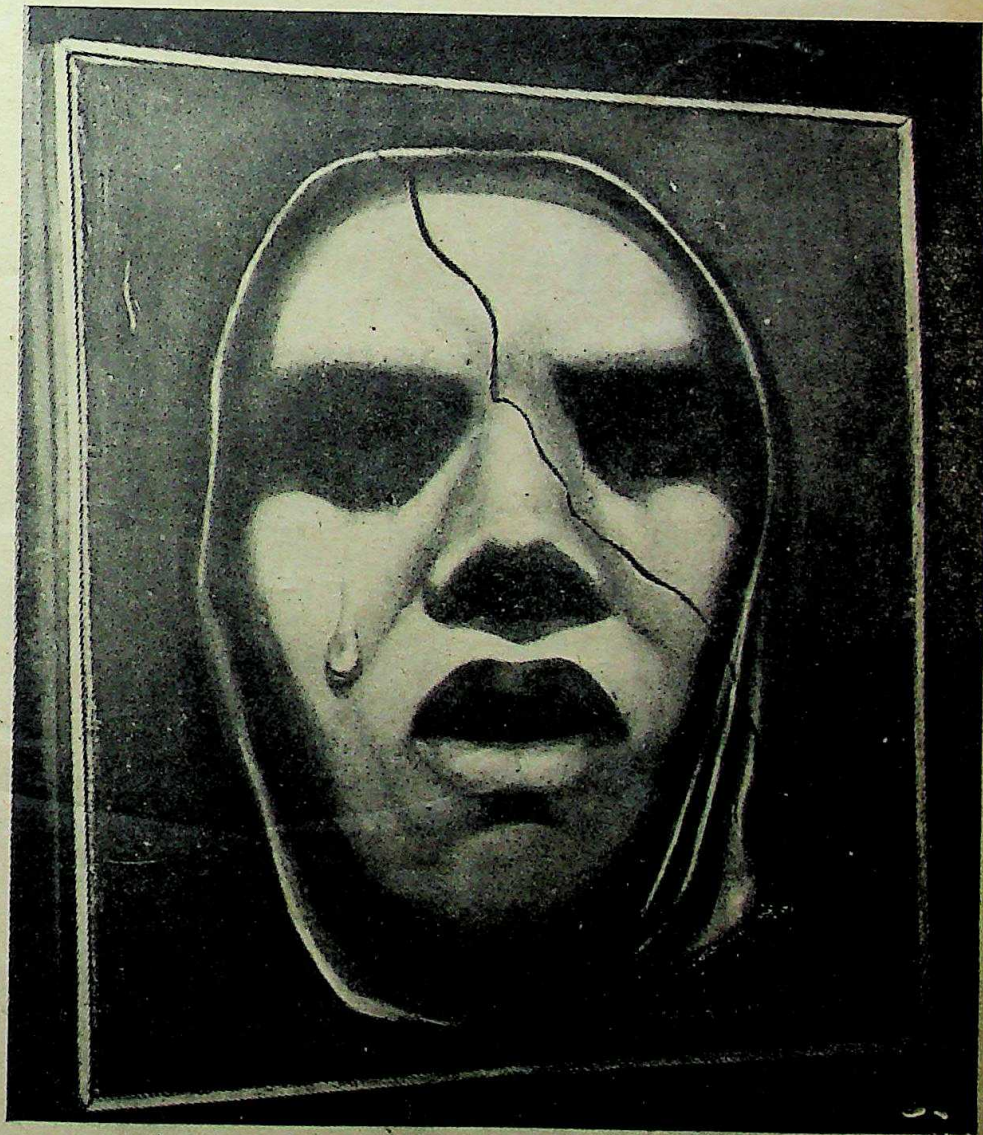
चित्र : वसीम आर. कपूर

हिमालय की धर्म भाषा

कृष्णनाथ

हिमालय को एक भिन्न प्रकार से भी देखा जा सकता है. एक है बाह्य गिरी, दूसरे अंतर्गिरी. बाह्य गिरी वह है जिस में एक पहाड़ के बाद पहाड़ नहीं मैदान दीखता है. अंतर्गिरी वह है जिस में पहाड़ के बाद पहाड़ फिर पहाड़ दीखता है, मैदान नहीं. बाह्य गिरी प्राय: अपने दक्षिण भारत के उत्तरी मैदानों से जुड़ा हुआ है. इस पर उत्तर पश्चिम, उत्तर मध्य और उत्तर पूर्व की मैदानी संस्कृति और भाषा का प्रभाव है. या बहुत कर के भाषा और संस्कृति का, पहाड़ी और मैदानी का संगम और सिलसिला.

अंतर्गिरी में कई बोलियों का चलन रहा है. ये बोलियाँ जैसे पहाड़ी द्वीप में अलग-थलग विकसित हुई हों. संचार की कमी से इन में लेन देन बहुत कम हुआ है. एक पहाड़ी द्वीप की बोली दूसरे की पकड़ में नहीं आती. जैसे किन्नौर की बोली लाहुली को समझ में नहीं आती. इतना ही नहीं, निचले किन्नौर की बोली उपरले किन्नौर में और लाहुल के भी निचले हिस्से की बोली उपरले हिस्से में ठीक ठीक नहीं समझी जाती. लाहुल स्पीती हालाँकि एक जिला है, फिर भी लाहुल के केंद्र केलंग की बोली और स्पीति के केंद्र काज़ा की बोली में अंतर है. ध्वनि में, अर्थ में, अर्थ छाया में अंतर है. लाहुल में ही 6 या अधिक बोलियाँ रही हैं. वैसे स्पीति संस्कृति की दृष्टि से लद्दाख से ज्यादा नजदीक है. फिर भी लद्दाखी बोली एक विशिष्ट रूप में विकसित हुई है. बोलियों की जो भिन्नता उत्तर पश्चिम हिमालय में है, वही हिमालय में भी मौजूद है.

इन बोलियों की भिन्नता के साथ-साथ हिमालय के अंतर्गिरी में, विशेषकर इस के उपरले हिम गिरी में धर्म भाषा एक है. भाषा-शास्त्री इसे तिब्बती-बर्मी भाषा परिवार की मानते हैं. और उसे प्राय: तिब्बती कहते हैं किंतु इसे ठीक ठीक भोट भाषा कहना अच्छा होगा. भोट संस्कृत शब्द है. तिब्बत संभवत: फारसी. स्वयं तिब्बती अपने को बोद-पा या भोट देश के निवासी कहते हैं. बोद भोट का अपभ्रंस मालूम पड़ता है. फिर भोट का बौद्ध—बोध से संबंध सुझाया गया है. हिमालय के के इस प्रत्यंत देश के निवासी संस्कृत भोट शब्द के पहले अपने आप को, अपने देश को और भाषा को क्या कहते हैं? इस का ठीक पता नहीं. लिखित इतिहास में यह भोट देश है. लगता है तिब्बत का प्रयोग फारसी से अंग्रेजी में और अन्य आधुनिक यूरोपीय भाषाओं में आ गया और इन के ज़रिए आधुनिक चलन में.

स्थानीय भाषा : इस का एक कारण (इस भाषा और देश के तिब्बती कहलाने का) यह भी हो सकता है कि इस का बड़ा जमाव तिब्बत में है. वैसे लद्दाख से लेकर अरुणांचल तक सब दूर है. तिब्बत के पूरब और पश्चिम बौद्ध धर्म शायद तिब्बत में आने से पहले है. किंतु तिब्बत में महायान बौद्ध धर्म और संस्कृति और भाषा का सब से ज्यादा उन्नत और विकसित रूप पिछले एक हजार वर्ष से अधिक से सुरक्षित है. ये तिब्बती अपने को भोट देश का निवासी भले कहते हों किंतु जब फारसी विश्व भाषा थी, या उस ने विश्व भाषा बनने की चेष्टा की थी, शायद तब से भोट देश पश्चिम में तिब्बत कहलाया. और फिर जब अंग्रेज़ी ने विश्व भाषा बनने की कोशिश की तो इस ने मूल भोट शब्द के बजाय फारसी का तिब्बत ग्रहण किया. एक सामाज्यशाही भाषा दूसरी साम्राज्यशाही परंपरा को ज्यादा अपनाती है, बनिस्वत मूल भाषा के.

जो हो, ऊपरी हिमालय की यह धर्म भाषा, इसे चाहे भोटी कहें या तिब्बती, उत्तर पश्चिम में लद्दाख से लगा कर मध्य में नेपाल के मुस्ताङ. जैसे ऊपरी हिमालय से होते हुए पूर्व में अरुणांचल की तवाङ. गोनपा और उस के भी पूर्व एक हैं. लिपि, ध्वनि, अर्थ सब एक हैं. बोली जरूर भिन्न-भिन्न है. जैसे लद्दाख में लद्दाखी, अरुणाचल में खाम्ती.

बोलियों का स्थानीय रंग : इस तरह हिमालय में बोलियाँ अनेक हैं. बाजार की भाषा, लोकव्यवहार की भाषा में भेद है. इन भेदों सहित भाषा की एकता है. इस से रहित नहीं. इन बोलियों के लोकगीत, इन की ध्वनि, इन की भिन्नता की रक्षा ज़रूरी है. किंतु इन भिन्नताओं के बीच भोट भाषा की जो हिम गिरी जैसी ऊंचाई पवित्रता और तन्मयता भोटी भाषा में है वह भी सदा स्मरण रखने जैसी है.

यह धर्म भाषा जन्म से ले कर विवाह और मृत्यु जैसे संस्कारों की भाषा है. यह संस्कार लद्दाख से लेकर अरुणांचल तक प्राय: लामा कराते हैं. इस लिए जो ऊपर ऊपर से इसे देखते हैं वे इन संस्कारों को और रीतिरिवाज़ों को लामावाद कह देते हैं. यह लामावाद कोई वाद नहीं. लामा भिक्षु है उस का धर्म महायान बौद्ध धर्म है. इस लिए लामावाद बुद्धवाद से भिन्न नहीं है. लामा जो संस्कार कराता है वह बहुत कर के बौद्ध संस्कार है. उस में थोड़ा स्थानीय रीति रिवाज़ों का रंग भी चढ़ गया है. वह कोई बाह्य नहीं है. स्थानीय रंग में ऐसा पच गया है कि उसे अलग अलग करना संभव नहीं. न इस की ज़रूरत है, न इस में कोई अच्छाई है.

भोटी हिमालय के शास्त्र की भाषा है. इस में पूरा बुद्ध वचन कंज्यूर के व्यापक शीर्षक में संकलित है. फिर बौद्ध शास्त्र जिस में प्रज्ञा पारमिता नय और मंत्रनय दोनों के ही आचार्यों के और तांत्रिकों के मूलग्रंथ, भाष्य, टीका आदि हैं. तंज्यूर के व्यापक शीर्षक से संकलित है. ये संकलन सुंदर अक्षरों में, कहीं कहीं सोने के अक्षरों में और हाथ के बने मज़बूत कागज पर लद्दाख से लेकर अरुणांचल की प्रमुख गोनपाओ (विहारों) में सुरक्षित है. तिब्बत में इन के चार संस्करण लकड़ी के ठप्पों से छाप कर प्रचलित रहे हैं. इन की छपाई आज भी जारी है. संग्रह भी.

भोट शास्त्र प्रधान रूप से बौद्ध धर्म विषयक हैं. बौद्ध दर्शन, साधना और पूजा पाठ इन के प्रधान विषय हैं. बुतोन और लामा तारानाथ के प्रसिद्ध इतिहास भी प्रधान रूप से बौद्ध धर्म के इतिहास है. थङ का (पटचित्र) और भित्ती चित्र की कला भी कला के लिए नहीं, पूजा के लिए है. किंतु इन शास्त्रों में आयुर्वेद, व्याकरण, रसायन, ज्योतिष, भूगोल, नाटक जैसे लौकिक शास्त्र भी हैं. हालांकि ये लौकिक शास्त्र भी करुणा और शून्यता के सामरस्य से उपजे हैं. विशाल बौद्ध वाङ्मय के अंग हैं.

मूलभाषा के शिकारी: तिब्बत इस भोट विद्या, कला और साधना का पिछले एक हज़ार वर्ष से अधिक से परंपरागत केंद्र रहा है. हिमालय के अंतर्गिरी में इन विद्याओं का और साधनाओं का अटूट सिलसिला चलता रहा है. बाह्य गिरी को या विश्व को इस की बहुत खबर नहीं रही. न अंतर्गिरी को इस की बहुत फिक्र कि बाह्य गिरी में क्या हो रहा है. 1950 में तिब्बत पर कम्युनिस्ट चीन के प्रभुत्त्व के बाद भोट विद्या और साधना का यह परंपरागत किला ढह गया. अब इस के बाद इन विधाओं का और साधनों का कोई माना हुआ केंद्र भारत में या विश्व में कहीं नहीं बन सका. शायद बन सकता नहीं. भोट शास्त्र और संस्कार की भाषा में एक पीढ़ी में बड़ी तेज़ी से ह्रास हुआ है. जो पीढ़ी तिब्बत में परंपरागत रूप से दीक्षित शिक्षित है उस में बहुत बड़ा अंतर है. लद्दाख से ले कर अरुणांचल तक इस भाषा और संस्कार के लुप्त हो जाने का भय है. इस भाषा के एक मृग के लाख शिकारी हैं. ये शिकारी आधुनिक भाषाओं के, अंग्रेज़ी चीनी, हिंदी, उर्दू, नेपाली, बंगला, असमिया के बाणों से इस एक जीव को बींध रहे हैं.

भोट शास्त्र और संस्कार जिन बेठनों में बंधे हैं उन में इन की पूजा तो होती है. धूप दीप भी दिखाते हैं. कहीं नहीं भी दिखाते.
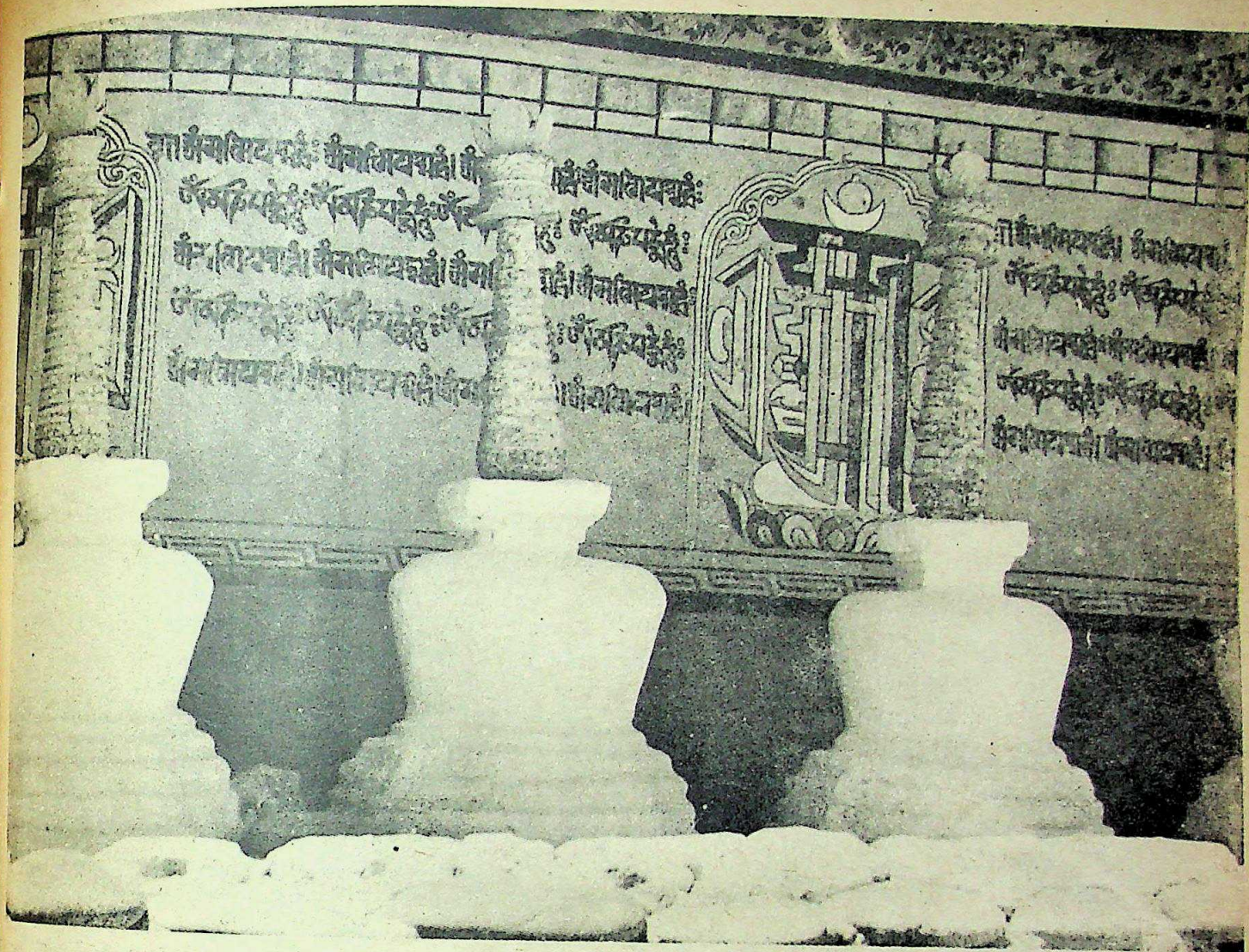
ओं मणि पद्मे हुं (स्पितुक गोनपा, लद्दाख)

किंतु इन बेठनों की गांठ प्रायः नहीं खुलती. यह गांठ सिर्फ बाहरी नहीं भीतरी भी है. यह अविद्या की गांठ है. मोट भाषा के अज्ञान के कारण इन शास्त्रों का स्वाध्याय नहीं हो रहा है. अस्वाध्याय की धूल जमा हो रही है. जिन गोनपाओं में ये पोथियाँ हैं वे बेमरम्मत हैं. बेमरम्मती की धूल और सब के ऊपर अविद्या की धूल इन पर जमा हो रही है. यह सिर्फ हिमालय के इन प्रत्यंत प्रदेशों की हानि नहीं, पूरे मनुष्य जाति की हानि है. इस हानि को दूर करने का उपाय क्या है?

एक तो सामान्य शिक्षा में लद्दाख से लेकर अरुणांचल तक भोटी भाषा की पढ़ाई की व्यवस्था हो. अभी यह कहीं है (जैसे लद्दाख में है) कहीं नहीं है. (जैसे लाहुल में नहीं है) स्कूल कालेज में भोटी की पढ़ाई हो. किंतु अनुभव यह है कि स्कूली पढ़ाई से शास्त्र की गंभीरता नहीं आ पाती. इस के लिए हिमालय के परंपरागत बौद्ध बिहारों (गोनपाओं) में परंपरागत ढंग से पढ़ाई का सिलसिला जारी रहना चाहिए. यह चार पांच बरस की उम्र से ले कर बीस पचीस बरस तक, बल्कि मृत्युपर्यंत चलता है. अभ्यास वैराग्य से दृढ़ होता है. सो गोनपा में हो सकता है, अन्यत्र नहीं.

भोटी भाषा को व्यवहार में लाने के लिए एक सुझाव यह दिया जाता है कि इसे संविधान की भाषा संबंधी सूची में अन्य भारतीय भाषाओं के साथ शामिल कर लेना चाहिए. इस सूची में भोटी का स्थान हो यह सहज स्वाभाविक है. इस के लिए जितनी राजनीति और शक्ति ज़रूरी हो वह इस्तेमाल में लायी जानी चाहिये. कुछ व्यवहार बुद्धि के लोग यह भी सुझावते हैं कि संविधान में शामिल करने की मांग से यह प्रश्न राजनीतिक हो जायेगा. फिर इस में मतभेद होगा. इस लिए इसे शुद्ध सांस्कृतिक स्तर पर हल करना चाहिए. पहले धीरे धीरे भोटी भाषा का हिमालय में प्रयोग होना चाहिए तब जा कर संविधान की सूची में शामिल करने का प्रयत्न.

व्यावहारिक पक्ष : इन दोनों रास्तों में कोई विरोध तो है नहीं. सिर्फ पहले और बाद के क्रम का अंतर है. पहले संविधान की मान्यता हो और फिर व्यवहार या पहले व्यवहार हो या फिर मान्यता. दोनों साथ साथ होने चाहिए. शायद व्यावहारिक दृष्टि से भी बिना प्रतिष्ठा के भोटी का व्यवहार नहीं चलेगा. जब तक भोटी संविधान की भाषा सूची में शामिल नहीं हो जाती तब तक विभिन्न राज्य सरकारों के अफसर इसे हिमालय राज्यों में भाषा फार्मूला में शरीक करने में एक या दूसरा अड़ंगा लगाते रहेंगे. इस राजनीतिक प्रशासनिक अटक को दूर करने का उपाय भी राजनैतिक-प्रशासनिक होगा.

इतनी राजनीति के बिना तो हिमालय की संस्कृति और भाषा नहीं चल सकती. इस राजनीति से किसी को परहेज भी नहीं होना चाहिए. यह राजनीति अलबत्ता गैरदलीय या निर्दलीय या सर्वदलीय होगी. या दलनिरपेक्ष. जो भी हिमालय प्रेमी होगा वह हिमालय की इस भाषा का भी प्रेमी होगा. प्रेम में वह सब भेद भूल कर क्षण क्षण, थोड़ा थोड़ा प्रयत्न करेगा. तभी हिमालय की इस भाषा और संवेदना का संरक्षण संवर्धन होगा, अन्यथा नहीं.

पश्चिमी समाज का लेखक

पिछली 6 दिसंबर को नयी दिल्ली स्थित फ्रांसीसी सांस्कृतिक केंद्र में जानेमाने फ्रांसीसी लेखक फ्रांसुआ नोरसिये ने एक दिलचस्प व्याख्यान दिया. विषय था : 'समकालीन समाज में कलाकार की भूमिका'. 1927 में जन्मे फ्रांसुआ नोरसिये 1952 से सभी फ्रांसीसी अखबारों और पत्रिकाओं में नियमित रूप से लिखते रहे हैं. इन दिनों वह 'फिगारो' के एक स्तंभकार और 'प्वाइंट' के साहित्यालोचक हैं. 1977 में उन्हें गोंकोर अकादेमी का एक सदस्य बनाया गया था. नोरसिये के भाषण से पहले फ्रांसीसी सांस्कृतिक केंद्र के निदेशक ने उन का परिचय देते हुए यह कहा कि आज हमारे देश के लेखक को उचित सम्मान नहीं प्राप्त है. लेकिन फ्रांसुआ नोरसिये ने निदेशक महोदय की बात का पूरी तरह से खंडन करते

आंद्रे मालरो

हुए कहा कि मेरी राय में तो फ्रांस में लेखक की ताकत कुछ जरूरत से ज्यादा ही है. फ्रांसीसी समाज में अगर आप एक अच्छे लेखक हैं तो इस बात का प्रभाव अनेक क्षेत्रों पर निर्णायक रूप में पड़ सकता है.

नोरसिये के विचार में फ्रांस में लेखक होने की बहुत कीमत है. हालत यह है कि इस वक्त फ्रांस में लाखों लेखक किसी न किसी तरह से लिखने पढ़ने की दुनिया से जुड़े हुए हैं और इन सभी लेखकों ने सफल या असफल हो कर शब्द के साथ अपना रचनात्मक संबंध बनाने की कोशिश की है. लेखन का संसार इतना अधिक सक्रिय है कि उस का एक 'भूमिगत रूप' काम कर रहा है. बल्कि अगर आप साहित्यकार हैं तो आप के व्यक्तित्व की दूसरी खामियां दब जायेंगी—या समाज उन पर ध्यान नहीं देगा. सनकी, पागल या चोर होना एक सीमा तक लेखक की छवि में सुधार ही लाता है. लेकिन फ्रांसुआ नोरसिये ने यह स्पष्ट किया है कि इन सब तथाकथित दुर्गुणों से मुक्ति पाने के लिए यह जरूरी है कि सचमुच एक अच्छी किताब लिखी जाये. यानी औसत या घटिया लेखक बन कर व्यक्तित्व के दोषों से छुटकारा नहीं पाया जा सकता. नोरसिये ने एक फ्रांसीसी राजनेता का उदाहरण दिया जो मई 1968 की घटनाओं के दौरान बेहोश हो गये थे. वह एक मंत्री थे और इस घटना के बाद उन्होंने इस्तीफा दे दिया. लेकिन बाद में उन मंत्री महोदय ने अपने राजनैतिक वनवास के दौरान चीन की यात्रा की और तमाम तरह की सामग्री बड़ी मेहनत से एकत्र की. इस यात्रा का नतीजा एक पुस्तक के रूप में सामने आया. चीन पर लिखी गयी उन की यह पुस्तक बहुत लोकप्रिय साबित हुई. 10 लाख प्रतियाँ देखते-देखते बिक गयीं. लेखक की इस सफल छवि ने उन राजनेता महोदय को फिर से राजनैतिक मंच पर प्रतिष्ठित कर दिया. वह फिर से एक मंत्री बन गये. और एक महत्त्वपूर्ण विभाग उन्हें सौंप दिया गया.

नोरसिये इस बात की ओर अपने श्रोताओं का ध्यान दिलाना चाहते थे कि लेखक की छवि उसे एक ऐसी जगह पर बैठाती है जो कि काफी खतरनाक है. लेखक समाज में एक मंच पर तो ज़रूर बैठा हुआ है पर जब वह गिरता है तो बहुत जोर के साथ गिरता है. इस का उदाहरण दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान उन असंख्य लेखकों का है जिन्होंने नात्सी ताकत के साथ सहयोग किया था. युद्ध की समाप्ति पर इस तरह के लेखकों को सार्वजनिक अपमान तो सहना ही पड़ा, बल्कि अनेक लेखक मार डाले गये. सरकार द्वारा नहीं, लोगों के द्वारा. ध्यान देने की बात है कि नात्सी ताकत के साथ समाज के दूसरे वर्ग के सदस्यों ने भी सहयोग दिया था. मिसाल के लिए व्यवसायी वर्ग तथा बैंकरों आदि ने उन्हें पूरा सहयोग दिया था. लेकिन समाज द्वारा इन लोगों के अपराध को अपेक्षाकृत जल्दी भुला दिया गया. नोरसिये यह मानते हैं कि लेखक की इस प्रकार की छवि एक प्रकार से उस के प्रति सम्मान को दिखाना ही है. हालाँकि समाज में लेखक की इस संवेदनशील छवि का एक परिणाम आज देखने को मिल रहा है, जब अनेक आतंकवादी गुट लेखकों को मार डालना चाहते हैं. उन के घरों में बम फेंके जाते हैं—और तरह तरह से उनकी आवाज़ बंद करने की कोशिश की जाती है. यह सही है कि फ्रांस में आंतकवादियों की स्थिति इटली के मुकाबले में थोड़ी कमज़ोर है फिर भी पिछले कुछ वर्षों में लेखकों पर हमले बढ़े हैं.

समाज में लेखक के इस महत्त्वपूर्ण स्थान का सब से अधिक फायदा राजनैतिक पार्टियों ने उठाया है. फ्रांस की राजनीतिक पार्टियाँ यह अच्छी तरह से समझती हैं कि किसी लेखक की छवि को अपनी तरफ कर लेने से बहुत दूर दूर के फायदे हैं. फ्रांस में इस का सबसे अच्छा उदाहरण जनरल दगाल का है जिन्होंने दस साल तक प्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखक स्वर्गीय आंद्रे मालरो को अपनी सरकार में रखा. सिर्फ मालरो ही नहीं फ्रांसीसी कम्युनिस्ट पार्टी की छवि को बेहतर बनाने में पिकासो और लुई अरागों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है. नोरसिये ने इस बात की ओर संकेत किया कि वर्तमान फ्रांसीसी सरकार की यह शायद एक कमजोरी है कि कोई बड़ा लेखक या कलाकार उस के साथ जुड़ा हुआ नहीं है.

पश्चिमी समाज में लेखक और समाज के संबंध पर आध्यात्मिक यथार्थ के धीरे धीरे धुंधले पड़ते चले जाने की स्थिति से बड़ा फर्क आया है. और यह बात कोई बहुत नयी नहीं है. मध्ययुग से ही यह प्रक्रिया शुरू हो गयी थी. मध्ययुग में एक प्रकार का त्रिकोण काम करता था. इस त्रिकोण में राजा की स्थिति एक संतुलन करने वाली ताकत के रूप में थी. यानी आध्यात्मिक तथा राजनैतिक यथार्थ का संतुलन राजा द्वारा होता रहता था. फ्रांसीसी क्रांति ने राजा को तो मार दिया पर ईश्वर की धारणा नहीं मरी. उस ने थोड़ा बदले हुए रूप में अपनी जगह बना ली. लेकिन आधुनिक समाज में जब ईश्वर गायब होने लगा तो नये मूल्यों को जन्म देना जरूरी हो गया. आधुनिक समय में पश्चिम में समाजवादी सिद्धांतों ने कई तरह के स्वप्न पैदा किये. लेकिन इन वायदों और आशाओं के पीछे एक दूसरी तरह की सच्चाई भी छिपी हुई थी जो बहुत देर बाद समाजवादी राज्यों की पोल खुलने पर सामने आयी. सोवियत संघ, हंगरी चेकोस्लोवाकिया आदि देशों की घटनाएँ इस का प्रमाण हैं.

लेखक बुनियादी रूप से चीजों के खिलाफ रहा है जिस तरह से एक किशोर बालक अपने परिवार के खिलाफ रहता है. फ्रांस में दगाल के सत्ता में आने पर थोड़े समय के लिए लेखक की स्थिति पर फर्क आया था, यह एक तरह से रेगिस्तान में हरियाली की स्थिति थी. लेकिन थोड़े दिनों बाद लेखक फिर अपनी विरोध की परिचित मुद्रा में आ गया. आज पश्चिम समाज के लेखक की एक बड़ी समस्या यह है कि अगर उसे समाजवादी व्यवस्था का वास्तविक रूप पता चल गया है तो दूसरी तरफ उसे इस बात का भी पता चल गया है कि पश्चिमी के पूंजीवादी समाज भी उस के द्वारा स्वीकृति नहीं पा सकते हैं. अतः लेखक को अपने भीतर बहुत कुछ खोज करनी पड़ रही है. समाजवादी समाज के स्वप्न में एक लंबे समय तक रहने के बाद लेखक की स्थिति एक घायल जानवर की तरह है जो आज कराह रहा है. नोरसिये अपने आप को उन लेखकों की जमात में पाते हैं जो अभी पूरी तरह से निराशावादी नहीं हुए हैं. उन के विचार में अभी भी लेखक अपनी छवि का बेहतर और अपेक्षाकृत मानवीय इस्तेमाल कर सकता है.

लोकसभा

अवमानना का न मानना

तीसरी विशेषाधिकार समिति के निष्कर्ष के अनुसार अपराधी श्रीमती गांधी को क्या सजा दी जाये इस पर 13 दिन में बिखरी हुई 15 घंटे से ऊपर की बहस के अंत में, जो एक ओर इंका की बाधक शैलियों, दूसरी ओर जपा की अंदरूनी राजनीति और कुल मिला कर संसदीय विचार में प्रत्येक को पूर्ण अवसर की परिचायक थी, जब 19 दिसंबर को 454 उपस्थित सदस्यों ने 138 के मुकाबले 279 मत से (37 तटस्थ) श्रीमती इंदिरा नेहरू गांधी को (जैसा कि प्रस्ताव में उल्लिखित है) लोकसभा की मर्यादा के विरुद्ध घोर दुराचरण का दंड—सदस्यता से निष्कासन और सत्रावसानपर्यंत जेल—दे दिया तो तीन बातें सामने आयीं.

एक यह कि संसद् की गरिमा और सार्वभौम सत्ता की रक्षा के लिए विशेषाधिकार समिति के निष्कर्ष के अंतर्गत सज़ा देना अनिवार्य था चाहे परिणाम कुछ भी हों. दूसरी यह कि जनता पार्टी सहित राजनैतिक दलों को विश्वास नहीं है कि सार्वजनिक राजनैतिक जीवन में संसद् के प्रति ऐसे अपराधों के विरुद्ध यथेष्ट जागृति है और वे दल तथा जपा के भीतरी राजनैतिक तत्त्व सजा की मात्रा को शिखर राजनीति के संदर्भ में अपनी अपनी राजनैतिक शक्ति बढ़ाने का विषय बना रहे हैं. (प्रधानमंत्री ने स्वयं कहा है कि सदन में प्रस्तुत प्रस्तावों में सजा देने पर नहीं बल्कि सजा के परिणाम पर मतभेद थे : ये सब या लौटाये या हराये गये. 18 तारीख की बहस में इंका सदस्यों के ऊंचे और कातर शब्दाडंबर के जवाब में जब जपा के पुराने सांसद श्यामनंदन मिश्र खड़े भी हुए तो यही कहने के लिए कि प्रधानमंत्री सजा की मात्रा पर एक बार फिर दलों के नेताओं से परामर्श करें : राजनारायण ने भी इसी आग्रह में सदन त्याग किया. फैसले के दिन भी नरम सज़ा के पक्षधर द्वारकानाथ तिवारी बोलने का अवसर न पा कर सदन त्याग कर गये. इस के पहले अध्यक्ष चंद्रशेखर और कई लोग आखिरी कोशिश कर चुके थे कि निष्कासन और जेल से कुछ कम सज़ा दी जाये. पर मोरारजी तैयार न थे और हो भी जाते तो 20 तारीख को सबेरे नरमी का आग्रह करना एक राजनैतिक चाल के सिवाय और कुछ न होता क्यों कि तब कोई नया प्रस्ताव लाया नहीं जा सकता था.)

ऊपर की दोनों बातों का सम्मिलित परिणाम एक तीसरी बात है—यह कि यह सज़ा सार्वजनिक और राजनैतिक बहस का विषय बन गयी है. इंदिरा गांधी और इंका ने उग्र प्रदर्शन के साथ घोषणा की है कि यह सजा तथ्यों पर आधारित नहीं बल्कि एक राजनैतिक बदला है और उन के अखबार नेशनल हेराल्ड ने लिखा है कि इमर्जेंसी के विरुद्ध झूठा प्रचार कर के उत्तर भारत की जनता को बरगला कर श्रीमती गांधी को मार्च 77 में हराया गया.

इस सजा को एक व्यक्तिगत राजनैतिक प्रतिशोध के रूप में प्रचारित करने का प्रयत्न इंका की तरफ से ज़ोर शोर से किया जायेगा क्यों कि जनता पार्टी का छिन्न भिन्न होना, जो इंका के दोबारा सत्तासीन होने की आवश्यक शर्त है, इस आरोप को दोहरा दोहरा कर जल्दी संभव बनाया जा सकता है. इस रणनीति का जपा कैसे सामना करेगी या उस के घटक अपनी आपसी लड़ाई में इस का क्या इस्तेमाल करेंगे, यह आगे के दिनों में प्रकट होगा. फिलहाल इंका के हिंसात्मक प्रदर्शनों से निपटने के लिए मोरारजी देसाई सरकार को तैयार बताते हैं किंतु उस के इस प्रचार का कि चिकमगलूर की जीत को निरस्त करने के लिए श्रीमती गांधी को निकाला गया तथा यह सजा चिकमगलूर के मतदाताओं का अपमान है, जपा के कार्यकर्त्ता क्या यह जवाब दे सकेंगे कि इस से चिकमगलूर का कोई संबंध नहीं—**रायबरेली** का है जिस के मतदाताओं का अपमान श्रीमती गांधी ने संसद् की मर्यादा भंग कर के किया था?

इस आरोप का एक उत्तर आंशिक रूप से प्रधानमंत्री के मर्यादा भंग के दंड पर हुई बहस के समापन भाषण में मिलता है. 'इस सदन को जनता के सार्वभौम प्रतिनिधि के रूप में अपने दायित्व निर्वाह के लिए जिन मर्यादाओं की आवश्यकता है, उन की रक्षा के अतिरिक्त हमारा और कोई उद्देश्य नहीं है... अगर होता तो श्रीमती गांधी के बनाये हुए उन हथियारों से जो वह राजनैतिक विरोधियों और असहमतों पर इस्तेमाल करती थीं काम ले कर ... उन से वही बर्ताव किया जा सकता था जो लोकतंत्र विनाश के लिए सत्ता का प्रयोग करनेवालों को उखाड़ फेंकने के बाद सत्तासीन लोगों या सरकारों ने किया है.' श्रीमती गांधी ने अपने 13 तारीख के भाषण में कहा था कि महान् व्यक्तियों को त्रस्त करने के उदाहरणों से इतिहास भरा पड़ा है. इस का उल्लेख करते हुए मोरारजी देसाई ने कहा, "इतिहास लोकतंत्र को नष्ट करने वालों के और ऐसे तानाशाहों के साथ लोगों के बर्ताव

दिनमान

समाचार - साप्ताहिक

भाग 14 24-30 दिसंबर, 1978

अंक 52 3-9 पौष, 1900

*

इस अंक में

*

दिनमान

संपादक : रघुवीरसहाय. संपादकीय सहकर्मी : जितेंद्र गुप्त (सहायक संपादक), सर्वेश्वरदयाल सक्सेना (मुख्य उपसंपादक), श्यामलाल शर्मा, योगराज थानी, रामसेवक श्रीवास्तव, जवाहरलाल कौल, शुक्ला रुद्र, त्रिलोक दीप, महेश्वरदयालु गंगवार, प्रयाग शुक्ल, विनोद भारद्वाज और सुषमा पाराशर. सज्जा : विजय कोहली.

टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन
दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

से भरा पड़ा है जिन्होंने तानाशाही ताकत इकट्ठी और उपभोग करते हुए प्रचारित किया है कि 'मैं ही कानून हूँ, मैं ही राज्य हूँ, मैं ही लोग हूँ.' इस देश में यदि इतिहास इस से भिन्न रहा तो श्रीमती गांधी के संविधान और जनता के प्रति अपराध न्यून होने के कारण नहीं बल्कि भारतीय लोगों के स्वभाव और परंपरा के कारण."

विशेषाधिकार समिति के सामने बयान न देने का श्रीमती गांधी का तर्क यह था कि वह उन के विरुद्ध दूसरी जगह इस्तेमाल हो सकता था. 'यह तर्क भ्रामक है', प्रधानमंत्री ने कहा, 'विद्वान् अटार्नी जनरल विशेषाधिकार समिति को इस मामले में बता चुके हैं कि अदालत के सामने भारतीय दंड संहिता की जिन धाराओं का मामला पेश है उन में से कोई भी विशेषाधिकार समिति के सामने नहीं है . . . आमतौर से यही होता है कि अगर अपने पक्ष में कुछ कहने को हो और कोई आश्वस्त हो कि वह निरपराध है तो वह यह नहीं सोचने बैठता कि एक स्थान पर उस का वक्तव्य दूसरे स्थान पर उस के विरुद्ध हो जायेगा.'

'. . . जानकारी माँगना एक मौलिक अधिकार है.' सदन में पूछे हुए प्रश्न का उत्तर जुटाना अफसरों पर जुल्म करने का कारण बना. (प्रश्न संजय गांधी के मारुति कारखाने से संबंधित था) . . . विशेषाधिकार समिति इस नतीजे पर आयी कि (ऐसा कर के) श्रीमती गांधी ने सदन का मर्यादाभंग और अपमान किया जो उस व्यवस्था के ही विध्वंस के समान है जिस पर सदन के अधिकार और मर्यादाएँ आधारित हैं. . . . हर प्रधानमंत्री का कर्त्तव्य है कि इन अधिकारों में क्षय को रोके और जब कोई व्यक्ति जो स्वयं प्रधानमंत्री है उन अधिकारों के विध्वंस का माध्यम बनता है तो कैसे माना जा सकता है कि यह अपराध घोर और अभूतपूर्व नहीं है. इस सब के जवाब में श्रीमती गांधी ने अपने भाषण में जपा के खिलाफ़ एक राजनैतिक आक्रमण कर डाला. उन्हें एक राजनैतिक नेता की हैसियत से इस का अधिकार है किंतु जब वह इसी को अपनी निर्दोषिता सिद्ध करने का तरीका बनाने लगें तब यही कहा जायेगा कि उन्होंने जनता का ध्यान असल सवाल से हटाने के लिए एक चिर-परिचित राजनैतिक शैली का प्रयोग किया है.

'. . . कानून किसी के आगे नहीं झुकता . . . कोई कानून से बड़ा होने का दावा करे तो वह लोकतंत्रवादी होने का दावा नहीं कर सकता. पर मुझे ऐसा लगता है कि श्रीमती गांधी ने हमेशा माना है कि वह कानून से ऊपर हैं, कि जिस तरीके से दूसरे दोषी या निर्दोष सिद्ध किये जाते हैं वे तरीके उन पर लागू नहीं हो सकते . . . उन के सोच में यही चीज थी जिस ने इमर्जेंसी में कानूनों को ऐसा बदलवाया कि वह उन से परे रहें, संविधान में संशोधन कराया कि जनसाधारण के मौलिक अधिकार और न्यायपालिका की सरकारी शक्तियों के मनमाने प्रयोग से नागरिकों को बचा सकने की क्षमता छीन ली गयी और लोकतंत्रीय रिवाजों और अधिकारों का स्थान असहमति और विरोध को नष्ट कर देने के प्रयत्नों ने भी लिया . . . यही चीज है जो आज विशेषाधिकार समिति की नीयत पर शक करने और कानून के सामने बराबरी को व्यक्तिगत प्रतिशोध बताने में झलकती है.'

मोरारजी देसाई सजा देते वक्त नरमी के मामले पर भी संक्षेप में बोले. उन्होंने कहा, "नरमी तब दिखायी जाती है जब कोई अपराधी यथेष्ट प्रमाण देता है कि वह दोबारा ऐसा कुछ नहीं करेगा और उसे अपने किये पर खेद है. श्रीमती गांधी ने जो कुछ कहा है उस में ऐसा कुछ नहीं है. उन्होंने हमारे सामने और कोई रास्ता ही नहीं छोड़ा है कि हम उन के लिए निष्कासन और जेल की सज़ा तजबीज़ करें."

वास्तव में राजनैतिक परिस्थितियों ने भी मोरारजी देसाई के सामने और कोई रास्ता नहीं छोड़ा था. उन्होंने राजनैतिक सुविधा की जगह लोकतंत्र की मर्यादा की रक्षा का रास्ता चुना है. पर उन्हें श्रीमती गांधी की पार्टी की इस धमकी के सामने कि वह इस सजा का प्रतिशोध लेगी खड़े रहने के लिए दृढ़ निश्चय से अधिक किसी चीज की जरूरत पड़ेगी. इंका नेता स्टीफ़ेन के शब्दों में 'तूफान और बिजली की तरह इंदिरा गांधी सत्ता में वापस लौटेंगी.' यह संभव है (बशर्ते कि लोग आज के लोकतंत्र में और श्रीमती गांधी के लोकतंत्र में अंतर न देख पायें) क्योंकि मोरारजी ने जिस लोकतंत्र का सहारा लिया है उस में श्रीमती गांधी को चुनाव लड़ने से वंचित नहीं किया गया है. (वंचित तो उन्हें कुछ वर्ष के लिए एक और लोकतंत्रीय संस्था, न्यायपालिका ने 12 जून 1975 को किया था जिसे उन्होंने इमर्जेंसी लागू कर के चुप करा दिया था.) श्रीमती गांधी के शिविर में परेशानी की बात यह सज़ा नहीं बल्कि यह होगी कि उन के सत्ता में वापस लौटने के बाद भी संसद् की मर्यादा की प्रतिष्ठा एक लोकतंत्रीय मूल्य के रूप में बनी रह जायेगी.

श्रीमती इंदिरा गांधी को संसद की विशेषाधिकार समिति द्वारा दोषी ठहराये जाने के दिन से ही देश के विभिन्न राजनैतिक दलों के भीतर एक ऐसी राजनैतिक प्रक्रिया शुरू हो गयी है जो एक मायने में उन राजनैतिक दलों के भीतरी तनाव, विरोधाभास और सतह के नीचे चलने वाली उथलपुथल का एक प्रतिबिंब सा दिखायी देती है. जनता पार्टी, कांग्रेस और इंका तीनों के भीतर कई कई प्रकार की आवाजें सुनायी देने लगी हैं. यह अलग बात है कि इंदिरा कांग्रेस, सार्वजनिक उपभोग के लिए सख्त रवैया और चुनौती भरा रुख अपनाये हुए है, जब कि इस दल के भीतर भी ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो कि यह मानते हैं कि इंदिरा गांधी को लोकसभा से क्षमायाचना करनी
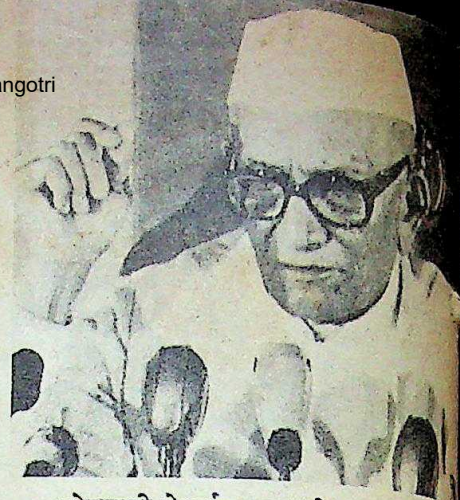
मोरारजी देसाई : एक ही रास्ता

चाहिए क्योंकि इस प्रकार की क्षमायाचना आज तक लोकसभा के सामने कई महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों ने की है. इस प्रकार के मत वाले व्यक्तियों के लिए अधिक मुखर होना संभव भी नहीं है क्योंकि इंदिरा कांग्रेस की विश्वसनीयता का एकमात्र आधार इस समय यही है कि वह श्रीमती इंदिरा गांधी के पीछे एकजुट हो कर जुझारू मुद्रा में खड़ा रहे.

13 दिसंबर को लोकसभा में अपने ऊपर लगाये गये आरोपों का जवाब देते हुए श्रीमती गांधी ने लोकसभा में एक लंबा वक्तव्य दिया. इस वक्तव्य में मामले के कानूनी और नैतिक पक्ष के बदले बहुत हद तक राजनैतिक मुद्दों पर जोर दिया गया. जैसा कि इसी सभा में श्यामनंदन मिश्र ने कहा कि इंदिरा गांधी के भाषण में बहुत सी ऐसी बातें थीं जिन का विशेषाधिकार हनन के मामले से कोई संबंध नहीं था. उन के वक्तव्य का मुख्य मुद्दा यह था कि सत्तारूढ़ दल उन्हें केवल प्रतिशोध की भावना से सजा देना चाहता है न कि संसदीय मर्यादाओं को सुरक्षित रखने के लिए. उन के शब्दों में 'जनता पार्टी ने, जिस के पास पूर्ण बहुमत है, इस सदन द्वारा विशेषाधिकार समिति की रपट पर बहस शुरू करने से पहले ही मुझ दोषी ठहराया था. इसलिए यह निष्कर्ष निकालना अनुचित नहीं होगा कि सत्तारूढ़ दल इस सदन को मध्यकालीन 'स्टार चैंबर' में बदलने की कोशिश कर रहा है'. श्रीमती गांधी के अनुसार 'मेरे विरुद्ध लगाये गये आरोप असत्य हैं. मैंने सदन की किसी प्रकार की मानहानि नहीं की है. इस मामले में जो साक्षी है वह

श्रीमती गांधी : निष्कासन और जेल

केवल भूतपूर्व मंत्री पै की है. क्या मैंने सदन को दिये जाने वाले जवाब को बनाने में कोई भूमिका निभायी है?' स्वयं पै के अनुसार 'मैंने कभी भी मारुति के मामले पर उन से बातचीत नहीं.की और न ही मैंने कभी सदन से किसी प्रकार की सूचना बाहर रखने के लिए कोई आदेश जारी किया.' श्रीमती गांधी का कहना है कि बहुत से अधिकारी मारुति के बारे में सूचनाएँ इकट्ठी किया करते थे मगर उन सब के विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की गयी. तो क्या इस से यह सिद्ध नहीं होता कि केंद्रीय खुफ़िया ब्यूरो ने कथित अधिकारियों के विरुद्ध जो जाँच शुरू की, उस का मारुति से कोई संबंध नहीं था.

भूतपूर्व प्रधानमंत्री ने यह आरोप लगाया कि इस सदन की पवित्रता को मेरे विरुद्ध अदालती अभियोग के फैसले के पहले ही फैसला देने के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है, जब कि सरकार ने मेरे विरुद्ध अभियोग दायर कर के मेरा मुँह बंद कर दिया. उन के अनुसार विशेषाधिकार समिति ने जो तौर तरीका अपनाया उस में अनेक संवैधानिक दोष हैं. उस ने मुझे अपने ही विरुद्ध गवाही देने के लिए भी बाध्य करने की कोशिश की. इस सिलसिले में शपथ न लेने के तथ्य को भी सदन की मानहानि के रूप में देखा जा रहा है. अपने वक्तव्य में श्रीमती गांधी ने जनता सरकार के अनेक दोष गिनाये, और यह दिखाने की कोशिश की कि जनता नेताओं ने पहले मेरे पिता और बाद में मुझे परेशान करने की कोशिश की है. आपतकाल का हवाला देते हुए इंदिरा गांधी ने कहा कि **'कुछ लोगों को तकलीफ हुई है, मगर मैंने कभी ऐसा नहीं चाहा. जो कठिनाई हुई है, उस के लिए मुझे अफसोस है, मैंने पहले भी खेद व्यक्त किया है.'** मगर साथ ही भूतपूर्व प्रधानमंत्री ने यह दावा किया कि 'मेरी सरकार पूर्ण रूप से लोकतंत्र में विश्वास करती रही है. मैंने ही 1977 के आम चुनावों की घोषणा की.' श्रीमती गांधी के वक्तव्य के अंतिम अंश में जनता सरकार की असफलताओं का लंबा चौड़ा ब्योरा था.

लोकसभा में श्रीमती गांधी के भाषण के साथ साथ दो प्रकार के मत व्यक्त किये गये. कुछ सदस्यों का कहना था कि विशेषाधिकार का हनन तो किया गया है, मगर सदन को चाहिए कि वह इस मामले में नरम रवैया अपनाये. साम्यवादी दल के **गोविंदन नायर** के शब्दों में **'विशेषाधिकार का हनन एक ऐसे व्यक्ति द्वारा किया गया है, जो सर्वोच्च पद पर पहुँच गया और जिसने अपने सभी अधिकार अपने पुत्र की राजनैतिक और आर्थिक अभिलाषाओं के सामने समर्पित कर दिये'.** मगर फिर भी नायर चाहते थे कि इस मामले में सदन निंदा करने तक ही सीमित रहे. मार्क्सवादी दल के नेता ज्योतिर्मय बसु ने 'तुर्की संसद' का हवाला दिया जहाँ कि संसद ने भूतपूर्व प्रधानमंत्री **मेंडरीज़** को लोकतंत्र को नष्ट करने के अपराध पर फाँसी की सजा दी. मगर जनता पार्टी की ओर से सब से जोरदार वकालत बंबई की संसद सदस्या **मृणाल गोरे** और प्रसिद्ध कानून विद् **राम जेठमलानी** ने की. श्रीमती गोरे ने इस बात पर जोर दिया कि भूतपूर्व प्रधानमंत्री ने जो कुछ किया उस के लिए उन्हें रत्ती भर भी पछतावा नहीं है इसलिए उन्हें सजा दी ही जानी चाहिए. राम जेठमलानी ने श्रीमती गांधी के उन तर्कों का खंडन किया जिन से उन्होंने यह दिखाने की कोशिश की थी कि यह एक प्रतिशोधात्मक कदम है. जेठमलानी ने विशेषाधिकार समिति से इसलिए त्यागपत्र दिया कि वे सदन में इस मामले पर बोल पायें. जेठमलानी का कहना था कि श्रीमती गांधी को विशेषाधिकार समिति ने अपनी सफाई में बोलने का पूरा पूरा मौका दिया. मगर उन्होंने विशेषाधिकार समिति से सहयोग नहीं किया.

वास्तव में विशेषाधिकार समिति द्वारा दोषी पाये जाने के बाद से श्रीमती गांधी ने इस मामले से राजनैतिक लाभ उठाने की पूरी पूरी कोशिश की. इसी वजह से उन्होंने अपने बचाव में कानूनी दलीलें देने के बजाय राजनैतिक मामलों को बार बार उठाने की कोशिश की.

इस मामले ने कांग्रेस पार्टी के आंतरिक विरोधाभास को और भी तेज कर दिया है. यद्यपि संसद में कांग्रेस के नेता यशवंतराव चव्हाण ने यह माँग की कि संसद इंदिरा गांधी के दोष को नज़रंदाज़ करे ताकि अच्छी लोकतांत्रिक परंपरा स्थापित हो. फिर भी यह स्पष्ट है कि श्रीमती गांधी के सिलसिले में कांग्रेस पार्टी दो खेमों में बँट गयी. एक वह हिस्सा है जो सरदार स्वर्णसिंह के नेतृत्व में अपने राजनैतिक भविष्य की चिंता करते हुए इंदिरा गांधी को कोई भी सजा न देने की माँग कर रहा था. दूसरा हिस्सा वह है जो उन्हें दोषी तो मानता था मगर कोई कठोर सजा देने के पक्ष में नहीं था. दोनों अपने राजनैतिक भविष्य और संभावित सौदेबाज़ी को नज़र में रख कर सार्वजनिक मुद्राएँ अपना रहे हैं.

मगर सब से महत्त्वपूर्ण बात स्वयं जनता पार्टी के भीतर हो रही है. संसदीय दल ने यह तो भारी बहुमत से तय किया कि इंदिरा गांधी को सजा दी जानी चाहिए और इसी के अनुरूप प्रधानमंत्री देसाई ने अपना प्रस्ताव भी तैयार किया मगर दल के भीतर ऐसे अनेक लोग थे जो नहीं चाहते थे कि श्रीमती गांधी को कोई कठोर सजा दी जाये. व्यक्तिगत कारण तो इस में थे ही मगर राजनैतिक कारण भी थे. यह तर्क दिया जा रहा था कि यदि श्रीमती गांधी को जेल की सजा दी गयी तो वह इस का राजनैतिक लाभ उठाने की कोशिश करेंगी और थोड़ी सी सजा के कारण शहीद होने का स्वाँग भरने में कामयाब हो जायेंगी. कुछ लोगों का कहना यह था कि 19 दिन की जेल से इंदिरा गांधी 19 महीने की क्रूरता के दोष से अपने आप को मुक्त करने में कामयाब हो जायेंगी. इसलिए अदालतों को कार्रवाई करने दी जाये और संसद तब तक के लिए इंदिरा गांधी को निलंबित करे.

क्योंकि गृहमंत्रालय इस समय प्रधानमंत्री देसाई सँभाल रहे हैं इसलिए यह स्वाभाविक है कि श्रीमती गांधी की गिरफ्तारी से उत्पन्न समस्याओं का उत्तरदायित्व भी अधिकतर उन्हीं के कंधों पर आ जायेगा. चौधरी चरणसिंह पहले से ही इंदिरा गांधी को सजा देने के पक्ष में रहे हैं और पिछले 18 मास में कोई कार्रवाई न करने का आरोप भी लगा चुके हैं. इसलिए सार्वजनिक रूप से वह इंदिरा गांधी को सजा मुआफ करने की कोई बात तो नहीं करते मगर उन्हीं के एक सहयोगी श्यामनंदन मिश्र ने नरम रवैया अपनाने की वकालत भी की थी. चरणसिंह के सहयोगी संसद सदस्य मनीराम बागड़ी का कहना था कि अब कार्रवाई करने का वक्त निकल चुका. मगर एक और सहयोगी रवि राय ने 17 दिसंबर को दिल्ली के फतेहपुरी चौक में आयोजित एक सार्वजनिक सभा में सख्त कार्रवाई की माँग की. उन का यह तर्क था कि इंदिरा गांधी के साथ नरमी बरतने से संसदीय मान मर्यादा को क्षति पहुँचेगी. इसी सभा में विदेशमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी ने श्रीमती गांधी द्वारा लगाये गये आरोपों का जवाब दिया. उन के अनुसार यदि जनता पार्टी बदले की भावना से काम करती होती तो सत्ता में आने के तुरंत बाद क्या हम उसी असुर कानून के अंतर्गत श्रीमती गांधी को गिरफ्तार नहीं कर सकते थे जिस के अंतर्गत हजारों व्यक्तियों को जेल में डाल दिया गया था. उन्हें बोलने की खुली आज़ादी है अदालतों में जाने की आज़ादी है क्योंकि हम स्वयं अपनी आजादी की कद्र करते हैं. अकर्मण्यता के आरोप का खंडन करते हुए श्री वाजपेयी ने कहा कि कानूनी रूप से जो करना चाहिए था वह हमने किया. कानूनी कार्रवाई धीमी गति से चलती है मगर इस में कोई संदेह नहीं कि अंत में वह अपने उद्देश्य तक पहुँच ही जाती है.

श्रीमती गांधी के विरुद्ध संसद की मर्यादा भंग करने की जाँच करने के लिए विशेषाधिकार समिति ने 21 नवंबर 1978 को अपना प्रतिवेदन पेश किया. इस रपट पर 7 दिसंबर 1978 से विचार शुरू हो गया. 13 नवंबर को इंदिरा गांधी ने इस सिलसिले में अपना वक्तव्य संसद में दिया. 18 दिसंबर को लोकसभा में इस पर बहस हुई जो कि 19 दिसंबर को शाम के 5 बज कर 5 मिनट पर मूल प्रस्ताव में सजा संबंधी मोरारजी का संशोधन पारित होने के साथ खत्म हुई. अध्यक्ष हेगड़े ने कुछ देर बाद श्रीमती गांधी की गिरफ्तारी के वारंट पर दस्तखत किया और करीब सवा नौ बजे उन्हें लोकसभा के मार्शल और पुलिस अधिकारी तिहाड़ जेल ले गये. सत्रावसान आमतौर से सदन स्थगित होने के कुछ दिन बाद होता है. इस से अनुमान है कि श्रीमती गांधी शुक्रवार 22 दिसंबर के बाद भी जेल में रहेंगी.

हाथ के साथ

मोरारजी भाई के रवैये से क्षुब्ध और क्रुद्ध तथा जनता पार्टी के कार्यकलापों से निराश चौधरी चरणसिंह ने अब खुले ढंग से यह घोषणा कर दी है कि 'केंद्र और राज्यों में जनता पार्टी को **संयुक्त विधायक** दल यानी मोर्चा सरकार का रूप ले लेना चाहिए क्योंकि एक पार्टी का स्वरूप ले लेने के बाद भी शुरू से ही जनता पार्टी वास्तविक अर्थों में एक संयुक्त मोर्चा ही रही. यानी पार्टी के विभिन्न घटकों में वास्तविक एकता कभी नहीं हुई.

जनता पार्टी के संगठनात्मक चुनावों में हिस्सा न लेने या उस का बहिष्कार करने के भारतीय लोकदल के फैसले के संदर्भ में चरणसिंह की यह घोषणा इस अनुमान को अधिक पुष्ट करती है कि भारतीय लोकदल के लोग अपने अस्तित्त्व और पहचान को स्वतंत्र बनाये रखने के लिए अपनी पार्टी को बरकरार रखना चाहते हैं. लेकिन उसी के साथ संयुक्त मोर्चे की सरकार का सुझाव दे कर वे जनता पार्टी से अपना संबंध बनाये रखना भी चाहते हैं. इस का असर केंद्र और जनता शासित राज्यों में विभिन्न दलों के मंत्रिमंडल संबंधी प्रतिनिधित्व पर स्पष्ट रूप से पड़ेगा. केंद्र में वह प्रभाव विशिष्ट होगा. यह एक तरीका है जो मोरारजी के फिलहाल के फैसले को काफी दूर तक कमज़ोर कर सकता है. यह बात अलग है कि मोरार जी भाई अभी भी अपने फैसले को रद्द करने के लिए तैयार नहीं दीखते.

श्री सिंह के मोहभंग का सिलसिला स्पष्ट रूप से उन के मंत्रिमंडल से अलग किये जाने के साथ शुरू होता है. उन की आशंकाएँ उस वक्त अधिक पुष्ट हो गयीं जब केंद्र और राज्यों में संगठन के चुनावों के लिए समितियाँ बनीं और पूर्ववर्ती भारतीय लोकदल को उन में उचित प्रतिनिधितत्त्व नहीं मिला. श्री सिंह के अनुसार पार्टी चुनावों के बहिष्कार का कारण बहुत सीधा और भारतीय लोकदल के लिए मारक है. 'राष्ट्रीय और प्रादेशिक दोनों स्तरों पर उस के साथ भेदभाव बरता गया है. राष्ट्रीय समिति में भालोद का एक भी प्रतिनिधि नहीं है. इस में सुरेंद्र मोहन, सुंदरसिंह भंडारी और रामकृष्ण हेगड़े हैं. उत्तरप्रदेश, राजस्थान और गुजरात में केवल एक एक प्रतिनिधि है. उत्तर प्रदेश से पिछले महीने 20 संसद सदस्यों और मंत्रियों ने प्रधानमंत्री और पार्टी अध्यक्ष को पत्र लिख कर यह बताया था कि इस परिस्थिति में वे चुनाव में हिस्सा नहीं लेना चाहते. राजस्थान और गुजरात में भी वहाँ के पार्टी अध्यक्षों को यह बात बता दी गयी. सत्ताधारी लोग देश के राजनैतिक नक्शे से भारतीय लोकदल का निशान मिटा देना चाहते हैं. भारतीय लोकदल उन के इस प्रयत्न में सहयोग देने के लिए तैयार नहीं है.' उन्होंने इस बात पर विशेष बल दिया कि अधिकतर राज्यों में भारतीय लोकदल का जनाधार जनता पार्टी के किसी भी एक घटक के मुकाबले व्यापक है.

यह कह कर कि अभी विभिन्न घटकों के स्वतंत्र अस्तित्व को पुनर्जीवित करने और सरकारों के संयुक्त मोर्चे के रूप में काम करने के उन के सुझाव पर स्वयं उन के अपने भारतीय लोकदल में कोई फैसला नहीं हुआ है चरणसिंह ने समझौते की एक गुंजाइश अभी भी छोड़ रखी है. मुमकिन है कि उन्हें गृहमंत्रालय में वापस लाने और उन के अन्य सहयोगियों को पुन: मंत्रिमंडल में नियुक्त करने के लिए तैयार हो कर मोरारजी भाई इस संकट को फिलहाल टालने में सफल हो सकें. लेकिन इसी के समानांतर विभिन्न राजनैतिक दलों में जो प्रयत्न चल रहे हैं उन से कुछ चीज़ें स्पष्ट हैं. पहली तो यह कि यदि चरणसिंह की इस घोषणा को अमल में लाने का अंतिम फैसला हो जाता है तो उस से न केवल मोरारजी भाई का संकट व्यापक होता है बल्कि जनता पार्टी से ले कर दोनों कांग्रेसों में शक्तियों के ध्रुवीकरण का एक नया स्वरूप बनने की संभावना हो जाती है. दूसरे इस घोषणा के साथ चरणसिंह ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि मोरारजी भाई से अलग श्री सिंह, श्रीमती गांधी के मुकाबले एक तीसरी शक्ति के रूप में भी उभर रहे हैं और उन्हें चुनौती देने के लिए तैयार हैं. वह इस खबर को तो निराधार बताते हैं कि उन की कोई बातचीत इंदिरा कांग्रेस से मिलने के संबंध में हो रही है. **दिनमान** से बातचीत करते हुए उन्होंने कहा कि 'इस का सवाल ही नहीं पैदा होता.' लेकिन यह पूछने पर कि क्या यह किसी भी हालत में संभव नहीं है वह कहते हैं कि 'किसी भी हालत की बात मैं नहीं कहता.' यानी संकेत यह कि 'क्योंकि जनता पार्टी और कांग्रेस में कोई अंतर नहीं है अतः श्रीमती गांधी के अतिरिक्त कांग्रेस के और लोगों से सहयोग करने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं हो सकती.' श्रीमती गांधी को ले कर उन के मन में कहीं कोई नरमी नहीं है और विशेषाधिकार के मामले में सज़ा वाले प्रश्न को ले कर भी उन्होंने यही कहा कि उन्हें बिना किसी शर्त के माफ़ी माँगनी चाहिए. नहीं माँगती हैं तो जेल या निष्कासन की सज़ा दी जानी चाहिए. उन्होंने अखबार में छपी उस खबर को गलत बताया जिस में कहा गया था कि मोरारजी भाई से उन्होंने श्रीमती गांधी को नर्म सज़ा देने का सुझाव दिया है. उन का कहना था कि

घोषणा को **स्वतंत्र भारत के इतिहास की सर्वाधिक विनाशकारी दुर्घटना** मानते हुए **जयप्रकाश जी** ने मोरार जी और चरणसिंह से अपील की कि वे देश को विध्वंस से बचाने के लिए, अपने मतभेद समाप्त करें. उन्होंने कहा :

"मैं प्रधानमंत्री से आग्रह करता हूँ कि वह चरणसिंह को सम्मानपूर्वक मंत्रिमंडल में लाने के लिए कोई रास्ता निकालें. चरणसिंह से भी आग्रह करता हूँ कि वह संघीय पार्टी बनाने का अपना विचार छोड़ दें, क्योंकि मुझे भय है कि इस की वजह से ऐसी राजनैतिक शक्ति की एकता खंडित होगी जो लोकतंत्र को जीवित और देश की अखंडता को बचाये रख सकती है. एक संघीय पार्टी के स्वरूप पर काफी पहले विचार किया गया था लेकिन जनता पार्टी बनने के पहले ही उसी के घटकों ने उसे अस्वीकृत कर दिया था. आज ऐसी बात करने का मतलब है एकता की उस प्रक्रिया को ही उलट देना जिस की शुरुआत 1967 में हुई थी. कांग्रेस का एक लोकतांत्रिक विकल्प बनाने का विचार दस वर्ष में मूर्त्त रूप ले सका. उस प्रक्रिया को रोकना या उलटना एक प्रतिगामी कदम होगा और उस का वास्तविक अर्थ इतिहास के चक्र को पीछे घुमाना होगा. 1977 के चुनावों में भारत के लोगों ने किसी घटक या उस के नेता के बदले उस जनता पार्टी को वोट दिया था जो आम आदमी की आशाओं-आकांक्षाओं के प्रतीक के रूप में सामने आयी थी. उस पार्टी की एकता का अवमूल्यन करना जन विश्वास को खत्म करना और जनता के साथ विश्वासघात करना होगा. चूंकि जनता पार्टी के निर्माण में मेरा भी अवदान रहा है और जनभावना को उस के अनुकूल करने में जनता पार्टी को चुनाव में विजयी बनाने में मैंने भी एक सीमा तक अपनी भूमि का निभायी थी अत: इस वक्त की पार्टी की भीतरी स्थिति से मैं बहुत दुखी हूँ. मैं चुप रह सकता था लेकिन जनता पार्टी की तकदीर देश और लोकतंत्र की तकदीर से जुड़ी हुई है. अगर जनता पार्टी टूटती है तो केंद्र में अस्थायित्व आयेगा और उस के कारण तानाशाही की वापसी अनिवार्य हो जायेगी.

मुझे विश्वास है कि जनता पार्टी के वे हजारों कार्यकर्त्ता, जिन्होंने पार्टी को अपने खून और पसीने से बनाया है, इस मौके पर दृढ़ता के साथ सामने आ कर शीर्षस्थ नेताओं से कहेंगे कि वे देश के हित में अपने मतभेद को समाप्त करते हुए एकताबद्ध हों.

"मुझे दुख है कि मैं बीमार हूँ लेकिन रोगशैया से भी मैं देश को तानाशाही की ओर वापस ले जाने की क्रिया के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठा रहा हूँ. मुझे विश्वास है कि सद्बुद्धि आयेगी और जनता पार्टी का यह संकट समाप्त होगा'."

चरणसिंह : 'प्रधानमंत्री बनाओ तो...

'इस मामले का संबंध सदन की गरिमा से है .'

व्यापक राष्ट्रीय स्तर पर चरणसिंह भारतीय लोकदल के प्रभाव की जो कल्पना करते हैं, उस में सामाजिक परिवर्त्तन के संकल्प की खोल के भीतर महत्त्वाकांक्षा का एक झिलमिलाता हुआ स्वरूप भी दिखाई देता है. 'जनता पार्टी ने जनता की आकाक्षाएँ पूरी नहीं कीं. गरीबी और बेरोज़गारी बढ़ती रही. पहले लोग गुलाम रखा करते थे फिर लोहे की मशीन निकली. **हम न गुलाम रखना चाहते हैं, न मशीन रखना चाहते हैं.** अनावश्यक स्वचालन बढ़ता जा रहा है. मशीन में पूंजी ज्यादा लगती है. आदमी की संख्या कम होती जाती है. **हम हाथ के साथ हैं. जो काम हाथ से हो सकता है या जिस के लिए हाथ उपलब्ध हों, वह हाथ से ही हों : जो छोटी मशीन से हो सकता है वह छोटी मशीन से हो.** मुझे प्रधानमंत्री बनाओ तो दिखा दूंगा कि कैसे काम होता है.मशीन का कपड़ा नहीं बनेगा. जूता बाटा नहीं बनायेगा. माचिस विमको फैक्ट्री नहीं बनायेगी. पिछली जनगणना में जिन शहरों की आबादी पाँच हज़ार रही होगी उन में कोई फैक्ट्री नहीं लगेगी. पब्लिक स्कूल नहीं चलेंगे. सिर्फ कपड़ा उद्योग के क्षेत्र में 50 लाख बेरोज़गारों को जगह मिलेगी. वर्त्तमान अर्थव्यवस्था खामियों से भरी हुई है. बेरोज़गारी और गरीबी को खत्म करने का तरीका सिर्फ यह है कि कृषि जन्य उत्पादनों में वृद्धि हो और उस में लगे हुए अनावश्यक लोगों को दूसरे पेशों में लगाया जाये. सारा कच्चा माल ज़मीन से आता है. सारे धन का स्रोत ज़मीन है. खेती की पैदावार प्रति यूनिट बढ़ायी जाये और उस में काम करने वाले लोगों की संख्या प्रति यूनिट घटायी जाये. आज 72 प्रतिशत लोग खेती में लगे हुए हैं.'

प्रश्न उठता है कि चरणसिंह की घोषणा का उद्देश्य क्या है? मोरारजी की ज़िद या दृढ़ता के सामने समझौता कराने के इच्छुक जनता नेता बेबस हो गये. मंत्रिमंडल में वापसी या पार्टी का अध्यक्ष पद, किसी पर भी प्रतिष्ठित न हो पाने के बाद अपमानित चरणसिंह किधर जायें. एक रास्ते की तलाश उन के लिए स्वाभाविक ही नहीं अनिवार्य भी है. वह रास्ता क्या हो सकता है? या तो वर्त्तमान स्थिति को अंगीकार करते हुए उस अवसर का इंतजार करें जिस में पार्टी के अन्य नेताओं के दबाव में मोरारजी भाई उन्हें, उन की शर्तों पर मंत्रिमंडल में वापस लेने को तैयार हों या वह अपने समर्थकों के साथ जनता पार्टी से नाता तोड़ कर भारतीय लोकदल को पुन: जीवित करें या पार्टी में रहते हुए अपने बल पर संघर्ष का ऐसा वातावरण तैयार करें जिस में या तो मोरारजी भाई उन से समझौता करें या विवश हो कर प्रधानमंत्री पद छोड़ दें.

मोरार जी के चिंतन और चरित्र को देखते हुए यह कहना कठिन है कि वह पार्टी के अन्य नेताओं के दबाव या चरणसिंह के संघर्ष से डर कर समझौता करने के लिए तैयार हो ही जायेंगे. चरणसिंह के पार्टी छोड़ने और भालोद को पुनर्जीवित करने की प्रक्रिया में जनता की इस आशंका की पुष्टि आसानी से हो जायेगी कि पार्टी विघटन के कगार पर है और उस की वजह से श्रीमती गांधी की वापसी अनिवार्य हो जायेगी. चंद्रभानु गुप्त के इस कथन में बहुत दम नहीं दिखायी देता कि चरणसिंह श्रीमती गांधी से मिल जायेंगे. राजनीति में कुछ भी असंभव न होते हुए भी चरणसिंह को वह कदम उठाते हुए बहुत बड़ा खतरा मोल लेना पड़ेगा क्योंकि तब न केवल राजनैतिक क्षेत्रों में बल्कि जनता में भी उन की विश्वसनीयता घटेगी. चरणसिंह के लिए सुरक्षित और राजनैतिक दृष्टि से उपयोगी रास्ता सिर्फ यही है कि एक तरफ वह मोरारजी से संघर्ष की प्रक्रिया को पार्टी में रहते हुए जारी रखें और दूसरी तरफ श्रीमती गांधी को यह एहसास दिलाते रहें कि उन्हें जनता पार्टी के एक मोर्चे पर नहीं, दूसरे मोर्चे पर भी समान ढंग से लड़ना पड़ेगा.

चरणसिंह के सामने एक और समस्या अपने पुराने दल की भी है. कुछ महीने पहले त्यागपत्र के प्रश्न पर उन के अपने कहे जाने वाले प्रदेशों के कुछ कर्णधार सहमत नहीं थे. अब जब कि वहाँ भी संयुक्त विधायक दल की सरकारें बनाने की बात उन्होंने कही है तो उस में यह भी निहित है कि मुख्यमंत्री बदले जा सकते हैं. हरयाणा, उत्तरप्रदेश और बिहार के मुख्यमंत्रियों को ऐसी संभावना का संकेत दे कर चरणसिंह ने अपनी स्थिति पर पुनर्विचार करने का एक मौका दिया है.

इस में कोई संदेह नहीं कि चरणसिंह की घोषणा खतरनाक है और उस की वजह से जनता पार्टी के भीतर घबराहट बढ़ी है. अगर भारतीय लोकदल अपने घटक को स्वतंत्र कर लेता है और कार्यप्रणाली तथा प्रतिनिधित्व में संयुक्त मोर्चे की सरकारों के परिचित तरीके उभरते हैं तो अलगाव की वह प्रक्रिया शायद उसी तक सीमित न रह सके. उस की वजह से तात्कालिक ढंग से विभिन्न शक्तियों के समीकरण में परिवर्त्तन न भी आये, भीतर भीतर तनाव बढ़ेंगे और राज्यों से ले कर केंद्र तक में संगठन और सरकार दोनों में अनिश्चयता और निष्क्रियता बढ़ेगी.

जयप्रकाश जी से लेकर आचार्य कृपालानी और चंद्रशेखर तक की प्रतिक्रियाओं में उस खतरे की आशंका है. चंद्रशेखर ने पार्टी के स्वरूप और चरित्र में परिवर्त्तन का तीखा विरोध करते हुए कहा कि 'उस के घटकों को पूर्ववर्त्ती रूप देना संसदीय लोकतंत्र के लिए खतरनाक है. केंद्र और राज्यों में संयुक्त मोर्चा की सरकारें बनाना जनता पार्टी की बुनियाद को ही खत्म कर देना है. इस विचार का विरोध किया जाना चाहिए. चरणसिंह की शिकायतों को जायज़ मानते हुए उन्होंने रवि राय को केंद्रीय चुनाव समिति का एक सदस्य और प्रादेशिक चुनाव समितियों में भालोद को उचित प्रतिनिधित्व देने की बात भी कही जिसे चरणसिंह खेमे ने स्वीकार नहीं किया.

चंद्रशेखर ने यह भी कहा कि लोकसभा के चुनाव के पहले खुद चरणसिंह ने विभिन्न घटकों के विलयन का समर्थन किया था. बल्कि संगठन कांग्रेस और जनसंघ ने शुरू शुरू में इस का विरोध किया था. जनता पार्टी राजनैतिक दलों का मिश्रण नहीं एक आंदोलन की देन है, अत: मोर्चा पद्धति का सुझाव स्वीकार नहीं किया जा सकता. पार्टी में ऐसे भी लोग हैं जो उस के बनने के पहले तक किसी भी दल से संबद्ध नहीं थे. घटकों के अलग होने पर वे कहाँ जायेंगे? चंद्रशेखर ने तो इंदिरा कांग्रेस के देवराज अर्स और डॉ. चेन्ना रेड्डी से भी आग्रह किया कि वे लोग अपने को तानाशाही शक्तियों से अलग कर लें.

वयोवृद्ध नेता आचार्य कृपालानी ने प्रोफेसर अमीन से बातचीत करते हुए कहा कि अगर जनता पार्टी को बचाना है तो देश के हित में मोरार जी और चरणसिंह में से किसी एक को झुकना पड़ेगा. 'मैं चरणसिंह से झुकने का आग्रह करूँगा क्योंकि श्री देसाई मेरी बात नहीं मानेंगे. परिस्थितियों को देखते हुए चरणसिंह से एसा आग्रह करना अनुचित है, लेकिन करूँगा.'

केंद्र सरकार ने 23 दिसंबर की किसान रैली से छह दिन पहले यानी 17 दिसंबर को पूरी दिल्ली में दस दिनों के लिए धारा 144 लगा कर शांति-व्यवस्था बनाये रखने की दिशा में पूरी सावधानी का परिचय दिया. लोकदल के एक प्रवक्ता प्रो. आर. के अमीन ने कहा कि इस सिलसिले में अन्य राज्यों से आने वाले ट्रकों और ट्रैक्टरों को दिल्ली क्षेत्र में प्रवेश करने की अनुमति देने से इनकार कर दिया गया.

रैली में शामिल होने के लिए रैली के आयोजकों ने विभिन्न दलों के नेताओं को जो निमंत्रण पत्र भेजे उस में किये गये चुनाव से भी यह स्पष्ट था कि लोकदल संगठन कांग्रेस और लोकतांत्रिक कांग्रेस से कितना दूर हो गया है.

बिलमान

प्रदेश

बिहार

कैला की हत्या

बिहार में एक के बाद एक घटनाएँ इतनी तेज़ी से घट रही हैं कि आज की घटना कल के लिए पुरानी बन जाती है और लोग फिर पहली वाली घटना की गंभीरता को भी भूलने को मजबूर हो जाते हैं. ऐसी परिस्थिति में जब कि घटनाओं का चक्र इतनी तेज़ी से घूमता हो, उन का विश्लेषण करना उतना आसान नहीं रह जाता. कुछ लोग इन घटनाओं को मात्र आपसी दुश्मनी का परिणाम समझने लगते हैं. कुछ लोग भूमि संघर्ष, तो कुछ लोग इसे हरिजनों पर अत्याचार, या वर्ग संघर्ष की संज्ञा देते हैं. प्रश्न है आपसी दुश्मनी, भूमि संघर्ष या हरिजनों पर अत्याचार में क्या अंतर है? इस बात में कोई दो राय नहीं हैं कि अभी तक जो भी घटनाएँ बिहार में घटी हैं उस में संघर्ष का मूल्य आधार भूमि ही रहा है. भूमिहीन कौन हैं? निश्चित रूप से अधिकांश हरिजन, जो दूसरों के खेतों में काम करते हैं, फिर वे भूमि पाने के लिए संघर्ष करते हैं फिर संख्या में अधिक होने के बावजूद भी संघर्ष में ये ही मरते हैं. इस तरह इस घटना को हम कौन सी संज्ञा दें? मिलाजुला कर सभी एक ही बात है. सब से महत्त्वपूर्ण बात जो इन घटनाओं में ग़ौर करने की है वह है इस तरह की घटना किन किन लोगों के बीच होती है. बिहार की सभी घटनाएँ इस के प्रमाण हैं कि इस में जातीय आधार कुछ भी नहीं होता: चाहे वह बेलछी की पुरानी घटना हो या 12 नवंबर की तुरकी घटना या 15 नवंबर की वाज़िदपुर की घटना या फिर 9 दिसंबर को नालंदा ज़िले में पटना से 40 कि.मी. दक्षिण कैला गाँव की सब से ताज़ी घटना. हर घटनाओं में यही पाया गया है कि धनी एवं संपन्न लोग भूमिहीनों पर अत्याचार कर रहे हैं. एक तरफ सभी धनी लोग संगठित हो रहे हैं. यहाँ उल्लेखनीय है कि यह अत्याचार मात्र हरिजनों पर ही नहीं होता. अत्याचार करने वाले भी किसी जाति के होते हैं, उच्च जाति या पिछड़ी जाति के. परंतु इन की सामान्य शर्त यही है कि ये धनी होते हैं. अभी तक की सारी घटनाओं में अत्याचार करने वाले उच्च जाति या पिछड़ी जातियों में मात्र संपन्न लोग ही रहे हैं. (देखें **दिनमान** 3-9 दिसंबर तथा 10-16 दिसंबर)

अब यहाँ प्रस्तुत है बिहार की सब से ताज़ी घटना, जो नालंदा ज़िले के कैला गाँव में घटी है. कैला गाँव में एक छोटा टोला है, हरिजनों का, जिन में दुसाध जाति के लोग अधिक हैं. इस के चारों ओर कुर्मी जाति के लोग हैं. स्मरणीय है कि इस ज़िले में इस जाति की संख्या बहुत ही अधिक हैं और यह ही इस ज़िले की सबसे वैभवशाली जाति है. फलस्वरूप इन का
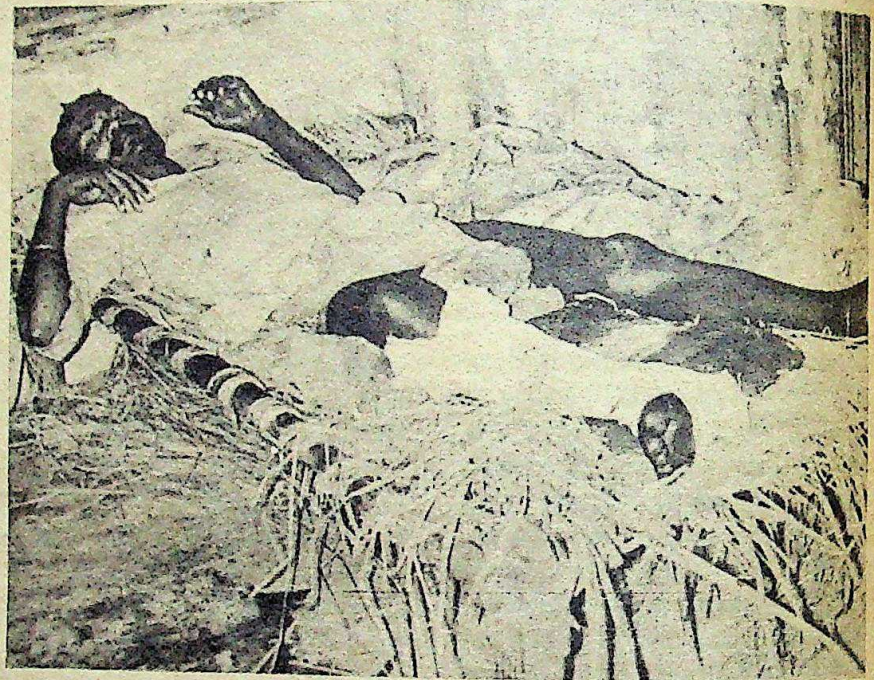
अस्पताल में घायल रामचंद्र: कितना इलाज होगा?
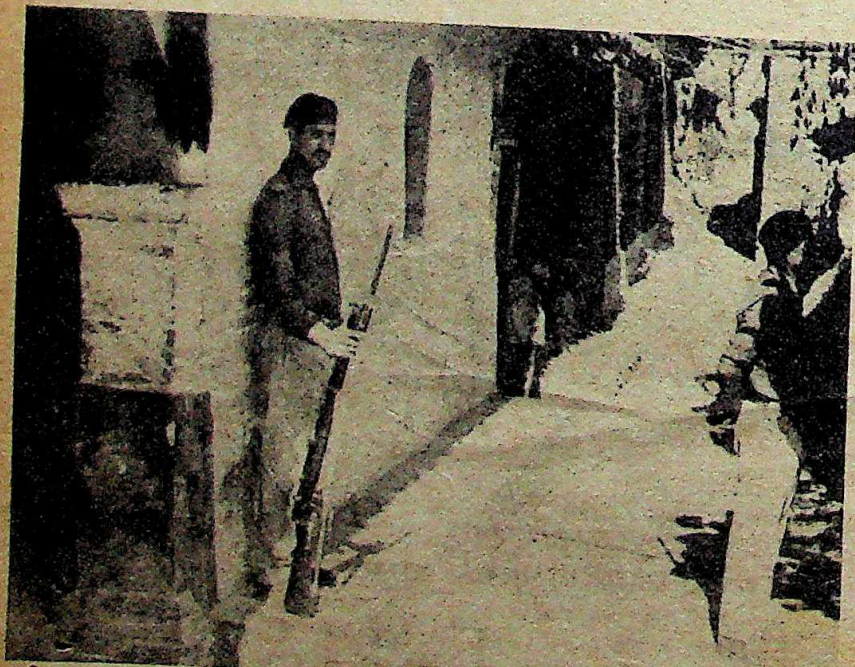
दबदबा सदा इन ग़रीब हरिजनों पर रहता आया है, या फिर दबदबा कायम रखने की कोशिश में रहते हैं, जैसा कि यहाँ के हरिजन लोगों का कहना है. कुछ बड़े लोगों का कहना है कि ये दुसाध जाति के लोग डकैती, चोरी में काफी सक्रिय पाये गये हैं. एक बार रामपुर गाँव में एक डकैती हुई थी, जिस का सामान कैला गाँव से पुलिस ने बरामद कर लिया. अभी भी एक स्थानीय डकैत रामवली फरार बताया जाता है, लेकिन इन सब बातों से इस घटना का कोई सूत्र नहीं जुड़ता.

स्थानीय लोगों से बातचीत करने पर पता चलता है कि इस घटना का आधार भूमि संघर्ष ही है. यहाँ के हरिजन इन संपन्नशाली लोगों के ख़िलाफ़ संगठित हो कर प्रतिकार करना चाहते हैं, यह तो इसी बात से स्पष्ट होता है कि सबसे पहले मरने वाला व्यक्ति तथा बाद में मरने वाले दोनों हरिजन अलग अलग गाँव के लोग हैं और दोनों गाँवों की सीमाएँ एक दूसरे से पटती हैं. कैला गाँव से दक्षिण 22 एकड़ ज़मीन, जो इस गाँव से थोड़ी ही दूर पर है, पर मुक़द्दमा पिछले 25 वर्षों से चल रहा है.

पहले से सुरक्षा के लिए तैनात, लेकिन . . .
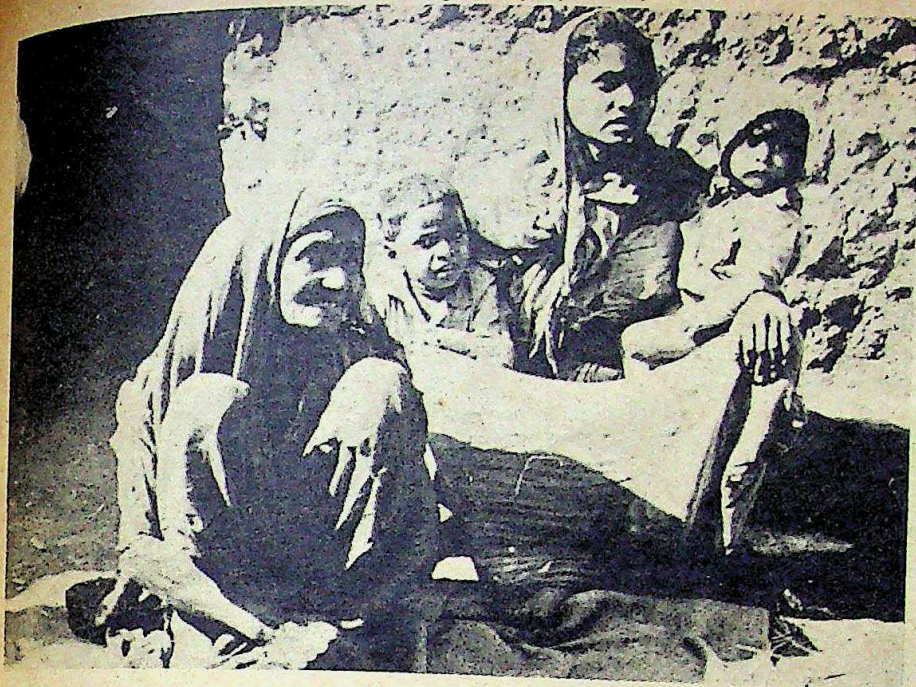
चौकीदार और डोमन की पत्नीः विधवाओं की दशा.

इस मुक़द्मे में हरिजन की ओर से मुख्य खीरू दास एवं कुर्मी लोगों में से रामजी महतो बताये जाते हैं. अब इस मुक़द्मे के संबंध में कई बातें सुनने में आ रही हैं. कुछ लोगों का कहना है कि मुक़द्मा कुर्मी लोगों ने जीत लिया है और कुछ लोग हरिजनों का नाम बताते हैं. कुछ भी हो इतना तो निश्चित ही है कि इस ज़मीन पर पिछले कई वर्षों से दोनों पक्षों में लड़ाई चल रही है. कभी खेत हरिजन लोग जोतते हैं, तो कभी कुर्मी लोग और दोनों ही पक्षों का दावा इस पर जारी है. संघर्ष की स्थिति कई महीनों से बनी हुई है, यह तो इसी बात से स्पष्ट हो जाता है कि इस गाँव में एक पुलिस सबइंस्पेक्टर तथा उस के साथ आधी दर्जन सशस्त्र पुलिस पिछले एक डेढ़ महीने से तैनात है. घटनाओं का इतिहास बताता है कि सभी घटनाएँ पुलिस की पूर्व व्यवस्था या जानकारी तथा चौकसी के बाद घटती हैं.

कुछ स्थानीय लोगों के अनुसार घटना यों घटी. एकाएक बृहस्पतिवार, 7 दिसंबर को कैला के कुछ हरिजनों को इन कुर्मी लोगों ने घेर कर हत्या करनी चाही. लोगों को दूर दूर तक खदेड़ा गया एवं इस घटना में हरिजन की ओर से रामचंद्र पासवान घायल हुए. इन का कहना है कि महतो परिवार के लोगों द्वारा गोली चलाये जाने से इन के दायें पैर में गोली लगी. अभी ये नगरनौसा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड अस्पताल में भर्ती हैं, जिस अस्पताल में ऐसे रोगों के लिए कोई व्यवस्था नहीं है; न बिस्तर है और न ही दवा दारू. फलस्वरूप इन का उचित इलाज यहाँ नहीं हो पा रहा है.

आश्चर्य की बात तो यह है कि इस घटना के बावजूद भी पुलिस ने अपनी सतर्कता में कोई तब्दीली नहीं की. दूसरे दिन कोई घटना नहीं घटी. परंतु ठीक एक ही दिन बाद, 9 दिसंबर को एक भयानक घटना, जो काफी हृदय विदारक कही जाती है, घटी है. उस दिन सबेरे लगभग 9 बजे, धानी माँझी गाँव से थोड़ी दूर दक्षिण खेतों में जानवरों को चराने गया. उसको क्या पता था कि गाँव के दुश्मन इस तरह सजग हैं. एकाएक तरह तरह के हथियारों एवं लाठियों से लैस लोगों ने चारों ओर से घेर लिया और एक साथ कई लाठियाँ बरसने लगीं. बेचारा कहाँ भाग सकता. लाठियों की मार से वहीं धराशायी हो गया. कहा जाता है कि ज़मीन पर गिरने के बाद उस का सिर किसी तेज हथियार से काट कर धड़ से अलग कर दिया गया और शव को घसीट कर कुछ दूर तक ले जाया गया, जिस के निशान अभी तक मौजूद थे. वह कटा सर 11 दिसंबर को पुलिस ने बगल के सुलेमानचक गाँव से दक्षिण एक पोखरे से बरामद किया है, ऐसा कहा जाता है.

हताहत परिवार के लोगों का कहना है कि उस समय गाँव में बहुत ही थोड़े लोग थे. प्रायः लोग बाहर अपने कामों में निकल गये थे. इस घटना को दूर से इस गाँव के चौकीदार बाल गोविंद ने ही देखा. उसने दौड़ते हुए गाँव में रह रहे सुरक्षा पदाधिकारी को खबर दी. परंतु उस की बातों को लोगों ने टाल दिया. उस के बार बार बिनती करने पर भी पदाधिकारी ने उसे ही झूठा साबित करने की कोशिश की और कहा, तूने ठीक से नहीं देखा है. तूने कुछ नहीं देखा है, कुछ नहीं सुना है. सब ठीकठाक है. जाओ, फिर ठीक से देख आओ, फिर हम जायेंगे. बालगोविंद इस बात पर बिना ग़ौर किये जोश में घटनास्थल की ओर बढ़ गया. फिर तो वह भी उन हत्यारों के ही चंगुल में था. उस की भी बड़ी क्रूरता से दिन दहाड़े हत्या कर दी गयी. पिता की हत्या की खबर उस के जवान बेटे डोमन को लगी. पिता की ममता में वह भी घटनास्थल की ओर दौड़ पड़ा. लेकिन स्थिति को परख भागने की कोशिश की, परंतु नाकामयाब रहा और उसे भी खदेड़ कर पकड़ लिया गया. परिणाम सामने था.

संसद् में गूँज

राज्यसभा में भी कैला हत्याकांड को ले कर चिंता व्यक्त की गयी, जिस के जवाब में गृहराज्यमंत्री धनिकलाल मंडल ने प्रतिपक्ष को बताया कि मुख्यमंत्री कर्पूरी ठाकुर हरिजनों और कमजोर वर्गों के पक्के हिमायती हैं और उन के जीवन को सुरक्षित बनाने का हर संभव प्रयत्न कर रहे हैं. उन की इस उक्ति का विरोध लगभग सभी प्रतिपक्षी दलों के सदस्यों ने किया. इंका के सदस्य तो विशेष रूप से मुखर थे. मार्क्सवादी सदस्य राममूर्त्ति ने तो यह सुझाव तक दे डाला कि यदि सरकार कमजोरों को सुरक्षा प्रदान करने में सक्षम नहीं है तो उस का फ़र्ज बनता है कि वह उन्हें हथियारों से लैस कर दे, ताकि वे अपनी रक्षा आप कर सकें. एक अन्य मार्क्सवादी सदस्य हरकृष्ण-सिंह सुरजीत के यह कहने पर कि कांग्रेस और जनता दोनों ही जमींदारों की पार्टियाँ हैं, सदन में हो-हल्ला मच गया.

इंका के श्री साल्वे ने जनता सरकार की निंदा करते हुए कहा कि उसने जाति संघर्ष को फैलने से रोकने की कोई कोशिश नहीं की है. लेकिन धनिकलाल मंडल ने सदन को यह कहते हुए आश्वासन दिया कि प्रधानमंत्री इस कांड में विशेष रुचि ले रहे हैं और इस तरह की घटनाओं को रोकने के तरीके खोज रहे हैं. उन्होंने वित्तमंत्रालय से इन घटनाओं से प्रभावित परिवारों के पुनर्वास पर किये जाने वाले खर्च के बारे में बातचीत की है और यह सोचा जा रहा है कि इस व्यय का भार केंद्र और राज्य सरकारें बराबर बराबर वहन करें.

श्री मंडल ने प्रश्न के उत्तर में स्वीकार किया कि कैला का हत्याकांड शुद्ध रूप से भूमि संघर्ष है. इस सिलसिले में उपद्रव करने वालों को गिरफ्तार कर लिया गया है.

एक मजिस्ट्रेट और दो पुलिस अधिकारियों को उन की अक्षमता के लिए निलंबित कर दिया गया है. तीन मृत हरिजनों के परिवारों को आर्थिक सहायता पहुँचायी जा रही है.

बाप और बेटे की सामूहिक हत्या एक ही स्थल पर कर दी गयी. गाँव की सुरक्षा के तीन सच्चे प्रहरी मौत के घाट उतार दिये गये और सरकारी सुरक्षा व्यवस्था ने अपनी आँखें मूँद लीं. ऐसी क्रूर हत्याएँ निश्चित रूप से ग़रीबों द्वारा फैलायी गयी बगावत की आग को सदा के लिए समाप्त करने के ही उद्देश्य से ही की गयीं.

सरकारी प्रवक्ताओं का कहना है कि इस घटना के बाद अंधे एवं बहरे रक्षकों को यहाँ से स्थानांतरित कर दिया गया है. शायद इन्हें मुअत्तल भी किया गया हो, लेकिन क्या यही इन घटनाओं का समाधान है? इस से कम से कम पत्र पत्रिका वाले एवं नासमझ जनता गुमराह अवश्य हो जाती है. नये सुरक्षा पदाधिकारी से पूछे जाने पर वे अपने को नया कह कर कोई बात बताने से मुकर जाते हैं. इस मुअत्तली से क्या होगा, क्या इन विधवाओं की सूनी माँगें भर जायेंगी? बच्चों के बाप मिल जायेंगे? बिहार सरकार के एक मंत्री घटनास्थल पर पहुँच कर वहाँ के हताहत तीनों परिवारों को तीन तीन हज़ार रुपये देने का वचन दे आये हैं. कुछ तत्कालीन आर्थिक सहायता भी इन्हें पहुँचायी गयी है, जो इन उजड़े परिवारों के जीवन का आधार तो नहीं हो सकता. सरकार को एक जान की कीमत इतनी कम नहीं आँकनी चाहिए. इन विधवाओं के सामने चंद वर्षों का सवाल नहीं है; पूरे जीवन का सवाल है. स्मरणीय है कि धानी मांझी के पीछे उन की एक विधवा फनिमूर्त्ति और मात्र एक लड़की छूट गयी है. बालगोविंद की पत्नी रामरतिया एक बूढ़ी विधवा है तथा उस की पतोहू सुमित्रा एक जवान औरत तथा उसके दो छोटे छोटे बच्चे हैं. इन का कोई सहारा नहीं है. 11 दिसंबर को इन विधवाओं ने ज़िलाधीश, डी. आई. जी. एवं अन्य वरिष्ठ पदाधिकारियों के सामने जिन लोगों के विरुद्ध बयान दिये हैं एवं जिन पर हत्याओं का आरोप लगाया है,

मांझी की विधवा पत्नी: बेहोशी में

वे हैं श्री गंगा महतो, मुन्ना, किशोरी महतो, रामजी महतो, श्री महतो एवं हरिनारायण महतो. उल्लेखनीय है कि ये सभी कुर्मी परिवार के बहुत ही संपन्न लोग हैं, या संपन्न लोगों से संबंधित हैं.

सवाल है ये संपन्न लोग अत्याचार क्यों करते हैं? इस के पीछे कौन सी मनसा काम करती है? स्पष्टतः यह उन की सामी प्रवृत्तियों को ही उजागर करती हैं. उन के मस्तिष्क इस बात को बर्दाश्त करने को तैयार नहीं हैं कि उन के सामने अब भी इस स्वतंत्र भारत में छोटे ग़रीब लोग सीना तान कर अपने अधिकारों के लिए बगावत करें. जब ग़रीब लोगों द्वारा इन के अत्याचारों का विरोध होता है तो इन की यही भावना इन्हें उत्तेजित कर देती है और फिर वे कुछ भी करने को विवश हो जाते हैं. ख़ून करना भी इन के लिए कोई बड़ी बात नहीं रहती. अपनी इज़्ज़त को वे इतनी नाज़ुक वस्तु समझते हैं कि ग़रीबों के एक इशारे से भी वह नष्ट होती है. इस पर बट्टा लग जाता है. इस अवस्था में वे

पुलिस के सामने बयान: हत्यारों का क्या होगा?

सामान्यतः यही कहते सुने जाते हैं, उस की ये मजाल? संपत्ति रख कर ही क्या होगा? दो चार लाख रुपये ही न बर्बाद होंगे (यानी वे कानून को भी पैसे से ख़रीद सकते हैं).

प्रश्न है ऐसी घटनाएँ गाँव में ही क्यों घटती हैं? शहर के धनी लोग ऐसा क्यों नहीं करते? इस के पीछे एक बहुत बड़ा कारण है. ज़मींदारी प्रवृत्ति या सामंती प्रवृत्ति, जिस का विकास गाँव में ही अधिक हुआ है, इस का एक स्वाभाविक कारण है. गाँव में जिन पर धौंस जमायी जाये ऐसे पात्र (ग़रीब लोग) आसानी से मिलते हैं.

कानून द्वारा इन प्रवृत्तियों एवं इन घटनाओं के संरक्षण का जहाँ तक सवाल है, इस की बनावट ही ऐसी है कि ये कानून अक्सर ऊँचे धनी लोगों के ही मददगार साबित होते हैं. बिहार में घट रही तमाम घटनाओं से यही निष्कर्ष निकलता है कि ये न तो जातीय दंगे हैं और न भूमि संघर्ष, परंतु यह एक विशेष वर्ग संघर्ष है; भले ही इस का आधार जो भी हो. बिहार में यह आधार भूमि है. इस संघर्ष को रोकने से अधिक उसे शांतिमय तरीके से निपटाया जाना ज़्यादा ज़रूरी है.

पश्चिम बंगाल

इंका का तीसरा महाकरण अभियान

राज्य में इंदिरा कांग्रेस यह मानने लगी है कि उसकी राजनैतिक शक्ति बढ़ी है और वह यह भी मानने लगी है कि उस की शक्ति ब[ढ़ने] का कारण यह है कि आम मोर्चा की सर[कार] कानून, व्यवस्था और जनसाधारण को [...] देने में पूरी तरह असमर्थ हुई है. इंदिरा का[ंग्रेस] जिसे शक्ति मान रही है, वह क्या है, 4 दि[संबर] को उस के महाकरण अभियान से पता च[ला]

इंदिरा कांग्रेस महाकरण अभियान की तैयारी नवंबर के अंतिम सप्ताह से कर रही थी. उसने जिस सफलता और जनसमर्थन पाने की कल्पना कर महाकरण अभियान की तैयारी की थी वह मात्र भुलावा ही साबित हुआ. सफलता और जनसमर्थन कोसों दूर की बात मालूम पड़ी. राज्य में दिनोंदिन हिंसात्मक आक्रमण और कानून व्यवस्था की बिगड़ती हुई स्थिति के प्रतिवाद में उक्त कार्यक्रम की घोषणा की गयी थी. उस में विधानसभा के भवन को घेरने की विशेष योजना थी. ऐसी योजना प्रथम है. यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि इस के पहले इंका ने दो बार महाकरण अभियान में कानून तोड़ कर राइटर्स बिल्डिंग को घेरने की विशेष योजना बनायी थी. महाकरण अभियान ने हिंसा के बल पर थोड़ी बहुत सफलता भी हासिल की थी. पर दूसरी बार नाकों चने चबाना पड़ा था. तीसरी बार इस महाकरण अभियान में भी यही दुर्गति हुई. वाम मोर्चा की सरकार का एक बार मुँह जला था. उसने जम कर मुकाबला करने और उन की पूरी योजना को हर तरह से बेकार करने के लिए विधानसभा के भवन के चारों तरफ और डलहौसी के पूरे क्षेत्र में (जहाँ राइटर्स बिल्डिंग, टेलीफोन भवन, मुख्य डाक घर, पूर्व रेलवे का बड़ा कार्यालय आदि है) धारा 144 लागू कर दिया. विधानसभा के भवन और डलहौसी आने वाली सभी सड़कों के मुहानों पर पुलिस तैनात कर दी गयी थी. इंदिरा कांग्रेस को सब खबर थी. विभिन्न मंडलों तथा जिला कांग्रेस के कार्यकर्त्ताओं ने अपने अपने क्षेत्र से जुलूस निकाला. सभी गुरु नानक सरणी के निकट महात्मा गांधी की मूर्ति के नीचे जमा हुए. वहाँ से बरकत गणी खान चौधरी (राज्य इंका के अध्यक्ष) के नेतृत्व में बड़ा जुलूस बना कर विधानसभा की ओर चले. पुलिस ने राजभवन के सामने रोका. आकाशवाणी भवन और कर्ज़न पार्क के पूर्व, ईस्ट एस्प्लानेड के मोड़ पर भी उन को रोकने के लिए पुलिस तैयार थी. इंका को उस समय अपनी शक्ति का परिचय मिला——मुश्किल से दो हज़ार कार्यकर्त्ता थे जुलूस में. वह आगे नहीं बढ़ी और ईस्ट एस्प्लानेड में, जहाँ हर अभियान की समाप्ति होती है, सभा की कार्रवाई हुई. उस समय एफ. अंसारी, सुब्रत मुखर्जी, अब्दुल सत्तार, बरकत गणी खान चौधरी, गोविदचंद्र नस्कर, नुरुल इस्लाम, सोमेन मित्र ने भाषण देकर वाम मोर्चा की सरकार और मा. क. पा. के प्रति अपना अपना रोष व्यक्त किया.

सरकार को पता था कि इंका के नेता और कार्यकर्त्ता हैं तो मुट्ठी भर, पर सब से अधिक उत्पात करने में सफल होते हैं. बात सही ही है. इंदिरा कांग्रेस के कार्यकर्त्ताओं ने योजनाबद्ध हो कर कई महत्त्वपूर्ण मोड़, चौराहों के यातायात ठप्प कर दिया. हावड़ा पुल और फ्लाई ओवर पूरी तरह से प्रभावित हुआ. बड़ा बाज़ार, बहूबाज़ार, कॉलेज स्ट्रीट और सियालदह हर बार की तरह इस बार भी ठप्प पड़ा था. उन का विश्वास था कि यातायात ठप्प पड़ने और अधिक से अधिक कामकाज बंद होने से अशांति और तनाव का वातावरण बनेगा, जिस से शक्ति प्रदर्शित हो सकेगी. सब कुछ होते हुए भी अशांति और तनाव का वातावरण नहीं बना. साधारण जनता ने कहीं भी इन के साथ सहयोग नहीं किया. वह शांत रही. धर्मतल्ला, सरकुलर एवेन्यू, लेनिन सरणी में 40-50 मिनट तक खचाखच भरी सारी बसें खड़ी थीं, पर कहीं भी लोग उत्तेजित नहीं हुए, यद्यपि यातायात की बुरी दशा थी. उस दिन सोमवार होने की वजह से सारे दफ़्तर, बाज़ार वग़ैरह खुले थे. स्वभावतः शहर में भीड़ थी. कई मोड़ पर जुलूस में शामिल लोग अनायास ही बस, ट्राम में घुसा मार रहे थे, झंडी के डंडे से खटखटा दे रहे थे. बाहर लोग सड़क के किनारे खड़े चुपचाप उन की सारी हरकतों को देख कर हतप्रभ थे. इंका की आंतरिक ढिटाई नारों से जाहिर थी. धर्मतल्ला में आ कर हर जुलूस की उच्छृंखलता और बढ़ जाती थी. ईस्ट एस्प्लानेड में इंदिरा कांग्रेस की लॉरी खड़ी थी. वह मंच का काम कर रही थी. उस पर इंदिरा गांधी की आदमक़द तस्वीर खड़ी की गयी थी. भाषण जारी था. सारे लोग मध्य घराने के, 35 वर्ष से कम उम्र के, दीखते थे. लारी के सामने से इंका के कार्यकर्त्ता भीड़ में धक्का देते घुसने लगते. वे नेताओं को अपने क्षेत्र की ताक़त दिखाना चाहते थे. मिनट मिनट पर शोरगुल होने लगता. जुलूस में आयों कुछ मजदूरिनें सभा से बाहर पेड़ के नीचे खड़ी थीं. राजभवन की तरफ पुलिस की 14 गाड़ियाँ खड़ी थीं. कर्ज़न पार्क में भी जहाँ तहाँ पुलिस बैठी थी. धर्मतल्ला चौमाथे और धर्मतल्ला के डाकघर के सामने पुलिस की तीन गाड़ियाँ, जिनमें एक लॉरी भी थी, खड़ी थीं. मैट्रो सिनेमा के पास पुलिस की दो गाड़ियाँ और बस स्टैंड के पास पाँच गाड़ियाँ खड़ी थीं. जब जब सभा में होहल्ला होता तब तब पुलिस तन जाती. अंततः पुलिस परेशानी से बच गयी. इंका के नेताओं ने वाम मोर्चा और सरकार की असफलता पर, बीच बीच में जनता पार्टी और केंद्रीय सरकार की आलोचना कर, भाषण दे कर सभा खत्म की.

इंदिरा गांधी के चिकमगलूर चुनाव के बाद इंदिरा कांग्रेस का मनोबल बढ़ा है, जिस से ज़ोर शोर से अपना संगठन खड़ा करने में वह सक्रिय है. इन दिनों दोनों कांग्रेस की एकता पर भी दोनों कांग्रेस साँठगाँठ और बैठक करने कराने में सक्रिय हैं. कांग्रेस के आधे से अधिक उच्चस्तरीय नेता इंदिरा कांग्रेस में अप्रत्यक्ष शामिल हैं. दोनों कांग्रेस की एकता के विरोधी, कांग्रेस के नेता संख्या में कम पड़ रहे हैं. इस से इंदिरा कांग्रेस की हैसियत में वृद्धि हुई. अगर समस्तीपुर में इंदिरा कांग्रेस की हार न हुई होती तो इन का पैर जमीन पर नहीं पड़ता. तब महाकरण अभियान में इंदिरा कांग्रेस कहाँ ठंडी पड़ने वाली थी? अभी भी कलकत्ता और उस के निकटवर्ती औद्योगिक क्षेत्रों में 'इंदिरा गांधी को बचाओ', 'इंदिरा गांधी को सजा मिलने पर खून की नदी बहा देंगे' आदि के नाम पर इंका की बैठकें चल रही हैं. इंका नेता सुब्रह्मण्यम ने तो यहाँ तक कह दिया कि संसद के खिलाफ़ आंदोलन करेंगे. इस की मिसाल शायद ही कहीं मिले.

चल रहे विधानसभा के सत्र में भाग नहीं लेने और विधानसभा का पूर्ण बहिष्कार करने का निर्णय लिया गया, पर अपने निर्णय पर दृढ़ न रह कर उसने पुनः विधानसभा में भाग लेना शुरू किया. इस से उस की दुर्बल प्रवृत्ति का ही बोध होता है. उस के बाद उसने किसी भी कार्रवाई के आरंभ होने पर थोड़ा विरोध कर बहिष्कार करने की नियमित योजना अपनायी. मुख्यमंत्री ने इंदिरा कांग्रेस के विधायकों से इस प्रकार बहिष्कार न करने की अपील की, जिस का कुछ असर भी पड़ा.

धर्मतल्ला में 'महाकरण अभियान' में इंका का जुलूस

तटवर्ती दीवी सीमा का एक गाँव : नयी ज़िंदगी की तरफ़... पर कैसी?

आंध्र

विपत्ति में मदद की सीमाएँ

आंध्र के तटवर्ती ज़िलों—कृष्णा, गुंटूर, प्रकाशम्, पश्चिम गोदावरी—में पिछले वर्ष, 19 नवंबर, 1977 को एक भयंकर तूफान आया था. तूफानी हवाओं के साथ 15.14 फुट ऊँची पानी की विशाल दीवार ने दीवी सीमा में उतर कर दस हजार के करीब लोगों को लील लिया था. संपत्ति के विशाल नुकसान के अलावा इस में लगभग 70 लाख लोगों को छोटी बड़ी विपत्ति में डाल दिया था. तूफ़ान उतर जाने के बाद आंध्र सरकार तथा स्वयंसेवी संस्थाओं ने तत्काल मदद और उस के बाद उस इलाके के पुनर्निर्माण का काम हाथ में लिया.

पुनर्निर्माण का वह काम वहाँ के लोगों की ज़रूरतों के लिहाज से कितना संगत है? स्वयंसेवी संस्थाओं और उस इलाके के लोगों के बीच कौन सा रिश्ता बना है? क्या अब वे इलाके भविष्य के किसी तूफान के समय सुरक्षित रह सकेंगे?

इस काम को शुरू हुए एक साल बीत चुका है. गांधी शांति प्रतिष्ठान की ओर से उस का एक जायजा लेते हुए हमें अनेक तरह के अनुभव हुए. सरकार और स्वयंसेवी संस्थाओं ने एक बड़ी राशि (सरकार द्वारा लगभग 70 करोड़ तथा इस से कुछ कम स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा) खर्च की है, लेकिन अधिकांश संस्थाओं का दृष्टिकोण विपत्तिग्रस्त लोगों के प्रति एक करुणा से भरा हुआ ही था. अतः न वे उन लोगों की ज़रूरत को भरपूर समझ पाये, न उनके साथ बराबरी और आपसी विश्वास का रिश्ता ही बना सके. आंध्र के उन तटवर्ती इलाक़ों में घूमते हुए भारत के मौजूदा समाज के विभिन्न अंगों और संस्थाओं की एक स्पष्ट छवि दिखायी पड़ती है, जो निश्चित ही आशाजनक नहीं है.

बनवारी के यात्रा वृतांत की इन तीन किश्तों में यही अनुभव दर्ज हैं. यह क़िस्त तूफान से हुए विनाश और उस के बाद हुए पुनर्निमाण के काम में लगी कुछ प्रमुख संस्थाओं—आंध्र पुलिस, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, दीवी की सीमा सोशल सर्विस सोसायटी, आर्थिक समता केंद्र तथा सरकार के काम और लोगों के प्रति उन के दृष्टिकोण को दिखाती है. तीसरी किश्त कृष्णा नदी के बीच के एक द्वीप की कथा है, जहाँ कुछ कल्पनाशील कार्यकर्त्ताओं की वजह से एक बिल्कुल नया जीवन शुरू हुआ है और उस में यह भी जाँचा गया है कि भविष्य के किसी तूफान से वे इलाक़े कितने सुरक्षित हैं.

दोपहर का एक बजा होगा. सूरज सिर पर था. तार की सफेद चादरों के कारण चितकोला के घर दूर से ही चमकने लगते थे. तटवर्ती बस्ती का यह अंतिम गाँव था. धान के खेत बीत चुके थे. सामने नम मिट्टी का मैदान और उस के बीच जहाँ तहाँ खड़े ताड़ के झुरमुट नजर आते थे. पिछले साल आये तूफान और लहर में पुराना गाँव मिट चुका था. उस से ज़रा हट कर नया गाँव, बल्कि पचहत्तर मुन्नरासी परिवारों की बस्ती, वहाँ खड़ी थी. सिर से ज़रा ऊँची सर्वे (कैसरीना) तथा बाँस के ढाँचे और तार की चादर का छत वाली सिलसिले से खड़ी एक सी झोपड़ियों में गाँव जैसा घनापन और ऐंद्रिकता नहीं थी, बल्कि बस्ती जैसा खुलापन और व्यवस्था थी.

स्कूल में छुट्टी हो चुकी थी. सामने एक झोपड़ी में दो कारीगर पानी के छोटे नालों से मछली फाँसने का लकड़ी का जाल बनाने में व्यस्त थे. उन के औज़ार बढ़िया किस्म के थे. अधिकाँश पुरुष काम धंधे के लिए निकल चुके थे. पास ही सरकारी निर्माण योजनाओं में कुछ लोग मज़दूरी का काम कर रहे थे. चितकोला के लोगों का मुख्य धंधा मछली पकड़ना है. एकाध एकड़ ज़मीन भी कई परिवारों के पास है. तूफान के बाद यह पहली फ़सल थी.

चितकोला में नयी बस्ती खड़ी करने से ले कर खेती के औजार उपलब्ध करने तक सब काम सरकार या स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा किये गये हैं. तीन से दस वर्ष तक के बच्चों को बालवाड़ी में शिक्षा तथा पौष्टिक आहार देने का काम आर्थिक समता केंद्र नाम की एक संस्था कर रही है. आंध्रप्रदेश समाज कल्याण विभाग ने उन्हें अस्थायी कच्चे घरों की जगह कंकरीट के पक्के मकान बनवा कर देने का वायदा किया है. साल भर में उन की ज़िंदगी ने एक नया ढर्रा पा लिया है—अलबत्ता बाहरी मदद से बना ढर्रा है वह.

पिछले वर्ष 19 नवंबर, 1977 को आंध्रप्रदेश के तटवर्त्ती ज़िलों में आये भयंकर तूफान के चिन्ह अभी मिटे नहीं हैं. कृष्णा, गुंटूर, प्रकाशम और पश्चिम गोदावरी जिलों के 2200 गाँवों में रहने वाले सत्तर लाख लोग इस तूफान से पीड़ित हुए और कुल लगभग एक हजार करोड़ रुपए के बराबर नुकसान हुआ था. लगभग बारह लाख हेक्टेयर खेती तेज़ हवा और पानी के कारण नष्ट हो गयी थी. तूफानी हवाओं के साथ 15.14 फुट ऊँची पानी की एक विशाल दीवार ने दीवी सीमा में उतर कर दस हजार के करीब लोगों को लील किया था. लहर का पानी दीवी सीमा तथा कोना डेल्टा के 77 गाँवों में घुसा, जिन में 62 गाँव पूरी तरह नष्ट हो गये. तूफान उतर जानेके बाद उस के विनाश की गंभीरता को देखते हुए सरकार के अलावा देसी, विदेशी स्वयसेवी संस्थाएँ बड़ी संख्या में वहाँ पहुँची. तत्काल मदद के अलावा भी काफी बड़ा काम सामने था. बहुत से परिवार छिन्नभिन्न हो गये थे. तूफान के सब से ज्यादा शिकार बूढ़े, स्त्रियाँ तथा बच्चे हुए थे. हर गाँव में ऐसे बच्चे मौजूद थे जो अपने माँ, बाप, या उन में से

सुब्बैया : "अभी कुछ काम मिल गया है. कितने दिनों तक मिलेगा?"

एक को खो चुके थे. खेतों में लहर के साथ आयी रेत और क्षार भरी थी. काफी बड़े इलाके में सड़कें और संपर्क की पूरी व्यवस्था नष्ट हो गयी थी. सिचाई की नहरें, नाले तथा जलाशय टूट फूट गये थे तथा उन में समूद्री पानी भरा था.

इन में से पुनर्निर्माण का अधिकांश काम केवल सरकार के ही बूते की बात थी, क्यों कि उस के लिए जितने साधनों तथा बड़ी मशीनों की जरूरत थी वह सरकार ही उपलब्ध कर सकती थी. सड़कों, संपर्क की व्यवस्था तथा सिचाई के साधनों की मरम्मत का काम आवश्यक फुर्ती से हुआ. शुरु में आशंका व्यक्त की जा रही थी कि रेत से भरे खेतों में अगले चार पाँच वर्ष तक खेती कर पाना संभव नहीं होगा. पर कुछ महीनों के भीतर ही नहरों आदि के पानी के सहारे रेत बहा दिया गया. उस के बाद उन खेतों मेंहरी खाद तथा चारा उगाया गया. रेत के बहाये जाने के बाद खेतों में फ़ासफोरस और सल्फर जैसे खनिज बच गये थे, जिन के कारण इस समय खड़ी

अगले तूफ़ान में क्या होगा?

हुई पहली फसल पिछले वर्षों में एक रिकार्ड कही जा रही है. लोगों को पशु खरीदने के लिए सरकारी मदद दी गयी. उन्हें काम, धंधा देने के लिए निर्माण के सघन कार्यक्रम उठाये गये. इन सब कामों पर केवल सरकारी खर्चे का अनुमान लगभग सत्तर करोड़ रु. है.

तूफान से पीड़ित लोगों को तत्काल मदद की व्यवस्था में स्वयंसेवी संस्थाओं की भूमिका उल्लेखनीय रही थी. लोगों को भोजन, कपड़ा और फौरी आश्रय उपलब्ध करने के काम में स्वयंसेवी कार्यकर्त्ताओं से ही उत्साह और सहानुभूति की उम्मीद की जा सकती थी. उसी दौर में यह जरूरी था कि जिन लोगों के काम, धंधे के औजार नष्ट हो गये हैं उन्हें नये औजार उपलब्ध किये जायें. लहर से प्रभावित इलाकों में मछियारों, बुनकरों, छोटे कारीगरों आदि को उन के कामकाज के औजार सरकार या स्वयंसेवी संस्थाओं की मदद से मिल गये, लेकिन बाकी इलाकों में वह मदद कहीं कहीं की गयी. असल में जल्दी ही स्वयंसेवी संस्थाओं का पूरा जोर तूफान की आशंका से घिरे रहने वाले इन इलाकों में लोगों को पक्के मकान उपलब्ध कराने की तरफ हो गया.

तूफान की आशंका वाले इलाकों में आर. सी. सी. के पक्के मकान की उपयोगिता विवादास्पद है. जो लोग पक्के मकान ज़रूरी नहीं मानते उन का तर्क है कि पूर्वी तट का काफ़ी बड़ा इलाका समुद्र से उठने वाली तेज़ हवाओं के घेरे में रहता है. इस पूरे इलाके में पक्के मकान बनवाने का खर्च इतना अधिक बैठेगा कि ऐसी किसी योजना की निकट भविष्य में कल्पना ही नहीं की जा सकती. ऐसी हालत में समस्या का वह हल ही उचित होता जिसे सब के लिए इस्तेमाल किया जा सकता. इस तर्क का वज़न इस बात से भी बढ़ता है कि दीवी और बंदार ताल्लुक में जहाँ कंकरीट के मकान सब से ज्यादा बनाये गये हैं वहाँ कुल आबादी का आधा से अधिक भाग तमाम योजनाओं के पूरा हो जाने के बाद भी वैसे मकानों से वंचित रहेगा. इस इलाके में स्वयंसेवी संस्थाओं, रेडक्रॉस तथा आंध्रप्रदेश समाज कयाण विभाग द्वारा लगभग दस हजार मकान बनाये जा रहे हैं, जब कि 38 गाँवों के दस हजार से अधिक परिवार फिर भी उन से वंचित बने रहेंगे. कृष्णा जिले के जिला मजिस्ट्रेट का कहना है कि सरकार लहर से प्रभावित इलाके में शेष परिवारों को वैसे ही मकान देने की व्यवस्था करेगी. इस बात पर भरोसा किया जाये तो भी कंकरीट के इन मकानों का अर्थ समझ पाना मुश्किल है. उन का उद्देश्य अगर भविष्य के किसी तूफान से लोगों की रक्षा करना है तो यह काम सामुदायिक भवनों के सहारे तो हो सकता है, जो कि कम से कम इस पूरे इलाके में बन रहे हैं. यह बताना कि उन मकानों का उद्देश्य तूफान के समय उन में रहने वाले लोगों की संपत्ति की रक्षा करना है कितना हास्यास्पद है. यह वहाँ बसे लोगों की स्थिति को देखकर ही समझा जा सकता है. यानादि परिवारों की ऐसी ही एक बस्ती के बीच से गुजरते हुए आर्थिक समता केंद्र के सचिव वीरेय्या द्वारा कहे गये ये शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण थे—वे लोग मकानों को मजबूत बना रहे हैं, बिना इस बात को समझे कि जिन के लिए वे बनाये जा रहे हैं वे लोग कितने असहाय हैं. अगर उन्हें कोई ठोस आर्थिक आधार मिल सकता तो फिर मकानों को मजबूत बनाने की समस्या ही न बचती. इस टिप्पणी का अर्थ लकड़ी, बाँस और पत्तों से बने हुए उन मकानों के मॉडल को देखने के बाद और अधिक समझ में आता है जो तूफान की उतनी तेज़ हवाओं को झेलने में सक्षम हैं जितनी तेज तूफानी हवाएँ इस इलाकों में सामान्यत: आती हैं.

लागत के हिसाब से पहुँच के भीतर ये परंपरागत घर, उन्हें बनाने की तकनीक में मामूली सुधार कर के ही तैयार किये जा सकते हैं. ये सुधार घर के मुख्य खंभों का ज़मीन के भीतर कुछ और गहराई में गाड़ने तथा जोड़ों को मज़बूती से बाँधने से संबधित हैं. सब से बड़ी बात यह है कि इन घरों को ये लोग खुद बना सकते थे. उस के लिए उन्हें किसी का मुँह जोहने की ज़रूरत नहीं थी. विपत्ति के समय किसी समाज के लिए यह बात कितनी ज़रूरी है, बूढ़े मछियारे की कहानी इसे बड़े अद्भुत ढंग से बताती है. स्वयंसेवी संस्थाओं की तमाम सदाशयता के बावजूद पक्के मकानों ने उस तूफान से समाज को एक नयी विषमता दी है, जो पहले से मौजूद विषमताओं से कम घातक हैं.

फिलहाल स्वयंसेवी संस्थाओं का काम अपने अंतिम दौर में है. मकान बन चुकने के बाद वे अपना काम काज समेटने की तैयारी में हैं. उस के बाद कुछ ही स्वयंसेवी संस्थाएं बचेंगी. उदाहरण के लिए गांधी शांति प्रतिष्ठान तथा

चिंतकोला के लोग

आत्मनिर्भरता

एक बार अकाल पड़ा. नदी और तालाब सूख गये. अन्न का एक दाना भी पैदा नहीं हुआ था. लोग खाने की तलाश में दूर दूर भटकते रहे. जब कुछ न मिलता तो निराश लौट आते. काम का वक्त था. दिन भर भटकने के बाद भी उसे कुछ नहीं मिला था. तभी उस रास्ते से एक बूढ़ा मछियारा गुजरा. उसे किसी जगह काफी मछलियाँ मिल गयी थीं. थके हारे जवान मछियारे को देख वह सहानुभूति से भर गया. अपनी बाँस की टोकरी में से उसने कुछ बड़ी मछलियाँ उठायीं और उस जोहड़ में फेंक दीं. फिर मछली पकड़ने का अपना काँटा उस जवान मछियारे को थमाते हुए कहा, 'लो और इन मछलियों को पकड़ने की कोशिश करो'. बूढ़ा मछियारा ये मछलियाँ सीधे उसे भी दे सकता था. वह भूखा था और थका लगता था. पर इस से उस की मुसीबत से लड़ने की इच्छा कमजोर पड़ जाती.

सोसायटी फार डेवलपमेंट ऑफ रूरल सेरीकल्चर इंडस्ट्री संयुक्त रूप से बापटला और रेपल्ले ताल्लुका में डेढ़ हजार के करीब आर. सी. सी. के मकान बना रहे हैं. लेकिन इस के बाद उन की योजना उन में बसे लोगों को नये धंधों का प्रशिक्षण दे कर उन्हें अपने पैरों पर खड़ा कर देने की है और इस काम के पूरा होने तक वे अपना काम काज जारी रखेंगे. दीवी सीमा सोशल सर्विस सोसायटी एक अन्य स्वयंसेवी संस्था है. इन लोगों ने मकान बनाने का काम अपने हाथ में नहीं लिया. उस के बजाय वे लोग दीवी सीमा में गाँवों को उठाने के दीर्घावधि कार्यक्रम को ले कर चल रहे हैं. यह मुख्यतः कैथोलिक संप्रदाय के सोसायटी ऑफ जीसस के कार्यकर्त्ताओं की संस्था है. आर्थिक समता केंद्र विजयवाड़ा के नास्तिक केंद्र के कुछ लोगों के प्रयत्नों से बना है. गोरा और गांधी जी से प्रभावित ये लोग कमज़ोर वर्गों के बीच कार्यरत हैं. मकान बनाने में इन्होंने भी कोई दिलचस्पी नहीं दिखायी.

आंध्रप्रदेश के तूफान से पीड़ित क्षेत्रों में पिछले साल भर में हुए काम को आँकते हुए किसी एक निष्कर्ष पर पहुँचना मुश्किल था. सीमाओं के भीतर सरकार और स्वयंसेवी सस्थाओं का काम प्रशंसनीय था. पर वे सीमाएँ ही सब से ज्यादा अखरती हैं और एक जगह आ कर उस काम के महत्त्व को मिटा देती हैं. तूफानग्रस्त लोगों को समय पर राहत पहुँचाने और उन्हें मुसीबत से उबारने के लिए सहायता देने में सरकार और स्वयंसेवी संस्थाओं ने फुर्त्ती और कल्पनाशीलता से काम किया. ऐसी विपत्ति के समय भारत के अन्य इलाकों में काम कर चुके लोगों की आंध्र सरकार के अफसरों के बारे में प्रशंसापूर्ण टिप्पणियाँ थीं. स्वयंसेवी संस्थाओं में से कुछ के पास कुछ बहुत निष्ठावान, जोशीले और तेजस्वी कार्यकर्त्ता थे. लेकिन इन सब के बावजूद ये तमाम संस्थाएँ तूफान से ग्रस्त लोगों के प्रति एक करुणा की भावना रख कर ही मदद कर रही थी. इस कारण वे उन लोगों की दीर्घकालीन ज़रूरतों को ठीक से आँक नहीं पायीं: न उन के तथा तूफानग्रस्त लोगों के बीच कोई बहुत आत्मीय रिश्ता ही पैदा हो सका.

आठ, नौ और दस अक्तूबर को अवनिगड्डा में स्वयंसेवी संस्थाओं तथा समाजसेवी कार्यकर्त्ताओं का एक सम्मेलन आयोजित किया गया था. इस सम्मेलन का उद्देश्य एक मंच पर इकठ्ठा हो कर साल भर के अनुभवों को एक दूसरे में बाँटना था. उस सम्मेलन में कुछ नौजवान कार्यकर्त्ताओं ने इस समस्या की तरफ इशारा करते हुए कहा कि क्या सरकार और स्वयंसेवी संस्थाएँ अपने दाता होने की विशेष स्थिति का फायदा उठाते हुए लोगों पर उन की समस्याओं के असंगत हल नहीं थोप रही? उन्होंने आरोप लगाया कि किसी भी प्रमुख संस्था ने अपनी योजनाओं को बनाते समय यह ज़रूरी नहीं समझा कि वे जिन के लिए बनायी जा रही है सलाह के लिए उन्हें भी किसी स्तर पर शामिल किया जाये. इस का सब से तकलीफदेह उदाहरण यह तथ्य था कि अधिकांश स्वयंसेवी संस्थाओं ने जो मकान बनवाये उस के लिए कारीगर और मजदूर अक्सर उस जगह से बाहर के लाये गये. लोगों को तो मकान बनवा कर सौंप दिये गये थे. सरकार और स्वयंसेवी सस्थाओं के इस रवैये को इस से भी स्पष्ट रूप में विजयवाड़ा में बारह, तेरह और चौदह अगस्त को आर्टिक द्वारा आयोजित सेमिनार में नोट किया गया था.

तूफान से पीड़ित इलाके में चल रहे पुनर्निर्माण के काम की खूबियों, कमज़ोरियों की झलकें चिंतकोला में भी देखी जा सकती थी. लोगों को शिकायत थी कि केयर द्वारा उन के लिए बनाये गये अस्थायी मकान उन की ज़रूरत के लिहाज़ से छोटे हैं. तार की चादर की छत धूप में तपने लगती है और जाड़े में ठंडक लगती है. उन के मुकाबले ताड़ के पत्तों की परंपरागत छत कहीं आरामदेह होता. लेकिन केयर के प्रतिनिधियों का कहना था कि समय कम था—तूफान से बेघर लोगों को कम से कम वक्त में रहने लायक जगह दी जानी थी. ऐसे समय ताड़ के पत्तों के मिलने का इंतजार नहीं किया जा सकता था.

साल भर में लोग खुद उन घरों को अपनी ज़रूरत के लिहाज से ढाल सकते थे. पर वे नयी मदद की आशा बाँध बैठे थे. उन के इलाके में कुछ गाँव पक्के हो चुके थे. आंध्र सरकार के समाज कल्याण विभाग ने उन से भी मकानों का वायदा किया था. उस के बारे में आश्वस्त वे नहीं थे. पर इस से उन में अपना घर खुद बनाने की इच्छा मिट गयी थी.

चिंतकोला में इस समय आर्थिक समता केंद्र के कार्यकर्त्ता काम कर रहे हैं. उन के सुझाव पर ही राहत के काम में मदद करने आयी बंबई की एक संस्था सतगुरु सेवा समिति ने राहत सामग्री बाँटने की बजाय उन के नष्ट हो गये काम के औजारों की जगह नये औजार उपलब्ध किये थे. आर्थिक समता केंद्र ने तीन से दस बरस के बच्चों के लिए एक बालवाड़ी शुरू की है. कम लागत पर कुछ घरेलू पेड़ दिये हैं, ताकि आमदनी का एक अतिरिक्त ज़रिया हो सके. यह लोगों द्वारा अपनी जिंदगी के खुद निर्माण में दिया गया सहयोग है.

साल भर से चल रहे पुनर्निर्माण के काम का एक दिलचस्प पहलू है तूफानपीड़ित लोगों और उन के बीच काम कर रही सस्थाओं के कार्यकर्त्ताओं का उन के साथ रिश्ता. यह रिश्ता सब जगह एक जैसा नहीं है. सरलागुंडी में श्रमदान कर के मकान बनाने वाले आंध्र पुलिस के सिपाहियों, मंदपाकला में सक्रिय सोसाइटी ऑफ जीसस के कैथोलिक कार्यकर्त्ताओं, मूल पालेम में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्त्ताओं और चिंतकोला के नास्तिकम केंद्र से आये आर्थिक समता केंद्र के कार्यकर्त्ताओं का, जिन लोगों के बीच वे लोग काम कर रहे हैं उन के साथ अलग अलग तरह का रिश्ता है, जिस से उन संस्थाओं के मूल चरित्र की एक झाँकी मिलती है.

पुराने गाँव मिट चुके हैं. उन की जगह खड़ी हुई हैं नयी बस्तियाँ.

जनता मुस्लिम फोरम

महाराष्ट्र में जनता पार्टी बनने के बाद निहाल अहमद ने जनता मुस्लिम फोरम की स्थापना की. राजनैतिक मोर्चे पर जनता पार्टी को मानने वाला मुसलमानों का यह संगठन है. मुसलमानों की जो दिक्कतें हैं उन की सुलझाने का काम जनता मुस्लिम फ़ोरम जनता पार्टी द्वारा कराना चाहता है. संगठन का पहला सम्मेलन गत वर्ष औरंगाबाद में हुआ था. दूसरा सम्मेलन बंबई के अंधेरी उपनगर में ता. 2 3 दिसंबर, 1978 को संपन्न हुआ. केंद्रीय मंत्री आरीफ़ बेग तथा महाराष्ट्र के मंत्री जनाब निहाल अहमद की रहनुमाई में सम्मेलन की कार्रवाई चली. श्री चंद्रशेखर, श्री. एस. एस. जोशी, श्री हेमवती बहुगुणा तथा लाडलीमोहन निगम भी सम्मेलन में विशेष अतिथि के रूप में उपस्थित रहे. जनता पार्टी के अन्य गैरमुस्लिम नेताओं ने सम्मेलन का करीब करीब बहिष्कार ही किया. इतना ही नहीं, बंबई में सम्मेलन होने के बावजूद सम्मेलन की कोई विशेष खबर सिवाय उर्दू अखबारों के अन्य किसी अखबार ने नहीं दी.

राष्ट्रीय मुसलमान नाम का एक मामला हमारे देश में बहुत वर्षों से चला आया है. ये मुसलमान राष्ट्रीय इस लिए कहलाये जाते हैं कि वे फ़िरकापरस्त संगठनों से अपने को अलग बनाये रखे हैं. इन्होंने इस के लिए इनाम भी काफ़ी पाये हैं. लेकिन दक़ियानूस संगठन जो माँगे करते हैं उन्हीं को इन्होंने आम तौर पर दुहराया है: सीधे नहीं तो अन्य किसी बात की ओट में. देश के बँटवारे की एक बात को छोड़ दें तो अन्य कितने ही मामलों में उन का रुख वहीं रहा. अपवाद दो ही हैं—एक महम्मद करीम छागला का तथा दूसरा हमीद दलवई का. इन दोनों ने हमेशा ही अपना रुख सही माने में स्वतंत्र रखा, लेकिन हमीद दलवई को मुस्लिम सत्य शोधक मंडल की स्थापना करनी पड़ी.

हमीद दलवई तथा मुस्लिम सत्य शोधक मंडल सम्मेलन पर छाया हुआ था. उन्होंने जो सवाल उठाये उन के बारे में सम्मेलन को सोचना ही पड़ा. वक़्फ़ के पैसों का आज खुदपरस्त लोग नाजायज़ फायदा उठा रहे हैं. मज़हब की आड़ में चलने वाली इस खुदपरस्ती के खिलाफ़ मुस्लिम सत्य शोधक मंडल ने अपनी आवाज़ बुलंद की और माँग की कि यह राशि मुसलमानों की शिक्षा के लिए खर्च होनी चाहिए. इस सम्मेलन में भी यही माँग की गयी. यह पैसा जरूरी कामों के लिए खर्च होना चाहिए, जिस में तालीम, रोज़ी तथा गृह निर्माण शामिल है. गृह निर्माण के अभाव में आम मुसलमान गंदी बस्तियों का ही निवासी बना हुआ है.

मुस्लिम औरतों का मामला बड़ा पेचीदा बना हुआ है. तलाक़ और सौत की चक्की में मुस्लिम औरत पिस रही है. समान नागरी, क़ानून संविधान की 44वीं धारा के मातहत बना कर इस मामले का इलाज किया जा सकता है, लेकिन मुस्लिम व्यक्तिगत क़ानून के बदलाव की बात निकलते ही मुसलमान खौल उठते हैं. लेकिन मामला संगीन है और उस का कोई न कोई इलाज ढूंढना ही होगा. सुझाया गया है कि सरकार इस मामले में न पड़े और मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड जो सुझाये उस को सरकार मंजूर करे. निहाल अहमद ने तो साफ कहा कि मर्द और औरत का जो अनुपात देश में है उस को देखते हुए कहना पड़ेगा कि चार शादियां करना कहाँ तक जायज़ है? इस के बारे में मुसलमान खुद ही सोचें और कानून की आड़ न ले कर ऐसा रिवाज बनाये कि कोई मुसलमान एक औरत के रहते दूसरी शादी न करें.

अलीगढ़ का मामला न उठता तो आश्चर्य होता. भड़काने वाला यह मामला था. लेकिन जनाब आरीफ़ बेग ने जो सफ़ाई दी उस से लोगों को कुछ तसल्ली हो गयी. बेग ने कहा, जो इंदिरा गांधी अलीगढ़ के मामले को ले कर तसबी घुमा रहा है वह हैदराबाद के मामले में चुप्पी साधे बैठी है. दंगे फ़साद का मामला उठा कर वह राजनैतिक फायदा उठाने की ताक में है. ऐसे दोस्तों से मुसलमानों को सावधान रहना चाहिए. फिर उन्होंने कहा, 'जहाँ भूतपूर्व जनसंघी मुख्यमंत्री हैं ऐसे राज्यों में एक भी कौमी फ़साद नहीं हुआ, यह सोचने की बात है. इतना ही नहीं अभी मैं यहाँ के लिए रवाना होने ही वाला था कि भूतपूर्व राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघी नानाजी देशमुख ने फोन पर मुझ से कहा कि अलीगढ़ के विस्थापितों को पुनः स्थापित करने के लिए वह मुझे ले कर अलीगढ़ जाना चाहते हैं. वही रट बार बार लगाने से सचाई को मिटाया नहीं जा सकता. इस मामले को पार्टी का मामला नहीं बनाना चाहिए. लेकिन ये लोग माने तब न.

कौमी दंगों के शिकार बने लोगों को मुआवज़ा देने का सवाल आया तो सिर्फ़ मुसलमानों के नुकसान की बात चली. तब कहना पड़ा कि ऐसी जहाँ कहीं वारदातें हों वहाँ सब को मुआवज़ा दिया जाये. स्पृश्य, मुस्लिम, गैरमुस्लिम सब दंगों में झुलसे गये हैं, अतः सब के बारे में सोचना चाहिए. मुसलमान सिर्फ़ अपनी डफली ले कर अपना राग अलापते रहेंगे तो वह दक़ियानूसी होगी. अतः सब के साथ इंसाफ करने की माँग करना वाजिब होगा. इस सुझाव को लोग मान गये.

महाराष्ट्र तक महदूद जनता मुस्लिम फ़ोरम का काम और प्रदेशों में फैलने की दृष्टि से जनाब आरीफ़ बेग का सम्मेलन की रहनुमाई करना लाभदायक सिद्ध होगा, ऐसी आशा है.

महाराष्ट्र शासन का रुख श्री हमीद दलवई तथा उन के कार्य के लिए हमेशा अनुकूल रहा और फिरकेवाराना तबकों में इस से हमेशा बेचैनी रही. महाराष्ट्र ही एक ऐसा राज्य था जहाँ अनिवार्य परिवार नियोजन का प्रस्ताव पारित किया गया था. गुर्दे की बीमारी से दलवई बीमार हो गये, तो 50 हजार की राशि उन के इलाज के लिए महाराष्ट्र शासन ने दी. आज के महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री शरद पवार के घर में ही महीनों तक हमीद का परिवार बीमारी के दिनों में रहता था. हमीद के देहांत के बाद उन के परिवार को मासिक 500 रुपए की सहायता महाराष्ट्र शासन की ओर से दी जाती है. महाराष्ट्र की मिलीजुली सरकार पर दबाव डालने की कोशिश जब जनता मुस्लिम फोरम में सम्मिलित कुछ लोगों ने की तो जनाब निहाल अहमद ने उन को फटकारा और कहा, "दोस्तों मेरे, आप क्या समझ रहे हैं कि यहाँ फिरकापरस्तों की सरकार बन गयी है? भारत में असहिष्णु राज्य कायम नहीं हुआ. भारतीय शासन धर्मातीत सेक्युलर शासन है और यहाँ हरेक व्यक्ति को पूरी छूट है कि व्यक्तिगत जीवन में चाहे जो श्रद्धा रखे राज्य की कोई धर्म श्रद्धा नहीं होगी. पाकिस्तान में अहमदिया पंथ के लोगों को गैरमुसलमान घोषित किया गया है और उन को दुश्मन नागरिक बनाया गया है. वहाँ कोई गैरमुसलमान राष्ट्रपति बन नहीं सकता. भारत का हर नागरिक उस का हकदार है, चाहे वह हिंदू हो, ईसाई हो, मुसलमान हो, बुद्ध, जैन हो, या धर्म को न मानने वाला हो. हमीद दलवई के विचारों से हमारे विचार कुछ मामलों में अलग हैं. इस का मतलब यह नहीं होता कि उन के साथ नाइंसाफी की जाये. भारतीय जीवन की इस खूबी को समझने की हमें कोशिश करनी चाहिए, वरना हम गुमराह हो जायेंगे."

परिवार नियोजन के बारे में जनाब निहाल अहमद की भूमिका स्पष्ट है. जिन बच्चों की ठीक तरह परवरिश करना संभव नहीं इतनी तादाद में बच्चे पैदा करना याने बच्चों की किस्मत बिगाड़ना है, ऐसा वह साफ कहते हैं और मालेगाव के मुसलमान मज़दूरों को यह बात हमेशा ही उन्होंने समझायी है. जनाब निहाल अहमद की रहनुमाई की सूरत पहले जमाने के मुस्लिम नेताओं से कुछ दूसरी है.

जनता मुस्लिम फोरम जनता पक्ष मज़बूत और व्यापक बनाने का एक तरीका बन सकता है. इंदिरा गांधी अपने को मुसलमानों तथा अन्य अल्पसंख्यकों की हिमायती बनाने की कोशिश कर रही है, लेकिन जनाब निहाल अहमद, सिकंदर बख्त, आरीफ बेग जैसे लोग उन का पर्दाफ़ाश करने के काबिल हैं और जनता मुस्लिम फोरम का काम इस दिशा में बढ़ा या ठोस कदम है.

मान

नयी लाइसेंस व्यवस्था

दिल्ली में पुलिस आयुक्त प्रणाली के अंतर्गत पुलिस को कानून और व्यवस्था के साथ साथ कुछ अन्य क्षेत्रों में भी एकछत्र ज़िम्मेदारियाँ प्राप्त हुईं. इन में सब से महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी कई तरह के लाइसेंस जारी करने की है. पहले ये लाइसेंस ज़िलाधीश जारी किया करते थे. यद्यपि तब भी पुलिस की सिफारिश पर ही ज्यादातर लाइसेंस जारी किये जाते थे तथापि उस की सिफारिशें अंतिम नहीं हुआ करती थीं. जिलाधीश का पद पुलिस महानिरीक्षक से ऊँचा होता है लिहाजा कानूनन उन्हें अपनी मन-मरज़ी से आचरण करने की छूट हुआ करती थी. बहुमुखी व्यवस्था होने के कारण कई तरह की अनियमितताएँ भी हो जाया करती थीं. कई-कई क्षेत्रों में तो आवेदक को यह मालूम भी नहीं होता था कि उसे लाइसेंस दिया जाना है या नहीं. फाइलें कई सालों तक क्लर्कों के पास दबी रह जाया करती थीं.

दायित्वः पुलिस आयुक्त प्रणाली के लागू होने से जिन क्षेत्रों में उन्हें लाइसेंस जारी करने का दायित्व प्राप्त हुआ मोटे तौर पर वे हैं: शस्त्र लाइसेंस, विस्फोट लाइसेंस, विष लाइसेंस, सिनेमाघरों के निर्माण संबंधी लाइसेंस, पेट्रोल अधिनियम के अंतर्गत पेट्रोल पंप लगाने का लाइसेंस, प्रेसों के पंजीकरण संबंधी लाइसेंस आदि. विभिन्न केंद्रीय कानूनों के अंतर्गत पुलिस को ये अधिकार प्राप्त हुए हैं. इस के अलावा दिल्ली पुलिस अधिनियम के अंतर्गत उसे कई तरह की और ज़िम्मेदारियाँ भी प्राप्त होंगी. जैसे विज्ञापन लगाने से पूर्व पुलिस की अनुमति, लाउडस्पीकर लगाने से पूर्व अनुमति, सार्वजनिक मनोरंजन आदि के आयोजन से पूर्व पुलिस की अनुमति लेना ज़रूरी है. दिल्ली में अक्सर ही वक्त बेवक्त लाउडस्पीकरों की ऊँची आवाज से बाधा पहुँचने की घटनाएँ सुनने को मिलती है. लोग दूसरों की चिंता किये बिना पूरी आवाज़ पर लाउडस्पीकर छोड़ देते हैं. बच्चों की पढ़ाई खराब होने के साथ साथ लोगों की चैन भी जाती रहती है. पुलिस को ऐसी बहुत सी शिकायतें मिलती हैं. बावजूद इस नियम के आयोजकों द्वारा उल्लंघन निरंतर होता रहता है. जहाँ तक विस्फोट लाइसेंस का प्रश्न है बुनियादी तौर पर यह ज़िम्मेदारी विस्फोट निदेशालय की है. लेकिन 250 किलोग्राम तक बारूद का लाइसेंस पुलिस आयुक्त दे सकता है. सिनेमाघरों के निर्माण संबंधी लाइसेंस देने से पूर्व भी पुलिस को यह देखना होता है कि वह स्थान सार्वजनिक हितों के प्रतिकूल तो नहीं. वहाँ पर यातायात में तो गड़बड़ी नहीं होगी. लाइसेंस जारी करने से पूर्व पुलिस नगर निगम और दिल्ली विकास प्राधिकरण से भी सलाह मशविरा करती है. पेट्रोल पंप लगाने की इजाजत देने से पूर्व भी पुलिस को इसी तरह के कदम उठाने होते हैं.

इकहरी प्रणालीः अतिरिक्त पुलिस आयुक्त **हरिदेव पिल्ले** के अनुसार अब लाइसेंस एक ही स्थान से प्राप्त किये जा सकते हैं. पहले जैसी दोहरी व्यवस्था नहीं रही. इस काम के लिए एक उपायुक्त की नियुक्ति की गयी है जिस के अधीन पूरा लाइसेंस विभाग है. सभी कार्य एक जगह होने से ज़िम्मेदारी निश्चित की जा सकती है जब कि पहले व्यवस्थित ढंग से काम न होने के कारण ज़िम्मेदारी निश्चित कर पाना मुश्किल होता था. सब से प्रमुख क्षेत्र शस्त्र लाइसेंस जारी करने का है. निस्संदेह यह एक नाज़ुक क्षेत्र है. आजकल शस्त्र रखना एक फैशन सा हो गया है और कई क्षेत्रों में इसे प्रतिष्ठा का प्रतीक माना जाता है. ज़िलाधीश का कार्यालय लाइसेंस जारी करने में पहले महीनों और कभी कभी सालों तक लगा देता था. लेकिन अब सभी कुछ एक ही स्थान पर होने के कारण नये लाइसेंस जारी करने में आठ-दस दिन का समय लगता है. नवीकरण तो हाथोंहाथ हो जाता है.

हरिदेव पिल्ले : निश्चित दायित्व

अपील का हकः शस्त्र लाइसेंस जारी करने से पूर्व लाइसेंस की ज़रूरत का जायजा लिया जाता है. आम तौर पर दो हथियारों के लिए ही लाइसेंस जारी किये जाते हैं: एक बड़ा राइफल या बंदूक और एक छोटा हथियार. लेकिन सेना अधिकारियों, व्यवसायिक या शौकिया शिकारियों तथा भूतपूर्व नरेशों के परिवारों के लिए यह संख्या अधिक भी हो सकती है. नये लोगों के लिए यह भी देखा जाता है कि उन की आर्थिक स्थिति कैसी है और हथियार का होना उन की आत्मरक्षा के लिए कितना ज़रूरी है. क्या वे अपने घर अधिक पैसा रखते हैं? या उन्हें अधिक यात्राएँ करनी पड़ती हैं. इस के अलावा क्या उन के पास हथियार सुरक्षित रखने का स्थान है? अभी तक दिल्ली में तीस हजार शस्त्र लाइसेंस जारी किये जा चुके हैं. हर महीने तीन से चार सौ आवेदनपत्र प्राप्त होते हैं. लाइसेंस प्राप्त करने के लिए पहले एक बार स्थानीय पुलिस थाने में फार्म भर कर दे रसीद प्राप्त की जाती है. थानाध्यक्ष को उस आवेदन पर सिफारिश करने का अधिकार नहीं. वह केवल बुनियादी जानकारी ही उस व्यक्ति के बारे में देता है. लाइसेंस दिया जाये या न दिया जाये इस का फैसला लाइसेंस उपायुक्त करता है. दस दिन के भीतर आवेदनकर्ता को बता दिया जाता है कि उसे लाइसेंस मिल सकता है या नहीं. न मिलने की दिशा में वह पुलिस आयुक्त और उपराज्यपाल को अपील कर सकता है और इस प्रकार प्रशासनिक निर्णयों को बदला भी जा सकता है.

श्री पिल्ले ने **दिनमान** को यह भी बताया कि जब उन्हें जिलाधीश के कार्यालय से लाइसेंस संबंधी फाइलें प्राप्त हुई थीं तो उन में से कई तीन से चार साल पुरानी थीं. वहाँ से कर्मचारी भी हमारी सहायता के लिए आये थे. लेकिन वे दो-तीन महीने ही हमारे यहाँ रहे. इस बीच हमने अपने करीब डेढ़ दर्जन कर्मचारियों को इस काम के लिए प्रशिक्षित कर लिया. शुरू में बेशक कुछ दिक्कतें महसूस हुईं. लेकिन ईमानदार तथा कुशल कर्मचारियों ने हमारी इस दिक्कत को दूर कर दिया. इस क्षेत्र में निस्संदेह जिस तरह की गतिशीलता और कुशलता की ज़रूरत होती है वह पुलिस के पास ही है. श्री पिल्ले को विश्वास है कि लाइसेंस कार्यालय एक स्थान पर हो जाने से केवल प्रशासनिक कुशलता ही नहीं बढ़ी है बल्कि नये लाइसेंस प्राप्त करने के लिए अब आवेदक को केवल दो बार घर से निकलना पड़ेगा: पहले फार्म जमा करवाने के लिए और उस के बाद लाइसेंस कार्यालय से अपना लाइसेंस लेने के लिए.

एक प्रश्न के उत्तर में श्री पिल्ले ने यह भी बताया कि लाइसेंस जारी करने में भेदभाव की नीति नहीं अपनायी जा रही है. आप खुद ही सोचें कि एक पनवाड़ी को लाइसेंस की क्या ज़रूरत है. जहाँ तक भूतपूर्व शाही परिवारों का संबंध है उन के असला घरों में इतने क़िस्म के औजार पड़े होते हैं जिन के बारे में आज की पीढ़ी को जानकारी तक नहीं. कुछ हथियार तो आज कल इस्तेमाल भी नहीं होते, कुछ का बारूद या गोला प्राप्त हो पाना मुश्किल है. ऐसे हथियार तो शोभा या स्मारकचिन्हों के तौर पर सहेज कर रखे जाते हैं. लगभग कुछ इसी तरह की शिकारियों की भी स्थिति है. लाइसेंसधारी शिकारी को हर शिकार के लिए अलग अलग दूरी तक मार करने के लिए औजार की आवश्यकता होती है.

जहाँ तक गैरलाइसेंसशुदा हथियारों का सवाल है हम लोग हमेशा ऐसे लोगों की तलाश में रहते हैं. यही समाज विरोधी तत्त्व हैं. दरअसल, लाइसेंसधारी तो आत्मरक्षा के लिए हथियार रखते हैं जब कि गैरलाइसेंसधारी आतंक के लिए. दूसरे वर्ग के लोगों पर नज़र रखना ज़रूरी है.

गिल्बर्ट द्वीपसमूह : स्वाधीनता समझौता

ब्रिटेन ने दक्षिण प्रशांत में स्थित गिल्बर्ट द्वीपों को स्वाधीनता प्रदान करने संबंधी एक, समझौते पर पिछले दिनों लंदन में हस्ताक्षर किये. स्वाधीनता समझौते संबंधी यह बातचीत दो सप्ताह तक चली. ब्रिटेन और गिल्बर्ट के अधिकारी इस बात पर सहमत थे कि जुलाई 1979 में गिल्बर्ट द्वीपों को स्वाधीनता प्रदान की जाये लेकिन बानाबांस के लोगों का यह प्रस्ताव कि उन्हें अलग बस्ती के तौर पर स्वीकार किया जाये न तो ब्रिटेन और न ही गिल्बर्ट के अधिकारियों को मंजूर था.

गिल्बर्ट द्वीपसमूह में 33 द्वीप हैं जो एक लाख 40 हजार वर्गकिलोमीटर में प्रशांत सागर भर में फैले हुए हैं. तीन प्रमुख द्वीप हैं—गिल्बर्ट, लाइन और फोनिक्स. गिल्बर्ट के अंतर्गत 17, लाइन और फोनिक्स के अंतर्गत 8–8 द्वीप आते हैं. ये सभी द्वीप दक्षिण-पश्चिम प्रशांत में फैले हुए हैं. गिल्बर्ट द्वीपसमूह की राजधानी तरावा है जो सिडनी से ढाई हजार मील दूर है तथा सुवा से 1,365 मील. लिहाजा प्रशासनिक, परिवहन और संचार के क्षेत्रों में उन्हें खासी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है. इन द्वीपों में ज्यादातर मूंगे के द्वीप हैं.

द्वीपों का विवरण : गिल्बर्ट द्वीपसमूह की जनसंख्या 51,929 (दिसंबर 1973 का आँकड़ा) है जब कि राजधानी तरावा की जनसंख्या 17,188. गिल्बर्ट द्वीपों में प्रमुख द्वीप कुछ इस प्रकार हैं: ओशन द्वीप, बानाबांस का क्षेत्रफल लगभग 2 वर्गमील है और आबादी 2,314. इस में 160 यूरोपीय और 26 चीनी हैं. इस द्वीप का गिल्बर्ट द्वीप में 28 नवंबर 1900 को विलय हुआ था. गिल्बर्ट के 17 द्वीपों की आबादी 47 हजार 714 है, जिस में 300 यूरोपीय हैं. इस का क्षेत्रफल 102 वर्गमील है. फोनिक्स के आठ द्वीपों का क्षेत्रफल 11 वर्गमील है और 18 मार्च 1937 को गिल्बर्ट में उसका विलय हुआ था. मार्च 1938 में अमेरिका ने फोनिक्स द्वीपों के दो द्वीपों कैंटन और एंडबरी पर प्रभुसत्ता का दावा किया लेकिन 6 अप्रैल 1939 को अमेरिका और ब्रिटेन 50 वर्ष तक इन दोनों द्वीपों पर संयुक्त नियंत्रण बनाये रखने पर सहमत हो गये थे. कैंटन का इस्तेमाल कभी अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे के तौर पर हुआ करता था. फिजी और होनोलुलू से विमान यहाँ आया जाया करते थे. लेकिन जैट विमानों के युग के आने से इस अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे का इस्तेमाल अब नहीं होता. लाइन के आठ द्वीपों में प्रमुख फैनिंग, वॉशिंग्टन और क्रिसमस द्वीप हैं. फैनिंग द्वीप की आबादी 340 और क्षेत्रफल 13 वर्गमील है. वॉशिंग्टन द्वीप की आबादी 458 और क्षेत्रफल पाँच वर्गमील है. क्रिसमस द्वीप, जो लाइन द्वीप का मुख्यालय है की आबादी 674 और क्षेत्रफल 139 वर्गमील है. इन द्वीपों में कोपरा के बागान हैं. तारों का कारखाना भी यहाँ पर है.

गिल्बर्ट की आबादी में माइक्रोनेसिया संप्रदाय के अधिक लोग हैं. इन की मुख्य भाषा गिल्बर्टी और अंग्रेजी है—अंग्रेजी यहाँ की सरकारी भाषा है. सारी जनसंख्या ईसाई है जो प्रोटेस्टेंट और कैथलिक संप्रदाय में बँटी हुई है. इन द्वीपों की खोज यूरोपीय नागरिकों ने ही की. क्रिसमस द्वीप की खोज 1777 में कप्तान कुक ने की. इन के बाद कप्तान फैनिंग तथा दो अमेरिकी नागरिकों ने फैनिंग, वॉशिंग्टन आदि द्वीपों की खोज की. 1837 में यहाँ पर यूरोपीय आ कर बसने शुरू हो गये. 1850 में व्यापारी जहाज भी आने लगे. नारियल के तेल का व्यापार पहले पहल यहाँ शुरू हुआ. बाद में वह खूब फला फूला. 1850 और 1875 में लातीनी अमेरिका, फिजी, हवाई आदि में काम करने के लिए इन द्वीपों पर कुछ आतंकवादियों ने धावा बोल दिया ताकि कुछ मजदूर प्राप्त किये जा सकें. एक पड़ोसी द्वीप तुवालू (तब उस का नाम एलिस द्वीप था) से काफी संख्या में लोगों को फिजी में ले जा कर बसाया गया. 1857 में ईसाई मिशनरी भी यहाँ पर आने शुरू हुए. 1888-89 में क्रिसमस, फैनिंग और वॉशिंग्टन द्वीपों को ब्रिटेन ने अपने कब्जे में कर लिया और 1892 में उन्हें ब्रितानी संरक्षित प्रदेश घोषित किया. द्वितीय विश्वयुद्ध में जापानी फौजों ने गिल्बर्ट तथा अन्य कई द्वीपों पर हमला किया. इन द्वीपों में तरावा, ओशन, और आबेमामा शामिल थे. 1943 में तरावा की लड़ाई हुई. अमेरिका ने जापानियों को खदेड़ दिया. 1945 तक ओशन द्वीप पर जापान का अधिकार रहा. बाद में ऑस्ट्रेलियाई फौजों ने उसे भी स्वाधीन कर दिया. अगस्त 1974 में एक जनमतसंग्रह द्वारा तुवालु के लोगों ने गिल्बर्ट से अलग होने के पक्ष में अपना मत व्यक्त किया. अब तुवालू स्वाधीन देश है.
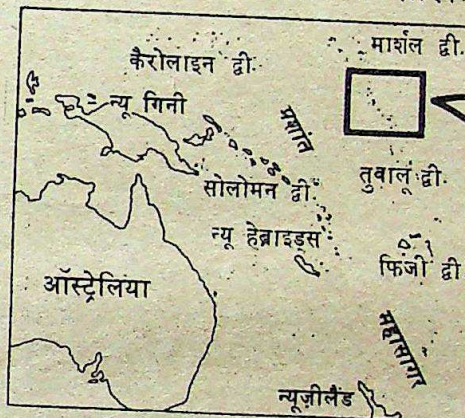
प्रशासनिक व्यवस्था : 1963 में एक सलाहकार परिषद् और 1964 में एक कार्यपालिका परिषद् की स्थापना की गयी. 1970 में गिल्बर्ट के लिए एक नया संविधान बनाया गया. मई 1974 में मंत्रिमंडलीय सरकार अस्तित्व में आयी और विधानसभा और मंत्री-परिषद् कायम की गयीं. गिल्बर्ट द्वीपों की विधानसभा में 28 निर्वाचित सदस्य तथा तीन पदेन सदस्य हैं: डिप्टी गवर्नर, अटार्नी जनरल और वित्तीय सचिव. गवर्नर की नियुक्ति ब्रिटेन की महारानी करती हैं जब कि मुख्यमंत्री देश के लिए सभी प्रशासनिक कार्यों के लिए जिम्मेदार हैं. प्रशासन के लिए गिल्बर्ट द्वीपसमूह छह जिलों में बाँटा गया है—उत्तरी, मध्य और दक्षिणी गिल्बर्ट, ओशन द्वीप, लाइन द्वीप और दक्षिण तरावा का शहरी जिला. प्रत्येक का प्रशासनिक दायित्व जिला अधिकारी पर है.

उत्पादन : यहाँ की जमीन कृषि के लिए उपयुक्त नहीं है लेकिन ओशन द्वीप और लाइन द्वीप के कुछ भागों में खेती जरूर होती है.

कैरोलाइन द्वी. मार्शल द्वी. न्यू गिनी प्रशांत सोलोमन द्वी. तुवालू द्वी. न्यू हेब्राइड्स फिजी द्वी. ऑस्ट्रेलिया महासागर न्यूज़ीलैंड
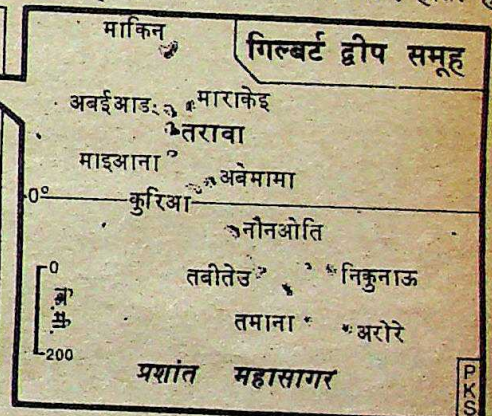
इस से गिल्बर्ट द्वीप के लोगों को भोजन प्राप्त होता है. क्रिसमस, फैनिंग और वॉशिंग्टन द्वीप में नकदी कोपरा की फसल होती है. कोपरा के निर्यात के लिए सहकारी संस्थाएँ हैं. 1974 में 12,472 टन कोपरी का उत्पादन हुआ. कोपरा के अलावा केला तथा अन्य कुछ जड़दार फल भी पैदा होते हैं. सुअर और मुर्गीपालन भी किया जाता है. इन का इस्तेमाल घरेलू खपत के लिए होता है. पिछले दिनों मछली उत्पादन की तरफ भी ध्यान दिया गया. इन द्वीपों में तूना मछली बड़े पैमाने पर पायी जाती हैं. तूना उद्योग के विकास की संभावनाओं का भी पता लगाया था. इस के अलावा क्रिसमस द्वीप में शिरंप मछली के उद्योग की स्थापना पर भी विचार किया गया. ओशन द्वीप में फासफेट का महत्त्वपूर्ण उद्योग है. 1974 में इन खानों से 5 लाख, 29 हजार, 900 टन फासफेट निकाला गया. इस खान में 500 व्यक्ति काम करते हैं. 1980 तक इस की उत्पादन क्षमता में बढ़ोतरी किये जाने की योजना है. सब से कठिन साधन यहाँ की संचार व्यवस्था है. यहाँ के प्रमुख बंदरगाहों में बेनियो, तरावा और ओशन द्वीप हैं.

स्पेन

'लोकतंत्र तो आया पर....

स्पेन में लगभग चालीस वर्ष के बाद पहली बार जनता ने नये संविधान पर अपनी स्वीकृति दे कर लोकतंत्र की दिशा में कदम बढ़ाया है. जनता ने देशव्यापी जनमतसंग्रह के माध्यम से नये संविधान पर अपनी स्वीकृति दी है. लगभग तीन वर्ष पहले जनरल फ्रांको की मृत्यु के बाद देश में संवैधानिक शासन प्रणाली लागू करने के लिए प्रयत्न आरंभ हुए थे. नये संविधान को तैयार करने में काफी लंबा समय लगा और अंततः यह जनमतसंग्रह के लिए प्रचारित किया गया.

अभी पिछले महीने के प्रथम सप्ताह में स्पेन के लोगों ने संविधान पर स्वीकृति देने के लिए अपने मताधिकार का प्रयोग किया. देश के दक्षिणी भागों में संविधान पर जनमतसंग्रह के सिलसिले में मतदाताओं की जबर्दस्त भीड़ दिखायी पड़ रही थी. लेकिन उत्तरी भागों में अभी भी 'एटा' नामक छापामार दस्ता शासन के विरुद्ध संघर्ष कर रहा है. वहाँ संविधान के विरोध के कारण लोगों में कुछ अधिक उत्साह दिखायी नहीं पड़ रहा था. राजधानी माद्रिद में मौसम खराब होने के बावजूद लोग अपेक्षया अधिक संख्या में मतदान केंद्रों पर दिखायी पड़े. देश के जिस भाग में छापामारों की लड़ाई जारी है, वहाँ तीन पुलिस वालों की हत्या को छोड़ कर बाकी भागों में यह ऐतिहासिक जनमतसंग्रह शांतिपूर्वक समाप्त हो गया.

प्रधानमंत्री श्री अदाल्फो सुआरेज़ ने मतदान के तुरंत बाद कहा था कि मुझे पूर्ण विश्वास है कि देश के लोग नये संविधान को स्वीकार कर लेंगे. प्रतिपक्षी दल सोशलिस्ट पार्टी के नेता पी. गोंजालेज ने कहा है कि यह संविधान काफी लंबे समय के लिए है. मतदान से पहले स्पेन के प्रायः सभी दल संविधान को स्वीकार करने के पक्ष में दिखायी पड़ रहे थे. केवल दक्षिण-पंथी और वामपंथी उग्रवादी संविधान को अस्वीकार करने के पक्ष में नहीं थे.

सम्राट हुआन कारलोस: साहसपूर्ण स्थिति

इस जनमतसंग्रह में 25,609,222 स्पानी लोगों को मतदान का अधिकार था. अट्ठारह-बीस वर्षों के इतिहास में पहली बार लोगों को मताधिकार प्राप्त हुआ. स्पेन का पहला संविधान 1812 में तैयार हुआ था और उस के बाद यह देश का सातवाँ संविधान है.

संसद् द्वारा स्वीकृति : जनमत संग्रह से पहले संविधान का अंतिम मसौदा देश की संसद् में प्रस्तुत किया गया जिसे मान्यता प्राप्त हो गयी थी. संविधान के अंतर्गत देश की प्रभुसत्ता जनता में निहित है और संसदीय लोकतंत्र के अंतर्गत देश का शासन चलाया जायेगा. संसद् के दोनों सदनों ने बहुमत से इस पर अपनी स्वीकृति प्रदान की थी.

स्पेन पर लगभग 40 वर्ष तक शासन करने के बाद नवंबर 1975 में जनरल फ्रांको का देहांत हुआ था. उन का स्थान सम्राट हुआन कारलोस ने लिया था जिन्होंने शासनभार सँभालते ही फ्रांको के शासनकाल के प्रधानमंत्री को बर्खास्त कर दिया था. फिर 15 जून 1977 को स्पेन में नयी संसद् का चुनाव हुआ. 40 वर्ष बाद यह देश में प्रथम स्वतंत्र चुनाव था. इस प्रकार स्पेन में लोकतांत्रिक प्रणाली का श्रीगणेश हुआ.

आर्थिक और राजनैतिक स्थिति : फ्रांको के शासन की समाप्ति पर स्पेन में आर्थिक मंदी का दौर आया. तेल संकट का भी स्पेन पर प्रभाव पड़ा और मुद्रास्फीति 26 प्रतिशत तक पहुँच गयी थी. बेरोज़गारी भी काफी बढ़ी. फ्रांको के बाद की राष्ट्रीय सरकार को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा. उधर तानाशाही से लोकतंत्र तक बढ़ने के संक्रांतिकाल में अनेक राजनैतिक समस्याएँ भी उभर कर सामने आयीं. वामपंथियों की शक्ति का उदय हुआ और उन्होंने वर्त्तमान सरकार का विरोध करना शुरू कर दिया जिस में कुछ आतंकवादी तरीके भी अपनाये गये. देश के उत्तर में आज भी आतंकवादी कुछ इलाकों को पृथक् करने के लिए आंदोलन कर रहे हैं. जब प्रधानमंत्री सुआरेज़ ने कम्युनिस्ट पार्टी को कानूनी तौर पर मान्यता दे दी तो सेना में भी उन का विरोध हुआ. राजनैतिक क्षेत्रों में तो यह विरोध काफी उग्र हो गया था. अभी भी स्पेन में इस बात को ले कर सरकार की आलोचना की जा रही है कि उस ने वामपंथियों को संवैधानिक मान्यता प्रदान कर दी है. लोकतांत्रिक व्यवस्था आने पर वामपंथियों ने सरकार को यह आश्वासन दिया बताते हैं कि स्पेन की राजनीति में उस प्रकार के उग्रवादी क्रांतिकारी तत्त्वों का समावेश नहीं होने देंगे जिन के कारण 1936 से '39 तक गृहयुद्ध हुआ था.

चाहे जो भी है स्पेन ने संसदीय लोकतंत्र अपना कर शांतिपूर्ण तरीकों से परिवर्त्तन लाने का एक विवेकसम्मत रास्ता अपनाया है. नये संविधान के अंतर्गत सम्राट हुआन कारलोस जिन्हें जनरल फ्रांको ने अपनी मृत्यु से पहले सन् 1975 में सत्ता सौंपी थी, प्रधानमंत्री नियुक्त कर सकेंगे लेकिन इस के लिए उन्हें संसद् की स्वीकृति लेनी होगी. यद्यपि स्पेन में अभी भी संसदीय ढंग का
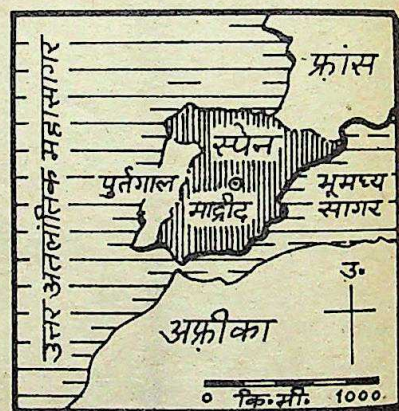
राजतंत्र बना रहेगा लेकिन सम्राट कारलोस के अधिकार बहुत सीमित कर दिये गये हैं. वह प्रशासन में हस्तक्षेप नहीं कर सकेंगे. जनमतसंग्रह के परिणाम आने पर अब यह प्रायः स्पष्ट ही है कि सत्ताधारी दल 'यूनियन ऑफ डेमोक्रेटिक सेंटर पार्टी' आम चुनावों में स्पष्ट बहुमत प्राप्त कर लेगा. प्रमुख प्रतिपक्षी दलों में सोशलिस्ट वर्कर पार्टी भी है जिस का अनेक क्षेत्रों में प्रभाव है. लेकिन स्पेन में सेना का अभी भी महत्त्व है. कोई भी पार्टी सेना की अनदेखी नहीं कर सकती. सेना पर देश की रक्षा करने की संवैधानिक जिम्मेदारी तो है ही, साथ ही प्रादेशिक अखंडता की रक्षा के नाते राजनैतिक संस्थाओं पर भी सेना का नियंत्रण है. यद्यपि नये संविधान में धर्म के शासन पर प्रभाव की परंपरा को समाप्त कर दिया गया है लेकिन सभी लोगों को धार्मिक स्वतंत्रता की गारंटी दी गयी है. यद्यपि स्पेन अब लोकतांत्रिक मार्ग पर अग्रसर है तथापि उसे पूर्ण लोकतंत्र प्राप्त करने के लिए अनेक बाधाओं को दूर करना है.

ईरान

विकल्प की खोज

लगभग एक साल पूर्व 59 वर्षीय शाह मुहम्मद रज़ा पहलवी के शासन के विरुद्ध जो विद्रोह शुरू हुआ था वह दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है. यद्यपि ईरान के शाह ने इस एक साल में सरकारें बदलीं हैं, अपने भूतपूर्व समर्थकों को जेल भेजे जाने के विरुद्ध आवाज़ तक नहीं उठायी, अपनी संपत्ति की जाँच का आदेश दे दिया और नेशनल पार्टी के नेता से असैनिक सरकार बनाने का अनुरोध किया, बावजूद इस के शाह के प्रति किसी प्रकार की सद्भावना के संकेत अभी तक नहीं मिले हैं. मोहर्रम के दिन सैनिक सड़कों से हटा लिये गये थे. लेकिन मोहर्रम के जुलूस ने भी शाह विरोधी रूप अख्तियार कर लिया था. जब मोहर्रम के बाद सैनिक सड़कों पर पुनः आ गये तो शाह विरोधी मुहिम पहले की तरह ही तेज हो गयी. इस मुहिम का प्रसार दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है. शायद ही कोई दिन ऐसा बीतता हो जब शाह विरोधी संघर्षों में बहुत से व्यक्तियों की जानें न जाती हों. मरने वालों में सभी उम्र के लोग होते हैं.

ईरान के शाह के चार लाख तीस हजार सैनिक उन की सत्ता को बचाने के लिए बेशक अभी तक वफादार हैं लेकिन कुछ लोगों का यह मानना है कि जहाँ देश दो वर्गों—शाह भक्त और शाह विरोधी—में बँट गया है तो वहाँ शाह विरोधी विचारों वाले लोग सेना में न हों ऐसा नहीं हो सकता. संभव है शाह विरोधी सेना अधिकारी अपने लिए भीतर ही भीतर समर्थन की खोज कर रहे हों और समर्थन मिलने के बाद वे निर्णायक प्रहार करें. पिछले दिनों जापानी समाचारपत्रों ने ईरान के शाह और उन के परिवार के सदस्यों के देश छोड़ जाने के समाचारों को सुर्खी दी थी लेकिन बाद में इन समाचारों का खंडन किया गया : उस तरह की सुर्खी के पीछे भी सेना में शाह विरोधी सैनिकों की खबरें थीं.

गतिरोध तोड़ने का प्रयास : शाह अभी तक ईरान में बने हुए हैं और अपनी गद्दी को बचाने के लिए कई तरह के समझौतों और जोड़तोड़ पर विचार कर रहे हैं. पिछले दिनों एक भूतपूर्व प्रधानमंत्री अली अमीनी से भी उन्होंने गतिरोध को सुलझाने के लिए सहयोग की माँग करते हुए उन्हें असैनिक सरकार बनाने के लिए कहा. उन से प्रतिपक्षी नेशनल पार्टी का सहयोग प्राप्त करने का भी अनुरोध किया. जब उन से यह बात हो रही थी तो इस तरह के समाचार आये कि नेशनल फ्रंट के 73 वर्षीय नेता डॉ. करीम संजाबी को पुलिस किसी गुप्त स्थान पर ले गयी है. इस से शाह विरोधियों का आक्रोश और बढ़ा. लेकिन बाद में इस बात की लगभग पुष्टि हो गयी कि डॉ. संजाबी और अली अमीनी शाह के अनुरोध पर मिले थे. अली अमीनी ने शाह के प्रस्ताव से उन्हें अवगत कराया. डॉ. संजाबी ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि जब तक शाह सत्ता से नहीं हटते तब तक उन से किसी तरह का समझौता संभव नहीं है. अब हालत यह होती जा रही है कि तेल उत्पादन करने वाला दुनिया का दूसरा बड़ा देश ईरान तेल का आयात कर रहा है ताकि सत्ता की डगमगाती हुई डोर को टूटने से बचा सके. लेकिन यह बचाव का दौर कब तक चलेगा यह ज़रूर एक महत्त्वपूर्ण सवाल है.

कार्टर का गुप्त ज्ञापन : कुछ लोगों का ख्याल है कि विदेशी शक्तियाँ भी ईरान के शाह की मदद कर रही हैं. अमेरिकी राष्ट्रपति जिम्मी कार्टर के वक्तव्य का इस संदर्भ में हवाला दिया जाता है. लेकिन पिछले दिनों ही इस तरह के भी समाचार आये थे कि अमेरिका कुछ शाह विरोधी लोगों से संपर्क कायम किये हुए है. उसी खबर से तब इस तरह की खबरें भी सामने आयी हैं कि राष्ट्रपति कार्टर ने एक हस्तलिखित ज्ञापन में अपने देश की राजनैतिक गुप्तचरी पर असंतोष व्यक्त किया था. इस से यह बात तो साबित होती है कि बेशक ऊपर से कार्टर प्रशासन ईरान के शाह के साथ 'मौखिक सहानुभूति' बनाये हुए हैं लेकिन भीतर ही भीतर शाह विरोधियों से भी संपर्क रखे हुए हैं.

सोवियत स्थिति : लेकिन सोवियत संघ की भूमिका अभी तकबड़ी ही संयत और संतुलित है. राष्ट्रपति लियोनद ब्रेज़नेव ने ईरान की घटनाओं को 'साम्राज्यवादी दखलंदाज़ी' कहा है. उन का मानना है कि इस असंतोष में सोवियत संघ का कोई हाथ नहीं. ईरानी जनता अपने अधिकारों के लिए लड़ रही है. विदेशियों को उस में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए. लेकिन अमेरिका तथा अन्य पश्चिमी देशों के लिए शायद चिंता का कारण ईरान और सोवियत संघ की 1200 मील लंबी सीमा है. द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद दो बार सोवियत संघ उत्तरी ईरान की सीमा के कुछ भागों पर कब्जा कर चुका है.

सोवियत संघ ने शाह और अमेरिका दोनों को आश्वासन दिलाया है कि वर्त्तमान असंतोष में उस का कहीं भी कोई भूमिका नहीं है. लेकिन अमेरिकी विशेषज्ञ कुछ दुविधा में हैं. अमेरिका और ईरान के बेहतर संबंध रहे हैं. जहाँ प्रशासन बाहर से ईरान के साथ मधुर संबंध बनाये हुए है वहाँ अमेरिकी गुप्तचर विभाग सी.आई.ए. के ईरान की गुप्तचर संस्था सावाक के साथ गहरे संबंध हैं. लेकिन वर्त्तमान स्थितियों से कुछ इस तरह का वातावरण बन गया है कि वॉशिंगटन जो समाचार पहुँचते हैं वे भ्रामक होते हैं वास्तविक नहीं. इसी से स्थिति उलझावपूर्ण होती जा रही है. लेकिन अमेरिकी प्रशासन
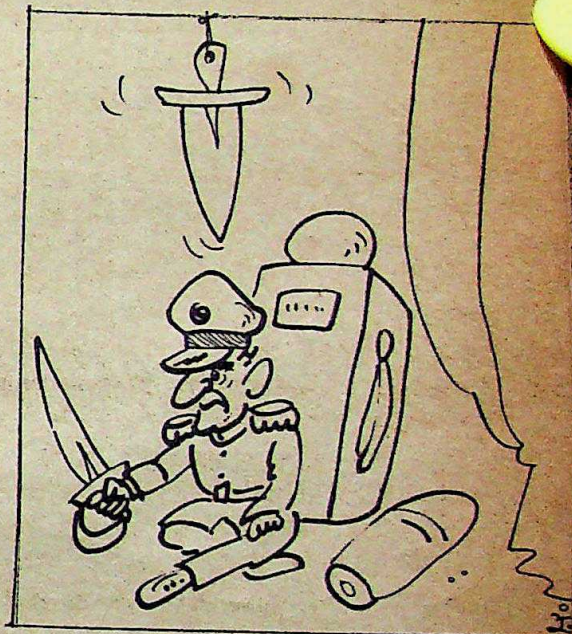
का शाह विरोधियों से संपर्क का तात्पर्य शाह द्वारा एक और मित्र खोना है और वह भी बहुत महत्त्वपूर्ण. प्रेक्षकों का अनुमान है कि यदि शाह विरोधी स्थिति इसी तरह खिंचती चली गयी तो शाह या तो स्वयं सत्ता की बागडोर अपने प्रतिपक्षी विरोधियों को सौंप देंगे या असंतुष्ट सैनिक (जिन की संख्या अब हजारों में बतायी जाती है) शाह को सत्ता हस्तांतरण करने के लिए मजबूर कर देंगे. इस समय हालात दिनोंदिन निस्संदेह शाह विरोधी होते जा रहे हैं.

मॉरिशस

अस्थिरता तो है

दिसंबर 1976 के चुनाव में सत्तारूढ़ लेबर पार्टी का जिस तरह बहुमत घटा था उस से उत्पन्न होने वाले अस्थिरता अभी भी कमोबेश देश में बनी हुई है. बेशक 76 वर्षीय प्रधानमंत्री डॉ. शिवसागर रामगुलाम अपने अनुभव और राजनैतिक और राजनयिक सूझबूझ के आधार पर अभी तक अपनी मिलीजुली सरकार का नेतृत्व कर रहे हैं लेकिन पार्टी के भीतर और बाहर सरकार के विरुद्ध आक्रोश की खबरें भी यदाकदा सुनने में आती रहती हैं. इस तर्क में भी खासा दम है कि देश की स्वाधीनता के समय 'चचा' (मॉरिशस में डॉ. शिवसागर रामगुलाम को सम्मानपूर्वक 'चचा' कहा जाता है) की स्थिति व्यक्तिगत तौर पर

बेशक वैसी ही है, राजनैतिक तौर पर निस्संदेह उस में ह्रास हुआ है. खास तौर पर पार्टी के वे लोग जो स्वाधीनता के बाद से सक्रिय हुए हैं प्रधानमंत्री की कई नीतियों से इत्तिफाक नहीं रखते. इस से पुरानों और नयों की सोच से उत्पन्न टकराहट के स्वर सुनने को मिलते हैं.

शासक दल में युवावर्ग : पिछले दिनों लेबर पार्टी के भीतर ही एक युवावर्ग का उदय हुआ जिसके नेता **हरीश बुद्धू** थे. उन्होंने प्रधानमंत्री की नीतियों का मोटे तौर पर समर्थन करते हुए कुछ और क्रांतिकारी कदम उठाने की सलाह दी थी. इस में कुछ क़दमों से हिंदीभाषी या अप्रवासी भारतीयों की भावनाओं को ठेस पहुँच सकती थी. जहाँ प्रधानमंत्री उन के कुछ विकासकार्यों संबंधी सुझावों से सहमत थे वहाँ अप्रवासी भारतीयों संबंधी सुझावों पर मतभेद बने रहे. 'चचा' जानते हैं कि उन की सत्ता का आधार अप्रवासी भारतीय ही हैं, लिहाज़ा उन के विरुद्ध वे ऐसा कोई भी आचरण नहीं करेंगे जिस से कि उन की मूल भावनाओं को ठेस पहुँचे. इस बात को मॉरिशस के गैरभारतीय यानी क्रियोल, चीनी, यूरोपीय तथा अन्य संप्रदायों के लोग बखूबी जानते हैं. शायद यही कारण है कि पिछले दिनों विदेशमंत्री सर हेरल्ड वाल्टर्स ने मंत्रिमंडल से अपना इस्तीफा देने के बाद इसलिए वापस ले लिया कि वह लेबर पार्टी के भीतर रहते हुए भी अपने आप को बेगाना सा पाने लगे थे. कुछ राजनयिक प्रेक्षकों का यह भी ख्याल है कि लेबर पार्टी के इन युवाओं को खेर जगतसिंह और सत्यकाम बुलेल का समर्थन प्राप्त है और उन की शह पर ही यह युवा संगठन एक समानांतर बल के गठन की इच्छा रखता है. लेकिन मंत्रिमंडल के एक वरिष्ठ सदस्य वीरस्वामी रिंगाडू तथा कुछ अन्य व्यक्तियों की मध्यस्थता से पुरानों और नयों में मतभेदों की खाई अधिक गहराने नहीं पायी.

आश्वस्त प्रधानमंत्री : पिछले दिनों लेबर पार्टी के ही एक सदस्य और भूतपूर्व परिवहन आयुक्त **दीपचंद बिहारी** ने दिल्ली में **दिनमान** को बताया कि 'चचा' की सरकार को किसी प्रकार का खतरा नहीं है. यह इसी बात से स्पष्ट हो जाता है कि दो मतों के बहुमत (70 में से 36 का समर्थन प्राप्त है) से वह बिना किसी खतरे के पिछले दो साल से सत्ता में बने हुए हैं. उन का यह भी विचार था कि यह सरकार पूरे पाँच साल तक सत्ता में रहेगी और निश्चित समय पर 1981 में ही चुनाव होंगे. कम बहुमत होने के बावजूद मॉरिशस के विकासकार्यों में किसी तरह की शिथिलता नहीं आयी है और निस्संदेह आज से दो साल पहले लेबर पार्टी की प्रतिमा को जो ठेस पहुँची थी उस में सुधार हुआ है. यदि आज चुनाव होते हैं तो लेबर पार्टी को पहले की अपेक्षा अधिक स्थान मिल सकते हैं. इस का प्रमुख कारण 'चचा' का अपना व्यक्तित्व है और देशवासियों के प्रति उन की पूर्ण आस्था अभीष्ट है.

आरोप की जाँच : 1976 के चुनाव में प्रतिपक्षी एम. एम. एम. (मॉरिशस युयुत्सु आंदोलन) ने लेबर पार्टी के कई नेताओं को मारी मात दी थी लेकिन पिछले दो वर्ष से वह ज़िम्मेदार प्रतिपक्ष की भूमिका निभा नहीं पाये. उन के ही एक नेता ने इस प्रकार के समाचार प्रचारित किये थे कि शासक वर्ग के कुछ लोग उन की हत्या का षड्यंत्र रच रहे हैं लेकिन जब प्रधानमंत्री ने उन के इस आरोप की जाँच करवायी तो वे निराधार साबित हुए. इस से केवल प्रतिपक्षी पार्टी के नेता की ही नहीं बल्कि पूरी पार्टी की नीतियों की खासी आलोचना हुई जिस के फलस्वरूप अगले चुनावों में एम. एम. एम. ने जो सत्ता के सपने देखे थे वे इस समय बिखरे हुए से दीखते हैं.

अटकलें ही अटकलें : श्री बिहारी के अनुसार लेबर पार्टी ने इन दो सालों में बहुत कुछ सीखा है. स्थान खोने के कारणों का जायज़ा लिया है और जिन मुद्दों और जिन लोगों से वे हारे थे उन कारणों को दूर करने के लिए निश्चित कदम उठाये हैं. अल्पसंख्यकों का डॉ. रामगुलाम की सरकार पूर्ण सहयोग प्राप्त कर रही है और उन की उन शिकायतों को दूर करने के प्रयास किये जा रहे हैं जो पिछले आम चुनाव में उन के रोष का कारण थे. लेकिन प्रेक्षक इस के साथ एक और बात जोड़ते हैं : वह है 'चचा' की बढ़ती हुई उम्र. हालाँकि उन के उत्तराधिकारी के तौर पर वीरस्वामी रिंगाडू का नाम लिया जाता है लेकिन वे सभी अप्रवासी भारतीयों को स्वीकार हों इस में संदेह है. स्वीकार केवल बुलेल हो सकते हैं लेकिन लेबर पार्टी के युवाओं को समर्थन दे कर उन्होंने अपनी प्रतिमा को खंडित कर लिया है. इस के साथ मॉरिशस में विधिवत् गवर्नर जनरल की नियुक्ति अभी होनी है. सर उस्मान ने पिछले वर्ष अक्तूबर में अपने पद से अवकाश ग्रहण कर लिया था. उन के स्थान पर दयेंद्रनाथ बड़ेचौबे कार्यकारी गवर्नर जनरल के पद पर आरूढ़ हैं लेकिन अभी भी बाकायदा गवर्नर जनरल की तलाश है. कुछ समय पूर्व यह भी चर्चा थी कि सर शिवसागर रामगुलाम देश के राष्ट्रपति (गवर्नर जनरल के स्थान पर राष्ट्रपति पद की योजना थी) बनेंगे और प्रधानमंत्री रिंगाडू बनाये जायेंगे. लेकिन रिंगाडू के गंभीर रूप से अस्वस्थ हो जाने से तब यह व्यवस्था वास्तविक शक्ल अख्तियार नहीं कर सकी थी.

अमेरिका-चीन

राजनयिक संबंधों की स्थापना

15 दिसंबर को अमेरिकी राष्ट्रपति जिम्मी कार्टर ने 1 जनवरी 1979 से चीन के साथ राजनयिक संबंध स्थापित करने की घोषणा की. इसी तरह की घोषणा पीकिंग से भी की गयी. राजनयिक संबंधों की स्थापना से दोनों देशों के बीच व्याप्त कटुता पूरी तरह से दूर होने की संभावना व्यक्त की जा रही है. यह कटुता 1950 के कोरिया युद्ध के बाद से दोनों देशों के बीच चली आ रही है. यद्यपि 1972 में तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन ने चीन की यात्रा कर दोनों देशों के बीच सद्भावनापूर्ण वातावरण पैदा करने का प्रयास किया था तथापि जिस तरह का सौहार्द्र दोनों देशों में होना चाहिए था वह अभी तक नहीं बन सका. इस का प्रमुख कारण शायद ताइवान था. अब राष्ट्रपति कार्टर ने अपने वक्तव्य में यह मान लिया है कि चीन केवल एक है और उस की एक सरकार है. इस वास्तविकता को मान लेने के बाद निस्संदेह अमेरिका की दृष्टि में ताइवान का अस्तित्व नहीं रहता. इस के साथ ही कार्टर यह जोड़ते गये कि अमेरिका गैरसरकारी तौर पर ताइवान से संबंध रख सकता है. ये क्षेत्र सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि हो सकते हैं.

लेकिन यह बात अभी स्पष्ट नहीं हुई है कि अमेरिका ताइवान को सैनिक और आर्थिक सहायता जारी रखेगा या नहीं. लगता है कि चीन ने अमेरिका को आश्वासन दिलाया है कि वह ताइवान को जबरन चीन में सम्मिलित करने की कोशिश नहीं करेगा. उस के अलग अस्तित्व को बना रहने दिया जायेगा. कब तक, यह स्पष्ट नहीं है. चीन की निस्संदेह अपनी अहमियत रही है. अपने बलबूते पर उस ने विभिन्न क्षेत्रों में जिस प्रकार प्रगति की है उस पर सभी देशों की दृष्टि रही है. 1972 में निक्सन ने चीन की यात्रा कर उस के साथ इस अलगाव को दूर करने की कोशिश की. उस के बाद भी अमेरिका तथा अन्य पश्चिमी देशों के
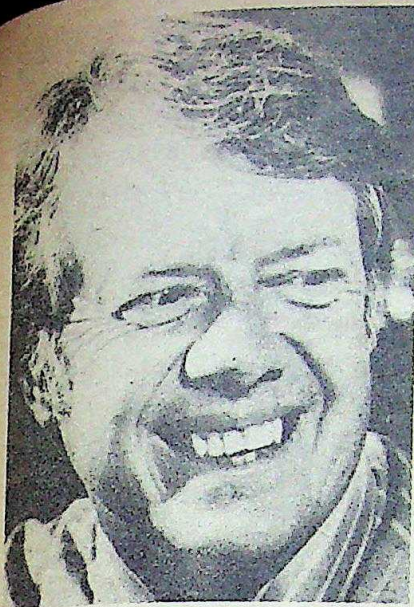
जिम्मी कार्टर : वास्तविक दृष्टिकोण

नेता चीन की यात्रा करते रहे हैं. कार्टर प्रशासन के आंतरिक सुरक्षा सलाहकार ब्रिजिंस्की को चीन का सब से बड़ा समर्थक माना जाता है. कुछ लोगों का यह भी ख्याल है कि जिस प्रकार भूतपूर्व विदेशमंत्री डॉ. हेनरी कीसिंगर कार्टर प्रशासन के निकट आये हैं, नामुमकिन नहीं कि इस फैसले को लेने में उन्होंने योगदान दिया हो. डॉ. कीसिंगर ने ही 1971 में पीकिङ की यात्रा कर निक्सन की राजकीय यात्रा की भूमि तैयार की थी.

कार्टर का योगदान: कुछ प्रेक्षक इस कदम को कार्टर का जुआ कहते हैं. कार्टर ने देश और विदेश में अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए बहुत बड़ा जुआ खेला है. यद्यपि अमेरिकी चुनाव में विदेशी नीतियाँ अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा नहीं करतीं तथापि इस तरह की घटनाएँ मतदाताओं पर अपनी अटूट छाप तो छोड़ती ही हैं. कार्टर सत्ता में आने के बाद निरंतर कठिनाइयों से जूझते रहे हैं और जूझ रहे हैं. वह अपनी स्थिति बेहतर बनाने के लिए भरसक प्रयासरत है. पश्चिमेशिया में शांति स्थापना करने के लिए भी उन्होंने मेनाहिम बेगिन और अनवर सादात की वार्त्ता कैंप डेविड में आयोजित की थी. यह बातचीत सफल भी रही लेकिन शांति समझौते पर हस्ताक्षर अभी तक नहीं हो सके. उस के बाद उन्होंने डगमगाते डॉलर को सँभालने के लिए कुछ क्रांतिकारी उपाय किये थे. उन का तात्कालिक प्रभाव तो पड़ा. लेकिन एक बार फिर डॉलर डोलता नजर आ रहा है. सामरिक अस्त्रों पर रोक लगाने संबंधी वार्त्ता (साल्ट) को सफल बनाने में भी वह जुटे हुए हैं लेकिन अभी तक सोवियत संघ से उन्हें उस तरह का सहयोग नहीं मिल पा रहा है जो निक्सन और फोर्ड को 'साल्ट' के समझौते के दौरान प्राप्त हुआ था. ऊर्जा विधेयक पारित हो चुका है लेकिन तेल निर्यात करने वाले देशों (ओपेक) द्वारा तेल के भाव

ताइवान

अस्तित्व की खोज

समूचे चीन पर प्रभुसत्ता का दावा कायम रखते हुए ताइवान सरकार का शासन ताइवान और पैंगू द्वीपसमूह तक सीमित है. यह तटवर्ती द्वीपसमूह चीन की मुख्य भूमि से कोई 130-200 किलोमीटर (80-125 मील) दूर है.

ताइवान का प्रशासन 'गणराज्य सरकार' चलाती है. इसे मुख्य भूमि के फूकिन प्रांत का एक सबडिविज़न माना जाता है. ताइवान जिसे फारमोसा भी कहते हैं 305 किलोमीटर लंबा और 100-145 किलोमीटर चौड़ा है. उत्तर और दक्षिण में पर्वतमालाएँ हैं. इन पर्वतमालाओं में यूशान सब से ऊँची चोटी है. ताइवान की कुल आबादी 1 करोड़ 60 लाख है. बताया जाता है कि ताइवान विश्व का सब से घनी आबादी वाला देश है.

संपूर्ण चीन सरकार होने के दावे के साथ ताइवान की सरकार चीन की मुख्य भूमि की सरकार थी. लेकिन बाद में यह मुख्य भूमि से ताइवान में आ गयी. 1947 के संविधान के अनुसार ताइवान की केंद्रीय सत्ता राष्ट्रीय सभा में निहित है. यह राष्ट्रीय सभा 1947 में चुनावों द्वारा कायम हुई थी. राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति चुनने के अलावा राष्ट्रीय सभा को संविधान में संशोधन करने का भी अधिकार है. राष्ट्रपति प्रबंध, विधानसभा, न्यायपालिका आदि जैसी प्रशासनिक शाखाओं का सर्वोच्च अधिकारी होता है. वह प्रधानमंत्री की नियुक्ति करता है और नीति तथा प्रशासन के प्रति पूर्ण रूप से जिम्मेदार होता है.

राजनैतिक परिस्थितियाँ : च्याङ काइ शेक सन् 1927 से चीन गणराज्य के अध्यक्ष चले आ रहे थे. 5 अप्रैल 1975 को उन की मृत्यु हुई और उपराष्ट्रपति येन चाए कान उन के उत्तराधिकारी बने. बताया जाता है ताइवान की आर्थिक सफलता में उन का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा. उपराष्ट्रपति का पद अभी भी खाली है. इस समय च्याङ काइ शेक के सब से बड़े पुत्र च्याङ जिङ कू देश के प्रधानमंत्री हैं. वह सत्ताधारी दल कौमिंताङ के अध्यक्ष भी हैं. दरअसल अपने पिता की मृत्यु के बाद ताइवान का शासन भार आज उन्हीं पर है. वह अपने स्वर्गीय पिता की उस नीति पर चल रहे हैं जिस के अनुसार एक न एक दिन समूचे चीन को कौमिंताङ के अधीन ले आया जायेगा. यह च्याङ काइ शेक की कम्युनिस्ट विरोधी नीति का एक महत्त्वपूर्ण अंग है.

अर्थव्यवस्था : पिछले 20 वर्षों में ताइवान कृषिप्रधान देश से एक भरा पूरा औद्योगिक देश बन गया है. तेज़ी से औद्योगीकरण के कारण आज ताइवान की चीजों का औद्योगिक देशों में भी महत्त्व है. विदेशी पूँजी विनियोग में सब से अधिक पूँजी अमेरिका की है और इस के बाद जापान का स्थान है. इन दोनों देशों ने ताइवान को आधुनिकतम औद्योगिक देश बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है. जहाँ तक अन्य देशों के साथ संबंधों का प्रश्न है 1949 में चीन की मुख्य भूमि से निकाले जाने के बाद से ही इस गणराज्य सरकार ने अपने को चीन का वैध शासक माना है. पिछले काफी वर्षों से पूर्वेशिया सहित (कोरिया गणराज्य को छोड़ कर) अनेक एशियाई देशों ने इस गणराज्य सरकार से अपने राजनैतिक संबंध तोड़ कर पीकिङ सरकार से स्थापित कर लिए हैं. 25 अक्तूबर 1971 को ताइवान की संयुक्त-राष्ट्र सदस्यता भी खत्म कर दी गयी थी और उस के स्थान पर चीन को विश्व संस्था का सदस्य बना लिया गया था. लेकिन ताइवान विश्व बैंक, एशियाई विकास में बैंक आदि जैसी अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं का आज भी सदस्य है. गैरसरकारी स्तर की अंतरराष्ट्रीय वार्त्ता में आज भी ताइवान महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है.

आत्मनिर्भरता की ओर : कंबोदिया और दक्षिण वीएतनाम के पतन और च्याङ काइ शेक की मृत्यु के बाद ताइवान के 1 करोड़ 60 लाख लोगों के सामने जीवनमरण का प्रश्न उपस्थित हो गया. कुल मिला कर इस देश के सामने स्थिति आ गयी कि या तो वह अपने को पूर्ण आत्मनिर्भर स्वतंत्र देश बनाये अथवा कम्युनिस्ट चीन के आगे घुटने टेक दे. लेकिन ताइवान के नेताओं ने आज तक भी कम्युनिस्ट चीन के सामने घुटने टेकने की बात नहीं सोची है. जब राष्ट्रपति फोर्ड की ताइवान की यात्रा की घोषणा की गयी थी उसे आशंका थी कि वॉशिंगटन के साथ उस की सन् 1954 की परस्पर सुरक्षा संधि समाप्त हो रही है. ऐसा होने पर भी ताइवान ने कम्युनिस्ट चीन के प्रति अपनी नीति में कोई परिवर्तन नहीं किया. ताइवान सरकार को पिछले कई वर्षों से आशंका थी कि अमेरिका कम्युनिस्ट चीन के साथ राजनयिक संबंध स्थापित कर के उस के साथ अपने संबंध तोड़ लेगा. पिछले पच्चीस से भी अधिक वर्षों से ताइवान अपने लिए उत्पन्न अनेक संकटों से लड़ रहा है. 1949 में समूचे चीन की सरकार कही जाने वाली इस ताइवान सरकार को मुख्य भूमि से निकाला गया. 1971 में संयुक्त राष्ट्र की उस की सदस्यता समाप्त की गयी और 1972 में राष्ट्रपति निक्सन की पीकिङ यात्रा हुई जिस से प्रायः यह निश्चित था कि अमेरिका ताइवान से राजनयिक संबंध तोड़ लेगा. लेकिन ताइवान आज भी इस बात के लिए कृतसंकल्प है कि अमेरिका के उस के साथ संबंध पूर्ण रूप से विच्छेद करते रहने पर भी वह अपना अस्तित्व बनाये रखेगा.

में बढ़ोत्तरी करने का प्रभाव अमेरिका की अर्थव्यवस्था पर निस्संदेह अगले वर्ष और पड़ने की आशा है.

राजनयिक मान्यता का असर यह तो होगा ही कि अमेरिका और चीन के व्यापारिक संबंधों में बढ़ोत्तरी होगी और अमेरिकी माल चीन के बाजारों में बढ़ेगा. चीन की भी इधर पश्चिमी देशों में रुचि बढ़ी है. लेकिन भूतपूर्व अमेरिकी वित्तमंत्री डेविड केनेडी का मानना है कि विदेशमंत्री साइरस वैंस ने उन्हें ताइवान के साथ व्यापारिक संबंध बनाये रखने का आश्वासन दिलाया है. उन के अनुसार अब दोनों चीन के साथ अमेरिकी व्यापारिक संबंध खूब फल फूल सकते हैं और अमेरिकी वस्तुएँ बड़े पैमाने पर ताइवान और मुख्य चीन में खपायी जा सकती हैं. ताइवान अमेरिका के आठ प्रमुख व्यापारिक सहयोगियों में माना जाता है. 7 अरब 50 करोड़ डॉलर का व्यापार दोनों ओर से होता है. अगले पाँच वर्षों में ताइवान अमेरिका से 20 अरब डॉलर का सामान खरीदने की इच्छा रखता है. लेकिन कुछ लोगों का यह भी मानना है कि क्या चीन ताइवान के साथ इन बढ़ते हुए व्यापारिक संबंधों के प्रसार की छूट देगा.

प्रतिक्रियाएँ: चीन के साथ राजनयिक संबंधों की स्थापना के बारे में अमेरिका भर में कई तरह की प्रतिक्रियाएँ हुई हैं—अनुकूल और प्रतिकूल दोनों. जहाँ डेमोक्रेटिक पार्टी के नेताओं ने इस घोषणा का आम तौर पर स्वागत किया है वहाँ रिपब्लिकन पार्टी के नेताओं ने इस की आलोचना की है. डेमोक्रेटिक पार्टी के सेनेटर रॉबर्ट बेयर्ड ने राजनयिक संबंधों की स्थापना को स्वाभाविक संबंधों की प्रक्रिया बताया है. इस से हमारे राष्ट्रीय हितों में बढ़ोत्तरी होगी और विश्व शांति में स्थायित्व आयेगा. सेनेटर एडवर्ड केनेडी ने कार्टर के इस कदम को शांति और प्रगति का सूचक बताया है जब कि सेनेटर हैरिसन विलियम्स के अनुसार इस कदम से दोनों देशों के बीच व्यापारिक संभावनाएँ बढ़ेंगी, क्योंकि तब ताइवान की बाधा नहीं रहेगी. सेनेटर फ्रैंक चर्च के अनुसार इस कदम से अमेरिकी विदेशनीति एशिया की वास्तविकताओं को अंततः समझने में सफल हुई. लेकिन सेनेटर जॉन ग्लेन और रिचर्ड स्टोन ने इस की आलोचना करते हुए कहा है कि इस महत्त्वपूर्ण फैसले को करने से पूर्व कांग्रेस (संसद्) से परामर्श किया जाना चाहिए था. ताइवान के साथ मैत्री समझौता बिना कांग्रेस के अनुमोदन के भंग नहीं किया जा सकता. सब से कटु आलोचना रिपब्लिकन पार्टी के सेनेटर बैरी गोल्डवाटर की थी. उन्होंने राष्ट्रपति कार्टर के वक्तव्य को एक घिनौनी कार्रवाई बताया. उन के अनुसार यह कार्रवाई ताइवान की 'पीठ में छुरा घोंपने' जैसी है. इसी वर्ष उन्होंने एक प्रस्ताव सेनेट में रखा था जिस में किसी भी समझौते को भंग करने से पूर्व सेनेट के अनुमोदन की व्यवस्था की माँग की गयी थी. लेकिन तब इस प्रस्ताव को अधिक समर्थन नहीं मिला था. इस प्रस्ताव को गोल्डवाटर पुनः रखने वाले हैं. यदि वह प्रस्ताव पास हो जाता है तो निस्संदेह राष्ट्रपति कार्टर को कांग्रेस का अनुमोदन प्राप्त करना होगा.

बंगलादेश

चित भी मेरी पट भी मेरी

जैसे जैसे बंगलादेश में आम चुनावों के लिए घोषित तिथि (27 जनवरी) नजदीक आ रही है वैसे वैसे ही वहाँ अनिश्चितताएँ बढ़ रही हैं. राष्ट्रपति जनरल **जियाउर्रहमान** का देश में 'लोकतंत्र स्थापित करने की दिशा में' यह कदम कितना सफल होगा, यह विपक्षी दलों के आगामी रुख पर निर्भर करता है. जैसी कि आशंका थी, चुनाव की तिथि घोषित होते ही कुल 22 में से 12 विपक्षी दलों ने चुनाव में भाग न लेने के निर्णय की घोषणा कर डाली. इस के बाद धीरे धीरे कुछ अन्य दलों ने भी चुनाव बहिष्कार का निश्चय कर लिया. अब तक कुल 16 विपक्षी दल बहिष्कार का फैसला कर चुके हैं. इन दलों ने चुनाव में भाग लेने से पहले अपनी पाँच माँगों को स्वीकार किये जाने पर जोर दिया है. ये माँगें हैं: (1) देश में मार्शल लॉ की समाप्ति और नागरिक अधिकारों की वापसी, (2) 1972 के संविधान के आधार पर संसदीय लोकतंत्र की पुनःस्थापना (अर्थात् चौथे संविधान संशोधन की समाप्ति) (3) सभी राजनैतिक कैदियों और स्वतंत्रता सेनानियों की रिहाई और मार्शल लॉ के निर्णयों को न्यायालय में चुनौती देने का अधिकार (4) राष्ट्रपति जियाउर्रहमान का सेना से इस्तीफा (यदि वह राजनीति में भाग लेना चाहें तो) और (5) प्रेस और प्रकाशन की स्वतंत्रता तथा सभी काले कानूनों की समाप्ति.

चुनाव निष्पक्ष नहीं : विपक्षी दलों की यह आशंका निर्मूल नहीं है. देश में मार्शल लॉ और जनरल जिया के आपात् अधिकारों से लैस रहते स्वतंत्र चुनाव नहीं हो सकते. इस के साथ साथ सैकड़ों राजनैतिक कार्यकर्ताओं के जेल में रहने और प्रेस पर जनरल जिया का कब्जा रहने से विपक्षी दलों की आशंका और बढ़ जाती है. स्वतंत्र चुनावों की बात स्वतंत्र वातावरण में ही हो सकती है. यदि विपक्षी दलों को चुनाव से पूर्व ही आजादी नहीं दी जा सकती तो इस बात की क्या गारंटी है कि चुनाव के बाद (जैसा कि जिया ने आश्वासन दिया है) उन्हें लोकतांत्रिक अधिकार प्राप्त हो जायेंगे और मार्शल लॉ भी समाप्त कर दिया जायेगा?

जहाँ तक जनरल जियाउर्रहमान का प्रश्न है, उन के लिए विपक्षी दलों को चुनाव लड़ने के लिए राजी करना टेढ़ी खीर बन चुकी है. वह इस बात को भलीभाँति समझते हैं कि विपक्षी दलों में से अधिकांश को दूर रख कर चुनाव जीतने से उन की प्रतिष्ठा बनना तो दूर उन के लिए मुँह दिखाना भी मुश्किल हो जायेगा. यही कारण है कि वह विपक्षी दलों को मनाने के लिए सभी अच्छे और बुरे हथकंडे अपना रहे हैं. वह जानते हैं कि उन के लिए सब से बड़ा सिरदर्द अवामी लीग है. इसीलिए संभवतः उन्होंने चुनावों की घोषणा के समय अवामी लीग की 11 माँगों को खास तरजीह दी थी. उस के बाद भी इस दल के नेताओं से उन की साँठगाँठ जारी है. अलबत्ता समझौते के आसार नजर नहीं आते.

इस के अतिरिक्त राष्ट्रपति जिया द्वारा 10 दिसंबर को जारी विदेशी तत्त्वों से सहायता प्राप्त विपक्षी दलों पर रोक लगाने से संबंधित अध्यादेश भी काफी महत्त्व रखता है. विपक्षी दलों के लिए यह भी एक प्रकार से जिया की ओर से अप्रत्यक्ष धमकी है. इस अध्यादेश का मुखौटा लगा कर किसी भी विपक्षी दल को विदेशी सहायता प्राप्त बताया जा सकता है और मार्शल लॉ के रहते वह दल अपनी सफाई भी ठीक से पेश नहीं कर सकता.

असंगठित विपक्षः विपक्षी दलों के लिए भी सब से बड़ी कमजोरी उन का असंगठित होना है. जनरल जियाउर्रहमान की **बंगला देश नशनलिस्ट पार्टी** के अलावा जो 22 विपक्षी दल हैं, वह आपसी फूट के शिकार हैं. इन में सब से मजबूत अवामी लीग है लेकिन वह भी दो भागों में बँटा है. इन में **अब्दुल मालेक उकिल** के नेतृत्व वाले दल को रूस समर्थित दलों का समर्थन प्राप्त है. एक अन्य महत्त्वपूर्ण दल जातीय लीग है, जिस के अध्यक्ष **अताउर्रहमान खान** हैं. यह दल दक्षिणपंथी दलों के समर्थन का दावा करता है. एक तीसरा वर्ग वामपंथी दलों का है जिन में **युनाइटेड पीपुल्स पार्टी, गणतांत्रिक आंदोलन, जातीय गणमुक्ति यूनियन** और **मोहम्मद तोहा की साम्यवादी दल** शामिल हैं.

—हालाँकि राष्ट्रपति जिया ने आश्वासन दिया है कि चुनावों के बाद बनी नयी संसद् प्रभुसत्ता संपन्न होगी जिसे संविधान परिवर्तन तक का अधिकार होगा लेकिन फिर भी कुछ संदेह उत्पन्न होते हैं. विपक्षी दलों द्वारा अनेक बार उठाये गये इस सवाल का जवाब उन्होंने नहीं दिया है कि क्या सरकार संसद् के प्रति उत्तरदायी होगी. इस के अलावा जनरल जिया ने हालाँकि नये स्थल सेनाध्यक्ष की नियुक्ति कर दी है लेकिन अभी तक मुख्य मार्शल लॉ प्रशासक के रूप में अपने अतिरिक्त अधिकारों को छोड़ने का इरादा प्रकट नहीं किया है. क्या यह समझा जाये कि चुनाव करा कर जनरल जिया ऐसी नीति अपना रहे हैं जिस से चुनाव में हार जायें (जो मार्शल लॉ रहते आश्चर्यजनक नहीं है) तो भी वही राज करें, और यदि जीत जायें तो न केवल शासक बने रहें बल्कि लोकतंत्र समर्थक होने का दावा भी जोर देकर पेश कर सकें. यानी चित भी मेरी पट भी मेरी?

दुनिया भर की

सिर मुंडाओ, धन कमाओ

अंग्रेज़ी अभिनेता यूल ब्रायनर पर 'सिर मुंडाते ही ओले पड़े' वाली कहावत चरितार्थ नहीं होती; बल्कि उन की घुटी हुई चांद ही उन की संपन्नता का राज़ है. उन की इस विशेषता के कारण फ़िल्मी दुनिया में उन की क़ीमत इतनी बढ़ी हुई है. उन का केशविहीन चेहरा किस क़द्र लोकप्रिय है, इस का अंदाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि फ्लोरिडा के एक संग्रहालय में इस विशिष्ट अभिनेता की सूरत से मिलतीजुलती मूर्ति दर्शकों का ध्यान ज़रूर आकर्षित करती है.

शोध नौका का नया रूप

पश्चिम जर्मनी के जैक्वेस पिकार्ड ने जो नयी नौका बनायी है वह वर्ष खत्म होने से पहले जेनेवा झील में पानी के नीचे जा कर वहाँ पर स्थित गैस के पाइपों का निरीक्षण करेगी. जिस धातु से यह नौका बनायी गयी है वह गहराई के दबावों को सहन करने में सक्षम है या नहीं, इस का भी पता चल जायेगा. इस नौका की लंबाई 7.5 मीटर, ऊँचाई 2.25 मीटर और चौड़ाई 2.2 मीटर है. पिकार्ड ने इस नौका के लिए धातु का चुनाव बड़े सोच समझ कर किया है, जिस से कि वह हल्की रहे.

इस नौका में, जिस में एक चालक और दो पर्यवेक्षक बैठ सकते हैं, दो बड़े और चार छोटे, नौका के ही धातु से बने हुए, अर्द्धगोलाकार लगाये गये हैं, ताकि उस को चलने में सहूलियत हो. यह विद्युतचालित नौका आठ घंटे तक लगातार पानी के नीचे रह सकेगी और आपत्कालीन स्थिति में अपने सवारों के लिए 80 घंटे तक का रसद जमा रख सकती है.

वर्ष भर की बढ़ोतरी

अमेरिका के लॉस एंजलीस चिड़ियाघर के अजगर में सब की दिलचस्पी रहती है कि वह साल भर में और कितना लंबा हुआ. साल में एक बार उसे नापा ज़रूर जाता है. इस बार की वार्षिक नपाई के दौरान इस अजगर को सँभाल पाना इतना कठिन हो गया कि चिड़ियाघर के पाँच पशुपालक मिल कर भी इस विशालकाय और शक्तिशाली साँप को स्थिर नहीं रख पा रहे थे. बहुत कसरत के बाद उस को नापा जा सका और उस की लंबाई 17 फ़ुट पायी गयी.
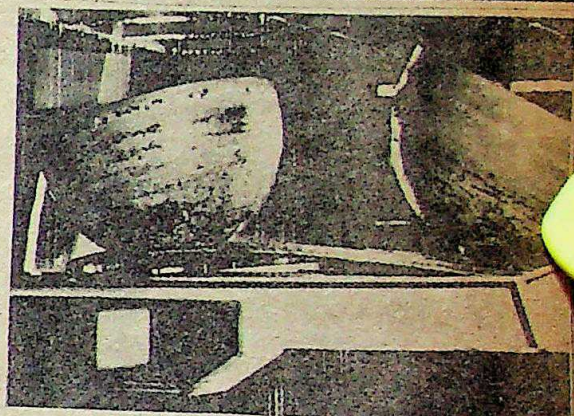
नयी जीवन संगिनी

ब्रिटेन की राजकुमारी मार्ग्रेट के भूतपूर्व पति लार्ड स्नोडन ने शायद 18 वर्ष तक पत्नी बनी रहने वाली स्त्री से विछोह का ग़म भुला दिया है और तभी उन्होंने दोबारा विवाह करने का फ़ैसला किया. उन की दुल्हन अब 37 वर्षीया लूसी लिंड्से हैं, जो टेलीविज़न में काम करती हैं. इन के साथ लॉर्ड स्नोडन की दोस्ती खासी पुरानी बतायी जाती है. लूसी के भूतपूर्व पति भी टेलीविज़न में निर्माता हैं, जिन के साथ उन का तलाक़ 1971 में हुआ था.

एशियाई खेल : असली टक्कर चीन और जापान में

एशियाई खेलों में चीन के भाग लेने से एक लाभ यह तो हुआ कि इन खेलों में भी चीन और जापान की कुछ कुछ वैसे ही टक्कर होने लगी जैसे कि ओलिंपिक खेलों में अमेरिका और सोवियत संघ की हुआ करती है. यदि आप एशियाई खेलों के पुराने इतिहास पर एक नज़र दौड़ाएं तो आपको पता चलेगा कि जापान शुरू से अंत तक 'कौन कहां रहा' की सूची में प्रथम स्थान तो प्राप्त करता ही रहा. साथ ही साथ पहले और दूसरे स्थान के बीच पदकों का जमीन-आसमान जैसा अंतर होता. पिछले सात एशियाई खेलों में जापान कुल मिलाकर 950 पदक (391 स्वर्ण, 316 रजत और 243 कांस्य) जीत चुका है. एशिया का और कोई भी देश उस से आधे पदक जीतने में भी सफल नहीं हो सका है.

जहां तक 1974 में तेहरान में हुए सातवें एशियाई खेलों का सवाल है उसमें जापान ने पहला, ईरान ने दूसरा, चीन ने तीसरा स्थान प्राप्त किया था लेकिन इस बार क्योंकि ईरान ने अपने देश में हो रही राजनैतिक उथलपुथल के कारण भाग नहीं लिया, यह बात पक्की हो गयी थी कि इस बार पहला स्थान जापान को और दूसरा स्थान चीन को ही प्राप्त होगा और दोनों के पदकों में बहुत अंतर नहीं होगा. ईरान और इस्राइल की अनुपस्थिति (इस्राइल को सुरक्षा कारणों से इसमें शामिल नहीं किया गया था) के फलस्वरूप यदि इस बार भारत 'कौन कहां रहा' की सूची में एक आध सीढ़ी ऊपर चढ़ भी जाये या पहले से कुछ ज्यादा स्वर्ण पदक बटोर ले तो इसमें बहुत ज्यादा उत्साहित होने की कोई बात नहीं है.

जाहिर है हर बार की तरह इस बार भी भारतीय खेल प्रेमियों की सब से ज्यादा दिलचस्पी हाकी मुकाबलों में रही. उसका एक कारण तो यह था कि बहुत से लोगों ने यह कहना शुरू कर दिया था कि यदि भारतीय टीम को आगामी मस्क्वा ओलिंपिक खेलों में भाग लेना है तो इस बार एशियाई चैंपियन का पद जरूर प्राप्त करना होगा. यदि हमें दूसरा स्थान भी प्राप्त होता है तब भी हम उसमें भाग लेने के अधिकारी नहीं हो सकेंगे.

गनीमत है कि इस गलतफहमी का जल्दी ही निराकरण हो गया और यह कहा जाने लगा कि इस से भारत की स्थिति में कोई विशेष अंतर नहीं पड़ेगा. पाकिस्तान के हाकी अधिकारी कर्नल ए. आई. एस. दारा ने कहा कि यह ठीक है कि आगामी ओलिंपिक खेलों में हाकी के खेल में भाग लेने वाले 16 देशों की संख्या को घटा कर 12 कर दिया गया है लेकिन उसमें भी कम से कम तीन एशियाई देशों की टीमें तो भाग ले ही सकेंगी. इसका वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है, एशिया-3, यूरोप-4, अमेरिका-1, अफ्रीका-1, उपमहाद्वीप (आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड)-2, और जिस देश में ओलिंपिक खेलों का आयोजन हो रहा हो.

खैर, अब तक की स्थिति के अनुसार भारत की टीम फाइनल तक तो पहुंच ही गयी है. इसमें भाग लेने वाली 8 टीमों को दो वर्गों में बांट दिया गया था. पाकिस्तान को 'ए' वर्ग में और भारत को 'बी' वर्ग में रखा गया था. 'ए' वर्ग में पाकिस्तान ने जापान को 2-0 से, थाईदेश को 9-0 से और बंगलादेश को 17-0 से हरा कर प्रथम स्थान प्राप्त किया और भारत ने मलयेसिया को 5-3 से, हांङकांङ को 7-0 से और श्री लंका को 4-1 से हरा कर प्रथम स्थान प्राप्त किया.

सेमी-फाइनल में भारत ने जापान को 2-0 से और पाकिस्तान ने मलयेसिया को 5-2 से हराकर फाइनल में प्रवेश किया.

खेल शुरू हुए पांच दिन हो गये. लोग बड़े उत्साह के साथ पदक सूची में भारत का नाम देखते और निराश हो जाते. पांच दिन तक उस सूची में भारत का नाम तक नहीं था. हां, 15 दिसंबर का दिन भारत के लिए जरूर शुभ रहा और उसी दिन से पदक-सूची में भारत का नाम जुड़ना शुरू हो गया.

हरिचंदः पहला स्वर्ण पदकः इस बार भारत को पहला स्वर्ण पदक दिलाने का गौरव हरिचंद को प्राप्त हुआ. केंद्रीय रिजर्व पुलिस के इंस्पेक्टर 25 वर्षीय हरिचंद ने 10,000 मीटर की दौड़ को 30 मिनट 07.7 सेकिंड में पूरा कर स्वर्ण पदक प्राप्त किया. यह ठीक है कि वह इस दौड़ में अपने या एशियाई रिकार्ड में कोई सुधार नहीं कर पाये लेकिन उनका कहना था कि उनका मुख्य उद्देश्य स्वर्ण पदक प्राप्त करना था. इस बार वह अपने उद्देश्य में जरूर सफल हो जायेंगे इसका उन्हें उसी समय आभास हो गया था जब उन्हें यह पता चला था कि इस बार जापान के तोशिया कमाटा खेलों में भाग नहीं ले रहे हैं.

यों इस दौड़ का उनका अपना रिकार्ड 28:48.72 सें और एशियाई रिकार्ड 29:55.6 सें का था. उन्होंने यह भी कहा कि मैं दौड़ते समय कभी इस बात की चिंता नहीं करता कि कौन मेरे से आगे निकल रहा है. क्योंकि मैं जानता हूं कि लंबे फासले की दौड़ में अंत में जीत उसी की होती है जो अंत में जाकर तेजी पकड़ता है. यों इस समय मैं काफी अच्छे फार्म में था लेकिन अत्यधिक गर्मी के कारण उतना अच्छा प्रदर्शन नहीं दिखा पाया.

इस दौड़ में हरिचंद को पहला, बर्मा के रोबर्ट को दूसरा (30:16.9) और बर्मा के ही कोको को तीसरा (30:18.4 से) स्थान प्राप्त हुआ.

भारतीय पहलवान : दो स्वर्ण और एक रजतः भारतीय पहलवानों को इस बार दो स्वर्ण और एक रजत पदक प्राप्त हुआ. स्वर्ण पदक प्राप्त करने का गौरव राजेंद्र सिंह (74 किलो वर्ग) और करतार सिंह (90 किलो वर्ग) को प्राप्त हुआ. 100 किलो से अधिक वर्ग में सतपाल को केवल रजत पदक पर ही संतोष करना पड़ा.

74 किलो वर्ग में राजेंद्र सिंह और मंगोलिया के दावेजार के बीच मुकाबला बहुत ही दिलचस्प रहा. शुरू के दो राउंड में दावेजार का पलड़ा भारी जान पड़ रहा था क्योंकि राजेंद्र को दो चेतावनियां मिल चुकी थीं. एक और चेतावनी मिलने पर राजेंद्र की हार निश्चित थी. यह बात किसी तरह हरयाणा के इस जाट पहलवान के कानों तक पहुंच गयी. राजेंद्र हावी हो उठा. आखिरी घंटी बजने से पहले दोनों पहलवानों के 2-2 अंक बराबर थे कि इसी बीच राजेंद्र ने बिजली की फुर्ती के साथ अपने प्रतिद्वंद्वी को टांगों से पकड़ कर दबोच लिया और इस प्रकार उसे 4 अंक और स्वर्ण पदक प्राप्त हो गया.

90 किलो वर्ग में फाइनल मुकाबला करतार सिंह और मंगोलिया के ही पहलवान गोचोसियन के बीच हुआ. इसमें भी शुरू शुरू में मंगोलिया के पहलवान का पलड़ा भारी जान पड़ रहा था. लेकिन तीसरे और अंतिम राउंड के समाप्त होने के कुछ ही सेकिंड पहले उसने उसे चित कर दिया और यह मुकाबला 10-4 अंकों से जीत लिया.

जहां तक सतपाल का सवाल है उसने पहले राउंड में इराक के मोहम्मद फरहम जासिम को अंकों के आधार पर हराया था. उसके बाद उसका पाकिस्तान के जावेद इकबाल से मुकाबला हुआ, जिसमें जावेद को कई चेतावनियां मिलीं. सतपाल को घुटने के दर्द के कारण यह कुश्ती बीच में छोड़नी पड़ी इस प्रकार इस वर्ग में पहला स्थान जापान के योशियाकन को और दूसरा स्थान सतपाल को प्राप्त हुआ.

यहां यह बात भी याद रखनी होगी कि यदि इस बार ईरान के पहलवानों ने भाग लिया होता तो भारत को शायद इतनी सफलता प्राप्त नहीं होती. पिछले खेलों में ईरान के पहलवानों ने विभिन्न वर्गों में 6 स्वर्ण पदक प्राप्त किये थे.

ग्रां प्रि के विजेता यानिक नोआह (दायें) और उपविजेता पासकल पोर्टस (बायें)

श्रीराम सिंह को स्वर्ण पदक : इस बार श्रीराम सिंह स्वर्ण पदक जीत पायेंगे या नहीं इस बारे में बहुत से लोगों को संदेह था क्योंकि वह कई महीनें अस्वस्थ होने के कारण अभ्यास जारी नहीं रख पाये थे. खैर, श्रीराम ने 800 मीटर की दौड़ को 1 मिनट 48.8 सैंकिड में पूरा करके स्वर्ण पदक प्राप्त किया. वह नया एशियाई रिकार्ड या अपने पिछले रिकार्ड में सुधार नहीं कर पाये. मांट्रियाल ओलिंपिक में उन्होंने इस दूरी को 1 मिनट 45.77 सैंकिड में पूरा किया था. उनका अपना एशियाई रिकार्ड 1 मिनट 47.6 सैंकिड का है.

इसके अतिरिक्त हाकम सिंह ने (20 किलो पैदल चलने में) रणधीर सिंह (ट्रैप निशानेबाजी) और सुरेश बाबू ने (लंबी कूद) स्वर्ण पदक प्राप्त किये.

लान टेनिस

ग्रां प्रि के नये विजेता

हाल ही में कलकत्ता के नेताजी इंडौर स्टेडियम में हुई इनामी ग्रां प्रि प्रतियोगिता एक ऐसे खिलाड़ी ने जीती है जिसका बहुत से लोगों ने नाम तक नहीं सुना है. पहली बात तो यह है कि भारत में होने वाली इस तरह की प्रतियोगिताओं में यों भी दुनिया के चोटी के खिलाड़ी हिस्सा नहीं लेते जिसका सीधा लाभ अक्सर भारतीय खिलाड़ियों को पहुँचता है. लेकिन इस बार वैसा भी नहीं हुआ. फ्रांस के 18 वर्षीय यानिक नोआह ने इस प्रतियोगिता को जीत कर यह सिद्ध कर दिया है कि भले आज बहुत से लोग उन के नाम से अपरिचित हैं लेकिन आने वाले कल में उन की गिनती भी चोटी के टेनिस खिलाड़ियों में की जायेगी.

इस प्रतियोगिता के शुरू होने से पहले विजय अमृतराज को सीडिड खिलाड़ियों में पहले स्थान पर रखा गया था. पहले दिन उन्होंने अमेरिका के रिक मायेर को 6-3, 6-2 से हराया. उसी दिन आनंद ने आस्ट्रेलिया के डिक क्रीले को 4-6, 6-2, 6-4 से हराया.

अगले दिन भारत के विजय अमृतराज और फ्रांस के एक मामूली से खिलाड़ी पासकल पोर्टस् के बीच मुकाबला होने वाला था. मुकाबला शुरू होने से पहले किसी ने इस बात की कल्पना तक नहीं की थी कि विजय 19 वर्षीय पोर्टस से हार जायेंगे. लेकिन जब पोर्टस ने विजय को सचमुच 5-7, 6-7, 6-4 से हरा दिया तो लोगों के आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा. उस के बाद उन्होंने आनंद अमृतराज को 6-0, 6-7 और 6-1 से हरा दिया. दूसरी ओर यानिक नोआह ने नीदरलैंड के ल्यूक सैंडर्स को 7-6, 6-3 से हरा कर फाइनल में प्रवेश किया.

फाइनल में पहुँचे दोनों ही खिलाड़ी फ्रांस के थे. इसमें नोआह ने पोर्टस को 6-3, 6-2 से हरा कर ग्रां प्रि का टाइटिल जीत लिया. जीत के बाद उन्होंने कहा कि इस जीत से मैं सचमुच बहुत प्रसन्न हूँ क्योंकि यह मेरी दूसरी विजय है (आठ दिन पहले उन्होंने मनीला में विजय प्राप्त की थी). इस से कम से कम इतना तो लाभ होगा कि अब तक मेरी गिनती दुनिया के 80 खिलाड़ियों में होती रही है अब 30 में होने लगेगी. इस प्रतियोगिता को जीतने पर नोआह को 8,500 डालर (74,600 रुपये) का पुरस्कार प्राप्त हुआ.

युगल प्रतियोगिता में शशि मेनन और स्टेवर्ट (अमेरिका) की जोड़ी ने नोआह और ई. मोरेटन की जोड़ी को 7-6, 6-4 से हराया. युगल प्रतियोगिता जीतने वाली जोड़ी को 2,550 डालर का पुरस्कार प्राप्त हुआ.

युगल विजेता (मध्य में) अमेरिका के स्टेवर्ट और शशि मेनन, मोरेटन (बायें) और यानिक नोआह (दायें)

अर्थव्यवस्था का निर्यात

'हम सुनहरे कल की ओर बढ़ रहे हैं.' बीते कल का यह लुभावना नारा आज रह रह कर याद आता है. जिस आर्थिक 'समृद्धि' के आधार पर यह नारा दिया गया था. भारतीय निर्यात व्यापार में 'ज़बरदस्त वृद्धि' भी उस का प्रमुख कारण था. निस्संदेह, अगर सरकारी आँकड़ों पर एक नज़र डालें तो इस बात की पुष्टि होती है. 1976-77 में भारतीय निर्यात 4,981 करोड़ रु. तक की ऊँचाई पर पहुँच गया. 1950-51 में केवल 600 करोड़ रु. मूल्य के निर्यात के सामने यह वास्तव में एक विशाल उपलब्धि प्रतीत होती है. यही नहीं, पहली तीन पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान वार्षिक औसत निर्यात वृद्धि दर क्रमशः 1, 2 और 3 प्रतिशत ही रही, जब कि इस के बाद सातवें दशक में यह अचानक काफी तेज़ हो गयी. उदाहरण के लिए 1972-73 में 22.5 प्रतिशत, 1973-74 में 28 प्रतिशत, 1974-75 में 31.9 प्रतिशत, 1975-76 में 21.4 प्रतिशत और 1976-77 में 23.2 प्रतिशत (अपने पूर्ववर्ती वर्षों की तुलना में) की गति से वृद्धि हुई.

यह आँकड़े कई सवाल एक साथ उठाते हैं. सातवें दशक में ही अचानक यह इतनी वृद्धि क्यों? क्या वास्तव में निर्यात व्यापार में इतनी वृद्धि हुई है? यदि वास्तव में निर्यात बढ़ा है, तो किन किन वस्तुओं का? इन सब से भी महत्त्वपूर्ण एक प्रश्न है, यदि निर्यात बढ़ा है तो उस की कीमत हमें क्या चुकानी पड़ी अर्थात् देश के राजकोष को उस पर कितना सार्वजनिक व्यय करना पड़ा?

ढोल की पोल: यदि हम सातवें दशक के निर्यात व्यापार की दिशा और उपलब्धियों पर गहराई से विचार करें तो कई चौंका देने वाले तथ्य उजागर होते हैं. 1971-72 से 1976-77 तक निर्यात मूल्य में तीव्र वृद्धि का प्रमुख कारण चाँदी और चीनी का बड़े पैमाने पर निर्यात, बंगला देश को अनुदान मिश्रित निर्यात, अंतरराष्ट्रीय जगत में मुद्रास्फीति की भयंकरता और रुपये के अवमूल्यन से उत्पन्न स्थिति है. इसे किसी भी तरह विकास का संकेत नहीं माना जा सकता.

फरवरी 1974 से चाँदी जैसी दुर्लभ और सीमित भंडार वाली धातु का निर्यात शुरू किया गया जो 1973-74 में 5.6 करोड़ रु. की राशि से बढ़ कर 1975-76 में 174.1 करोड़ रु. तक पहुँच गया. निर्यात वृद्धि दर में चाँदी का भाग अकेले 1975-76 में 24.7 प्रतिशत रहा. महज़ निर्यात के आँकड़े बढ़ाने के लिए चाँदी जैसी वस्तु का निर्यात किसी भी तरह से उचित नहीं ठहराया जा सकता. भारत चाँदी का उत्पादक नहीं है. यदि एक बार भंडार खत्म हो गये तो हमें किस कीमत पर दूसरे देशों से चाँदी खरीदनी पड़ेगी, अनुमान लगाया जा सकता है.

चाँदी के अतिरिक्त निर्यात राशि बढ़ाने में बंगला देश से हुए व्यापार का भी बड़ा योगदान है. 1971-72 और 1972-73 में निर्यात वृद्धि में बंगला देश को किये गये निर्यात का भाग क्रमशः 62 प्रतिशत और 46 प्रतिशत रहा. 1971-72 और 1975-76 के दौरान बंगलादेश को कुल 372.56 करोड़ रु. का निर्यात किया गया जिस में 128.03 करोड़ रु. या 34 प्रतिशत अनुदान के अंतर्गत था, जिस के लिए हमें कोई विदेशी मुद्रा प्राप्त नहीं हुई.

व्यापार भारित विनिमय दर (ट्रेड वेटेड एक्सचेंज रेट) दर्शाता है कि 1971 में हुए स्मिथसोनियम समझौते के बाद से मार्च 1976 तक रुपये की कीमत 19.8 प्रतिशत कम हुई. इस दृष्टि से 1971-76 के दौरान रुपये में निर्यात व्यापार अवमूल्यन के अनुपात में भी बढ़ना चाहिए था. अतः इन छह वर्षों के दौरान निर्यात व्यापार में 6 प्रतिशत से 7 प्रतिशत की दर से औसत वार्षिक वृद्धि कम से कम तीन वर्षों में तो रुपये के अवमूल्यन के कारण ही हुई.

निर्यात व्यापार में वृद्धि का एक बड़ा कारण बड़ी मात्रा में चीनी का निर्यात भी है. देश में कंट्रोल और राशन की कड़ी व्यवस्था लागू कर के भारतीय जनता के मुँह से चीनी छीन कर इस का निर्यात 1972-73 की 13.76 करोड़ रु. की कीमत से बढ़ाते बढ़ाते 1975-76 में 474.90 करोड़ रु. तक किया गया. कुल निर्यात वृद्धि दर में चीनी निर्यात का भाग 1974-75 में 38 प्रतिशत और 1975-76 में 21.6 प्रतिशत था.

निर्यात वृद्धि की वास्तविक दर ज्ञात करने के लिए हमें चांदी, चीनी, रुपये के अवमूल्यन से प्रभावित और बंगलादेश को अनुदान मिश्रित निर्यात राशि को अंकित (नॉमिनल) निर्यात दर से निकालना होगा. इस के बाद जो विकास दर आती है वह अंकित दर से काफी कम है. 1971-72 में यह (वास्तविक) दर 3.2 प्रतिशत थी जब कि अंकित 4 प्रतिशत थी. इस के बाद 1972-73 में अंकित दर बढ़ कर 22.5 प्रतिशत हो गयी जब कि वास्तविक केवल 6.4 प्रतिशत ही रही. इसी तरह 1973-74, 1974-75 और 1975-76 में अंकित और वास्तविक निर्यात वृद्धि दर क्रमशः 28% और 10.5%, 31.9% और 3.2% तथा 21.4% और 10% रही. **निर्यात दर के इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वास्तव में 1971-76 में निर्यात 10.5 प्रतिशत से ज्यादा दर से किसी भी वर्ष में नहीं बढ़ा, जब कि दिखाया 31.9 प्रतिशत तक गया है.**

इंजीनियरी वस्तुएँ: सातवें दशक में किन किन भारतीय वस्तुओं का निर्यात किया गया, इस का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि हालाँकि कागज़ी तौर से प्राथमिकता इंजीनियरी और मशीनी वस्तुओं के निर्यात को दी गयी लेकिन 1970-71 से 1975-76 के दौरान कुल निर्यात में इंजीनियरी वस्तुओं का भाग 2.9 प्रतिशत ही बढ़ सका. आज भी भारत के
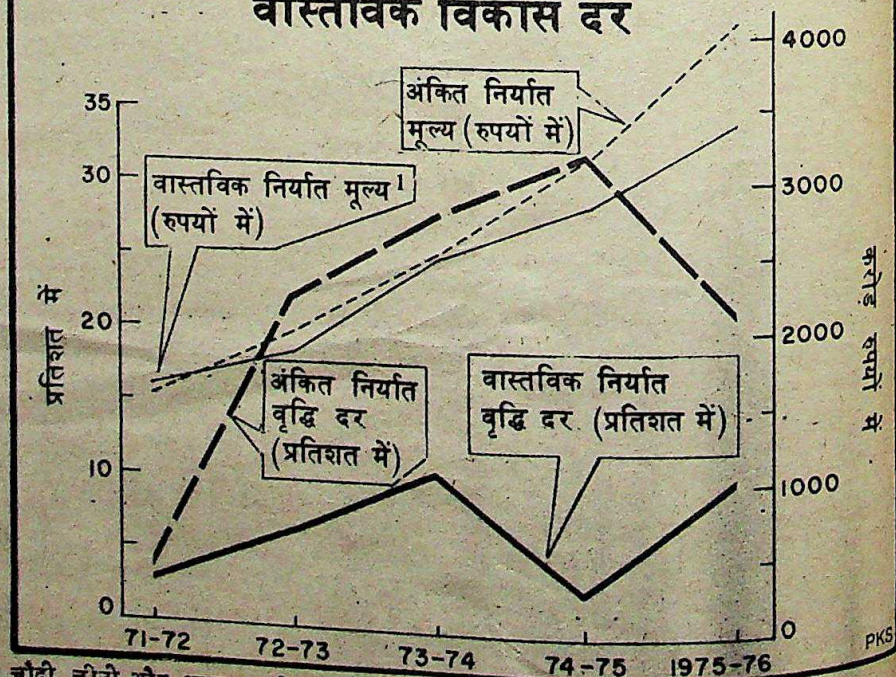
1. चाँदी, चीनी और अनुदान रहित.

कुल निर्यात में इन वस्तुओं का भाग केवल 7 प्रतिशत है. सुनने में आता है विश्व में इस तरह की वस्तुओं का निर्यात कर हम ने अपनी साख काफी बढ़ायी है. लेकिन वास्तविक स्थिति यह है विश्व के कुल इंजीनियरी वस्तु निर्यात में भारत का भाग 1975 में सिर्फ 0.179 प्रतिशत था. वास्तव में भारतीय इंजीनियरी वस्तुओं की निर्यात दर इन वर्षों में कम हुई है. यह दर 1973 में 31.5 प्रतिशत थी जो 1974 में 70 प्रतिशत तक बढ़ कर 1975 से 26.8 प्रतिशत तक कम हो गयी. इसी तरह देश के कुल निर्यात में मशीनों और परिवहन यंत्रों का भाग 1970-71 से 1975-76 के दौरान केवल 1.5 प्रतिशत ही बढ़ा.
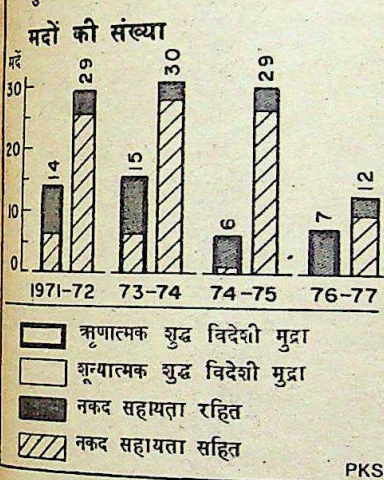
यदि प्राथमिकता के आधार पर विचार करें तो इन वर्षों में (1970-71 से 1975-76 तक) पहला स्थान अलौह धातुओं, बहुमूल्य पदार्थों तथा चमड़े और कपड़े की बनी वस्तुओं का है. इन में भी उत्पादित वस्तुओं की निर्यात वृद्धि दर 1972-73 और 1973-74 में क्रमशः 23.3 प्रतिशत और 20.3 प्रतिशत की गति से बढ़ कर 1974-75 में 17.5 प्रतिशत तक कम हो गयी और 1975-76 में भी बढ़ने के बजाय घट कर 14.9 प्रतिशत ही रह गयी.

दूसरा स्थान खाद्य और जीवित पशुओं के निर्यात का रहा. 1974-75 के बाद निर्यात वृद्धि में इस मद ने पहला स्थान प्राप्त किया. तीसरा स्थान खनिज पदार्थों का रहा, जिन में मुख्यतः रुई और खनिज धातु शामिल हैं. इस के बाद कपड़े, जूते और कला वस्तुओं के निर्यात का स्थान है.

निर्यात वस्तुओं का वर्गीकरण करने से साफ जाहिर होता है कि ज़्यादातर निर्यात कच्चे माल, खनिज पदार्थ और बहुमूल्य धातुओं का किया गया. भारत जैसे विकासशील देश के लिए इन वस्तुओं का निर्यात कितना खतरनाक हो सकता है, यह तो समय ही बतायेगा. अन्य
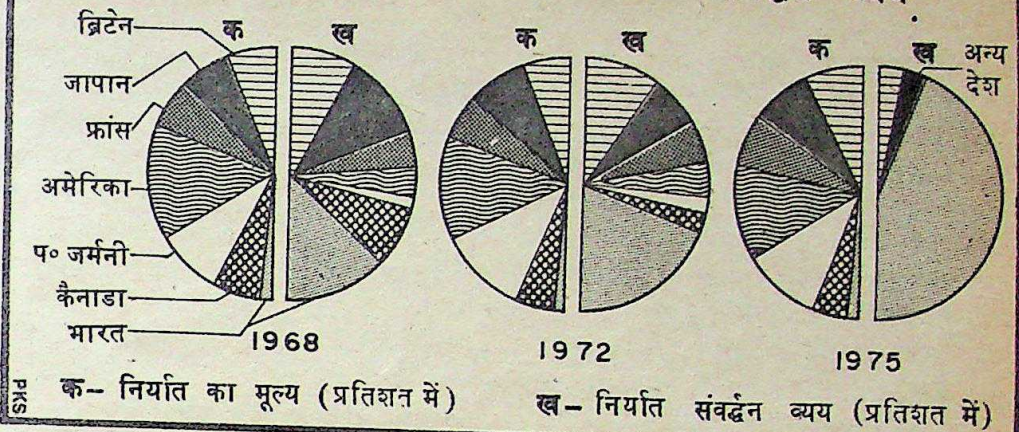
वस्तुओं का निर्यात भी अंतरराष्ट्रीय असाधारण स्थितियों के कारण ही हुआ. अतः इन्हें उपलब्धि नहीं कहना चाहिए. चीनी के निर्यात में आ रही वर्तमान दिक्कतें और वस्त्र निर्यात (जो इन वर्षों में काफी तेज़ गति से हुआ) में औद्योगिक देशों द्वारा अपनायी जा रही संरक्षणवाद की नीतियों से इन वस्तुओं के निर्यात का भविष्य भी कोई उज्ज्वल प्रतीत नहीं होता.

किस कीमत पर: अब इस प्रश्न पर विचार किया जा सकता है कि इतने वर्षों में निर्यात हमें कितना महँगा पड़ा? दूसरे शब्दों में निर्यात पर कितना सार्वजनिक व्यय किया गया. व्यापार और निर्यात संवर्द्धन पर सरकारी खर्च कितनी तेज़ गति से बढ़ा है, यह इसी से स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ 1964-65 में इस मद पर सिर्फ़ 2.10 करोड़ रु. खर्च किये गये, वहाँ 1976-77 में यह रकम बढ़ा कर 295.93 करोड़ रु. कर दी गयी. यहाँ यह **उल्लेखनीय है कि भारत (जो कि मूलतः कृषिप्रधान और विकासशील देश है, ने इस मद पर ग़रीब जनता की गाढ़े पसीने की कमायी इस मद पर जिस उदारता से लुटाई है, वह बड़े और मूलतः औद्योगिक देशों के मुकाबले भी कई गुना अधिक है.** 1968 में भारत ने इस मद पर प्रति 1 करोड़ डॉलर के निर्यात मूल्य पर 2,36,230 डॉलर खर्च किये जब कि अमेरिका ने इतनी ही राशि के निर्यात के लिए सिर्फ़ 3,150 डॉलर, प. जर्मनी ने 2,890 डॉलर और ब्रिटेन ने 15,910 डॉलर खर्च किये. भारत ने यह राशि बढ़ाते बढ़ाते 1975 में प्रति 1 करोड़ डॉलर के निर्यात के पीछे 3,96,050 डॉलर कर दी जबकि अमेरिका में 1975 में यह घट कर 2200 डॉलर और प. जर्मनी में केवल 1200 डॉलर रह गयी.

निर्यात संवर्द्धन हेतु अन्य देशों की तुलना में भारत द्वारा इतनी ज़्यादा रकम खर्च करने के पीछे सिर्फ़ यह तर्क बचकाना लगता है कि बड़े देशों में बड़ी व्यापारिक संस्थाओं के मुकाबले भारत में निर्यात फ़र्में काफ़ी कमज़ोर और छोटी हैं अतः उन्हें निर्यात संवर्द्धन के लिए सरकारी सहायता देना ज़रूरी है. विदेशों में निर्यात संवर्द्धन व्यय विशेषतः विपणन व्यवस्था सुदृढ़ करने के लिए और अंतरराष्ट्रीय बाज़ार के अध्ययन आदि पर किया जाता है. परंतु भारत में सबसे ज़्यादा व्यय निर्यातकों को नकद सहायता देने पर होता है. जिस का प्रायः वस्तुओं की किस्म पर बुरा असर पड़ता है. उत्पादक लोग उस छूट के कारण उत्पादन लागत कम करने का भी कोई विशेष प्रयास नहीं करते.

परोक्ष रूप से: निर्यात संवर्द्धन के लिए भारत में जहाँ प्रत्यक्ष रूप से बजट में विशाल प्रस्तावित राशि होती है, वहाँ इस मद पर अप्रत्यक्ष रूप से भी कम खर्च नहीं किया जा रहा है. इन परोक्ष खर्चों में मुख्यतः उत्पादन और सीमा शुल्क की वापसी, उदार आयात लायसेंस और निर्यातकों को सस्ती दर से दी जाने वाली ऋण सुविधाएँ शामिल हैं. इस तरह से कुल सार्वजनिक खर्च 1970-71 की 85.35 करोड़ रु. की राशि से बढ़ कर 1976-77 में 452.33 करोड़ रु. तक जा पहुँचा.

नकद सहायता सुविधा 1976-77 में 662 निर्यात वस्तुओं तक बढ़ा दी गयी. ध्यान देने की बात है कि इसी वर्ष नकद सहायता प्राप्त निर्यात कुल निर्यात का 34.7 प्रतिशत था जब कि 1974-75 में यह केवल 17 प्रतिशत था. नकद सहायता प्राप्त निर्यात मदों की उपलब्धियों पर विचार करें, तो भी निराशा ही हाथ लगती है. यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि 1973-74 से निर्यात वृद्धि उन मदों के कारण ज़्यादा हो रही है, जिन्हें कोई नकद सहायता नहीं मिलती. 1973-74 में इन मदों का कुल निर्यात वृद्धि में केवल 36 प्रतिशत भाग था जो 1974-75 में 67 प्रतिशत हो गया. महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इन दोनों वर्षों में निर्यात प्रोत्साहन की नकद सुविधाएँ बढ़ा दी गयी थीं. इस के अलावा उन वस्तुओं की संख्या भी काफी है जो नकद सहायता प्राप्त करने के बावजूद शून्यात्मक अथवा ऋणात्मक (नेगेटिव)

विदेशी मुद्रा अर्जित कर रही हैं.

निर्यातकों को उदारतापूर्वक आयात लायसेंस दिये जाते हैं ताकि वे बढ़िया मशीनरी या कच्चा माल लगा कर निर्यात हेतु अच्छी वस्तु का उत्पादन करें. किंतु यह शिकायत अक्सर सुनने में आती है कि इस प्रकार की सुविधा का उपयोग व्यापारी वर्ग निजी स्वार्थों में करता है. प्रीमियम पर आयात लायसेंस बेचे जाने की भी शिकायतें मिलती रहती हैं. इस के अलावा लायसेंसों के दुरुपयोग भी काफ़ी बढ़ रहे हैं. 1973-74 वर्ष के दौरान ही ऐसे 518 मामले प्रकाश में आये.

विदेश भ्रमण : इन सब सुविधाओं के अलावा व्यापारियों को विदेश भ्रमण हेतु उदारतापूर्वक विदेशी मुद्रा दी जाती है. 1970-71 में यह राशि केवल 6.57 करोड़ थी जो 1976-77 में बढ़ कर लगभग 25 करोड़ हो गयी. अक्तूबर 1975 में नकद सहायता सुविधा को और उदार बनाया गया. कारण बताया गया कि निर्यात की जाने वाली वस्तुओं के देशी और विदेशी मूल्यों में अंतर है. लेकिन ऐसा कहीं पता नहीं चलता कि वस्तुओं के मूल्यों और लागत के विषय में कोई अध्ययन करने के बाद यह तय किया गया हो. जबकि वास्तविकता यह है कि 1975-76 में भारतीय बाजार में मूल्य घट रहे थे. इस का प्रमाण 1975-76 का सरकारी आर्थिक सर्वेक्षण ही देता है. सरकारी अनुमानों के अनुसार उस वक्त देश में औद्योगिक उत्पादन बड़े ही 'निष्कंटक' ढंग से चल रहा था. 1975-76 में कृषि उत्पादन में भी 15.6 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी. अतः देशी बाज़ार वस्तुओं की उत्पादन लागत काफी कम थी. दूसरी ओर प. देशों में मुद्रास्फीति ज़ोरों पर थी. ऐसी स्थिति में निर्यातकों को दी जाने वाली नकद सुविधा किस आधार पर बढ़ायी गयी, समझ में आना कठिन है.

अतः कुल मिला कर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि देश की भोली भाली जनता को केवल भ्रम में डालने के लिए पिछली सरकार ने ऐसी नीतियाँ अपनायीं जिस से देखने में निर्यात के बड़े बड़े आँकड़े नज़र आयें और वह भूल जाये कि इस की कितनी बड़ी कीमत चुकानी पड़ सकती है. **देश में चाँदी और खनिज पदार्थों का भंडार खत्म होने से भावी पीढ़ी का कल कितना सुनहरा होगा, अनुमान लगाया जा सकता है.** इस संदर्भ में पिछले सालों के दौरान निर्यात व्यापार में प्रगति के नाम पर कितने गुल खिले हैं, सबकी विस्तृत जाँच होनी चाहिए. इसके अलावा निर्यात व्यापार को सही दिशा देने संबंधी उचित और सटीक नीति तैयार किये जाने की भी ज़रूरत है ताकि कम से कम भविष्य में तो पुरानी धांधलियों को दोहराया न जा सके.

—नरेश कौशिक

साहित्य

यथार्थ : आग्रह और दुराग्रह

पूर्वोत्तर रेलवे मंडल हिंदी समिति, वाराणसी के तत्त्वावधान में गत 12 नवंबर को **समकालीन उपन्यास में यथार्थ की अवधारणा** विषय पर एक परिचर्चा गोष्ठी का आयोजन किया गया जिस की अध्यक्षता **डा. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी** ने की. लेखकों को जारी अपने परिपत्र में **जगदीश नारायण श्रीवास्तव** ने प्रश्न रखा था कि यद्यपि यह सही है कि कोई भी उपन्यासकार काल के एकाधिक आयामों में जीता है. पर रचना स्तर पर वह अपनी समकालीन परिस्थितियों और जीवन यथार्थ को अनदेखा नहीं कर सकता. क्योंकि हर पीढ़ी अपने समय की रचना में अपने समय की शक्ल तथा अपनी धड़कनें खोजती पहचानती चलती है. उन्होंने आगे कहा कि यदि पिछले दो दशकों में प्रकाशित हिंदी उपन्यासों को देखा जाये तो एक को छोड़ सभी 'झूठा सच' की दुनिया में पड़े हुए लगते हैं? आखिर आज का उपन्यासकार आज के सच से आँखें मिलाते हुए क्यों डरता है? कहीं इस के पीछे उपन्यास के बाज़ार में यथास्थितिवादी लेखकों और पूंजी बनाने वाले प्रकाशकों के बीच कोई दुरभि संधि तो नहीं या संभावित सामाजिक परिवर्तन को स्थगित रखने की चाल तो नहीं. यदि ऐसा नहीं है है तो क्या कारण है कि साठ के बाद कविता और कहानी की विधा में समकालीनता का आंदोलन जिस तेज़ी से उभरा, उपन्यास की विधा में नहीं उभर सका.

इस विषय पर अपना आधार निबंध प्रस्तुत करते हुए **डा. परमानंद श्रीवास्तव** ने कहा कि दरअसल हिंदुस्तानी जीवन कई कई कोटियों में बँटा हुआ है और सब के अपने अपने यथार्थ हैं. चूँकि उपन्यास समाज का महाकाव्य होता है, अतः वह समाज के सभी कोटियों के यथार्थ को अपने रचनाफलक में समेटता है. इन यथार्थों के भीतर तहों को अपने कृतित्व में हमारे उपन्यासकार कहाँ तक खोल पा रहे हैं, विचारणीय विषय यही है. उन्होंने प्रेमचंद से ले कर नियतिवादी, मनोविश्लेषणवादी, व्यक्तिवादी तथा प्रगतिवादी दृष्टि से लिये गये उपन्यासों का एक संक्षिप्त सर्वेक्षण प्रस्तुत किया.

डा. शुकदेव सिंह ने कहा कि यथार्थ समय का सातत्य रखता है, कल का यथार्थ आज का यथार्थ नहीं हो सकता. अतः उपन्यास में आज का यथार्थ समाजशास्त्रीय दृष्टि एवं परिप्रेक्ष्य की अपेक्षा रखता है. उस से जीवन मूल्यों के टकराव एवं अंतर्विरोधों का चित्रण संभव हो पाता है. डा. सिंह ने डा. परमानंद श्रीवास्तव के इस कथन का प्रतिवाद किया कि समाज के कई कई कोटियों के बहाने आज हम मनोविश्लेषणवादी या नियतिवादी हर प्रकार की औपन्यासिक कृतियों को समकालीन परिधि में ला कर विचार करें. ऐसी कृतियाँ समसामयिक भले हों, समकालीन नहीं हो सकतीं. वस्तुतः ये ऐय्याश महलों में रहने वाले लोगों के रसास्वादन के लिए लिखी जाती हैं, आज का तीखा जीवन जीने वाले आदमी के लिए नहीं. इस संदर्भ में उन्होंने **मुर्दाघर** उपन्यास का ज़िक्र करते हुए कहा कि इस में छोटी वेश्याओं, भिखमंगों, बेरोज़गारों तथा भारतीय जेलों का वास्तविक यथार्थ बड़ी बेबाकी से पाठक के सामने लाया गया है. इस के पात्र इतने मुखर और जीवित हैं कि वे अपनी उपस्थिति से आज के सामाजिक अंतर्विरोधों और विसंगतियों को हमारे सामने ला पटकते हैं और हमें कुछ सोचने पर मजबूर करते हैं.

डा. काशीनाथ सिंह ने कहा कि यथार्थ को अपने औपचारिक लेखन का अंग बनाने के लिए सब से पहले अपने को यथार्थवादी बनाना होगा. कुछ लोग यथार्थ और यथार्थवाद को अलग अलग खाने में बाँट कर देखते हैं. वे यथार्थ को तो सही पर वाद से नाक-भौं सिकोड़ते हैं, जो उचित नहीं. वाद से हमारा तात्पर्य सिर्फ दृष्टि से होता है यानी चीज़ों को देखने परखने का हमारा दृष्टिकोण क्या है. उन्होंने आगे कहा कि पूरे देश का जीवन भी मोटे तौर पर दो वर्गों में बँटा हुआ है. आज उपन्यासकार को यहीं अपना पक्ष चुन लेना चाहिए कि वह लुटनेवालों का पक्षधर बने या लूटने वालों का. जो उपन्यासकार इन दोनों के प्रति तटस्थ रहते हैं वे आज के पिटते मनुष्य के पक्ष में नहीं. वे समाज को किसी सही निर्णय पर पहुँचने से भटकाते हैं. उन्होंने कहा कि यथार्थ का हू-ब-हू चित्रण किसी भी विधा का रचनात्मक लेखन नहीं, मात्र विवरणात्मक दस्तावेज़ होता है. समाज में यथार्थ की ऊपरी तस्वीर कुछ दूसरी होती है. पर इस की भीतरी तस्वीर कुछ दूसरी जिसे सूक्ष्मदृष्टा उपन्यासकार अपने जनवादी नज़रिये से बराबर देखता और अपनी रचना में उकेरता रहता है. दरअसल, हिंदी में समकालीन उपन्यास को अभी अपना छंद नहीं मिल पा रहा है. नहीं तो क्या कारण है कि 67-71 के आसपास देश में नक्सलवाद के रूप में जो जनउभार आया वह हिंदी के उपन्यासों से अभी भी ग़ायब है? हालाँकि बंगाल के शंख घोष तथा आंध्र के कुछ उपन्यासकारों ने इस आंदोलन को अपनी औपन्यासिक रचना का अंग बड़ी बेबाकी से बनाया है. वस्तुतः यथार्थ अपने आप में रचनाकार से एक नयी रचनात्मकता की माँग करता है. यथार्थ दृष्टि से संपन्न लेखक ही इस आवाज़ को सुनता और रच पाता है.

ठाकुर प्रसाद सिंह ने कहा कि उपन्यास में

यथार्थ चतुर्मुखी होता है उसे किसी एकांगी दृष्टिकोण से बाँध कर नहीं रखा जा सकता. यह सही है कि यथार्थ के चित्रण में अलग अलग दृष्टिकोणों का फर्क आ सकता है पर आज हर रचना कहीं न कहीं प्रतिबद्ध है भले ही उस की प्रतिबद्धता जीवनगत आदर्शों के प्रति हो.

राजेश ने कहा कि जीवनगत आदर्श तो मनोरंजनवादी उपन्यासकारों का भी होता है. ऐसा कि कुछ उपन्यासकार अभी भी उसे ढोये चले जा रहे हैं पर यह बात साफ हो जानी चाहिए कि रचनात्मक लेखन का उद्देश्य अब मनोरंजन नहीं रह गया है. उस में आज के आदमी के प्रति पक्षधरता आवश्यक है. दरअसल इस बात को गंभीरता से लेने की ज़रूरत है कि आज के यथार्थ की जड़ें कहाँ हैं? प्रेमचंद ने इसे बड़ी जिम्मेदारी से पहचानने और ... करने की कोशिश की थी. 'गोदान' उस सामाजिक सत्य की ओर हमें ले जाता है, जहाँ, उन की कहानी 'कफन' में उस स्तर की सुसंगत सामाजिक सच्चाई नहीं है. फिर भी वह हमारी संवेदनशीलता का रेशारेशा खोल देती है और हमारे अंदर आग लग जाती है. यही प्रेमचंद की प्रासंगिकता है. राजेश ने आगे कहा कि फणीश्वरनाथ रेणु की पीढ़ी भी बड़े ही मोह से सपने देखती है कि बाढ़ग्रस्त इलाके और रेगिस्तान हरे भरे होंगे. इस सपने में भी एक ईमानदारी है पर छठें दशक में अजनबियत और अलगाव की बातें जितने जोर शोर से की गयीं वे आदमी को भटकाने के लिए थीं. विकट परिस्थितियों में आदमी कितना अकेला हो जाता है यह कफन में भी है. 'गोदान' का हीरो जीवन में हार चुका था पर वह हमारे अंदर देर तक बजता रहता है. निश्चय ही इन कृतियों ने समाज को बदलने में हमारी बड़ी ही सहायता की है परंतु अपने ही स्तर पर हल कर देने की बात एक सरलीकृत फार्मूला के बतौर हमारे आंदोलन को तोड़ती है.

अपने अध्यक्षीय भाषण में **डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी** ने कहा कि उपन्यास आधुनिक युग का है वह यथार्थ से वंचित ही कैसे हो सकता है. सामाजिक रीति, रस्म रिवाज, यह सब उपन्यासकार के ज्ञान और पहचान की चीज़ें हैं लेकिन उस के लिए इस से भी आवश्यक वस्तु है उस का सामाजिक उद्देश्य. इस के बिना साहित्य क्षेत्र में एक जीवंत शिशु पैदा हो नहीं सकता. मैं यथार्थवाद को नहीं उस के आग्रह को बुरा समझता हूँ क्योंकि उस में यथार्थ कम और दुराग्रह ज्यादा होता है. उपन्यास में पात्रों और घटनाओं का ऐसा सामंजस्य होना चाहिए जो लेखक के उद्देश्य को समाज के सामने शक्तिशाली ढंग से रख सकता है. आज के उपन्यासों में प्रेमचंद के होरी या ... जैसे मेरुदंड वाले पात्र यदि नहीं पैदा हो पा सके तो इस का एकमात्र कारण यही है कि इन उपन्यासकारों का कोई सार्थक सामाजिक उद्देश्य नहीं है. —ज. ना. श्री.

'बेहतर'

'बेहतर' एक बेहतर पत्रिका है—साहित्यिक पत्रिका. सर्वोत्तम की आकांक्षा भी शायद संपादक की नहीं है. अन्यथा पत्रिका का यह नाम भी हो सकता था. सर्वोत्तम वैसे आज कुछ हो भी नहीं सकता. बेहतर होते जाना गतिशीलता का द्योतक है, सर्वोत्तम में ठहराव है. सर्वोत्तम होना वर्त्तमान से कट कर अतीत का स्पर्श करना है. शायद इसका अहसास संपादक को रहा हो तभी उसने यह नाम चुना.

हिंदी में छोटी मोटी साहित्यिक पत्रिकाओं की बाढ़ आयी हुई है. सभी पत्रिकाएँ इस बात की कोशिश कमोबेश करती हैं कि कुछ बड़े नाम उनकी पकड़ में आ जायें और नये नाम उनके साथ साथ चलें. यह बुरा नहीं है पर जरूरी भी नहीं है. बड़े नाम तो छपते ही रहते हैं और उनके बारे में ज्यादा कुछ जानना नहीं रहता. उनकी एक जैसी रचनाएँ पढ़ते पढ़ते ज्यादा नहीं पर थोड़ी ऊब होती है. पर साहित्य में जैसे अच्छी पत्रकारिता के लिए यह जरूरी माना जाता है. 'बेहतर' ने बेहतर पत्रकारिता की है और यह मोह उभर कर नहीं आने दिया है. लेकिन यह साधारण बात है और इसे ही लेकर 'बेहतर' की बेहतरी बताना उचित नहीं.

'बेहतर' की बेहतरी इस बात में है कि न तो वह तथाकथित शुद्ध कलावाद का ढिंढोरा पीटने वाली पत्रिका है न ही राजनीतिक मतवाद का चालू मुहावरा पकड़ कर चलने वाली पत्रिका. संपादक की दृष्टि साफ़ है. अधिकतर छोटी पत्रिकाएँ देख कर यह पता नहीं चलता कि आखिर साहित्य के प्रति संपादकीय दृष्टि क्या है. हर तरह की अच्छी बुरी रचना उसमें छपती है. पर 'बेहतर' इस मामले में बेहतर है कि उसकी संपादकीय दृष्टि साफ़ है. बल्कि कहा जाना चाहिए कि पूरी पत्रिका पढ़ कर संपादक का व्यक्तित्व उभर कर आता है. जब संपादक एक प्रतिष्ठित साहित्यकार हो तब यह और भी अच्छा लगता है. यूँ साहित्यिक पत्रकारिता के लिए यह एक हद तक जरूरी भी है. **अज्ञेय** के 'प्रतीक' के बाद यह सिलसिला खत्म हो गया था. 'बेहतर' से यह फिर शुरू हुआ है. **मुद्राराक्षस** का चौंकाने वाला अटपटा व्यक्तित्व पत्रिका में है पर यह व्यक्तित्व ठोस जमीन पर खड़ा हुआ है. पत्रिका पढ़ कर समसामयिक समाज का कटु यथार्थ उनमें प्रकाशित रचनाओं के माध्यम से सामने आता है और ऐसे खोखले, ढोंगी व्यक्तित्व भी जिनके कारण समाज साहित्य और पत्रकारिता की यह दुर्गति है.

'बेहतर' में तीन संपादकीय हैं. तीनों संपादकीय संपादक **मुद्राराक्षस** द्वारा लिखे गये हैं और एक जगह न दे कर अलग अलग दिये गये हैं और इस तरह प्रकाशित रचनाओं की प्रकृति की भूमिका बनते हैं और उन्हें पढ़े जाने के लिए मार्ग प्रशस्त करते हैं. पहले संपादकीय की शुरुआत है: 'इलियट की इस बात में काफ़ी सार है कि जिस ज़माने में बहुत ज्यादा मझोला यानी मीडियाकर लेखन होता है उसी ज़माने में स्तरीय साहित्य क्लासिक भी पैदा होता है. क्लासिक कौन बना इसका फैसला तो आने वाला वक्त कर सकता है लेकिन अपने समय का असाधारण लेखक कौन सा है यह देखना मुश्किल काम नहीं है. इसमें शक नहीं कि असाधारण लेखन की पहचान मझोले लेखन की भीड़ में थोड़ी दुर्गम है चूंकि मझोला लेखन अपनी पहचान शादी की बत्तियों की तरह कराता रहता है इसलिए असाधारण की थोड़े कम उजाले में लगभग असंपृक्त खड़ा देख कर की जा सकती है.'

पत्रिका द्वारा इस पहचान को बनाने का काम जितना जरूरी है उतना ही ज्यादा विवादास्पद भी है. साहित्य के क्षेत्र में जीवंत विवाद रुक गये हैं, वे राजनीतिक विचारों की आपाधापी तक ही सीमित हो गये हैं. यह पत्रिका ऐसा विवाद प्रथम अंक से ही शुरू करती है.

दूसरी विशेषता 'बेहतर' (**संपादक, मुद्राराक्षस ए. 206 सेक्टर 5, राम सागर मिश्र नगर, लखनऊ**) पत्रिका की यह है कि इस में झूठा आभिजात्य नहीं है जो अहं का ही एक स्वरूप होता है. गलत को गलत नाम ले कर इसमें कहा गया है और झूठे गाली गलौज या राजनीतिक चालू फिकरेबाजी से बचा गया है. आज के ज़माने में यह कम जोखिम का काम नहीं है. गलत को गलत नाम ले कर कहने से संभ्रांत साहित्यिक मुद्रा-निर्माण पर आँच आती है. पत्रिका का संपादक खरे, दो टूक ढंग से यह आँच झेलने को तैयार है. 'बेहतर' में एक ताज़गी है, अपना विशिष्ट चरित्र है, साहित्य की सही समझ है और समसामयिक समाज और व्यवस्था से कटा हुआ एकांतिक छद्म नहीं है. इस अनियतकालीन पत्र को नियतकालीन करने में योग दिया जाना चाहिए.

—स. द.-स.

रज़ा : भोपाल में

कला

मैं न बोलूँ, चित्र बोलें

मध्यप्रदेश शासन की ओर से 7 दिसंबर की शाम को **भोपाल** के **रवींद्र भवन** सभागार में पेरिस निवासी भारतीय चित्रकार 56 वर्षीय **सैयद हैदर रज़ा** का सम्मान किया गया. 1973 से शुरू हुए विविध कलाओं के समागम **उत्सव** में मूलतः मध्यप्रदेश के कवियों, रंगकर्मियों, संगीतकारों, कलाकारों आदि का सम्मान उन्हें भोपाल निमंत्रित कर के किया जाता रहा है. सम्मानित व्यक्तियों की सूची में अब तक कई नाम जुड़ चुके हैं. श्री **वीरेंद्र कुमार सकलेचा** ने रजा को प्रशस्ति भेंट की. और आमंत्रण स्वीकार करने के लिए उनका आभार माना. मध्यप्रदेश सरकार के मुख्य सचिव श्री **पसरीचा** ने श्री रज़ा के मध्यप्रदेश से गहरे संबंध (श्री रजा दमोह के हैं) और उन के योगदान को याद किया. मध्यप्रदेश कला परिषद् के सचिव श्री **अशोक वाजपेयी** ने प्रशस्ति पढ़ कर सुनायी. प्रशस्ति में रजा के जीवन परिचय के साथ ही, उन की कला यात्रा और उपलब्धियों का उल्लेख था: 'श्री रजा ने किसी सतही या नाटकीय भारतीयता या रूपाभिप्रायों का सहारा नहीं लिया. उन्होंने मध्यप्रदेश में बिताये अपने बचपन की यादों, नर्मदा के उद्गम के पास की रातों के रहस्य और भय, जंगलों और आदिवासी हाट बाजारों की आदिम जीवंतता, राजस्थानी मिनियेचर कला की सूक्ष्मताओं, प्राच्य दर्शन की अद्वैतवादी धारणाओं से अपनी कला के लिए एक ऐसा समृद्ध और अद्वितीय आधारलोक अर्जित किया है जो अपनी ऊर्जा और दृढ़ता में अप्रतिम है. . .' 'हम श्री सैयद हैदर रजा को उन की विराट कल्पनाशीलता, अदम्य सृजनशक्ति, निर्भीक समकालीनता और अपने उद्गम से अटूट संबद्धता के लिए सम्मानित करते हैं'. रजा की बारी आयी तो उन्होंने कहा, 'आप कल्पना कर सकते हैं कि जब मुझे पेरिस में मध्यप्रदेश सरकार का निमंत्रण मिला कि भोपाल आओ तो मेरे मन में कितनी उथल पुथल मची होगी. मेरा देश, मेरा प्रदेश मुझे भूला नहीं है. और मैं ही कहाँ भूला हूँ. आप के सामने हूँ. सच पूछिए तो पेरिस में आज मेरा घर जरूर है लेकिन मैं यहाँ से और कहीं नहीं गया. रज़ा हिंदी में बोले, फिर अंग्रेजी में. . . कहा, मन तो हो रहा है कि आप से फ्रांसीसी में बातें करूँ आज. . . मैं बहुत खुश हूँ. बहुत आभारी.' वह यह याद करना नहीं भूले कि 'मेरे जीवन में बहुतेरे संघर्ष और रचनात्मक संघर्ष रहे. . . आज भी हैं. लेकिन मैं युवा कलाकारों से कहना चाहता हूँ कि रचने की धुन के रास्ते में दरअसल कोई बाधा अंतिम कभी नहीं हो सकती.'

सम्मान के अवसर पर न केवल स्थानीय लेखक, कवि, कलाकार, पत्रकार और नागरिक बड़ी संख्या में उपस्थित थे बल्कि मध्यप्रदेश के अन्य शहरों से भी इसी अवसर के लिए आये थे. रज़ा अपने साथ पेरिस से लगभग 20 चित्र लाये हैं और 6 सेरीग्राफ. इन की एक प्रदर्शनी **म.प्र. कला परिषद्** की ओर से **ललित कला भवन** में आयोजित थी. यह 18 दिसंबर तक के लिए लगी. प्रदर्शनी के उद्घाटन के बाद रज़ा की कला पर एक परिचर्चा भी आयोजित थी जिस में रज़ा स्वयं शामिल हुए. परिचर्चा के लिए दिल्ली से अंग्रेजी के सुपरिचित कला समीक्षक और ललित कला अकादेमी के सचिव **श्री रिचर्ड बार्थोलोम्यु** और बंबई से कला मर्मज्ञ और रज़ा के आरंभिक वर्षों के काम से भी परिचित **प्रो. अबेरकर** भोपाल आये थे. श्री रिचर्ड ने कहा कि रजा ने अपनी कला की शुरूआत लैंडस्केप चित्रों से की थी लेकिन आज वह प्रकृति के चित्रकार हैं. श्री अंबेरकर ने याद किया कि रजा शुरू से बेहद अध्यवसायी थे और आधुनिक मुहावरे में काम करने के बावजूद प्राचीन भारतीय कला से उन का एक अटूट लगाव रहा. रज़ा के चित्रों में रंगों की विशेष भूमिका की चर्चा सभी ने की और कहा कि रंगों में उन की दक्षता आधुनिक भारतीय कला में एक उपलब्धि के रूप में याद की जायेगी. उन्होंने रंगों की उपस्थिति को चित्रों में अत्यधिक अभिव्यक्ति क्षम बनाया है. अमूर्तन की चर्चा आने पर रज़ा ने कहा: 'आप यह देखिए कि रंग भी मनुष्यों की तरह होते हैं, जब वे दो-तीन चार या पाँच एक जगह इकट्ठा होते हैं तो एक संवाद की स्थिति भी पैदा होती है' श्रोताओं के मुक्त हास्य के बीच उन्होंने जोड़ा, 'आप कभी यह भी पा सकते हैं कि रंगों की भीड़ से घबरा कर कोई रंग कहीं दूर भी भाग गया है' शब्द और रंग के संबंध पर बोलते हुए रज़ा ने कहा 'आप चित्रों को स्वयं देखिये, बीच में और किसी को मत आने दीजिए.' इस से यह गलतफहमी भी पैदा हुई कि वह शायद चित्र के शब्द के माध्यम से अर्थ-प्रेषण के ही खिलाफ हैं. लेकिन बाद में उन्होंने स्पष्ट किया: 'मैं दरअसल यह कहना चाहता था कि आप पहले स्वयं देखें, फिर उसे भी सुनें जो दूसरे कह रहे हैं—महत्त्वपूर्ण कुछ कह रहे हैं. मैं स्वयं भी यह चाहता था कि मैं न बोलूं चित्र बोलें'

दूसरे दिन सुबह स्थानीय और प्रदेश के विभिन्न शहरों और प्रदेश के बाहर से भी आये कलाकारों-लेखकों के साथ रज़ा की एक और अनौपचारिक गोष्ठी आयोजित हुई जिस में उन्होंने आज की कला स्थिति पर और अपनी कला पर और विस्तार से चर्चा की.

रज़ा के चित्र

रजा अपने साथ जो चित्र लायें हैं, वे सब पिछले दो साल के हैं—कुछ एक तो बिल्कुल हाल के हैं. पुस्तकों-पत्रिकाओं कैटलॉग और पिछले बरसों में प्रदर्शनियों में उन के छिटपुट चित्र जो पाठक देखते रहे हैं, वे याद करेंगे कि रजा कभी कभी तो संपूर्ण चित्र को एकवर्णी (मसलन नीला) रूप देते रहे हैं या फिर कुछ रंगों को प्रमुख कर के कैनवस पर रखते रहे हैं—जैसे एक दूसरे का पीछा करते रंगों को. उन के रंगों में एक अपनी ही निरावृत आभा है. एक धातुई चमक (वह केवल एक्रिलिक रंगों का इस्तेमाल करते हैं) और वे अक्सर अपने में जगहों और ऋतुओं का कोई न कोई सार छिपाये हुए हैं. रजा के नये चित्रों में भी यही चारित्रिक विशेषताएँ हैं, सिवाय एक बड़े और कुछ छोटे आकार के चित्रों में, जहाँ अब वे धूमिल और माटी के से रंगों का इस्तेमाल कर रहे हैं—अक्सर एक बिंदु या सूर्याकार को केंद्र में रख कर—

..., एक दिन ... एक पेंसिल से शाला में ... एक 'बिन्दु' बनाया और कहा: तुम तब भूल जाओ, शाला को, खेल को, कुटुम्ब को। ... बिन्दु पर ध्यान दो, इसी पर मन लगाओ। यह ... कई दिन, बाद में दूसरे विषय पढ़ाये गये। नये ... एकाग्रता बढ़ती गई, चेतावनी मिली। बिन्दु ... बन गया, प्रकाशमय, रंग दिखे, नये जीवन की ...

यह 'पाठ' आज ५० साल से मेरे जीवन में ... समय बदला, परिस्थितियाँ बदलीं, देश विदेश ... वास्तव में अभिलषित एक ही रही। अपने को ढूँढना, ... हुई शक्तियों को जगाना आसान नहीं है। एकाग्रता, साधना से ही आत्मविकास हो सकता है।

आरंभिक दिनों की बहुत सी यादें हैं। ... के बारे में भी कुछ कहना है। समय कम है। शब्द ... अतल शून्य की अनंतता कौन समझा सकता है ... चाहता हूँ - मैं न बोलूँ, चित्र बोलें।

हैदर र...

पेरिस, २६ नवम्बर '७८

राजस्थान

जरूरी नहीं कि चाक्षुष रूप से केंद्र में रख कर बल्कि चित्र की समग्रता के केंद्र में. यह उन का नया रुझान है. क्रम से देखें तो पहले उन्होंने एक समय आकारों को केंद्र से चले जाने दिया था, फिर रह गये थे रंग आभा के अरैखिक आकार—अब न रैखिकता है किसी भी तरह की, न रंग आभाएँ. यह भी लगता है कि वह अपने चित्रों को एक निश्चित वैचारिक दार्शनिक आधार देना चाहते हैं. उन्होंने एक चित्र का शीर्षक रखा है: **अतल शून्य की अनंतता**. यह दौर जाहिर है कि नया है और इसने अभी अपनी ही एक परिक्रमा नहीं पूरी की. इस दौर में रजा भारतीय दर्शन और तंत्र के संदर्भों का हवाला देते जान पड़ते हैं. वैसे इस नये दौरे की पूरी व्याख्या के लिए तैयार नहीं. बातचीत में उन्होंने कहा: 'मैं इसके बारे में 5 साल बाद बोलूंगा' लेकिन अब तक के हासिल से कुछ आशंकाएँ मन में उठ सकती हैं. उन पर बाद में. रजा अपने चित्रों को जिस तरह का रंग रूपक्रम देते हैं, उसके पीछे पीछे या साथ साथ चल कर आँखें जो पहचानती हैं, वह रंग (या रंगों) का हमारी मानसिक-आत्मिक जटिलताओं और प्रकृति की रहस्यमयता से एक साक्षात्कार है. रंग अपने अलंकारिक व्यावहारिक रूपों में ही यहाँ नहीं हैं, उन में अनुभवों को संचित, प्रत्यक्ष और सिद्ध करने का एक उपक्रम भी है.

रजा का मुहावरा किसी कदर अमूर्तन का एक अंतरराष्ट्रीय मुहावरा है, लेकिन न केवल रंगों में बल्कि उन की गतियों और रख रखाव में हम एक भारतीय मन और दृष्टि को मौजूद पाते हैं. इसी प्रदर्शनी का **ग्रीष्म आवास** चित्र शायद इस बात का एक अच्छा उदाहरण हो, मिनियेचर चित्रों के से हाशियों से कहीं प्रेरित नील पट्टियाँ चौतरफा, और ऊपर की ओर सफेद पट्टियाँ, नारंगी पीले, काले आदि के उमड़ते से लेकिन घुलनशील लगते अपारदर्शी [illegible] हुए—सब मन में भारतीय ग्रीष्म से जुड़े संवेगों और ऐंद्रिक अनुभवों को खींच लाते हैं. अगर हमें इस का शीर्षक न मालूम हो तो भी बहुत हद तक हम रंगों के घुलनशील, चटखते रूप में टटोल टटोल कर या सहज ही उन्हीं अनुभवों के निकट जा रहे होंगे, जिन के निकट हम शायद चित्र का शीर्षक पढ़ कर पहुँचते हैं. इसी चित्र में नीचे दायीं ओर, मानों इस आवास का एक द्वार सा है—अरैखिक रंगों से ही घिर कर बन गया. हम यह भी पाते हैं रजा के चित्रों में कि वे दरअसल सैरों (लैंडस्केप) का अमूर्तन नहीं हैं, बल्कि जगहों, वस्तुओं, रूपों, और मानसिक गतियों का एक **निचोड़** हैं. रंगों में यह निचोड़, रंगभाषा के बारे में हमारी संवेदना में बहुत कुछ जोड़ता है. दरअसल हम यहीं आ कर यह भी पहचान सकते हैं कि **रजा, हुसेन,** और **रामकुमार** (जो एक ही पीढ़ी के हैं) और **स्वामीनाथन, तैयब-मेहता, अंबादास** और **हिम्मतशाह, गणेश पाइन** जैसे चित्रकारों ने हमारे ही रंगों के साथ (यानी जो भारतीय जीवन में व्याप्त रहे हैं) हमारे मानसिक चाक्षुष बौद्धिक संबंध को उजागर किया है. और उन के रंग, बंगाल स्कूल की शैली से कितने भिन्न और बोध के स्तर पर **अपने समय** के साथ चलने वाले भी सिद्ध हुए. इन्होंने उन में अर्थ भरे हैं और उन के साथ हमारे लिए एक संवाद की स्थिति पैदाकी है.

तीन मंझोले कैनवसों को जोड़ कर बनाया गया रज़ा का एक और चित्र लें: बायीं ओर का पहला कैनवस बिल्कुल काला है, बीच वाला ऊपर से काला है, नीचे लाल, अंतिम कैनवस में ऊपर लाल सूर्याकार है, नीचे का हिस्सा पीला है. इसे सहज ही न केवल भारतीय रातों और दिनों से जोड़ सकते हैं (जिस की बात रज़ा ने स्वयं जंगलों में बिताये अपने बचपन के संदर्भ में की है) बल्कि उन रचनात्मक प्रतिक्रियाओं और क्रियाओं से जोड़ सकते हैं जो **एकवर्णी सघनता** (या अंधेरे) से धीरे धीरे हमें एक अभिव्यक्ति की दिशा में ले जाती हैं.

रज़ा के सैरीग्राफों में भी हम प्रकाश और रंगों का एक मोहाविष्ट 'खेल' देखते हैं. एक सेरीग्राफ तो उन के चित्र **आज** का ही प्रस्तुतीकरण है. पूरी प्रदर्शनी में यह, और **क्षितिजल पावक गगन समीरा** लिखी हुई एक और कृति थी जो याद दिलाती थीं कि रज़ा अपने चित्रों में पहले **देवनागरी** में हिंदी के दोहों और कविताओं की पंक्तियाँ भी लिखा करते थे. लिखा ही करते थे उन्हें चित्रित नहीं करते थे. और कह सकते हैं कि वे उन पंक्तियों का इस्तेमाल या तो संरचनात्मक स्तर पर करते थे या फिर चित्रों की मनःस्थितियों से सुमेल के स्तर पर. हाँ, उन में चित्रित भारतीय पांडुलिपियों की स्मृति भी कहीं अटकी रहा रती थी और एक सूक्ष्म स्तर पर परंपरा बोध से जुड़ी हुई थी. यहीं आ कर हम उन के नये रुझान को किसी कदर आलोचनात्मक ढंग से जाँच सकते हैं और उन आशंकाओं की बात कर सकते हैं जो उन के नये काम को देख कर उठती है. बिंदु की अवधारणा वाले जिस चित्र की चर्चा हम ने पहले की थी उस में रज़ा के वे सभी रंगसार बहिष्कृत हो गये हैं जिन के कारण हम रज़ा को रज़ा कर के जानते रहे हैं. यहाँ जिन 'मूल' अनुभवों की ओर लौटने का संकेत है, वे जैसे दृश्य तो हैं लेकिन रंगभाषा में श्रव्य नहीं. यहाँ दरअसल रंगों की चुप्पी या उन का मौन नहीं, उन की एक अपारदर्शी निश्चलता ही अधिक है. किसी कदर उन के ही काम के संदर्भ में यह एक **विरोधाभास** भी है. लेकिन जैसा कि हम ने पहले कहा उन के नये काम ने अपनी ही एक परिक्रमा पूरी नहीं की इस लिए उस के बारे में किसी नतीजे पर पहुँचना भी शायद जल्दबाजी होगी. और छोटे आकार के इसी अवधारणा वाले चित्र या रंगों का एक अपना ही रूपक्रम बनाते अंधेरी, सलेटी रंगतों वाले चित्र तो बहुत करके परिचित रज़ा के आसपास ही हैं.
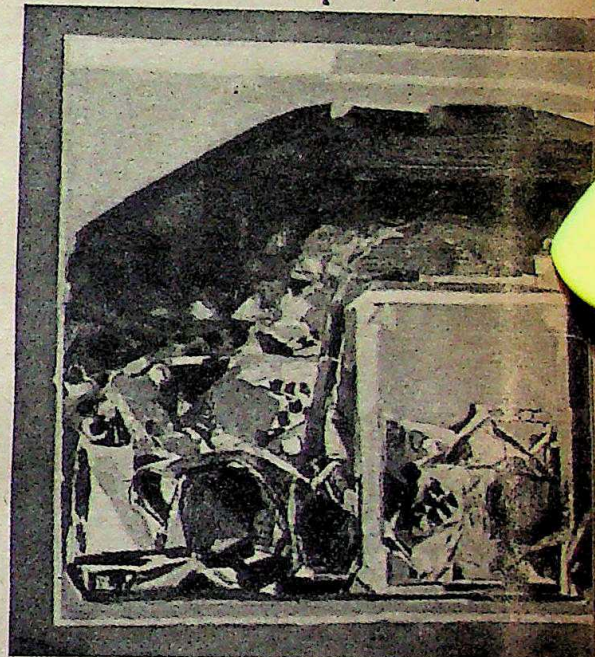
ग्रीष्म आवास

छोटे आकार के इन चित्रों में रंगाकारों का एक बिछाव है: बिते भर के या नन्हें रंगाकार, या तो चित्र-स्पेश में हीं आ जा रहे हैं या फिर एक रूपक्रम बनाये हुए बिछे हुए हैं. कुछ एक गुणन चिन्ह के रूप में हैं. रज़ा ने कुछ कैनवसों को जैसे जोड़ के चिन्ह से विभाजित कर दिया है—अत्यंत इकहरी और लगभग अदृश्य रेखाओं में है यह चिह्न. रज़ा चित्र-रूपों के अपने ही स्केल (मापक शर्तों) का एक आग्रह भी रखते हैं. और चित्र की **चित्रता** का भी. 'चित्रता ज़रूरी है हर हालत में'—बातचीत में उन्होंने एकाधिक बार यह दुहराया. रज़ा के काम में रंगों के एक मुक्त बहाव की प्रतीति रहती है लेकिन हम यह भी पहचानते हैं कि अंत में हर चीज़ अपनी ही एक 'गणित' से बँधी हुई भी है.

'कई चीजों से मिलकर बनता है एक चित्र'

रजा से प्रयाग शुक्ल की दो अंकों में समाप्य बातचीत

भोपाल में एक दोपहर **रजा** से जब यह मेरी बातचीत शुरू हुई तो मैंने पूछा **कहां से शुरू करें?** उत्तर में रजा ने कहा, 'जहां से आप का मन हो, मैं तैयार हूं.' बिल्कुल **शुरू से ही शुरू करें,** मैंने कहा.

पहला सवाल जो मैंने उनसे पूछा वह यही था **'क्या आप को उस पहले चित्र या चित्रों की याद है, जिसे आपने प्रदर्शित करने की बात सोची हो और प्रदर्शित किया हो.'** लेकिन रजा के जबाव पर आयें इस से पहले रजा के व्यक्तित्व के बारे में कुछ बताना मैं समझता हूं जरूरी होगा. रजा सौम्य आकर्षक और आत्मीय व्यक्तित्व के धनी हैं. उन के लहजे में नफासत है. कला के बारे में वह गंभीरता से बात करना पसंद करते हैं. रजा शब्दों के चयन के बारे में खासे सतर्क हैं. लेकिन इस का यह मतलब नहीं कि वह प्रवाह में नहीं बोलते. दरअसल वह न केवल प्रवाह में भी बोलते हैं बल्कि अपनी बात को एक खास शक्ल दे कर ही खत्म करना चाहते हैं. तत्सम शब्दों से उन्हें एक लगाव है. भारतीय होने का दिखावा उन्हें पसंद नहीं, लेकिन भारतीय ही बने रहने का न केवल उन का आग्रह है, बल्कि इस मुद्दे को ले कर वह बेहद संवेदनशील हैं. इस बातचीत में और उस के बाहर भी उन्होंने एकाधिक बार कहा कि ''एक भारतीय को 'मिटा' देना असंभव है''. (इट्स इंपासिबल टु अनडू एन इंडियन).

रजा दो चीजों पर एक साथ बात करना बिल्कुल पसंद नहीं करते. बात करते करते वह सही अभिव्यक्ति के लिए परेशान होते भी दीखते हैं लेकिन जब यह लगे कि बातचीत का घेरा कुछ बोझिल हो रहा है तो वह एक छटपटाहट के साथ उसे स्वयं तोड़ भी देते हैं. वह विश्वास के साथ बोलते हैं. संवेगों को वह बहुत कर के दबाते हैं. लेकिन उन के व्यक्तित्व में कुछ ऐसा भी है कि बातचीत में भाव प्रवण (और कभी कभी तो भावुक) ढंग से कई संवेग छन कर आ ही जाते हैं. इंटरव्यू जैसी चीज में तो वह बराबर किसी कदर गंभीर रहे, वैसे वह बातचीत बहुत रस ले कर, हँस-हँसा कर भी करते हैं. वह बेहद चुस्त और स्फूर्तिवान भी हैं.

रजा ने मेरे पहले सवाल के जबाव में कहा—चित्र प्रदर्शित करना तो मैंने **प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट ग्रुप** (वह उस के संस्थापक सदस्यों में रहे हैं, हुसेन, सूजा, आरा आदि के साथ) के दिनों से ही शुरू कर दिया था लेकिन सच पूछें तो मैंने अपने पहले चित्र पेरिस में बनाये. 50-52 में—ठीक ठीक जानते हुए कि मैं क्या कर रहा हूँ, या क्या करना चाह रहा हूँ. हाँ, शुरू में मेरे चित्रों में लैंडस्केप ही रहा करते थे. देखिए जब मैं मध्यप्रदेश का प्राकृतिक वातावरण छोड़ कर बंबई आया और दूसरे शहर भी देखे तो एक विरोधाभास के रूप में सड़कों, गलियों, घरों आदि ने आँखों पर खास तरह का आघात किया. वैसे लैंडस्केप में भी मैं कोई यथातथ्य चित्रण तो करता नहीं था. जगहों और आकारों और उन में बसे रंगों की कोई बात ही ढूंढता था. और प्रकृति भी उन के बीच से बिल्कुल चली तो गयी नहीं थी.

हाँ, जहाँ तक आप के पुराने चित्रों की प्रतिकृतियों से मुझे याद पड़ता है, उन में भी एक सूर्य-चंद्राकार कहीं टंगा रहता था.

नहीं, केवल उसी अर्थ में नहीं. इस अर्थ में भी कि मेरे मन में प्रकृति बराबर एक खास तरह से बसी रही है. मसलन उस का कहीं न दिखाई पड़ना भी तो इन चित्रों में काम करता रहा होगा.

पेरिस के जिन चित्रों की बात आपने कही उन का माध्यम तो भिन्न था. अब तो आप केवल एक्रिलिक रंगों में काम करते हैं?

हाँ, उन का माध्यम भिन्न था. मैं तब टेंपेरा में, जलरंगों में काम किया करता था. मेरे उस काम को बहुत सफलता भी मिली. लेकिन एक समय आया जब मुझे लगा कि मैं कुछ और तलाश कर रहा हूँ और उन चित्रों के ढाँचे में मैं उसे नहीं रख पा रहा. मैं चित्रों की गढ़न पर बराबर से जोर दिया करता था अब यह गढ़न नये रूपों में प्रकट हुई. मेरे चित्रों से रूपाकार चले गये. मुझे कहीं यह भी लग रहा था कि जगहों के अनुभव और रूप, निश्चित आकारों में तो अधूरे रूप में ही प्रकट होते हैं. मसलन मैंने **राजस्थान** पर आधारित चित्र उन दिनों भी बनाये लेकिन जब बाद में बनाये या आज भी बनाता हूँ तो उनमें राजस्थान प्रत्यक्ष रूप में तो नहीं है, लेकिन वह है जरूर. रंगों में ही कहीं उसका मोर, उसके रंग, उसके दृश्य सब हैं. जब हम किसी जगह को देखते हैं या उसके बारे में सोचते हैं तो हम तक वही नहीं पहुँचता जो सामने दिखायी पड़ रहा है. न जाने कितनी चीजों से मिलकर बनता है एक अनुभव. एक चित्र.

क्या आप रोज काम करते हैं? चित्र बनाने से पहले क्या उसका संभावित रूप आप के मन में रहता है?

चलिये पूरी बात बताता हूँ. मैं अपने स्टूडियो में 1 बजे पहुँचता हूँ. (बड़ी सुविधा है न यह—रजा ने जोड़ा) अगर किसी चित्र पर काम कर रहा होता हूँ तो पहले उसे देखता हूँ. किसी नये चित्र पर काम करना चाहता हूँ तो भी अपने को एकाग्र करता हूँ. नहीं, मैं कोई खाका नहीं खींचता. पेंसिल से तो कभी नहीं. अक्सर पीले में कुछ बना डालता हूँ. जरूरी नहीं कि वह अंत तक रहे. मैं काम जमीन पर बैठ कर ही करता हूँ. वैसे ईजल भी है. उस पर भी चित्र को रखकर देखता हूँ.

चित्रों के अलावा रेखांकन करते हैं आप इन दिनों?

करता हूँ. लेकिन बताता नहीं उन्हें.

आज बहुत करके सभी जगह कला आंदोलनों का—मुहर छाप आंदोलनों का अभाव है. जो थे वे अपनी आयु पूरी कर चुके हैं. कलाकारों के प्रचारित ग्रुप भी कम हो रहे हैं. क्या इससे कलाकार एक जगह अकेला और व्यक्तिनिष्ठ हुआ है. पहचान का एक नया संकट है?

देखिये, एक जगह तो मैं आंदोलनों—ग्रुपों को जरूरी मानता हूँ. वास्तविक रूप में आंदोलन खत्म हुए हैं, यह सही है लेकिन कोशिश तो चलती रहती है. पश्चिम में ही हाइपर रियलिज्म जैसे कुछ नाम सामने आये हैं यह आप जानते ही हैं. यह अलग बात है कि इनके अंतर्गत बहुत अच्छा काम सामने न आया हो. पश्चिम में काफी काम चौंकाने वाला हो रहा है. 'बॉडी आर्ट' जैसे. तमाशे हैं कई. लेकिन कला आंदोलनों, ग्रुपों की एक जरूरत कलाकार को रहती है—इससे लोगों को शुरू में यह आसानी होती है कि वे किसी या किन्हीं कलाकारों के काम को सारी भीड़ में कुछ अलग पहचान सकें. वैसे यह तो है ही कि अंत में हर कलाकार की अपनी ही पहचान होनी होगी.

कला के अंतरराष्ट्रीय मुहावरे के बारे में आप क्या सोचते हैं? अमेरिकी कला समीक्षक रोज़ेनबर्ग ने एक जगह कहा था कि अंतरराष्ट्रीय मुहावरे के नाम पर एक ग्लोबल आर्ट पनपाया जा रहा है?

हाँ, यह एक अहम सवाल है. पर एक स्तर पर यह मुझे लाजिमी लगता है. आवाजाही, लेनदेन बहुत बढ़ा है. प्रचार-प्रसार के साधन भी. आवागमन के भी. तो आज हम कई चीजों से बच नहीं सकते. कुछ प्रभावों की भी बात हो रही थी न? जितना ही ज्यादा देखने को मिलता है उतनी ही नयी स्थितियाँ भी पैदा होती हैं. लेकिन मैं समझता हूँ कि यह किसी कलाकार पर निर्भर करता है कि वह क्या ग्रहण करता है, क्या छोड़ देता है. अपनी जमीन पक्की होनी चाहिए. अंतरराष्ट्रीय मुहावरे की चर्चा बहुत होती है लेकिन अगर ऐसा कोई मुहावरा है भी तो उससे कलाकार की अपने काम में जिम्मेदारी कहीं कम नहीं होती.

[अगले अंक में : 'आज कह सकते हैं']

कालिदास समारोह १९७८

उज्जैन में कालिदास समारोह, इस कस्बे में भावतरंगें उठाता हुआ आता है और आगामी वर्ष के लिए कई प्रश्न छोड़ कर चला जाता है. इस वर्ष 11 नवंबर से प्रारंभ होने वाले समारोह में प्रारंभ से ही वर्षा ने करिश्मा दिखाना शुरू किया. अतः प्राच्यवाणी कलकत्ता को 11 नवंबर का अपना नाट्य नृत्य रूपक 6 मोहन मेघम विक्रम कीर्ति मंदिर में प्रस्तुत करने के लिए विवश होना पड़ा. निर्देशक **रमा चौधरी** ने इस रूपक का आलेख भी तैयार किया था. मणिपुरी और भरतनाट्यम् के समायोजन ने इस रूपक को अर्थवत्ता प्रदान की. संगीत का अनुकूल और वांछित सहयोग श्रुतिमधुर और मोहक था.

12 नवंबर को 'कला निलयम' मद्रास ने 'कालिदास' बैले प्रस्तुत किया. यह नाटक तकनीकी दृष्टि से संपन्न था पर अत्यधिक तड़क भड़क ने कालिदास की भाव संपदा को प्रस्फुटित ही न होने दिया. प्रकाश का चमत्कार, पर्दों का उठना गिरना, पोशाकों का अति शीघ्रगामी होना और सिनेमा स्लाइडों तक का प्रयोग चमत्कृत तो कर गया, पर समझदार दर्शकों को भाव विभोर न कर सका.

13 तारीख की रात पानी की मार से पीड़ित मध्यप्रदेश नाटक लोक कला अकादेमी ने मूल संस्कृत में अपनी प्रस्तुति विक्रम कीर्ति मंदिर में की. वरना क्षीर सागर मैदान पर बनाया गया मुक्ताकाशी मंच ही इस के लिए उपयुक्त था. सधा हुआ अभिनय, शास्त्रीय विधि विधान पालन, नाट्य शास्त्र में वर्णित रूढ़ियों का यथा संभव प्रकाशन, मुद्राओं का भावानुकूल प्रयोग, अंगसंचालन, गति और यति का समन्वय, वाणी में संस्कृत का स्वाभाविक अवरोह, संरचनाओं की बिंब ग्राह्यता और संगीत का भावानुकूल, सुरुचिपूर्ण संयोजन, इस नाटक की ऐसी विशेषताएँ थीं कि संस्कृत का अनभिज्ञ भी 'वाह वाह' कर उठा. रफीकख खान (राम) अभिलाष भट्टाचार्य (लक्ष्मण) सोमेश (भरत) सुरजीत सिंह (रावण) प्रमुख पात्र थे. अपनी अपनी भूमिकाओं के साथ इन अभिनेताओं ने पूरा पूरा न्याय किया. दशरथ की भूमिका में विजयेंद्र शास्त्री और सुमंत की भूमिका में मंगल का अभिनय स्वाभाविक तथा हास्य अभिनेताओं की लघु भूमिकाओं में जयंत बड़े और राधेश्याम जोशी प्रभावशाली थे. स्त्री पात्रों की भूमिका में कैकेयी (रमा श्रीवास्तव) प्र. सीता (उषा किरन) सुमित्रा (वीणा तिवारी) सहज थीं. ओम प्रकाश शर्मा की संगीत संरचना मधुर और भाव संप्रेरिणी थी. निर्देशक थे प्रभात कुमार भट्टाचार्य, श्रीनिवास रथ और राजकुमुद.

14 तारीख को वर्षा नहीं हुई तथा मुक्ताकाशी मंच पर दिल्ली की नाट्य संस्था अग्रदूत ने स्वप्नवासवदत्ता का हिंदी रूपांतरण **राजा का सपना** शीर्षक से प्रस्तुत किया. सीधा सरल मंच, पात्रानुकूल रूप सज्जा और सहज अभिनय के माध्यम से इस प्रणय कथा का अवलोकन तृप्ति दायक था. इस की समूह संरचनाएँ मार्मिक थीं पर अभिनय शिथिल था. श्री बब्बर राजा की भूमिका को आत्मसात नहीं कर पाये. श्रीमती बब्बर का अभिनय प्रभावपूर्ण था. 15 नवंबर को धीरेंद्र कुमार के निर्देशन में **मुद्राराक्षस** का मंचन क्षीरसागर के मुक्ताकाशी मंच पर किया था. धीरेंद्र कुमार ने कथकली, भरत नाट्यम, और कावूदी शिल्प का समायोजन कर तथा बादल चंद्र और सूर्य के प्रतीकों में एक रूपक का संयोजन कर चमत्कार की संरचना की. पर इस से नाटक का कथ्य घायल हो गया.

'मुद्राराक्षस' में राक्षस (नवीन डेविड) और सपेरा (राम राजेश मिश्र)

'प्रतिमा नाटक' का एक दृश्य

वैसे राम राजेश मिश्र और राजेन्द्र अवस्थी का अभिनय सहज और आकर्षक था. पर परिपक्व अभिनेतागण भगवती शर्मा (चाणक्य के रूप में कुशल चमत्कारपूर्ण अभिनय के बावजूद) और नवीन डेविड (काबुली मेकअप के कारण) अपनी ख्याति के अनुकूल अभिनय नहीं कर सके. दोष उन का नहीं, धीरेंद्र के कल्पित चमत्कार विधान का है. धीरेंद्र में असीम संभावनाएँ हैं, अब वह परिपक्वता की ओर बढ़ रहे हैं, पर चमत्कार मोह से उन्हें पीछा छुड़ा लेना चाहिए. 16 नवंबर को संयुक्ता पाणिग्रही ने ओडिसी नृत्य से दर्शकों को मुग्ध कर दिया.

फ़िल्म

बुडापेस्ट की कहानियाँ

'बुडापेस्ट की कहानियाँ' फ़िल्म का एक प्रसंग

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर यदि हम इस बात के आँकड़े इकट्ठा करें कि दुनिया के कितने लोग फ़िल्में देखते हैं और किन देशों की फ़िल्में देखते हैं तो हमें अनेक दिलचस्प तथ्य प्राप्त हो सकते हैं. यह अनुमान तो आसानी से लगाया जा सकता है कि सब से अधिक अमेरिकी सिनेमा ही दुनिया भर में दिखाया जा रहा है. एक अनुमान के अनुसार दुनिया में हर वर्ष लगभग चार हज़ार फ़िल्में बनती हैं. इन में से दो सौ फ़िल्में अमेरिका और डेढ़ सौ से ले कर दो सौ फ़िल्में इटली में बनती हैं. यानी प्रतिशत के हिसाब से इन देशों की फ़िल्में बहुत अधिक नहीं हैं. लेकिन जब हम इन फ़िल्मों के प्रदर्शन की बात करते हैं तो हम पाते हैं कि 60 से ले कर 70 प्रतिशत तक अमेरिकी फ़िल्में सिनेमाघरों को घेरे रहती हैं. फ्रांस, इटली और ब्रिटेन का हिस्सा लगभग 25 प्रतिशत है. अब ज़ाहिर है कि बाकी पांच प्रतिशत में तीन हज़ार फ़िल्में प्रतियोगिता में रहती हैं. पिछले कुछ वर्षों में बड़ी कोशिशें हुई हैं (खास तौर से सोवियत संघ तथा अन्य समाजवादी देशों के द्वारा) कि अमेरिकी फ़िल्मों के इस व्यापक प्रदर्शन को कुछ सीमा तक नियंत्रित किया जाये. फ़िल्म आज की दुनिया में इतना अधिक सशक्त माध्यम हो चुका है कि कोई भी देश इस क्षेत्र में अपनी ताकत को कम नहीं करना चाहेगा. समाजवादी देशों के साथ एक लंबे समय तक यह दिक्कत रही है कि उन की फ़िल्में प्रचार और विचार-धारा के आग्रहों से काफ़ी बोझिल रहती हैं. इस के अलावा एक समस्या यह भी है कि इन देशों का सिनेमा अक्सर व्यावसायिक शर्तों पर पिछड़ जाता है. सोवियत संघ का जहां तक सवाल है वहाँ के सिनेमा ने तीसरी दुनिया और खास तौर से भारत जैसे देशों में अपनी जगह बनाने की कोशिशें इधर हॉलीवुड स्तर पर ही की हैं. लेकिन पूर्व यूरोपीय सिनेमा ने पिछले 25 वर्षों में जो अपनी एक विशिष्ट पहचान बनायी है उस का संबंध अच्छी फ़िल्म की एक प्रौढ़ भाषा के निर्माण से है. यही वजह है कि चेकोस्लोवाकिया, पोलैंड और हंगरी जैसे देशों के फ़िल्म उद्योग ने जिन प्रतिभाओं को सामने आने का अपेक्षाकृत खुला अवसर दिया है उससे उन देशों के बारे में दुनिया भर में एक अनुकूल वातावरण बन सका है. इन देशों का सिनेमा हॉलीवुड की फ़िल्मों के स्तर पर लोकप्रियता बड़ी मुश्किल से पा सकता है पर ध्यान देने की बात यह है कि अगर कुछ गंभीर किस्म के दर्शक भी इन फ़िल्मों को देख पा रहे हैं, तो इस से स्थिति के प्रति काफ़ी आशावादी हुआ जा सकता है.

चेकोस्लोवाकिया और रोमानिया इन दो देशों की फ़िल्मों के बारे में अभी पिछले ही दिनों हमने इस स्तंभ में लिखा है. पूर्व यूरोपीय सिनेमा में हंगरी एक अन्य ऐसा देश है जहाँ पर फ़िल्में संख्या की दृष्टि से बहुत ज़्यादा न भी बन रही हों पर उन में से तीन-चार फ़िल्में हर वर्ष अलग की जा सकती हैं. हंगरी में साल में अगर बीस कथा-फ़िल्में बन रही हैं तो उस में से चार-पाँच फ़िल्में अंतरराष्ट्रीय महोत्सवों और फ़िल्म सोसायटियों का विशेष आकर्षण जरूर बन जाती हैं. **मिकलोश यांचो** की फ़िल्म 'द राउंड अप' ने पिछले दशक के मध्य में जो विशिष्ट चर्चा पायी थी उसने हंगरी सिनेमा को एक नयी ज़मीन पर ला दिया. यह सही है कि यांचो से पहले **सोलतान फ़ाबरी** की फ़िल्मों ने अंतरराष्ट्रीय दर्शक-वर्ग में प्रतिष्ठा पायी थी पर यांचो की फ़िल्मों के व्याकरण ने दुनिया भर के युवा फ़िल्मकारों में द्वंद्वात्मक विचारों के अद्भुत सौंदर्य को प्रतिष्ठा दिलायी. 1965 में यांचो की फ़िल्में आने के बाद हंगरी में तमाम ऐसे फ़िल्मकार सामने आये जिन की फ़िल्मों ने 'युद्ध और नये समाज की सीमित सामग्री' में से कलात्मक स्तर पर बहुत कुछ पा लिया है.
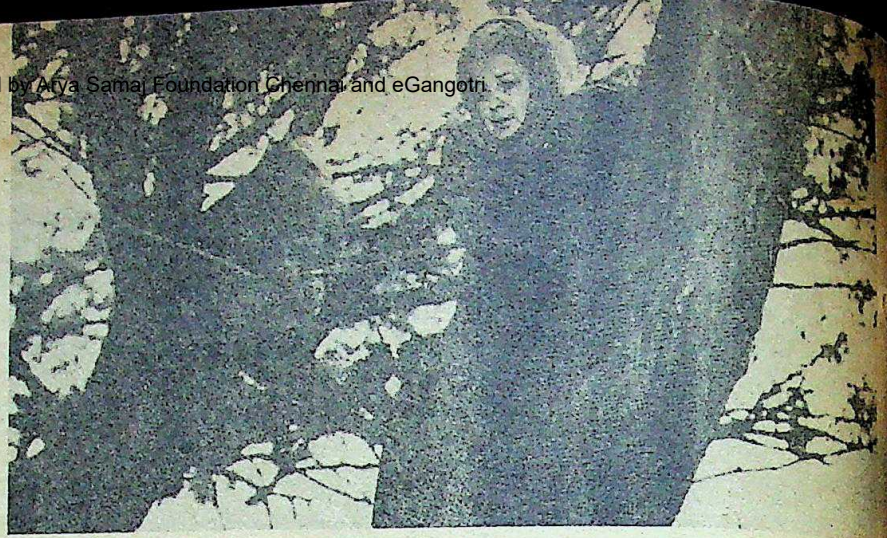
हम यहाँ दो हंगारी फ़िल्मों की संक्षिप्त चर्चा करेंगे जो पिछले दिनों नयी दिल्ली के हंगारी सूचना केंद्र में दिखायी गयी थीं. ये दो फ़िल्में हैं 'पहचान' (आइडेंटीफ़िकेशन) तथा 'बुडापेस्ट की कहानियाँ' (बुडापेस्ट टेल्स). 'बुडापेस्ट टेल्स' फ़िल्म की पृष्ठभूमि में दूसरे विश्व युद्ध की तबाही है पर जहाँ तक इस फ़िल्म का सवाल है इस की कहानी एक बिल्कुल दूसरे ही (फ़ंतासीप्रधान) स्तर पर चलती है. कुछ लोग अपना बचा-खुचा सामान लादे कहीं से आ रहे हैं और उन्हें एक नदी के किनारे एक ट्राम कार औंधी पड़ी हालत में मिलती है. बारिश वगैरह से बचने के लिए ये लोग उस ट्राम को बड़ी मेहनत से पटरी पर लाते हैं और फिर सोचते हैं कि यह हमें किसी न किसी शहर तो पहुँचायेगी ही. शहर के बाहर एक ट्राम डिपो तो होगा ही. धीरे-धीरे इस ट्राम में और भी बहुत से लोग आ जाते हैं. वे कहाँ से आ रहे हैं और कहाँ जा रहे हैं यह बहुत स्पष्ट नहीं रहता. लड़ाइयाँ, प्रेम, दोस्ती, तनाव आदि इन मानवीय संवेगों की जटिलताओं के बीच इस फ़िल्म से हम बिल्कुल एक दूसरी ही दुनिया में चले जाते हैं. अंत में किसी तरह से वह ट्राम कई सालों के बाद (ट्राम में जन्मे बच्चे बड़े हो गये हैं) एक स्टेशन पर पहुँचती है और हम देखते हैं कि वैसी ही कई और ट्रामें उस स्टेशन पर चारों तरफ से आ रही हैं. फ़िल्मकार **इस्तवान साबो** ने इस अद्भुत ट्राम-यात्रा को जिस सूझ-बूझ के साथ फ़िल्माया है उस से कई रास्ते खुल जाते हैं.

'पहचान' फ़िल्म की कहानी की पृष्ठभूमि में भी युद्ध है. पर इस फ़िल्म में भी युद्ध के व्यावसायिक रूप का इस्तेमाल नहीं किया गया है. फौजियों की एक टोली लड़ाई के बाद थकी हुई हालत में अपने घर की ओर एक रेलगाड़ी से वापस लौट रही है. घर वापस जाने से पहले रास्ते में सरकारी कर्मचारी और सिपाही इन फौजियों में से जो खतरनाक आदमी समझे जा सकते हैं उन्हें अलग कर के बाकी सब को कुछ धन और रोटी-कंबल देकर रवाना कर रहे हैं. फ़िल्म के नायक की समस्या यह है कि उसे फौज से मुक्त करते समय एक गलत नाम दे दिया गया है और वह नहीं चाहता कि वह इस नाम से पैसा और दूसरी तरह की मदद पा कर अपनी नयी ज़िंदगी शुरू करे. फौज के अनुभव ने उस की मानसिकता को अर्द्ध विक्षिप्त रूप तो दे दिया है पर उस में अभी इतनी तर्क बुद्धि और समझ बची हुई है कि वह दूसरे की पहचान को अपने पर हमेशा के लिए न लादे. वह अधिकारियों को यह बात बताता है. पर इस सारी भीड़ भाड़ में अधिकारियों की दिलचस्पी उस के नाम में नहीं है. अंत में नायक एक महत्त्वपूर्ण अधिकारी के घर रात को पहुँच जाता है. वह कुछ लोगों के द्वारा पिट कर वहाँ आया है और उस अधिकारी से हाथापाई के बाद घायल अवस्था में उसे अधिकारी की कृपा से उसी घर में सोने की जगह मिल जाती है. सुबह होने से पहले वह अधिकारी की पिस्तौल ले कर भाग जाता है पर सिपाही उसे पकड़ लेते हैं. तब उसे अपनी पहचान मिलती है.

वी.पी.पी. द्वारा माल मंगाइये

नये वर्ष का उपहार : $7\frac{1}{2}'' \times 5''$ आकार की डायरी
आधुनिक लेखक चित्रावली • पुस्तकें ठीक आधे मूल्य में
केवल सदस्यता-शुल्क 3/- और डाक-व्यय देकर निम्नांकित सूची में से 60/- की पुस्तकों के
अजिल्द पेपरबैक संस्करण 30/- में • 31 दिसम्बर तक आदेश देकर घर बैठे वी पी पी मँगाइए।

आलोचना पुस्तक परिवार

उपन्यास

पुस्तक	लेखक	मूल्य
सबहि नचावत राम गोसाइं	भगवतीचरण वर्मा	27.00
पुनर्नवा	हजारीप्रसाद द्विवेदी	22.00
अनामदास का पोथा	" "	14.00
मैला आँचल	फणीश्वरनाथ 'रेणु'	20.00
सुहाग के नूपुर	अमृतलाल नागर	14.00
बाबा बटेसरनाथ	नागार्जुन	7.50
रागदरबारी	श्रीलाल शुक्ल	25.00
मित्रो मरजानी	कृष्णा सोबती	8.00
तमस	भीष्म साहनी	18.00
आधा गाँव	राही मासूम रजा	25.00
वे दिन	निर्मल वर्मा	14.00
लाल टीन की छत	निर्मल वर्मा	17.00
दूसरी तरफ	महेन्द्र भल्ला	25.00
नंगा शहर	भीमसेन त्यागी	12.00
साहब बीबी गुलाम	विमल मित्र	24.00
राजावक्त	विमल मित्र	10.00
अश्लील	समरेश बसु	12.00
आशा-आकांक्षा	शंकर	12.00
चौरंगी	शंकर	24.00
लाल पसीना	अभिमन्यु अनत	24.00

कहानी-संग्रह

पुस्तक	लेखक	मूल्य
ठुमरी	फणीश्वरनाथ 'रेणु'	8.00
वाङ्चू	भीष्म साहनी	10.00
चिलमन	बलवन्त सिंह	9.00

नाटक

पुस्तक	लेखक	मूल्य
लहरों के राजहंस	मोहन राकेश	8.00
एवम् इन्द्रजित	बादल सरकार	7.00
मेरे बच्चे	आर्थर मिलर	12.00

कविता-संग्रह

पुस्तक	लेखक	मूल्य
जंगल का दर्द	सर्वेश्वरदयाल सक्सेना	9.00
जलसाघर	श्रीकान्त वर्मा	9.00
आत्महत्या के विरुद्ध	रघुवीर सहाय	10.00

हास्य-व्यंग्य

पुस्तक	लेखक	मूल्य
पगडण्डियों का जमाना	हरिशंकर परसाई	8.00
जीप पर सवार इल्लियाँ	शरद जोशी	9.00
भित्तिचित्र	रवीन्द्रनाथ त्यागी	9.00

संस्मरण : यात्रावृत्त

पुस्तक	लेखक	मूल्य
चीड़ों पर चाँदनी	निर्मल वर्मा	12.00
हम हशमत	कृष्णा सोबती	15.00
नेपाली क्रान्तिकथा	फणीश्वरनाथ 'रेणु'	8.00

राजकमल प्रकाशन ८, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-११०००२

रुद्राक्ष एवं रत्न

1 से 14 मुखी रुद्राक्ष, गौरीशंकर, रुद्राक्ष, चंदन, तुलसी, स्फटिक माला, दक्षिणावर्ती शंख, राशि के अनुसार भाग्य-वर्द्धक रत्न, शुद्ध केसर, शिलाजीत, गोरोचन तथा अन्य धार्मिक एवं पूजा सामग्री का सूचीपत्र मुफ्त प्राप्त करें :—

श्री जगदम्बा भवन
(D.M.)
सोनीपत-131001

पैनल में अपना विज्ञापन दीजिए
और लाभ उठाइए
अधिक जानकारी के लिए संपर्क कीजिए
विज्ञापन व्यवस्थापक

दिनमान

(टाइम्स आफ इण्डिया प्रकाशन)
7, बहादुरशाह जफर मार्ग
नई दिल्ली—110002. फोन 270161/257
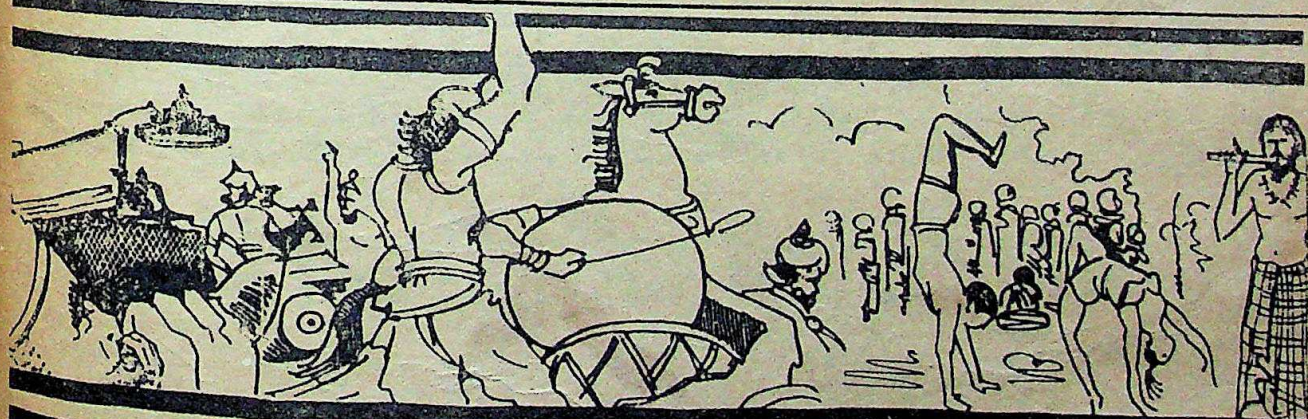
नवभारत टाइम्स संवत्सर १९७९

सभ्यता और मनोरंजन

168 पृष्ठ

टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन मूल्य 6/-

7 बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली 110002

पंजीयत सं. D-(C)-183
पूर्व शुल्क के बिना डाक में डालने की अनुमति–लाइसेंस सं. U-13

ये
शुद्ध ऊन है

ये
शायद नहीं

आप कौन सी खरीदती रही हैं ?

दरअसल, आजकल बहुत से बुनाई के [illegible] ऊनी न होते हुए भी ऊनी का लेबल लगाकर, ऊनी के रूप में बेचे जा रहे हैं. अगर आप बुनाई के लिए शुद्ध, मिलावटरहित पक्के रंगवाली रंगबिरंगी ऊन खरीदना चाहें तो उस पर वूलमार्क अवश्य देख लें. वूलमार्क शुद्ध, नयी ऊन का विश्वास दिलाता है.

*वूलमार्क, बुनाई की ऊन पर इन गुणों का विश्वास दिलाता है :
- शुद्ध, मिलावटरहित ऊन
- पक्का रंग
- आकर्षक रंग छटाएं
- अधिक टिकाऊ

वूलमार्क.
शुद्ध, मिलावटरहित ऊन का विश्वास.

18/12/78

17-23 दिसंबर, 1978
26 मार्गशीर्ष—2 पौष, 1900
रु. 1.50

चरणसिंह की कीमत
रामानंद तिवारी
मस्कवा-काबुल धुरी
गांधी, लोहिया और भला कौन ?

सिर्फ़ 365 रुपये ज़्यादा
और हमारे एक्सकर्सन
फ़ेयर में आपको और भी फ़ायदे—
आते या जाते वक़्त रास्ते में एक
जगह रुकने की सुविधा.
लंदन, पेरिस, जिनेवा, रोम या
फ़्रैंकफ़ुर्ट में से कोई एक रंगीन शहर
चुनिए. न्यू यॉर्क से उत्तरी अमेरिका
और कनाडा के दूसरे शहरों के लिए
सुविधाजनक कनेक्शन.
लेकिन पहले हमारे या अपने
ट्रैवेल एजेंट के कार्यालय में आइए और
पूरी जानकारी हासिल कीजिए.
एयर-इंडिया
शुभ यात्रा...शुभ संदेश
अमेरिका जाते समय
यूरोप में ठहरते हुए जाइए.

मत और सम्मत

शतरंज की मोहरे

लोकसभा के पिछले तीन उपचुनावों की विशेषता यह रही कि आजमगढ़, चिकमगलूर एवं समस्तीपुर से इंदिरा कांग्रेस की उम्मीदवार स्त्रियाँ ही रहीं. किंतु जहाँ आजमगढ़ एवं चिकमगलूर ने इन स्त्री उम्मीदवारों को विजयी बनाया वहीं समस्तीपुर के मतदाताओं ने कांग्रेस की दिग्गज नेत्री को शिकस्त दे दी. आजमगढ़ और चिकमगलूर में इंदिरा कांग्रेस की सफलता का सब से बड़ा कारण यह रहा कि वहाँ इन्हें गरीब या निचला वर्ग, हरिजन वर्ग और सामान्य जन का भरपूर समर्थन मिला जब कि समस्तीपुर चुनाव क्षेत्र में आरक्षण संबंधी नियम को ले कर यही वर्ग इंदिरा कांग्रेस के पक्ष में न हो कर विपक्ष में चला गया. फलस्वरूप श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा के लिए समस्तीपुर की जीत टेढ़ी खीर हो गयी.

बिहार में इंदिरा कांग्रेस को अपनी सफलता और लोकप्रियता पाने के लिए आरक्षण संबंधी नियमों को समर्थन देना अब अनिवार्य हो गया है.—सुरेशचंद्र गुप्त, बैंकुडपुर (सरगुजा)

और हरिजन

समस्तीपुर उपचुनाव में जनता पार्टी की जीत को जनता नेताओं ने लोकतांत्रिक शक्तियों की जीत, गरीबों की जीत, तानाशाही शक्तियों की हार कहा. वास्तविकता यह है कि यह चुनाव किसी सिद्धांत व मूल्य पर आधारित न हो कर, जात पाँत की लड़ाई थी. समस्तीपुर की संरचना के आधार पर कर्पूरी ठाकुर के उम्मीदवार को जीतना था और वह जीता, परंतु वोटों का अंतर निश्चित रूप से कर्पूरी ठाकुर की आशा के विपरीत था. और यह अंतर कर्पूरी ठाकुर की भविष्य की परेशानियों को साबित करेगा. समूचे प्रशासन को ठप्प कर जनता सरकार के मंत्रियों का समस्तीपुर में व्यस्त रहना एवं चुनाव के समय गैर जिम्मेदाराना कार्य कलाप——पता नहीं जनता पार्टी के किन लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा करता है? इस चुनाव ने यह बात स्पष्ट कर दी है कि भविष्य में बिहार में जिस तरह के भी चुनाव हों, वे उच्च जाति बनाम पिछड़ी जाति के आधार पर लड़े जायेंगे. इस का श्रेय कर्पूरी ठाकुर को होगा और बिहार की जाति पर आधारित यह राजनीति जनता पार्टी के एक बड़े भाग को अवश्य ही प्रभावित करेगी. ऐसे हालात में उन मूल्यों का क्या होगा जिन के आधार पर बिहार आंदोलन चला था, विद्यार्थी एवं युवा वर्ग ने कुर्बानियाँ दी थीं.

——बसंत कुमार, बी.एस.सी. इंजीनियरी दहियावाटोला, छपरा (बिहार)

दिनमान की दरें

अवधि	देश में (साधारण	विदेश में डाक द्वारा)
तिमाही	18.00	29.00
छःमाही	35.00	56.00
वार्षिक	70.00	112.00
द्विवार्षिक	130.00	214.00
त्रिवार्षिक	180.00	306.00

दिनमान की नीयत खराब थी

आज समस्तीपुर चुनाव का परिणाम जान कर ऐसा लगा कि जैसे कहीं बेईमानी की गयी है. शासकतंत्र द्वारा सुनियोजित पेटी छीन, हमला भी इस बेईमानी का एक अंश प्रतीत होता है. दिनमान का संपादकीय एवं दिनमान का चिकमगलूर का दौरा, जार्ज फर्नांडीस के वहाँ पहुँचने के बाद पैदा हुए आसार का चित्रण दिनमान ने जिस तरह से किया था उस से कांग्रेसी खेमे में थोड़ी खलबली मच गयी थी परंतु श्रीमती गांधी की आकस्मिक ताबड़तोड़ विजय ने सारे गत विचार तोड़ कर रख दिये. इस पाठक को भी दिनमान की नीयत पर थोड़ा शक हो गया. परंतु इसे न पढ़ना भी ऐसा महसूस हुआ कि जैसे नित्यकर्म का कोई एक टुकड़ा छोड़ दिया है.

——उमाशरण कुलश्रेष्ठ, संपादक सुखद पत्रिका, साप्ताहिक समीक्षापत्र 150, भूड़, बरेली.

तीसरी शक्ति

1925 नवंबर : 'हम दोनों से लड़ेंगे' पढ़ा. वर्तमान राजनीतिक वातावरण में तीसरी शक्ति की कल्पना चर्चा का विषय है. कर्ण सिंह और चंद्रजीत यादव का भी उन में एक है. 18 नवंबर 1978 को कोचीन में केरल कांग्रेस कार्य समिति की बैठक, भूतपूर्व मुख्यमंत्री एंटनी की उपस्थिति में हुई. बैठक में तीसरी शक्ति कायम करने की चर्चा की गयी. 18 नवंबर को ही महाराष्ट्र और कर्नाटक के विक्षुब्धों की एक बैठक हुई. कर्नाटक के एम. एच. कृष्णनपा और बी. एन. कुट्टपा एवं महाराष्ट्र के लेरद पाटिल ने विक्षुब्धों का नेतृत्व किया. ये लोग नयी साम्यवादी पार्टी की रूपरेखा तैयार कर रहे हैं. पार्टी का प्रस्तावित नाम भारतीय साम्यवादी पार्टी है और उद्देश्य 1964 के कार्यक्रम को लागू करना जो विमाजित होने से पूर्व साम्यवादी दल ने बनाया. इस बैठक में जनता पार्टी की आलोचना तो की ही अपने नेता नंबूदरीपाद एवं राममूर्त्ति को भी नहीं छोड़ा. उसी दिन (18 नवंबर 1978 को) वहीं (बंगलौर) भारतीय साम्यवादी पार्टी की कर्नाटक शाखा की भी बैठक हुई. बैठक ने ऐसा विचार किया कि जनता या कांग्रेस पार्टियाँ जनता की समस्याओं का समाधान नहीं कर सकतीं. संप्रति वामपंथी तीसरे विकल्प के मजबूतीकरण की आवश्यकता है.

जनता पार्टी एक विकल्प के रूप में ही पैदा हुई. जिस में पाँच दलों का एक खास सिद्धांत और कार्यक्रम पर एकीकरण हुआ. फिर इतनी जल्दी विकल्प ढूंढ निकालना आसान नहीं है. जैसा लगता है, ये तमाम जमायत अपने को अलग अलग तीसरी शक्ति समझ रहे हैं परंतु आभास यह मिलता है कि अपनी पार्टी से ये निराश हो गये हैं. वहाँ की आपसी जिद एवं मनमुटाव ही तीसरी शक्ति की कल्पना को जन्म देती है. प्रजातंत्र में दल निर्माण का अधिकार है, परंतु दलों का बाहुल्य राजनीतिक शक्तियों को विकृत करता है, राजनीति और सरकार दोनों में अस्थिरता आती है. अभी जो नकारात्मक मतदान प्रवृत्ति का युग है इस में इन को आंशिक सफलता मिल सकती है. परंतु पूर्णतः सफलता असंभव है.

तीसरी शक्ति को चाहने वाले अलग एक मंच पर आयें. सिद्धांतयुक्त, योजनाबद्ध उद्देश्य एवं कार्यक्रम निश्चित करें. ऐसी स्थिति में इन के साथ ऐसे लोग भी होंगे जो अभी राजनीति से अलग या उदासीन हैं. अलग अलग तीसरी शक्ति की कल्पना राजनीतिक शक्तियों का विकेंद्रीकरण होगा. यह भारतीय जनता के प्रति ईमानदारी नहीं होगी. क्या भारत की जनता हमेशा राजनीतिक प्रयोग का उपकरण ही बनती रहेगी या कभी प्रयोग का परिणाम भी देखेगी?—डा. वामेश्वर सिंह, ग्राम——पो. कोठेया, छपरा

आप फरमाते हैं——

व्यंग्यचित्र : लक्ष्मण

'वह कोई अफवाह [illegible] थी कि मेरे इस्तीफ़े की खबर अखबार [illegible] छपी है—इसकी पुष्टि प्रधान[illegible]जी ने की है.'

सिर्फ़ 365 रुपये ज़्यादा
और हमारे एक्सकर्सन
फ़ेयर में आपको और भी फ़ायदे—
आते या जाते वक़्त रास्ते में एक
जगह रुकने की सुविधा.
लंदन, पेरिस, जिनेवा, रोम या
फ्रैंकफ़ुर्ट में से कोई एक रंगीन शहर
चुनिए. न्यू यॉर्क से उत्तरी अमेरिका
और कनाडा के दूसरे शहरों के लिए
सुविधाजनक कनेक्शन.
लेकिन पहले हमारे या अपने
ट्रैवेल एजेंट के कार्यालय में आइए और
पूरी जानकारी हासिल कीजिए.
एयर-इंडिया
शुभ यात्रा...शुभ संदेश
अमेरिका जाते समय
यूरोप में ठहरते हुए जाइए.

मत और सम्मत

शतरंज की मोहरे

लोकसभा के पिछले तीन उपचुनावों की विशेषता यह रही कि आजमगढ़, चिकमगलूर एवं समस्तीपुर से इंदिरा कांग्रेस की उम्मीदवार स्त्रियाँ ही रहीं. किंतु जहाँ आजमगढ़ एवं चिकमगलूर ने इन स्त्री उम्मीदवारों को विजयी बनाया वहाँ समस्तीपुर के मतदाताओं ने कांग्रेस की दिग्गज नेत्री को शिकस्त दे दी. आजमगढ़ और चिकमगलूर में इंदिरा कांग्रेस की सफलता का सब से बड़ा कारण यह रहा कि वहाँ इन्हें गरीब या निचला वर्ग, हरिजन वर्ग और सामान्य जन का भरपूर समर्थन मिला जब कि समस्तीपुर चुनाव क्षेत्र में आरक्षण संबंधी नियम को ले कर यही वर्ग इंदिरा कांग्रेस के पक्ष में न हो कर विपक्ष में चला गया. फलस्वरूप श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा के लिए समस्तीपुर की जीत टेढ़ी खीर हो गयी.

बिहार में इंदिरा कांग्रेस को अपनी सफलता और लोकप्रियता पाने के लिए आरक्षण संबंधी नियमों को समर्थन देना अब अनिवार्य हो गया है.---**सुरेशचंद्र गुप्त, बैकुंठपुर (सरगुजा)**

और हरिजन

समस्तीपुर उपचुनाव में जनता पार्टी की जीत को जनता नेताओं ने लोकतांत्रिक शक्तियों की जीत, गरीबों की जीत, तानाशाही शक्तियों की हार कहा. वास्तविकता यह है कि यह चुनाव किसी सिद्धांत व मूल्य पर आधारित न हो कर, जात पाँत की लड़ाई थी. समस्तीपुर की संरचना के आधार पर कर्पूरी ठाकुर के उम्मीदवार को जीतना था और वह जीता, परंतु वोटों का अंतर निश्चित रूप से कर्पूरी ठाकुर की आशा के विपरीत था. और यह अंतर कर्पूरी ठाकुर की भविष्य की परेशानियों को साबित करेगा. समूचे प्रशासन को ठप्प कर जनता सरकार के मंत्रियों का समस्तीपुर में व्यस्त रहना एवं चुनाव के समय गैर जिम्मेदाराना, कार्य कलाप--पता नहीं जनता पार्टी के किन लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा करता है? इस चुनाव ने यह बात स्पष्ट कर दी है कि भविष्य में बिहार में जिस तरह के भी चुनाव हों, वे उच्च जाति बनाम पिछड़ी जाति के आधार पर लड़े जायेंगे. इस का श्रेय कर्पूरी ठाकुर को होगा और बिहार की जाति पर आधारित यह राजनीति जनता पार्टी के एक बड़े भाग को अवश्य ही प्रभावित करेगी. ऐसे हालात में उन मूल्यों का क्या होगा जिन के आधार पर बिहार आंदोलन चला था, विद्यार्थी एवं युवा वर्ग ने कुर्बानियाँ दी थीं.

--**बसंत कुमार, बी.एस.सी. इंजीनियरी दहियावाटोला, छपरा (बिहार)**

दिनमान की नीयत खराब थी

आज समस्तीपुर चुनाव का परिणाम जान कर ऐसा लगा कि जैसे कहीं बेईमानी की गयी है. शासकतंत्र द्वारा सुनियोजित पेटी छीन, हमला भी इस बेईमानी का एक अंश प्रतीत होता है. दिनमान का संपादकीय एवं दिनमान का चिकमगलूर का दौरा, जार्ज फर्नांडीस के वहाँ पहुँचने के बाद पैदा हुए आसार का चित्रण दिनमान ने जिस तरह से किया था उस से कांग्रेसी खेमें में थोड़ी खलबली मच गयी थी परंतु श्रीमती गांधी की आकस्मिक ताबड़तोड़ विजय ने सारे गत विचार तोड़ कर रख दिये. इस पाठक को भी दिनमान की नीयत पर थोड़ा शक हो गया. परंतु इसे न पढ़ना भी ऐसा महसूस हुआ कि जैसे नित्यकर्म का कोई एक टुकड़ा छोड़ दिया है.

--**उमाशरण कुलश्रेष्ठ, संपादक सुखद पत्रिका, साप्ताहिक समीक्षापत्र 150, भूड़, बरेली.**

तीसरी शक्ति

1925 नवंबर : 'हम दोनों से लड़ेंगे' पढ़ा. वर्तमान राजनीतिक वातावरण में तीसरी शक्ति की कल्पना चर्चा का विषय है. कर्ण सिंह और चंद्रजीत यादव का भी उन में एक है. 18 नवंबर 1978 को कोचीन में केरल कांग्रेस कार्य समिति की बैठक, भूतपूर्व मुख्यमंत्री एंटनी की उपस्थिति में हुई. बैठक में तीसरी शक्ति कायम करने की चर्चा की गयी. 18 नवंबर को ही महाराष्ट्र और कर्नाटक के विक्षुब्धों की एक बैठक हुई. कर्नाटक के एम. एच. कृष्णनपा और बी. एन. कुट्टपा एवं महाराष्ट्र के लेरद पाटिल ने विक्षुब्धों का नेतृत्व किया. ये लोग नयी साम्यवादी पार्टी की रूपरेखा तैयार कर रहे हैं. पार्टी का प्रस्तावित नाम भारतीय साम्यवादी पार्टी है और उद्देश्य 1964 के कार्यक्रम को लागू करना जो विभाजित होने से पूर्व साम्यवादी दल ने बनाया. इस बैठक में जनता पार्टी की आलोचना तो की ही अपने नेता नंबूदरीपाद एवं राममूर्त्ति को भी नहीं छोड़ा. उसी दिन (18 नवंबर 1978 को) वहीं (बंगलौर) भारतीय साम्यवादी पार्टी की कर्नाटक शाखा की भी बैठक हुई. बैठक ने ऐसा विचार किया कि जनता या कांग्रेस पार्टियाँ जनता की समस्याओं का समाधान नहीं कर सकतीं. संप्रति वामपंथी तीसरे विकल्प के मजबूतीकरण की आवश्यकता है.

जनता पार्टी एक विकल्प के रूप में ही पैदा हुई. जिस में पाँच दलों का एक खास सिद्धांत और कार्यक्रम पर एकीकरण हुआ. फिर इतनी जल्दी विकल्प ढूंढ निकालना आसान नहीं है. जैसा लगता है, ये तमाम जमायत अपने को अलग अलग तीसरी शक्ति समझ रहे हैं परंतु आभास यह मिलता है कि अपनी पार्टी से ये निराश हो गये हैं. वहाँ की आपसी जिद एवं मनमुटाव ही तीसरी शक्ति की कल्पना को जन्म देती है. प्रजातंत्र में दल निर्माण का अधिकार है, परंतु दलों का बाहुल्य राजनीतिक शक्तियों को विकृत करता है, राजनीति और सरकार दोनों में अस्थिरता आती है. अभी जो नकारात्मक मतदान प्रवृत्ति का युग है इस में इन को आंशिक सफलता मिल सकती है. परंतु पूर्णतः सफलता असंभव है.

तीसरी शक्ति को चाहने वाले अलग एक मंच पर आयें. सिद्धांतयुक्त, योजनाबद्ध उद्देश्य एवं कार्यक्रम निश्चित करें. ऐसी स्थिति में इन के साथ ऐसे लोग भी होंगे जो अभी राजनीति से अलग या उदासीन हैं. अलग अलग तीसरी शक्ति की कल्पना राजनीतिक शक्तियों का विकेंद्रीकरण होगा. यह भारतीय जनता के प्रति ईमानदारी नहीं होगी. क्या भारत की जनता हमेशा राजनीतिक प्रयोग का उपकरण ही बनती रहेगी या कभी प्रयोग का परिणाम भी देखेगी?---**डा. यामेश्वर सिंह, ग्राम--पो. कोठेया, छपरा**

आप फरमाते हैं---

व्यंग्यचित्र : लक्ष्मण

'वह कोई अफ़वाह [illegible] थी कि मेरे इस्तीफ़े की खबर अखबार [illegible] छपी है---उसकी पुष्टि प्रधान[illegible] ने की है.'

गन्ने का संकट

20 नवंबर से प्रदेश की 61 चीनी मिलों में पेराई का कार्य आरंभ हो गया, परंतु आज तक प्रदेश का गन्ना कास्तकार यह नहीं जान सका कि उसे उस के गन्ने का प्रति कुंतल क्या दाम मिलेगा.

पिछले दिनों प्रदेश मंत्रिमंडल ने यह घोषणा की कि गन्ने की कीमत पिछले वर्ष से कम नहीं होगी और तीन दिन में यानी 20 नवंबर तक मूल्य निर्धारित हो जायेंगे. पुनः 20 नवंबर को मंत्रिमंडल ने पाँच सदस्यीय उप समिति गठित कर यह कहा कि अतिशीघ्र चीनी मिल मालिकों से बात कर मूल्य की घोषणा कर दी जायेगी.

सरकार की इस प्रकार की घोषणा से किसानों में संदेह बना है कि कहीं गन्ने का दाम मिल मालिकों के दबाव से कम न कर दिया जाये, क्योंकि यह सत्य है कि अंतरराष्ट्रीय बाजार में भारतीय चीनी की खपत कम होने से यहाँ इस का स्टाक अधिक जमा हो गया है. चीनी अंतरराष्ट्रीय बाजार में कम बिकी, इस का कारण मिल मालिक यह बताते हैं कि चूँकि यहाँ गन्ने की कीमत अधिक है अतः दुनिया के मुकाबले हमारी चीनी महँगी है. जब कि तथ्य यह है कि चीनी मिलों में आधुनिक तकनीकी व्यवस्था न होने के कारण चीनी कम बन पाती है जिस से उत्पादन मूल्य बढ़ जाता है. साथ ही क्यूबा और जावा की अपेक्षा भारतीय चीनी की किस्म घटिया है. जिसका सारा दोष मिल मालिकों पर है. यदि अपनी उपज के उत्पादन के उचित मूल्य न पाने की मनःस्थिति से किसान ने दूसरी फसलों का भी उत्पादन घटा दिया तो प्रदेश के सामने गंभीर संकट पैदा हो सकता है, जैसा कि प्रदेश में पिछले वर्षों दलहन और तिलहन के कम उत्पादन से उत्पन्न स्थिति को हमने देखा है.

स्वयं को किसान हितों की रक्षक कहने वाली, सरकार को चाहिए कि वह शीघ्र गन्ने का मूल्य, जो किसी भी दशा में पिछले वर्ष से कम न हो, घोषित करे. साथ ही संपूर्ण उत्पादित गन्ने की समय से पेराई की व्यवस्था करे.

—रवींद्र सिंह, सदस्य, विधानसभा, गोरखपुर. अरुण कुमार सिंह, श्याम जी त्रिपाठी. (गोरखपुर विश्वविद्यालय)

भूल सुधार

10-16 दिसंबर के अंक में **गरीबों से प्यार बनाम गरीबों का अधिकार** शीर्षक रपट में (लेखकः र.स.) पृष्ठ 24 पर दूसरे स्तंभ की नवीं, दसवीं, ग्यारहवीं और बारहवीं पंक्ति इस प्रकार पढ़ें : **मुझ पर तानाशाही का आरोप लगाते हैं—तानाशाही का वक्त तो 1975 में नहीं बहुत पहले था. मैं चाहती तो कर लेती. कोई चूं नहीं कर सकता था.**

नकल रोकने के लिए

लखनऊ विश्वविद्यालय में आजकल जो कुछ हो रहा है वह भारतीय शिक्षा जगत ही नहीं वरन देश की जनतांत्रिक व्यवस्था पर भी एक बड़ा प्रश्न चिन्ह बन गया है. विश्वविद्यालय प्रांगण में बल्लियाँ लगा कर चारों तरफ की गयी बैरीकेटिंग, बरामदों को रौंदती हुई पी. ए. सी. की बटालियनें पूरे प्रांगण में यत्र तत्र खड़ी पी. ए. सी. पुलिस की जीपें, गाड़ियाँ और वायरलैस सैट किसी गुरिल्ला किस्म की लड़ाई का सा आतंक पैदा कर रहे हैं. कमरों में बैठ कर परीक्षा दे रहे छात्र उड़नदस्ते को धारा 302 के किसी अपराधी से कम खतरनाक नहीं दिखायी देते. उड़नदस्ता कमरे में घुसता है. साथ पुलिस के दो तीन इंस्पैक्टर और दर्जनों पुलिस वाले. इस तरह नकल रोकने का अभियान चलाया जा रहा है.

विधि की परीक्षाएँ 27 नवंबर से शुरू होने वाली थीं. विश्वविद्यालय अधिकारियों ने कहा अब सी. आर. पी. तैनात की जायेगी. बाद में ये परीक्षाएँ हाईकोर्ट के आदेश से टल गयीं. विरोधाभास यह कि नकल रोकने के लिए जहाँ इस तरह विश्वविद्यालय को पी.ए.सी. की छावनी में बदल दिया गया वहीं अध्यापकों द्वारा इम्तिहान से दो तीन दिन पहले पर्चे आऊट कर देने का क्रम बदस्तूर जारी रहा. इस कारण नकल करते हुए बहुत कम लोग पकड़े गये. और तो और जनता सरकार के मंत्रियों के बात करने का रंग ढंग ही बदल गया. प्रदेश के शिक्षामंत्री ने विश्वविद्यालय में पी.ए.सी. लगाने का विरोध करने वाले छात्रों से कहा कि "हम गुंडों" से निपटना खूब जानते हैं. हमें खुशी है कि जनता सरकार के मंत्रियों को छात्रों की असलियत तो मालूम हो गयी कि वे संपूर्ण क्रांति की सेना नहीं गुंडे हैं और हमने भी बखूबी यह समझ लिया है कि कोई भी सरकार आये बंदूक की नली से ही जनता को देखती है.**—सत्येंद्र पाल सिंह, शांतिस्वरूप, सत्यनारायण जायसवाल, फ्रीथिंकर्स स्टूडेंट्स ग्रुप, लखनऊ विश्वविद्यालय.**

पर हस्ते गता गताः 26 नवंबर-2 दिसंबर : बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन संबंधी चर्चा के संदर्भ में दिनमान के विचारशील पाठकों की सेवा में मैं एक सवाल निवेदित करना चाहता हूँ. मैंने मथुरा के साहित्यिक वातावरण में शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की है. जब मैं कालेज का छात्र था तो मैंने वहाँ के कई पुस्तकालयों को शान से चलता देखा था—सुख संचारक पुस्तकालय, विद्यासागर पुस्तकालय, हिंदी साहित्य पुस्तकालय इत्यादि.

ये सभी पुस्तकालय सरकारी सहायता प्राप्त थे. आज इन में से कोई भी पुस्तकालय

जीवित नहीं है. हिंदी साहित्य परिषद की पुस्तकों का भी अता पता नहीं है. अ.भा. ब्रज-साहित्यमंडल जो किसी जमाने में राष्ट्रीय-महत्त्व की संस्था बनने जा रही थी उस के पुस्तकालय की सारी पुस्तकें और टाइप राइटर टेलीफोन, लोहे की आलमारियाँ न जाने कौन ले गया. उस के द्वारा प्रकाशित पुस्तकों का क्या हुआ? इस का हिसाब-किताब देने वाला जिम्मेदार व्यक्ति कौन है? यह कहा नहीं जा सकता. चंदन संगीत विद्यालय सरकारी सहायता प्राप्त संस्था थी. उस के पास बहुत से वाद्य उपकरण थे. आज उन में से किसी का कुछ पता नहीं. आज की ट्रस्टीशिप का सिद्धांत धीरे धीरे हवा में उड़ जा रहा है. क्या गैर सरकारी संस्थाओं को दिये गये सरकारी धन का दुरुपयोग नहीं हो रहा? समाज तो इतना जागरूक है नहीं कि वह इस जिम्मेदारी को सँभालने के लिए जाने माने लोगों से बैर मोल ले.

—डा. राजेंद्र रंजन, सासनी (अलीगढ़)

पुनर्मूल्यांकन

19-25 नवंबर : पुनः इस बार आपने आरक्षण के मुद्दे को उभार कर सामने रखा है. 'उत्तर है पुनर्मूल्यांकन' शीर्षक के अंतर्गत आप ने जिस ढंग से आरक्षण से उत्पन्न स्थितियों का विश्लेषण किया है वह पूर्णतया पूर्वाग्रह से ग्रसित है. जे. पी. सभा में आरक्षण विरोधियों या समर्थकों ने पथराव नहीं किया था बल्कि इंदिरा गांधी के शोहदों ने किया था. बाद में यह बात सिद्ध भी हो चुकी थी. दूसरी बात यह कि आपने लिखा है—पिछड़ी जातियों के लोग बसों और ट्रेनों में जनेऊ और टीकाधारियों को ढूँढ़ते फिरते हैं. आप का यह वाक्य निश्चय ही द्वेष को भड़काने वाला एवं विद्रोह को शह देने वाला है. जब कि ऐसी घटनाएँ बिहार के किसी भी सूबे में नहीं घट रही हैं. अगर ऐसी बातें होतीं तो अपने अपने क्षेत्र में दोनों वर्ग के लोगों का चलना मुश्किल हो जाता.

—परशुराम सिंह, ग्राम-पोस्ट-गढ़नोखा जिला रोहतास.

सीमा का सौदा

15-21 अक्तूबर : 'बहस' स्तंभ के अंतर्गत कृष्णनाथ का प्रस्तुतीकरण 'क्या हम सीमा का सौदा करेंगे'? पढ़ा. बधाई है उस लेखक को जिस के शब्द शब्द से ही नहीं, अक्षर अक्षर से एक पीड़ित, प्रताड़ित और पददलित मानवता कराह रही है मुक्त होने के लिए, छटपटा रही है व्यक्त होने के लिए और तड़प रही है स्वतंत्र होने के लिए.

मुझे ऐसा लगता है कि विदेशमंत्री को भारत सरकार चीन सरकार के पास एक राजनैतिक व्यापार करने के लिए ही भेज रही है. सौदे में एकदम घाटा ही घाटा है और ऐसा लगता है कि यह एकतरफा सौदा थोपा जा रहा है. हो सकता है कि चीन भी चाहता हो कि जो कुछ प्राप्त कर लिया गया है और जितना कुछ सुरक्षित कर लिया गया है उस की एक कूटनीतिक पुष्टि भी करा ली जाये. भारत सरकार अब तक पराजित और आहत मनोवृत्ति के अनुसार ही इस मामले में काम करती चली आ रही है. जनता पार्टी की सरकार से यह उम्मीद थी कि वह विदेशनीति में आमूल चूल परिवर्त्तन करेगी और हितपरक तथा कल्याणमूलक सिद्धांतों का प्रतिपादन और क्रियान्वयन करेगी. आश्चर्य तो यह है कि अंतर्द्वंद से पीड़ित जनता पार्टी और जनता सरकार अपने ही मुखर और सक्रिय अंतर्विरोधों से आक्रांत है फिर भी वह अनावश्यक और अनुपयोगी कार्यक्रमों में अपने को झोंक रही है और जो आवश्यक और उपयोगी है उसे करने की कल्पना तक नहीं कर रही है. सौदे की चर्चा में अमेरिका का भी स्थानागत नाम आता है जिस से यह आशंका भी हो सकती है कि वह भी कहीं न कहीं परदे में है और वहीं से एक तीर से दो निशाना मार रहा है और हिंदुस्तान में इस्राइल जैसी स्थिति और समस्या पैदा कर उस के समाधान में योगदान का श्रेय ले कर अपना उल्लू सीधा करना चाहता है.—**रामनरेश द्वारा : श्री अनंत बहादुर सिंह, प्रधानाचार्य, बयालसी इंटर कॉलेज जलालपुर, जौनपुर (उ.प्र.)**

नेपाल भारत के बीच

नेपाल और भारत जन्मांतर से दो भाई हैं और सदा अमर प्रेम एक दूसरे से रखते हैं. भारत सरकार नेपाल को मदद देना कर्त्तव्य समझती है मगर इन क्षेत्रों में काम करने वाले, महानुभाव, व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए काम में बाधा देते हैं.

हाल ही में भारत सरकार के सहयोग से नेपाल की बुटवल तिनाउ नदी पर एक पुल करीब पचास लाख भारतीय रुपए में तैयार हुआ. सीमेंट की आवश्यक मात्रा न मिलने से नदी की तरफ से पुल की बुनियाद एक साल पहले ही फट गयी और सारे प्राविधिकों ने इकट्ठे ही कर फटी हुई बुनियाद को सीमेंट का मसाला मिला कर बंद किया था. अब इस पुल की आयु पाँच वर्ष से ज्यादा नहीं थी.

10 सितंबर 1978 को अचानक इस पुल के पश्चिम भाग के समीप का पहाड़ गिरा और पुल भी पूर्व से पश्चिम स्थित दूरी तक टूट गया. अभी लोग कहते हैं कि यदि ईमानदारी के साथ बनायें तो यह पुल उसी जगह फिर बन सकता है मगर पुरानी गलती फिर सामने न आने पाये कह कर पुल की जगह दूसरी ओर ढूँढ़ रहे हैं. टूटे हुए पुल से करीब तीन सौ मीटर दूरी पर एक और लोहे का पुल है जिस पर वही पहाड़ उसी दिन गिरा मगर अभी तक मजबूती की बनावट की वजह से टिका हुआ है.—**वाई. बी. के. सी. नेपाली, बुटवल (नेपाल)**

दोहरी नीति

उ. प्र. के खाद्यमंत्री के लेवी अध्यादेश की दोहरी नीति से व्यापारी वर्ग काफी त्रस्त है. उक्त मंत्रालय ने यह अध्यादेश जारी किया—व्यापारी वर्ग से जो चावल लेवी के रूप में वसूल किया जायेगा, उन के साथ दो नीति अपनायी जायेंगी. प्रथम, मिल मालिकों से वसूला गया लेवी चावल का टैक्स सरकार स्वयं देगी और द्वितीय, वी लाइसेंसियों से वसूले गये लेवी चावल पर टैक्स, सरकार को न दे कर, लाइसेंसधारियों को देना पड़ेगा जब कि इस से पूर्व किसी भी किस्म के लेवी चावल का टैक्स सरकार स्वयं देती थी. इस तरह मिल मालिकों को दोहरा लाभ दे कर, छोटे व्यापारियों को हतोत्साहित किया जा रहा है.

यहाँ पर सवाल उठ खड़ा होता है कि बड़े बड़े पूँजीपतियों के हितों को संरक्षण क्यों दिया जा रहा है जब कि सरकार की यह नीति रही है कि छोटे तबकों को बढ़ावा दिया जायेगा? ऐसे में, दोमुँही नीति क्यों अपनायी जा रही है? क्या इसी तरह की परंपरा चलती रहेगी. —**सत्यनारायण जायसवाल, जिलाध्यक्ष, लोकतांत्रिक युवा मोर्चा, बस्ती, पेतरीबाजार, बस्ती, उ. प्र.**

मस्तिष्क ज्वर

12-18 नवंबर : 'मस्तिष्क ज्वर से मुठभेड़' में रोग के कारण उपशीर्षक में लिखा है 'मस्तिष्क ज्वर एक संक्रामक रोग है.' यह सर्वथा गलत है. अलबत्ता विषाणुविदों एवं चिकित्सकों ने हाल की बहसों से एक निर्णय यह निकाला है कि इस रोग के वाहक मच्छर के अतिरिक्त और भी कीट हो सकते हैं. —**हरिशंकर पांडेय, अनु. अधिकारी, शोध छात्र प्राणिविज्ञान, कक्ष सं. 214, नवीन स्नातकोत्तर छात्रावास तृतीय, गोरखपुर विश्वविद्यालय.**

(लेख में 'संक्रामक रोग' से आशय छूत के रोग से नहीं है जैसा कि आगे भी स्पष्ट किया गया है.—सं.)

पिछले सप्ताह

(30 नवंबर से 6 दिसंबर 1978 तक)

देश

30 नवंबर : जनता संसदीय पार्टी की कार्यकारिणी द्वारा विशेषाधिकार समिति के संदर्भ में श्रीमती इंदिरा गांधी से क्षमायाचना पर बल. आर. एन. हाल्दीपुर अरुणाचलप्रदेश के नये उपराज्यपाल. सूचना और प्रसारण-मंत्री लालकृष्ण आडवाणी द्वारा दो दर्जन पत्रकारों के सी. आई. ए. के एजेंट होने की खबर को बेबुनियाद बताना.

1 दिसंबर : सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विशेष अदालतों के गठन को संवैधानिक बताना. कांग्रेस अध्यक्ष स्वर्णसिंह की श्रीमती इंदिरा गांधी से भेंट. पंतनगर विश्वविद्यालय बंद. प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई द्वारा परमाणु ईंधन नीति के बारे में स्पष्टीकरण. बंबई में भारत-वेस्ट इंडीज में पहला क्रिकेट मैच शुरू.

2 दिसंबर : पुंछ में छात्रों और पुलिस में संघर्ष से एक व्यक्ति की मृत्यु.

3 दिसंबर : फतेहपुर संसदीय उपचुनाव में 50 प्रतिशत मतदान. भूतपूर्व गृहमंत्री चरणसिंह की अपने समर्थकों से वार्त्ता.

4 दिसंबर : चरणसिंह की प्रधानमंत्री से संसद भवन में 35 मिनट तक वार्त्ता. करोलबाग (दिल्ली) के एक जौहरी की दुकान में 12 लाख रुपये की डकैती. जम्मू बंद के दौरान हिंसा के कारण 41 व्यक्ति घायल. कांग्रेस पार्टियों में एकता के समर्थक चार व्यक्ति कार्यसमिति में अध्यक्ष द्वारा नामजद. बिहार में कॉलेजों के खुलने से दंगे शुरू.

5 दिसंबर : फतेहपुर उपचुनाव में जनता पार्टी के लियाकत हुसेन 30,000 से अधिक मतों से विजयी. विश्व प्रबंधक कांग्रेस का दिल्ली में अधिवेशन शुरू. गुजरात कांग्रेस समिति के अध्यक्ष कांतिलाल घिया का अहमदाबाद में देहांत. जम्मू क्षेत्र में पुनः दंगे.

6 दिसंबर : बंबई में भारत-वेस्ट इंडीज में पहला क्रिकेट टेस्ट मैच हारजीत के बिना समाप्त. जांबिया के प्रधानमंत्री डेनियल लिसुलो की प्रधानमंत्री देसाई से परस्पर संबंधों पर वार्त्ता. लोकसभा द्वारा संविधान 45वें संशोधन विधेयक पर पुनः विचार शुरू.

पिछले सप्ताह

(30 नवबंर से 6 दिसंबर 1978 तक)

विदेश

30 नवंबर : बंगलादेश के राष्ट्रपति जनरल जियाउर्रहमान द्वारा 27 जनवरी' 78 को संसद् का चुनाव कराने का एलान. पूर्व और पश्चिम जर्मनी द्वारा सीमा समझौते पर हस्ताक्षर. चक्रवातग्रस्त क्षेत्रों में राहतकार्यों के लिए श्रीलंका द्वारा आपत्कालीन कानून लागू.

1 दिसंबर : मिस्र के राष्ट्रपति अनवर सादात द्वारा इस्राइल के प्रधानमंत्री मेनाहिम बेगिन को एक निजी पत्र. अमेरिका के राष्ट्रपति जिम्मी कार्टर द्वारा मुद्रास्फीति के विरुद्ध लड़ने का अपने देशवासियों को आश्वासन. निकारागुआ के राष्ट्रपति जनरल सोमोजा अपने भविष्य पर जनमत संग्रह कराने पर सहमत.

2 दिसंबर : क्वालालंपुर के पास 143 वीएतनामियों की डूबने से मरने की आशंका. ट्रांसकाइ के पहले राष्ट्रपति बोथा सिगकाउ का देहांत. लीबिया के राष्ट्रपति मुअव्वर गद्दाफी का नये मुस्लिम कैलेंडर का सुझाव.

3 दिसंबर : ईरान में हड़ताल से तेल के निर्यात पर प्रभाव. 'स्वापो' के पाँच नेता नामीबिया में गिरफ्तार.

4 दिसंबर : ईरान के शाह और उन के परिवार के देश छोड़ने की जापानी समाचारपत्रों में खबरें. अफगानिस्तान के राष्ट्रपति नूर मुहम्मद तराकी की मस्क्वा में सोवियत संघ के नेताओं से वार्त्ता.

5 दिसंबर : तिकोन किसीलेव, सोवियत संघ के नये उपप्रधानमंत्री नियुक्त. मिस्र द्वारा बुलगारिया से संबंध विच्छेद सोवियत संघ और अफगानिस्तान में मैत्री समझौते पर मस्क्वा में हस्ताक्षर. नामीबिया में दक्षिण अफ्रीका की देखरेख में चुनाव कराने के विरुद्ध संयुक्तराष्ट्र सुरक्षा परिषद् द्वारा कार्रवाई की माँग.

6 दिसंबर : लुई हेरेरा कैंपिस वेनेजुएला के नये राष्ट्रपति निर्वाचित. पश्चिमेशिया में गतिरोध समाप्त कराने के लिए अमेरिकी विदेशमंत्री साइरस वैंस की मिस्र और इस्राइल की यात्रा का फैसला.

पत्रकार संसद्

अंधविश्वास की बलिवेदी पर

गयाना में पिछले दिनों सामूहिक हत्या अथवा आत्महत्या की घटना ने सारे विश्व को दहला दिया. विश्व के समाचारपत्रों में इस घटना को लेकर विस्तार से खबरें भी छपीं. अनेक समाचारपत्रों ने इस पर टिप्पणी करते हुए धार्मिक अंधविश्वास की भर्त्सना की. प्रसिद्ध अमेरिकी समाचारपत्र **क्रिश्चेन सायंस मॉनिटर** ने लिखा है:

गयाना की दर्दनाक घटना से अनायास ही करुणा उत्पन्न होती है. जो लोग इस घटना के शिकार हुए हैं. उन के प्रति संसार के लोगों का करुणा से दिल भर आना स्वाभाविक ही है. चाहे यह हत्या हो अथवा सामूहिक आत्महत्या इस के धर्म से कट्टरवादी प्रवृत्तियों का प्रमाण मिलता है. गयाना में जो कुछ देखने को मिला उस से यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि लोगों को धार्मिक भावुकताओं में न बह कर विवेक से काम लेना चाहिए. अन्यथा समूची मानवता से भटक जाने की आशंका है. गांधी जी ने कहा था कि सच्चा धर्म जीवन और संसार के लिए बहुत बड़ी चीज़ है. लेकिन इसी का सब से अधिक दुरुपयोग किया गया. महात्मा गांधी अपने अनुयायियों से भी यही कहा करते थे कि वह अपने विवेक से काम ले कर किसी धर्म अथवा सिद्धांतों का पालन करें. गलत साधनों से सही लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सकता. इस के लिए आदमी को सही साधन ही इस्तेमाल करना होगा. गांधी जी का विचार था कि 'नैतिकता से बड़ा कोई धर्म नहीं है. उदाहरणार्थ मनुष्य असत्य और कठोर हो कर भगवान् का प्रिय होने का दावा नहीं कर सकता.' भौतिकवादी युग में सत्य की ऐसी परिभाषाओं के परीक्षण किये जाने चाहिए. निस्संदेह आज का व्यक्ति भौतिक सुखों के अलावा किसी ऊँची चीज़ की तलाश में है. धर्म से मानव ने युगों युगों से सुख शांति की प्रेरणा ली है. आज दुनिया में धर्म के नाम तरह तरह के संप्रदाय हैं. इस प्रकार के संप्रदायों में लोगों के फँसाने की कोशिश की जाती है. संप्रदायों का यह चक्र, दुनिया में सभी जगह फैला हुआ है. गयाना की इस दर्दनाक घटना से जो कि 'पीपुल्स टैंपल' नामक धर्म के नाम पर की गयी है हमें स्पष्ट पता चलता है कि धर्म का नाम लेकर लोगों को इस तरह अपने प्राण तक देने के लिए तैयार किया जा सकता है.

पीपुल्स टैंपल नामक संप्रदाय के संस्थापक जिम जोंस की पत्नी ने कहा बताते है कि उन के प्रति मार्क्सवादी थे. उन्होंने कभी भी मसीही धर्म में आस्था व्यक्त नहीं की. लेकिन वह अपने लक्ष्यों की प्रप्ति के लिए अपने ही अनुयायी बनाते रहे. यह भी पता चलता है कि अपने अनुयायियों के मतों के कारण इस व्यक्ति ने केलिफोर्निया में कुछ राजनैतिक प्रभाव भी हासिल कर लिया था. चाहे जो भी है इस मामले में धर्म के लिए उस ने अपने राजनैतिक प्रभाव का इस्तेमाल किया है. राजनैतिक प्रभाव से धार्मिक क्षेत्र से प्रवेश अपने आप में एक बहुत खतरनाक बात है जिस का परिणाम हम ने गयाना की इस घटना में स्पष्ट देखा है. मानवीय आदर्शों के नाम पर अनुयायी बनाना और फिर उन में धार्मिक अंधविश्वास उत्पन्न कर के इस प्रकार उन का बलिदान कर देना अपने आप में कितना अमानवीय है. कोई भी धर्म किसी भी दृष्टि से इसे कैसे उचित ठहरा सकता है? गयाना का यह **'पीपुल्स टैंपल'** नामक संप्रदाय मानव सेवा और मानवता के नाम पर शुरू किया गया था. इस के संस्थापक जिम जोंस ने लोगों को इन आदर्शों के नाम पर इतना गुमराह किया कि वह उस के अंधभक्त बन गये. इस अंधविश्वास के वशीभूत हो कर ही इतने अधिक लोगों ने अपनी जान दे दी. अभी स्पष्ट नहीं है किसी धर्म के नाम पर इन अबोध लोगों की जिन में स्त्री और बच्चे भी शामिल हैं हत्या की गयी है या उन्होंने स्वयं ही अपने प्राण ले लिये. केलिफोर्निया के प्रतिनिधि लियो रेयान इस संप्रदाय के सदस्यों की इच्छा के विरुद्ध वहाँ हत्याकांड के बारे में तथ्यों का पता लगाने के लिए गये. संप्रदाय के प्रवक्ता जिम जोंस ने उन्हें इस की अनुमति तो दे दी लेकिन उन पर गोलियाँ चलायी गयीं. बताया जाता है कि जिम जोंस ने अपने अनुयायियों से अपने बच्चों और अपने आप को मार देने के लिए कहा था. इन अनुयायियों से उन की अपील थी कि **'पीपुल्स टैंपल'** (जन मंदिर) को बचाने के लिए यदि उन्हें अपने प्राणों की आहुति देनी पड़े तो भी उन्हें संकोच नहीं होनी चाहिए. फलस्वरूप लोगों ने ऐसा ही किया और वहाँ सैकड़ों शव बरामद हुए. इस घटना से संप्रदाय और इस संप्रदाय के प्रवर्त्तक के बारे में अनेक प्रश्न उभर कर सामने आते हैं. क्या इस संप्रदाय ने हिंसा की निंदा की है. जो लोग इस घटनास्थल से दूर हैं या जिन्हें इस विचित्र संप्रदाय के बारे में कोई जानकारी नहीं है क्या इस घटना से उन में सच्चे और झूठे धर्म के बीच भेद करने का विवेक जागृत होगा? इतनी अधिक संख्या में लोगों के धर्म के नाम पर मर जाने की घटना से समूचे विश्व के धर्मप्रेमियों में धर्म और अंधविश्वास के बीच अंतर करने की समझ तो आनी ही चाहिए. चाहे जो भी धर्म हो सभी में करुणा आवश्यक है. इस के बिना कोई भी धर्म मानव के लिए कल्याणकारी सिद्ध नहीं हो सकता.

किताबें

समानता का सिद्धांत

पं. नेहरू की चीन संबंधी नीति पर टीका करते समय लोहिया ने एक नया शब्द प्रयोग किया था. 'स्पर्शक्रांतिकारकता' चीन क्रांतिकारी की हैसियत से मशहूर था. नेहरू स्वयं को क्रांतिकारी कहलवाना चाहते थे लेकिन उन की प्रतिमा तो समताविरोधी और क्रांतिविरोधी बन रही थी. सो जिस तरह हिंदू स्त्री पति के हाथ को हाथ लगा कर पुण्य हासिल करना चाहती है उसी तरह नेहरू ने 'हिंदी चीनी भाई भाई' नारे के स्पर्श से क्रांतिकारी बनना चाहा.

दीनदयाल शोध संस्थान ने जब गांधी-लोहिया-दीनदयाल में आधारभूत समानता विषय पर निबंध प्रतियोगिता आयोजित की तब लोहिया के 'स्पर्शक्रांतिकारकता' शब्द की याद आयी और रा. स्व. संघ ने गांधी-लोहिया और दीनदयाल' तथा 'मानवेंद्र नाथ राय और दीनदयाल' की तुलना करने का अव्यापारेशषु व्यापार क्यों चलाया है इस का उत्तर मिल गया.

जिन व्यक्तियों की तुलना करनी है, उन में बुनियादी समानता तो होनी ही चाहिए, अस्मिता में साम्य भी होना चाहिए. गांधी-लोहिया राजनीतिज्ञ क्रांतिकारी थे. दोनों समाज की प्रस्थापित रचना नष्ट कर के नयी तरक्की पसंद और सामाजिक न्याय तथा समता की नींव पर नयी रचना खड़ी करना चाहते थे. अपने मकसद के लिए दोनों लड़े और कई बार जेल भी गये. दीनदयाल ऐसी नयी समाज रचना नहीं चाहते थे. वह यथा स्थिति प्रिय ही थे. क्रांतिकारी राजनेता के रूप में उन की प्रतिमा नहीं उभरी. वह कभी अन्याय के खिलाफ लड़ते हुए जेल नहीं गये.

गांधी जी स्वाधीनता संग्राम के प्रेरक थे. उन्होंने आजादी की लड़ाई में आम जनता को खींचा. लोहिया भी स्वतंत्रता की लड़ाई में अग्र भाग में थे. दीनदयाल जी के कर्तत्व का काल भी वही था. सच्चा क्रांतिकारी स्वतंत्रता संग्राम से दूर नहीं रह सकता था यद्यपि दीनदयाल मुस्लिम विद्वेष पर आधारित रा.स्व. संघ की राजनीति में ही रमे. हालांकि रा. स्व. संघ ने कई अच्छे लोगों को सड़ाया है. दीनदयाल उपाध्याय उन्हीं में से एक हैं. असल में हिंदू राष्ट्रवाद और हिंदुओं के पुनरुत्थान की सीमा में समता का विचार असंभव है. संघ की सिद्धांत नीति को जिस क्षण दीनदयाल जी ने स्वीकार किय उस क्षण में उन का व्यक्तित्व जैसा बना वैसा ही बनना अनिवार्य था. उस में उन का निजी दोष नहीं है. रा. स्व. संघ की प्रतिबद्धता की वह परिणति थी. 1947 में रा. स्व. संघ कानूनन रोका गया. उस समय दीनदयाल जेल नहीं गये तो भी उन्होंने संघर्ष ... लेकिन अपने अस्तित्व पर संकट आने पर गरीब गाय भी क्रुद्ध होती है.

'गांधी-लोहिया-दीनदयाल' अंग्रेजी एवं हिंदी किताबों में जो निबंध हैं उन में प्रायः सभी लेखकों ने निर्गुण और शाब्दिक समानता खोजने का प्रयास किया है. दीनदयाल शोध संस्थान ने वसंत नार शोबुका के समान सर्वोदयी और मधुदंडवते के समान समाजवादी को भी हिस्सेदार बनाया है. दरअसल सर्वेत्र सुखिनः संतु, सर्वे संतु निरामया' का कौन विरोध कर सकता है ? सब खुशहाल हों, सभी का कल्याण हो, जैसे दार्शनिक निराकार विचार दुनिया के अलग अलग क्षेत्रों के कई विचारवंत बुद्धिजीवियों ने व्यक्त किये हैं. उन की सूची काफी लंबी होगी तो फिर गांधी-लोहिया-दीनदयाल को ही क्यों चुना ?

क्रांति सिर्फ़ शब्दों से नहीं होती. समाज के बदलाव के लिए ठोस सिद्धांत और उन के मुताबिक सगुण कार्यक्रम और नीतियाँ आवश्यक हैं. यदि ऐसी पृष्ठभूमि नहीं होती तो अप्रस्तुत और गैर लागू मिलन बिंदु खोजे जाते और प्रतियोगिता रूपी बनाव भी दयनीय तथा मजाक बन जाता है. क्रांति और समता के संदर्भ में गांधी और लोहिया में भी फर्क है तो फिर दीनदयाल के बारे में बोलना ही नहीं चाहिए. आम जनता की नजर में गांधी स्वातंत्र्य संग्राम की प्रेरक शक्ति थे. उन्होंने सत्याग्रह सीखा था. सत्याग्रह के ज़रिये अन्याय के प्रतिकार के लिए कमजोर आदमी भी सिद्ध हुए. स्वदेशी, विकेंद्रीकरण, ग्रामोद्योग, अंग्रेजी और अंग्रेजीयत का खात्मा जैसे कार्यक्रमों में आम जनता सहभागी हुई. यद्यपि आर्थिक, सामाजिक राजनैतिक और सांस्कृतिक विषमता के विरोध में संघर्ष किया लोहिया ने. उन्होंने शोषण के सारे हथियारों के खिलाफ लड़ने को जनता को तैयार किया. दीनदयाल इस तरह की सम्यक क्रांति से दूर थे.

मधु दंडवते ने दोनों किताबों का प्राक्कथन लिखा है. बदकिस्मती से उन्होंने भी अस्पष्ट मिलन बिंदु ही ढूंढे हैं मिसाल के तौर पर दंडवते जी का यह कथन कि लोहिया ने महाभारत रामायण से प्रेरणा ली. हालांकि लोहिया ने स्पष्ट किया कि रामकृष्ण शिव सचमुच कभी हुए या नहीं महत्व का नहीं. लोहिया ईश्वर धर्म नहीं मानते थे. उन्होंने कहा था कि राम-कृष्ण-शिव के नाम धर्म से जुड़ने के कारण ये व्यक्ति लोकप्रिय नहीं हैं तो मानवी जीवन के आदर्श के रूपमें जनता उन की तरफ देखती है. यही राम-कृष्ण-शिव की लोकप्रियता का कारण है. किसी सहित्यिक ललित कृति और उन के पात्रों की समीक्षा की जाती है, उसी तरह लोहिया ने उन का मूल्यांकन किया है.

दंडवते कहते हैं कि इन निबंधों से यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि कोई इन तीन नेताओं के व्रतों को केवल स्थूल दृष्टि से देखेगा तो उसे शायद ही कोई समान आधार मिले, परंतु यदि वह पुरानी पक्षधरता एवं पूर्वाग्रहों को एक ओर रख कर गहराई में जाता है तो मिलन के अनेक बिंदु उभर आयेंगे. असल में वस्तुस्थिति विपरीत है. दंडवते या अन्य लेखकों के मिलन बिंदु उपर्युक्त समता और क्रांति की कसौटी पर पानी के बुलबुले के समान टूट जाएंगे. सभी में खोजा हुआ महत्त्वपूर्ण मिलन बिंदु भारतीय सांस्कृतिक परंपराओं का विश्वास है. भारतीय संस्कृति का मायना क्या यह देखना पड़ेगा. कम से कम संबंधित तीनों के भारतीय संस्कृति संबंधी, कल्पनाओं का अध्ययन करना पड़ेगा और यदि उस संबंध में मूल में ही मत भिन्नता है तो उस पर विश्वास का क्या मतलब ?

आधुनिक विज्ञाननिष्ठ युग में धर्म कल्पना काल विसंगत हुई है. आज के प्राप्तव्य हैं सत्ता और संपत्ति. उन के लिए ही दुनिया के राष्ट्र लड़ते हैं. धर्म की बुनियाद पर राष्ट्र की रचना भी असंभव है. किसी भी राष्ट्र में भिन्न भिन्न धर्म के लोग रहते हैं. इतिहास ने देखा है कि हिंदु हिंदुओं में, मुस्लिम मुस्लिमों में तथा ईसाई-ईसाइयों में भी लड़ाईयाँ हुई हैं. ईश्वर, धर्म, वर्णाश्रम और कथित भारतीय संस्कृति में गांधी और लोहिया में भी विचारभेद था. रा. स्व. संघ जैसी मानता है वैसी ईश्वर धर्म या संस्कृति की व्याख्या गांधी जी की भी नहीं थी. शुरू में गांधी जी वर्णाश्रम पद्धति में सुधार चाहते थे लेकिन बाद में उन्होंने उस का अंत ही चाहा. लोहिया ने तो 'जाति तोड़ो' आंदोलन खड़ा किया और जातिप्रथा को शोषण का हथियार माना. जातिप्रथा के कारण खंडित भारतीय समाज में उन्हें वर्ग संघर्ष की भाषा अधूरी लगती थी उच्चवर्गीय उच्च वर्णीय भी होते हैं, इस तथ्य के कारण लोहिया वर्ण संघर्ष को ज्यादा महत्व देते थे. वे दलितों को विशेष अवसर देना चाहते थे. दीनदयाल जी को वर्णाश्रम में सुधार चाहिए था, जाति विनाश नहीं.

गांधी जी ने सर्व धर्म समभाव को मान्यता दी थी. लोहिया ने सैक्युल रिज़म का मतलब इहलोकवाद बनाया और धर्मविहीन राज्य की माँग की. दीनदयाल जी ने कहा कोई भी राज्य धर्महीन नहीं हो सकता अर्थात 'धर्म-निरपेक्ष भी नहीं रह सकता. उन के अनुसार धर्म निरपेक्ष राज्य तो नियमहीन राज्य हो जायेगा. उन्हें धर्मनिरपेक्षता या 'सेक्युलर स्टेट' तो पश्चिम की नकल लगती थी जिस की भारत को आवश्यकता नहीं. नतीजे में प्रस्थापित समाज रचना की यथा स्थिति के वे हिमायती थे. **प्रथम पुरस्कार** प्राप्त वसंत नारगोलकर ने कहा है कि दीनदयाल जी का एकात्य मानतावाद यानी हिंदू राष्ट्र कल्पना की ही संशोधित आवृत्ति है. समता प्रस्थापना के लिए सिर्फ दया, भूतदया तथा मानतावाद

वेमतलब हैं. इस से वरिष्ठों की अहंता और कनिष्ठों की आत्महीनता ही बढ़ती है. सम्यक् क्रांति के लिए आत्मत्याग के द्वारा समता की नींव पर दलितों के शोषण के खिलाफ खड़ा होना जरूरी है. यह दृष्टि संघ सिद्धांतों में नहीं है. अमीरी के कैलाश के शिखर काटे बगैर गरीबी का पाताल उठाना असंभव है. क्या संघ उस के लिए तैयार है. वह तो ज्ञान प्रबोधिनी जैसी संस्थाओं द्वारा बुद्धिमान छात्रों की बुद्धि ज्यादा कुशाग्र बनाने के काम में लगा है. हजारों सालों से दबे हुए पिछड़ों की बुद्धि को तेजस्वी बनाने के लिए खाद बनने को वह राजी नहीं है. फलस्वरूप संघ की भारतीय संस्कृति का मतलब उच्चवर्ण की ब्राह्मणी संस्कृति ही हुआ है. लोहिया ने लोकसभा में कहा था कि भारतीय संस्कृति का यह गलत अर्थ हुआ कि वरिष्ठों के सामने नतमस्तक और कनिष्ठों को लगा प्रहार.

इस तरह तीनों के भारतीय संस्कृति के अर्थ भिन्न हैं. वेद, उपनिषद मनुस्मृति धर्मग्रंथ, वर्णाश्रम, इतना ही नहीं तो चोटी, जनेऊ, चूड़ियाँ, मंगलसूत्र, सिंदूर, भस्म, व्रत वैकल्प, गौ पूजा, गो-पद्म तुलसी निरांजन, ब्राह्मणों के पैर धोना इत्यादि ये भी भारतीय संस्कृति का दर्शन रा. स्व. संघ को होता है. दीनदयाल समन्वयवाद को भारतीय संस्कृति का विशेष मानते हैं. उन का एकात्म मानवतावाद परंपरानकूलता तथा परस्पर सामंजस्य कैसे संभव है. जहाँ शोषित, वंचित और पीड़ित समाज का शोषण जान और संपत्ति के आधार पर होता है. वहाँ संघर्ष अटल है. इसलिए गांधीजी हर तरह की विषमता के खिलाफ थे और सारे अन्यायों के खिलाफ सत्याग्रह का आवाह्न उन्होंने किया. लोहिया ने तो कहा, मैं समन्वयवादी, विविध भारतों का आदमी नहीं हूँ. मैं सिद्धांत नीति का आदमी हूँ. समन्वय और विविधता में एकता जैसे निर्बुद्ध तत्वों के कारण भारत बार बार गुलाम हुआ, ऐसा लोहिया मानते थे. उन्हें संतुलन और सम्मिलन मान्य था.

नास्तिक लोहिया ने चारों धामों की यात्राएँ कैसे की ऐसा नासमझ सवाल, लोहिया किस तरह परंपराओं पर निष्ठा रखने वाले थे, यह बताते हुए एक निबंध में व्यक्त किया गया है. लोहिया अध्ययन के समय बहुधा लोहिया का 'शिल्प' पर का लेख उस लेखक महाशय की नजरों से छूटा होगा. कोणार्क, खजुराहो, कैलाश, महाबलीपुरम और अन्य मंदिरों तक वहाँ की कला और शिल्प देखने के लिए लोहिया जाते थे. यह बात मंदिरों में सिर्फ देवदर्शन के लिए जाने वाले कैसे समझ सकते हैं ?

दीनदयाल और उन का संघ शंकराचार्य को काफी पूजनीय मानते हैं. लोहिया ने टीका की थी. शंकराचार्य ने लौकिक और पारलौकिक सत्य में विभेद मान कर भारतीयों को ढोंगी बनाया. मुंह से [illegible] और अप्रत्यक्ष रूप में हीन आचार. कीड़ा, चींटियां, वनस्पति, आदमी सभी में प्राण वैचारिक क्षेत्र में, प्रत्यक्ष व्यवहार में अछूतों को जिंदा जलाना. अछूत औरतों को नंगा कर के उन का जुलूस निकालना. दीनदयाल जी ने इस विभेद को खत्म क्यों नहीं किया ?

प्राय: सभी लेखक कहते हैं कि तीनों भारत विभाजन के खिलाफ थे. गांधी जी ने देश विभाजन के पहले अपने देह विभाजन की बात की थी. नेहरु ने पटेल से झगड़ा किया था. लोहिया ने अपनी गलती कबूल करते हुए कहा कि विभाजन विरोध में सत्याग्रह कर के मुझे जेल जाना चाहिए था. दीनदयाल 'अखंड भारत' का जोरदार प्रचार करते थे. लेकिन विभाजन के समय वे खामोश क्यों बैठे? अखंड भारत का नामजप करने वाला और 25 सालों की संचित शक्ति वाला संघ का संगठन साथ में होते हुए भी वे और संघ सारी ताकत की बाजी लगा कर जिस मार्ग पर उन की श्रद्धा थी उसी मार्ग से क्यों नहीं लड़े? यदि विभाजन के विरोध में दीनदयाल और उन का संघ लड़ता तो उन का नाम इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जाता.

गांधी जी ने जोतने वालों को जमीन का मालिक कहा तो लोहिया ने बिना हरजाना जमींदारी विध्वंस के लिए संघर्ष छेड़ा. दीनदयाल जी ने देश की सारी जमीन राष्ट्र की मिलकियत है ऐसा निर्गुण सिद्धांत बतलाया. लेकिन सगुण रुप के लिए कानून के आधार की अथवा जमींदारी प्रथा विनाश की बात नहीं उठायी.

लेखकों ने तीनों की भाषा संबधी नीति एक थी, कह कर एक गफलत और की है. गांधी जी ने अंग्रेजी हटाने की माँग 1916 में की थी. लोहिया ने 'अंग्रेजी हटाओ' आंदोलन शुरु किया और सभी देशभाषाएँ अपने अपने सूबों में सरकारी भाषाएँ बने, तथा दक्षिण के सूबे हिंदी केंद्र भाषा नहीं मानते तो बहुभाषी केंद्र बनाया जाये. लेकिन किसी भी शर्त पर अंग्रेजी हटे ऐसी माँग की. लोहिया का आग्रह अंग्रेजी हटाने का था हिंदी लाने का कतई नहीं था. दीनदयाल संस्कृतनिष्ठ हिंदी राष्ट्रभाषा बनाना चाहते थे. गांधी जी ने हिंदुस्तानी को मान्यता दी थी. लोहिया की राय तो भविष्यकालीन हिंदी, मराठी, तमिष, बंगला आदि सभी देशभाषाओं के शब्दों से समृद्ध होगी, ऐसी थी.

तीनों स्त्रियों का उत्थान चाहते थे, लेखक का यह कहना भी फँसाने वाला है. गांधी जी ने औरतों को पराक्रम के राजनैतिक क्षेत्र खोल दिये. उन्हें औरतें अहिंसा और सत्याग्रह का प्रतीक लगती थीं. गांधी जी के पहले के काल में सती हो जाना या जौहर करना, यह स्त्री पराक्रम दिखाने के क्षेत्र मौजूद थे. चूल्हाचौका और बच्चों के सीमित क्षेत्र से बाहर निकाल कर आधा भारत होने वाली औरतों के सड़ते रहे कर्त्तव्य, प्रतिभा और शक्ति को गांधी-लोहिया ने अवसर दिया. लोहिया ने स्त्री पुरुष को नीति अनीति का अलग अलग मापदंड लगाने का विरोध कर के औरतों को आवाह्न किया कि वे अपने मस्तक पर का योनिशुचित का बोझ फेंके. दुनिया भर की सप्त क्रांतियों में नर-नारी समता क्रांति को लोहिया ने अग्रसर दिया.

दीनदयाल महिलाओं को केवल मातृशक्ति के रूप में ही देखते थे. हिंदी किताब के 64 पृष्ठ के अनुसार ज्यादा से ज्यादा भगिनी के रूप में. रा. स्व. संघ पत्नी के रूप में भी देखता है. लेकिन माता पिता भगिनी और पत्नी के अलावा स्त्री पुरुषों में अन्य रिश्ता क्या क्या नहीं होता? आदर्श माता, आदर्श गृहणी तथा आदर्श भगिनी होने का ध्येय ही महिलाओं के सामने रख कर उन्हें संकुचित क्षेत्र में कैद करना कहाँ तक उचित है? स्त्री के साथ सहयोगी, सलाहकार, नेता, मित्र आदि विविध रिश्तों से व्यवहार करना क्या संभव नहीं है?

पाश्चात्य संस्कृति के दीनदयाल खिलाफ थे. लेकिन उसी संस्कृति की देन संसदीय जनतंत्र है. संसदीय जनतंत्र को मान्यता दे कर केंद्र में और राज्यों में कई दीनदयाल जी के चेले मंत्री बन गये हैं. लेकिन कथनी करनी की एकरूपता संघ वैचारिक स्तर पर भी नहीं मानता है. वैसे तो कथनी करनी की एकरुपता गांधीवादी, समाजवादी और लोहियावादियों में भी नहीं है, लेकिन कम से कम उस के बारे में अफसोस और विरोध वहाँ दिखायी देता है. संघ में अफसोस का और विरोध का पूर्ण अभाव है. संघ के जनसंघ सांसद लोकसभा में बिना अफसोस अंग्रेज़ी में बोलते हैं. उन के बच्चे पब्लिक स्कूल, कांवेंट में पढ़ते हैं. नॉयलॉन, टेरेलिन, टेरीकाट कपड़े और इंपार्टेड साड़ियों के पीछे का और पाश्चात्य जीवन पद्धति का एवं 'उच्च' जीवनमान के पीछे का पागलपन वहाँ भी है. कथनी करनी के इस भेद की आलोचना और जाहीर फटकार दीनदयाल जी जैसे नेता को करनी चाहिए थी.

गांधी-लोहिया-दीनदयाल' संबंध प्रतियोगिता का व्यूह कर के वसंत नारगोडकर के समान सर्वोदयी तथा मधु दंडवते के समान समाजवादी को हिस्सेदार बना कर रा. स्व. संघ ने आत्मवंचना और परवंचना की है लेकिन उस में वह सफल नहीं हुआ. उल्टे दीनदयाल उपाध्याय जैसे सदिच्छावादी सहृदयी, सुशील और सदम व्यक्तित्व को संघ ने अपनी क्षुद्र राजनीति के लिए इस्तेमाल किया है. यही धारणा संघ की इस खटपट से सिद्ध होती है.

—इंदुमति केलकर

मारग्रेट मीड

पिछले महीने प्रसिद्ध मानवशास्त्री मारग्रेट मीड का 77 वर्ष की उम्र में निधन हो गया. मानवशास्त्र तथा मानव जाति-विज्ञान के क्षेत्र में मारग्रेट मीड ने जो काम किया था उस की शुरुआत बहुत छोटी उम्र में ही हो गयी थी. मीड के काम की एक खास विशेषता यह भी थी कि 28 वर्ष की उम्र में ही उन की पहली पुस्तक 'दि कमिंग ऑफ ऐज इन सामोआ' बहुत लोकप्रिय हुई थी. मानवशास्त्र के अध्येताओं के लिए यह पुस्तक आज एक मील का पत्थर बन चुकी है. इस पहली पुस्तक की असाधारण लोकप्रियता के बाद मारग्रेट मीड को अपने जीवन में अनेक महत्त्वपूर्ण सम्मान मिले. 1971 को यूनेस्को ने मीड को लोकप्रिय वैज्ञानिक लेखन के लिए अपना प्रसिद्ध कलिंग पुरस्कार प्रदान किया. मीड को अगर यह पुरस्कार दिया गया तो इस में कोई बहुत आश्चर्य की बात नहीं क्यों कि उन्होंने अपने सारे जीवन में जो लिखा उस में वैज्ञानिक तथ्यों को एक ऐसी भाषा में प्रस्तुत करने की कोशिश की गयी थी जिसे अपेक्षाकृत एक बड़ा पाठकवर्ग मिल सके.

यह सही है कि वैज्ञानिक तथ्यों को लोकप्रिय बनाने में बहुत से खतरे भी निहित हैं. पिछले कुछ वर्षों में हम ने देखा है कि मीडिया वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर कभी-कभी जिन निष्कर्षों को प्रचारित करता है उस के पीछे उद्देश्य श्रोता या पाठक के मन में वैज्ञानिक जानकारी के प्रति आदर बनाना न हो कर एक तरह की दहशत पैदा करना होता है. मानवशास्त्रियों ने आदिम समाजों और तथाकथित असभ्य समाजों के जो अध्ययन किये हैं उन का विश्लेषण करते हुए इस तरह की लोकप्रियता एक दूसरी तरह का अर्थ रखती है. मिसाल के लिए इन आदिम समाजों के यौन जीवन पर जो अध्ययन होते रहे हैं उन का मीडिया ने कभी-कभी अपने ढंग से इस्तेमाल किया है. लेकिन मारग्रेट मीड के जीवन की एक बड़ी सफलता कहा जायेगा कि उन्होंने लोकप्रियता के चंगुल में न फँसते हुए लोकप्रिय लेखन रचा.

मारग्रेट की पहली पुस्तक के 'बेस्ट सैलर' होने के पीछे शायद यह कारण प्रमुख रहा कि उस का विषय आदिम समाजों में किशोरों और सैक्स के संबंध का अध्ययन था और चूंकि डॉ. मीड खुद अभी छोटी उम्र की ही थीं इस लिए इस पुस्तक का और भी विशेष महत्त्व हो गया. डॉ. मीड ने अपनी पहली सामोआ यात्रा के बारे में लिखा था कि मानव व्यवहार के छात्रों के लिए मानव जाति-विज्ञान इसलिए एक महत्त्वपूर्ण विषय बन जाता है चूंकि उस में शायद सब से अधिक संभावनाएं हैं. जाहिर है कि इन दूसरी तरह के समाजों के अध्ययन के लिए अनेक भाषाओं की [illegible] जरूरी है. डॉ. मीड ने सात आदिम समाज की भाषाओं का खूब जम कर अध्ययन किया और अपने विषय को अधिक से अधिक प्रामाणिक बनाने की कोशिश की. यही वजह है कि दक्षिण प्रशांत महासागरीय क्षेत्र के अध्ययन के लिए मीड के नाम से बच कर निकलना आज लगभग असंभव है. डॉ. मीड ने अपनी किताबों में इस क्षेत्र के आदिम समाजों के जीवन की बारीकियों के अनेक विवरण इकट्ठा करके उन की एक स्पष्ट भाषा और शैली में जाँच की है.

मारग्रेट मीड एक अर्थशास्त्री और एक समाजशास्त्री की संतान थीं. मानव व्यवहार के अध्ययन की उन की सनक हमें इस एक दिलचस्प तथ्य से ही पता चल जाती है कि जब वह खुद माँ बनने वाली थीं तो उन्होंने बच्चे के जन्म को दस मिनट इस लिए रोक लिया ताकि कैमरा वक्त पर लाया जा सके. यह सही है कि मारग्रेड मीड ने सैद्धांतिक स्तर पर जिन धारणाओं को जन्म दिया वे मानव

मारग्रेट मीड

विज्ञान के क्षेत्र में अधिक समय तक स्वीकृत अथवा प्रचलित नहीं रह पायी हैं पर चूंकि अमेरिकी जीवन में वह जीवन के अंतिम वर्षों तक सक्रिय रहीं इस लिए उन का नाम अखबारों, टेलीविजन और विश्वविद्यालय की कक्षाओं में बराबर चर्चा का विषय रहा. अपने मुक्त विचारों के कारण मारग्रेट मीड को शुरू से ही युवा वर्ग में लोकप्रियता मिली थी और यह लोकप्रियता उन के जीवन के अंत तक बनी रही. मिसाल के लिए जब मीड ने मारीहुआना के सेवन के पक्ष में अपना एक विवादास्पद वक्तव्य दे दिया तो उन्हें काफी कुछ सुनना भी पड़ा. मीड का सोचने का तरीका कभी कभी दिलचस्प भी हो जाता था. टी. वी. के पक्ष में उन की यह दलील क्या दिलचस्प नहीं है कि उस की मदद से युवावर्ग पहली बार इतिहास को बिना किसी सेंसर के देख पा रहा है? डॉ. मीड अपने विचारों में युवा वर्ग को स्वीकृति दिलाने की हर संभव कोशिश करती रहीं. इस वर्ग से संबंध विच्छेद को वह बहुत हानिकारक मानती थीं.

ग़रीबी रेखा नहीं, लक्ष्मण रेखा

एक **भारतीय** बढ़ई या ड्राइवर को एक किलोग्राम चावल खरीदने के लिए 2 घंटे काम करना पड़ता है जब कि **स्विटज़रलैंड, नीदरलैंड्स** और **ऑस्ट्रिया** के बढ़ई अथवा ड्राइवर को उतना चावल सिर्फ 15 मिनट कार्य करने से उपलब्ध हो जाता है. **सीरिया** या **बोत्स्वाना** के बेकरी कर्मचारी को एक किलोग्राम वज़न की रोटी प्राप्त करने के लिए 2 घंटे काम करना पड़ता है जब कि **कनाडा** या **बेल्जियम** में उसे यही रोटी केवल 10 मिनट काम करने से मिल जाती है. यह आँकड़े अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा 100 देशों में किये गये अध्ययन के बाद जारी किये गये हैं. विभिन्न देशों में निम्न वर्ग के उपभोक्ताओं की क्रय शक्ति का सहज अनुमान इस अध्ययन से लगाया जा सकता है.

बीसवीं सदी की इस चकाचौंधपूर्ण दुनिया में आज भी ऐसे देश हैं जहाँ चीनी विलासिता की सामग्री समझी जाती है. उदाहरण के लिए **बर्मा** में 1 किलोग्राम चीनी प्राप्त करने के लिए श्रमिकों को 13 घंटे काम करना पड़ता है. जब कि इतनी ही चीनी **मेक्सिको** के मजदूर को सिर्फ दस मिनट, और **गुआदेलुप** के मजदूर को 30 मिनट काम करने से हासिल हो जाती है.

विश्व क्षितिज पर : इस तरह की असमानताओं की पुष्टि पहली बार नहीं हुई है. पिछले दिनों ही विश्व बैंक ने भी इस बात को स्वीकार किया था कि दुनिया के 188 देशों में से 50 ऐसे हैं जिन में विश्व की 53 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है लेकिन उन के हिस्से में विश्व की कुल सकल आय का केवल 7.4% भाग आता है. दूसरी ओर 36 देश विश्व की कुल आय के 69 प्रतिशत भाग पर कब्जा किये हुए हैं, जब कि उन के यहाँ दुनिया की जनसंख्या का सिर्फ 18 प्रतिशत भाग रहता है. पिछड़े हुए, ग़रीब और विकासशील देशों का स्तर ऊपर उठाने के पक्ष में विकसित देश विश्व बैंक, अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक कोष और संयुक्त राष्ट्र संघ के मंचों से कितने ही बड़े बड़े भाषण क्यों न दें, वास्तविकता यह है कि यह देश इन मददगारों की ही नीतियों के शिकार हो कर रह गये हैं. हाल ही में प्राप्त सामान्य व्यापार और प्रशुल्क अनुबंध (गैट) की वार्षिक रपट में भी इस बात को स्वीकार किया गया है कि विकसित देशों का रवैया विकासशील देशों के प्रति काफी उदासीन है. रपट में कहा गया है कि ऐसे रवैये के फलस्वरूप 1977 वर्ष के दौरान तीसरी दुनिया के देशों का निर्यात व्यापार जहाँ अमेरिका से स्थिरता की स्थिति में रहा वहाँ जापान और प. यूरोपीय देशों के साथ इस में कमी भी आयी.

यहाँ एक प्रश्न उठता है, अंतरराष्ट्रीय क्षितिज पर स्थिति कुछ भी हो, विभिन्न देशों के बीच आर्थिक असमानताएँ भी कितनी ही हों (क्योंकि मोटे तौर से यह विभिन्न देशों के अंदरूनी आर्थिक संबंधों का सवाल है. वैसे वास्तविकता यह भी है कि विकसित देश यदि किसी अविकसित या विकासशील देश की मदद करते हैं तो यह वह अपने ही हित में करते हैं. दूसरे शब्दों में अपने निजी कल्याण हेतु ही मजबूरन उन्हें आर्थिक मदद उन देशों को देनी पड़ती है) परंतु सवाल यह है कि विकासशील अथवा ग़रीब देश अपने यहाँ सामाजिक न्याय किस सीमा तक कर पा रहे हैं? इस संदर्भ में भारतीय स्थिति पर विचार करना ज़्यादा ठीक होगा.

भारतीय स्थिति : योजना आयोग के नवीनतम अनुमान के अनुसार देश भर में ग़रीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की संख्या 46 प्रतिशत हो गयी है. इन में 47.65 प्रतिशत लोग ग्रामीण क्षेत्रों के और 40.71 प्रतिशत लोग शहरी क्षेत्र के हैं. यह अनुमान प्रतिव्यक्ति मासिक उपभोक्ता खर्चे के आधार पर लगाये गये हैं 1976-77 के मूल्यों के आधार पर ग़रीबी रेखा की मौद्रिक सीमा ग्रामीण क्षेत्रों में 61 रु. 80 पैसे और शहरी क्षेत्रों में 71 रु. 30 पै. रखी गयी है. इस का अर्थ यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों के वह सब लोग जिन का मासिक उपभोग खर्च 61.80 रु. से कम है और शहरी क्षेत्रों के वे लोग जिन का यह खर्च 71.30 रु. से कम है, ग़रीबी रेखा से नीचे हैं.

छठी योजना के ड्राफ्ट में ग़रीबी को आहार के साथ संबद्ध करने का प्रयत्न किया गया है. ड्राफ्ट में ग़रीबी रेखा से नीचे वह सभी लोग माने गये हैं जो ग्रामों में 2400 कैलरी रोज़
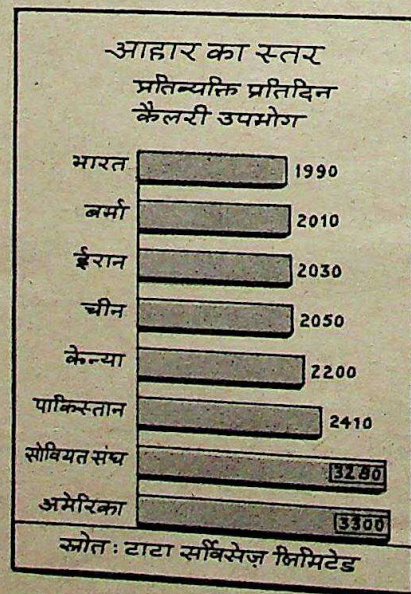
और शहरी क्षेत्रों में 2100 कैलरी प्रतिदिन से कम मात्रा में आहार ले पाते हैं.

यदि ग़रीबी के इन आँकड़ों की पुराने अनुमानों से तुलना करें तो मालूम होता है कि पिछले दस वर्षों में पाँच करोड़ से भी ज़्यादा लोग अत्यधिक निर्धन लोगों की श्रेणी में आ मिले हैं. 1967-68 में 40 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या और 50 प्रतिशत शहरी जनसंख्या ग़रीबी रेखा से नीचे मानी गयी थी. सब से बड़ा मज़ाक यह है कि इन वर्षों के दौरान शासन करने वाली कांग्रेस सरकार ने खास तौर से 'ग़रीबी हटाओ' का नारा दिया था. उस का वास्तविक हश्र क्या हुआ, जग ज़ाहिर है.

एक नारा और बड़े जोशो खरोश के साथ दिया गया था 'सामाजिक न्याय के साथ आर्थिक संवृद्धि'. आर्थिक संवृद्धि देश में निश्चित रूप से हुई है, परंतु 'सामाजिक न्याय' वाली बात के साथ काफी अन्याय किया गया है. आर्थिक असमानताएँ इस सीमा तक हैं कि जहाँ नीचे से दस प्रतिशत लोग कुल आय का 1.8 प्रतिशत भाग ही प्राप्त कर पाते हैं. वहाँ शिखर के सिर्फ 1 प्रतिशत लोग कुल आय का 9 प्रतिशत भाग पाते हैं. दूसरे शब्दों में जहाँ 60 प्रतिशत लोगों का एक वर्ग 20.8 प्रतिशत आय का हिस्सेदार है, वहाँ उच्चवर्ग के 20 प्रतिशत लोग राष्ट्रीय आय के 53 प्रतिशत भाग पर अधिकार जमाये हुए हैं.

नुकसान की पहुँच : ग़रीब वर्ग की घटती हुई क्रय शक्ति से सिर्फ इस वर्ग को नुकसान नहीं है. यदि ध्यान से देखा जाये तो इस का दूरगामी प्रभाव देश के सकल उत्पादन पर पड़ सकता है. क्रय शक्ति घटने का सीधा असर वस्तुओं की माँग पर पड़ता है. माँग न रहने से उत्पादन की कोई उपयोगिता नहीं रह जाती. अतः ग़रीब वर्ग की क्रय शक्ति बढ़ना बड़े उद्योगों के निजी हित में है. इस के साथ ही ग़रीबी का सीधा असर श्रम की कार्यक्षमता पर पड़ता है. हमारे अधिकांश श्रमिक निम्न वर्ग के हैं. यदि उन की क्रयशक्ति कम होगी तो वह अच्छा पौष्टिक आहार नहीं ले पायेंगे जिस से उन की कार्यक्षमता अनायास ही कम हो जायेगी. इस से सामाजिक अन्याय तो होता ही है, श्रम की प्रतिव्यक्ति उत्पादकता में भी कमी आती है. कुपौष्टिक आहार या अल्प आहार का सबसे बुरा असर भावी पीढ़ी यानी बच्चों पर पड़ता है. भारत में शिशु मृत्यु की ऊँची दर होने का बड़ा कारण कुपोषण ही है.

योजना आयोग का अनुमान है कि 1982-83 तक 26 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या (जो इस समय ग़रीबी की रेखा से नीचे है) अपनी स्थिति सुधार कर ग़रीबी रेखा से ऊपर आ जायेगी. इस के आयोग ने दो कारण दिये हैं. पहला तो यह है कि 4.7 प्रतिशत की दर से सकल राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि होगी. दूसरा, जो ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है, योजना काल

के दौरान न्यायपूर्ण वितरण का कार्य तेजी से किया जायेगा अर्थात असमानताएँ समाप्त की जायेंगी.

जहाँ तक 4.7 प्रतिशत की विकास दर का सवाल है, छठी योजना के ड्राफ्ट बनने के समय भी इस पर काफी विवाद हुआ था. स्वयं जनता पार्टी के आर्थिक नीति घोषणा-पत्र में न्यूनतम 7 प्रतिशत विकास दर प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया था. परंतु योजना आयोग के उपाध्यक्ष **डॉ. डी. टी. लकड़वाला** ने 4.7 प्रतिशत के लक्ष्य को ही व्यावहारिक माना था. **सब से बड़ी चिंता की बात यह है कि वास्तव में यह 4.7 प्रतिशत का लक्ष्य भी अव्यावहारिक प्रतीत हो रहा है.** इस की पुष्टि **'नैशनल कौंसिल आफ ऐप्लाईड इकानॉमिक रिसर्च'** द्वारा हाल ही में किये नवीनतम अध्ययन से होती है. संस्था ने अपनी त्रैमासिक पत्रिका के माध्यम से चेतावनी दी है कि चालू वर्ष (1978-79) के दौरान वास्तव में 3 प्रतिशत विकास दर की ही उपलब्धि हो पायेगी.

दूसरे कारण के अंतर्गत योजना में पुर्नवितरण को लिया गया है. यह कार्य न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रमों और ग्रामीण क्षेत्रों में पशु, पंप और ऋण सुविधाएँ दिला कर किया जायेगा. यह लक्ष्य और आश्वासन कहने और सुनने में जितने दिलचस्प लगते हैं, व्यवहार में उतने ही पेचीदा हैं. ध्यान से देखा जाये तो यह कहीं भी नहीं कहा गया है कि 1982-83 तक पुर्नवितरण को लागू करके कौन से वर्ग को किस सीमा तक लाभ पहुँचाया जायेगा.

समिति बनाना काफी नहीं : गरीबी जितनी बड़ी सामाजिक समस्या है, उतनी ही बड़ी आर्थिक भी. खबर है कि योजना आयोग पुर्नवितरण और विकास संबंधी कदमों पर गंभीरता से पुर्नविचार कर रहा है. सरकार ने इसी बीच विख्यात अर्थशास्त्री **डा. वी. एम. दांडेकर** की अध्यक्षता में एक विशेषज्ञ समिति भी नियुक्त की है. यह समिति गरीबी रेखा से नीचे के लोगों से संबंधित समस्याओं के प्रश्न पर अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करेगी. परंतु इतना ही काफी नहीं है. समस्या की गहराई पर देश के राजनीतिज्ञों द्वारा नये सिरे से विचार किया जाना चाहिए. जपा. तो आंतरिक कलह के कारण इस प्रश्न पर लगता है, सोच ही नहीं रही है. विरोधी दल भी, ख़ास तौर से इंका, इस विषय पर सरकार से लड़ने की ज़रूरत नहीं समझते. गोया, कांग्रेस सरकार ने पिछले वर्षों में जो कुछ किया, जपा. के लिए भी वही रास्ता ठीक है. गरीबी का प्रश्न उठा कर, इतना तो निश्चित है कि जनता की भावनाओं को उतना तो भड़काया नहीं जा सकता जितना साम्प्रदायिक दंगों और हरिजनों पर अत्याचार की बात उठा कर. वैसे इन दंगों में भी पिसते गरीब ही हैं.

—नरेश कौशिक

चरचे और चरखे

कीचड़ और दलदल

पिछले दिनों नयी दिल्ली में डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल की पुस्तक 'निर्मूल वृक्ष का फल' के विमोचन समारोह में अध्यक्षीय भाषण देते हुए वयोवृद्ध नेता **नानाजी देशमुख** ने कहा 'राजनीति तो कीचड़ है. कब नहीं थी? रामराज्य में नहीं थी? वहाँ भी मंथरा और कैकेयी जैसे लोग थे. महाभारतकाल में नहीं थी? राजनीति तो कीचड़ थी, है और रहेगी. उस कीचड़ में से कमल खिलाना ही उद्देश्य होना चाहिए.'

यह स्तंभकार बड़े ध्यान से उनकी बात सुन रहा था. सोचने लगा कितनी सफ़ाई से नाना जी साहब ने रामायण काल, महाभारत काल और आज की राजनीति को एक समान कर दिया. अब आप अपने काल की मंथरा, कैकेयी, दुःशासन दुर्योधन को खोजिए. और यह मान कर चलिए जो कह रहा है वह दशरथ और युधिष्ठिर तो है ही. हमारे राजनेता पौराणिक प्रतीकों का जाल बिछाने में बड़े सिद्धहस्त हैं. इस से चीज़ों को काफी उलझाया जा सकता है और अतिसरलीकरण द्वारा लोगों को गुमराह किया जा सकता है. रामायण काल की राजनीति भी कीचड़ थी और आज की भी है. पर उस कीचड़ में और आज के कीचड़ में फर्क करना नानाजी देशमुख साहब भूल गये. आज की राजनीति कीचड़ नहीं दलदल है. तब कीचड़ अगर थी तो उसमें रपट सकते थे, सँभल सकते थे. पर आज की राजनीति में पैर पड़ा नहीं तो धँसते जाना ही बदा है. उसमें अभी तक कमल खिलता तो देखा नहीं, लोग धँसते ज़रूर देखे हैं.

इस स्तंभकार को पता नहीं रामायण, महाभारत काल में रूस और अमेरिका जैसी विदेशी ताकतों का, टाटा, बिरला जैसे पूँजीपतियों का राजनीति पर कितना असर था. शायद नानाजी देशमुख जानते हों! वह केवल इतना जानता है कि तब राजनीति की कीचड़ से कृष्ण और राम जैसे कमल निकलते थे, उनके हाथ में सत्ता थी तो प्रजा का दर्द सुना जाता था. अब इंदिरा गांधी और मोरारजी जैसे कमल निकलते हैं, जिसके हाथ में सत्ता है वह प्रजा की बात न सुनना, उसकी तकलीफ़ों को न पहचानना अपना कर्त्तव्य मानता है. यह कीचड़ कीचड़ का फ़र्क है.

पहले राम ने सीता छोड़ी
इक धोबी के कहने पर
अब के राम गधा न छोड़ें
लाख दुलत्ती सहने पर.

तो साहब! यह कीचड़ कीचड़ का फर्क हुआ. बात यूँ समझिये कि कीचड़ बनने के लिए थोड़ी मिट्टी, ज्यादा पानी और दोनों की रौंद ज़रूरी है. अब तो सब अपनी मिट्टी ख़राब कर रहे हैं. पानी किसी में रहा नहीं, न कोई आंतरिक रौंद है. राजनीतिकर्मी के भीतर ही जब कीचड़ नहीं है तो वह कमल कहाँ से खिलायेगा? अतः बेपानी और बेपहचानी मिट्टी के आत्मसंघर्षहीन वायवी मूल्यों वाले ये मुलम्मेदार राजनीतिकर्मी जैसे हैं वैसी राजनीति बना रहे हैं. वही राजनीति चल रही है. उसे कीचड़ कहें और उस कीचड़ की तुलना रामायण और महाभारत काल से कर के न उसे गौरवान्वित करें, न ख़ुद को. असलियत को असलियत ही रहने दें. उस पर पौराणिक प्रतीकों की नकाब न डालें.

जब प्रजा की बात सुनी जाती थी तब प्रजा जोर-जुल्म, दैन्य, भूख, अन्याय, शोषण की चपेट में आने पर 'त्राहि त्राहि' भी करती थी. अब आप कहते हैं लोकतंत्र है जनता का शासन है. वह भी मान लेती है कि हाँ है. सत्ता में राजनेता किन ताकतों के बल पर आता है यह गुप्त पहेली जनता जानती नहीं. सुनती थी वायदे पूरे नहीं किये तो हट जायेंगे. पर सत्ता हथिया लेने पर कोई हटता नहीं. प्रजा चुप देखती रहती है. चारों तरफ काला काला फैला हुआ है—कर्म भी, धन भी, ईमान भी. दाल कहीं दीखती नहीं. जनता की दाल हो तो गलेगी.

पहले दाला में काला था कुछ
अब काले में दाल है,
फिर भी जनता जीम रही है
हम को यही मलाल है.

इस स्तंभकार की प्रार्थना है कि इस मलाल को रामराज्य की राजनीति के कीचड़ में लपेट कर आज की राजनीति के दलदल में डालने की हमारे वयोवृद्ध नेता कोशिश न करें. जनता को सभी गुमराह कर रहे हैं. इसका कलंक पौराणिक प्रतीकों पर न लगायें.

शाकाहार ही बेहतर

जब से अरबों ने 'तेल अस्त्र' का आविष्कार किया है पश्चिम के वैज्ञानिक ऊर्जा की खपत के प्रति बड़े ही संवेदनशील हो गये हैं—केवल वाहनों को चलाने के लिए जरूरी ऊर्जा के प्रति नहीं, मानवों को चलाने के लिए आवश्यक ऊर्जा के प्रति भी. उन की सूक्ष्म गणनाओं ने जो बहुत सी विस्तृत बहसें छेड़ दी हैं, उन में से एक में कम से कम भारतीय जनमानस के लिए विशेष दिलचस्पी होनी चाहिए. मांसाहार ऊर्जा मितव्ययी है या शाकाहार.

इन ऊर्जाशास्त्री पोषण वैज्ञानिकों का कहना है कि मनुष्य एक आश्चर्यजनक ऊर्जा मितव्ययी

मशीन है. वह दिन भर में जितनी ऊर्जा ग्रहण करता है, वह औस्तन एक 100 वाट की बिजली की बत्ती के लिए आवश्यक ऊर्जा से अधिक नहीं होती. भोजन के रूप में पचायी गयी इस ऊर्जा से ही वह सारे शारीरिक काम करता है. जहाँ तक मानसिक कामों का प्रश्न है, तो इस में लगभग नहीं के बराबर ही ऊर्जा खपती है. किंतु प्रश्न यह है कि संसार के उन्नत औद्योगिक देश इस '100 वाट की मानवीय बत्ती' को जलाये रखने के लिए कितनी ऊर्जा खर्च करते हैं.?

पश्चिम के उन्नत औद्योगिक देशों में अधिक-स्तर उठने के साथ ही लोगों की खाने पीने की [illegible] में भी बड़ा बदलाव आया है. उन के भोजन में कार्बोहाइड्रेट, अर्थात् शाकाहार का अनुपात लगातार घटता गया है और पशुजन्य प्रोटीन, अर्थात् माँसाहार व दुग्ध पदार्थों का अनुपात बढ़ता गया है. लेकिन समस्या यह है कि पशुजन्य प्रोटीन प्राप्त करने के लिए विभिन्न स्तरों पर जो ऊर्जा खर्च करनी पड़ती है, वह वनस्पति प्रोटीन के उत्पादन के मुकाबले 8 से 10 गुना अधिक होती है. मतलब यह कि भोजन में पशुजन्य आहार का अनुपात जितना ही अधिक होगा, उतनी ही अधिक ऊर्जा उसे पैदा करने पर लगानी होगी.

उदाहरण के लिए पश्चिम यूरोप के लोग प्रतिदिन लगभग तीन हजार किलो कैलरी के बराबर खाना खाते हैं. इस खाने में 40 प्रतिशत माँसाहार होता है, जिस के उत्पादन पर लगभग आठ हजार किलो कैलरी के बराबर ऊर्जा लगती है. दूसरे शब्दों में तीन हजार किलो कैलरी के बराबर ताप ऊर्जा देने वाले इस भोजन को प्राप्त करने पर कुल दस हजार किलो कैलरी के बराबर ऊर्जा खर्च करनी पड़ती है—ऊर्जा संकट के इस जमाने में ऊर्जा की सरासर बर्बादी.

दूसरी ओर हैं विकासशील देश जहाँ लोगों के दैनिक भोजन में शाकाहार लगभग दो हजार किलो कैलरी के बराबर होता है और दूध एवं माँसाहार केवल दो सौ किलो कैलरी के बराबर, इस शाकाहार प्रधान भोजन को पैदा करने के लिए केवल तीन हजार किलो कैलरी के बराबर ऊर्जा होती चाहिए.

यह तो एक बहुत ही संकोची तुलना थी. विशेषज्ञों का कहना है कि औद्योगीकृत कृषि वाले देशों में मानवीय भोजन के उत्पादन पर जो ऊर्जा व्यय की जा रही है, वह वास्तव में इस अनुमान से कहीं अधिक है. ये देश कोयले, तेल या गैस जैसे ईंधन की अपनी कुल खपत का एक चौथाई हैसे एक पंचमांश तक प्रत्यक्ष परोक्ष ढंग से केवल खाद्यपदार्थ उत्पादन पर लगा रहे हैं.

खाद्यपदार्थ उत्पादन के लिए ईंधन के प्रयोग का चक्र 1845 से घूमता शुरू हुआ. उस समय इस बात का भी पहली बार पता चला था कि कतिपय रासायनिक तत्व अलग से देने से फसल अच्छी होती है. इस खोज के बाद गुआनो (चिली साल्टपीटर) पहली रासायनिक खाद थी, जो पश्चिम के खेतों पर अलग से छिड़की जाने लगी. चालू शताब्दी के पहले तीन दशकों में पश्चिमी देशों में बड़े बड़े रासायनिक संयंत्र लगाने का क्रम शुरू हुआ जिन से एक ओर उन्हें चलाने के लिए आवश्यक ईंधन के रूप में उर्जा की खपत भी लगातार बढ़ती गयी.

रासायनिक खादों के प्रयोग की इस रासायनिक कृषि क्रांति के बाद जानवरों की जगह ट्रैक्टर आदि के प्रयोग की यांत्रिक कृषि क्रांति आयी. इस से ईंधन के रूप में ऊर्जा की खपत और बढ़ी यद्यपि यह भी सच है कि कुछ दूसरे [illegible] में ऊर्जा की काफी बचत भी होने लगी.

यह एक निर्विवाद तथ्य है कि कृषि कार्य के आधुनीकरण से खाद्यपदार्थों का उत्पादन तेजी से बढ़ा है और भविष्य में और भी अधिक बढ़ाया जा सकता है. किंतु यह उत्पादन वृद्धि वास्तव में जीवाश्म ईंधनों (तेल, गैस, कोयले) की बढ़ती हुई खपत की कीमत चुका कर हो रही है. और उन की खपत से यह वृद्धि खाद्यपदार्थों के उत्पादन में बढ़ोत्तरी की दर से कहीं अधिक है. उन्नत औद्योगिक देशों में इस समय प्रति-व्यक्ति जनसंख्या के पीछे 40 से 80 लीटर ईंधन कृषि यंत्रों को चलाने पर, 50 से 100 लीटर रासायनिक खादों और कीटनाशकों के उत्पादन पर और लगभग 20 से 40 लीटर कृषि कार्यों के लिए आवश्यक बिजली पैदा करने पर खर्च किया जा रहा है.

आँकड़े बताते हैं कि आधुनिक तरीकों से खाद्यपदार्थों का उत्पादन करने पर ईंधन आदि के रूप में जितनी ऊर्जा खर्च करनी पड़ती है, वह उस तापऊर्जा से कई गुना अधिक है, जो इन खाद्यपदार्थों से मनुष्य को प्राप्त होती है. भोजन में माँसाहार का अनुपात बढ़ने के साथ व्यय और अर्जित ऊर्जा के बीच की खाई और भी चौड़ी होती जाती है क्योंकि माँस वास्तव में वह चारा है जो जानवरों के पेट में जाकर माँस बन गया और इस माँस को प्राप्त करने के लिए पहले चारा पैदा करने पर और फिर जानवर को पालने पर ऊर्जा खर्च करनी पड़ी. एक गणना के अनुसार जब मशीनों और रासायनिकों का खेतों पर प्रयोग नहीं होता था, तब हर कैलरी ऊर्जा की लागत पर 16 कैलरी के बराबर 'फसल' की आवक होती थी. कृषि के आधुनीकरण के बाद से यह अनुपात घट कर 1 से 3, यहाँ तक कि 1 से 0.5 का भी हो गया है. उदाहरण के लिए एक किलोग्राम दुग्ध प्रोटीन प्राप्त करने के लिए 5 से 15 किलोग्राम ईंधन खर्च करना पड़ता है.

तो, इस तरह, ऊर्जा व्यय की दृष्टि से न केवल शाकाहार माँसाहार से लाभप्रद है, पारंपरिक कृषि भी आधुनिक कृषि के मुकाबले कहीं बेहतर है, पर प्रश्न यह है कि संसार की लगातार बढ़ती हुई जनसंख्या का पेट न तो केवल पारंपरिक कृषि के तरीकों से भरा जा सकता है और न वनस्पतिज प्रोटीन पशुजन्य प्रोटीन के पोषक मूल्यों का ही पूरी तरह स्थान ले सकती है. हमारे भोजन में दोनों का आनुपातिक सहअस्तित्व आवश्यक ही नहीं, किसी सीमा तक अनिवार्य भी है. ऐसी स्थिति में इस के अलावा और कोई चारा नहीं रह जाता कि जीवाश्म ईंधनों पर आधुनिक कृषि की निर्भरता पर लगाम लगे और सौर ऊर्जा जैसे ऊर्जा के अक्षम प्राकृतिक स्रोतों का खेतों और पशुशालाओं में भी अच्छी तरह दोहन हो.

रामनारायण यादव

अशांति पर्व की शुरूआत

बोस्टन से शशि भूषण

लगभग चालीस वर्ष पहले हालीवुड में एक फिल्म बनी थी. 'सिटिज़न केन' वह एक ऐसा समय था जब श्रम, मेघा और पूँजी के संतुलित प्रयोग से अमेरिकी अर्थव्यवस्था तेज़ी से ऊपर उठ रही थी लेकिन बाद के वर्षों में पूंजी के तेवर क्या होंगे, यह भी कुछ हद तक उजागर होने लगा था. 'सिटिज़न केन' कई अर्थों में पूँजी के इस कुचक्र को समझने की कोशिश थी जो एक व्यक्ति (केन) के उपक्रमों से गढ़े गये व्यापार साम्राज्य के उत्थान और पतन के गिर्द बुनी गयी कहानी है. एक तरह से यह फिल्म अमेरिका का सामयिक इतिहास है. इसी लिए आज भी उतना ही प्रभावकारी है जितना कि पिछले दशकों में था. इस फिल्म ने जब पहली बार घूम मचायी थी उन दिनों भूतपूर्व राष्ट्रपति कैनेडी हार्वर्ड विश्वविद्यालय के छात्र हुआ करते थे और यह क्या संयोग है कि इतने अरसे बाद यह क्लासिक फिल्म एक बार फिर हार्वर्ड स्क्वायर थियेटर में दिखायी जाती है और थोड़ी ही दूर पर एक भवन का कैनेडी के नाम में उद्घाटन हो रहा होता है और उत्तेजित छात्र पुलिस की घेरेबंदी में नारे लगा रहे होते हैं : 'टू फोर--सिक्स-एट, नो सपोर्ट फार रेशियल स्टेट.' बिल्कुल फिल्म में दिखायी गयी सभ्यता के अपरिहार्य संकट के रूप में ही सारी घटनाएँ घट रही होती हैं. भाइयों में कनिष्ट सिनेटर एडवर्ड कैनेडी--'टेड' अपने उद्घाटन भाषण में संयत नहीं रह पाते, "जैक (जान कैनेडी) ने यहाँ पढ़ते समय कभी सोचा भी नहीं होगा कि उस के नाम पर भी कभी कोई संस्था यहाँ खड़ी होगी, ऐसा लगता है जैक विश्वविद्यालय वापस लौट आया है. बाद के सारे समारोह में टेड काफी गमगीन रहे. पता नहीं अपने दिवंगत भाई की याद कर के या उन परिस्थितियों को ले कर जिन में भूतपूर्व राष्ट्रपति का नाम खास कर ऐसी बातों में घसीटा जा रहा है जिन के वह हमेशा विरुद्ध रहे.

कैनेडी स्कूल की स्थापना को ले कर छात्रों में कोई विरोध नहीं है. लेकिन जिस ढंग से इस केंद्र का आविर्भाव और जिस पैसे से इस भव्य भवन का निर्माण हुआ है उस को लेकर पिछले दिनों यहाँ काफी अशांति रही है. स्कूल से जुड़े हुए कई दूसरे और कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण सवाल है क्यों कि उन का ताल्लुक विश्व के व्यापक समुदाय से हैं. फिलहाल तो सारा आक्रोश विश्वविद्यालय प्रशासन के ही विरुद्ध है. और इस की तह में एक भद्र नागरिक का नाम है—सिटिजन एंगेलहार्ड.

हमारे समय के इतिहास में स्वतंत्रता समता और इन्हीं जैसी कितनी ही स्थापनाओं को ले कर जितने उपाख्यान प्रचलित है, उन में से कइयों का सिलसिला अमेरिका से जुड़ता है. लेकिन असलियत यह है कि अमेरिकी समाज के नियामक तत्त्व कुछ और ही हैं और जो पूरी तरह इन स्थापनाओं के विरुद्ध है. अमेरिकी जिंदगी एक दूसरी ही दुनिया है. सिटिजन केन का संसार--और उस के भाग्य विधाता एंगेलहार्ड जैसे नागरिक हैं जो सभ्यता संस्कृति, ज्ञान विज्ञान, सोचसमझ, इतिहास और भूगोल तक रचते हैं--एक सीमित मंशा को लेकर और जो हर ओर उजागर है--अमेरिकी शब्दावली में 'बुलशिट'.

रंगभेद के विरुद्ध प्रदर्शन

चार्ल्स एंगेलहार्ड के पास आज से बीस बरस पहले मात्र 2 करोड़ डालर की संपत्ति थी जो आज लगभग 25 अरब डालर तक पहुँच चुकी है और वह केवल दक्षिण अफ्रीका में पूंज़ी लगाने के कारण. आज एंगेलहार्ड वहाँ के 23 प्रतिशत बड़े उद्योगों के मालिक हैं साथ ही वहाँ की सोने की खानों का छठवाँ हिस्सा भी इन्हीं के कब्ज़े में है. एंगेलहार्ड की यह विशाल संपत्ति, वहाँ के खान मज़दूरों के निर्मम शोषण से उपजी है. गरीबी की सीमा रेखा अर्थशास्त्रीय विधानों में जहाँ से खींची जाती है, उस स्तर पर जीने के लिए जो प्रस्तावित मज़दूरी है, एंगेलहार्ड की खानों में उसकी आधी मज़दूरी ही दी जाती है. इतना ही नहीं वह खानों में सुरक्षा की कोई परवाह नहीं रखते और इस तरह 1936 से 1966 के बीच 19,000 काले मज़दूर मौत के घाट उतारे जा चुके हैं--औसतन हर सिफ्ट में 3 मज़दूर. बंतुस्तान, जहाँ की सारी ज़मीन पर गोरों का कब्जा है, वह कालों को गरीबी की असहय स्थितियों में ले गये हैं जहाँ से भाग कर वे खानों में काम करने आते हैं. आधा पेट भर कर और बैरकों में कुछ वर्ष गुजारकर अंततः वे खदानों की असुरक्षित स्थितियों में काम करते करते समाप्त हो जाते हैं. उधर उन का परिवार, जो गोरों की दृष्टि में फालतू जमघट है, भूख में तड़पता और तिल तिल कर घुटता रहता है. कुछ समय तक तो यह आशा रहती है कि जो उनके परिवार के सदस्य खदानों में काम करने गये हैं, वे लौट कर वापस आयेंगे और खाने के लिए कुछ लायेंगे लेकिन एक दिन यह आशा भी टूट जाती है, जिंदगियाँ समाप्त हो जाती है. यूनेस्को की रपट है कि वहाँ बच्चों की आधी संख्या 6 वर्ष की उम्र से पहले ही मृत्यु की भेंट चढ़ चुकी होती है.

एंगेलहार्ड उन लोगों में नहीं है जो मात्र अपने को व्यापार धर्म तक ही सीमित रखते हैं. वह गोरे रंग की सर्व सत्ता का राजनीतिक धर्म भी बखूबी निभाते हैं. वहाँ की गोरी सरकार के स्वर में स्वर मिलाकर वह अपना मंतव्य भी कई बार ज़ाहिर कर चुके हैं—हमें मज़दूरों की ज़रूरत है और इसलिए कालों की भी. लेकिन इस का यह मतलब कतई नहीं है कि उन्हें राजनीतिक अधिकार दे दिये जायें. सच तो यह है कि शार्पविले की हत्या (जिस में 69 आंदोलनकारी मारे गये थे) के बाद अधिकांश विदेशी पूंजी दक्षिण अफ्रीका से विदा ले चुकी है. केवल अमेरिकी बैंक और एंगेलहार्ड जैसे लोग ही इस जघन्य सरकार को बचाये हुए हैं. आश्चर्य तो यह है कि इस घिनौने धंधे में हार्वर्ड विश्वविद्यालय और एम. आई. टी. भी शरीक हैं जिन के ट्रस्टों के पास अपार संपत्ति है. इन की भी एंगेलहार्ड द्वारा संचालित

बहुराष्ट्रीय निगमों में लगभग चार पाँच सौ करोड़ डालर की पूंजी लगी हुई है. तुर्रा यह है कि विश्वविद्यालय में जगह जगह इस तरह के नारों के पोस्टर हैं—हार्वर्ड में धर्म, जाति लिंग या रंग के आधार पर भेदभाव दंडनीय है. यह कैसी घोषणा है और कैसा लोकतंत्र. वर्षों के विरोध का कुछ भी असर विश्वविद्यालय प्रशासन पर नहीं हो पाया है, उल्टे इस पैसे से एक ऐसा संस्थान खड़ा किया गया है जो लोकतंत्र की जड़ कतरने का काम बेशक करता रहेगा और जिस की मार आने वाले वर्षों में दुनिया के देशों को भी सहनी पड़ सकती है. इस सारी स्थिति की जड़ में नोच खसोट की इस संपत्ति का ही संकट है जो अब गहरा रहा है.

1978 तेजी से गुजरता जा रहा है. बस कुछ सप्ताह बाकी हैं. लेकिन बाल स्ट्रीट जर्नल, बेरोन 'स' जर्नल 1979 का भविष्य ले कर आज से ही चिंतित हो रहे हैं. डॉलर की गिरती हुई साख को ले कर एक अजीब उदासी है. हालाँकि प्रख्यात अर्थशास्त्री सैमुअलसन ऐसे निराश लोगों में नहीं हैं, फिर भी वह यह तो मानते हैं कि अमेरिकी अर्थव्यवस्था एक ऊहापोह की स्थिति से गुजर रही है. वैसे आसार अच्छे नहीं ही हैं. कुछ लोग मुद्रा स्फीति को ले कर चिंतित हैं तो कुछ लोग उस के संकुचन (रिसीशन) को ले कर. स्थिति यह है कि अगर एक तरफ चीज़ों के दाम बढ़ रहे हैं तो दूसरी तरफ बिना 'सेल' (रियायती बिक्री यानी दामों में छूट की घोषणा) लगाये बाजार को बढ़ाना भी मुश्किल हो रहा है. बेरोजगारी का प्रतिशत दस से घट कर सात तक ला दिये जाने के दावे हो रहे हैं जब कि 'फायर' हुए लोगों (छंटनीग्रस्त) की संख्या लगातार बढ़ती ही जा रही है. कभी कभार भिक्षाटन पर उतर आने वाले जो पहले शराब या सबवे (भूमिगत रेल) के किराये के लिए क्वार्टर (25 सेंट=2 रुपए) माँगते थे अब कभी कभी भूखे होने की भी बात करने लगे हैं. विडंबना यह है कि आयरलैंड से 'बीफ', डेनमार्क से पनीर, इटली से खाने के तेल, मैक्सिको से फल, भारत से चाय-काफी, कोरिया ताइवान से कपड़े, जूते और जापान से इलेक्ट्रानिक्स के सामान यहाँ प्रचुर मात्रा में पहुँच जाता है और यह सब चमत्कार अमेरिकी पूंजी की बदौलत होता है. वैसे अमेरिका का अपना भंडार भी विशाल है. लेकिन इस चमत्कार का असली राज तब समझ में आने लगता है जब भारत में देखे गये परिचित नामपट्ट—कोलगेट, शिवा, बर्माशैल, एस्सो, कोकाकोला, स्ववीन, गुड इयर, डनलप, यूनियन कार्बाइड जैसे ढेरों पटल कनाडा के धुर उत्तर से दक्षिण में मैक्सिको की खाड़ी तक हर छोटे बड़े शहर में दिखते हैं. और तो और मैकडोनाल्ड के हैमबर्गर, हार्वर्ड जानसन के मोटेल सिअर्स के स्टोर्स (बड़ी बड़ी दुकानें) जिस तरह पूरे अमेरिकी महाद्वीप में फैले हुए हैं उस में अमेरिकी संपत्ति की झलक साफ दीखती हैं. दक्षिण अफ्रीका से ग्वाटेमाला तक हर ओर एक ही कहानी है. भूमि खंडों के राजनीतिक नाम भले ही अलग अलग हों उन के घनत्व एक ही महाजाल के जाले हैं जो अब टूटने शुरू हो गये हैं.

अमेरिका की संपत्ति के आधार मुख्यत: भारी मशीन और हथियारों का निर्यात रहा है और इन के बाजारों से कमाई गयी भारी पूंजी का निर्यात. लेकिन इस दशक के आरंभ में स्थिति बदल रही है. वे सारे भाड़े के टट्टू, जो तीसरी दुनिया के गरीब देशों में अमेरिका के सिपहसलार हुआ करते थे, भाग्य विधाता बने रहने की स्थिति में जमें हुए नहीं लगते. पूंजी और राजनीतिक दोनों ही के षड्यंत्र बेनकाब होते जा रहे हैं. ज्यों ज्यों यह तेज होता जा रहा है, डॉलर की साख गिरती जा रही है. वीएतनाम युद्ध में मुँह की खाने के बाद 'जबरी ताकत' से बिदकाने के दिन अब लद गये हैं. ले दे कर छल छद्म का ही आसरा बचा है. पर लाकहीड जैसे ढेरों कांडों की चर्चा सरेआम है. डॉलर की साख को बचाने के लिए कितने ही उपक्रम किये जा रहे हैं. स्कूली शिक्षकों की हड़ताल चार महीने चल कर भी टूट गयी है, पर वेतनवृद्धि की माँग को ठुकरा दिया गया है. यू.एस. मेल. (डाक विभाग) जैसा फेडरल विभाग कितनी ही सांकेतिक हड़तालें कर चुका है. छोटे मोटे उद्योगों की हड़तालें तो यहाँ कोई विशेष महत्त्व नहीं रखती और तो और न्यूयार्क टाइम्स जैसा भारी भरकम अखबार भी अब तक हड़ताल की लपेट में रहा है. पता नहीं मुद्रा प्रसार को रोकने का यह भारतीय तरीका है जो अमेरिका आजमा रहा है या अमेरिकी उपाय ही है जो भारत आजमाता रहा है. टैक्स (कर) और कीमतें अपनी साँठ गाँठ से बढ़ती ही जा रही हैं. राष्ट्रपति कार्टर ने इसी सप्ताह कई फरमान जारी किये हैं उन का कहना है कि डॉलर का प्रसार चाहे जितना भी धीमा हो, उस की साख गिरने नहीं दी जायेगी. लेकिन यह व्यवस्था बहुत कुछ सुधारने की स्थिति में नहीं है. अंतरराष्ट्रीय बाजारों को लेकर षडयंत्रों का नया सिलसिला शुरू होने वाला है. 'कैनेडी स्कूल' जैसी संस्थाओं की पैदाइश इसके संकेत चिन्ह हैं.

पिछले वर्ष हार्वर्ड में उच्चशिक्षा की एक नयी विधा का विकास किया गया है और इस के अध्ययन अध्यापन के लिए एक भवन में एक दिव्य नाम के साथ एक विशिष्ठ केंद्र बनाया गया है. और इस तरह सत्ताधीशों, राज्यपालों, मंत्रियों, सांसदों और सभी प्रकार के महामहिमों और उनके चोबदारों की विधिवत् दीक्षा के लिए एक पाठशाला बनायी गयी है—कैनेडी स्कूल आफ गवर्नमेंट. इस स्कूल के डीन ग्राहम एलीसन का दावा है कि यह नया विषय उत्कृष्ट सरकार संचालन है न कि मात्र राजनीति या कूटनीति. जिन के लिए हार्वर्ड में पहले से ही विशिष्ठ केंद्र हैं जिन की उपज भूतपूर्व राष्ट्रपति कैनेडी और डा. किसिंगर जैसे लोग रहे हैं. एलीसन का कहना है 'जो लोग यह सोचते हैं कि आने वाले समय में सरकारों की महत्ता सीमित होती जायेगी, वे औंधे हो कर सोचते हैं. कोई कुछ भी सोचे सरकारों की महत्ता अभी बढ़ने ही वाली है. जब से हमने यह नया विषय शुरू किया, विश्व के हर कोने से छात्रों के आने की होड़ सी मच गयी है . . . और हमारे स्नातकों में कई अपने अपने देशों के शासनाधीश हैं और कई अति महत्त्वपूर्ण पदों पर, जो वास्तव में सरकारों को चलाते हैं. उदाहरण के लिए वह सिंगापुर के प्रधानमंत्री से ले कर कितने ही देशों के राजकुमारों तक का नाम गिना जाते हैं.

अमेरिका में जो अंधकार की शक्तियां हैं उन्होंने पिछले दशकों में दूसरे देशों में काफी सरकारें उल्टी पलटी हैं लेकिन खुद उन की बनायी गयी सरकारें स्थिर नहीं रही हैं. यह स्कूल इस समझ के साथ खोला गया लगता है कि इन टट्टू सरकारों को कैसे स्थिरता प्रदान की जाये.

नव-उपनिवेशवाद की जकड़न से विश्व अर्थव्यवस्था और खास कर गरीब देशों की अर्थव्यवस्था अपनी मुक्ति के ज्यों ज्यों प्रयास तेज़ कर रही हैं. त्यों त्यों निहित स्वार्थों की दुनिया उतनी ही गढ़े में भीतर धंसती जाती हैं. राजनैतिक सत्ता का एक तिलिस्म खड़ा करना इन साम्राज्यवादी तत्वों के लिए आवश्यक हो गया है जो ऊपर से तो जनमुखी लगे पर जिस के सारे कार्य कलाप पूरी तरह जनविरोधी हों. यह अकारण नहीं है कि इस तरह के केंद्र के निर्माण के लिए एंगेलहार्ड जैसे लोग दानवीर बन जाते हैं और हार्वर्ड, जिसे अपने साढ़े तीन सौ वर्षों की गौरवशाली परंपरा पर बड़ा नाज़ है, निल्लर्ज बन कर एंगेलहार्ड के नाम को अपने पुस्तकालयों के नाम क्रम में जोड़ बैठता है जो वाइडनर, लेमांत और पूशी जैसे प्रबुद्ध नामों की शृंखला है. अपने एक प्रखर छात्र के, जो अपने समय में पूरे राष्ट्र का सिरमौर बनता है और रंगभेद के विरुद्ध संघर्ष में खुद उत्सर्ग करता है, नाम को रंगभेद की ही उपज एक भवन के साथ जोड़ कर कलंकित किया जाता है. फिर बड़े ही साधुभाव से ईश्वर को साक्ष्य बना कर उद्घाटन समारोह किया जाता है. समवेत स्वर में गाया जाता है,

> 'वह लोगों की पवित्रता के लिए कुर्बान हुआ
> आओ, हम लोगों की आजादी के लिए
> मर मिटें!"

गणतंत्र का युद्ध-घोष (बैटल हाइम आफ द रिपब्लिक) गाया जाता है और इस तरह गणतंत्र की जड़ में मट्ठा डाला जाता है

विशेषाधिकार

अपराध और दंड

लोकसभा की विशेषाधिकार समिति ने श्रीमती इंदिरा गांधी को सदन की मर्यादा भंग का दोषी पा कर उन के विरुद्ध सजा की सिफारिश कर के (देखिए : पृष्ठ 7 **दिनमान : 10-16 दिसंबर**) सदन में और सदन के बाहर कई किस्म के सवाल उठा दिये हैं. इंदिरा कांग्रेस के क्षेत्रों में यह रुख तो लिया ही गया है कि इंदिरा गांधी ने सदन की मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया. यह बहस भी उठायी गयी है कि चूँकि मारुति संबंधी सूचना सदन के लिए एकत्र करने वाले अधिकारियों को दंड देने का मामला अदालत में भी आ सकता है इसलिए सदन में श्रीमती गांधी की इस संबंध में स्वीकारोक्ति अपने विरुद्ध बयान देने जैसी होगी : यह भी कि एक ही अपराध के लिए दो जगह सज़ाओं की कल्पना नहीं की जा सकती.

संसद किसी लोकतांत्रिक देश का वह संस्थान है जिस में बैठ कर देश के प्रतिनिधि उसके भविष्य का नियमन और संचालन करते हैं. आवश्यक है कि उसके उचित कार्यकलापों के संचालन में कोई बाधा न पड़े. उस प्रक्रिया की रक्षा के लिए उसे कुछ विशेषाधिकार मिले हुए हैं. किसी भी तरह की बाधा से पैदा होने वाले अपराध भी दो श्रेणियों में आते हैं. एक का संबंध किसी व्यक्ति द्वारा संसद का ही अपमान करने से है. ऐसे किसी अपराध के साबित हो जाने पर संसद दोषी व्यक्ति को **प्रताड़ित, निलंबित** या **निष्कासित** करने या जेल भेजने की सज़ा दे सकता है. जुर्माना करने का अधिकार संसद को नहीं है. निलंबन और निष्कासन की सजा सदस्यों तक सीमित होती है जब कि बाहर के व्यक्ति को अन्य सजाएँ दी जा सकती हैं. किसी सदस्य के लिए निष्कासन की सज़ा को सब से गंभीर माना जाता है. अपराध कानून की शब्दावली में उसे मृत्यु दंड का दर्जा दिया हुआ है. कारण यह कि एक सदस्य के निष्कासन से उस संसद में एक क्षेत्र विशेष के सात-आठ लाख मतदाताओं का प्रतिनिधित्व खत्म हो जाता है. प्रतिनिधित्व की यह समाप्ति उस क्षेत्र के लिए भी मृत्युदंड से कम नहीं है. लेकिन जेल या निलंबन की सज़ा तभी तक के लिए हो सकती है जब तक सदन चलता है. हाँ, अगर सदन चाहे तो सत्र के पुनः चालू होने पर सदस्य के सदन में आने के बाद वह उसे फिर जेल भेज सकता है. अमेरिकी सदन केवल उन्हीं विशेषाधिकारों की अवमानना के अपराध में दंड दे सकता है जो सदन के भीतर हुई हों. बाहर के मामले में अदालत में मुकद्दमे चलाये जा सकते हैं. भारत में स्थिति भिन्न है.

दिलचस्प तथ्य यह है कि सदन से किसी सदस्य का निष्कासन उसे दूसरा चुनाव लड़ने के लिए अयोग्य घोषित नहीं करता. वह पुनः चुनाव लड़ कर सदन में आ सकता है. लगभग दो सौ वर्ष पहले इंग्लैंड की संसद ने अपने एक सदस्य को एक-एक कर के तीन बार निष्कासित किया और तीनों बार चुनाव में जीत कर वह पुनः संसद में आ गया. चौथी बार भी ऐसा ही हुआ. तब संसद में यह प्रश्न उठा कि उस के साथ क्या व्यवहार हो. सदन में उस की वापसी को रोकने के लिए उसे सदा-सदा के लिए चुनाव लड़ने के लिए अयोग्य घोषित करने का फैसला किया गया और इस घोषणा के साथ ही उस सदस्य को निर्वाचित मान लिया गया जो उस से चुनाव में हार गया था.

श्रीमती गांधी की ओर से यह कहा गया कि यदि उन्होंने क्षमायाचना कर ली तो इस से उन का अपराध सिद्ध हो जायेगा और उस का असर शाह आयोग की रपट के आधार पर उन के विरुद्ध चलाये जाने वाले उस मुकद्दमे पर भी पड़ेगा जिस में चार अधिकारियों के काम में बाधा डालने का आरोप है. श्रीमती गांधी की आशंका का एक कारण यह हो सकता है कि सरकार दूसरे दल की है अतः आवश्यकता पड़ने पर सदन के भीतर की कार्रवाइयों का लेखाजोखा और संबंधित व्यक्तियों के साक्ष्य अदालत को उपलब्ध हो जायेंगे. राजनैतिक संदर्भों में उन की आशंका के लिए थोड़ी गुंजाइश हो सकती है लेकिन सत्ताधारी दल के जिम्मेदार व्यक्तियों द्वारा बार बार यह कहा गया कि उन्हें दंडित करने के पीछे ऐसी किसी दुर्भावना का अंश नहीं होगा जिस से साबित हो कि फैसला दलीय पूर्वाग्रह के आधार पर हुआ. वास्तविकता यह है कि सदन के भीतर की कार्रवाइयों या संबंधित व्यक्तियों के साक्ष्य संसद के अध्यक्ष की अनुमति के बिना कहीं इस्तेमाल में नहीं लाये जा सकते. यदि बाद में अदालत विशेषाधिकार समिति के सदस्यों को साक्ष्य के लिए बुलाना चाहे या सदन की कार्रवाइयों की माँग करे तो उस के लिए उसे अध्यक्ष से अनुमति लेनी पड़ेगी. अध्यक्ष को सदन में उस पर फैसला करना होगा, लेकिन यदि अध्यक्ष उस की अनुमति दे भी दें और गवाह या कार्रवाइयों का विवरण अदालत में पहुँच भी जाये तो भी वह केवल एक **अतिरिक्त साक्ष्य** का ही काम करेगा. **सदन में अपराध का स्वीकार अदालत ने दंड देने का आवश्यक या एक मात्र आधार नहीं हो सकता.** विशेषाधिकार समिति अदालत नहीं होती है इसलिए उस के निर्णय दोषसिद्धि (कनविक्शन)

दिनमान
समाचार - साप्ताहिक

भाग 14 — 17-23 दिसंबर, 1978
अंक 51 — 26 मार्गशीर्ष-2 पौष, 1900

*

इस अंक में

*

दिनमान

संपादक : रघुवीरसहाय. संपादकीय सहकर्मी : जितेंद्र गुप्त (सहायक संपादक), सर्वेश्वरदयाल सक्सेना (मुख्य उपसंपादक), श्यामलाल शर्मा, योगराज थानी, रामसेवक श्रीवास्तव, जवाहरलाल कौल, शुक्ला रुद्र, त्रिलोक दीप, महेश्वरदयालु गंगवार, प्रयाग शुक्ल, विनोद भारद्वाज और सुषमा पाराशर. सज्जा : विजय कोहली.

**टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन
दरियागंज, नयी दिल्ली-110002.**

पुंछ में हिंसा

जम्मू-कश्मीर के मुख्यमंत्री शेख अब्दुल्ला द्वारा सारी माँगें माने लिए जाने के बावजूद इस प्रदेश के शिक्षित बेरोजगार युवाओं ने अपना आंदोलन जारी रखने का फैसला किया है (देखिए पृष्ठ 21). शेख अब्दुल्ला ने दिल्ली रवाना होने से पहले जो विशेष बैठक बुलायी थी, उस का भी उन के नेताओं ने बहिष्कार किया.

मुख्यमंत्री ने आश्वासन दिया है कि पुंछ में गोलीचालन की घटना के बारे में जाँच पड़ताल करने के लिए उच्चन्यायालय के एक न्यायाधीश को नियुक्त किया जायेगा. फिर 90 नये पदों की स्थापना की जायेगी जिन पर उन शिक्षकों को नियुक्त किया जायेगा जिन्हें पुंछ भर्ती कार्यालय ने नौकरी पर नहीं रखा. लेकिन इस के बावजूद आंदोलनकारियों को यह भरोसा नहीं है कि इस तरह के अनियमित काम फिर से और अन्य प्रांतों में दोहराये नहीं जायेंगे.

और दंडादेश (सैंटेंस) के रूप में नहीं आते. ये दोनों कार्य अदालत के हैं. एक कानून विशेषज्ञ के अनुसार शाह आयोग की नियुक्ति आपात्काल की ज्यादतियों की जाँच परख के सिलसिले में हुई थी. और मारुति का यह प्रसंग उस के कार्यक्षेत्र में निश्चित रूप से नहीं आता. श्रीमती गांधी ने जो कुछ भी किया वह सदन के कार्यकलापों की सीमा में आबद्ध है अतः उस पर बाहर मुकद्दमा चलाने का सवाल नहीं आता. इसीलिए शाह आयोग के मुकद्दमे में उसे साक्ष्य की तरह आवश्यक रूप से नहीं लिया जा सकता.

अगले अंक में

युवा जगत
तीसरी शक्ति के अंकुर

अर्थ
अर्थव्यवस्था का निर्यात

●

तूफान के बाद आदमी
आंध्र में पुनर्निर्माण की गरिमा
बनवारी

भाषा
हिमालय की धर्मभाषा
कृष्णनाथ

कला
मैं न बोलूं, चित्र बोलें
सैयद हैदर रज़ा से बातचीत
प्रयाग शुक्ल

आधुनिक विचार
पश्चिमी समाज में लेखक

जनता पार्टी

चरणसिंह की कीमत

चौधरी चरणसिंह ने मोरारजी देसाई की सरकार में शामिल न होने का 'अंतिम फैसला' सुना दिया है और लोकसभा में गृहमंत्री पद से इस्तीफा देने की परिस्थितियों पर भी वक्तव्य देने का इरादा जाहिर किया है. फिर भी जनता पार्टी के बहुत से नेता यह उम्मीद कर रहे हैं कि 23 दिसंबर के बाद ही सही पार्टी का यह संकट टल जायेगा. यह संकट अधिक नहीं है कि चरणसिंह के अलग रहने से निकट भविष्य में जनता पार्टी टूट जायेगी, और केंद्रीय सरकार के लिए खतरा पैदा होगा. इस सिलसिले में पार्टी के अध्यक्ष चंद्रशेखर का यह दावा सही माना जा सकता है कि सरकार को कोई खतरा फिलहाल नहीं है. संकट असल में यह है कि चौधरी चरणसिंह के सरकार में शामिल न होने का मतलब यह होता है कि संयोग से या योजना से जिस व्यापक जन वर्ग का प्रतिनिधित्व चरणसिंह कर रहे हैं उस वर्गका समर्थन पार्टी को मिलना बंद न सही तो कम हो जायेगा. धीरे धीरे वह वर्ग पार्टी के हित-चिंतकों की श्रेणी में से निकल जायेगा. समस्तीपुर और फतेहपुर के चुनावों में यह बात काफी स्पष्ट हो चुकी है कि अभी भी यदि कोई वर्ग जनता पार्टी से प्रतिबद्ध सा दिखायी देता है तो वह देहातों में रहने वाला वह वर्ग है जो आम तौर पर किसान या खेत पर जीने वाला कहा जा सकता है. संकट यह भी है कि जनता पार्टी और चरणसिंह की समानांतर यात्रा से देश की वर्तमान राजनैतिक स्थिति में जो अव्यवस्था पैदा होगी उस का लाभ इंदिरा कांग्रेस को कई रूपों में मिल सकता है. यानी कुल मिला कर सत्तारूढ़ दल की कार्यकुशलता और लोकप्रियता के साथ साथ उस की विश्वसनीयता में कमी आने का खतरा है.

उज्जैन में जनता पार्टी के राष्ट्रीय शिविर के पश्चात् यह बात तेज़ी से फैलने लगी थी कि चौधरी चरणसिंह को मंत्रिमंडल में वापस लेने की योजनाएँ बनायी जा रही हैं. उस समय प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने प्रतिनिधियों से कहा था कि एक दूसरे की आलोचना का परिणाम यह होता है कि दोनों पक्ष लोगों की नज़रों में गिर जाते हैं. इस वक्तव्य से यह अनुमान लगाया गया था कि प्रधानमंत्री अब चरणसिंह के साथ समझौता कर के इस विवाद को समाप्त करना चाहते हैं. इसी के पश्चात् अध्यक्ष चंद्रशेखर और मंत्रिमंडल के कई सदस्यों ने चरणसिंह को मंत्रिमंडल में शामिल करने के लिए कई नये सूत्र खोजने शुरू कर दिये. मुश्किल यह थी कि जगजीवनराम इस बात के लिए तैयार नहीं थे कि चौधरी चरणसिंह को उपप्रधानमंत्री बनाया जाये, क्योंकि उन के अनुसार यह उन की प्रतिष्ठा को गिराने के बराबर होगा. इसलिए चरणसिंह को उपप्रधानमंत्री बनाने के साथ साथ जगजीवनराम को भी उपप्रधानमंत्री पद पर प्रतिष्ठित करने का सुझाव दिया गया. चंद्रशेखर के नेतृत्व में जनता पार्टी के 23 नेताओं की जो बैठक हुई, उसी में इस योजना का प्रारूप तैयार किया गया. योजना बनाने वालों में पार्टी के तीन महामंत्री रवि राय, नानाजी देशमुख और रामकृष्ण हेगड़े भी शामिल थे. यद्यपि मोरारजी देसाई दो-दो उपप्रधानमंत्रियों की नियुक्ति के प्रस्ताव से खुश नहीं थे फिर भी उन्होंने, इसे स्वीकार किया. मगर यह प्रस्ताव चौधरी चरणसिंह को मंजूर नहीं हुआ, क्योंकि उन्हीं के अनुसार इस से उपप्रधानमंत्री पद की प्रतिष्ठा ही समाप्त हो जायेगी. शीघ्र ही एक ऐसा समय आयेगा जब कि लोग 'चार चार उपप्रधान-

मंत्रियों की माँग करेंगे.'
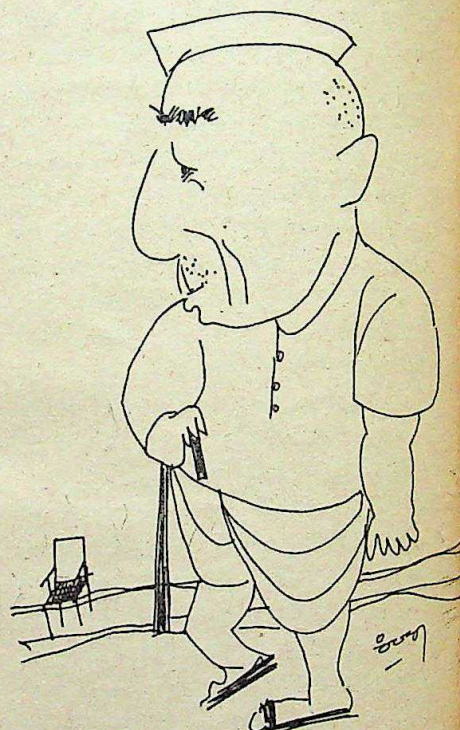
प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई अपनी शिखर राजनीति में यह नहीं चाहते कि किसी प्रकार चरणसिंह मंत्रिमंडल में और मंत्रियों की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर सकें, क्योंकि इस से वह सरकार चलाने के कार्य में औरों की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकेंगे, जिससे मोरारजी भाई की नज़र में प्रधानमंत्री पद में अधिकाधिक हस्तक्षेप की संभावनाएँ बढ़ जायेंगी. प्रधानमंत्री और चौधरी चरणसिंह के स्वभाव, उन की राजनैतिक पृष्ठभूमि और उन के कार्य करने के तरीकों में मौलिक अंतर होने के कारण ही भविष्य में विवाद पैदा होने की आशंका से प्रधानमंत्री ने चौधरी चरणसिंह की शर्तें स्वीकार करना उचित नहीं समझा, बल्कि

दोनों के दृष्टिकोणों में व्यापक अंतर का एक बृहत् राजनैतिक कारण भी है.

1977 में मध्य जातियों में अपने अधिकारों के लिए जो उत्साह पैदा हो गया वह जनता पार्टी के सर्ववर्गीय रूप के बावजूद दिन प्रतिदिन एक ठोस सूरत प्राप्त करने लगा. बिहार में आरक्षण के पक्ष में और उस के विरोध में आंदोलन इस की एक परिणति रही है. केंद्रीय सरकार की गिरती हुई साख के बावजूद ये मध्य जातियाँ आम तौर पर सत्तारूढ़ दल के साथ बनी रहीं. चरणसिंह और उन के समर्थक सार्वजनिक रूप से इस तथ्य को स्वीकार करें या न करें यह सही है कि चौधरी चरणसिंह इस समय उत्तर भारत में इन मध्य जातियों के नेता के रूप में ही पहचाने जाते हैं. इसी कारण से प्रधानमंत्री के लिए चौधरी चरणसिंह को मंत्रिमंडल में एक महत्त्वपूर्ण स्थान देना खतरे से खाली नहीं दिखायी देता. इसलिए भी कि मोरारजी देसाई का अपना कोई गुट नहीं है. शक्ति संघर्ष के इस दौर में राजनैतिक वफादारी एक विश्वसनीय तत्त्व नहीं रह गया है. साथ ही राजनैतिक वफादारी की आखिरी परीक्षा आम जनता के विश्वास में ही होती है. मोरारजी देसाई का महत्त्व अभी भी उसी बात में है जिस में मार्च 1977 में था कि उन का अपना कोई शक्तिशाली राजनैतिक गुट नहीं है जिस के पाँव लोकप्रियता पर खड़े हों.

चरणसिंह की दृष्टि से देखने पर उन के लिए ज़रूरी है कि वह न केवल मंत्रिमंडल में बने रहें बल्कि एक ऐसे महत्त्वपूर्ण पद पर बने रहें जहाँ सरकारी नीतियों को चलाने में उन की निर्णायक आवाज़ हो. केवल एक सामान्य मंत्री के रूप में चौधरी चरणसिंह ग्रामोत्थान और कृषि राजनीति को आगे बढ़ाने में उपयोगी सिद्ध नहीं होंगे. जगजीवनराम के साथ चौधरी चरणसिंह की शायद कोई व्यक्तिगत दुश्मनी नहीं है. मगर जगजीवनराम को प्रधानमंत्री देसाई चरणसिंह के रास्ते में एक गंभीर रुकावट के रूप में इस्तेमाल कर रहे हैं और रक्षामंत्री इस प्रकार ढाल बनने के लिए तैयार भी हैं, क्यों कि इसी में उन्हें फिलहाल अपना राजनैतिक हित दिखायी देता है. जगजीवन राम को कई दशकों से हरिजनों का सब से बड़ा नेता समझा जाने लगा है. आज की स्थिति में उन के इस नेतृत्व में गंभीर संदेह पैदा होना स्वाभाविक ही है. इस समय उत्तर भारत में भी सत्तारूढ़ दल के प्रभावक्षेत्र से अधिकतर हरिजन निकल चुके हैं. यानी दूसरे शब्दों में जगजीवनराम की एक गुट नेता के रूप में सत्तारूढ़ दल के लिए अधिक उपयोगिता नहीं रही है. मगर सिर्फ़ यही बात जनता पार्टी की शिखर राजनीति के लिए सही नहीं है.

23 दिसंबर को चौधरी चरणसिंह के नेतृत्व में एक विशाल किसान सम्मेलन का आयोजन किया जायेगा. इस बात में कोई संदेह नहीं कि इस दिन उत्तर भारत के अनेक राज्यों से बहुत बड़ी संख्या में किसान दिल्ली पहुँचेंगे. हरयाणा, उत्तरप्रदेश और बिहार के मुख्यमंत्रियों से यह उम्मीद की जाती है कि इन राज्यों से भारी समर्थन मिलेगा. चरणसिंह ने यह भी बता दिया है कि यह सम्मेलन जनता पार्टी के तत्वावधान में नहीं होगा जिस का मतलब यह होता है कि चौधरी चरणसिंह और उन के साथी मोरारजी देसाई के नेतृत्त्व के विरुद्ध एक विशाल प्रदर्शन का आयोजन कर रहे हैं. किसान सम्मेलन की कार्रवाई से चरणसिंह के नेतृत्व में एक नया राजनैतिक दल बनाने का संकल्प पैदा हो, यह असंभव नहीं है. मगर यह नहीं माना जाना चाहिए कि किसान सम्मेलन ही नये दल की शुरुआत हो, क्यों कि नया राजनैतिक दल चाहे कितना ही प्रभावशाली क्यों न हो निकट भविष्य में जनता पार्टी का विकल्प नहीं बन सकता. सत्तारूढ़ दल से निराश लोग इस प्रस्तावित राजनैतिक दल की ओर ही जायेंगे यह ज़रूरी नहीं है. इस आशंका से चौधरी चरणसिंह और उन के सलाहकार बेखबर नहीं हैं और इसी लिए इस बात की पूरी कोशिश की जायेगी कि किसान सम्मेलन मोरारजी देसाई और उन के साथियों के लिए एक चेतावनी का काम करे और मंत्रिमंडल में ऐसे लोगों को बल प्रदान करे जो अब यह सोचने लगे हैं कि चौधरी चरणसिंह का जनता पार्टी में महत्त्वपूर्ण स्थान पर बने रहना पार्टी के लिए जरूरी है. इस लिए यद्यपि चरणसिंह की ओर से मंत्रिमंडल में शामिल न होने का अंतिम फैसला घोषित किया गया है फिर भी आश्चर्य नहीं कि इस बात के प्रयास दोबारा किये जायें कि दोनों पक्षों के बीच कोई समझौता हो. 23 दिसंबर को शक्तिपरीक्षण के पश्चात् यदि चौधरी चरणसिंह अपनी सभी शर्तों को मनवाने के लिए हठ छोड़ दें तो भी आश्चर्य की बात नहीं होगी, क्यों कि किसान सम्मेलन के माध्यम से वह यह दिखाना चाहते हैं कि जनता पार्टी में सार्वजनिक लोकप्रियता का दावा यदि कोई एक व्यक्ति कर सकता है तो वह चौधरी चरणसिंह ही है.

इस के बावजूद यह मान लेना सही नहीं होगा कि दोनों पक्षों में समझौता होने के बाद भी तनाव और विवाद एकदम समाप्त हो जायेंगे. चौधरी चरणसिंह को मंत्रिमंडल में शामिल करने तक तो संगठन कांग्रेस को छोड़ कर अधिसंख्य घटक तैयार हैं, बल्कि उत्सुक भी हैं. यही बात उन के एकमात्र उपप्रधानमंत्री औरf फिर प्रधानमंत्री बनने की संभावनाओं के बारे में सही नहीं है. इसलिए यदि चौधरी चरणसिंह को जनता पार्टी में रहना है तो मोरारजी देसाई को अपने हठ और अंततः अपने पद से हटा कर स्वयं उस पर आसीन होने के लिए लंबे संघर्ष के लिए तैयार होना होगा. कोई कारण नहीं कि इस लंबे संघर्ष की कल्पना उन्होंने स्वयं नहीं की.

किसान

23 दिसंबर को क्या बनेगा?

भारतीय संदर्भ में किसानों का वर्गीकरण तीन भागों से होता आया है. पहले भाग में वे किसान आते हैं जो मूल रूप में ज़मीन के मालिक होते हैं किंतु खेत में श्रम करने का काम नहीं करते. दूसरे भाग में वे किसान आते हैं जिन के पास छोटी जोतें होती हैं और वे अपने खेत पर अपने श्रम से खेती करते हैं. तीसरे भाग में भूमिहीन खेतिहर मज़दूर आते हैं. इन तीनों ही वर्गों के किसानों का वर्ग-चरित्र अलग अलग होता है और इन के हित भी अलग अलग होते हैं. यही कारण है कि उपरोक्त तीनों वर्गों के किसानों को मिला कर कोई एक मज़दूर किसान संगठन नहीं बनाया जा सका और इसी वजह से किसान अपने हितों के लिए तथा गाँवों की तरक्की के लिए संघर्ष नहीं कर सका.

उपरोक्त वर्गीकरण के सामाजिक आधार भी रहे. ज़मींदार और बड़े किसान प्रायः बड़ी जातियों के रहे और भूमिहीन खेतिहर मज़दूर हरिजन रहे. इस के कुछ अपवाद भी रहे. आंध्र के रेड्डी और कम्मा, गुजरात के पटेल और उत्तर भारत में कहीं कहीं कुर्मी, यादव और जाट पिछड़ी जातियों के होते हुए भी बड़े किसान और ज़मींदार रहे. हिंदुस्तान के गाँवों में 1947 की तुलना में किसानों के स्वरूप में भारी परिवर्त्तन आया है इसे कतई नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता. ज़मींदारी उन्मूलन के तथा काफ़ी ज़मीन जोतदारों के हाथों में निकल जाने के कारण बड़ी जातियों के बड़े किसान अब छोटे किसानों की श्रेणी में आ गये हैं और स्वयं खेत पर काम भी करने लगे हैं. पिछड़ी जातियों में अहीर, कुर्मी, लोध आदि ने खेत पर अपनी मेहनत के द्वारा अपनी हैसियत बढ़ायी है. खेत मज़दूरों की स्थिति में कोई खास परिवर्त्तन नहीं आया है. हरिजनों को अगर कहीं कुछ ज़मीन मिल भी गयी है तो भी उन्हें दूसरे के खेतों पर मज़दूरी करनी ही पड़ती है. कुछ पिछड़ी जातियाँ भी ऐसी हैं, जैसे कोइरी, भर और गड़ेरिया जिन की हालत में कोई तब्दीली नहीं हुई है. कुछेक अपवादों को छोड़ कर ये अभी भी खेत मज़दूर ही हैं. इन भूमिहीन खेतिहर किसानों के साथ खेतों के मालिक किसानों के व्यवहार में कोई क्रांतिकारी परिवर्त्तन नहीं आया है. दुर्भाग्य की बात यह है कि देश के जिन भागों में पिछड़ी जाति के लोग बड़े किसान रहे हैं या अब खेत-वाले किसानों की श्रेणी में आ गये हैं, हरिजनों के साथ उन का व्यवहार भी बड़ी जातियों के किसानों जैसा ही रहा है. हाल की घटनाओं से यह स्पष्ट हो गया है. यही कारण है कि

हरिजन और खेतिहर मजदूर अपने को बड़ी जातियों और पिछड़ी जातियों के खेत वाले किसानों से समान रूप से अलग पाता है. आज डेढ़ वर्षों की जनता हुकूमत के बाद हरिजन और खेतिहर मजदूर जब एक बार फिर इंदिरा कांग्रेस की ओर मुखातिब हुआ है तो वह इसी की प्रतिक्रिया है.

उपरोक्त सामाजिक और आर्थिक संदर्भों में यदि देश में किसी किसान संगठन की कल्पना करना है तो सवाल उठता है कि किन किसानों को ले कर यह संगठन बनेगा और क्या परस्पर विरोधी हितों के किसान एक ही संगठन में रह सकते हैं. इस बात में कतई दो राय नहीं कि आज भी जो बड़े किसान हैं और स्वयं खेती नहीं करते वे ऐसे संगठन में नहीं आ सकते. लेकिन जो मध्यम दर्जे के अपने हाथ से खेती करने वाले किसान हैं और जो भूमिहीन खेतिहर मजदूर हैं उन को एक संगठन में लाने का काम हो सकता है. इस के लिए भी एक स्पष्ट घोषणा करनी होगी कि यह संगठन भूमिहीन किसानों को उचित
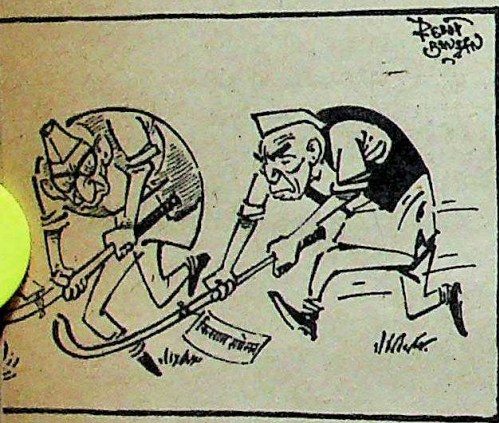
मजदूरी दिलाने तथा किसानों को उस की मेहनत का उचित दाम दिलाने तथा सिंचाई खाद और बिजली जैसी सुविधाओं के लिए मिल कर संघर्ष करेगा. वैसे आज जिन को भी बड़ा किसान कहा जाता है वे सभी गैरकानूनी हैं अर्थात् जोत सीमा से अधिक जमीन पर नाजायज कब्जा जमाये हुए हैं. ऐसी गैर कानूनी जोतों के विरुद्ध भी मध्यम किसानों एवं भूमिहीनों के बीच एक संधि करानी होगी. उपरोक्त आधारों पर बना किसान संगठन ही वास्तव में वर्ग चरित्र के आधार पर किसानों का प्रतिनिधित्व कर सकता है.

दुर्भाग्य की बात है कि देश में इस तरह का कोई भी किसान संगठन नहीं है. गत 50 वर्षों से समाजवादी और साम्यवादी किसानों का संगठन करते रहे हैं. समाजवादी **हिंद किसान पंचायत** और साम्यवादी **किसान सभा** चलाते रहे हैं. समाजवादियों और साम्यवादियों द्वारा चलाये जा रहे संगठन मूल रूप से भूमिहीन किसानों और मध्यमवर्ग के किसानों के संगठन रहे हैं. ये किसान संगठन भूमिहीन किसानों को जमीन दिलाने, अलाभ कर जोतों से लगान की समाप्ति तथा फसल का उचित मूल्य दिलाने के लिए संघर्ष करते रहे हैं. 1969 में समाजवादियों तथा साम्यवादियों ने अलग अलग भूमिमुक्ति आंदोलन चलाये थे. इस आंदोलन को कांग्रेस पार्टी ने भूमि हड़पो आंदोलन कहा था लेकिन इसी आंदोलन की आत्मा को पकड़ कर श्रीमती इंदिरा गांधी ने हरिजनों में भूमि बाँटने का हल्ला भी किया था.

मार्च 1977 में केंद्र एवं विभिन्न राज्यों में जनता पार्टी की हुकूमत बनने के बाद किसानों एवं गाँवों के हितों की रक्षा को प्राथमिकता देने की बात कही गयी. इस में दो राय नहीं कि जनता पार्टी ने किसानों को राहत दी, पर्याप्त मात्रा में पानी और बिजली की आपूर्ति की, खाद सस्ती की और विभिन्न खाद्यान्नों का उचित मूल्य दिलाने का प्रयास किया. लेकिन भूमिहीन खेतिहर मजदूरों के लिए नया कुछ भी नहीं किया जा सका उल्टे खेतिहर मजदूरों पर जगह जगह जुलुम शुरू हो गये. नतीजा यह हुआ कि किसानों की एकता छिन्न भिन्न हो गयी. जनता पार्टी आज तक अपना कोई किसान संगठन नहीं बना सकी. जो विलीन घटक अपना अलग किसान संगठन चला रहे थे उन का आपस में विलय भी नहीं हुआ. उल्टे विभिन्न घटकों के लोगों ने अपने अलग संगठन बनाने शुरू कर दिये. भालोद के लोगों ने **किसान सम्मेलन** बनाया और जनसंघ के लोगों ने **किसान परिषद**. नतीजा यह हो रहा है कि जनता पार्टी के विभिन्न घटकों के किसान संगठन आपस में प्रतिद्वंद्विता कर रहे हैं.

आजकल चर्चा **किसान सम्मेलन** की है. गत वर्ष 23 दिसंबर को इस सम्मेलन ने चौधरी चरणसिंह के जन्म दिवस पर भारी प्रदर्शन किया और 25 लाख रुपए की थैली भी भेंट की. इस वर्ष पुनः 23 दिसंबर को एक विशाल प्रदर्शन में चौधरी चरणसिंह को एक करोड़ रुपए की थैली भेंट की जा रही है. किसान दिल्ली में बड़ी संख्या में एकत्र हों और चौधरी साहब को थैली भेंट करें इस से किसी को एतराज नहीं हो सकता. बहस सिर्फ इस पर हो सकती है कि किसान सम्मेलन का वर्ग चरित्र क्या है? क्या यह किसानों और भूमिहीन खेतिहर मजदूरों का प्रतिनिधित्व करता है?

यह बहस स्वयं जनता पार्टी के हित में भी आवश्यक है. आज किसान सम्मेलन का जो स्वरूप है वह विवादास्पद है. ऐसी मान्यता बन रही है कि यह कुछ मध्यम जातियों का संगठन है. दुर्भाग्य यह है कि इस मान्यता को तोड़ने का भी प्रयास नहीं हो रहा है जब कि किसान सम्मेलन में बहुत से समाजवादी अगुआ है जो भूमिहीन किसानों के लिए लाठी खा चुके हैं. किसान सम्मेलन की ताकत और संपन्नता के बारे में गलतफहमी नहीं है किंतु इस के नेता इस संगठन से उत्पन्न हो रही प्रतिक्रिया को भी समझ लेते तो अच्छा होता. बड़ी जाति का किसान और भूमिहीन खेतिहर मजदूर इस संगठन से अलग है. और विभिन्न कारणों के चलते वह अपना रिश्ता इस संगठन से नहीं जोड़ पा रहा है.

हिंद किसान पंचायत उत्तर प्रदेश के नेता श्री विष्णुदेव गुप्त और श्री हरिकेवल विधायक ने बताया कि वे किसान सम्मेलन और उस की गतिविधियों के विरोधी नहीं हैं. हर किसी को अपना संगठन बनाने की छूट है. वे इसे किसानों का वर्ग संगठन नहीं मानते. साथ ही उन की यह भी राय है कि हिंद किसान पंचायत किसानों के जिन हितों के लिए लड़ती रही है अगर किसान सम्मेलन के लोग भी उन हितों के लिए लड़ने का मन बनाते हैं तो कोई संयुक्त मोर्चा बन सकता है. —**विजयनारायण**

कांग्रेस

होना, या न होना...

अध्यक्ष **स्वर्णसिंह** ने एकता समर्थक चार और नेताओं (**सिद्धार्थशंकर राय, श्यामाचरण शुक्ल, मुहम्मद यूनुस सलीम और रणवीर सिंह**) को कार्यसमिति का सदस्य मनोनीत कर के दल के भीतर के एकता विरोधियों को असहायता की एक विचित्र स्थिति में डाल दिया है. कार्यसमिति में अल्पमत का शिकार हो जाने वाले ये नेता मनोनयन की संवैधानिकता को चुनौती देते हुए यह भी कह रहे हैं कि स्वर्ण सिंह को वैसा करने का अधिकार ही नहीं है क्यों कि उन की अध्यक्षता की संपुष्टि भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा नहीं हुई और उन की हैसियत महज एक प्रावधानिक अध्यक्ष की है.

स्वर्णसिंह ने (जिन्हें एकता विरोधी नेता अब सरेंडर सिंह कहने लगे हैं) कुछ दिनों पहले कार्यसमिति में **मोहनलाल सुखाड़िया** का भी मनोनयन किया था. इस बीच खाली जगहों को भर कर उन्होंने एकता समर्थकों की स्थिति को पर्याप्त सुदृढ़ कर दिया है. कांग्रेस में अपने को वामपंथी रुझान से जोड़ने वाला वर्ग अभी भी समर्पण के लिए तैयार नहीं है क्यों कि वह यह मान कर चलता है कि वामपंथी रुझान वाली तीसरी शक्ति भविष्य में एक विकल्प बन सकती है. इसीलिए उस के प्रवक्ता शर्तहीन एकता की कोई स्थिति आने पर अपने को कांग्रेस से दिमागी तौर पर अलग ले जाने के लिए तैयार कर रहे हैं. लेकिन कांग्रेस के ऐसे कई नेता जो अपने को उस संस्था की परंपराओं का अभिन्न हिस्सा मानते हैं, निजी बातचीत में असहायता की इस स्थिति को स्वीकार करते हैं और यह मान कर चल रहे हैं कि विघटन की स्थिति पैदा होने पर

वे न केवल उसे बचाने की कोशिश करेंगे बल्कि लोकतांत्रिक मूल्यों में विश्वास करने वाले व्यक्ति की तरह बहुमत के फैसले को स्वीकार भी करेंगे. तात्पर्य यह कि आने वाले दिनों में इंदिरा कांग्रेस से एकता के लिए जो भी प्रस्ताव बहुमत से पास होंगे उसे वे न केवल अंगीकार करेंगे बल्कि कांग्रेस में बने भी रहेंगे.

एक दिलचस्प बात यह है कि एकता का विरोध करने वाले नेता अपने को **एकता विरोधी** नहीं कहते. न केवल **यशवंत राव चव्हाण** जैसे वरिष्ठ और अनुभवी नेता बल्कि, बिहार प्रदेश कांग्रेस के कोषाध्यक्ष और युवा नेता **शंकर दयाल सिंह** तक ने अपने शब्दों में यही कहा : 'हम एकता के विरोधी नहीं हैं. हम केवल समर्पण के विरोधी हैं. शर्त्तहीन समर्पण के लिए हम कदापि अपने को तैयार नहीं कर सकते. यदि एकता स्थापित करनी है तो वह सम्मानयुक्त होनी चाहिए. उस के कुछ नियम और शर्त्तें होनी चाहिए. व्यक्तिवाद को किसी भी रूप में उस में अपनी भूमिका निभाने के अवसर नहीं दिये जाने चाहिए.'

मनोनयन की घोषणा के बाद **के. पी. उन्नीकृष्णन्, व्यालार रवि, ए. जी. जॉर्ज** और **हरिकिशोर सिंह** ने विरोध में एक वक्तव्य जारी किया और स्वर्णसिंह पर पार्टी संविधान की अवमानना का आरोप लगाया. इन नेताओं के अनुसार कांग्रेस के संविधान में केवल 9 सदस्यों के मनोनयन की व्यवस्था है. दस सदस्य चुने जाते हैं. न तो स्वर्णसिंह को और न ही कार्यसमिति को इन प्रावधानों को निरर्थक करने का कोई संवैधानिक अधिकार है. उन्होंने स्मरणपत्र दिया : 'स्वर्णसिंह द्वारा उठाया गया खतरनाक कदम भारतीय कांग्रेस की पहचान को समाप्त कर देने वाला है. हम ऐसे किसी निर्णय को मानने के लिए बाध्य नहीं हैं. यह मनोनयन असंवैधानिक और गैरकानूनी है. संविधान के अनुच्छेद 11 के अंतर्गत सिद्धार्थ-शंकर राय की हैसियत प्रतिनिधि तक की नहीं रह गयी है. यूनुस सलीम की भी यही स्थिति है. केवल वे ही प्रतिनिधि कार्यसमिति के पदों के लिए योग्य हो सकते या मनोनीत किये जा सकते हैं जिन्हें मत देने का पूरा अधिकार मिला हुआ है... कार्यसमिति ने आप को (स्वर्णसिंह) नियम के अनुसार एक प्रावधानिक अध्यक्ष चुना था. कायदे के अनुसार 6 महीने के भीतर ही भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा उस की संपुष्टि की जानी थी. ऐसा नहीं हुआ और ताज्जुब है कि आप न केवल अध्यक्ष पद पर बने हुए हैं बल्कि इस तरह से काम कर रहे हैं जैसे आप का चुनाव नियमित अध्यक्ष के रूप में हुआ हो.'

जाहिर है कि एकता का समर्थन करने वाले कांग्रेस के अन्य अनेक नेता स्वर्णसिंह के मनोनयन संबंधी कदम का औचित्य सिद्ध करने की पूरी कोशिश कर रहे हैं. कार्यसमिति की एक बैठक में आमंत्रित के रूप में हिस्सा लेने वाले [illegible] द्विवेदी ([illegible]) का कहना था कि 'स्वर्णसिंह शुरू शुरू में मनोनयन करने के लिए तैयार नहीं थे. लेकिन चूँकि कांग्रेस कार्यसमिति के सभी सदस्य वैसा ही चाहते थे इस लिए उन्होंने रिक्त स्थानों की पूर्ति कर दी.' श्री द्विवेदी के अनुसार श्री चव्हाण ने भी उस के लिए अपनी सहमति दी थी. एकता का विरोध करने वालों की संख्या बिल्कुल नगण्य है और उन में के कुछ लोगों का दिल जनता पार्टी के साथ है. अपने अपने कारणों से वे लोग कांग्रेस को जनता पार्टी की गोद में रख देना चाहते हैं. वे कांग्रेस को विघटित कर देने के लिए तुले हुए हैं लेकिन यदि विघटन होता भी है तो उस का प्रभाव बहुत मामूली होगा.'

फिलहाल स्वर्ण सिंह का विरोध करने वाले नेताओं को यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि वह श्रीमती गांधी के हाथों में खेल रहे हैं. इन नेताओं को उन के कार्य से भी संतोष नहीं है. वे उन की निष्पक्षता में भी अविश्वास करने लगे हैं. प्रमाण के लिए शंकरदयाल सिंह का कहना था कि अध्यक्ष के रूप में स्वर्णसिंह ने कोई महत्त्वपूर्ण काम नहीं किया. महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि अगर एकता हो भी गयी तो कांग्रेस का कार्यक्रम क्या होगा. इस बात की पूरी आशंका है कि बाद में कांग्रेस का सारा कार्यक्रम सदन के बाहर और भीतर श्रीमती इंदिरा गांधी को बचाने के प्रयत्नों में सिमट जायेगा. यह स्थिति अधिक चिंताजनक है. स्वर्णसिंह ने मनोनयन में भी अपनी निष्पक्षता का परिचय नहीं दिया. हरयाणा के मुकाबले बिहार में कांग्रेस की जड़ें बहुत गहरी रही हैं. स्वर्णसिंह ने हरयाणा से रणवीर सिंह का मनोनयन कार्यसमिति के सदस्य के रूप में किया लेकिन बिहार के भूतपूर्व मुख्यमंत्री और अल्पसंख्यकों के नेता अब्दुल गफूर को महज एक आमंत्रित सदस्य बनाया. बिहार कांग्रेस विधायक दल के नेता रामलखन सिंह यादव को इन में से किसी के काबिल नहीं समझा गया. सारा काम वह एकपक्षीय ढंग से करते रहे हैं.'

यशवंत राव चव्हाण का दुख यह है कि 'सभी कांग्रेसियों से कांग्रेस के झंडे के नीचे एकत्र होने की अपील करने के बावजूद स्वर्ण सिंह ने अपने को बदली स्थिति में ला दिया' उन्होंने कहा : मैं गुण-दोष के आधार पर समर्थन देने के पक्ष में रहा हूँ, एकता का विरोध तो मैंने भी नहीं किया था, लेकिन उसका आधार तो स्पष्ट होना चाहिए. व्यक्तिवादी मूल्यों की जगह पर लोकतांत्रिक मूल्यों की प्रतिष्ठा का आश्वासन मिलना चाहिए था. 'प्रश्न कुछ सिद्धांतों और आदर्शों से भी जुड़ा हुआ है. सत्तानुयायी राजनीति, और आदर्शों की राजनीति के साथ एक सम्मिश्र राजनीति भी होती है. प्रक्रिया सत्तानुयायी राजनीति की ही चल रही है. इसीलिए कर्नाटक और आंध्रप्रदेश में इंदिरा कांग्रेस की जीत के 8 दिनों के भीतर ही दलबदल तेज हो गया. महाराष्ट्र में विभाजन हुआ. इस बीच एकता और अस्तित्व दोनों की बातें चलती रही हैं. एकता की बात अभी हो सकती है लेकिन मैं आत्मसमर्पण स्वीकार नहीं कर सकता.'

किसी तीसरी वामपंथी शक्ति के पर्याप्त विकास की संभावनाएँ श्री चव्हाण को दिखाई नहीं देतीं. खास तौर से राष्ट्रीय स्तर पर. हालाँकि श्री चव्हाण यह भी कहते हैं कि अगर ऐसी कोई शक्ति उभरती है तो वह उसके खिलाफ नहीं हैं. 'हाँ, हम महात्मा गांधी और जवाहर लाल नेहरू की परंपरा में सिद्धांत की लड़ाई लड़ते रहेंगे. हम ऐसा कोई कदम भी नहीं उठायेंगे जो कांग्रेस की पहचान को खत्म करने का कारण बने. मैं अगली बैठक में कांग्रेस कार्यसमिति में अपना विचार रखूँगा. बहुमत के निर्णय को स्वीकार करते हुए उसके साथ होने की कोशिश करूँगा. फैसला करते हुए आधार महाराष्ट्र की राजनीति होगी. मैंने 25 साल में वह कांग्रेस बनायी है.'

कुल मिला कर अब लगभग स्पष्ट हो गया है कि कांग्रेस के भीतर एक वर्ग उनका है जो यह मान कर चल रहे हैं कि उन्हें बिना शर्त मिल जाना चाहिए. इन में ज्यादातर वे लोग हैं जिनमें कभी भी अपने पैरों पर खड़े होने की क्षमता रही ही नहीं. दूसरा वर्ग उन लोगों का है जो इंदिरा गांधी को अपने गले के नीचे उतार नहीं पाते. लेकिन क्योंकि उनकी सारी जिंदगी कांग्रेस में ही बीती है अतः अब उन्हें कोई और रास्ता नहीं दिखाई देता. आखिर जायें भी तो कहाँ? तीसरा वर्ग उन लोगों का है जो अपेक्षाकृत युवा है और किन्हीं मूल्यों का मोह अभी भी सँजोये हुए हैं. वे अवसरवादी राजनीति के प्रति अपने को समर्पित नहीं करना चाहते. आत्मसमर्पण की किसी स्थिति में ये लोग कांग्रेस से अलग हो जायेंगे.

फिलहाल कांग्रेस के लोग वास्तविक स्थितियों का आकलन भी कर रहे हैं. उनकी नज़र प्रदेशों पर लगी है. बहुत कुछ इस तथ्य पर भी निर्भर करेगा, कि इस मुद्दे को लेकर अंततः कांग्रेसी बहुमत किस ओर है.

जहाँ तक स्वर्ण सिंह का सवाल है वह अपने आलोचकों की तत्काल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक बुलाने की माँग को नजरअंदाज करते दिखाई दे रहे हैं. इस स्थिति में एकता के प्रश्न पर व्यापक पैमाने पर कांग्रेस के भीतर विचार-विमर्श की संभावनाएँ तात्कालिक दृष्टि से पैदा नहीं हो पायेंगी. स्वर्ण सिंह का तर्क यह है कि चूँकि अगले महीने पार्टी का राष्ट्रीय समारोह आयोजित करने की घोषणा हो चुकी है अतः उसके पहले बैठक की कोई जरूरत नहीं है.

एक सूचना के अनुसार इंदिरा कांग्रेस एकता के बाद भी स्वर्ण सिंह को पार्टी अध्यक्ष बनाये रखने के लिए सहमत है. कांग्रेस में एकता समर्थकों के लिए यह स्थिति सुखद होगी.

उत्तरप्रदेश

आसन्न अँधेरे का ख़तरा

8 दिसंबर से उ.प्र. राज्य विद्युत परिषद के 1 लाख 12 हजार कर्मचारी हड़ताल पर हैं और सेना के तकनीशियन, अफसर तथा अभियंता जेनरेशन (बिजली पैदा करने) की असफल कोशिश कर रहे हैं. ओबरा में 7 दिसंबर की रात दस बजे से एक भी कर्मचारी अंदर नहीं गया है. सुरक्षा कर्मचारी, ड्राइवर और समस्त कार्यालय कर्मचारी भी हड़ताल पर हैं. कैजुअल, मस्टर रोल और ठीका मजदूर भी काम पर नहीं हैं, क्योंकि समस्त श्रमिक संगठनों ने मिल कर 'विद्युत कर्मचारी संयुक्त संघर्ष समिति' का गठन कर लिया है और इस हड़ताल की अग्नि परीक्षा में विद्युतकर्मियों की एकता खरी उतरी है. विगत 20 अक्तूबर को प्रदेशव्यापी सांकेतिक हड़ताल में कर्मचारियों ने इसी एकता का परिचय दे कर शासन को आगाह कर दिया था.

परिषद के अध्यक्ष बी. एन. बोस ने 12 दिसंबर की रात को हड़ताली कर्मचारियों के खिलाफ कड़ी कार्रवाई करने की घोषणा की और तुरंत काम पर वापस न आने वालों को नौकरी से अलग कर देने की धमकी दी है. हाइड्रो एलेक्ट्रिक कर्मचारी यूनियन ने अकेले हड़ताल समाप्त करने की घोषणा भी की है. लेकिन उन के इस फ़ैसले का असर अन्य यूनियनों पर अभी तक नहीं पड़ा है.

मस्तिष्क ज्वर: ओबरा एशिया का सब से बड़ा तापघर है, जिसे उ.प्र. की अर्थव्यवस्था का मस्तिष्क कहा जाता है. 8 दिसंबर को ओबरा से नरेंद्र नीरव ने लिखा है कि प्रदेश की अर्थव्यवस्था को इस हड़ताल से 'मस्तिष्क ज्वर' हो गया है, क्यों कि वर्तमान उत्पादन क्षमता 850 मेगावाट में सिर्फ 150 मेगावाट का उत्पादन हो रहा है, जो 24 घंटे बाद बिल्कुल बंद हो जायेगा. अभी बायलर गरम हैं. 200 मेगावाट (जिसे देश में पहला स्थान मिला) ठंडा हो चुका है. चिमनी से धुआँ निकाल कर श्रमिकों को बहकाने के लिए जूट और डीजल जला कर धुआँ निकाला जा रहा है. ओबरा की ऊँची नीची पहाड़ी सड़कों पर परिषद की बसें, जीपें नहीं दिखलायी पड़ रही हैं और पुलिस की गाड़ियाँ चक्कर काट रही हैं. सुरक्षा की कड़ी व्यवस्था है. छह कंपनी पी.ए.सी., प्रादेशिक पुलिस, होमगार्ड, फायर ब्रिगेड, सशस्त्र पुलिस के अतिरिक्त आँसू गैस और उड़ाका दल के कई दस्ते मौजूद हैं. मुख्य बाजार में स्थित संघर्ष कार्यालय के सामने हजारों मजदूर जमा हैं और थोड़ी दूर आगे थाने में पुलिस और प्रशासनिक अधिकारी मंत्रणा कर रहे हैं. इस हड़ताल के कारण मीरजापुर का सीमेंट, अल्यूमिनियम, रसायन उद्योग अस्तव्यस्त हो गया है. यह हड़ताल 8 नवंबर से ही होने वाली थी. लेकिन इसे एक महीने टाल कर शासन को शांतिपूर्वक विचार करने का मौका दिया गया था लेकिन 17 नवंबर को प्रदेश के बिजलीमंत्री रवींद्रकिशोर शाही ने कह दिया कि 'जब चीन ने भारत पर हमला किया तब भारत ने उस का मुकाबला किया. इसी प्रकार हम कर्मचारियों का भी मुकाबला करेंगे.' बातचीत चलती रही और सरकार समझौते के बजाय धमकियों का सहारा लेती रही. हड़ताली कर्मचारियों की मुख्य माँगें हैं :

1. 1 अप्रैल, 1974 से 325 रुपये न्यूनतम वेतन दिया जाये.
2. रुटीन ग्रेड क्लर्कों का 1969 से चल रहा विवाद सुलझाया जाये.
3. निजी क्षेत्रों एवं स्थानीय निकायों से आये कर्मचारियों का नियमीकरण हो.
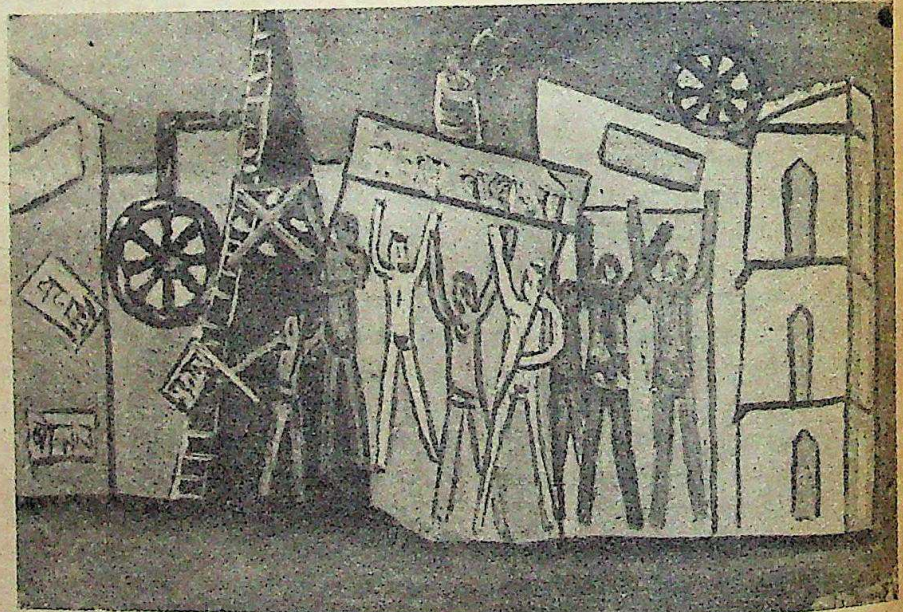
एस. एन. वर्मा का एक पोस्टर

4. 1 अप्रैल, 1969 से उत्पन्न वेतन विसंगतियों को दूर किया जाये.

ध्यान देने की बात है कि एक दशक पुरानी उपर्युक्त समस्याओं को ले कर 1972 में 11 दिन की हड़ताल हो चुकी है. 1977 में दो दिन की हड़ताल हो चुकी है. जो बिजली ओबरा में पौने चार पैसा यूनिट बनती है उसे जनता को 54 पैसे यूनिट बेचने के बाद भी घाटा दिखाया जाता है, जो गलत है. वास्तविकता यह है कि सरकार निर्माण खर्च को भी इन्हीं इकाइयों से पूरा करती है. आखिर हिंडालको को 85 मेगावाट बिजली 11 पैसे यूनिट के हिसाब से क्यों दिया जाता है और फिर फिजूलखर्ची पर रोक क्यों नहीं लगती?

ओबरा में प्रमुख नेता भूमिगत हैं और कुछ लोग लखनऊ में वार्ता कर रहे हैं, इस लिए कार्यकर्ताओं की ही राय मिल पा रही है. वे प्रसन्न हैं, तोड़फोड़ की कार्रवाई के विरुद्ध हैं और सम्मानजनक समझौते के इच्छुक हैं. वे कहते हैं कि यदि हड़ताल के बाद समझौता होता है तो मशीनों को पूर्व क्षमता पर लाने में करोड़ों रुपये खर्च होंगे और एक सप्ताह समय लगेगा. यह पूरा खर्च मंत्रियों और परिषद के उच्चाधिकारियों से वसूल किया जाना चाहिए, यह तो श्रमिकों की बातें हैं.

नकली हँसी: 5 अगस्त, 1978 को केंद्रीय ऊर्जामंत्री, प्रदेश के मुख्यमंत्री, बिजलीमंत्री और बिजली विभाग के उच्च अफसर यहाँ आये थे. 200 मेगावाट की पहली मशीन ने उस दिन उत्पादन शुरू किया था. देश के सभी प्रमुख समाचारपत्रों ने एक वनवासी का चित्र छापा था, जो हँस रहा था. विज्ञापन द्वारा प्रचारित यह चित्र असली था या नकली इस का पता तो 1980 तक लगेगा, जब 1950 मेगावाट का लक्ष्य ओबरा प्राप्त कर लेगा. इस लक्ष्य के लिए जितना खर्च हो रहा है उतने में एक ओबरा और बस सकता था, बशर्ते ईमानदारी हो. यह बात बहुत वजनदार है कि ओबरा में कुल खर्च का 50 प्र.श. गलत इस्तेमाल होता है. कर्मचारी भी इस में शरीक हैं. तार, बिजली, सीमेंट, कोयला, डीजल, पेट्रोल और ड्यूटी की चोरी भी सभी मिल कर करते हैं. यदि श्रमिक कहते हैं कि 'घाटे का असर अफसरों पर नहीं पड़ता' तो उन से भी पूछा जा सकता है कि 'हड़ताल का असर गैरश्रमिकों पर नहीं पड़ता.' ओबरा बाजार आज भी उसी तरह मौन है जैसे कल था. लखनऊ में वार्ता चल रही है.

पुंछ में हिंसा

पिछले एक सप्ताह में जम्मू क्षेत्र में सरकार के विरुद्ध चल रहे आंदोलन से कानून और व्यवस्था की स्थिति इस हद तक बिगड़ गयी है कि सीमावर्त्ती दो कस्बों पुंछ और राजोरी में कानून और व्यवस्था बनाये रखने की जिम्मेवारी 8 दिसंबर को सेना को सौंप दी गयी है. लगभग दो महीने पहले पुंछ जिले में प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापकों की नियुक्ति को ले कर जो छात्र आंदोलन छिड़ा था उसने समय बीतने के साथ साथ गुज्जर और ग़ैरगुज्जर के बीच संघर्ष का रूप ले लिया है और आये दिन सारे जम्मू क्षेत्र में हिंसक प्रदर्शन हो रहे हैं.

आंदोलनकारियों का कहना है कि प्राथमिक विद्यालयों के लिए शिक्षकों की नियुक्ति करते समय भेदभाव बरता गया और योग्य उम्मीदवार उपलब्ध होने के बावजूद अयोग्य लोगों की नियुक्तियाँ की गयीं. उन की माँग है कि इस सारे मामले की जाँच की जाये. जम्मू कश्मीर के एक उपमंत्री का नाम भी इस मामले में जोड़ा जा रहा है.

आंदोलन की शुरुआत 13 अक्तूबर को पुंछ में एक छात्र प्रदर्शनी के साथ हुई. उस दिन अनेक छात्र-छात्राओं ने पुंछ के उपायुक्त के आवास के सामने प्रदर्शन किया. उन्होंने पुलिसवाहनों में आग लगायी और पथराव भी किया. उसी दिन पुंछ में नवनिर्मित गुज्जर छात्रावास पर भी हमला किया गया. पुलिस ने स्थिति पर काबू पाने के लिए आँसू गैस और लाठी का सहारा लिया. आँसू गैस के कोई 250 गोले उस दिन छोड़े गये. पुलिस और प्रदर्शनकारियों में हुई मुठभेड़ से कोई 40 लोग घायल हुए, जिन में 15 स्त्रियाँ भी थीं. पुलिस ने 90 लोगों को गिफ्तार भी किया. इस घटना के विरोध में अगले दिन पुंछ बंद रहा. धारा 144 लगाये जाने के बावजूद छात्रों ने प्रदर्शन किये. पुंछ के अलावा सुरनकोट और मेंडर में भी पूर्ण हड़ताल रही. अधिकारियों ने स्थिति का जायजा लिया और छात्र नेताओं से बातचीत शुरू की, जिस के फलस्वरूप 18 अक्तूबर को दोनों पक्षों के बीच एक समझौता हो गया. अधिकारियों ने आंदोलनकारियों को यह आश्वासन दिया कि अध्यापकों की नियुक्तियों की जाँच करायी जाये. इस समझौते के बाद इन नियुक्तियों की आड़ में छिटपुट आंदोलन चलता रहा, किंतु वह इतना व्यापक नहीं था कि उस ओर कोई विशेष ध्यान दिया जाता. किंतु 2 दिसंबर को पुंछ में छात्रों ने फिर एक बड़ा प्रदर्शन किया, जिसने अंततः हिंसक रूप धारण कर लिया. उस दिन छात्रों ने पुंछ में एक विशाल जुलूस निकाला. उन्होंने न केवल पुलिस पर पथराव किया बल्कि पुलिस की कुछ जीपें और कुछ बसें भी जला दीं. गुज्जर छात्रावास को नेस्त-नाबूत कर दिया गया. पुलिस ने स्थिति पर काबू पाने के लिए फिर आँसू गैस, लाठी और अंततः गोली का सहारा लिया. पुलिस की कार्रवाई से उस दिन एक आदमी मारा गया, सात गंभीर रूप से घायल हुए और 50 अन्य लोगों को मामूली चोटें आयीं. इस घटना के बाद पुंछ में कर्फ्यू लगा दिया गया. स्थिति और बिगड़ने न पाये इस के लिए सेना की गश्त जारी की गयी. लेकिन इस से स्थिति सँभली नहीं. अगले दिन इस की प्रतिक्रिया जम्मू में देखी गयी. छात्रों के आह्वान पर 4 दिसंबर को जम्मू पूरी तरह से बंद रहा. छात्रों ने एक विशाल प्रदर्शन किया. उन की माँग थी कि पुंछ गोली कांड की न्यायिक जाँच करायी जाये. जम्मू में भी छात्रों और पुलिस के बीच मुठभेड़ हुई और पुलिस ने प्रदर्शनकारियों को तितरबितर
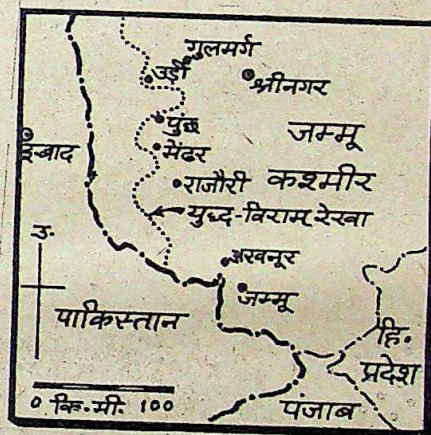
करने के लिए आँसू गैस तथा लाठी का सहारा लिया. जम्मू से 21 किलोमीटर दूर भारत-पाक सीमा पर स्थित रणवीरसिंहपुरा में भी उस दिन छात्रों ने प्रदर्शन किया और उन के आह्वान पर कस्बे में पूर्ण हड़ताल रही. उस के बाद तो सारे जम्मू क्षेत्र में प्रदर्शनों और हिंसक घटनाओं का दौर चल गया. अब प्रदर्शनकारियों ने अपनी माँग में एक माँग यह भी जोड़ ली कि क्यों कि राज्य सरकार स्थिति पर काबू पाने में असफल रही है इस लिए राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू किया जाये. आंदोलन की व्यापकता को देखते हुए सारे जम्मू क्षेत्र में केंद्रीय आरक्षित पुलिस नियुक्त की गयी. फिर भी प्रदर्शन हो रहे हैं और यदाकदा हिंसक घटनाएँ भी हो जाती हैं.

जम्मू की इन घटनाओं की अनुगूंज संसद में भी सुनायी पड़ी. भूतपूर्व केंद्रीय मंत्री डा. कर्णसिंह ने लोकसभा में पुंछ की घटनाओं की न्यायिक जाँच की माँग उठायी.

जम्मू कश्मीर के मुख्यमंत्री शेख अब्दुल्ला का कहना है कि अध्यापकों की नियुक्तियों में कोई अनियमितता नहीं बरती गयी. अधिक शिक्षा प्राप्त अध्यापकों को नियुक्त करने के परिणाम अच्छे नहीं होते, क्यों कि वह अपनी स्थिति से संतुष्ट नहीं हो पाते. इस लिए पुंछ क्षेत्र के ही कम और अधिक आयु वाले लोगों को नियुक्त करना मुनासिब समझा गया. श्री अब्दुल्ला का आरोप है कि यह सारा आंदोलन उन की सरकार को बदनाम करने के लिए रचाया जा रहा है. इस के प्रमाण में उन्होंने यह कहा है कि राज्यसभा में राष्ट्रपति शासन की माँग उठा कर आंदोलन के समर्थकों ने अपना इरादा व्यक्त कर दिया है. उन के अनुसार कांग्रेस विधायक भीम सिंह के उस बयान से स्थिति एकदम साफ हो जाती है जिस में उन्होंने घोषणा की है कि जब तक वर्त्तमान सरकारअपदस्थ नहीं हो जाती तब तक आंदोलन चलता रहेगा. शेख अब्दुल्ला ने साफ शब्दों में कहा कि 'इस तरह की ज़ोर जबरर्दस्ती के आगे मैं झुकने वाला नहीं और मैं प्रदर्शनकारियों से, जो पुंछ की घटना को अपनी स्वार्थसिद्धि का बहाना बनाना चाहते हैं, सख़्ती से निपटूंगा.' न्यायिक जाँच की माँग के बारे में उन्होंने कहा है कि 'हम कोई बात छिपाना नहीं चाहते और वास्तव में हम घटना की न्यायिक जाँच कराना चाहते हैं. किंतु आंदोलनग्रस्त क्षेत्र में शांतिपूर्ण और सामान्य स्थितियाँ स्थापित हो जाने पर ही इस जाँच का आदेश दिया जा सकता है. वास्तव में मैंने उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के कान में यह बात डाल दी है कि वह किसी ऐसे व्यक्ति पर निगाह रखें जो इस मामले की जाँच के लिए नियुक्त किया जा सके.'

इस में कोई संदेह नहीं कि सरकार विरोधी इस आंदोलन की शुरुआत पुंछ में अध्यापकों की नियुक्ति को ले कर शुरू हुई थी. लेकिन इस में अब और अनेक मुद्दे भी शामिल हो गये हैं जिन में पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण का मुद्दा भी शामिल है. आंदोलन की शुरुआत में मुख्यमंत्री शेख अब्दुल्ला को संभवतः यह अहसास नहीं रहा होगा कि यह मामला इतना तूल पकड़ जायेगा अन्यथा वह उस का शीघ्र उपचार करते. शुरू के दिनों में आंदोलन के प्रति सरकार की उदासीनता से आंदोलनकारी और खिन्न हुए, जिसका नतीजा यह सामने आया कि राज्य के एक कस्बे से उठा आंदोलन सरकार विरोधी एक व्यापक आंदोलन बन कर एक हफ्ते के भीतर राज्य के एक बड़े भाग में फैल गया और उस ने न केवल राज्य सरकार की नींद हराम कर दी बल्कि वह केंद्र सरकार के दरवाज़े पर भी दस्तक दे रहा है. स्थिति पर यदि शीघ्र काबू नहीं पाया जा सका तो केंद्र सरकार को हस्तक्षेप करना पड़ सकता है, हालाँकि शेख साहब ने कानून और व्यवस्था को सारे राज्य का विषय बताते हुए केंद्र सरकार को हस्तक्षेप न करने देने की घोषणा की है.

आपात्स्थिति : संक्षिप्त संस्करण

दिनमान के पाठकों की जानकारी के बावजूद यह याद दिलाना आवश्यक है कि इस समय आंध्रप्रदेश में कांग्रेस (इं) का मंत्रिमंडल सिंहासन पर आरूढ़ है और यहाँ के मुख्यमंत्री डॉक्टर चेन्ना रेड्डी लोकसभा के हर उपचुनाव में श्रीमती इंदिरा गांधी के दाँये-बाँये दिखाई देते हैं. आंध्रप्रदेश के शासन ने अपने एक जिले करीमनगर की दो तहसीलों—सिरसिल्ला और जगत्याल को उत्पातग्रस्त इलाका घोषित किया है. वजह यह बतायी गयी है कि दोनों तहसीलों में नक्सलवादी लोग बहुत सक्रिय हैं. वहाँ बड़े बड़े ज़मींदारों के माल ही नहीं जान को भी खतरा हो गया है. इसी लिए शासन को यह कदम उठाना पड़ा है.

सरकार की घोषणा से यह पता चलता है कि जनता पार्टी द्वारा शासित राज्यों में ही कानून और व्यवस्था खतरे में नहीं है, इंका के शासन में भी उपद्रवी लोग सिर उठाये हुए थे. अंतर यह है कि उत्तरप्रदेश या बिहार जैसे राज्यों में वहाँ के उत्पातों के लिए कुछ व्यक्तियों पर आरोप लगाया गया है, जब कि आंध्रप्रदेश ने उत्पातियों को एक विचारधारा के साथ जोड़ा गया है. जनता पार्टी के शासन में अपराधियों को प्रचलित कानून के अनुसार दंडित करने का प्रयास किया जा रहा है, जब कि

भेंटवार्ता

कार्यकर्त्ता चपरासी नहीं हैं

रामानंद तिवारी से एक बातचीत

चिकमगलूर में श्रीमती इंदिरा गांधी की जीत का क्या अर्थ आप लगाते हैं? क्या उसे इमर्जेंसी नीतियों का समर्थन मानें या कुछ और?

चिमकमगलूर से श्रीमती गांधी की जीत का कारण यह नहीं है कि उन्होंने जो इमर्जेंसी लगायी थी उस का लोगों ने समर्थन किया है. इस का कारण यह है कि चिकमगलूर बहुत पिछड़ा हुआ इलाका है. इमर्जेंसी जो लागू की गयी उस का असर वहाँ पर नहीं पड़ा, क्यों कि इस का अनुभव वहाँ नहीं हुआ. चिकमगलूर में, जहाँ कांग्रेस पार्टी की सत्ता है, एक बरस से चुनाव की तैयारी हो रही थी. इंदिरा गांधी के पक्ष में वातावरण बनाने के प्रयास जारी थे. वहाँ उन की सभाओं में भीड़ काफी होती थी और काफी पैसे भी वहाँ खर्च किये गये, फिर भी सिर्फ 70 हज़ार वोटों से ही विजयी बन पायीं. जो कि लोकसभा चुनाव में एक मामूली बात है, जहाँ 7-8 लाख वोटों का वारा-न्यारा होता है.

समस्तीपुर में इंका के हारने का आप क्या कारण समझते हैं?

वह यह है कि उत्तर भारत में लोगों के मन में अभी भी यह धारणा बनी हुई है कि यदि इंदिरा गांधी फिर सत्ता पा गयीं तो जिस तरह इमर्जेंसी में लाखों लोगों को जेलों में बंद किया. सैकड़ों की हत्या की, आतंक और भय का साम्राज्य फैलाया, लोगों की वाणी छीन ली, कोई कानून नहीं रखा, व्यवस्था नहीं रखी—इंदिरा जी की वाणी ही कानून थी— उसी तरह इंदिरा जी यदि जीतेंगी तो फिर तानाशाही आयेगी, इसीलिए उन लोगों ने अपना कर्त्तव्य समझा कि समस्तीपुर और फतेहपुर दोनों उपचुनावों में इंदिरा जी को पराजय का मुँह दिखायें. हिंदुस्तान के लोग अनपढ़ हैं, लेकिन मूर्ख नहीं हैं.

जनता पार्टी में इस समय जो 'आंतरिक संघर्ष' चल रहा है, उस से क्या पार्टी बिखर जायेगी या कि एकता बनी रहेगी?

जनता पार्टी में आपस के मतभेदों से हम यह मानते हैं कि पार्टी टूटेगी नहीं, एक पार्टी रहेगी. लेकिन हम को ऐसा लगता है कि इस पार्टी से कुछ लोग निकल जा सकते हैं. पर उन के निकलने से वर्त्तमान सरकार या जनता पार्टी पर कोई विशेष असर पड़ने वाला नहीं है.

पार्टी से बाहर निकल कर ये लोग किस तरह की भूमिका अदा कर सकेंगे?

ऐसे लोगों के संबंध में मेरी अपनी राय है कि अभी तक ये लोग निकल गये होते, लेकिन एक तो उन को संस्था के सदस्यों का भरपूर समर्थन नहीं मिल रहा है दूसरे यह सबका ख्याल है कि जनता पार्टी का कोई विकल्प नहीं है. यह विकल्प रहता तो लोग सोचते भी और अभी विकल्प बनने की स्थिति में कोई नहीं है. इंदिरा तो विकल्प हो नहीं सकती. जो लोग पार्टी से अलग होना चाह रहे हैं और हो नहीं पा रहे हैं वे लोग भी विकल्प नहीं बना पायेंगे. इस लिए ये नहीं निकल पा रहे हैं.

ये लोग निकलते नहीं हैं और पदों पर बने रहते हैं तो पार्टी के प्रति जनसाधारण में क्या धारणा बनेगी?

यह सही है कि जो आंतरिक संघर्ष चल रहा है उस से पार्टी की प्रतिष्ठा में गिरावट आयी है यदि ऐसा चलता रहा और पार्टी सुधरी नहीं तो इस पार्टी के अस्तित्त्व को बहुत बड़ा खतरा पैदा होगा.

यदि कुछ लोग निकल आते हैं तो बचे लोग पार्टी चलायेंगे. क्या ये क्रांतिकारी उद्देश्य से काम करने वाली पार्टी बना सकेंगे?

हमारा चुनाव घोषणापत्र काफी प्रगतिशील है. जनता शासन में अभी तक कई काम तो अच्छे हुए लेकिन उसने एक ऐसा काम नहीं किया जो समाज के दुर्बल वर्ग को उठा सके. जो लोग निकल आयेंगे उस में कुछ ऐसे तत्त्व हैं जो प्रगतिशील नहीं हैं, कुछ हैं. उसी तरह से जो लोग बचेंगे उन में भी दोनों तरह के लोग रहेंगे. न पूरे के पूरे प्रगतिशील निकलेंगे और न ही वे लोग जो यथास्थितिवादी हैं. ऐसे तत्त्व जो सत्ता की लड़ाई चाहते हैं निकल जायेंगे तो हम समझते हैं जो बच जायेंगे उन को काम करने का अवसर मिलेगा.

जयप्रकाश जी ने यह जानते हुए कि विचार भिन्न्य के कारण भी काम करने के तरीके भिन्न भिन्न होंगे यह विचार रखा था कि जनता पार्टी बना कर जनता का प्रतिनिधित्व किया जाये. यदि पार्टी के भूतपूर्व घटकों में एकता नहीं रह जाती है तो पार्टी का मंच खत्म हो जायेगा. तब क्या जयप्रकाश जी की विचारधारा से पार्टी दूर नहीं चली जायेगी?

जयप्रकाश जी ने जिस संपूर्ण क्रांति की बात कही थी उस की तरफ हम लोग नहीं जा रहे हैं. गरीबों को भूमि देने का काम हमने नहीं किया, सत्ता का विकेंद्रीयकरण नहीं किया. चुनावों में, शिक्षा में परिवर्त्तन कुछ नहीं किया. जयप्रकाश जी के आंदोलन का मुख्य उद्देश्य था इंदिरा जी की तानाशाही को समाप्त करना और फिर इन सब कामों को करना. इस से जयप्रकाश जी को तकलीफ़ है अगर कुछ लोग निकल आयेंगे और जनता पार्टी घोषणापत्र के रास्ते पर चलेगा तो यह तकलीफ कम होगी. लेकिन अभी जो तनाव की स्थिति है उस से उन्हें ज्यादा पीड़ा है. हम तो चाहेंगे कि कोई पार्टी छोड़े नहीं, पार्टी संगठित हो एक टीम बने. हम चाहेंगे सत्ता साध्य नहीं बने, साधन बने. हम चाहते हैं कि पार्टी इतनी शक्तिशाली हो कि जिस उद्देश्य से 1974-77 तक जयप्रकाश जी ने आंदोलन किया उसी उद्देश्य की ओर समाज के कमज़ोर अंग को ऊपर उठाने के लिए आगे बढ़े. देश के पाँच दुश्मन हैं : 1. दरिद्रता, 2. निरक्षरता, 3. कालाधन, 4. ऐसे लोग जो यथास्थितिवादी हैं और 5. अफसरशाही. इन पर हम को प्रहार करना है. अफसरशाही यदि शक्तिशाली हुई तो जनतंत्र दुर्बल होगा. जनतंत्र को अफसर पर नियंत्रण रखना होगा. जब तक आम जनता को हम सत्ता में भागीदार नहीं बनायेंगे तब तक सही मायने में लोकतंत्र का विकास नहीं होगा.

पार्टी का नेतृत्त्व यदि अपने सहयोगियों की बात न मान कर अपने पद की प्रतिष्ठा पर

इका ने दो तहसीलों को उत्पातग्रस्त घोषित कर दिया है. इस घोषणा का तात्पर्य है पुलिस को विशेष अधिकारों से लेस करना. घोषणा ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि सरकार के वे वक्तव्य सच्चाई से दूर थे जिन में कहा गया था कि नक्सलवादी आंदोलन पूरी तरह दबा दिया गया है.

सरकारी घोषणा पर वामपंथी संगठन नागरिक अधिकार समिति ने गहरा असंतोष व्यक्त किया है. समिति की ओर से कहा गया है कि सरकारी घोषणा आपात्स्थिति का संक्षिप्त संस्करण है. करीमनगर जिले की रय्यत को दबाने के लिए यह घोषणा की गयी है. समिति ने शासन को चुनौती दी है कि वह अदालत में कोई ऐसा मामला ले जाये जिस में किसानों पर उत्पात मचाने का आरोप हो.

नागरिक अधिकार समिति ने वक्तव्य में बताया है कि बड़े ज़मींदारों ने मिलजुल कर गरीब किसानों को सताना शुरू किया है. अब तक सिरसिल्ला और जगत्याल तहसील में 13 वारदातें हुई हैं. इन में से 11 वारदातों के लिए बड़े बड़े ज़मींदार अभियुक्त माने गये हैं. केवल दो मामलों में भूमिहीन ग्रामवासी अपराधी माने गये हैं. पुलिस बड़े ज़मींदारों के प्रति कैसा रवैया रखती है, इस का पता कुछ तथ्यों से चलता है. 11 वारदातों से संबंधित एक भी ज़मींदार गिरफ्तार नहीं हुआ, जब कि दो मामलों से संबंधित 80 गरीब किसान बंदी बनाये जा चुके हैं.

नागरिक अधिकार समिति ने दावा किया है कि यदि दोनों तहसीलों की घटनाओं की जाँच की जाये तो सिद्ध हो जायेगा कि ज़मींदार खेतिहर मज़दूरों के साथ कैसा बर्ताव करते हैं.

अड़ा रहे तो उस से क्या पार्टी की जनतांत्रिक स्वायत्तता में हानि नहीं होगी?

ऐसे तत्त्वों से ही लोकतंत्र को खतरा है. ऐसे व्यक्ति जो चाहते हों कि किसी भी हालत में हमारी बात चले और जो उन की बात नहीं मानता उसे नष्ट करना चाहते हों, अधिनायकवादी हैं. अधिनायकवादी वही बनता है जिसे सत्ता से अधिक से अधिक मोह हो. दूसरे वह हर किसी से अपने को बड़ा समझता है. तीसरे वह सब से आशंकित रहता है. ये तीन प्रकृति जिस में होगी, मौका मिलने पर, वही अधिनायक होगा.

बिल्कुल निश्चित् मत है कि ऐसे लोग हमारी पार्टी के अंदर हैं और वे अपनी मनमानी पार्टी पर लादना चाहते हैं. यदि उन की इच्छा के अनुकूल पार्टी नहीं चलती उन का यह प्रयास रहता है कि पार्टी को हम कमज़ोर करें. ऐसे तत्व हमारी पार्टी में हैं जो स्वयं लोकतंत्र में विश्वास नहीं रखते. जब जनता पार्टी बनी, उम्मीदवारों का चयन हुआ तो जो कमेटी बनी उस के चयन दो-तीन आदमियों ने मिल कर बदल दिया. इसी तरह से विधानसभा के चुनाव में दो घटकों ने मिल कर 4–4 राज्य बाँट लिये. इसी तरह किस राज्य में कौन मुख्यमंत्री हो यह बात नीचे के लोगों से नहीं पूछी गयी. सर्वोच्च नेताओं ने निर्णय लिया. केंद्र में जब मंत्रिमंडल का निर्णय हुआ तो भूतपूर्व सोशलिस्ट पार्टी के घटक बताना चाहते थे कि किस इलाके से कौन मंत्रिमंडल में जाये. न बैठक हुई न विचार हुआ, 2–4 लोगों ने बैठ कर निर्णय ले लिया. पार्टी में आंतरिक लोकतंत्र का अब भी अभाव है और ऊपर से लोग निर्णय कर के नीचे के लोगों पर लादते हैं और जब उन की इच्छा पूरी नहीं होती तो पार्टी के नेतृत्व को बदनाम करने का प्रयास करते हैं. नीचे के लोगों से पूछा भी नहीं जाता. उन की सहमति नहीं ली जाती. लोगों को असंतोष होता है. फिर जो तत्त्व मनमानी करते हैं वे दूसरे पर आरोप लगा कर अपने अस्तित्त्व की रक्षा करने का प्रयास करते हैं. हमारा अपना ख्याल है कि आंतरिक लोकतंत्र के मामले में डॉ. लोहिया ने जो प्रयास किया था उस रूप में प्रयास नहीं हो रहा है. जनता पार्टी में यदि शुरू से ही आंतरिक लोकतंत्र रहता तो हम समझते हैं कि स्थिति आज कुछ भिन्न होती. एक बात और, जो किसी उद्देश्य से संघर्ष करता है, उस की प्राप्ति के लिए त्याग करता है, जब उसे अवसर मिलता है तो उसे कार्यान्वयन करने का भी प्रयास करता है. लेकिन जिसने उस लक्ष्य के प्रति न उद्योग किया न बलिदान किया, न मजबूत कदम उठाया तो वह परिस्थितिवश अधिकार मिलने पर उद्देश्य के लिए नहीं, स्वार्थ के लिये उस अधिकार से लाभ उठाना चाहता है.

जब पार्टी में ऐसी स्थिति हो तो पार्टी के कार्यकर्त्ता इस स्थिति का सामना किस प्रकार करें?

देखिये, जो साधारण कार्यकर्त्ता देहात के रहने वाले हैं और अधिकतर ऐसे होते हैं जो बिल्कुल गरीब होते हैं, उन को बहुत सब्ज़बाग दिखाये जाते हैं. आदर्श की बात की जाती है और वे आदर्श से प्रभावित हो कर आते हैं. सोशलिस्ट पार्टी जितनी लड़ाकू थी कम्युनिस्ट पार्टी भी नहीं थी. इस के कार्यकर्त्ता इतने निष्ठावान थे कि भूखे रह कर, मार खा कर भी पार्टी में रहे. सोशलिस्ट पार्टी 52-57 तक दूसरी पार्टी थी. लेकिन उस में भी ऐसे तत्त्व जो ज़मीन से नहीं उठे हैं, ऊपर से आये हैं, आज़ादी की लड़ाई में सम्मिलित नहीं हुए, आज नेता बन गये हैं. अपने नेतृत्त्व की रक्षा के लिए ये लोग सोशलिस्ट पार्टी के भीतर आंतरिक झगड़े करते रहे. पार्टी टूट गयी. अगर आज यह पार्टी टूटी न होती तो जनता पार्टी की आवश्यकता नहीं होती. गरीब कार्यकर्त्ता के पास साधन नहीं हैं और ऊपर के नेताओं का लाभ इसी में है कि वे पिछड़े रहें. कार्यकर्त्ता लाचार हो जाता है, उस की सुनवायी नहीं होती. अफसर और चपरासी की जो स्थिति है वही उस की स्थिति बन जाती है. जो लोग विद्रोह करते हैं उन को हर तरह से गिराने का प्रयास होता है.

आंतरिक लोकतंत्र के विरुद्ध जो काम होता है उस को रोकने के लिए आप कार्यपद्धति में क्या परिवर्त्तन सुझाते हैं?

हम चाहते हैं कि जब विधानसभा के लिए उम्मीदवार का चयन हो तो उस क्षेत्र के कार्यकर्त्ताओं से राय ली जाये. अगर बहुसंख्य कार्यकर्त्ता सिफ़ारिश करते हैं कि इस क्षेत्र से अमुक आदमी उम्मीदवार बनाया जाये तो केंद्र को उस को बदलना नहीं चाहिए. अभी कार्यकर्त्ता की पूछ नहीं होती, दादागिरी चलती है. लोग उस की सिफ़ारिश बदल देते हैं; उसी तरह जिस तरह अफसर मनमाने ढंग से अपने अधीनस्थ को बदल देता है. दूसरे यह कि पार्टी के कार्यकर्त्ता मिल कर कोई प्रस्ताव पास करें कि अमुक आदमी पार्टी का अध्यक्ष हो तो उस को मान्यता मिले. उस को अभी मान्यता मिलती नहीं. दूसरे को चुन लिया जाता है, जिस के प्रति बहुत विधायक का विश्वास नहीं है. इसी तरह यदि पार्टी के विधायकों का किसी नेता पर विश्वास नहीं रह गया है तो उस सरकार को या नेता को बदल कर उस को बनाया जाये जिसे पार्टी के विधायक बहुमत से चाहते हों. लेकिन अभी यह होता नहीं. विधायकों की राय रहने पर भी जब तक केंद्र के नेता की सहमति नहीं होगी तब तक वह नेता नहीं हटाया जायेगा. यह लोकतंत्र का अपहरण है. इस के अलावा पार्टी का कोई सदस्य चाहता हो कि हम पार्टी का सदस्य बनायेंगे, हमें सदस्यता फार्म मिले, उस को देना चाहिए और सदस्य बनने के बाद पदाधिकारी का चुनाव आदर्श रूप से उसी तरह होना चाहिए जिस तरह विधानसभा का, या लोकसभा का, या और कोई चुनाव होता है. उस में आला कमान किसी तरह का हस्तक्षेप नहीं करे. पदाधिकारी वही बनाया जाये जिसे पार्टी के सदस्य चुनना चाहते हैं. आज होता यह है कि दिल्ली या लखनऊ या पटना में बैठ कर पदाधिकारी बना दिये जाते हैं. जिस तरह प्राकृतिक यंत्र में भिन्न भिन्न उपकरण काम करते हैं, उन में छोटा और बड़ा सब समान होते हैं, उसी तरह पार्टी के छोटे से छोटे सदस्य की आवाज़ भी सुनी जाये. यह प्रवृत्ति घातक है, जो लोकतंत्र में अभी चल रहा है, कि बहुमत की राय का पालन हो नीचे से ऊपर तक. हमारा जीवन का अनुभव यह बतला रहा है कि किसी भी पार्टी में जैसा गांधी और लोहिया चाहते थे वैसा आंतरिक लोकतंत्र अभी तक नहीं आया है. जब तक पार्टी में आंतरिक लोकतंत्र नहीं होगा तब तक लोकतंत्र का पूर्ण रूप से विकास नहीं होगा.
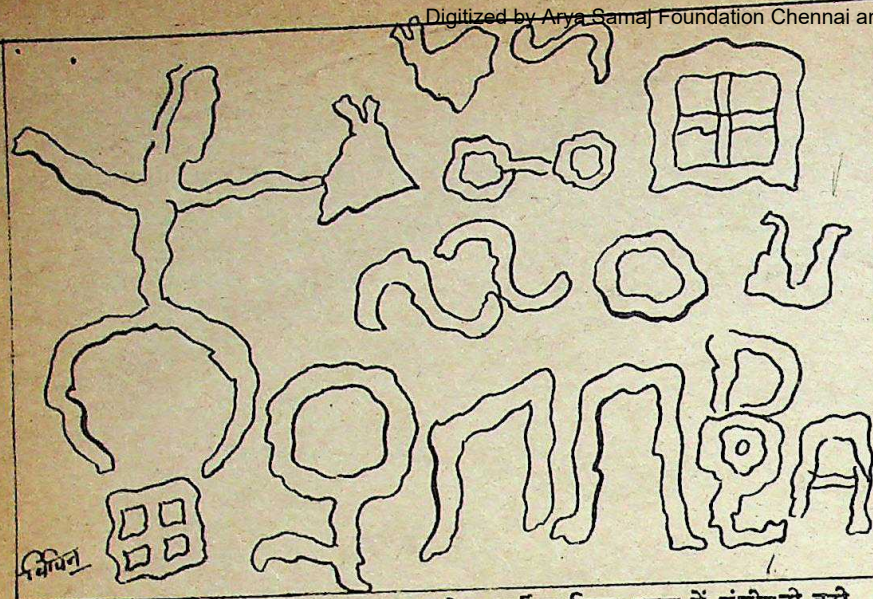
गेरू रंग में चित्रित संकेताक्षर, शस्त्रास्त्र, प्रतीक, धार्मिक चिह्न. बगल में संजीवनी बूटी लाते हुए हनुमान का चित्र प्रतीत होता है

पुरातत्व

पत्थर के भाव तसवीरें

अपने जीवन को जीने के लिए और जीवन संघर्ष की उस कहानी को अमर बनाने के लिए मानव ने अनेक उपाय सोचे और किये हैं. उसने कहीं चट्टानों पर अपने जीवन गीत संगीत टाँके, तो कहीं ताँबे और पीतल के पत्थरों पर अक्षरों के मोती बिखेरे, कहीं पहाड़ों को खोद कर मंदिर बनाये, तो कहीं दीवारों पर एक से एक अभिराम चित्र आँके. आजिंठा और एलूरा की गुफ़ाएँ तो इस का प्रमाण हैं ही, विंध्य और कैमूर की गुफ़ाओं में बने प्रागैतिहासिककाल के चित्र भी इस के जीते जागते प्रमाण हैं.

प्रागैतिहासिककाल का नाम आते मन पर अत्यंत प्राचीन संस्कृति का चित्र उमड़ आता है. उस समय का मनुष्य नंगधड़ंग जंगलों, पहाड़ों, खोह, कंदराओं अथवा नदियों की तलहटियों में रहता था. जंगली जानवरों का शिकार करना उस का मुख्य धंधा था. वह लड़ाकू होता था. अपने अस्तित्व रक्षा के लिए युद्ध उस की अनिवार्य आवश्यकता थी. कार्य-मुक्त हो कर वह गुफ़ाओं को गेरू या घाऊ अथवा अन्य रसायनों से चित्रित कर देता था. इस से उस की कलाप्रियता, सौंदर्यप्रियता और भावप्रवणता का भी परिचय मिलता है. मीरजापुर के दक्षिणांचल में उस समय की अनेक गुफ़ाएँ मिली हैं, जिन से तात्कालिक संस्कृति पर विस्तृत प्रकाश पड़ता है.

गुहाचित्रों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि मीरजापुर प्रागैतिहासिक संस्कृति का केंद्र था. सोन, बेलन और गंगा ये तीनों नदियाँ उत्तरप्रदेश, बिहार और मध्यप्रदेश के निवासियों के जीवन में सामंजस्य स्थापित करती थीं और इस सार्वभौमिक संस्कृति को सुदूर तक पहुँचाने में सहायिका होती थीं. अब तक जिन गुफ़ाओं का पता चला है उन में कंडाकोट लिखनियाँ (राजपुर) लिखनिया (अहरौरा), मुखादरी, पंचमुखी, चनाइनमान, सीताकुंड, (अहीर भरवा या बघमरवा), विजयगढ़ किला, केरवाघाट, सौरहोफार, चूनादरी, मल्डरिया, विल्ढमफाल, छोतुग्राम, टोकवा महारानी आदि मुख्य हैं. कंडाकोट, लिखनियाँ (अहरौरा)

केरवाघाट : नौकाविहार तथा यात्रा करता प्रागैतिहासिक मानव
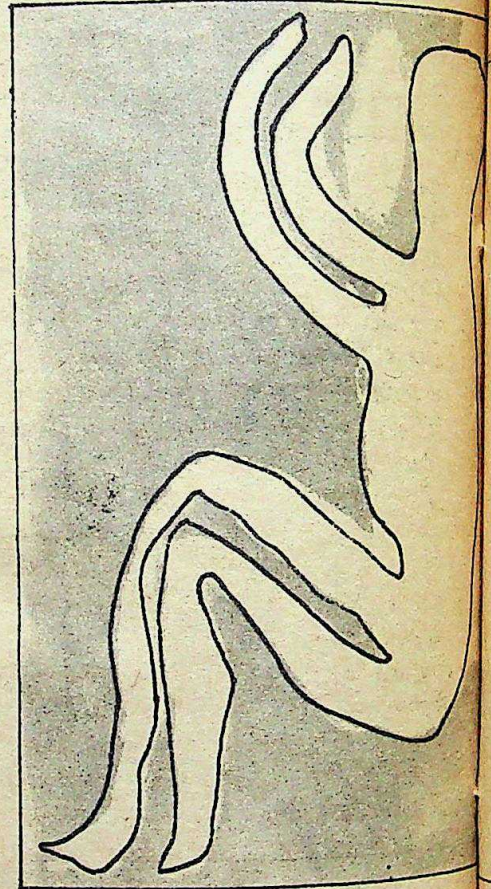
सूर्य की अराधना करती स्त्री : सोरहोघाट का चित्र

मुखादरी में मतवाले हाथियों, सूअरों, हरिणों के चित्रों की अधिकता देखी गयी. चनाइनमान पश्चिम की गुफ़ाओं में अधिकतर चित्र गाय, बैल, भेड़, बकरी, कुत्ते, हरिण, बारहसिंहे, गैंडा आदि के बने हैं. आदमियों को युद्ध की मुद्रा में और स्त्रियों को आमोद-प्रमोद, पूजा-आराधना, शृंगार-प्रसाधन की मुद्राओं में दिखाया गया है. यहीं एक महिष का चित्र भी मिलता है, जिस से ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय महिष की बलि चढ़ायी जाती थी. यहीं एक बड़ा ही सुंदर चित्र अवगुंठनवती पत्नी के साथ पति के प्रथम समागम का दिखाया गया है, जिस से उस समय के सुखी दांपत्य जीवन का परिचय मिलता है. एक पालवाली नाव भी बनायी गयी है, जिस पर स्त्री पुरुष मिल कर
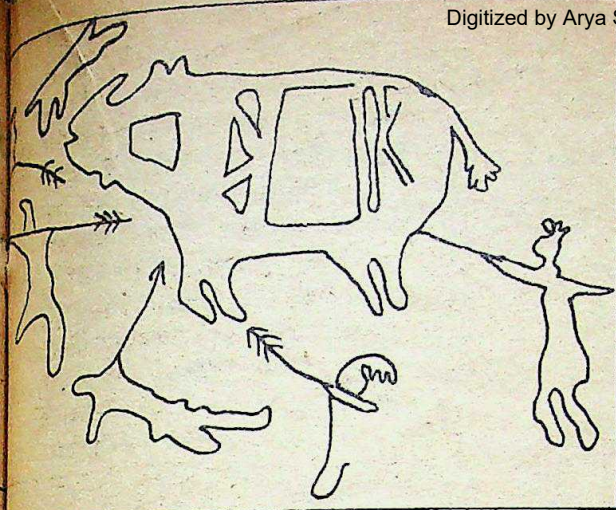
विजयगढ़ : गैंडे के शिकार का दृश्य; रेखांकन शैली में

धार्मिक प्रतीक : हयकुठार, कुत्ते, हस्तरथी के चित्र तथा मानव की नौका यात्रा, पंक्तिबद्ध नदी पार करते लोग, दो आदमी बोझ ले जाते हुए.

नृत्य कर रहे हैं. यहाँ एक जानवर को बलि पर चढ़ाते हुए आदमी का चित्र और युद्ध में हताहत आदमियों को ले जाते हुए कई आदमियों के चित्र भी अंकित हैं. युद्धरत, सिरकटे, हाथ और पाँव वाले आदमियों के चित्र भी अंकित हैं. इसी प्रकार गैंडा, जंगली सूअर, हरिण के शिकार के दृश्य भी बड़े मनमोहक ढंग से चित्रित हैं. ऐसे चित्र भलरिया, केरवाघाट की पहाड़ियों में भी मिले हैं. बिल्डमफाल में सूअर और कुत्तागाड़ी का दृश्य भी अंकित है, से जो अन्यत्र नहीं मिलता. सोरदोघाट में सूर्य व्रत करती स्त्री, घोड़े का पीछा करते आदमी और बारहसिंहे का शिकार करते शिकारी के चित्र कला की अनुपम देन हैं. भल्डरिया में एक वृद्ध आदमी को कुत्ते की सवारी करते दिखाया गया है. विजयगढ़ में कई शिकारियों द्वारा गैंडा के शिकार का दृश्य भी प्रसिद्ध ही है.

पंचमुखी में कुछ संकेत लिपियाँ भी मिली हैं तथा शस्त्रास्त्र के चित्र भी मिले हैं. यहीं लक्ष्मी, गणेश, हनुमान और स्वस्तिक के प्रतीक चित्र भी मिले हैं, जिन से ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय का मानव देवाराधन में भी रुचि लेता था. धनुष, बाण, तीर, कमान, त्रिशूल, हथौड़ी, कुठार आदि के चित्र भी मिले हैं, चनाइनमान में एक अप्सरा का चित्र मिला है जो प्रायः दुर्लभ है. इन चित्रों के अतिरिक्त अल्पना भी मिली हैं.

केरवाघाट की तो पूरी पहाड़ी ही रंगी है. इस पहाड़ी में नौका विहार, जल यात्रा, पद यात्रा, नाव यात्रा, आमोद-प्रमोद, शिकार, युद्ध आदि के सुंदर चित्र मिले हैं. इसी प्रकार खिलनियाँ (राजपुर) की पहाड़ी भी रंगी है. इस में तीर कमान से युद्ध, आमोद-प्रमोद, नृत्य, संगीत और आखेट के दृश्य चित्र मिले हैं.

तुलनात्मक अध्ययन : गुहाचित्रों का क्षेत्र तो वैसे यूरोप और अफ्रीका भी रहा है, किंतु विंध्य की पहाड़ियों के चित्र संख्या में भी अधिक और ऐतिहासिक सांस्कृतिक दृष्टि में महत्त्वपूर्ण रहे हैं. भारत में ये चित्र मुख्य रूप से मध्यप्रदेश, बिहार और मीरजापुर में पाये जाते हैं. मध्यप्रदेश में भीमबैठका, गोरापहाड़ी, धौलागिरी के चित्र विशेष महत्त्वपूर्ण हैं. इन चित्रों में काफ़ी सामंजस्य पाया जाता है.

काल निर्णय : इन चित्रों का समय बताना कठिन है, क्योंकि ये कई प्रकार के हैं. केरवाघाट, चनाइनमान के चित्रों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रायः चित्र पर चित्र बनते चले गये हैं. पहली बार के बने चित्र काफ़ी पुराने हैं और उनका समय पूरा प्रागैतिहासिककाल ठहराया जा सकता है. इन में नंगे आदमियों तथा युद्ध और आखेट के दृश्य चित्र हैं. कुछ दिनों बाद जब ये चित्र मिटने लगे तो उन पर बाद की पीढ़ी ने रंग चढ़ा दिया. ऐसे चित्रों में आमोद-प्रमोद, गोचारण, पशु पक्षी, देवाराधन के दृश्य हैं. ये चित्र प्रागैतिहासिककाल के हैं. जो भी हो, इतना तो मानना होगा कि कम से कम दस हजार वर्ष पूर्व के ये चित्र तो हैं ही.
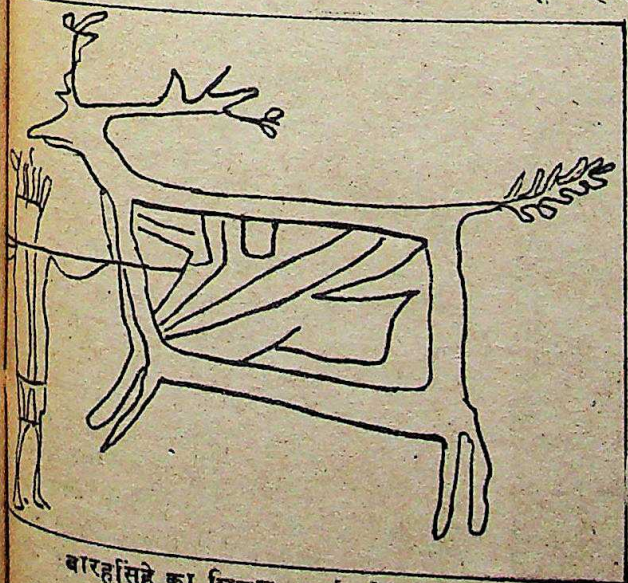
बारहसिंहे का शिकार, अर्द्धपूर्णशैली में लिखनिया (राजपुर) में प्राप्त.
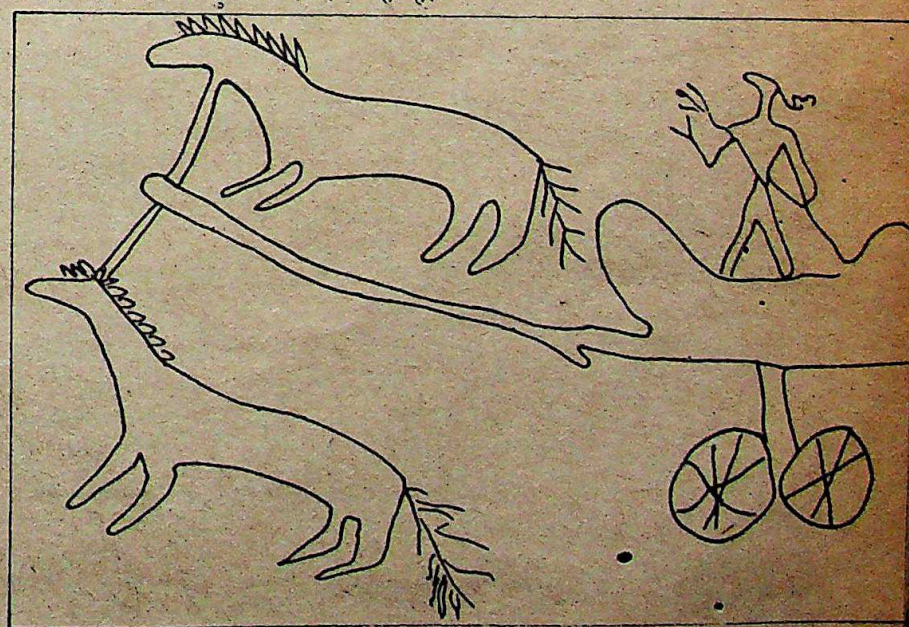
बिल्डमफॉल में कुत्ता गाड़ी का चित्र, गेरु रंग में
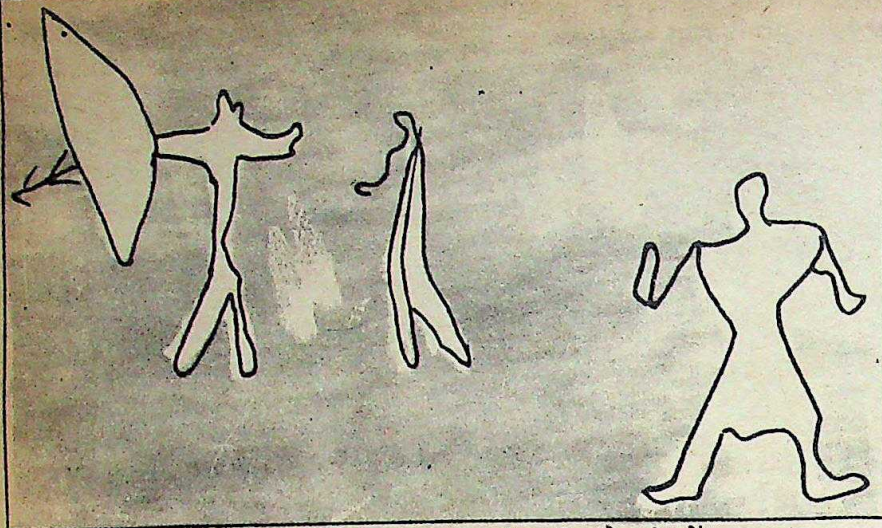
छातुग्राम में तीर से शिकार करता शिकारी, गेरु रंग में

ये चित्र प्रागैतिहासिक संस्कृति के घरोहर हैं, किंतु अब धीरे धीरे विनष्ट होते जा रहे हैं और अधिक चित्र पहाड़ियाँ तोड़ी जा रही हैं. उन के ठीके हो गये हैं. जो बची हैं उन को गाँव के लोग नष्ट कर रहे हैं. आँधी, पानी, तूफ़ान की चपेटों से शताब्दियों क्या सहस्राब्दियों से बची ये गुफ़ाएँ अब आधुनिक सभ्यता के चपेट में आ गयी हैं. इन की ओर न तो पुरातत्त्व विभाग का ध्यान जा रहा है और न अन्य संस्थाओं का. लोकवार्त्ता शोध संस्थान, रॉबर्टसगंज की ओर से इन का छायांकन तथा रेखांकन किया जा रहा है. आशा है सरकार इन की सुरक्षा का प्रबंध करेगी.

इन चित्रों की ओर सब से पहले ध्यान में एच. जी वेल्स (स्टोन एंड स्टोरीज़) वर्किट (द ओल्ड स्टोन एज), कनिंघम (आर्कियोलाजिकल रिपोर्ट) डॉ. एच. गार्डन (भारतीय संस्कृति की प्रागैतिहासिक पृष्ठभूमि) और डॉ. जगदीश गुप्त (भारतीय प्रागैतिहासिक चित्रकला) आदि विद्वानों का ध्यान आकृष्ट हुआ. मनोरंजन घोष ने इन पर अलग से कार्य किया और चित्रांकन भी किये. किंतु इस के बाद भी अनेक गुफ़ाएँ अनुद्घाटित और अनदेखी ही रह गयीं. अभी अनेक गुफ़ाओं की खोज भविष्य के गर्भ में है.

चिकित्सा

किरणों के दूषण में

सन् 1895 में एक्स किरणों की खोज के बाद से और सन् 1920 तक प्रयोगों के बाद से एक्स किरणें चिकित्सा के क्षेत्र में अपनी अन्यतम भूमिका अदा करने लगी हैं. रेडियोग्राफ़ी, रेडियोथेरापी, न्यूक्लियर मेडिसिन आदि के रूप में इन किरणों का महत्त्व आज संजीवनी किरणों के रूप में होने लगा है. आज जिस प्रकार औषधि विज्ञान प्रतिजैविक औषधियों (एंटीबायटिक्स) पर आधारित है उसी प्रकार एक्स किरणों पर भी आधारित है. आज की चिकित्सा पद्धति इन दोनों ही तत्त्वों से पूर्ण होती है. इसलिए एक तरफ़ यह कहना अप्रासंगिक है. कि अस्पतालों के अतिरिक्त निजी तौर पर भी एक्स किरणों की मशीनों का बढ़ना आश्चर्यजनक नहीं है दूसरी तरफ़ यह भी आवश्यक है कि क्षेत्र विशेष में इन के उपयोग का मानस क्या है. पटना ऐसा एक विशिष्ट क्षेत्र है क्योंकि पटना मेडिकल कालेज अस्पताल और इस के चिकित्सक हिंदुस्तान में अपना अन्यतम स्थान रखते हैं.

पिछले दिनों दवा की एक सुप्रसिद्ध कंपनी के एक अधिकारी से यह पूछने पर कि पटना में दवा की बड़ी छोटी कंपनियों के दपतर गोदाम क्यों इतनी तेज़ी से खुल रहे हैं यह पता चला कि इस के तीन प्रमुख कारण हैं (1) सरकार के स्वास्थ्य विभाग का अपने कर्त्तव्यों के प्रति घोर उपेक्षापूर्ण रुख (2) डाक्टरों का एक ही मरीज़ का बार बार पुर्जा बदलना और (3) नेपाल तथा हिंदुस्तान के दूसरे प्रांतों का सीमांत होना. ये कारण इस बात की ओर इशारा करते हैं कि दवाइयों के साथ ही एक्स रे मशीनों का उपयोग (दुरुपयोग भी) इस शहर में कितना हो सकता है. बिहार में क्यों कि चिकित्सकों को सरकारी नौकरी के बाद भी पेशा करने की छूट है इसलिए उन के और रोग विज्ञानियों (पैथेलाजिस्टों) तथा एक्स रे फोटो लेने वालों का आपसी रिश्ता कितना आमोद प्रमोद का हो सकता है यह सहज ही अनुमेय है लेकिन पटना मेडिकल कालेज अस्पताल में एक्स रे कर्मियों की दुनिया यातनामय और अपमानजनक है. एक्स किरणों के दूषण में ये लोग अपनी ज़िंदगी के कम से कम 5 वर्ष बर्बाद कर (आज खोजों से यह सिद्ध है कि लगातार एक्स किरणों के प्रभाव से मनुष्य की जिंदगी कम से कम 5 वर्ष तो कम हो ही जाती है) रोगियों की सेवा के लिए उद्यत रहने के बाद भी सरकार या संबंधित डाक्टरों की उपेक्षा के शिकार बने हुए हैं. इन की उपेक्षा और तकलीफ की लंबी कहानी है. इस उपेक्षा की कहानी को दो हिस्सों में विभाजित कर देखा जा सकता है. पहला सरकारी और दूसरा विभागीय उपेक्षा.

अन्यायपूर्ण: वस्तुतः पटना मेडिकल कालेज अस्पताल (प.मे.का.अ.) का एक्स रे विभाग अपने आप में एक दुनिया है जिसे चलाने वाले प्रोफ़ेसर अशोसिएट और असिस्टेंट प्रोफ़ेसर (सब रेडियोलाजिस्ट कहे जाते हैं), वरीय रेडियोग्राफर, वरीय एक्स रे टेक्निशियन, एक्स रे टेक्निशियन, एक्स रे मैकेनिक, डार्क रूम असिस्टेंट (सभी रेडियोग्राफर कहे जाते हैं) और लेडी हेल्थ विजिटर होते हैं. इस दुनिया का मालिक होता है प्रोफ़ेसर और संरक्षक होती है सरकार. मालिक और संरक्षक दोनों का ही व्यवहार अपने मातहदों के प्रति उपेक्षापूर्ण और अन्यायपूर्ण है.

उपेक्षापूर्ण: सरकारी उपेक्षा के तहत रेडियोग्राफरों की नियुक्ति, इन का प्रशिक्षण, वेतनमान, नौकरी की दूसरी सुविधाएँ आदि है. प्रारंभ से ही ये सरकारी उपेक्षा के शिकार रहे हैं. प्रथम वेतन पुनर्निरीक्षण समिति (1947) के द्वारा एक्स रे टेक्निशियन, फोरेस्टरेंजर, ओवरसियर आदि का वेतनमान 100-190 की अनुशंसा की गयी थी, लेकिन बिहार सरकार ने इन में से केवल एक्स रे टेक्निशियनों का वेतनमान घटा कर पदनाम के क्रम से क्रमशः 75-150, 45-75, 100-190 आदि कर दिया: यानी इन का वेतन मान बढई, लोहार, पेंटर, टैक्टरड्राइवर, फिटर मैशीनिस्ट आदि के बराबर रखा गया. भेद की यह नीति द्वितीय और तृतीय वेतन पुनर्निरीक्षण समिति (1964-72) ने बरकरार रखी. आज उन के वेतन की अंतिम सीमा 460 रुपये मात्र है. यही नहीं, सन् 1960 में फिजियोथेरापिस्ट का पद सृजित किया गया, जिन का काम एक्स रे टेक्निशियनों से अलग नहीं था, मगर उन का वेतन इन से लगभग दुगना रखा गया—उन्हें सम्मान का पद दे कर इन की घोर उपेक्षा की गयी, जिससे रेडियोग्राफरों के मन में क्षोभ भर गया है.

रेडियोग्राफरों के विभिन्न पदनामों के नीचे काम करने वालों के 'कार्य एवं दायित्व एक समान हैं'. 1947 के पहले इन पदों पर काम करने वालों को एक ही वेतनमान 65-170 दिया जाता था. आज इन के वेतनमान पदनामों के अनुसार चार वर्गों में विभाजित है, जिस से आपसी भेदभाव पैदा हुआ है और सहयोगी की भावना नष्ट हुई है.

इन्हें और किसी प्रकार की सुविधा प्राप्त

नहीं है—न आवास की, न रेडिएशन भत्ता आदि की. रेडिएशन के दुष्प्रभावों को आज सभी जानते हैं—उम्र से 5 वर्ष खोने के बावजूद ब्लड कैंसर, प्रजनन दोष, गुर्दे और लिवर की बीमारी, चर्मरोग, मोतियाबिंदु आदि जैसे अनेक घातक रोग इस के दुष्परिणाम हैं. इस रेडिएशन भत्ते का सवाल इस लिए उठता है कि रेडियोग्राफरों को ही एक्स रे फोटो लेने पड़ते हैं और बराबर उस स्थान पर मौजूद रहना पड़ता है. तृतीय वेतन पुनर्निरीक्षण समिति के प्रतिवेदन में कहा गया है कि 'एक्स रे टेक्निशियन का काम डार्क रूम में फिल्म धोना, डेवलप करना है, (खंड-2, पृष्ठ 401), लेकिन व्यवहार में यह बात गलत है. प.मे.का.अ. के एक्स रे टेक्निशियनों से पूछने पर पता चला कि 'एक्स रे लेने का कार्य एक्स रे टेक्निशियन करते हैं. रेडियोलाजिस्ट सिर्फ रपट लिखते हैं, जब कि यह काम रेडियोलाजिस्ट का ही है. इस बात की जाँच कभी भी करायी जा सकती है.

रेडिएशन के इस विनाशकारी प्रभाव से क्षति की पूर्ति के लिए 'कोर कमेटी' ने अपने प्रतिवेदन खंड-2 पृष्ठ 393 धारा 124, में अनुशंसा भी की है. रेडिएशन भत्ता अन्य राज्यों में एवं औद्योगिक संस्थानों के अस्पतालों में वेतन का 20 प्रतिशत दिया जाता है. (विज्ञप्ति इंडियन नेशन 9-2-78), लेकिन अभी तक इन्हें कोई भत्ता नहीं दिया जाता. इस भत्ते के अतिरिक्त इन्हें उपार्जित छुट्टी के बदले वेतन, जीवनयापन भत्ते, आवास आदि तमाम चीजों के लिए लड़ाई लड़नी है.

प्रशिक्षण के नाम पर : इन चीजों के समानांतर महत्त्व की समस्या है एक्सरे कर्मियों के प्रशिक्षण की, क्यों कि यह काम पूर्ण रूप से तकनीकी और शरीर विज्ञान से संबंधित है. इसलिए फिजियोलाजी एवं एनाटोमी की पूर्ण जानकारी के बिना एक्स किरणों के दुष्प्रभावों से बचाते हुए कोई भी व्यक्ति फोटो नहीं ले सकता. कोर कमेटी ने ऐसे प्रशिक्षण की अनुशंसा की थी और योग्यता आई.एस.सी. तथा दो साल का प्रशिक्षण तय किया था. लेकिन 1964 तक इस प्रकार का कोई उचित कदम नहीं उठाया गया, फलतः 1947 से 64 तक 90 प्रतिशत एक्सरे कर्मी मैट्रिक पास व्यक्ति ही लिए गये. प.मे.का.अ. में आज ऐसे व्यक्ति 18 हैं जिन में 9 मैट्रिक पास और अप्रशिक्षित लोग हैं. ये लोग ठीक से मशीनों को चलाना भी नहीं जानते. इसी लिए 1965 में बिहार विधानसभा में 13 एक्सरे मशीनों के खराब होने का कारण प्रशिक्षित टेक्निशियनों का अभाव घोषित किया गया. शायद इसी लिए 1965 में प.मे.का.अ. में ऐसा प्रशिक्षण का केंद्र खोला गया. लेकिन आज यह केंद्र पटना में नहीं है—दरभंगा और राँची के अस्पतालों में खुल गया है. पटना में यह केंद्र क्यों बंद हुआ, इस की कोई उचित व्याख्या अधिकारियों के पास नहीं है.

[illegible] कुल 12 व्यक्ति (6+6) प्रशिक्षित हो कर निकल रहे हैं. बावजूद इन के अभी भी 22 पद रिक्त पड़े हैं. ऐसे प्रशिक्षित व्यक्तियों में से लगभग 60 प्रतिशत दूसरे विभागों में चले जाते हैं. कारण कम वेतनमान है : यानी एक्सरे कर्मियों के प्रशिक्षण देने के नाम पर सरकार के लाखों रुपयों का कोई इस्तेमाल विभाग में नहीं हो रहा है. इस लिए आज प्रशिक्षित एक्सरे कर्मियों का भारी अभाव है. उन के अभाव में पटना अस्पताल की छह एक्सरे इकाइयों की कुल 23 मशीनों में से 10 खराब पड़ी हैं.

आज स्थिति इस लिए और भी भयानक हो गयी है कि मरीजों की संख्या लगातार बढ़ रही है, प्रशिक्षित लोग समुचित मात्रा में मिल नहीं रहे हैं और 1978 के अंतिम दिनों में भी लगभग प्रत्येक एक्सरे इकाई में मशीनें खराब पड़ी हैं. नयी मशीन भी महीनों से आ कर पड़ी है, मगर वह बक्से से खुल नहीं रही है. खराब मशीनें बन नहीं रही हैं, नयी मशीनें खुल नहीं रही हैं और मरीजों की संख्या लगातार बढ़ रही है और सरकार का स्वास्थ्य विभाग असंलग्न है. मरीज कहाँ जायेंगे? बाजार में. क्या इस प्रकार मशीनों की उपेक्षा करने में संबंधित डाक्टरों की कोई साजिश नहीं है?

सुविधा के नाम पर : यहीं से शुरू होती है विभागीय उपेक्षा. मशीनों के विभाग की देखरेख प्रोफेसर कभी नहीं करता, प्रत्येक रेडियोग्राफर को प्रत्येक मशीन पर काम करने की सुविधा नहीं देता. अपने चहेतों को मशीनें सौंप कर मशीनों का मालिक बना देता है. उस के छुट्टी पर रहने पर मशीनें बंद रहती हैं... ये सब वाक्य क्षुब्ध रेडियोग्राफरों के हैं. डॉ. जे.पी. सिंह (या सिन्हा) एक्सरे विभाग की अनियमितताओं, एक्सरे कर्मियों के असंतोष की जड़ में हैं. जब कि मशीन चलाना उनका काम है वह मशीन के पास जाते तक नहीं.

प. मे. का. अ. की सारी एक्स रे इकाइयाँ आज शिक्षित, अशिक्षित, जातिवाद और खुशामद करने वाले एक्स रे कर्मियों के सहारे जैसे तैसे चल रही हैं. किसी मरीज को कितनी देर किरणें दी जायेंगे, आदि देखने वाला आज कोई नहीं है. एक्स रे कर्मियों में विक्षुब्ध दल अगर डा. जे. सी. सिन्हा के कार्यकलापों पर टिप्पणी करता है तो वह जातिवाद की दुहाई दे कर उस का मुँह बंद करना चाहते हैं. वह अप्रशिक्षित रेडियो कर्मियों को प्रशिक्षण के लिए क्यों नहीं भेजते, रिक्त स्थानों की पूर्ति क्यों नहीं करते, मशीनों की समुचित व्यवस्था क्यों नहीं करते आदि अनेक छोटी बड़ी बातें हैं, जो लोगों का ध्यान खींचती हैं.

यह सब डाक्टरों के जातिवाद, व्यक्तिवाद स्वार्थ, अफसरशाही के कारण होता है. इस का नंगा रूप विभिन्न प्रकार के किये जाने वाले 'एक्स रे' में मिलता है. प.मे.का.अ. में कई प्रकार के 'एक्स रे' किये जाते हैं.

पेइंग एक्स रे में मरीज को 20 रु. देने पड़ते हैं. इन बीस रुपयों को सरकार ने विभाजित किया है—नौ रुपए अस्पताल (सरकार) को, आठ रुपए रेडियोलॉजिस्ट को और तीन रुपयों में रेडियोग्राफरों और चतुर्थवर्ग के कर्मचारियों को. इस बँटवारे का कोई औचित्य नहीं दीखता, क्यों कि अस्पताल के प्रत्येक कर्मचारी सरकारी मुलाजिम हैं और वेतन भोगी हैं: यानी अपने काम के लिए वेतन पाते हैं. इस प्रकार मरीजों का शोषण होता है और डाक्टरों का घर भरता है. जनकल्याण की भावना से प्रेरित सरकार अगर मरीज़ों को इस प्रकार लूट कर अपने कर्मचारियों में पैसे बाँटना चाहती ही है तो 'एक्स रे' कर्मियों को आठ रुपये मिलने चाहिए, डाक्टर को तीन रुपये, क्यों कि डाक्टर तो केवल रपट लिखता है. सारा काम तो अन्य लोग करते हैं. इस तरह के एक्स रे प.मे.का.अ. में औसतन दो हजार प्रतिमाह होते हैं. क्या स्वास्थ्य विभाग के अधिकारियों का भी मरीजों की इस लूट में हिस्सा होता है?

अपना अपना हिस्सा : दूसरे प्रकार का एक्स

पूर्व जर्मनी जैसे पश्चिमी देशों में चिकित्सा की उन्नत और असीमित सुविधाएं उपलब्ध हैं और साथ ही चिकित्साकर्मियों के लिए भी अनेक सुविधाएँ हैं: 'हमारी भी जरूरतें हैं.'
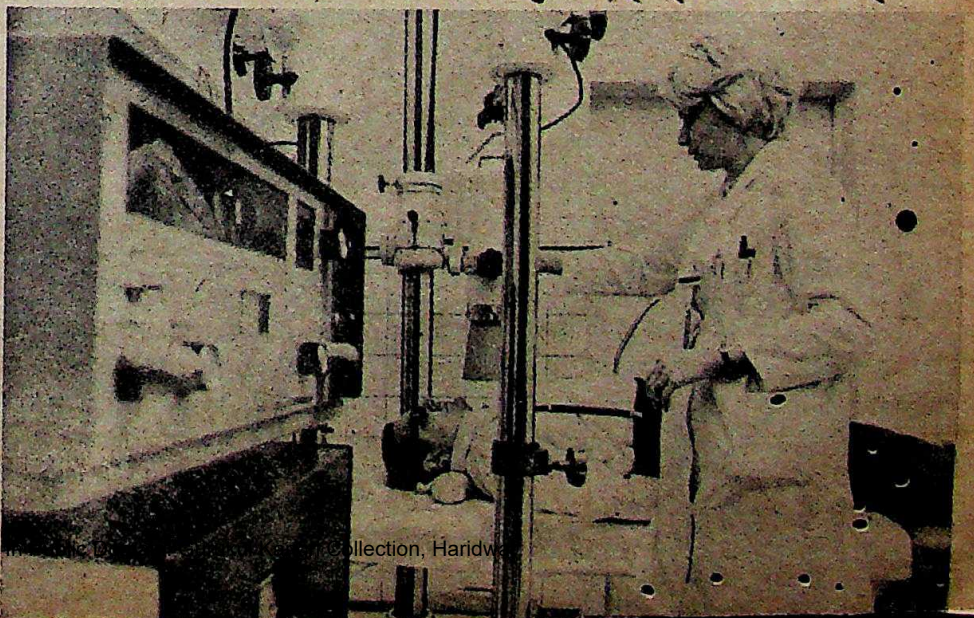
रे वह है जो मरीज से एक्स रे प्लेट और मशीन तथा बिजली का खर्च दो रुपये प्रतिप्लेट ले कर किया जाता है. इस में मरीज एक्स रे प्लेट नहीं ला सकता क्यों कि एक प्लेट नहीं बिकती है. इस लिए एक्स रे कर्मी अस्पताल के स्टोर से चुरा कर स्वयं प्लेटों का प्रबंध करता है और मरीज से प्लेट के दाम लेता है. स्टोर को देखने वाला तो डाक्टर और स्टोर बाबू ही होता है. 'स्टोर की देखरेख करने वाला कोई नहीं है, चोरी होती है तो सब का हिस्सा बँधा होता है.'

तीसरे प्रकार का एक्स रे वह है जो अस्पताल में भर्त्ती मरीजों के लिए जाते हैं. एक्स रे के प्लेट्स हास्पिटल में ही रह जाते हैं. इस प्रकार के एक्स रे साल में लगभग 35 हजार किये जाते हैं.

चौथे प्रकार का एक्स रे सरकारी श्रम विभाग द्वारा श्रमिकों को सुविधा देने के ख्याल से ई. एस. आई. योजना के अंतर्गत राहत की फीस दे कर होता है, जो सरकार द्वारा 6 रुपये प्रतिप्लेट (अब 9 रु.) तय था. मगर अस्पताल में सात रुपये पचास पैसे लिये जाते थे. अब शायद दस रुपये पचास पैसे हों. इस में शेयर सिर्फ डाक्टरों का ही है, सहायकों का नहीं.

इन के अलावा 'बेरियम मील एक्स रे' आदि कई दूसरे प्रकार के एक्स रे किये जाते हैं—सब के अपने किस्से और असंगतियाँ हैं, जिन के कारण एक्स रे कर्मियों के बीच भारी असंतोष और प्रतिस्पर्द्धा है.

इस विभाग के क्षुब्ध कर्मचारियों का कहना है कि एक्स रे प्लेटस अंततः डाक्टरों को लाभ देते हैं : प्लेट ही नहीं प्लेट धोने वाले घोल तक फायदा पहुंचाते हैं. इन प्लेटों में चाँदी का बड़ा अंश होता है. इन प्लेटों को खरीदने वाले बड़े बड़े ठेकेदार हैं. प.मे.का.अ. में एक्सरे के जो प्लेट रह जाते हैं तथा कुछ जो मरीजों से झटके लिये जाते हैं साल में उन का वजन टनों हो जाता है और ये बिकते हैं अट्ठारह रुपये प्रति-किलो के भाव से. 1974 तक इन प्लेटों की बिक्री आदि किस प्रकार हुई इसे कोई नहीं जानता. अस्पताल का इन वर्षों में करोड़ों रुपये का नुकसान हुआ. इस का जिम्मेवार कौन है, इस की जाँच सरकार क्यों नहीं कराती? 1975 में जब इस मामले को ले कर शोर-शराबा हुआ तब से सब की जानकारी में ये प्लेट बेचे जाते हैं और उन का पैसा अस्पताल में (सरकार में) जमा होता है—कितना बिकता है, कितना जमा होता है, यह एक अलग बात है. मगर 1975 से पैसा इस नाम से जमा होता है. दिलचस्प यह है कि दरभंगा और राँची के अस्पताल इस प्रकार की बिक्री पहले से करते हैं और पैसा जमा होता है. मगर पटना का अस्पताल, जो बिहार का सब से बड़ा अस्पताल है, वहाँ ऐसा नहीं होता था, तब भी स्वास्थ्य विभाग या संबंधित विभाग को कोई चिंता नहीं थी.

किरणों का महाजाल: इस प्रकार [illegible]

में किरणों का महाजाल फैला है, जिस के नीचे अमानवीयता का स्वार्थपरक खेल चल रहा है और मरीजों से ले कर तृतीय और चतुर्थ वर्ग के कर्मचारी अपनी जिंदगी के दिन कम करते जा रहे हैं और दूसरे शारीरिक मानसिक विकारों से ग्रस्त होते जा रहे हैं. इनके मन में ये बातें घुमड़ती रहती हैं कि कुछ ही वर्षों में डॉ. जे. पी. सिन्हा की करोड़ों की संपत्ति कैसे हो गयी? कुछ 'एक्स रे टेक्निशियनों के पास लगभग लाखों की लागत की पड़ने वाली एक्सरे मशीन स्वतंत्र रूप से कैसे आ गयी? सरकार इन तमाम अनियमितताओं और मरीजों को होने वाली दिक्कतों पर ध्यान क्यों नहीं दे रही हैं? ये तमाम विषय जाँच के हैं, फिर भी जनता की समस्याओं को हल करने के लिए प्रतिबद्ध सरकार और संबंधित मंत्री महोदय चुप क्यों हैं?

पटना के प्रसिद्ध डाक्टर ए. के. सेन ने कई रोगियों को डाँटा, कि एक्स रे नहीं होगा. वह तभी होना चाहिए जब डाक्टर की पकड़ में अंततः रोग न आये, क्यों कि उस के विनाशकारी प्रभाव होते हैं और दूसरी बीमारियाँ पैदा होती हैं. लेकिन आज पटना के डाक्टर तत्काल रोगियों को एक्स रे के लिए बाध्य करते हैं. क्या यह उन की अयोग्यता का प्रमाण है, या कि एक बार जो मरीज उन के चंगुल में फँस जाता है उसे नये नये रोगों में डाल कर वे अंत तक उसे चूसते रहना चाहते हैं? इस अप्रत्यक्ष मानव विनाश की रोकथाम के लिए सरकार कौन सा कदम उठा रही है?

इसलिए 'पमेकाअ' के एक्स रे विभाग में आज दोहरा असंतोष फैल गया है. तृतीय श्रेणी के कर्मचारी कई तरह से दबे हुए हैं. वे अपने वेतनमान और पदनाम की असंगति मिटाने के लिए, दूसरे भत्ते और सुविधाओं के लिए—2 फरवरी '78 एवं सु.ज.वि. 2748/77-78 में गठित चतुर्थ वेतन पुनर्निरीक्षण समिति के समक्ष अपने मेमो नं. पी-आर. 11/78 पटना दिनांक 8-5-78 द्वारा बिहार सरकार से माँग पेश करते समय लड़ाई के लिए एक प्रकार से तैयार हो गये हैं. बिहार सरकार का स्वास्थ्य विभाग उन के प्रतिवेदन पर निरर्थक पूछताछ से अपना कोई निर्णय लेने का समय टाल रहा है. जिस की ऊपर और नीचे के कर्मचारियों में कई प्रतिक्रियाएँ हो सकती हैं.

इस लड़ाई को समाप्त करने के लिए और रोगियों की समुचित सहायता के लिए यह आवश्यक है कि बिहार सरकार इस विभाग की उचित जांच के लिए एक समिति गठित करे और शीघ्र ही तथ्यों के सत्य से परिचित हो और आवश्यक कदम उठाये, वरना किरणों के इस दूषण में मरीजों से ले कर कर्मचारियों तक की व्यापक मानव क्षति का जिम्मेवार लोग उसे ही ठहरायेंगे.

—अनिल सिनहा

न्यूज़ीलैंड : हम जीते तो हैं

25 नवंबर को न्यूज़ीलैंड की संसद् के चुनावों में प्रधानमंत्री रॉबर्ट मल्डून की सत्तारूढ़ नेशनल (ब्रिटेन में जिसे कंज़रवेटिव पार्टी कहा जाता है) पार्टी को एक बार फिर बहुमत प्राप्त हो गया. लेकिन इस बार 23 सदस्यों का बहुमत घट कर मात्र 6 सदस्यों का ही रह गया. दिलचस्प बात यह है कि पिछली संसद् में कुल सदस्यों की संख्या 87 थी जो चुनाव क्षेत्रों के परिसीमन के कारण इस बार बढ़ कर 92 हो गयी. नेशनल पार्टी की केवल 6 स्थानों की बढ़त ही हुई है. लेकिन प्रतिपक्षी लेबर पार्टी के बिल रौलिंग ने अभी तक अपनी पराजय स्वीकार नहीं की है. उन्हें शायद यह उम्मीद है

रावर्ट मल्डून: सिकुड़ता बहुमत

कि जब विदेशों में रहने वाले न्यूज़ीलैंडवासियों के तथा 'विशेष मतों' की गिनती पूर्ण हो जायेगी संभव है पासा पलट जाये और उन की पार्टी को बहुमत प्राप्त हो जाये. उन की आशा का कारण लेबर पार्टी को नेशनल पार्टी की अपेक्षा अधिक मत प्राप्त होना है—सत्तारूढ़ पार्टी के 39.5 प्रतिशत के मुकाबले लेबर पार्टी को 40.5 प्रतिशत मत मिले हैं. मल्डून की प्रतिक्रिया थी: 'बेशक चुनाव परिणाम निराशाजनक हैं लेकिन हम जीते हैं, हारे नहीं.'

तीसरी पार्टी : इस चुनाव में लेबर पार्टी को निस्संदेह लाभ हुआ. उस ने नेशनल पार्टी से बहुत से महत्त्वपूर्ण स्थान जीते हैं. लेकिन बहुत से सदस्य काफी कम यानी कुछ सैकड़ों मतों से ही विजयी हुए हैं जब कि पिछली बार के चुनाव में वे हजारों मतों से जीते थे. दो काबीना मंत्री चुनाव हार गये जब कि बहुत से मंत्रियों का बहुमत बुरी तरह घट गया है.

इस चुनाव में एक तीसरी पार्टी—सोशल क्रेडिट लीग अस्तित्व में आयी है. पिछले चुनाव में भी वह मैदान में उतरी थी लेकिन तब उसे अधिक मत प्राप्त नहीं हुए थे. उस समय उस के सदस्यों का मजाक उड़ाया गया था. यद्यपि उसे औसत के लिहाज में 16 प्रतिशत मत मिले हैं तथापि स्थान केवल एक ही प्राप्त हुआ है. ग्रामीण क्षेत्रों में यह पार्टी अपने लिए स्थान बना रही है और नेशनल पार्टी के मतों को काट रही है. कई स्थानों पर वह लेबर पार्टी से भी आगे थी यानी दूसरे स्थान पर. एक अन्य स्थान पर वह केवल 500 मतों से हारी है. बहरहाल, सोशल क्रेडिट लीग ग्रामीण क्षेत्रों में यदि इसी तरीके से अपना स्थान बनाती चली गयी तो अगले चुनाव में वह महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है.

बीते तीन बरस: 1975 के चुनाव में लेबर पार्टी का विश्वास डगमगा गया था. उसे शायद यह अहसास होने लगा था कि अब निकट भविष्य में सत्ता के आसपास पहुँचना उस के लिए मुश्किल होगा : 1972 में बहुमत प्राप्त कर उसने नेशनल पार्टी को इसी तरह झकझोरा था. लेकिन वर्तमान चुनाव परिणामों से उस का विश्वास लौट आया है और नैतिक मनोबल ऊँचा हुआ है. शायद यही कारण है कि लेबर पार्टी के नेता रौलिंग अभी भी 'विशेष मतों' पर आस लगाये बैठे हैं. नेशनल पार्टी की वर्तमान स्थिति का एक कारण जॉन मार्शल भी हैं. चार वर्ष पहले मार्शल को पार्टी से बर्खास्त कर दिया था, क्योंकि उन्होंने कहा था कि ऊँचे करों, औद्योगिक संघर्ष तथा मल्डून की शासनशैली से आम व्यक्ति आज़िज आ चुका है. लेकिन 1975 के चुनाव में उन्होंने जिस प्रकार विजय प्राप्त की उस से लगता था कि उन का नेतृत्व चुनौती से परे है. तब उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया था कि उन के तीन बरस लेबर पार्टी की सरकार की गलतियों को सुधारने में निकल गये लिहाज़ा उन्हें एक मौका और दिया जाना चाहिए. मतदाताओं ने उन्हें एक मौका और दिया लेकिन 1975 से 1978 के बीच का समय भी न्यूज़ीलैंड के लिए उल्लेखनीय साबित नहीं हो सका. उस दौरान अर्थव्यवस्था में विशेष सुधार नहीं हुआ, विदेशों से ऋण की मात्रा बढ़ने लगी, आंतरिक घाटे की व्यवस्था में बढ़ोत्तरी हुई. मुद्रास्फीति लगभग दुगुनी हुई. 1930 की तुलना में बेरोज़गारी में वृद्धि हुई और मजदूर संघों का प्रभाव निरंतर बढ़ना शुरू हो गया. हालत अब यह है कि छोटे छोटे मुद्दों पर मजदूर संघ उद्योगों पर हावी होने लगे हैं और आसानी से हड़ताल करा सकते हैं.

विकल्प कौन? : इन सब स्थितियों के बावजूद मतदाताओं ने नेशनल पार्टी के पक्ष में मतदान किया. कुछ लोगों का यह मानना था कि इस समय मल्डून के सिवाय देश के सामने कोई विकल्प नहीं. लेबर पार्टी के नेता रौलिंग को लोग दृढ़ नेता नहीं मानते, क्योंकि वह जरूरत से ज्यादा शरीफ हैं. दूसरे क्रेडिट लीग के नेता ब्रूस बीथम अभी अपनी स्थिति बनाने में लगे हुए हैं. लोगों का मानना है कि अगले चुनाव में वह निस्संदेह महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायेंगे. कुछ लोगों का यह भी मानना है कि नेशनल पार्टी की नीतियों के विरोध में भी कुछ लोगों ने मतदान में भाग नहीं लिया. मतदान से कुछ समय पूर्व देश में गर्भपात कानून को उदार बनाने की माँग ने ज़ोर पकड़ा. यद्यपि सरकार ने कुछ उदारता प्रदर्शित की लेकिन लोगों का रोष फिर भी बना रहा. कुछ लोगों का यह भी मानना था कि मल्डून न्यूज़ीलैंड की एक सदनी संसद् में पहले जैसा बहुमत बरकरार रख सकते थे यदि उन्होंने प्रतिपक्षी नेता रौलिंग की तुलना चूहे से न की होती और उन के खिलाफ ऐसा चुनाव प्रचार न किया होता जिस से उन के व्यक्तित्व पर आँच आती. यही कारण था कि वह अपना अधिकतर समय रौलिंग के व्यक्तिगत विरोध में ही गुज़ार देते, अन्य मुद्दों पर वह बहुत कम बोले. रौलिंग ने स्थिति का पूरा फायदा उठाया. कहा जाने लगा कि जिसे मल्डून चूहा मानते रहे हैं वह अब दहाड़ रहा है. अपने चुनाव प्रचार के दौरान रौलिंग ऐसे साबित हुए जिस की उम्मीद न्यूज़ीलैंड के मतदाताओं को नहीं थी और न शायद मल्डून को ही. यही कारण है कि रौलिंग इस बात की उम्मीद लगाये बैठे हैं कि देश की वर्त्तमान स्थितियों को देखते हुए अभी भी वह जीत सकते हैं. और फिर छह सदस्यों का बहुमत क्या होता है. कुछ सदस्य नेशनल पार्टी छोड़ भी तो सकते हैं!
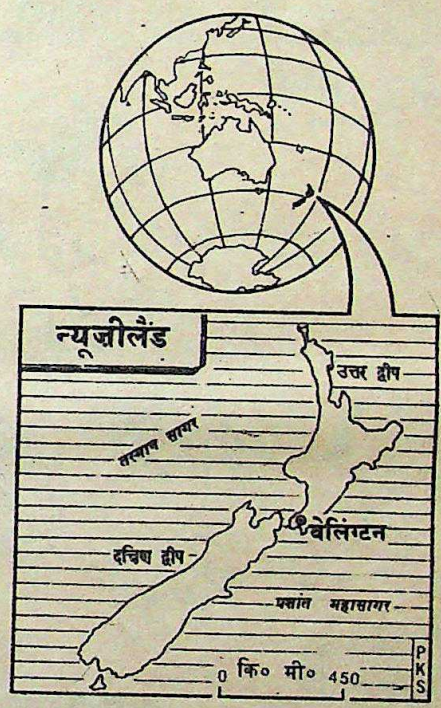
दो बड़े द्वीपों का देश : न्यूज़ीलैंड का क्षेत्रफल 103,736 वर्गमील है और जनसंख्या 3,106,000 (1975 का आंकड़ा). राजधानी वेलिंग्टन है और मुद्रा न्यूज़ीलैंड डॉलर. मुख्य न्यूज़ीलैंड द्वीप दक्षिण प्रशांत में स्थित है, ऑस्ट्रेलिया से लगभग 1,300 मील दूर. न्यूज़ीलैंड में उत्तरी द्वीप (44,281 वर्गमील), दक्षिण द्वीप (58,093 वर्गमील), सटुअर्ट द्वीप (670 वर्गमील), चातेयम द्वीप (372 वर्गमील) सम्मिलित हैं. उत्तरी और दक्षिणी दोनों द्वीपों की लंबाई करीब 500 मील है. दोनों द्वीपों को कुक जलडमरूमध्य अलग करता है. 1975 में कुक द्वीप (19,522 जनसंख्या और क्षेत्रफल 93 वर्गमील) को स्वशासन प्रदान किया गया यद्यपि उस की प्रतिरक्षा, विदेशी मामलों की जिम्मेदारी न्यूज़ीलैंड की सरकार पर ही है. उत्तरी द्वीप में वेलिंग्टन और ऑकलैंड दो प्रमुख बंदरगाह हैं जब कि दक्षिणी द्वीप में दक्षिण आल्पस और तास्मान, फाक्स और फ्रांज जौसिफ जलप्रपात हैं. सब से ऊँची चोटी माउंट कुक है (12 हजार 349 फुट).

खोज : 1642 में एक डच आबेल जांसजून तास्मान ने न्यूज़ीलैंड की खोज की. उस के तटों की खोज ब्रितानी कप्तान जेम्स कुक ने 1769-70 में की. 1840 में यहाँ पर ब्रितानी प्रभुसत्ता की घोषणा कर दी गयी. 1907 में यह उपनिवेश स्वाधीन हो गया और राष्ट्रकुल का सदस्य बन गया. न्यूज़ीलैंड में एक सदनी संसद् (प्रतिनिधिसभा) है जिस का चुनाव वयस्क मताधिकार द्वारा तीन वर्ष के लिए होता है. 1974 में मतदान की आयु 20 से घटा कर 18 कर दी गयी जब कि हाल ही के चुनाव में सदस्य संख्या 87 से बढ़ा कर 92 कर दी गयी. चार सदस्य माउरी संप्रदाय के चुने जाते हैं. स्त्रियों को 1893 में मतदान का अधिकार प्राप्त हुआ. माउरी यहाँ का प्राचीन कबीला है. 19वीं सदी में इन की संख्या लगभग 2 लाख थी लेकिन निरंतर दंगों और बीमारियों के कारण इन की संख्या घट कर 40 हजार रह गयी. धीरे धीरे माउरी कबीले की संख्या में बढ़ोत्तरी होती गयी और 1974 में इन की संख्या 2 लाख 46 हजार 200 हो गयी.

एशिया से निकटता : पहले न्यूज़ीलैंड के यूरोपीय तथा पश्चिमी देशों के साथ घनिष्ठ संबंध हुआ करते थे और उन्हीं देशों का उसे सदस्य माना जाता था. लेकिन पिछले दिनों न्यूज़ीलैंड और ऑस्ट्रेलिया दोनों ने अपने आप को एशियाई देशों के साथ ज्यादा जुड़ा हुआ पाया. न केवल खेलकूद के क्षेत्र में ही बल्कि अन्य क्षेत्रों में भी एशियाई देशों के साथ उन की मित्रता बढ़ी है. इस बात की भी चर्चा है कि न्यूज़ीलैंड और ऑस्ट्रेलिया दोनों एसियान देशों के (दक्षिणपूर्व एशिया संगठन) के समूह में सम्मिलित होने के इच्छुक हैं. यहाँ के नेताओं ने इन देशों की यात्रा की है और अपनी इस इच्छा को जाहिरा तौर पर व्यक्त भी किया है. न्यूज़ीलैंड और ऑस्ट्रेलिया के एशियाई देशों में शामिल होने से निस्संदेह इन देशों की अर्थव्यवस्था पर फर्क पड़ सकता है.

विश्व

चीन

क्रांति में क्रांति

चीन की राजधानी पीकिङ में अन्य बड़े नगरों तथा अनेक सार्वजनिक स्थानों की दीवारों पर पोस्टरों की भरमार है. समाचारपत्रों में भी हवा बदली हुई है. पार्टी की आलोचना प्रत्यालोचना खुले तौर पर सुनने में आती है. पोस्टरों पर श्री माओ के विरुद्ध टिप्पणियों की भरमार है. श्री तेङ की चर्चा है. इतना ही नहीं लोकतंत्र और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की भी आवाज सुनायी पड़ रही है. दिलचस्प बात यह है कि पीकिङ की दीवारों पर चिपके हाल ही के एक पोस्टर पर राष्ट्रपति कार्टर की भी सराहना देखने को मिली. इस पोस्टर में खुले तौर पर लोगों का ध्यान श्री कार्टर के उस एलान की तरफ दिलाया गया है, जिस में उन्होंने चीन में मानवाधिकारों के हनन का ज़िक्र किया था. डेली टेलीग्राफ के संवाददाता ने पीकिङ से समाचार दिया कि पोस्टर पर साफ लिखा था कि चीन में मानव समाज का एक तिहाई हिस्सा बचता है वहाँ सोवियत नागरिकों के जीवन की दुःखभरी गाथाएँ नहीं दोहराई जानी चाहिए. इसी समाचार में बताया गया है कि मानवाधिकारों के बारे में श्री कार्टर के खुले पत्र के मजमून का एक पोस्टर दीवार पर चिपका देखा गया. सोवियत संघ में असंतुष्ट लोगों से सहानुभूति प्रकट करने की बातें भी पीकिङ में सुनने को मिल रही हैं. चारों ओर मानवाधिकारों की रक्षा की माँग करते हुए स्वतंत्रता का एक वातावरण सा बनता जा रहा है.

उदारवाद का स्थान : पिछले तीस वर्षों से चीन में कम्युनिस्ट पार्टी एक दल के रूप में सत्तारूढ़ रही और गैरकम्युनिस्ट विचारों की छाया भी कहीं नहीं देखने को मिलती थी. लेकिन दिलचस्प बात यह है कि इस समय चीन के बुद्धिजीवियों में भी उदारवाद की एक ज़बर्दस्त लहर आयी है, जिस का आभास बाहर की दुनिया को पिछले काफी समय से मिल रहा है. हाङकाङ से प्राप्त रायटर के एक समाचार के अनुसार अभी हाल ही में चीन के न्यायविदों और विद्वानों ने लोगों के गैरकानूनी तौर पर गिरफ्तार करने, बिना वारंट की तलाशियाँ लेने और दबाव डाल कर लोगों से बयान आदि दिलाने की प्रवृत्तियों को पूर्णरूप से खत्म करने की माँग की है. बताया जाता है कि कोई 160 विद्वानों और न्यायविदों ने अपने हस्ताक्षरों से वक्तव्य जारी कर के चीन के ज़ाब्ता फौज़दारी कानून में इस प्रकार के संशोधनों की ज़बर्दस्त माँग की है. चीन की आंतरिक राजनीति के संबंध में आये दिन व्यापक रूप से समाचार मिल रहे हैं. सत्ता संघर्ष के साथ साथ विभिन्न राजनैतिक विचार-धाराओं के टकराव की स्पष्ट झलक दिखायी पड़ रही है. इस समय सत्ताधारी दल में श्री तेङ का प्रभाव स्पष्ट देखने को मिलता है.

चीन के उपप्रधानमंत्री और उपाध्यक्ष श्री तेङ हिसाओ पिङ ने हालाँकि पहली बार अपनी पार्टी में मतभेदों से इनकार किया है लेकिन पीकिङ के नेतृत्व में फूट पड़ने के समाचार चीन से ही मिल रहे हैं. अभी हाल ही में पीकिङ
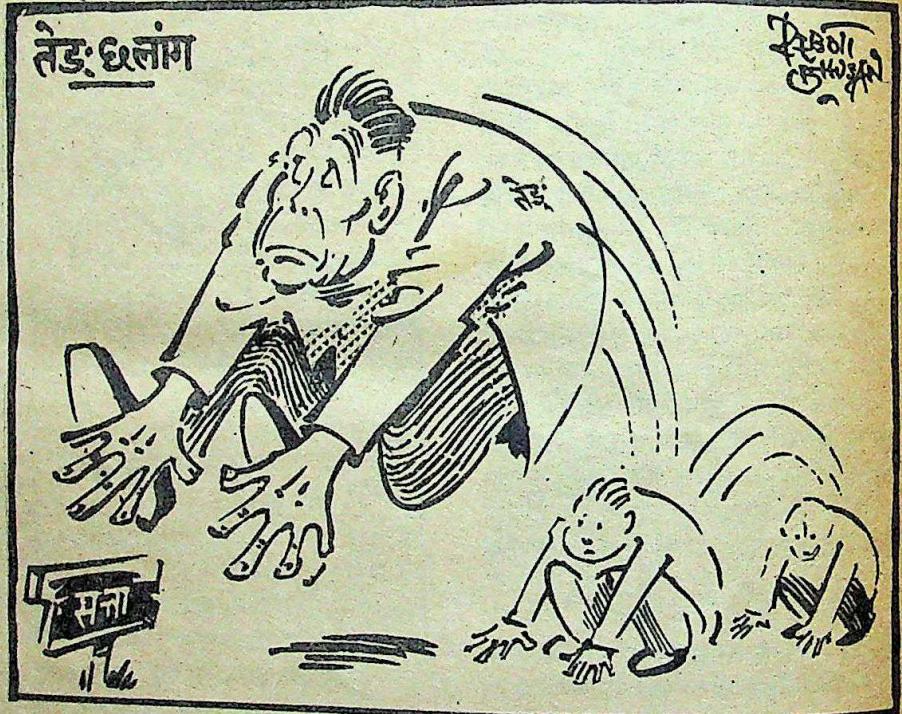
समाचार एजेंसी ने श्री तेङ के हवाले से खबर दी थी कि जापान की डेमोक्रेटिक सोशलिस्ट पार्टी के एक प्रतिनिधिमंडल के साथ भेंट में श्री तेङ ने स्पष्ट कहा कि चीन राजनैतिक दृष्टि से स्थिर और संयुक्त है. उन का कहना था कि पार्टी की केंद्रीय समिति श्री हुआ के नेतृत्व में एक है और देश के कृषि, उद्योग, रक्षा को आधुनिक रूप दे रही है.

लेकिन उधर कुछ सूत्रों से समाचार मिले कि पीकिङ में कोई 10 हजार लोगों ने एकत्र हो कर 'चीन के लोगों के लिए अधिक लोकतंत्र' और 'हम सामंतवादी तानाशाही के खिलाफ' हैं आदि जैसे नारे लगाये. कहा जाता है कि अप्रैल 1976 में जिस प्रकार के प्रदर्शनों से उप-प्रधानमंत्री तेङ और उन के अन्य कम्युनिस्ट साथियों को अपदस्थ किया था उसी प्रकार का यह प्रदर्शन पहली बार पीकिङ में देखने को मिला.

पीकिङ की दीवारों पर पार्टी नेतृत्व के विरुद्ध नारों के कुछ पोस्टर भी देखे गये हैं. समाचारपत्रों में भी इसी प्रकार के कुछ समाचार देखने को मिले हैं. इस तरह के समाचार चीन के समाचारपत्रों में भी देखने को मिलने लगे हैं. इन से संकेत मिलता है कि चीन में मुद्रास्फीति, बेरोजगारी, अपराध, उच्चस्तर पर भ्रष्टाचार आदि सभी बुराइयाँ मौजूद हैं. पोस्टरों और समाचारपत्रों आदि से स्पष्ट है कि चीन की जनता भाषण और लिखने आदि जैसी स्वतंत्रताओं की माँग कर रही है. इस के लिए आंदोलन की शुरुआत भी हो चुकी है.

स्वतंत्रता और सत्ता संघर्ष : कुछ समाचारों में बताया गया था कि चीन के प्रधानमंत्री के रूप में श्री तेङ हुआ का स्थान लेने वाले हैं. लेकिन यह स्पष्ट नहीं था कि क्या श्री हुआ पार्टी के पद से भी हट जायेंगे. चीन के नेतृत्व में इस सत्ता-संघर्ष का संकेत तेङ समर्थक पोस्टरों और प्रचार सामग्री से मिलता है जो अब पीकिङ की दीवारों पर चिपकाये गये हैं और जनता में बाँटे गये हैं. इस से पहले तेङ के समर्थन में प्रदर्शन आदि भी किये गये थे. पार्टी में उग्रवादी तत्त्वों के सफाये के सिलसिले में दो बार श्री तेङ को निकाला जा चुका है. लेकिन अब फिर उन का समर्थन होने लगा है. माओ ने अपने उत्तराधिकार के रूप में श्री हुआ को चुना था और इस के फलस्वरूप सितंबर 1976 में माओ की मृत्यु के बाद श्री हुआ ने चीन का सर्वोच्च पद प्राप्त किया. फिर जुलाई 1977 में श्री तेङ को पार्टी में उन के पद-पर पुनः स्थापित कर दिया गया

था और उन्हें उपप्रधानमंत्री का पद दिया गया. लेकिन श्री तेङ का खयाल है कि चीन के नेतृत्व में अब संशोधन होना चाहिए, क्योंकि माओ ने 84 वर्ष की अवस्था में अपनी बीमारी के समय कुछ उग्रवादियों के प्रभाव में आ कर इस तरह का निर्णय लिया था. चीन की राजनीति में इस समय माओ की विचारधारा के विरुद्ध आवाज काफी तेज सुनायी पड़ रही है और वर्तमान नेतृत्व को हटाने का आंदोलन जोर पकड़ता जा रहा है. दिलचस्प बात यह है कि पीकिङ की दीवारों पर आठ युवा चीनियों के हस्ताक्षरों से एक पोस्टर दिखायी पड़ा है जिस में कहा गया है कि 'अमेरिका पूँजीवादी देश होते हुए भी संसार का विकसित देश है. हालाँकि यह 200 वर्ष पुराना है लेकिन इस ने तेजी से विकास कर के दुनिया में अपना स्थान इसलिए बनाया कि वहाँ अंधविश्वास जैसी कोई चीज नहीं है.' इस प्रकार के पोस्टरों से स्पष्ट होता है कि चीन के चिंतन में कुछ ऐसी बातों का समावेश हो रहा है जो माओ की विचारधाराओं के बिल्कुल विरुद्ध हैं. लोकतंत्र और मानवीय अधिकारों की माँग बढ़ती जा रही है.

प्रचार और पोस्टर साहित्य में उन चीनी नेताओं की फिर से प्रशंसा होने लगी है जिन्हें किसी जमाने में माओ विरोधी होने के कारण क्रांति विरोधी बताया गया था. माओ के कम्युनिस्ट उपदेशों का नये सिरे से मूल्यांकन करने वाला आंदोलन पार्टी के भीतरी क्षेत्रों में भी प्रवेश कर गया है. कहीं कहीं इस प्रकार के पोस्टर भी देखने को मिले हैं जिन में स्पष्ट कहा गया है कि सभी तरह की तानाशाही और तानाशाहों के विरुद्ध चीनियों के विद्रोह करने का अब समय आ गया है. इस में किसानों, मजदूरों, वैज्ञानिकों, लेखकों, प्रोफेसरों, पत्रकारों संक्षेप में समाज के सभी वर्गों से स्वतंत्रता का लक्ष्य प्राप्त करने की अपील की गयी है. स्वर्गीय माओ पर भी तरह तरह के आरोप लगाये गये हैं.

समीक्षकों का विचार है कि चीन की राजनीति में एक नयी शक्ति का उदय हो रहा है जिस में व्यक्तिगत स्वतंत्रता मूल अधिकारों, अंतरराष्ट्रीय न्याय और कुछ लोकतांत्रिक मान्यताओं का स्थान होगा. इस आंदोलन की एक महत्वपूर्ण दिशा व्यक्तिवाद का विरोध है. आंदोलनकर्त्ता स्पष्टतया ऐसी प्रणाली की माँग कर रहे हैं जिस में व्यक्तिवाद का कोई स्थान नहीं होगा. उधर कुछ पोस्टरों में माओ की प्रशंसा भी की गयी है. इन में कहा गया है कि यदि हम लोकतंत्र चाहते हैं तो हमें पहले प्रजातंत्री तानशाही लानी होगी. एक स्थान पर कहा गया है कि 'माओ महान् थे. स्वर्गीय प्रधानमंत्री चाउ एन-लाइ ईमानदार थे और वर्तमान अध्यक्ष हुआ बुद्धिमान व्यक्ति हैं. जो लोग इन का विरोध करते हैं वे चीन के लिए बुरे दिन ला रहे हैं.'

पार्टी पर नियंत्रण का प्रयत्न : हाङकाङ से प्राप्त एक समाचार के अनुसार श्री तेङ चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के पॉलित ब्यूरो पर पूर्ण नियंत्रण के लिए प्रयत्नशील हैं. कुछ समाचारों के अनुसार पॉलित ब्यूरो की एक बैठक जल्दी ही पीकिङ में होने वाली है जो राजनैतिक सिद्धांतों पर नये सिरे से विचार करेगी. बताया जाता है कि इस बैठक में हुआ के नेतृत्व को भी चुनौती दिये जाने की खबर है. बताया जाता है कि अनेक प्रांतों तथा स्थानीय संस्थाओं में भी श्री तेङ का प्रभाव बढ़ता जा रहा है. चीन के राजनैतक क्षेत्रों से यही आभास मिल रहा है कि श्री तेङ राष्ट्रीय नेतृत्व में परिवर्तन की माँग कर अपने को सर्वोच्च पद पर आसीन करने के लिए जीतोड़ कोशिश कर रहे हैं. चीन में सत्तासंघर्ष इस समय अपनी चरमसीमा पर है और इस का केंद्रबिंदु पार्टी की नीति निर्धारण संस्था 'पॉलित ब्यूरो' है जहाँ दोनों पक्षों के लोग अपना अपना प्रभाव और समर्थन बनाने के लिए बाहर से दबाव डाल रहे हैं.

विदेशनीति में परिवर्तन : पश्चिमी सूत्रों से यह भी खबर मिली है कि चीन ने उत्तर अतलांतिक संधि संगठन के कुछ सदस्य देशों को सूचित किया है कि वह मित्रता और परस्पर सहायता की सोवियत संघ से पिछले 30 वर्ष से चली आ रही संधि को रद्द करना चाहता है. ब्रूसेल्स में उत्तर अतलांतिक संधि संगठन परिषद् की बैठक में आये इन देशों के कुछ विदेशमंत्रियों ने यह खबर दी है. बताया जाता है कि चीन अगले वर्ष फरवरी तक इस संबंध में कोई निर्णय ले लेगा. परिषद् की बैठक में जिन व्यक्तियों ने अथवा राजनयज्ञों ने इस आशय का समाचार दिया है, वे अपना नाम बताना नहीं चाहते लेकिन इसे चीन की विदेशनीति में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन माना जा रहा है. यह भी दिलचस्प है कि चीन ने सोवियत संघ के बारे में अपने संबंधों की जानकारी पश्चिमी देशों के इस संधि संगठन को देनी शुरू कर दी है जिस से लगता है कि चीन अब पश्चिमी देशों के साथ सहयोग को सर्वोपरि मानता है.

लातीनी अमेरिका

सत्ता परिवर्त्तन के तरीके

24 नवंबर को बोलिविया की सशस्त्र सेनाओं ने राष्ट्रपति हुआन पेरेदा आसबुन के पहले सत्ता के पाये हिलाये और बाद में तख्ता पलट दिया. चार मास पूर्व राष्ट्रपति हूगो बांज़ेर के स्थान पर पेरेदा सत्तारूढ़ हुए थे. दरअसल, हुआन पेरेदा जिस तरह सत्ता में आये उस का देश के सभी लोगों ने विरोध किया. उन्हें बांज़ेर का विश्वासपात्र माना जाता था. पेरेदा को उन के ग्रामीण निवास-स्थान पर नज़रबंद कर दिया गया है और उन के स्थान पर जनरल डेविड पेडिल्ला आरासीबिया को कार्यकारी राष्ट्रपति चुना गया है. सत्ता में आने के बाद पेडिल्ला ने एक साल के भीतर लोकतंत्र बहाल करने का देश को आश्वासन दिलाया है. कुछ लोगों का मानना है कि इस क्रांति के बाद बोलिविया का एक बार फिर सही बोलिविया के तौर पर उदय हुआ है. दरअसल, पिछले कुछ सालों से राजनैतिक अस्थिरता इस प्रकार रही है जो 153 वर्ष पहले स्वाधीन हुए बोलिविया (क्षेत्रफल, 424,162 और जनसंख्या : 54,70,000–1974 का आंकड़ा) में भी नहीं थी.

अप्रिय निर्णय : राष्ट्रपति पेरेदा की स्थिति कभी भी दृढ़ नहीं रही. उन्हें बेरंग और बदरंग वायुसेना अधिकारी के तौर पर जाना जाता रहा है. लिहाज़ा राष्ट्रपति बांज़ेर ने उन से गृह-मंत्रालय ले लिया. जब उन्हें जुलाई में राष्ट्रपति पद के चुनाव के लिए खड़ा किया तो विरोध उसी दिन शुरू होगया था. पेरेदा सर्वमान्य उम्मीदवार नहीं थे लेकिन बांज़ेर चाहते थे कि सत्ता में न रहते हुए भी उन का परोक्ष रूप से सत्ता पर अधिकार बना रहे. अनुशासन के नाम पर तब तो पेरेदा विरोधी कुछ नहीं बोले लेकिन उन के राष्ट्रपति बनने के बाद विरोध निरंतर बढ़ने लगा. उस विरोध को दबाने के लिए उन्होंने बांज़ेर को आर्हेंतीना में राजदूत नियुक्त कर के भेज दिया. अगस्त में उन्होंने एक सर्वसैनिक काबीना का गठन किया. इस से विरोधियों का विरोध और बढ़ गया और उन्होंने जो राष्ट्रीय सरकार की माँग की थी उस की पेरेदा ने अवहेलना कर दी. नवंबर के शुरू में यह भी घोषणा कर दी गयी कि 1980 से पहले राष्ट्रपति का चुनाव नहीं होगा. लेकिन सेनाध्यक्ष जनरल डेविड पेडिल्ला को राष्ट्रपति पेरेदा की नीतियाँ नागवार गुज़रीं. उन्होंने उन्हें सत्ता से हटाने की जो योजनाएँ बनायीं उन्हें सफलता मिली. सत्तापलट का प्रतिपक्षी नेताओं ने भी स्वागत किया. उन्होंने पेडिल्ला को अपना पूरा सहयोग और समर्थन देने का आश्वासन दिलाया. यदि पेडिल्ला पर कुछ बाहरी शक्तियों का दबाव नहीं पड़ता और अपने वायदे के अनुसार वह चुनाव कराने में समर्थ हो जाते हैं तो उन्हें देश की प्रतिपक्षी पार्टियों का भी सहयोग मिल सकता है : कम से कम शांति और सुरक्षा तो बनी ही रह सकती है.

चुनावपूर्व प्रसन्नता : जनरल पेरेदा राष्ट्रपति चुने जाने से पूर्व ही अपनी जीत के बारे में इतने आश्वस्त थे कि उन्होंने कई तरह के फैसले ले डाले. उन की पत्नी इस विशेष अवसर के लिए 'नये' राष्ट्रपति के उद्घाटन

के अवसर पर पहने जाने वाली विशेष पोशाक बनवाने के लिए लंदन चली गयीं. यह भी तय कर दिया गया कि उन के महल का रंग कैसा होगा. लेकिन चुनाव से पहले ही गड़बड़ी हो गयी. जब मतों की गिनती हुई तो पेरेदा जीत नहीं पाये. मतों में इतना अंतर था कि निर्वाचन अधिकारी भी उन्हें विजयी नहीं घोषित कर पाये. उस के बाद कई तरह की जोड़तोड़ हुई, जिस के फलस्वरूप जनरल पेरेदा ने पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार सत्ता हथिया ली और अपने आप को राष्ट्रपति घोषित कर दिया. लोगों ने इस फैसले को स्वीकार नहीं किया. लेकिन राजनैतिक हवा में लोकतंत्र की गंध आ रही थी और लोग निरंकुशता और सैनिक अधिनायकवाद से मुक्ति के लिए छटपटाने लगे थे. अमनेस्टी इंटरनेशनल ने अपनी रपट में भी बोलिविया के राजनैतिक बंदियों पर होने वाले अत्याचारों का ब्यौरा प्रकाशित किया और यह भी कहा था कि मानवाधिकारों का वहाँ पर खुले रूप में उल्लंघन हो रहा है. लोकतंत्र चाहने वालों को शायद यह विश्वास था कि बोलिविया में लोकतंत्र की बयार का मकसद उस का दूरगामी प्रभाव है अर्थात् पेरू, इक्वाडोर और यहाँ तक कि चीले और आर्हेंतीना में भी इस का असर पड़ सकता है. लेकिन तब जुलाई में लोकतंत्र की इस गंध को बोलिविया से बाहर नहीं निकलने दिया गया और बांज़ेर, जिन्होंने सात वर्ष तक देश में शासन किया था, एक बार फिर अपनी मनमर्ज़ी के उम्मीदवार पेरेदा को अपना उत्तराधिकारी बनाने में सफल हो सके. लेकिन लगता है कि जनमत के मन की बात पेरेदा के विरोधियों तक भी पहुँच गयी थी जो उन्हें राष्ट्रपति बनाये जाने का विरोध करते रहे. देखना यह है कि नये राष्ट्रपति पेडिल्ला किस प्रकार जनमत का सहयोग प्राप्त करते हुए अगले वर्ष तक उन की आकांक्षाओं की पूर्त्ति करते हैं यानी लोकतंत्र बहाल करने में सफल होते हैं.

बोलिविया के अलावा लातीनी अमेरिकी देशों में संपन्न देश **वेनेज़ुएला** (क्षेत्रफल : 3,52,143 वर्गमील और जनसंख्या : 1,16,30,000—1974 का आँकड़ा) में भी सत्ता परिवर्तन हुआ. सत्तारूढ़ डेमोक्रेटिक एक्शन पार्टी ने अपनी हार स्वीकार करते हुए **लुई हेरेरा कैंपिस** को नया राष्ट्रपति स्वीकार कर लिया. वेनेज़ुएला तेल और प्राकृतिक गैस से संपन्न देश है और संपन्नता के साथ साथ वहाँ पर राजनैतिक स्थिरता भी बनी हुई है. इसी राजनैतिक स्थिरता के कारण सत्ता का परिवर्तन बिना किसी खूनखराबे और क्रांति के हो सका. जहाँ बोलिविया में बांज़ेर और जनरल पेरेदा ने जनमत की अवहेलना की वहाँ वेनेज़ुएला में सत्तारूढ़ पार्टी ने जनमत का फैसला स्वीकार करते हुए अपनी पराजय मानने में लज्जा महसूस नहीं की.

ऑस्ट्रेलिया

भूमि नष्ट: समाज नष्ट

न्याय और शांति के कैथलिक आयोग ने एक विज्ञप्ति जारी कर के ऑस्ट्रेलियाई आदिवासियों के साथ हुए दुर्व्यव्हार की कड़े शब्दों में निंदा की है. इस के साथ ही आयोग ने इन आदिवासियों की भूमि अधिकारों संबंधी माँग का समर्थन भी किया है. सामाजिक और राजनैतिक मामलों पर विचार करने के लिए इस आयोग की नियुक्ति ऑस्ट्रेलियाई कैथलिक पादरियों द्वारा की जाती है.

विज्ञप्ति पर अपनी खुशी जाहिर करते हुए **क्वींसलैंड** के लिबरल सेनेटर **नेविल बॉनर** ने इसे अपने लोगों के बारे में अब तक का सब से जीवंत और आधिकारिक मसौदा बताया है. उन्होंने कहा है कि विज्ञप्ति को 1400 कैथलिक चर्चों तथा कैथलिक माध्यमिक स्कूलों में वितरित किया जायेगा और यदि संभव हुआ तो इसे 15 वर्ष से बड़े हर नागरिक के लिए अनिवार्य पाठन सामग्री बनाया जायेगा.

विज्ञप्ति में कहा गया है कि आदिवासी समाज में विध्वंस का प्रमुख कारण उन के भूमि अधिकार को छीनना है. जिस भद्दे ढंग और हिंसा के साथ उन की जमीनें ली गयीं, वह काफी दुर्भाग्यपूर्ण है. आयोग ने इस क्रूर तरीके की नात्सियों के व्यवहार से तुलना करते हुए इसे कठोर युद्ध अपराध की संज्ञा दी है.

'रिज़र्व' बनाम बंदीग्रह: हालाँकि इन आदिवासियों हेतु कुछ भूमि 'रिज़र्व' के रूप में रखी गयी थी. परंतु उस में से भी अधिकांश भाग श्वेत जनसंख्या की माँग पर औद्योगिक और खनिज विकासकार्यों के अंतर्गत छीन लिया गया. आयोग के अनुसार इन आदिवासी 'रिज़र्वों' को बंदीगृह कहना ज्यादा उपयुक्त होगा क्योंकि 1971 तक रिज़र्व से बाहर जाना क्वींसलैंड कानून में अपराध माना जाता था. यह भी मालूम हुआ कि आदिवासी भूमि ट्रस्टों को बहुत कम राजनैतिक और आर्थिक अधिकार प्राप्त थे. दूसरी ओर ऐसे भी लोग थे जिन्हें न केवल साधारण अधिकार प्राप्त थे बल्कि वे कानून तोड़ने या उस की अपने पक्ष में व्याख्या करने को भी सक्षम थे.

आयोग के शब्दों में, "इतिहास तो बदला नहीं जा सकता, लेकिन धोखाधड़ी से ज़मीन पर कब्ज़ा कर आर्थिक विकास के मज़े लूटने वाला यह ऑस्ट्रेलियाई समाज बेशर्मी से आदिवासियों की उचित मुआवज़े की जायज़ माँग को नहीं दबा सकता. चर्च को भी ऐसी स्थिति में आदिवासियों का पूरा साथ देना चाहिए और इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वित्तीय लाभ के नाम पर मानवाधिकारों का हनन न किया जाये. आदिवासियों की भूमि अधिकार या बदले में उचित हर्ज़ाना प्राप्त करने की माँग को लेकर जो चुनौती बनी हुई है, उसे मामूली नहीं समझना चाहिए और उस में आदिवासी ही नहीं, पूरा ऑस्ट्रेलियाई समाज शामिल है. यह भूमि लौटाना, नयी भूमि देना अथवा मुआवज़ा देने का काम आसान भी नहीं है. लेकिन इस का अर्थ यह नहीं है कि आदिवासियों के साथ नाइंसाफी की जाये." आयोग ने इस संदर्भ में कैनाडा और न्यूज़ीलैंड के उदाहरण प्रस्तुत करके मुआवज़े के काम को आसान बनाने का रास्ता भी सुझाया है.

कैथलिक आयोग के सहसचिव, **क्रिस सिदोती** ने बताया कि आयोग रपट पर पिछले एक साल से विचार कर रहा था. 12 सदस्यीय आयोग ने जानकारी हासिल कर एक मसौदा
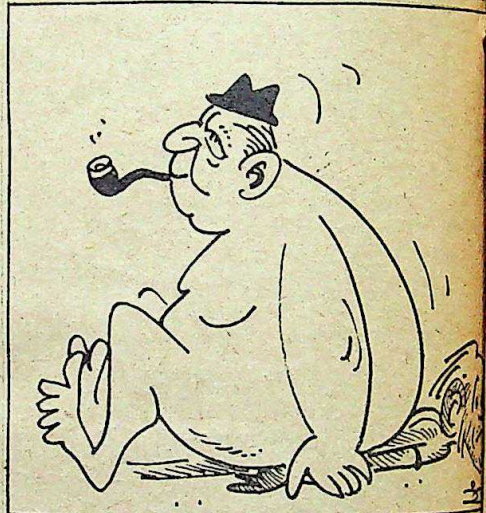
बनाया जिसे उचित टिप्पणियों सहित वितरित किया गया. टिप्पणियाँ आदिवासियों से खास तौर पर माँगी गयी थीं. मई में एक और मसौदा ऑस्ट्रेलिया के 42 कैथलिक पादरियों में बाँटा गया. इस की एक प्रति संघीय सरकार को भी भेजी गयी थी, लेकिन अभी तक वहाँ से कोई प्रतिक्रिया प्राप्त नहीं हुई है.

पहले पहल: ऑस्ट्रेलिया में यह आदिवासी सब से पहले अब से 20 हजार वर्ष पूर्व आये थे. कहा जाता है कि ऑस्ट्रेलिया की धरती पर कदम रखने वाले संभवत यह पहले आदमी थे. इस के बाद यह धीरे धीरे समूचे महाद्वीप में फैल गये. 1788 में जब प्रथम श्वेत उपनिवेशवादी आये तब तक इन आदिवासियों का पूरे ऑस्ट्रेलिया पर अधिकार हो चुका था.

पिछले 20 हजार सालों के दौरान आदिवासियों में कोई खास परिवर्तन नहीं आया है. 1788 तक मूलत: वे जंगली ज़िंदगी बसर करते रहे. दूसरी ओर इतने सालों में भूमि में काफी बदलाव आये. विशाल समुद्र अनेक स्थानों पर सूख कर नमक में परिवर्त्तित हो गये. ज़मीन के आकार और जलवायु में समय समय

पर हुए विभिन्न परिवर्तनों से पूरे वातावरण में रद्दोबदल हुई. आदिवासियों के समूहों में भी परिवर्तन आये. खास तौर से उन की भाषा, संस्कृति और आदतें काफी बदलीं. पर मूलत: वह समान ही रहे. उन्होंने अपनी ज़मीन को नहीं छोड़ा. इस से न केवल वे भोजन और पानी प्राप्त करते थे बल्कि अपनी संस्कृति सहेजे रखने के लिए एक खास समर्थन भी उन्हें भूमि से मिलता था.

व्यक्तिगत लाभ नहीं : भूमि से कोई व्यक्तिगत लाभ उठाने का विचार उन्हें कभी नहीं आया, न ही उन्होंने ज़्यादा भूमि प्राप्त करने की ही कभी कोशिश की. पर इस के साथ ही ज़मीन को छोड़ना, दूसरों को बाँटना या इसी तरह का कोई अन्य कार्य ये वंशहत्या के बराबर समझते थे. आदिवासी लोग एक स्थान से दूसरे स्थान तक भी जाते थे और इस तरह ज़मीन भी एक से दूसरे हाथों में जाती रहती थी. लेकिन इस कार्य में देर लगती थी और आदिवासी लोग अपनी पुरानी संस्कृति बनाये रखते थे. दूसरी ओर 1788 में बाहरी लोगों के आगमन के बाद से ज़मीन का इतना ज़्यादा और इतने रूपों में इस्तेमाल हुआ कि एक अलग संस्कृति बचाये रखने को ज़मीन नहीं रह सकी और इन 'अजनबी' लोगों की ही संस्कृति चारों ओर की भूमि पर फैल गयी. आदिवासियों को पूरी उम्मीद है कि इस विजातीय संस्कृति का रुख एक दिन जल्दी ही विपरीत दिशा की ओर बदलेगा.

गवर्नर फिलिप के आगमन के समय आॅस्ट्रेलिया में आदिवासियों की जनसंख्या 3,00,000 थी.

प्रकृति प्रेम : आदिवासियों को प्रकृति से विशेष प्रेम है. वे न केवल स्वयं को बल्कि हर चीज़ को प्रकृति का ही एक हिस्सा समझते हैं. पृथ्वी पर हर वस्तु में उन्हें मानवता दिखायी देती है. हर वस्तु को प्राकृतिक मानने के पीछे आध्यात्मिक रिश्ता भी जुड़ा है. वे आध्यात्मिक स्थलों की पूजा भी करते हैं. यह कार्य वे बाकायदा तैयारी के साथ नाच गा कर करते हैं. उन का विश्वास है कि किसी क्षेत्र में रहने वाले आदमी उसी क्षेत्र का एक भाग है. यदि वह क्षेत्र नष्ट होता है तो वहाँ के आदमी भी नष्ट हो जाते हैं.

जैसा कि स्वाभाविक भी है आॅस्ट्रेलिया के आदिवासियों के भूमि संबंधी विचार वहाँ के दूसरे लोगों से बिल्कुल मेल नहीं खाते. श्वेत लोग भूमि के निजी स्वामित्व के हिमायती हैं. उन के अनुसार वे जमीन खरीद भी सकते हैं और बेच भी. ज़्यादातर वे मकान बनाने या खेती करने हेतु थोड़े समय के लिए ही ज़मीन चाहते हैं. श्वेत लोग अधिकांशत: मृत्यु पूर्व अपनी भूमि अपने बच्चों को दे जाते हैं. बच्चे भी बड़े हो कर यही करते हैं. पर किसी भी समय, जब उन्हें पैसे की जरूरत हो या किसी दूसरे स्थान पर जाना हो, तो ज़मीन बेची जा सकती है. यह लोग ज़मीन खरीदते हैं, उस के बाद इस में खुदाई कर या इस पर उगे पेड़ों को भी काट कर बेचते हैं. इस के बाद ज़मीन अक्सर किसी मतलब की नहीं रह जाती. श्वेत लोगों के विचार से ज़मीन निजी संपत्ति है और मालिक उस का किसी भी रूप में इस्तेमाल कर सकता है.

ज़मीन का कुछ लोगों द्वारा सामूहिक इस्तेमाल और उस की देखरेख श्वेत लोगों के लिए एक अजूबा है. हालाँकि वे महसूस करने लगे हैं कि इस तरह के सामूहिक इस्तेमाल से भूमि खराब नहीं होती है और उस का आसानी से फिर से इस्तेमाल भी हो सकता है.

आत्मा और भूमि: आदिवासियों को सब से ज़्यादा डर भूमि के नष्ट करने से लगता है. वे सोचते हैं कि यदि भूमि नष्ट हो जायेगी तो वे भी नष्ट हो जायेंगे. आदिवासी कुल के सभी सदस्य अपनी इस सदस्यता को जीवन भर बरकरार रखते हैं, बल्कि वास्तव में उस के बाद भी. एक आदिवासी की आत्मा और उस की जमीन का संबंध चिरस्थायी माना जाता है.

इस प्रकार यह आदिवासी इकाइयाँ ज़मीन के खास टुकड़ों के साथ एक नज़दीकी आध्यात्मिक संबंध बनाये हुए हैं. उन का धर्म और पुराणशास्त्र उन्हें सिखाते हैं कि ज़मीन के कुछ खास हिस्से उन्हें या उन के पूर्वजों को 'स्वप्नकाल' में दिये गये हैं.

आदिवासियों और उन की भूमि के बीच इस तरह के संबंध के बावजूद, यह जानने के बावजूद भी कि इन लोगों का ज़मीन से ऐसा नज़दीकी रिश्ता रहने पर ही उन की संस्कृति सफलता से कायम रही, ऐसे लोगों की कमी नहीं जो सिर्फ धन कमाने और अल्पकालीन लाभ उठाने की खातिर भूमि संबंधी पुरानी मान्यताओं को तोड़ रहे हैं. लेकिन इस से भूमि के बंजर और कलंकग्रस्त होने के अलावा कुछ हासिल नहीं होगा. —माइक फ्रांसिस

सोवियत संघ-अफगानिस्तान

एक और मैत्री संधि

5 दिसंबर को मस्क्वा में सोवियत संघ के राष्ट्रपति लियोनिद ब्रेज़नेव और अफगानिस्तान के राष्ट्रपति नूर मोहम्मद तराकी ने मैत्री, परस्पर सहयोग और अच्छे पड़ोसियों के संबंधों के बारे में एक दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर किये. दोनों ही नेताओं ने इसे एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ बताते हुए कहा कि इस से दोनों देशों में समानता, राष्ट्रीय प्रभुसत्ता, क्षेत्रीय अखंडता और एक दूसरे के भीतरी मामलों में हस्तक्षेप न करने के आधार पर मैत्री का विकास होगा. आर्थिक, वैज्ञानिक और तकनीकी सहयोग को बढ़ावा देते हुए उद्योग, परिवहन और संचार के क्षेत्रों में परस्पर सहयोग में वृद्धि की जायेगी. सोवियत संघ ने अफगानिस्तान को कृषि तथा प्राकृतिक साधनों के इस्तेमाल, विद्युत उत्पन्न करने के तरीके में सहयता देने के बारे में आश्वासन दिलाया. इस बात का भी यकीन दिलाया कि अफगानिस्तान की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास के लिए वहाँ के नागरिकों को उचित प्रशिक्षण दिया जायेगा. संधि में इस बात पर भी बल दिया गया कि दोनों देशों की सुरक्षा, स्वाधीनता और क्षेत्रीय अखंडता की किसी प्रकार की अवमानना या अवहेलना नहीं की जायेगी. प्रतिरक्षा के क्षेत्र में भी परस्पर संबंधों के विकास पर बल दिया गया है. अफगानिस्तान गुटनिरपेक्ष देश है. इस बात को सोवियत संघ ने स्वीकारा और उस की इस नीति का समर्थन किया. अफगानिस्तान ने भी स्पष्ट कर दिया कि वह किसी प्रकार के सैनिक संगठन का सदस्य नहीं बनेगा. वह अंतरराष्ट्रीय शांति और लोगों की समृद्धि और सुरक्षा के लिए न तो किसी प्रकार की तनावपूर्ण स्थितियाँ स्वयं तैयार करेगा और न ही ऐसी स्थितियाँ पैदा करने वालों को ही सहयोग देगा. दोनों देशों ने अंतरराष्ट्रीय नियंत्रण में
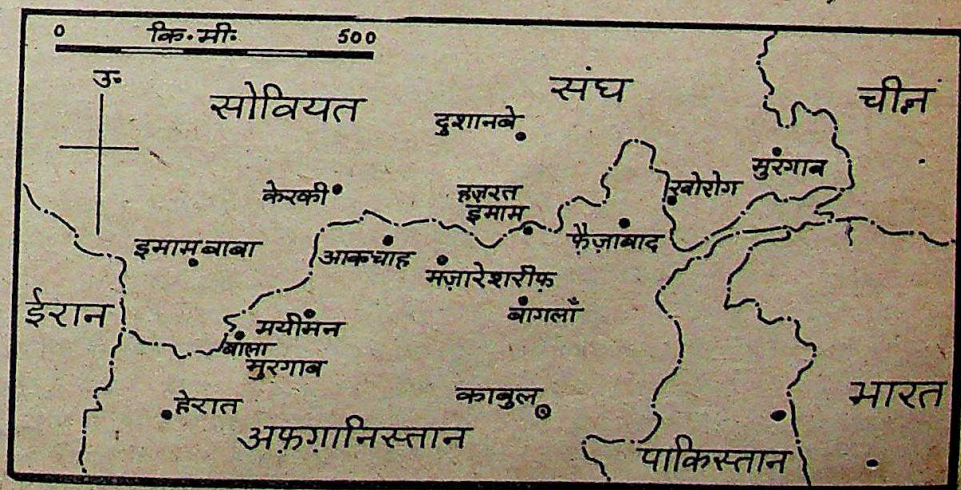
पूर्ण निरस्त्रीकरण पर बल दिया. दोनों देश उपनिवेशवाद और नस्लवाद के विरुद्ध हैं और उन्होंने उन सभी स्वाधीनता संघर्षों का समर्थन किया जो अपने लोगों की आज़ादी, प्रभुसत्ता और सामाजिक प्रगति के कार्य में जुटे हुए हैं.

समान दृष्टिकोण पर बल : सोवियत संघ और अफगानिस्तान पड़ोसी देश हैं. आम तौर पर दोनों देशों के संबंध सामान्य रहे हैं. राष्ट्रपति ब्रेज़नेव ने अफगानिस्तान में ही कभी एशियाई सुरक्षा संबंधी नारा दिया था. उन का यह मानना है कि अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की दिशा में—खास तौर पर एशिया में—अफगानिस्तान एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है. जब से नूर मोहम्मद तराकी सत्तारूढ़ हुए हैं सोवियत संघ और अफगानिस्तान में परस्पर सद्भावना बढ़ी है. सत्तारूढ़ होने के बाद तराकी की यह पहली विदेश यात्रा थी. मैत्री संधि पर हस्ताक्षर के बाद नूर मोहम्मद तराकी ने जब कहा कि दोनों ही देश अंतरराष्ट्रीय समस्याओं में

नूर मोहम्मद तराकी और लियोनिद ब्रेजनेव : भाईचारे की व्याख्या

समान भूमिका अदा करने के पक्ष में हैं और उन की यह भूमिका किसी तीसरे देश के विरुद्ध नहीं है, तो इन शब्दों की कई तरह से व्याख्या की गयी.

अफगानिस्तान के पड़ोसी देशों में ईरान और पाकिस्तान हैं. ईरान में इस समय 'गृहयुद्ध' जैसी स्थिति है जिस की कई तरह से व्याख्या हो रही है. इन तीनों देशों की सीमाओं पर पख्तून और बलूच रहते हैं जो समय-समय पर सीमाओं का अतिक्रमण करते रहते हैं. उन की इस तरह की स्थिति पर ईरान और पाकिस्तान दोनों में प्रतिक्रियाएँ होती रहती हैं. पाकिस्तान के प्रतिपक्षी नेता खान वली खाँ ने भी पिछले दिनों पख्तूनों को संघर्ष का रास्ता अख्तियार करने के लिए कहा था. ईरान की घटनाओं को देखते हुए ही शायद उन्होंने ऐसा आवाहन किया था. इस वक्तव्य को ले कर अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में प्रतिक्रिया हुई. जब अफगानिस्तान में मोहम्मद दाऊद का तख्ता पलटा गया था और तराकी सत्तारूढ़ हुए थे तब भी सोवियत संघ का नाम उछाला गया था. कुछ लोगों का यह भी मानना है कि ईरान और पाकिस्तान के पख्तूनों और बलूचों में असंतोष को बढ़ावा देने के पीछे भी किन्हीं विदेशी शक्तियों का हाथ है.

लेकिन जहाँ तक सोवियत संघ का संबंध है वह इस तरह की धारणा को शरारतपूर्ण मानता है. उस का तर्क है कि चीन को डर है कि एशिया पर यदि सोवियत संघ का फैलाव बढ़ता गया तो इस क्षेत्र में उस का दबदबा खत्म हो जायेगा. पिछले दिनों जब वीएतनाम के प्रधानमंत्री फाम वान डाङ ने सोवियत संघ की यात्रा कर नवंबर '78 को मैत्री संधि पर हस्ताक्षर किये तो भी चीन में उस पर तीखी प्रतिक्रिया हुई थी. चीन और वीएतनाम में तनाव बना हुआ है. पहले यह तनाव अप्रत्यक्ष तौर पर था अर्थात् बरास्त कंबोदिया. उस के बाद वीएतनाम में अप्रवासी चीनियों के निष्कासन (इसे पलायन भी कहा जाता है) शुरू हुआ तो प्रत्यक्ष तौर पर वीएतनाम और चीन में ठन गयी. कुछ विश्लेषणकर्त्ता इसे अप्रत्यक्ष तौर पर सोवियत संघ और चीन में तनाव का गहराना मानते हैं.

चीनी नेताओं की यात्रा : अपनी इस स्थिति को दृढ़ बनाने की गर्ज़ से चीन के नेताओं ने दक्षिणपूर्व एशियाई देशों की यात्रा कर अपनी मैत्री की दुहाई दी. चीन के उपप्रधानमंत्री तेङ हिसाओ पिङ ने बर्मा और नेपाल की यात्रा की तो ली हीनेन-नीएन ने फिलिपीन और बंगलादेश की. केङ पिआओ पाकिस्तान और श्रीलंका के दौरे पर गये. इन सभी नेताओं ने अपने वक्तव्य में भाईचारे और अच्छे पड़ोसियों के संबंधों की बात की और इस के साथ यह भी कहा गया कि ये संबंध शांतिपूर्ण सहअस्तित्व और एक दूसरे के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने पर आधारित होने चाहिए. लगभग इसी तरह की [illegible] सोवियत संघ के मैत्री संबंधी समझौते में भी प्रयोग की जाती है. लेकिन सोवियत संघ इस के आगे भी कई तरह की सहायता देने के साथ साथ संबंधों की व्यापकता पर बल देता है.

अन्य देशों से समझौते : इसी तरह का समझौता रूस ने इथियोपिया से भी पिछले दिनों किया था. ऐसे ही समझौते सोवियत संघ मिस्र और भारत से भी कर चुका है. इस से बड़ा और व्यापक समझौता उस ने कभी चीन से किया था जो सिद्धांततः अभी भी दोनों देशों में है.

जहाँ पहले मिस्र और सोवियत संघ में मैत्री समझौता भंग हो चुका है चीन के साथ अब भंग होने के समाचार हैं. भारत के साथ कमोबेश यह समझौता चलता आ रहा है. 1971 में भारत के लिए यह समझौता शायद ज़रूरी था. लेकिन उस के बाद की स्थितियाँ और सरकार में परिवर्त्तन के बाद इस समझौते पर तटस्थ रवैया अपनाया जा रहा है.

कुछ समय से एशियाई और अफ्रीकी देशों में सोवियत संघ को जिस तरह कूटनीतिक सफलता प्राप्त हो रही है उस से निस्संदेह पश्चिमी देश नये सिरे से अपनी कूटनीतिक गतिविधियों को तरतीब देने में जुटे हुए हैं. चीन भी धीरे धीरे पश्चिमी लीकों का अनुसरण कर रहा है. वह केवल उन देशों से प्रौद्योगिकी जानकारी ही प्राप्त नहीं करता, बल्कि सोवियत संघ के विरुद्ध एक तरह की कूटनीतिक मोर्चेबंदी में भी उन का साथ दे रहा है.

सोवियत संघ, चीन और अमेरिका की एशिया के संदर्भ में कुछ इस तरह की नीति है कि वे अपना अपना दबदबा और प्रभाव क्षेत्र विकसित करें. जापान और चीन की मैत्री संधि को उसी नीति का ही एक भाग माना जा रहा है.

लेकिन मस्क्वा-काबुल की वर्त्तमान धुरी का प्रभाव केवल अफगानिस्तान तक ही नहीं बल्कि एशिया के काफी बड़े देशों पर पड़ने की संभावना है: ईरान, पाकिस्तान, भारत और बंगलादेश एक तरफ आते हैं तो दूसरी ओर वीएतनाम, कंबोदिया आदि आते हैं. वीएतनाम द्वारा एसियान देशों से आर्थिक संबंधों की बढ़ोत्तरी का मकसद भी परोक्ष रूप से सोवियत संघ के हितों का पोषक माना जा रहा है. सोवियत संघ के इस बढ़ते हुए दबदबे और रुतबे को नियंत्रित करने की जुगाड़ में चीन तथा अमेरिका लगता है जुट गये हैं. भूतपूर्व अमेरिकी विदेशमंत्री डॉ. हेनरी कीसिंगर की प्रस्तावित चीन यात्रा को राजनयिक प्रेक्षक इसी संदर्भ में देखते हैं.

दुनिया भर की

आग से परीक्षण

अमेरिकी वैज्ञानिकों ने एक ऐसी सामग्री ईजाद की है जिस पर अग्नि अपना असर नहीं कर सकती. कैल्सियस नामक इस पदार्थ का इस्तेमाल अब अंतरिक्ष यानों में प्रयुक्त बिजली की तारों को ढँकने के लिए किया जा रहा है. कैल्शियस से शरीर के किसी अंग को यदि ढक दिया जाये तो आग लगने पर भी उस पर कोई असर न होगा और शरीर का वह हिस्सा ठंडा और किसी प्रकार की क्षति से अछूता रहेगा.

कृतज्ञ प्राणी

पश्चिम जर्मनी के 15 वर्षीय स्कूली छात्र रेने गैसनेर को एक दिन जंगल में पाँच ऐसे किंग फिशर के शिशु अचानक मिल गये जो मौत से जूझ रहे थे. निशिचत ही वह अपनी जननी द्वारा परित्यक्त थे. रेने उन को उठा कर घर ले आया. उन्हें मछलियों के टुकड़ों पर पाला. अब वे अपने रक्षक के इतने वफादार हो गये हैं कि उस की बाहों पर फुदक कर बैठने में उन्हें बड़ा मज़ा आता है. जर्मनी में अब यह चिड़िया बहुत कम नज़र आती हैं और आम तौर पर उन का निवास नदी के किनारे होता है, जहाँ वे मछली पर गुज़ारा करती हैं.

जल के नीचे की फसल

खेती करने के लिए हल चलाने और सिंचाई करने की आवश्यकता होती है. लेकिन अब भूमिगत खेतों की कल्पना साकार हो गयी है. ज़हाँ जल कृषि के ज़रिए भरपूर फ़सल पैदा की जा सकती है और जिस के लिए न तो हल चलाने की ज़रूरत पड़ती है और न ही सिंचाई करने की. रूस के प्राईमोर्चे क्षेत्र में स्थित मिनोनोसोक झील में ऐसा ही एक भूमिगत खेत है, जहाँ सीपियाँ प्रचुर मात्रा में होती हैं. ऐसे अन्य खेतों में समुद्री मछलियों और वनस्पति की फसलें भी होती हैं. यह बात साबित हो चुकी है कि इन जलमग्न फार्मों में, समुद्र के अन्य भागों की तुलना में, पाँच हजार गुना अधिक मछलियाँ पैदा होती हैं. जलकृषि फार्मों की उपज में लगातार वृद्धि हो रही है और संयुक्त राष्ट्र विशेषज्ञों का अनुमान है कि 1980-85 तक जलकृषि का उत्पादन दो करोड़ टन तक पहुँच जायेगा.

दुनिया घूमती रहती है

1851 में भौतिक शास्त्री लिओफोकाल्ट के भूमि के खिसकने की गति पर शोध करते हुए एक विशाल गोले का निर्माण किया था. उसी का एक प्रारूप अब माइकल पैंट्स और कैनन जॉन कालिस ने सेंट पाल्स कैथीड्रल में तैयार किया जो मूल गोले से 48 फुट बड़ा है. 150 पाउंड वज़नी 260 फुट का यह लोहे का गोला रेन के गुंबद से लटका दिया गया है और वह हमेशा हिलता रहता है. गोले के नीचे एक कील लगी हुई है जो नीचे के रेतीले परत पर निशान करती रहती है और भूमि की गति में जो भी परिवर्त्तन होते हैं उन का पता चलता रहता है.
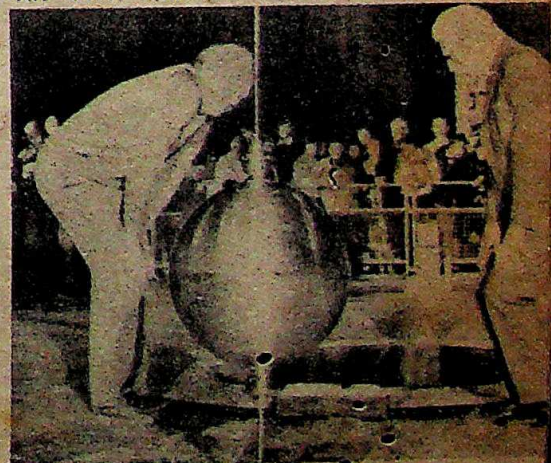
नेहरू हाकी : आखिरी मिनट का एक गोल

मानना होगा कि इस वर्ष 15 वीं नेहरू हाकी प्रतियोगिता का रंग कुल मिलाकर काफ़ी फीका रहा. एक ओर तो बैंकाक में होने वाले एशियाई खेलों में भाग लेने वाले देश के चोटी के खिलाड़ी प्रशिक्षण शिविर में व्यस्त होने के कारण इसमें भाग नहीं ले सके, दूसरी ओर इस बार विदेश से भी कोई बहुत अच्छी या बहुत ज्यादा टीमें इसमें भाग लेने के लिए नहीं आयी. ले दे कर केवल एक युगोस्लाविया की टीम ने ही भाग लिया.

सारी प्रतियोगिता के दौरान दर्शकों की उपस्थिति भी बहुत उत्साहवर्द्धक नहीं थी. हां, फाइनल के दिन ज़रूर शिवाजी स्टेडियम ठसाठस तो नहीं पर थोड़ा भरा भरा ज़रूर दीख रहा था.

जालंधर की टीमों का फाइनल : इस बार फाइनल में जालंधर की ही दो टीमों (सीमा सुरक्षा दल और पंजाब पुलिस) के बीच मुकाबला हुआ. मानना होगा कि कुल मिलाकर फाइनल मुकाबला भी बहुत नीरस रहा. दोनों टीमों के खिलाड़ी एक दूसरे के खेल से बखूबी परिचित थे और वे अधिकांश समय तक गेंद को एक छोर से दूसरी छोर की ओर ही भेजते रहते. पूर्वार्द्ध में हालांकि सीमा सुरक्षा दल को दो पेनल्टी कार्नर और दो लांग कार्नर मिले जब कि पंजाब पुलिस को केवल एक लांग कार्नर मिला लेकिन कोई भी टीम इन अवसरों का लाभ नहीं उठा सकी और पूर्वार्द्ध में दोनों टीमें गोल रहित रहीं.

ज्यादातर लोगों का यही कहना था कि जिस अनाड़ी ढंग से खेल खेला जा रहा है उसमें मैच बराबर होने ही की ज्यादा संभावना है. मध्यांतर में यह घोषणा कर दी गयी कि यदि निर्धारित समय में मैच बराबर रहा तो इस का फैसला 'टाई ब्रेकर' के आधार पर किया जायेगा. उस स्थिति में दोनों टीमें के कौन कौन से खिलाड़ी गोल करने के लिए बुलाये जायेंगे इसका निर्णय भी कर दिया गया था. पत्रकारों के कक्ष में बाकायदा उस सूची का वितरण भी कर दिया गया था जिसके अनुसार सुरक्षा दल की ओर से **तरसेम सिंह** (नं.–10) **भोपाल सिंह** (4), **मोहिंदर सिंह** (14) **अजीत पाल सिंह** (5) और **बलदेव सिंह** (3) तथा पंजाब पुलिस की ओर से **बलजीत सिंह** (14) **सुरजीत सिंह** (4), **गुरदीप सिंह** (9) **कुलदीप सिंह** (7) और **देवेंदर सिंह** (3) गोल करने वाले थे लेकिन वैसा मौका ही नहीं आया. हां, उत्तरार्द्ध के खेल में थोड़ी तेज़ी ज़रूर आयी. सीमा सुरक्षा दल के खिलाड़ी (सेंटर ऑफ—अजीप पाल सिंह, आउट साइड राइट सुरीन, आउट साइड लेफ्ट एक्का और सेंटर फारवर्ड अमरदीप) पंजाब पुलिस के गोल पर धावा बोलने लगे, लेकिन पंजाब पुलिस के रक्षकों ने उनकी सारी कोशिशों को बेकार कर दिया.

इस के बाद पंजाब पुलिस के खिलाड़ी हावी हो गये. कई बार वह गेंद को लेकर प्रतिद्वंद्वी की 'डी' तक पहुंचे भी. कई बार गोल होने के खतरे भी साफ दिखायी दिये लेकिन पंजाब पुलिस के खिलाड़ी कमज़ोर निशानेबाज़ी के कारण एन मौके पर चूक जाते. जैसे जैसे खेल समाप्त होने का समय नजदीक आता गया वैसे वैसे लोग कहने लगे कि अब तो फैसला टाई ब्रेकर के आधार पर ही होगा लेकिन उस से तो यही अच्छा है कि टास (सिक्के) का सहारा ले लिया जाये. टाई ब्रेकर और सिक्के की उछाल में कोई अंतर नहीं होता. वहाँ भी फैसला तकदीर से होता है और यहाँ भी. फिर यह सब नाटक क्यों? लोग जिस समय इस तरह की बातें कर रहे थे उस समय खेल समाप्त होने में केवल एक मिनट का समय बाकी रह गया था.

खेल समाप्त होने से ठीक 45 सेकिंड पहले सीमा सुरक्षा दल के राइट इन चरणजीत कुमार गेंद लेकर आगे बढ़े, पंजाब पुलिस के रक्षकों ने जैसे ही उस से गेंद छीनने की कोशिश की उसने झट से गेंद अपने राइट आउट सुरीन के हवाले कर दी. इसी बीच सेंटर फारवर्ड अमरदीप सिंह पंजाब पुलिस के गोल के पास खड़े होकर गेंद का इंतज़ार करने लगे और गेंद सचमुच उनके पास आ पहुँची. पंजाब पुलिस के गोली धरमजीत सिंह गेंद रोकने को तैयार थे कि अमरदीप ने गेंद को उछाल कर गोल में डाल दिया और सारा स्टेडियम 'गोल' 'गोल' चिल्लाने लगा. सीमा सुरक्षा दल के खिलाड़ी अमरदीप सिंह का मुंह चूमने लगे और उसको गले लगाने के लिए लालायित होने लगे. बाकी का समय इसी उछल कूद में निकल गया और खेल समाप्त होने की सीटी बज गयी.

जीत के बाद सीमा सुरक्षा दल के खिलाड़ी : (बायें से) अजीतपाल सिंह, कप्तान बलदेवसिंह, तरसेम सिंह और विनोद कुमार

सीमा सुरक्षा दल के खिलाड़ियों की खुशी का कोई ठिकाना नहीं रहा. उन्होंने आखिरकार अपनी पिछली हार का बदला ले लिया. आज से दो साल पहले सीमा सुरक्षा दल की टीम पंजाब पुलिस से फाइनल में हार गयी थी.

पेनल्टी कार्नर की कमज़ोरी : बात घूम फिर कर फिर वहीं आ जाती है कि हमारे खिलाड़ी पेनल्टी कार्नर का लाभ उठाने में उतने दक्ष क्यों नहीं हैं. सीमा सुरक्षा दल की टीम को चार पेनल्टी कार्नर मिले जिन में से दो को तो अजीतपाल सिंह ठीक से रोकने में भी सफल नहीं हो सके. एक बार तो गेंद इतनी धीमी आयी कि बलदेव ने सीधा मारने की बजाय उसे अपने साथी चरणजीत कुमार, को दे दिया जिसने गेंद को गोल से बाहर फेंक दिया.

पंजाब पुलिस को एक के बाद एक लगातार तीन पेनल्टी कार्नर मिले लेकिन उसके खिलाड़ी भी उसका लाभ नहीं उठा सके. हाँ एक बार पंजाब पुलिस के सेंटर फारवर्ड गुरदीप सिंह ने जरूर अच्छा निशाना लगाया लेकिन सुरक्षा दल के गोली बलदेव सिंह ने उसे रोक लिया.

सीमा सुरक्षा टीम में बलदेव सिंह नाम के दो खिलाड़ी थे. एक गोली बलदेव सिंह और दूसरे टीम के कप्तान बलदेव सिंह. पंजाब पुलिस की टीम का नेतृत्व इस बार बलबीर सिंह ने किया था.

प्रतियोगिता समाप्त होने के बाद राष्ट्रपति नीलम संजीव रेड्डी ने, जो मध्यांतर में मैदान में पहुँच गये थे, खिलाड़ियों को पुरस्कार बाँटे, विजेता का पुरस्कार सीमा सुरक्षा दल को, उप विजेता का पंजाब पुलिस को मिला. पूरी प्रतियोगिता के दौरान सब से अच्छा खेल और सब से अच्छा अनुशासन दिखाने वाली टीम संयुक्त विश्वविद्यालय (कंबाइंड यूनिवर्सिटी इलेवन) को भी पुरस्कृत किया गया.

फाइनल में पहुँचने से पहले : फाइनल में पहुँचने से पहले सीमा सुरक्षा दल का पलड़ा यों भी भारी जान पड़ रहा था. इस से पहले 1975 और 1977 में इसी टीम ने ट्राफी पर अधिकार जमाया था केवल एक बार (1976) में वह पंजाब पुलिस से हारी थी.

क्वार्टर फाइनल लीग मैचों में तो इस ने केवल एक मैच (भारतीय नौ सेना के विरुद्ध) केवल एक गोल से जीता. संयुक्त विश्वविद्यालय और आर्मी सर्विस कोर के विरुद्ध खेले गये मुकाबले बराबर रहे. लेकिन उसके बाद सेमी-फाइनल लीग मैचों में इस टीम ने शानदार खेल का प्रदर्शन करते हुए पहले चरण के मैच में केंद्रीय रिजर्व पुलिस फोर्स को 2-0 से और दूसरे चरण में 3-0 से हराया.

दूसरी तरफ़ पंजाब पुलिस ने क्वार्टर फाइनल लीग मैचों से दो मुक़ाबले जीते और एक मुक़ाबला बराबर रहा. इस ने 'कोर आफ सिगनल्स' और युगोस्लाविया एकादश की टीम को हराया जब कि केंद्रीय रिजर्व पुलिस फोर्स के विरुद्ध उसका मुक़ाबला बराबर रहा. उसके बाद सेमी-फाइनल लीग मैच में पंजाब पुलिस की टीम ने पहले चरण के मैच में संयुक्त विश्वविद्यालय की टीम को 2-0 से हराया जब कि दूसरे चरण का मुक़ाबला गोलरहित बराबर रहा था.

क्रिकेट

पहले टेस्ट का रंग

बंबई में खेले गये भारत-वेस्टइंडीज टेस्ट-शृंखला के पहले-टेस्ट के शुरू होने से पहले लोगों में जितना उत्साह था खेल के दौरान उतनी ही उदासी थी. यह टेस्ट बराबर रहेगा इसका संकेत तो पहले ही दिन मिल गया था लेकिन खेल के चौथे दिन तो स्थिति एकदम साफ हो गयी थी और बहुत से लोगों ने तो आँखों देखा हाल सुनना भी बंद कर दिया था.

वर्षा के कारण पहले दिन केवल 95 मिनट का ही खेल हो पाया. गीली पिच होने के कारण भारतीय खिलाड़ी भी बहुत संभल संभल कर खेले इस कारण रन बनाने की गति काफी धीमी रही. हाँ, खेल के दूसरे दिन गावस्कर ने दोहरा शतक बना कर दर्शकों की 'वाह' 'वाह' जरूर प्राप्त की. और दूसरे दिन का खेल समाप्त होने पर जब भारतीय टीम 5 विकेट पर 351 रन बनाने में सफल हो गयी तो लोगों ने कहा कि भारत पहली पारी में 400 से अधिक रन बनाने में सफल हो जायेगा. एक बार फिर खेल में लोगों की दिलचस्पी बढ़ी. गावस्कर 205 रन बनाने में सफल हो गये और उसके बाद जिस ढंग से वह क्लार्क की गेंद पर आउट हुए उस से साफ जाहिर होता था जैसे वह जानबूझ कर आउट होना चाहते थे. चेतन चौहान, विश्वनाथ दोनों ने 52-52 रन बनाये और कपिल देव ने 42. खैर, भारत पहली पारी में 424 रन बनाने में सफल हो गया.

उसके बाद वेस्टइंडीज की ओर से एल्विन ग्रीनिज और विलियम्स पारी शुरू करने के लिए आये और जब इन दोनों ही खिलाड़ियों को घावरी ने आउट कर दिया तो खेल में जान पड़ गयी और भारत की जीत के आसार दिखायी देने लगे. लेकिन उसके बाद लैरी गोम्स और एल्विन कालीचरण की जोड़ी ऐसी जमी कि उसने वेस्टइंडीज की डांवाडोल स्थिति को संभाल लिया और तीसरे दिन का खेल समाप्त होने तक वेस्टइंडीज ने 4 विकेट पर 184 रन बना दिये और कालीचरण शतक पूरा करने के बावजूद जमे रहे. भारतीय टीम के कप्तान गावस्कर ने यदि दूसरी बार दोहरा शतक बनाने का रिकार्ड कायम किया तो कालीचरण ने अपने टेस्ट जीवन की सर्वोच्च रन संख्या बनाने का. कालीचरण 187 रन बनाने में सफल हो गये जब कि उनका पिछला रिकार्ड 158 रनों का था जो उन्होंने 1974 में पोर्ट आफ स्पेन में इंग्लैंड के विरुद्ध खेलते हुए बनाया था. वेस्टइंडीज की टीम अपनी पहली पारी में 493 रन बनाने में सफल हो गयी. दूसरे शब्दों में यह कि जिस टीम के बारे में यह कहा जा रहा था कि वह भारत की पहली पारी की बराबरी पर नहीं आ सकती वह भारत की पहली पारी से 69 रन अधिक बनाने में सफल हो गयी.

जहाँ तक भारतीय गेंदबाजों का सवाल है इस बार बिशन सिंह बेदी ने लोगों को बहुत निराश किया. गावस्कर ने उन्हें विकेट लेने के बहुत अच्छे अवसर दिये. वह नहीं चाहते थे कि बिशन सिंह बेदी एक भी विकेट लेने में सफल न हों. जब वेस्टइंडीज की टीम का 480 रन बनने पर 9वां विकेट गिरा तो गावस्कर ने अंतिम खिलाड़ी क्लार्क को आउट करने के लिए गेंद फिर बेदी को थमा दी. क्लार्क ने भी आउट होने से पहले अपना एक हाथ दिखा दिया और छक्का लगा दिया. खैर, किसी तरह बेदी अंतिम खिलाड़ी की विकेट लेने में सफल हो गये.

तब तक लोगों की सारी दिलचस्पी खत्म हो गयी थी. जब गावस्कर और चौहान दूसरी पारी शुरू करने के लिए तो दोनों कुछ इस ढंग से खेलते लगे जैसे उस नाजुक घड़ी में भी कोई और रिकार्ड कायम करना चाहते हैं. गावस्कर 73 और चौहान 84 रन बनाने में सफल हो गये और इस प्रकार भारत ने दूसरी पारी में 2 विकेट पर 224 रन बना लिये.

गावस्कर की उपलब्धि : जिस समय वेस्ट इंडीज के विरुद्ध पहले टेस्ट की पहली पारी में उन्होंने दोहरा शतक (205) बनाने का गौरव प्राप्त किया तो वह प्रतिष्ठा की एक सीढ़ी और ऊपर चढ़ गये. वह ऐसे पहले खिलाड़ी हैं जिन्हें लगातार तीन पारियों में शतक पूरा करने का गौरव दो बार प्राप्त हुआ है. 1971 में वेस्टइंडीज के विरुद्ध खेलते हुए उन्होंने चौथे टेस्ट में (117 रन और आउट नहीं) और पांचवें टेस्ट में (124 और 220 रन बनाये थे).

इस बार उन्होंने पहले तो पाकिस्तान में कराची में खेले गये तीसरे टेस्ट की दोनों पारियों में 111 और 137 रन बनाये और उसके बाद बंबई में वेस्टइंडीज के विरुद्ध पहले टेस्ट की पहली पारी में 205 रन.

अपने जीवन के 41वें टेस्ट में यह गावस्कर का 16वां शतक था, और दूसरा दोहरा शतक था. इनसे पहले केवल वीनू मांकड़ और दिलीप सरदेसाई ही ऐसे खिलाड़ी थे जिन्हें दो बार दोहरा शतक बनाने का गौरव प्राप्त है. गावस्कर ने दोनों बार दोहरा शतक वेस्टइंडीज के विरुद्ध ही बनाया एक बार 1971 में पोर्ट आफ स्पेन में और दूसरी बार 1978 में बंबई में. वीनू मांकड ने दोनों बार न्यूजीलैंड के विरुद्ध दोहरा शतक बनाया जब कि दिलीप सरदेसाई ने एक बार न्यूजीलैंड और दूसरी बार वेस्टइंडीज के विरुद्ध.

वह वेस्टइंडीज के विरुद्ध सात बार शतक बना चुके हैं लेकिन छः शतक उन्होंने वेस्टइंडीज में ही बनाये थे. भारत में वेस्टइंजडीज के विरुद्ध यह उनका पहला शतक था.

संक्षिप्त समाचार

अर्जुन पुरस्कार : 1977-78 वर्ष के लिए जिन 10 खिलाड़ियों को पुरस्कृत किया गया है उनके नाम इस प्रकार हैं : **सतीश कुमार (एथलेटिक) जी. आर. विश्वनाथ (क्रिकेट) हरचरण सिंह (हाकी) कुमारी कंवल ठाकुर सिंह (बैडमिंटन) टी. विजयराघवन (बास्केटबाल) बी. एस. थापा (मुक्केबाज़ी) श्रीमती सीता राउली (गोल्फ) कुमारी लौरेनी लूना फरनांडिस (हाकी) एम. तमिल सेल्वान (भारोत्तोलन) और एम. रामन राव (वालीबाल)**

अनावश्यक हड़ताल के बाद

गोदी और बंदरगाह कर्मचारियों की हड़ताल से राष्ट्र को कितनी हानि हुई इस का सही अंदाज़ा अभी नहीं लगाया जा सकता है. कलकत्ता और कई अन्य बंदरगाहों में भी जहाँ सभी कर्मचारी हड़ताल पर नहीं थे, काम के नाम पर इन दिनों बहुत कम हुआ और करोड़ों रुपये की हानि होती रही. हड़ताल वापस लेने के बाद कर्मचारियों की माँगों पर बातचीत चल रही है, जो कि वास्तव में हड़ताल के दौरान भी चल रही थी. फिर अखिल भारतीय गोदी और बंदरगाह कर्मचारी फेडरेशन द्वारा हड़ताल करवाने के पीछे क्या उद्देश्य था ? स्वयं कुलकर्णी ने, जो कि फेडरेशन के नेता हैं यह बताया है कि उनकी माँगों से कुल मिलाकर 16 करोड़ रुपये का व्यय होगा. फिर इसलिए यह कहना गलत नहीं होगा कि कुलकर्णी का प्रमुख उद्देश्य यह दिखाना था कि गोदी कर्मचारियों पर असली प्रभाव उन के ही संगठन का है.

जब घोषित तारीख 15 नवंबर से अखिल भारतीय पोर्ट और डाक मज़दूर फेडरेशन के नेतृत्व में हड़ताल शुरू हुई जिसे कलकत्ता बंदरगाह की सरकार ने गैर कानूनी घोषित किया, दूसरी यूनियनों—(1) पोर्ट मज़दूर पंचायत श्रमिक यूनियन, (2) नेशनल यूनियन आफ वाटर फ्रंट, (3) कलकत्ता पोर्ट श्रमिक यूनियन और (4) कलकत्ता पोर्ट श्रमिक मज़दूर यूनियन ने हड़तालियों का साथ नहीं दिया. इस के कारण भी चारों तरफ से सारी स्थिति असंतुलित हो गयी. एक, यूनियनों के बीच, दूसरे कलकत्ता पोर्ट और डाक मज़दूर फेडरेशन और अधिकारियों के बीच, तीसरे गैर हड़तालियों और अधिकारियों के बीच, तनाव और संघर्ष की स्थिति बनी थी. गैर हड़तालियों और अधिकारियों के बीच संतुलन होना चाहिए था किंतु ऐसा नहीं हुआ.

अखिल भारतीय पोर्ट और डाक मजदूर फेडरेशन के सब से बड़े नेता एस.आर. कुलकर्णी बंबई और दिल्ली में रह कर सभी बंदरगाहों की हड़ताल को सफल बनाने के लिए कार्यरत थे. कलकत्ता में विचित्र बात यह होने लगी. कि बंबई, कलकत्ता और मद्रास की सारी हड़ताल की राजनीति दिल्ली से तय होने लगी पर बंदरगाह में वास्तविकता दूसरी थी. हड़ताल सिकुड़ गयी और फेडरेशन दावा करने लगी कि हड़ताल सफलतापूर्वक चल रही है और कर्तृ पक्ष के उच्चाधिकारी भी दावा करने लगे कि काम चालू है और हड़ताल का महत्व नहीं रह गया है. साथ ही साथ वह हड़ताल से रोज़ घाटे की रकम भी लाख और करोड़ में बताने लगे. राइटर्स बिल्डिंग और राजभवन के दक्षिण में करीब तीन मील दूर कलकत्ता बंदरगाह है जब कि क.पो.ट्र. का प्रधान दफ्तर राइटर्स बिल्डिंग और राजभवन के करीब स्टैंड रोड में स्थित है. पुल के पश्चिम और पूरब में बिल्कुल सटा डाक का मेन गेट (क्रमशः नंबर 3 और 4 है. इस पार और उस पार सड़क के दोनों ओर नदी के किनारों के समांतर डाक का घेरा है. इस के पूरबी छोर का डाक का गेट दो है. हुगली के दोनों किनारे एक-एक, कहीं-कहीं दो-दो मील का घेरा है. सभी इलाके सुरक्षित हैं. दोनों ओर की बस्तियाँ एक जैसी लगती हैं. पूरा इलाका मज़दूरों का है. अफसरों के क्वार्टर मज़दूरों के क्वार्टर और डाक से दूर हैं. उन की शांति और सुरक्षा का पूरा ध्यान रखा गया है. पुल के पूरब के मोहल्ले में हिंदी हाई स्कूल के एक वरिष्ठ शिक्षक व पुराने समाजवादी नेता पद्मदेव तिवारी ने बताया, 'इस हड़ताल का कोई मतलब नहीं. हड़ताल केवल एक यूनियन अपनी शक्ति दिखाने के लिए कर रही है. उन से बातचीत करने पर पता चला कि 'खिदिरपुर में आधी जनसंख्या मुसलमानों की है. सारी बस्ती की गंदगी, गरीबी और बाड़ीनुमा घर देख कर कोई भी कह सकता है कि खिदिर कलकत्ता का वह हिस्सा है जिसे बिहार के किसी शहर का हिस्सा कहा जा सकता है. यहाँ मुसलमानों की इतनी संख्या होने पर भी डाक में काम करने वालों की संख्या नगण्य है. रिक्शा चलाने, टीन, शीशी बोतल और इसी प्रकार के छोटे छोटे धंधे से ये गुज़ारा करते हैं. हमने पूछा, 'खिदिरपुर में डाक हड़ताल से क्या असर है ? उन्होंने कहा, 'कहीं कुछ नहीं. हड़ताल का प्रचार भर है. हड़ताल एक डिपार्टमेंट (मेरिन) कर रहा है.' इब्राहिम रोड पर स्थित कलकत्ता टी वर्कर्स बोर्ड (चाय की पेटी को जहाज से उतारने-चढ़ाने का काम करने वालों का संगठन) के मुख्य कर्त्ता धर्ता आनंद (लोहियावादी गोवा के आंदोलन में जेल जा चुके हैं) से बातचीत करने पर उपरोक्त बातों की पुष्टि हो गयी. उन्होंने कहा, 'यह हड़ताल सभी मज़दूरों के हक (अधिकार) के लिए नहीं है. अगर ऐसा होता तो वास्तव में कितनी अच्छी बात थी. यह हड़ताल यूनियनों के बीच की लड़ाई है—शक्ति दिखाने की. कलकत्ता पोर्ट और डाक मज़दूर फेडरेशन के पास शक्ति है, इस से कोई इनकार नहीं कर सकता है. उस के हाथ में दो विभाग (मेरिन और सी. एम. ई.) हैं जो पोर्ट का असली (यानी महत्त्वपूर्ण) काम करती है. इस के कारण ही वह मनमाना कर रही है. दूसरे विभागों के सभी लोग काम पर जा रहे हैं, हाजिरी दे रहे हैं. पर काम नहीं है.' साथ के एक सज्जन ने कहा 'डाक के अधिकारियों का दावा ठीक है—काम भी चल रहा है और घाटा भी हो रहा है.' वहाँ से हम डाक्टर सुधीरबसु रोड पर स्थित 'कलकत्ता पोर्ट और डाक मज़दूर फेडरेशन के दफ्तर (यूनियन) में आये. चार मंज़िले मकान के गेट पर दो टैक्सियाँ खड़ी थीं. पाँच-दस की संख्या में मज़दूरों का दल जहाँ-तहाँ खड़ा अपनी राजनीति की बात कर रहा था. कलकत्ता पुलिस के आदमी पहरा दे रहे थे. वे बिल्कुल यूनियन के सदस्य और मज़दूरों से घुल मिल गये थे और चाय पान में भूले थे. तीसरी मंज़िल पर फेडरेशन के सहसचिव श्याम चक्रवर्ती से मुलाकात होने पर उन्होंने बताया, 'हमारी हड़ताल सफल है. जब तक हमारी माँगें पूरी नहीं होंगी तब तक हड़ताल चलेगी. हम सरकार के आगे नहीं झुक सकते. कलकत्ता पोर्ट के चैयरमैन ने काम चालू कराने का दावा किया

सागर तट पर बसा हुआ बिहार

है. अगर काम चालू है तो घाटा क्यों बता रहे हैं?' चांदराम और रवींद्र वर्मा ने कहा है कि वे सारी समस्याओं का समाधान खुली बातचीत और बैठक से निकालना चाहते हैं. फिर क. पो. ट्र. के चेयरमैन भी इसके लिए हमेशा से तैयार हैं. उन्होंने जवाब में कहा, 'इस प्रकार की बातचीत का कोई मतलब नहीं. हम लोगों ने 58 और 75 की हड़ताल से सबक ले लिया है. मंत्री केवल धोखा देने के सिवाय कुछ नहीं करते. हमने पूछा, 'क. पो. ट्र. के चेयरमैन ने आप की हड़ताल को गैरकानूनी घोषित किया है. आप के सामने. . . . .' उन्होंने बीच में कहा, 'उन का वही काम है. हम अपने हक के वास्ते लड़ रहे हैं. इस में कानूनी गैरकानूनी का मामला उठा कर दबाने की राजनीति चल रही है.' बातचीत के दौरान पता चला कि यूनियन रोज जुलूस निकाल रही है. अभी तक कहीं आक्रमण की घटना नहीं हुई है. पुलिस हमेशा साथ सतर्क होकर चलती है. फेडरेशन ने हड़ताल चलाने की पूरी तैयारी की है. वहाँ उपस्थित फेडरेशन के नेताओं ने दूसरी यूनियन के नेताओं और अधिकारियों पर आरोप लगाया, 'हमारी हड़ताल सफल है. इसलिए भा. क. पा. की यूनियन और दूसरी यूनियन हम पर हमला कर रही है. सरकार और पोर्ट के अधिकारी चारों तरफ से पुलिस को तैनात कर वातावरण को गंदा कर रहे हैं.' 'हमने पूछा, पुलिस आप के दफ्तर के सामने है, क्यों?' एक ने जवाब दिया, 'हम पर हमला होगा इसलिए.' 'कई नेता व मजदूरों से बातचीत करने पर पता चला कि डाक में कुल कर्मचारियों की संख्या 45 हजार होगी. 5-6 हजार कर्मचारी घटते बढ़ते रहते हैं. पहले की तरह अब केजुअल कर्मचारी नहीं हैं. पोर्ट संबंधित ठेकेदारों के कर्मचारी भी निश्चित हैं. अभी तक 11 हजार कर्मचारियों के लिए क्वार्टर बने हैं. फेडरेशन सहसचिव ने बताया कि डाक में काम करते समय बुरी तरह काम करने वालों की औसत संख्या प्रत्येक साल 200 है. साल में मरने वालों की औसत संख्या 10-11 है. साधारण कर्मचारियों में 90 प्रतिशत हिंदी भाषी हैं. सारे अफसर बंगलाभाषी हैं. अफसरों में हिंदी भाषी मज़दूर कम हैं. दफतर (यूनियन) में इकट्ठे हुए मज़दूरों से बातचीत से मालूम हुआ कि अधिकांश मज़दूरों का परिवार गाँव पर है. गाँव में भी खेती गृहस्थी है. 400 रुपये से 600 रुपये तक महीना (वेतन) मिल जाता है. गोदी में काम करने वाले हरिजनों और मुसलमानों की संख्या बहुत कम है. जिस सेक्शन में करीब तीन सौ मज़दूर हैं वहाँ मुश्किल से 4-5 हरिजन और उतने ही मुसलमान हैं. पहले डाक में महिलाएँ भी काम करती थीं पर अब माल ढोने वाली महिला एक भी नहीं है. केवल कुछ महिला क्लर्क हैं. इंदिरा गांधी के आपत्काल के पहले तक मज़दूर महिलाएँ थीं. मुहल्लों में सड़क के किनारे लोग सोये थे. मोड़ नुक्कड़ पर कई हाथ रिक्शे खड़े थे. पग-पग पर जहाँ तहाँ कूड़ों का ढेर लगा था. मेन रोड (धर्मतल्ला जाने वाली) पर ट्राम लाइन के किनारे मजदूरों की खाटें बिछी थीं. अधिकतर खाटें छोटी छोटी चाय और खाने पीने वगैरह की दूकानों के सामने दीख पड़ीं. रात दस बजे भी लोग जगे थे. जोर शोर से बातें कर रहे थे. कहीं-कहीं झगड़ा करते लोग मिले. कोई शराब के नशे में है, कोई अपनी पुरानी बीमारी से खांस रहा है. कहीं कुत्ते लड़ रहे हैं. सारी स्थिति को देख कर ऐसा लगता था कि इन लोगों के लिए राजभवन और राइटर्स बिल्डिंग तथा उस के आसपास के धनी संपन्न इलाके कोसों दूर हैं. ट्राम डिपो के सामने एक चाय की दूकान में कुछ लोगों से बातचीत करने से पता चला कि बहुत परिवार डाक से कोयला, लकड़ी, इसी प्रकार की चीजों को चुरा कर बेच कर गुजारा करते हैं. कहा जाता है कि खिदिरपुर में स्मगलिंग होती है. रायल और फैंसी बाजार में चोरी में बिकती अच्छी अच्छी चीज़ें मिलेंगी. लोग बताते हैं कि इसमें मुसलमानों के अधिक परिवार फँसे हैं. सड़क के किनारे मुस्लिम दूकानों की अधिक संख्या, मुस्लिम दूकानदारों व घरों का ढांचा व छोटे-छोटे मजार देख कर पता चलता था कि उन की जनसंख्या आधे से अधिक होगी.

पुल पर लोग आ जा रहे थे. आतंक था. सारे जहाज किनारे किनारे ठूंसे मालूम पड़ते थे. सारे मालवाही डेकों पर फेडरेशन के झंडे गड़े थे. मज़दूर अच्छी संख्या में गेट से आते जाते दीख रहे थे. घेरे के पूरब में बागान (सी. जी. आर. रोड) में जाने पर अजीब तनाव देखने को मिला. डाक के घेरे के बाद कच्ची चौड़ी सड़क थी. उस के बाद मुहल्ला शुरू होता था. मुहल्ले की ओर सड़क के किनारे तमाम चाय होटल और छोटे छोटे मोटर पुर्ज़ों की दूकान और दूसरी दूकानें थीं. हड़ताल के समर्थक, जिन की संख्या कम थी, जहाँ तहाँ चाय की दूकान में व पेड़ के नीचे इकट्ठा हुए थे. दूसरे मज़दूर उन की ओर बिना देखे आ जा रहे थे. उस रोड में जहाँ तहाँ पुलिस के आदमी भी बैठे मिले. सड़क के किनारे सारा कामकाज चल रहा था. कहीं लारी पर माल लादा जा रहा था. कहीं उतारा जा रहा था. डाक अस्पताल के दक्षिण और कोल डाक के पश्चिम में मज़दूरों के क्वार्टर थे. सारे क्वार्टर बिल्कुल सटे सटे थे. फिर भी क्वार्टर के सामने मज़दूरों ने झोपड़ी बना रखी थी. शाम को कई मज़दूरों से वहीं मिले. एक चाय

की दूकान पर कई मजदूर गांजा पी रहे थे. उस समय वे काम से आकर स्नानादि कर, जलपान के बाद बाहर निकले थे. सुखु पहले (बनारस का रहने वाला) और उस के साथ के कर्मचारियों ने बताया, 'वे काम पर जाते हैं. सभी डिपार्टमेंट और सेक्शन में कर्मचारी आते हैं. काम विशेष नहीं हो रहा है. जहाज कम अंदर आ रहा है. रोज कुल तीन-चार जहाज खलास हो रहा है.' काम के विषय में पूछने पर उन्होंने बताया 'बाबू साहब. हम लोगों का काम जोखिम का है. कब हाथ पैर टूटे, कब क्या हो, भगवान जाने. हमारे रिपोर्ट में 300 आदमी हैं. रोज 15-20 आदमी घायल होते हैं. घायल होने पर भी दूसरे दिन काम पर आना पड़ता है. काम से छूटने पर सब की गिनती होती है, यदि कहीं कोई कम पड़े तो खोजाई होती है. माल से दबने और मरने का डर हमेशा रहता है. हम लोगों के लिए दो अस्पताल (डाक अस्पताल और सरकुलर अस्पताल) है पर वहाँ दवा पानी मिलता है. भारी चोट लगने पर केवल भर्ती होते हैं. सब दवा का ब्लैक होता है. उन क्वार्टरों में कम परिवार हैं. बहुत मजदूर अकेले रहते हैं. अपना घर भाड़े पर दूसरे को दे देते हैं. ज्यादा पैसा मिल जाता है.' क्वार्टरों के बीच में एक प्राइमरी स्कूल (पं. जवाहर लाल नेहरू बाल शिक्षा समिति) में गये. वहां दो मास्टर तीस-तीस बच्चों को ट्यूशन पढ़ा रहे थे. प्राइमरी में शिक्षा निःशुल्क है. पर मास्टर साहब पूरे कक्षा के बच्चों को ट्यूशन पढ़ा कर वेतन से ज्यादा आमदनी कर लेते हैं. उन्होंने बताया, हड़ताल वड़ताल कुछ नहीं है. नजदीक के क्वार्टर में रहने वाले, 12 कक्षा के तीन छात्र योगेंद्र भारती (मजदूर के बेटे) और उन के दो साथी—एकबाल सिंह (डाक में काम करने वाले अफसर के बेटे) और एम. नरसिंहम (दक्षिण पूर्व रेलवे के एक अफसर के बेटे) ने बातचीत के दौरान बताया, 'यहाँ जातियता की तरह यूनियनबाजी हो रही है. हड़ताल नाममात्र है.' उन के साथ डेढ़ मील का चक्कर लगाने पर पता चला (रात में) कि सारा कामकाज हो रहा है. मुहल्ले, पढ़ाई, लिखाई और अन्याय बातों पर पता चला कि खिदिरपुर सारे मजदूर बिहार की तरह ही जाति के आधार पर बंद कर रहते हैं और गांव जिला के आधार पर एक दूसरे के करीब हैं. क्वार्टर में बहुत कम संख्या में हरिजन और मुसलमान हैं. जहाँ तहाँ कई अखाड़े देखने को मिले. राजपूतों का अलग है और यादवों का अलग. जो कुछ जागरुक हैं वे अपने उत्तर प्रदेश और बिहार की ही राजनीति पर चर्चा करते हैं. यहाँ चार हिंदी हाईस्कूल हैं. •

अगले अंक से

बंधुआ मजदूरों की कुछ मार्मिक कहानियाँ

देश में बंधुआ मजदूरी गैरकानूनी घोषित कर दी गयी है उस के बावजूद 40 वर्ष से कम आयु के लगभग 27 लाख ग्रामीण युवा बंधुआ मजदूरी करने के लिए बाध्य हैं. किसी बंधुआ मजदूर के लिए ही यह आर्थिक शोषण का नहीं बल्कि मानव अधिकारों का भी प्रश्न है.

गत तीन वर्षों में इस सामाजिक बुराई के बारे में भी काफी प्रचार किया गया है लेकिन फिर भी हम इस के बारे में बहुत कम जानते हैं. बंधुआ मजदूरी की जड़ें हमारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कहाँ तक फैली हुई हैं? इस के कारण क्या हैं? रोकथाम के बावजूद इस के परिणाम में वृद्धि क्यों होती जा रही है. यही सब जानने के लिए इस वर्ष गांधी शांति प्रतिष्ठान ने राष्ट्रीय श्रम संस्थान के सहयोग से एक सर्वेक्षण किया है.

आंध्रप्रदेश, बिहार, गुजरात, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, ओडिसा, राजस्थान, तमिलनाडु, उत्तरप्रदेश राज्यों के साढ़े चार लाख गाँवों में से एक हजार गाँवों को इस सर्वेक्षण के लिए चुना गया. इस के आधार पर पाया गया कि इन राज्यों के तीन करोड़ सत्तर लाख कृषि मजदूरों में से 6.1 प्रतिशत यानी 21.7 लाख बंधुआ मजदूर हैं.

इन में 78 प्रतिशत ऋण लेने के कारण बंधुआ मजदूरी करने के लिए बाध्य हैं जब कि 13 प्रतिशत ऐसे भी हैं जो किसी जाति विशेष के होने के कारण या पूर्वजों के समय से परिवार में चली आ रही किसी व्यक्ति विशेष की चाकरी की प्रथा के कारण बंधुआ मजदूरी कर रहे हैं. 84 प्रतिशत बंधुआ मजदूर अनुसूचित जाति और जन जातियों के हैं और 11.6 प्रतिशत सवर्ण जातियों के जब कि 84.2 प्रतिशत मालिक सवर्ण हैं और 8.4 प्रतिशत मालिक अनुसूचित एवं जनजातियों से संबंधित हैं.

कुछ मजदूर सौ रुपये से भी कम रुपये का ऋण लेने पर बंधुआ मजदूर बना दिये गये हैं और अनंतकाल की बंधुआ मजदूरी की अवधि में उन्हें न दूसरा कोई रोजगार देखने की स्वतंत्रता रह जाती है न अपनी मरजी से कहीं आने जाने की. यहाँ तक कि अपनी संपत्ति बेचने का भी अधिकार ये खो बैठते हैं. रपट के आधार पर कृषि मौसम में 91 प्रतिशत मजदूर कहीं नहीं आ जा सकते. मौसम न होने पर भी 80 प्रतिशत बंधुआ मजदूरों को कहीं आने जाने की स्वतंत्रता नहीं है. इस बंधुआ मजदूरी के दौरान 30 प्रतिशत मजदूरों को दस रुपये प्रति माह से भी कम मजदूरी मिलती है. बंधुआ मजदूरों में 83 प्रतिशत चालीस वर्ष से भी कम आयु के हैं. पैतृक संपत्ति की तरह ऋण और बंधुआ मजदूरी भी पिता से पुत्र को मिल जाती है. इसीलिए 40 वर्ष की आयु तक अपना शोषण करवाने के बाद पिता अपनी जगह अपने युवा पुत्र या पुत्री को बंधुआ मजदूरी करने भेज देता है.

इसी रपट में से कुछ बंधुआ मजदूरों के आर्थिक शोषण की कहानियाँ अगले अंक से प्रस्तुत की जा रही हैं.

बालकृष्ण सम पुरस्कृत

राजकीय नेपाल प्रज्ञाप्रतिष्ठान द्वारा प्रत्येक पाँच वर्ष में दिया जाने वाला पृथ्वी प्रज्ञा पुरस्कार वयोवृद्ध नेपाली साहित्यकार **बालकृष्ण सम** को मिला है. पुरस्कार की धनराशि एक लाख नेपाली रुपये (भारतीय 70,900 रुपया) है. जून 1974 में महा-राजाधिराज वीरेंद्र द्वारा प्रज्ञाप्रतिष्ठान के पुनर्गठन किये जाने के समय नेपाली वाङ्मय, विज्ञान तथा कला के प्रोत्साहन के लिए कतिपय पुरस्कारों की घोषणा की गयी थी. उन में सब से महत्वपूर्ण तथा सब से बड़ी धनराशि का पुरस्कार पृथ्वी प्रज्ञा पुरस्कार है. यह पुरस्कार सर्वप्रथम प्रदान किया गया है श्री बालकृष्ण सम को. यह पुरस्कार करीब 60 वर्ष की साहित्यसाधना तथा उत्कृष्ट लेखक होने के कारण प्रदान किया गया है. वह जीवित नेपाली साहित्यकारों में ज्येष्ठ हैं. उन्हें 1962 में प्रज्ञापरिषद संप्रति का 10 हजार रुपये का त्रिभुवन पुरस्कार भी मिला था.

बालकृष्ण का जन्म काठमांडो में 1902 में एक विख्यात राणाकुल में हुआ था. बाल्यकाल से ही उन का जीवन साधन संपन्न, वैभवशाली तथा विलासपूर्ण राजकीय परिवेश में व्यतीत हुआ. पिता छायांकन, संगीत, नाट्य मंच संचालन तथा चित्रकला के मर्मी एवं विशेषज्ञ थे. उन के दरबार में ललितकला की काफी प्रतिष्ठा की जाती थी. बालकृष्ण के बड़े भाई पुष्कर शमशेर जंगबहादुर राणा नेपाली भाषा के डा. जानसन माने जाते थे. वह नेपाली भाषा के प्रकांड पंडित, प्रसिद्ध वैयाकरण तथा कहानीकार थे. इस प्रकार लक्ष्मी तथा सरस्वती के समान रूप से कृपा-पात्र बालकृष्ण के लिए साहित्य एवं कला-साधना का परिवेश जन्मजात मिला. वस्तुतः वह छायांकन, चित्रकला, संगीत, दर्शन, नाटक, काव्य कहानी सब में निष्णात हैं.

बालकृष्ण को हाई स्कूल तक की ही नैयमिक शिक्षा मिली. उन दिनों नेपाल के काठमांडो स्थित एक मात्र पाश्चात्य शिक्षा शैली के दरबार स्कूल से प्रवेशिका परीक्षा में उत्तीर्ण होने के उपरांत वह विज्ञान के अध्ययन के लिए कलकत्ता के एक कालेज में दाखिल हुए. परंतु उन की नैसर्गिक कला प्रवृत्ति के साथ विज्ञान की शिक्षा का तालमेल नहीं बैठा. उन दिनों घरेलू परिस्थिति भी कुछ वैसी थी कि वह पढ़ाई छोड़ कर कलकत्ता से काठमांडो वापस आ गये जहाँ तभी से उन्होंने कला तथा साहित्य की साधना में अपना शेष जीवन लगा दिया.

राणा होने के कारण बालकृष्ण को प्रचलित नियमानुसार सेना की जागीर छोटी उम्र में ही मिली और पदोन्नत हो कर मेजर कप्तान हुए. वे सरकारी प्रकाशन संस्था नेपाली भाषा प्रकाशिनी समिति के अध्यक्ष तथा दरबार स्कूल एवं तत्कालीन एक मात्र कालेज त्रिचंद्र कालेज (काठमांडो) में नेपाली के अध्यापक नियुक्त हुए. वह 1950 तक उक्त तीनों पदों पर थे. उस साल के अंत में राणाशाही को लड़खड़ाती देख कर सम ने अपना पैंतरा बदल डाला. वह झट से राणाविरोधी राजनैतिक आंदोलन में कूद पड़े. और कुछ दिनों के लिए गिरफ्तार हुए. जेल से मुक्ति पाने के समय फरवरी 1951 में राणाशाही का अंत और प्रजातंत्र का प्रवर्तन हो चुका था. उसी समय उन्होंने कुल का नाम 'शमशेर जंगबहादुर राणा' त्याग कर देश में प्रजातंत्र के संदेशों में एक संदेश 'समता' फैलाने के लिए अपने नाम के आगे 'सम' लगाया तब से वह इसी नाम से पुकारे जाने भी लगे. अब यह नाम उन के परिवार के सब सदस्यों का हो गया है.

राणा प्रशासनकाल में जैसी ख्याति सम को मिली थी उस से भी बढ़ कर ख्याति उन्हें परवर्ती काल में मिली. 1951 में वह तत्कालीन गृहमंत्री विश्वेश्वरप्रसाद कोइराला के अनन्यतम भक्त हुए और प्रचार विभाग के निदेशक. परंतु बाद में उन्होंने कोइराला का साथ छोड़ दिया. कुछ समय तक सरकारी समाचारपत्र गोरखापत्र के प्रधान संपादक रहे. 1957 में प्रज्ञाप्रतिष्ठान की स्थापना के समय इस के सदस्य और कालांतर में उपकुलपति हुए. आजकल वह एक संवैधानिक अंग राजकीय परिषद के सदस्य हैं. वह एक समय राणा प्रशासन के भी अंग थे और उस समय राणा सरकार द्वारा प्रजातंत्रवादियों के दमन के लिए उपयोगी भी हुए थे. 1960 में संसदीय प्रजातंत्र के समाप्त होने के बाद वह और प्रसिद्ध हुए. वस्तुतः नेपाली जनता उन्हें साहित्यकार के रूप में ही जानना चाहती है, उन की सुविधावादी दुनियादारी को उस ने सदैव क्षमा किया है.

राणाकालीन नेपाल में उन के सात नाटक, अनेक कविताएँ, कतिपय कहानियाँ, निबंध, एक एकांकी और एक दार्शनिक ग्रंथ प्रकाशित हुए. उन का एक नाटक ध्रुव (1929) तथा प्रह्लाद (1938) की भूमिका अपनी ही कोटि की है.

प्रजातंत्रकालीन नेपाल में अन्य लेखकों के समान उन्हें भी लेखन तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता मिली जिस के फलस्वरूप उन्होंने काफी नाटक एक खंडकाव्य, एक महाकाव्य, दर्जनों कविताएँ लिखीं. उन के ये नाटक राणाकालीन कृतियों थीं परंतु तत्कालीन राजनैतिक परिस्थिति के चलते विपज्जनक होने के कारण प्रकाशित नहीं हुए थे. **चीसो चूल्हो** (गीला चूल्हा) महाकाव्य भी उसी कोटि का था. हम उन की राणाकालीन कृतियों को पूर्वकालीन तथा परवर्तीकालीन कृति को पश्चात्कालीन कह सकते हैं. पूर्वकालीन कृतियों में 'संक्षिप्त ही बुद्धिसार है' कतन चरितार्थ हुआ है और एतदर्थ उन का गुणोत्कर्ष काफी प्रभावशाली है. इसी कारण नाटकों में भी प्रभावैक्यपूर्ण संहति तथा संयमपूर्ण संश्लिष्टता है. पश्चात्कालीन कृतियों में व्याख्यात्मकता अधिक है. अतएव वह पूर्वकालीन कृतियों के समकक्ष नहीं हो सकते.

बालकृष्ण मूलतः कवि हैं परंतु वह भावुकता में नहीं बहते. उन की अभिव्यक्ति में उस गणितज्ञ का मस्तिष्क कार्यशील है जो अपने नपे तुले संख्यान से निर्विवाद स्थापनाओं से युक्त है. उन की रचनारीति में उस संगतराश की बारीकियाँ झलकती हैं जिस के छेनी संचालन में अच्युति नैसर्गिक हो जाती है.

परंतु बालकृष्ण ने अपनी प्रतिभा के व्यक्तीकरण के लिए नाटक विधा को ही चुना. उन के सर्वप्रथम नाटक **मुटुको व्यथा** (कलेजे का दर्द) 1929 में प्रकाशित होने के पूर्व तक नेपाली में मौलिक नाटक प्रकाशित नहीं हुआ था. वह शेक्सपीयर के विशेषतः त्रासदी नाटकों तथा इब्सेन के यथार्थवादी सामाजिक नाटकों से अत्यधिक प्रभावित हुए हैं. उन्होंने शेक्सपीयर के मुक्त छंद की जगह संस्कृत के अनुष्टुप् छंद को ग्रहण किया और उसमें उन्होंने शेक्सपीयरीय नाटकीय उदात्तता की सृजनशीलता प्रतिष्ठित की. इस प्रकार बालकृष्ण नेपाली नाटक में ही नहीं, नेपाली साहित्य में भी आधुनिक काल के पुरोधा हुए. उन्होंने सामाजिक, पौराणिक तथा ऐतिहासिक नाटक लिखे हैं जिन में 'त्रासदी' ही प्रसिद्ध हुए हैं. उन के त्रासदी नाटकों में **अंधवेग** (1939) सर्वाधिक प्रखर सघन प्रभावी तथा साहित्य शिल्पपूर्ण हैं.

बालकृष्ण ने केवल पठन के लिए नहीं साथ साथ मंचन के लिए नाटक लिखे. कुछेक को छोड़ कर सब मंचित हो चुके हैं. सब का मंच निर्देशन उन्होंने स्वयं किया और कुछेक में वह स्वयं मुख्य चरित्र की भूमिका में अभिनेता के रूप में उपस्थित हुए. उनके नाटकों में सर्वप्रथम **मुकुंद इंदिरा** 1937 में मंचित हुआ जो उसी साल प्रकाशित भी हुआ था. उस समय तक नेपाली में किसी भी मौलिक नाटक का मंचन नहीं हुआ था. इस प्रकार यह नाटक नेपाली रंगमंच का अपने आप में एक कीर्तिमान बना है.

तीन वर्ष पूर्व बालकृष्ण को दिल का गहरा दौरा पड़ा था. वह कुछ दिनों तक संज्ञाशून्य थे. वेलौर में चिकित्सा होने के बाद पूर्ण स्वस्थ हैं. परंतु वह पहले के समान लेखन करने में असमर्थ हैं. उन की स्मरणशक्ति भी कुछ क्षीण होती जा रही है. वह इन दिनों अपनी आत्मकथा लिख रहे हैं. जिन के दो भाग प्रकाशित हो चुके हैं.

—ईश्वर बराल

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
राष्ट्रीय प्रतिभा खोज परीक्षा 1979

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (रा. शै. अ. और प्र.प.) द्वारा 500 राष्ट्रीय प्रतिभा खोज छात्रवृत्तियाँ प्रदान करने हेतु रविवार 6 मई, 1979 को 408 केंद्रों में एक लिखित परीक्षा ली जायेगी. जो विद्यार्थी 10वीं, 11वीं और 12वीं (1 नवंबर 1978 तक) कक्षाओं में अध्ययन कर रहे हैं और जो इन कक्षाओं के समापन पर प्रमाणपत्र प्रदान करने हेतु बोर्ड/विश्वविद्यालय द्वारा संचालित की जाने वाली सार्वजनिक परीक्षा में सम्मिलित होंगे, वे ही इस परीक्षा में बैठने के पात्र होंगे.

राष्ट्रीय प्रतिभा पुरस्कार के लिये अंतिम रूप से चयन किये गये उम्मीदवार बुनियादी और कृषि विज्ञान, इंजीनियरिंग, चिकित्सा विज्ञान और समाज विज्ञान में अपना अध्ययन जारी रख सकते हैं.

आवेदनपत्र के साथ सूचना विवरणिका निम्नलिखित कार्यालयों से अपना पता लिखा 12 से. मी. × 30 सें. मी. आकार का रु. 1.30 का टिकट लगा लिफाफा भेजने पर अथवा स्वयं कार्यालय से निःशुल्क प्राप्त किये जा सकते हैं.

1. संस्था के प्रधानाध्यापक/प्रधानाचार्य जहाँ उम्मीदवार अध्ययन कर रहा है. (संबंधित प्रधानाध्यापक/प्रधानाचार्य ये आवेदन प्रपत्र उनके क्षेत्र में स्थित रा. शै. अ. और प्र. प. के क्षेत्र सलाहकार से प्राप्त कर सकते हैं)
2. क्षेत्र (अंतिम पैरा में देखिये) स्थित रा. शै. अ. और प्र. प. के क्षेत्र सलाहकार के कार्यालय.
3. अनुभाग अधिकारी, राष्ट्रीय प्रतिभा खोज यूनिट-1, रा. शै. अ. और प्र. परिषद श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110016.

अंतिम तिथि : निर्धारित आवेदनप्रपत्र मँगाने के लिये किया गया अनुरोध संबंधित कार्यालयों के पास 1 जनवरी, 1979 दिन के 5 बजे तक पहुँच जाने चाहिए. पूर्ण रूप से भरे हुए आवेदन पत्र, परीक्षा के केंद्र अधीक्षक के पास जमा करने की अंतिम तिथि 20 जनवरी, 1979 तक है. आवेदन प्रपत्र के साथ संलग्न सूचना विवरणिका में परीक्षा के 408 केंद्रों की पूरी सूची दी गई है.

रा. शै. अ. और प्र. परिषद के क्षेत्र सलाहकारों के पते

1. कनाचल, नवग्रह रोड, गौहाटी-781003.
2. गीतांजली, टी. सी. संख्या 15/1019, जगथी, त्रिवेंद्रम-14
3. 3-6/147-2, हिमायत नगर, हैदराबाद-500029.
4. बी-47, प्रभु मार्ग, तिलकनगर, जयपुर-302004
5. ई-1/66, अरेरा कालोनी, भोपाल-462014.
6. 555/ई, ममफोर्डगंज, इलाहाबाद-211002.
7. 714, 9वाँ क्रॉस, वेस्ट आफ चोर्ड रोड, राजाजी नगर, बंगलौर-560010.
8. 119, बुद्धेश्वरी कॉलोनी, भुवनेश्वर-751006.
9. 1-रबीचंद्र कॉलोनी, अहमदाबाद-380006.
10. नं. 5, हिंदी प्रचार सभा स्ट्रीट, टी. नगर, मद्रास-600017.
11. 285/10, कोरेगाँव पार्क (बाँध बगीचे के समीप), पुणे-411001.
12. रोड सं. 2, राजेंद्रनगर, पटना-800016.
13. पी-23, सी.आई. टी. रोड (एल.वी. योजना), कलकत्ता-700014.
14. कोठी नं. 23, सेक्टर 8(क), चंडीगढ़-160018.
15. निजाम मंजिल, शेर-ए-कश्मीर कालोनी, सेक्टर-2, रामपोरा, छतबाल, डाकघर करन नगर, श्रीनगर-190010.
16. पी. जी. होस्टल, एन. आई. ई. कंप्स, रा. शै. अ. और प्र. परिषद, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110016.
17. द्वारा राज्य शिक्षा संस्थान, मणिपुर सरकार, इंफाल-795001.
18. मानिक रोड, अपर लेबान, शिलांग-793004.

डीएवीपी 78/386

साथ के लोग

'साथ के लोग' में **शेखर जोशी** की 24 कहानियाँ संकलित हैं. इससे पहले 1958 में शेखर जोशी का कहानी संग्रह **'कोसी का घटवार'** प्रकाशित हुआ था. कोसी का घटवार कहानी **साथ के लोग** में भी है जिससे कि शेखर जोशी को न केवल ख्याति मिली थी, बल्कि जिसके कारण उनकी कहानियों के गुण को और अधिक पहचाना गया था. शेखर जोशी कहानीकारों की उस परंपरा में हैं जो कथा कहने में—किसी हद तक उस के वर्णनात्मक रूप में—विश्वास करती रहीं है और जो शिल्प की किसी प्रत्यक्ष चमक की दावेदार नहीं रही. लेकिन हम शेखर जोशी की कहानियाँ पढ़ते हुए अनुभव करते हैं कि ऊपर से अत्यंत सहज सरल लगने वाली कहानियों का एक अपना अंतर्निहित शिल्प भी है, बल्कि इसके बिना ये कहानियाँ ऐसी कहानियाँ न होतीं जैसी कि वे हैं: एकदम से मन में बिंध जाने वाली, अपनी गरमाहट में हमें लपेट लेने वाली और धीरे धीरे भीतर सुलगती रहने वाली भी. **दाज्यू, बदबू, उस्ताद, कोसी का घटवार** कहानियाँ, कोई अठारह-बीस वर्ष पहले पढ़ी थीं. आज पढ़ने पर भी वे वैसी ही ताजा लगती हैं, बल्कि उन के मायने कुछ और साफ हो गये हैं. कह सकते हैं कि इस बीते हुए समय ने उन में और भी अर्थ भर दिये हैं.

शेखर जोशी पिछले वर्षों में उतनी रफ्तार से नहीं लिखते रहे, जितनी रफ्तार से उन्होंने एक समय लिखा था. इसके कारण कुछ भी हो सकते हैं. लेकिन शेखर जोशी की नयी पुरानी कहानियाँ पढ़ कर यह इच्छा उन के पाठकों को जरूर होगी (एक बार फिर) कि उनकी कहानियाँ उन्हें पढ़ने को मिला करें. शेखर जोशी की कहानियाँ **अपने समय** के साथ खास तरह से न्याय करने वाली कहानियाँ हैं. उन की भाषा में एक अपनी ही सादगी और स्वाद है.

उन की अधिकतर कहानियाँ मध्यवर्गीय और निम्नमध्यवर्गीय चरित्रों को लेकर हैं जो अपने सुख, अपनी पीड़ा, अपनी कमजोरी, अपनी शक्तियों, अपने संघर्षों और अपनी सामाजिक मानसिक विडंबनाओं में उन की कहानियों में आते रहे हैं. इन में से कुछ विलक्षण हैं, कुछ को परिस्थितियों ने जिंदगी में एक खास तरह ढाल कर विलक्षण बना दिया है—शेखर जोशी की खूबी यह रही है कि वे इन विलक्षण लेकिन 'गुमनाम' पात्रों की खोज जैसे पूरी संवेदना, सहजता और मार्मिकता में करते हैं. कुछ पात्र हैं, पहाड़ों से मैदानों में आये, जहाँ के इंसानी रिश्ते अधिक जटिल और असहज रहे हैं—अपने 'शहरीकरण' में. शेखर जोशी इन रिश्तों में मानवीय भावनाओं और उसके क्षय पर खास तरह से गौर करते रहे हैं (दाज्यू कहानी) और अगर आज यह गौर करें कि ये रिश्ते सब जगह 'जटिल' होते जा रहे हैं तो पाएँगे कि इसकी पूर्व सूचना से ये कहानियाँ अछूती नहीं थीं. उन की कोशिश बराबर यह रही है कि मानवीय भावनाएँ और प्रेम जहाँ आज भी खालिस रूप में मौजूद हैं, वहाँ उन का पक्ष लेकर —रचनात्मक पक्ष लेकर उन्हें दर्ज किया जाये. उन की कहानियों में इस पक्ष को बचा लेने का एक संघर्ष रहा है, ठीक अपने पात्रों की तरह. और हम उन्हें सहज ही उन लेखकों के बीच में रख सकते हैं जिन के लिए लिखना, साहित्यिक मोर्चे पर कुछ करने से भी अधिक अपनी रचनात्मक पहचान को बचाये रखने का कारण रहा है.

नयी कहानी आंदोलन में या उस के बाद भी उन्होंने अपने अन्य समकालीनों की तरह कोई साहित्यिक लड़ाइयाँ नहीं लड़ीं—अपने शिल्प या कथ्य को सिद्ध करने के लिए. लेकिन हम देखते हैं कि उनका 'खरापन' अपने आप में एक संघर्ष रहा है. शेखर जोशी के जिस 'अंतर्निहित' शिल्प की बात मैंने कही थी, उसे हम उन की कहानियों में अनायास ही पाते हैं. 'कोसी या घटवार' की पहली ही पंक्ति है 'गुसाईं का मन चिलम में भी नहीं लगा.' एक बिल्कुल सहज यह पंक्ति अर्थवान हो उठती है कि इसके पहले एक कहानी घट चुकी है. शेखर जोशी की भाषा तेज दौड़ने वाली भाषा नहीं है. लेकिन अपनी संयत गति में वह अदृश्य लेकिन तेज रफ्तार में बहुत कुछ घट चुके को बराबर पकड़ती रही है.

संग्रह की सब कहानियाँ एक सी सफल कहानियां नहीं हैं तो इसी तर्क से कि किसी भी लेखन में कोई एक ही अंतिम सीढ़ी नहीं होती. लेकिन ज्यादा कर के उन की कहानियों में न केवल एक कसाव है, एक अकृत्रिमता भी है और एक जिम्मेवारी भी—एक तरह की पारिवारिक जिम्मेवारी, जो वह अपने पात्रों के साथ निभाते हैं, या 'न निभा पाने' की जिम्मेवारी का पछतावा महसूस करते हैं.

—प्र. शु.

साथ के लोग : शेखर जोशी, संभावना प्रकाशन, रेवती कुंज, हापुड़-205101, मूल्य 16 रु. पृष्ठ 208.

कला

हुसेन का काम

आधुनिक भारतीय कला के साथ **मक़बूल फिदा हुसेन** का नाम अभिन्न रूप से जुड़ गया है. 1950 में हुसेन ने बंबई में अपने चित्रों की पहली एकल प्रदर्शनी की थी, उसके बाद से (1952 को छोड़) कोई साल ऐसा नहीं गया जब उन के चित्रों की प्रदर्शनी न हुई हो—किसी किसी बरस तो एक-दो से भी अधिक प्रदर्शनियाँ हुईं. देश-विदेश में. जाहिर है कि वह बहुत अधिक काम करने वाले कलाकारों में से हैं. उनके इन्हीं सैकड़ों चित्रों में से (जो अब देश और दुनिया में बिखर गये हैं) लगभग 75 चित्रों की एक प्रदर्शनी 1 दिसंबर को नयी दिल्ली में रवींद्रभवन दीर्घाओं में लगी. (यह उसी दिन शुरू हुई जिस दिन हुसेन को ललित कला अकादेमी की रत्न सदस्यता अकादेमी के अध्यक्ष **रामनिवास मिर्धा** द्वारा अंगवस्त्रम और **प्रशस्ति** भेंट करके दी गयी.) यह प्रदर्शनी 17 दिसंबर तक रहेगी. इस से पहले **बिड़ला एकेडमी आफ आर्ट एंड कल्चर** ने 1973 में कलकत्ता में उनकी सिंहावलोकन प्रदर्शनी आयोजित की थी. 1974 में **कामनवेल्थ इंस्टीट्यूट आर्ट गैलरी, लंदन** में उन के चित्रों की एक बड़ी प्रदर्शनी हुई. 75 में हुसेन के साठ साल पूरे करने पर **पंडोल आर्ट गैलरी** ने एक बड़ी प्रदर्शनी लगायी. इन दिनों जो प्रदर्शनी **आर्ट हेरिटेज गैलरी** ने रवींद्रभवन में लगायी है, वह हुसेन की एक बड़ी प्रदर्शनी ही है—सच्चे मायनों में सिंहावलोकन प्रदर्शनी नहीं (इसमें उन के कई **प्रतिनिधि** चित्र नहीं हैं—मसलन 'लैंप और मकड़ी के बीच') लेकिन है यह एक उल्लेखनीय प्रदर्शनी और यही बताती है कि अगर एक प्रदर्शनी में हुसेन के 100-50 चित्र रख दिये जाएँ तो वह एक उल्लेखनीय प्रदर्शनी बन ही जायेगी. यह हुसेन की और उनकी कला की निर्विवाद उपलब्धि है.

हुसेन की इस प्रदर्शनी में प्रवेश करते ही एक बार हम फिर जानते हैं कि आधुनिक मुहावरों में, भारतीय जन जीवन और रंगरूपों के साथ एक गहरा रचनात्मक परिचय, उनके काम को सहसा हमारे निकट ला देता है. और प्रचलित आधुनिक मुहावरों के आतंक को तोड़ता है. हम हुसेन के चित्रों के साथ, अपनी-अपनी तरह से बिल्कुल सीधे दोस्ती कर

दीपक राग

छतरी सिरीज का एक चित्र

सकते हैं---बीच में तीसरे की जरूरत नहीं है. हुसेन की इस प्रदर्शनी में सबसे पुराना चित्र है: 1947 का **कुम्हार**. इस चित्र से शुरू करके देखें तो पाएँगे कि भारतीय लोक जीवन उनकी कला का प्राण आज भी है. (हुसेन की स्त्री आकृतियों में आधुनिका एक भी नहीं है) उनके चित्रों का एक दूसरा बड़ा स्रोत भारतीय इतिहास पुराण और प्राचीन मंदिर मूर्तिशिल्प (आकृतियों की मुद्राओं के मामले में) रहे हैं.

इसी प्रदर्शनी के कोई बीस चित्रों में हम **हाथी** की आकृति को बार बार प्रकट होता देखते हैं. ऐरावत, गणेश और बुद्ध के जन्म की [illegible] लोक जीवन में 'हाथी के [illegible]' से जुड़े हाथी का रूप और प्रतीक हमारी चेतना और जातीय स्मृति में खास तरह से बिंधा हुआ है.

मंदिर मूर्तिशिल्पों में भी यह बार बार प्रकट होता रहा है---इस रूप की शक्ति और गरिमा और उससे जुड़ सकने वाले तमाम अन्य अर्थों (मसलन उद्दाम यौन भाव आदि को) हुसेन ने आधुनिक---बल्कि कहना चाहिए---**अपने मुहावरे** में खास तरह से रखा है (प्रसंगवश हम याद कर सकते हैं कि कामनवेल्थ आर्ट इंस्टीट्यूट लंदन में आयोजित प्रदर्शनी के वस्ताबंद कैटलॉग के ऊपर हुसेन ने हाथी की आकृति को ही रखा था) हम इस प्रदर्शनी में एक बार फिर यह भी गौर करेंगे कि हुसेन दरअसल **रंग के शरीर** से सरोकार रखने वाले कलाकार हैं और किसी रंग की संवेदना, अर्थ और 'शरीर' से वह जितना स्वयं मोहित होते हैं, उतना हमें भी मोहित करते हैं. हम इतने चित्रों को एक साथ देखकर यह भी गौर करेंगे कि हुसेन के चित्रों में रैखिकता प्रबल नहीं है, रंग की सत्ता ही प्रबल है. चाहे वह रंग सामग्री को गाढ़ा कर के रख रहे हों, चाहे अत्यंत तरल और प्रवाहमय---हुसेन के हाथों में रंग कैनवास पर प्रकट होने के लिए अधीर हैं.

हम यह भी पाएँगे कि हुसेन की रंगावली या उनका रंगकोश बहुत बड़ा नहीं है---ज्यादा करके सफेद, काला, हरा, लाल, नीला, पीला, सलेटी आदि ही हैं और इन्हीं की विभिन्न 'जातियाँ' और रंगतें---लेकिन हुसेन इतनी रंगावली से ही रंग और रूप के स्तर पर एक सचमुच का रंगारंग चित्र संसार खड़ा करते हैं. हुसेन की आँखें चीजों का आकारिक रूप तो देखती ही हैं (और उसे भी चित्रों में बरकरार रखती हैं) लेकिन आकारिक रूप के पीछे की आत्मा और मर्म की तलाश करती हैं---जिसमें हम हर बार अपने ढंग से शामिल हो सकते हैं. हुसेन के कई चित्र आदमकद आकार से बड़े हैं और कुछ भित्तिचित्रों की तरह जैसे एक दीवार की लंबाई में हैं---मसलन 'आत्मकथा' सिरीज के चित्र---लेकिन हम देखेंगे कि हुसेन के चित्रों में यह आकार अक्सर अपने को विश्वसनीय ही बनाता है---और जरूरत से ज्यादा जगह घेरने का बोध नहीं पैदा करता.

हुसेन के आरंभिक चित्रों को छोड़ दें---जिनके संदर्भ में कुछ देशी विदेशी चित्रकारों की शैलियों के साथ नाता जोड़ा गया---तो हम देखेंगे कि आगे उन्होंने जो शैली विकसित की, वह उनकी अपनी ही एक **पहचान** बनाती है. हुसेन के काम में आधुनिक मुहावरों का कोई गणित नहीं है, और उनके काम के बारे में हम आसानी से इस तरह की बात नहीं कर सकते कि उन्होंने कैनवस को कैसे विभाजित किया, स्पेस का रखरखाव कैसे किया आदि. आधुनिक मुहावरों की गणित के ऊपर हम इसे हुसेन की एक जीत की तरह भी देख सकते हैं. इसी प्रदर्शनी में कुछ चित्र ऐसे हैं जिन में चित्र स्पेस के भीतर कई अलग अलग खंड हैं, अपने में स्वतंत्र और अंत में एक दूसरे से जुड़ जाते हुए. (हुसेन ठेठ अमूर्तन भी कभी नहीं करते रहे) बनारस सिरीज के चित्रों पर गौर करें तो पाएँगे कि गाढ़ी रंग सामग्री में हुसेन ने आकृतियों आकारों के कई द्वीप बना दिये हैं---आपस में उनके एक गहरे अंतर्संबंध के साथ. उनके रंग अक्सर सुलगते या मद्धिम धधक के साथ हैं. हुसेन के चित्रों के सामने खड़े होने का सबसे बड़ा मतलब यह है कि वह सचमुच हमारी दुनिया को बड़ा करते हैं---सबकी अपनी अपनी दिनचर्या इन चित्रों के बीच एक जरूरी विस्तार का अनुभव करेगी.

हुसेन : आधुनिका एक भी नहीं

'मेरे समकालीन' : बायें से गायतोंडे, अकबर पदमसी, राम कुमार, तैयब मेहता और अन्य : सब से किनारे (दायीं ओर) हैं नसरीन मोहम्मदी : हुसेन ने कहा 'चेहरे नहीं, उन के साथ के चित्र पहचानिये.' यह चित्र प्रदर्शनी में था लेकिन प्रदर्शित नहीं.

फिल्म

हम अच्छी फिल्में कैसे देखें

फिल्म वित्त निगम ने भारतीय सिनेमा को एक स्वस्थ दिशा देने की अनेक कोशिशें समय समय पर की हैं. बंबइया सिनेमा के चलते इस तरह की किसी दिशा बनाने का काम ज़ाहिर है कि बहुत मुश्किल है. पिछले दिनों नयी दिल्ली में पत्रकारों से बातचीत करते समय फिल्म वित्त निगम के वर्त्तमान अध्यक्ष **डॉ. जगदीश पारिख** ने कुछ हँसते हुए यह स्वीकार किया कि 'फिल्म वित्त निगम को अक्सर फ्रीक्वेंट फ्लागिंग कारपोरेशन (अक्सर कड़ी आलोचना का शिकार होने वाली संस्था) के नाम से भी चर्चा मिलती रही है'. लेकिन
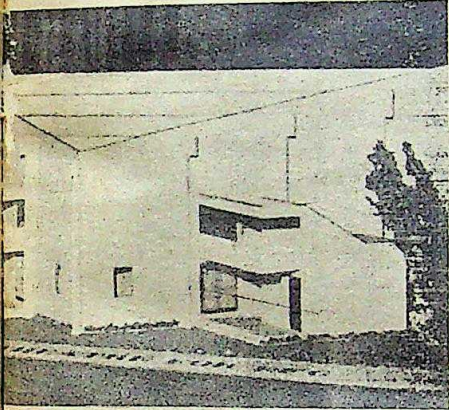
कम बजट वाले एक सिनेमा हॉल का नमूना

फिल्म वित्त निगम जैसी संस्थाओं की आलोचना अगर कुछ ज्यादा ही होती है तो इस के परिणाम कम-से-कम खराब नहीं निकलेंगे. ऐसा तो नहीं है कि पिछले 18-19 सालों में फिल्म वित्त निगम ने कुछ प्राप्त नहीं किया है या भारतीय सिनेमा को एक स्वस्थ रूप देने में मदद नहीं की है, पर फिल्म वित्त निगम ने अपनी छवि को बहुत उग्र रूप से समय समय पर बदलानहीं है. पिछले कुछ वर्षों में ही इस तरह की कोशिशें सामने आयी हैं और जो योजनाएँ इन दिनों फिल्म वित्त निगम के सामने हैं, उन से थोड़ा बहुत आशावादी जरूर हुआ जा सकता है.

दस साल पहले फिल्म वित्त निगम की मदद से बनी फिल्मों और कुछ फिल्मकारों की चर्चा बड़े जोरों से हुई थी. **मणि कौल** और **कुमार साहनी** जैसे फिल्मकारों ने अपनी फिल्मों से फिल्म वित्त निगम की छवि को काफी सम्मानजनक दर्जा दिया था. 1968 में **मृणाल सेन** ने 'भुवन सोम' बना कर कम बजट में अच्छी फिल्में बनाने का एक नया रास्ता खोला था. उस के बाद कई महत्त्वपूर्ण युवा फिल्मकारों ने अपने फिल्म बनाने के स्वप्न को फिल्म वित्त निगम के माध्यम से पूरा करने की कोशिश की. लेकिन फिल्म वित्त निगम की फिल्मों के साथ सब से बड़ी दिक्कत यह रही है कि ये फिल्में दर्शकों तक पहुँच नहीं पाती हैं. गाँवों और कस्बों की तो बात बड़ी दूर की है, इन में से अधिकांश फिल्में बड़े शहरों में भी नहीं दिखायी जा पातीं. मिसाल के लिए पिछले वर्ष फिल्म वित्त निगम ने 'अरविंद देसाई की अजीब दास्तान' (निर्देशक सइद मिर्ज़ा) तथा 'गमन' (निर्देशक मुजफ्फर अली) आदि कुछ चर्चित फिल्मों को आर्थिक मदद दी पर आज तक ये फिल्में दिल्ली के दर्शक भी नहीं देख पाये हैं. इस समस्या से फिल्म वित्त निगम के अधिकारी ज़ाहिर है कि बहुत अच्छी तरह परिचित हैं. इसीलिए 1976 के बाद से फिल्म वित्त निगम ने कम बजट वाली कलात्मक फिल्मों को आर्थिक मदद देने के अलावा भारत में सब तरह से अच्छे सिनेमा को बढ़ावा देने के प्रयत्न करना शुरू कर दिये हैं. इन में एक बड़ा काम कम बजट के सिनेमा हॉलों को बनाने का है. ये सिनेमा हाल गाँवों, कस्बों और शहरों सभी जगहों पर बनाये जायेंगे. फिल्म वित्त निगम ने इस तरह के सिनेमा हॉलों के लिए कुछ नमूने की इमारतें भी तैयार की हैं, और कोशिश की जा रही है कि इन सिनेमा हॉलों के बन जाने के बाद उन के मालिकों के साथ फिल्म वित्त निगम का आधा आधा हिस्सा रहे. फ़िलहाल गाँव के सिनेमा हॉल के लिए एक लाख रुपये, कस्बे के हॉल के लिए तीन लाख और शहर के हॉल के लिए साढ़े सात लाख के बजट का अनुमान लगाया गया है. इस का औसत बना कर फिल्म वित्त निगम को अपने एक करोड़ के बजट से लगभग तीस नये सिनेमा हॉल खोलने का विचार है. ऐसी भी उम्मीद है कि राज्य सरकारों की मदद से यह बजट दो करोड़ का हो जाये. भारत जैसे बड़ी जनसंख्या वाले देश के लिए वैसे भी सात हजार सिनेमा हॉल (वर्त्तमान आँकड़ा) बहुत कम हो जाते हैं. फिर कैसे उम्मीद की जाये कि इन सिनेमा हॉलों में अच्छी फिल्मों के लिए समय निकाला जा सकेगा? पिछले कुछ वर्षों से फिल्म वित्त निगम यह भी कोशिश कर रहा है कि दुनिया भर के देशों की अच्छी फिल्में अपने देश में लायी जा सकें. इन में से कुछ फिल्में तो 'क्रेज़ी लड़के' शैली की हैं. और कुछ फिल्में स्वस्थ और कलात्मक सिनेमा की परंपरा में आती हैं. यह भी कोशिश की जा रही है कि इन फिल्मों के प्रदर्शन के अधिकार देते समय एक ऐसा पैकेट बनाया जाये जिस में फिल्म वित्त निगम की अपनी कुछ फिल्में भी शामिल की जा सकें. फिल्मों के इस तरह के निर्यात के पीछे मुख्य उद्देश्य एक या दो देशों (अमेरिका आदि) की फिल्मों के सारे देश में छा जाने वाली स्थिति से मुक्ति पाना है. अब तक करीब 20 देशों की फिल्में इस योजना के अंतर्गत खरीदी जा सकी हैं. यह भी कोशिश की जा रही है कि टेलीविज़न के माध्यम से फिल्म वित्त निगम की फिल्में उन के दर्शकों तक पहुँचायी जा सकें.

डी. जी.

पिछली 18 नवंबर की सुबह कलकत्ता में वयोवृद्ध फिल्मकार **धीरेंद्रनाथ गांगुली** का निधन हो गया. वह 87 वर्ष के थे. बँगला सिनेमा के इतिहास में धीरेंद्रनाथ गांगुली का बहुत ऊँचा स्थान है. वह एक ऐसे समय में काम कर रहे थे जब सिनेमा का इतिहास अभी बहुत थोड़ा ही था. और जो काम उन्होंने किया, उस से आने वाली पीढ़ी को प्रेरणा मिल सकी. धीरेंद्रनाथ फिल्म जगत में डी. जी. के नाम से विख्यात रहे हैं.

1974 में पद्मभूषण के अलावा उन्हें दादा साहेब फलके पुरस्कार से भी सम्मानित किया जा चुका है. डी. जी. ने एक अभिनेता, फिल्म निर्माता, फिल्म निर्देशक और पटकथा लेखक इन विविध रूपों में काम किया. लेकिन बँगला सिनेमा के इतिहास में उन्हें मुख्य रूप से एक कॉमेडियन के रूप में जाना जाता है. उन्हें अगर बँगला सिनेमा के 'कॉमेडी के बादशाह' नाम दिया गया, तो यह कुछ गलत नहीं था.

डी.जी. की कॉमेडी से विख्यात अभिनेता चार्ली चैपलिन की याद सहज ही आ जाती है. लेकिन चार्ली चैपलिन ने अपनी फिल्मकला में लोगों को सिर्फ हँसाया ही नहीं बल्कि बहुत रुलाया भी. चैपलिन अपनी कॉमेडी में सामाजिक जागरूकता को केंद्र में रखने वाले कलाकार थे. जब कि डी. जी. कहा करते थे कि अगर आप हँसेंगे तो दुनिया भी आप के साथ हँसेगी. वह अपनी कला से लोगों को बहुत ज्यादा हँसाना चाहते थे. वह नहीं चाहते थे कि दर्शक उन की फिल्म में बैठ कर दुःखी हों या आँसू बहायें.

डी. जी. ने सिर्फ एक ऐसी फिल्म अपने जीवनकाल में बनायी जिसे कि गंभीर फिल्म कहा जा सके. और यह फिल्म एक मूक फिल्म थी जो शरतचंद्र के प्रसिद्ध उपन्यास 'चरित्रहीन' पर आधारित थी. लेकिन डी.जी.की जो चर्चित फिल्में रही हैं, उन में विदेशी संस्कारों में जीने वाले भारतीयों की जीवनशैली पर तीखे व्यंग्य किये गये हैं. 'इंग्लैंड रिटर्न' तथा 'एक्सक्यूज़ मी सर' जैसे नाम खुद ही डी.जी. की दुनिया में हमें ले जाते हैं.

देवकी बोस तथा **पी.सी. बरुआ** जैसी फिल्मी हस्तियाँ डी. जी के द्वारा ही बँगला सिनेमा में सामने आयी थीं. खुद डी. जी. ने अपनी पत्नी **प्रेम लतिका देवी** को कई फिल्मों में नायिका बना कर बँगला समाज में लड़कियों और स्त्रियों के लिए एक रास्ता बनाया. बाद में उन की बेटी **मोनिका** भी एक फिल्म अभिनेत्री बनीं.

ये शुद्ध ऊन है

ये शायद नहीं

आप कौन सी खरीदती रही हैं ?

दरअसल, आजकल बहुत से बुनाई के धागे ऊनी न होते हुए भी ऊनी का लेबल लगाकर, ऊनी के रूप में बेचे जा रहे हैं. अगर आप बुनाई के लिए शुद्ध, मिलावटरहित पक्के रंगवाली रंगबिरंगी ऊन खरीदना चाहें तो उस पर वूलमार्क अवश्य देख लें. वूलमार्क शुद्ध, नयी ऊन का विश्वास दिलाता है.

बंगाल के
वूलमार्क
बुनाई के धागे
कई आकर्षक
रंगों में मिलते हैं.

वूलमार्क.
शुद्ध, मिलावटरहित ऊन का विश्वास.

2363A

मसूड़ों में तकलीफ़ की पहली निशानियाँ

प्लाक (Plaque)
दाँतों और मसूड़ों पर हमेशा जमती रहनेवाली अदृश्य परत, जिसे साफ़ न किया जाय तो प्लाक के कारण टारटार जम जाता है।

टारटार (पपड़ी)
दाँतों की जड़ की ओर जमी हुई पपड़ी से मसूड़ों में सूजन और तकलीफ़...बाद में मसूड़ों व हड्डियों के सिकुड़ने से दाँत गिर भी सकते हैं।

मसूड़ों से खून
कमजोर और खोखले मसूड़ों को ब्रश से साफ़ करते समय खून निकल सकता है। इससे दर्द भले ही न हो फिर भी कई गंभीर समस्याएँ पैदा हो सकती हैं।

खिले हुए नारंगी रंग के पैक में

दाँतों के डॉक्टर कहते हैं;

नियमित रूप से, ब्रश से दाँतों की सफ़ाई और मसूड़ों की मालिश कीजिए; मसूड़ों की तकलीफ़ और दाँतों की सड़न से दूर रहिए.

दाँतों की सही देखभाल के लिए हर रात और सवेरे अपने दाँतों की सही ढंग से सफ़ाई और मसूड़ों की मालिश के लिये फोरहॅन्स टूथपेस्ट इस्तेमाल कीजिये। साथ ही फोरहॅन्स डबल-एक्शन टूथब्रश इस्तेमाल कीजिये क्योंकि यह दाँतों की सफ़ाई और मसूड़ों की मालिश के लिये ख़ास तौर से बनाया गया है।

मसूड़े ख़राब तो तन्दुरुस्ती ख़राब

मुफ़्त! "आपके दाँतों और मसूड़ों की रक्षा" दाँतों की देखभाल सम्बन्धी रंगीन सूचना-पुस्तिका। डाक-खर्च के लिये २० पैसे के टिकट साथ भेजकर इस पते पर लिखिये: फोरहॅन्स डेण्टल एडवाइज़री ब्यूरो, पोस्ट बॅग नं. ११४६३, डिपार्टमेंट P-118 180 बम्बई-४०००२० अपनी पसंद की भाषा अवश्य लिखिये।

फोरहॅन्स

दाँतों के डॉक्टर का बनाया हुआ टूथपेस्ट

180-F

रजीपत सं. D-(C)-183
पूर्व शुल्क के बिना डाक में डालने
की अनुमति—लाइसेंस सं. U-13

बैनेट, कोलमैन एंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए रमेशचन्द्र द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002 से मुद्रित व प्रकाशित. जनरल मैनेजर : डा. राम तरनेजा. पंजीकृत कार्यालय : डा. दादाभाई नौरोजी रोड, बंबई-400001. शाखाएं : 7, बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-110002; 139, आश्रम-रोड, अहमदाबाद-380009; 105/7ए, एस. एन. बनर्जी रोड, कलकत्ता-700014. कार्यालय : 13/1, गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट, कलकत्ता-700069; 15, मोंटियथ रोड, [illegible] मद्रास-600008; 407-1, तीरथ भवन, [illegible] पुणे-411002; 26, स्टेशन एप्रोच, सडबरी, वबले, मिडिलसेक्स, लंदन, यू. के., लंदन टेलीफोन : 01-903-9696.